अर्हम्

गुरुदेवश्री फतेह-प्रताप स्मृति पुष्प आगम अनुयोग ग्रंथमाला-८

द्रव्यानुयोग

जैनागमों में वर्णित जीव-अजीव विषयक सामग्री का विषयानुक्रम से प्रामाणिक संकलन

(मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

तृतीय खण्ड (अध्ययन ३९-४६)

अनेक परिशिष्ट एवं शब्दकोष युक्त

प्रधान सम्पादक :

अनुयोग प्रवर्त्तक उपाध्याय प्रवर पंडित-रत्न

मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल'

सहयोगी सम्पादक :

आगम रसिक श्री विनय मुनि जी 'वागीश'

महासती डॉ. श्री मुक्तिप्रभा जी, एम. ए., पी-एच. डी.

महासती डॉ. श्री दिव्यप्रभा जी, एम. ए., पी-एच. डी.

प्रधान परामर्शदाता :

पं. श्री दलसुखभाई मालवणिया

सह-सम्पादक :

पं. श्री देवकुमार जी जैन (बीकानेर)

श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस'

विशिष्ट सहयोगी :

श्री घेवरचंद जी कानूगो

श्री नेमीचंद जी सिंगवी

प्रकाशक : आगम अनुयोग ट्रस्ट

अहमदाबाद-३८० ०१३

सम्पादन सहयोगी :
आगम मनीषी श्री तिलोक मुनि जी 'गीतार्थ'
महासती श्री अनुपमा जी, एम. ए., पी-एच. डी.
महासती श्री भव्यसाधना जी
महासती श्री विरतिसाधना जी
डॉ. श्री धर्मचन्द जी जैन, जोधपुर

प्रकाशन वर्ष :
वीर निर्वाण संवत् २५२२
वि. सं. २०५२ पार्श्व जयन्ती
ईस्वी सन् १९९५, दिसम्बर

मुद्रण :
राजेश सुराना द्वारा दिवाकर प्रकाशन
ए-७, अवागढ़ हाउस, एम. जी. रोड,
आगरा-२८२ ००२, फोन : (०५६२) ३५११६५

पांडुलिपि सहयोगी :
श्री राजेश भंडारी, जोधपुर
श्री राजेन्द्र एवं सुनील मेहता, शाहपुरा
श्री मांगीलाल जी शर्मा, कुरड़ायाँ

सम्पर्क सूत्र :
- मंत्री : श्री जयंतिलाल चंदुलाल संघवी
  सिद्धार्थ एपार्टमेन्ट, स्थानकवासी सोसायटी के पास,
  नारायणपुरा क्रॉसिंग, अहमदाबाद-३८० ०१३
- श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
  सब्जी मण्डी के सामने,
  आबू पर्वत-३०७ ५०१ (राज.)
- डॉ. सोहनलाल जी संचेती, सहमंत्री
  चाँदी हॉल, केसरवाड़ी,
  जोधपुर-३४२ ००२ (राज.)

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान :
आगम अनुयोग ट्रस्ट
१५, स्थानकवासी सोसायटी
नारायणपुरा क्रॉसिंग के पास
अहमदाबाद-३८० ०१३

मूल्य :
चार सौ रुपया मात्र (४००/- रुपया)

ARHAM

GURUDEV SHRI FATEH-PRATAP MEMORIAL AGAM ANUYOG SERIES-8

DRAVYANUYOGA

AN AUTHENTIC SUBJECTWISE COLLECTION OF DATA ON LIFE AND MATTER DETAILED IN JAIN SCRIPTURES

(TEXT AND HINDI TRANSLATION)

PART-III (Chapter 39 to 46)

INCLUDING APPENDIXES & MEANINGS

Editor :

Anuyog Pravartak, Upadhyaya Pravar, Pandit Ratna

Muni Shri Kanhiya Lal Ji 'Kamal'

Associate Editor :

Agam Rasik Shri Vinay Muni Ji 'Vageesh'

Mahasati Dr. Shri Mukti Prabha Ji, M.A., Ph.D.

Mahasati Dr. Shri Divya Prabha Ji, M.A., Ph.D.

Chief Consultant :

Pt. Shri Dalsukh Bhai Malvaniya

Co-Editor :

Pt. Shri Dev Kumar Ji Jain (Bikaner)

Shri Srichand Ji Surana 'Saras'

Special Assistance :

Shri Ghewar Chand Ji Kanoogo

Shri Nemi Chand Ji Singhvi

PUBLISHER : AGAM ANUYOG TRUST

AHMEDABAD-380 013

CONTRIBUTING EDITORS :
Agam Maneeshi Shri Tilok Muni Ji 'Geetarth'
Mahasati Shri Anupama Ji, M.A., Ph.D.
Mahasati Shri Bhavya Sadhana Ji
Mahasati Shri Virati Sadhana Ji
Dr. Shri Dharm Chand Ji Jain, Jodhpur

MANUSCRIPT PREPARATION ASSISTANCE :
Shri Rajesh Bhandari, Jodhpur
Shri Rajendra and Sunil Mehta, Shahpura
Shri Mangi Lal Ji Sharma, Kurdayan

PUBLISHED AND MARKETED BY :
Agam Anuyog Trust
15, Sthanakvasi Society
Near Narayanpura Crossing
Ahmedabad-380 013

YEAR OF PUBLICATION :
Veer Nirvan S. 2522
V.S. 2052 Parshwa Jayanti
1995, December

PRINTED BY RAJESH SURANA AT :
Diwakar Prakashan
A-7, Awagarh House, M.G. Road
Agra-282 002, Ph. : (0562) 351165

CONTACT :
- Secretary :
  Shri Jayanti Lal Chandu Lal Sanghavi
  Siddhartha Apartment
  Near Sthanakvasi Society
  Narayanpura Crossing
  Ahmedabad-380 013
- Shri Vardhaman Mahavir Kendra
  Opp. Subji Mandi
  Mount Abu-307 501 (Raj.)
- Dr. Sohan Lal Ji Sancheti
  Co-secretary
  Chandi Hall, Kesarvadi
  Jodhpur-342 002 (Raj.)

PRICE :
Rupees Four Hundred only (Rs. 400.00)



समर्पण

स्थानकवासी परम्परा मान्य बत्तीस आगमों के
सर्वप्रथम संस्कृत-हिन्दी-गुजराती-टीकाकार
तथा
व्याकरण-कोष-छन्द-अलंकार आदि
अनेक विषयों के ग्रन्थों के निर्माता
परम पूज्य श्रुतधर बहुश्रुत एवं गीतार्थ
श्री घासीलाल जी महाराज की पुण्य स्मृति में
द्रव्यानुयोग का यह तृतीय खण्ड
सादर श्रद्धापूर्वक समर्पित है।

विनीत :
उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल 'कमल'
महासती मुक्तिप्रभा
महासती दिव्यप्रभा

प्रकाशकीय

अतीत में कुछ शताब्दियों पहले वहुश्रुत आर्य रक्षित ने अनुयोग विभाजित किये थे किन्तु विस्मृत हो गये और नाममात्र शेप रहे।

चार अनुयोगों के नाम–

१. धर्मकथानुयोग
२. गणितानुयोग
३. चरणानुयोग
४. द्रव्यानुयोग

पूज्य उपाध्यायश्री के मन में संकल्प हुआ कि आगमों को चार अनुयोगों में विभाजित किया जाय। लगभग ५0 वर्ष पूर्व आपने अनुयोग सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया था। अनेक विद्वानों से और कुछ श्रुतधर मुनिवरों से मार्गदर्शन प्राप्त किया और कार्य उत्तरोत्तर प्रगति के शिखर पर पहुँचता गया।

प्रारम्भ के तीन अनुयोग हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हो गये हैं और वे गुजराती अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हो रहे हैं। चतुर्थ द्रव्यानुयोग भी प्रकाशित हो रहा है। यह तीन भागों में प्रकाशित हो पाया है। प्रथम एवं द्वितीय भाग के वाद यह तृतीय भाग (सम्पूर्ण द्रव्यानुयोग परिशिष्ट सहित) पाठकों के सम्मुख रखते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

उपाध्यायश्री जी ने वहुत ही परिश्रम किया है। साथ ही उनके सुयोग्य शिष्य श्री विनय मुनि जी 'वागीश' ने भी गुरुदेव के संकल्प को पूर्ण कराने में अथक परिश्रम किया है।

जिनशासन चन्द्रिका महासती जी श्री उज्ज्वलकुमारी जी की सुशिष्या डॉ. महासती, श्री मुक्तिप्रभा जी, डॉ. दिव्यप्रभा जी, डॉ. अनुपमा जी, श्री भव्यसाधना जी, श्री विरतिसाधना जी ने भी इसके सम्पादन में मूल पाठ मिलान एवं लेखन आदि कार्यों में अनवरत परिश्रम किया है।

पं. श्री देवकुमार जी जैन, वीकानेर ने संशोधन आदि कार्यों में, डॉ. धर्मचन्द जी जैन ने आमुख आदि लिखकर योगदान किया है।

श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' आगरा ने संशोधन, प्रकाशन तथा श्री मांगीलाल जी शर्मा ने पांडुलिपि आदि कार्यों में विशेप योगदान दिया है, अतः हम इनके आभारी हैं।

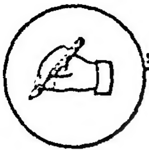
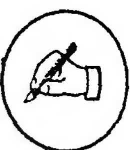
मेरे सहयोगी श्री हिम्मतभाई, श्री नवनीतभाई, श्री विजयराज जी, श्री जयन्तिभाई संघवी, डॉ. श्री मोहनलाल जी संचेती आदि का कार्य की प्रगति में विशेप सहयोग प्राप्त हुआ है।

श्री धेवरचन्द जी कानूंगा जोधपुर, श्री नेमीचन्द जी संघवी कुशालपुरा, श्री श्रीचन्द जी जैन दिल्ली, श्री गुलशनराय जी जैन दिल्ली, श्री मोहनलाल जी सांड जोधपुर, श्री नारायणचन्द जी मेहता जोधपुर, श्री जेठमल जी चौरड़िया वेंगलोर का इस प्रकाशन में विशेप रूप से आर्थिक योगदान प्राप्त हुआ है अतः हम इन सवके आभारी हैं।

—वलदेवभाई डोसाभाई पटेल

अध्यक्ष

आगम अनुयोग ट्रस्ट

सम्पादकीय

चार अनुयोगों में द्रव्यानुयोग बहुत विशाल, जटिल व दुरूह है।

यह तीन भागों में प्रकाशित हो रहा है। प्रथम भाग में २४ अध्ययन लिये गये हैं। १,००० विषयों का संकलन हुआ है। द्वितीय भाग संयत, लेश्या, क्रिया, आश्रव, वेद, कषाय, कर्म, वेदना, चार गति, वक्कंति आदि १४ अध्ययनों का संकलन है। कुल ८१२ विषय हैं।

तीसरा भाग भी पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है, इसमें गर्भ, युग्म, गम्मा, आत्मा, समुद्घात, चरमाचरम, अजीव, पुद्गल इन ९ अध्ययनों का संकलन है। तथा अनेक परिशिष्ट एवं शब्दकोष भी इसी में संकलित हैं। द्रव्यानुयोग बहुत ही गहन विषय है। इन अध्ययनों में उससे संबंधित पूरा विषय लेने का प्रयत्न किया गया है। अनेक विषय द्वार वाले हैं अतः वे छिन्न-भिन्न न हों इसलिये उनको विभक्त नहीं किया है। परिशिष्ट में अन्य अनुयोगों में प्रकाशित उन विषयों के पृष्ठांक व सूत्रांक दिये हैं जिनका अध्ययन करके पाठक पूर्ण विषय ग्रहण कर सकेंगे अतः पाठक उसका अवलोकन अवश्य करें।

पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म. एवं श्री प्रतापमल जी म. के शुभाशीर्वाद से ४५ वर्ष पूर्व यह कार्य प्रारम्भ किया था अव यह कार्य पूर्ण हो रहा है यह मेरे लिए परम प्रसन्नता का विषय है। इस कार्य को सफल वनाने में अनेक भावनाशील श्रुत उपासकों का योगदान प्राप्त हुआ है। जिसमें मेरे शिष्य विनय मुनि का खास सहयोग मिला। उन्होंने सेवा के साथ-साथ अन्तर्हृदय से इस अनुयोग के कार्य को व्यवस्थित किया।

साथ ही महासती जी श्री मुक्तिप्रभा जी अपनी शिष्याओं के साथ आबू पधारीं, उन्होंने अनेक परीषह सहन करके लगभग पाँच वर्ष तक इस भगीरथ कार्य को सफल वनाने में परिश्रम किया है।

इस कार्य का प्रारम्भ हरमाड़ा में हुआ था। प्रकाशन अनुयोग प्रकाशन परिषद् साण्डेराव से प्रारम्भ हुआ था फिर इसी कार्य से अहमदावाद पहुँचना हुआ, वहाँ श्री बलदेवभाई ने इस कार्य को देखा, उन्होंने प्रसन्न होकर ट्रस्ट की स्थापना की व चारों ही अनुयोगों का प्रकाशन वहाँ से हुआ है। गुजराती भाषांतर भी करने की भावना साकार हो रही है।

स्वाध्यायशील वंधु इनका स्वाध्याय करके ज्ञानोपार्जन करें।

इति शुभम्

—मुनि कन्हैयालाल 'कमल'






॥ अर्हम् ॥

ज्ञानयोगी उपाध्याय प्रवर अनुयोग प्रवर्तक गुरुदेव मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल'

ज्ञान की उत्कट अगाध पिपासा लिये अहर्निश ज्ञानाराधना में तत्पर, जागरूक प्रज्ञा, सूक्ष्म ग्राहिणी मेधा, शब्द और अर्थ की तलछट गहराई तक पहुँच कर नये-नये अर्थ का अनुसंधान व विश्लेषण करने की क्षमता–यही परिचय है उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. कमल का।

७ वर्ष की लघु वय में वैराग्य जागृति होने पर गुरुदेव पूज्य श्री फतेहचन्द जी महाराज तथा प्रतापचन्द जी म. के सान्निध्य में १८ वर्ष की आयु में दीक्षा ग्रहण। आगम, व्याकरण, कोश, न्याय तथा साहित्य के विविध अंगों का गंभीर अध्ययन व अनुशीलन। आगमों की टीकाएँ व चूर्णि, भाष्य साहित्य का विशेष अनुशीलन। ज्ञानार्जन/विद्यार्जन की दृष्टि से–उपाध्याय श्री अमर मुनिजी, पं. बेचरदास जी दोशी, पं. दलसुख भाई मालवणिया तथा पं. शोभाचन्द जी भारिल्ल का विशेष सान्निध्य प्राप्त कर ज्ञान चेतना की परितृप्ति की। उनके प्रति विद्यागुरु का सम्मान आज भी मन में विद्यमान है। २८ वर्ष की अवस्था में किसी जर्मन विद्वान् के लेख से प्रेरणा प्राप्त कर आगमों का अधुनातन दृष्टि से अनुसंधान। फिर अनुयोग शैली से वर्गीकरण का भीष्म संकल्प। ३० वर्ष की अवस्था से अनुयोग वर्गीकरण कार्य प्रारम्भ। पं. प्रवर श्री दलसुख भाई मालवणिया, पं. अमृतलाल भाई भोजक, महासती डॉ. मुक्तिप्रभा जी, महासती डॉ. दिव्यप्रभा जी, सर्वात्मना समर्पित श्रुतसेवी विनय मुनि जी 'वागीश', श्रीचन्दजी सुराना, डॉ. धर्मचन्द जी जैन, त्यागी विद्वत् पुरुष श्री जौहरीमल जी पारख, पं. देवकुमार जी जैन आदि का समय-समय पर मार्गदर्शन, सहयोग और सहकार प्राप्त होता रहा। बीज रूप में प्रारम्भ किया हुआ अनुयोग कार्य आज अनुयोग के ८ विशाल भागों के लगभग ६ हजार पृष्ठ की मुद्रित सामग्री के रूप में विशाल वट वृक्ष की भाँति श्रुत-सेवा के कार्य में अद्वितीय कीर्तिमान बन गया है।

गुरुदेव के जीवन की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ –

जन्म	:	वि. सं. १९७० (रामनवमी) चैत्र सुदी ९
जन्मस्थल	:	केकीन्द (जसनगर) राजस्थान
पिता	:	श्री गोविंदसिंह जी राजपुरोहित
माता	:	श्री यमुनादेवी
दीक्षा तिथि	:	वि. सं. १९८८ वैसाख सुदी ६
दीक्षा स्थल	:	धर्म वीरों, दानवीरों की नगरी सांडेराव (राजस्थान)
दीक्षा दाता	:	गुरुदेव जी फतेहचन्द म. एवं श्री प्रतापचन्द जी म.
उपाध्यायपद	:	श्रमण संघ के वरिष्ठ उपाध्याय



गुरुसेवा एवं श्रुत-सेवा के लिए समर्पित साकार विनय मूर्त्ति श्री विनय मुनि जी 'वागीश'

श्री विनय मुनि जी यथानाम तथागुण सम्पन्न सरल-सहज जीवन शैलीयुक्त, गुरुसेवा-श्रुत-सेवा को ही जीवन का महान् उद्देश्य मानने वाले एक अतीव भद्रपरिणामी–'भद्दे णामे भद्द परिणामे'-आपात भद्र- संवास भद्र आदर्श श्रमण है।

आपश्री ने दीक्षा लेते ही स्वयं को मेघ मुनि की भाँति गुरु-चरणों में सर्वात्मना समर्पित कर दिया। साधु समाचारी के दैनिक कार्यक्रमों की साधना-आराधना के पश्चात् जो समय बचता है, उसमें सर्वप्रथम पूज्य गुरुदेव की सेवा, परिचर्या, औषधि आदि की व्यवस्था के पश्चात् जो भी समय रहता है उसमें पूज्य गुरुदेवश्री के साथ अनुयोग कार्य में जुट जाते हैं। हाथ से लिखी फाइलें अनेक मुद्रित आगम प्रतियां सामने रखकर पाठों का मिलान तथा विषय का वर्गीकरण करने में अनुभव के वल पर आप एक सुयोग्य आगम-सम्पादक वन गये हैं। गुरु-कृपा से तथा श्रुत-सेवाजन्य क्षयोपशम के कारण आपकी स्मरणशक्ति एवं ग्रहण शक्ति भी प्रखर है। आगमों की भाषा का ज्ञान, विषय आदि का परिज्ञान भी गंभीर है।

पौराणिक भाषा में अगर गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. अनुयोग कार्य के 'व्यास' हैं तो उसे लिपिवद्ध करके व्यवस्थित रूप देने वाले 'गणेश' हैं श्री विनय मुनि जी।

आपका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

जन्म स्थल	:	टोंक (राज.)
वैराग्य	:	सं.२०१८ में पूज्य गुरुदेव फतेहचन्द जी म. की सेवा में आये
वैराग्य काल	:	७ वर्ष
शिक्षण	:	संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी
दीक्षा-तिथि	:	माघ सुदी १५ रविवार, पुष्य नक्षत्र वि. सं. २०२५
दीक्षा-स्थल	:	पीह-मारवाड़
दीक्षा-दाता	:	मुनिश्री कन्हैयालाल जी म. "कमल"
दीक्षा-प्रदाता	:	मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म.



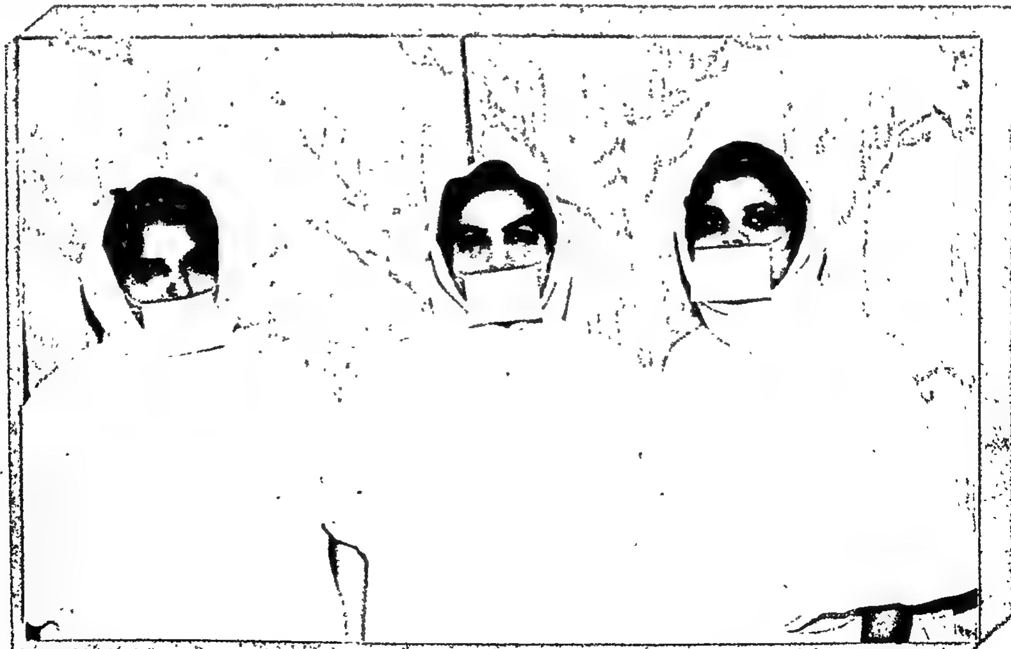
अनुयोग सम्पादन-संशोधन कार्य में समर्पित भाव से अथक श्रम सहयोग प्रदान करने वाली परम विदुषी श्रमणियाँ



श्रुताचार्या परम विदुषी डॉ. मुक्ति प्रभा जी महाराज



अरिहंत प्रिया विदुषी रत्न डॉ. दिव्य प्रभा जी. महाराज



साध्वी विरति साधना जी म. डॉ. साध्वी श्री अनुपमा जी म. साध्वी श्री भव्यसाधना जी



आगम अनुयोग ट्रस्ट के सम्माननीय आधार स्तंभ

श्री बलदेवभाई डोसाभाई पटेल, अहमदाबाद

आप मूलतः साणंद (गुजरात) के निवासी हैं। बहुत वर्षों से अहमदाबाद में ही व्यापार व्यवसाय कर रहे हैं। व्यापारी समाज में आपकी महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा है। आपके कॉटन का बहुत बड़ा व्यापार है, आप गुजरात व्यापारी महामण्डल के प्रमुख भी रहे हुए हैं। आप अखिल भारतीय शास्त्रोद्धार समिति के प्रमुख हैं एवं अनेक धार्मिक संस्थाओं के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं। लोक-कल्याण के कार्यों में सदा तत्पर रहते हैं। अनेक वर्षों से आप ब्रह्मचर्य व्रत एवं रात्रि भोजन त्याग आदि का पालन करते हैं। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण तथा धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय ही आपकी दिनचर्या का प्रमुख अंग है। आप दृढ़ धर्मी, उदार हृदयी श्रावक हैं अतः स्थानीय समाज के अग्रणी माने जाते हैं। कालूपुर बैंक के आप चेयरमेन हैं।

उपाध्याय प्रवर, अनुयोग प्रवर्तक पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' के सम्पर्क में आप सन् १९७६ में आये। उनके अनुयोग लेखन कार्य से प्रभावित होकर आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट की स्थापना की, इस समय ट्रस्ट के प्रमुख भी आप ही हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मणी बहिन भी धार्मिक भावना वाली थी, आपके सुपुत्र बच्चूभाई, बकुलभाई में धर्म के सुसंस्कार दृढ़ हैं।





श्री नवनीत भाई चुन्नीलाल पटेल, अहमदाबाद

आपने अनेक स्थानकों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। तपस्वियों का सम्मान करने में आपको विशेष रुचि रही है। पार्श्वनाथ कार्पोरेशन के आप मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। बरवाला सम्प्रदाय के आचार्य श्री चम्पक मुनि जी महाराज के अनन्य भक्त हैं। हरसिद्ध कोपरेटिव बैंक के आप चेयरमेन हैं। अपनी जन्मभूमि शुणाव में हॉस्पिटल के लिए पाँच लाख का महत्त्वपूर्ण दान दिया है। नवरंगपुरा, नारायणपुरा, नवा वाडज आदि अनेक संघों के एवं संस्थाओं के आप ट्रस्टी एवं प्रमुख हैं।

आपके पिताश्री चुन्नीलाल भाई, माता सूरजबेन भी बहुत ही धर्मपरायण थी। साधु साध्वीजी की वैयावच्च हेतु अग्रणी रहते हैं।

आपकी ध्यान साधना के साथ-साथ आगमो के प्रति भी विशेष रुचि है, प्रतिदिन अध्ययन करते हैं।

अनुयोग के इस विशाल कार्य को सम्पन्न कराने में आपके पूरे परिवार का विशेष योगदान रहा है।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप ट्रस्टी हैं।

प्राक्कथन

–आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि

श्रमणसंघ के वरिष्ठ विद्वान् उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' द्वारा सम्पादित द्रव्यानुयोग वास्तव में एक महासागर का मन्थन कर प्राप्त किया हुआ श्रुतज्ञान का अमृत घट कहा जा सकता है। तीनों भागों में निवद्ध यह ग्रन्थ स्वयं भी ज्ञान का महाकोष जैसा है। इसमें षड्द्रव्यों के भेद-उपभेद, उनकी विविध स्थितियाँ और मुख्यतः जीव-अजीव से सम्बद्ध अनेकानेक विषय गुम्फित हैं। जैन आगमों में जहाँ-तहाँ इन विषयों का वर्णन, संक्षेप और विस्तार में जो भी उपलब्ध है उसे मुनिश्री ने संकलित कर एकत्रित किया है और फिर विषय क्रम से नियोजित कर उपविषयों तथा विभिन्न शीर्षकों में विभक्त करके हिन्दी भावानुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। इन तीनों भागों का विहंगम अवलोकन करने पर स्पष्ट पता चलता है कि यह एक अत्यन्त दुष्कर एवं श्रम-साध्य कार्य किसी जाग्रत-प्रज्ञाशील मनस्वी का ही चमत्कार है। किसी भी कार्य की सम्पन्नता के लिए ध्येय, निष्ठा और दृढ़ अध्यवसाय की अपेक्षा रहती है। साथ ही जीवन को उस कार्य के प्रति समर्पित कर देना होता है। उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' के इस कार्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि उन्होंने जैन श्रुतज्ञान के क्षेत्र में वह अधूरा कार्य सम्पन्न किया है, जिसका बीज-वपन आज से लगभग २१७५ वर्ष पूर्व युगप्रधान आचार्य आर्यरक्षितसूरि ने किया था।

आचार्य आर्यरक्षितसूरि ने आगमों के अध्ययन को सुगम वनाने और श्रुतज्ञान को सरलतापूर्वक ग्रहण करने की दृष्टि से अनुयोग वर्गीकरण की एक शैली सुनिश्चित की थी और उस पर व्यापक परिश्रम भी किया था। उसी रूपरेखा को आधार वनाकर मुनिश्री ने अपनी अनुभवी वहुश्रुत-दृष्टि से इस कार्य को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया है। इस कार्य में मुनिश्री ने जीवन के ५० महत्त्वपूर्ण वर्ष खपाये हैं, परन्तु मैं इस ५० वर्ष के कार्य को ५०० वर्ष के सुदीर्घ श्रम के रूप में आँकता हूँ। दो हजार वर्ष के पश्चात् अनुयोगों का एक सुव्यवस्थित रूप हमारे सामने आया है और वह भी श्रमणसंघ के एक वरिष्ठ उपाध्यायश्री के द्वारा; इस वात का मुझे हर्ष है, आल्हाद है और सम्पूर्ण स्थानकवासी जैन समाज के लिए गौरवास्पद है। मैं तो कहूँगा समस्त जैन समाज के लिए यह प्रसन्नता और गरिमा का विषय वनेगा।

द्रव्यानुयोग की छपी सामग्री का अवलोकन करने पर मुझे वड़ी प्रसन्नता हुई कि इसके स्वाध्याय से कर्म, क्रिया, लेश्या, आस्रव, जन्म-मरण, पुद्गल सम्बन्धी इतनी महत्त्वपूर्ण और जीवनोपयोगी सामग्री मिलती है कि मन करता है कि पढ़ते ही जायें। इस ज्ञानार्णव में डुवकियाँ लगाते रहें। विहंगम अवलोकन करते हुए मैंने एक वार आस्रव अध्ययन के पृष्ठ पलटे। पांच आस्रवों का वर्णन पढ़ने लगा। पाँच आस्रव द्वारों का विस्तृत वर्णन प्रश्नव्याकरणसूत्र में उपलब्ध है। इन संवर और आस्रव द्वारों का वर्णन, हिंसा, असत्य आदि आस्रवों का फल-विपाक पढ़ने पर रोमांच हो उठता है। हिंसा एवं असत्य सेवन के कारण, हेतु और उनके कटु फल इतने मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं कि जिन्हें पढ़ते हुए मनुष्य का हृदय कांप उठता है और हिंसा आदि आस्रवों से स्वतः ही विरति होने लगती है।

यह एक उदाहरण है। इसी प्रकार ज्ञान, कर्म, लेश्या आदि सभी विषयों पर वड़ी विस्तृत और आधारभूत सामग्री इस ग्रन्थ में प्राप्त होती है। जिसके स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है, जिन-वचनों के प्रति श्रद्धा सुदृढ़ होती है और हृदय पाप वृत्तियों से विरक्त होने लगता है।

इसी के साथ यह सामग्री जैनदर्शन के अभ्यासी विद्वानों तथा दर्शन एवं विज्ञान के अनुसंधाताओं के लिए भी वड़ी सहायक और मार्गदर्शक सिद्ध होगी। जैनदर्शन की पुद्गल, जीव, गति, कर्म, लेश्या, योग सम्बन्धी धारणाएं आज विज्ञान के लिए अध्ययन का अभिनव विषय वना हुआ है। हजारों वर्ष पूर्व वर्णित वे तथ्य सत्य आज विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं और साथ ही वैज्ञानिकों को इस दिशा में अनुसंधान करने के लिए आधार-भूमि तैयार करते हैं। एक मार्गदर्शक संकेत और रूपरेखा भी प्रस्तुत करते हैं। इससे ज्ञान-विज्ञान के नये-नये क्षितिज खुलने की सम्भावना प्रवल होती है। मेरा यह विश्वास है कि आने वाले युग का वैज्ञानिक और अनुसंधाता जव तक जैन दर्शन व जैन आगमों का अध्ययन नहीं करेगा उसकी वैज्ञानिक प्रगति अपूर्ण व उसके अनेक प्रश्न अनुत्तरित व उलझे हुए ही रहेंगे। विज्ञान जिन प्रश्नों का आज उत्तर नहीं पा रहा है, जिनके समाधान में विज्ञान असमंजस की स्थिति में है, उन प्रश्नों का, उन पहेलियों का समाधान जैन आगमों के गहरे अनुशीलन में खोजा जा सकता है और इस दिशा में द्रव्यानुयोग का यह महान् संग्रह विशेष सहायक वनेगा, ऐसा मेरा अभिमत है।

उपाध्यायश्री की भावना थी कि मैं इस ग्रन्थ पर विस्तृत प्रस्तावना लिखूँ, मेरी भी अन्तरइच्छा थी कि इस प्रकार के महाग्रन्थ पर एक विस्तृत प्रस्तावना लिखी जाय। अपने अध्ययन, अनुशीलन का सार पाठकों के सामने प्रस्तुत करूँ। परन्तु पंजाव, हरियाणा, उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्रों के निरन्तर विहार, प्रतिदिन सैकड़ों, हजारों दर्शनार्थियों का आवागमन, सम्पर्क तथा साधु जीवन की आवश्यक चर्या के कारण मुझे अव तक अवकाश ही नहीं मिल सका और प्रस्तावना विलम्बित होती गई। अस्तु ! अव तृतीय भाग भी सम्पन्न हो रहा है। इसलिए मैंने संक्षेप में ही अपना विचार प्राथमिक वक्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

मैं प्रवुद्ध पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे प्रस्तुत ग्रन्थरत्न पर लिखी हुई डॉ. सागरमल जी जैन और डॉ. धर्मचन्द जी जैन की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना का गहराई से अनुशीलन करें जिससे ग्रन्थ के गुरु गम्भीर रहस्य सहज में समझ में आ सकेंगे क्योंकि दोनों ही प्रस्तावना वड़ी महत्त्वपूर्ण, अनुशीलनात्मक हैं। मैं पुनः अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करता हूँ कि उपाध्याय मुनि श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल' का यह ५० वर्ष का दृढ़ अध्यवसाय युक्त अविस्मरणीय श्रम जैन वाङ्मय को यशस्विता प्रदान करेगा और शताव्दियों तक अपना महत्त्व वनाये रखेगा। इसी शुभाशा के साथ···। ●●

अनुयोग की अपूर्व यात्रा

—श्री विनय मुनि 'वागीश'

श्रुतज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसे केवलज्ञान के समकक्ष माना गया है। इसके चौदह भेदोपभेदों में सम्यक् श्रुत एक प्रमुख भेद है, जो द्वादशांग गणिपिटक रूप है। द्वादशांग का ज्ञान सम्यक्त्व-विशुद्धि, वैराग्य की वृद्धि एवं चारित्र की शुद्धि का प्रमुख हेतु है। आगमों का अभ्यास किए बिना न आत्म-विशुद्धि होती है और न आत्मा की सिद्धि होती है। इस प्रकार सतत चिन्तन-मनन से गुरुदेव के मन में यह भावना प्रादुर्भूत हुई कि **"आगमों के स्वाध्याय की परम्परा परिपुष्ट हो"** यही चिन्तन अनुयोगों के शुभारम्भ में निमित्त वना। अनुयोग संकलन का कार्य प्रारम्भ हुआ।

पाठकों को सर्वप्रथम पूज्य गुरुदेवश्री के वैराग्य काल का संक्षिप्त विवरण वता देना चाहता हूँ। पूज्य गुरुदेव ७ वर्ष की छोटी उम्र में वैराग्य अवस्था में आये। पीह शाहपुरा सरवाड़ आदि में प्रारम्भिक अध्ययन के वाद न्याय-साहित्य-व्याकरण-कोश आदि का अध्ययन भी किया, १८ वर्ष की वय होने पर सांडेराव में वैशाख सुदी ६, संवत् १९८८ को पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म., पूज्य श्री प्रतापचन्द जी म. के पास आपकी दीक्षा हुई। उस समय पूज्य मरुधरकेसरी जी म., स्वामी जी श्री छगनलाल जी म., स्वामी जी श्री चाँदमल जी म., पूज्य श्री शार्दूलसिंह जी म. आदि अनेक मुनिराज भी विराजमान थे।

आपका युवाचार्य श्री मधुकर जी म. के साथ अगाध स्नेह था। दीक्षा के पश्चात् युवाचार्यश्री जी ने एवं आपने अनेक आगमों का अध्ययन किया।

पं. शोभाचन्द जी भारिल्ल से जैन न्याय ग्रन्थों का अध्ययन किया। २५ वर्ष की उम्र में पं. वेचरदास जी के पास पाली में भगवतीसूत्र व पण्णवणासूत्र की टीका पढ़ी, क्योंकि सर्वप्रथम आगमों का ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान से ही श्रद्धा स्थिर होती है, मन में वैराग्य वृत्ति सुदृढ़ होती है। कर्म क्या है? आत्मा क्या है? कर्म और आत्मा का संवंध कैसे होता है? आस्रव व संवर क्या है? शुभ-अशुभ क्या है? आदि का विवेक ज्ञान से ही होता है। ज्ञान होने पर ही क्रिया सार्थक होती है। शास्त्र में **'पढमं नाणं तओ दया'** कहा है तो ज्ञान का मूल आधार आगम है, अतः सर्वप्रथम आगम ज्ञान होना चाहिए फिर अन्य दर्शनों का, अन्यान्य विषयों का भी ज्ञान हो किन्तु आगम ज्ञान की उपेक्षा करके अन्य विषयों का ज्ञान कभी-कभी श्रद्धा और चारित्र से विचलित भी कर देता है इसलिए ज्ञान व अध्ययन जो भी हो उसका लक्ष्य आगम ज्ञान को सुदृढ़ व सुस्थिर करना हो तभी हमारी ज्ञान साधना सार्थक हो सकती है।

आगम ज्ञान का अर्थ सिर्फ आगमों के पाठ या अर्थ का वोध मात्र ही नहीं, अपितु उसका गम्भीर ज्ञान होना चाहिए। यदि आगमों का ज्ञान विशद हो तो वह वक्ता भी अपने प्रवचन को प्रभावशाली और रुचिकर बना सकता है। विवेचन की क्षमता, विश्लेषण की योग्यता आगम अध्ययन से आती है किन्तु सामान्य साहित्य से नहीं। गम्भीर विवेचन स्थायी असर करता है और आज के बुद्धिवादी लोगों को प्रभावित करने में अधिक सक्षम है।

आगम ज्ञान में परिपक्वता और व्यापकता अगर आये तो वह स्वतः ही प्रवचन प्रश्नोत्तर द्वारा लोक भोग्य और लोक रुचि को सन्तुष्ट करने में समर्थ हो सकता है। उक्त विचारों से ही आपश्री की आगम ज्ञान की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती रही।

आपकी २७-२८ वर्ष की उम्र थी, उसी समय 'श्रमण' मासिक में एक जर्मन विद्वान् का लेख पढ़ा, उसने लिखा कि "जैन आगमों में आत्म-विज्ञान के साथ-साथ अणु-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान आदि के विषय में बहुत ही सामग्री भरी है किन्तु उनका कोई ऐसा संस्करण नहीं है कि जिसे पढ़कर उस विषय का ज्ञान हो सके।" उक्त लेख पढ़कर पूज्य गुरुदेव को आगमों का आधुनिक ढंग से सम्पादन करने का संकल्प जगा।

आगमों के शुद्ध संस्करण निकालने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। आपश्री की यह उत्कृष्ट भावना रहती है कि **"आत्म-जिज्ञासु साधक आगमों का अधिक से अधिक स्वाध्याय करें तथा प्राकृत भाषा से ही अर्थ समझने में सक्षम बनें।"** इसके लिए पूज्य गुरुदेव ने आगमों के मूल पाठों का हिन्दी शीर्षकों सहित संस्करण तैयार किया। पाठों को व्यवस्थित करना, सहज रूप से समझ सके ऐसा सरल बनाना, पदच्छेद करना, छोटे-छोटे पैराग्राफ बनाना आदि कार्य प्रारम्भ किये। सर्वप्रथम **मूल सुत्ताणि** का सम्पादन किया। वर्धमान वाणी प्रचारक कार्यालय लाडपुरा से प्रकाशन हुआ। वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। उस कार्य को देखकर पं. श्री फूलचन्द जी म. 'पुप्फभिक्खू' बहुत प्रभावित हुए और उस शैली को समझकर बम्बई निर्णय सागर में सुत्तागमे २ भागों में छपाया, परन्तु उन्होंने अनेक जगह अपनी मान्यतानुसार पाठों में परिवर्तन कर दिया व पदच्छेद आदि नहीं किये जिससे पाठकों के लिए विशेष लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ।

३० वर्ष की छोटी उम्र में ही आपश्री के अन्तःकरण में आगमों को अनुयोग शैली से वर्गीकरण करके शोधार्थियों व जिज्ञासुओं के लिए सुलभ वनाने की तीव्र भावना जाग्रत हुई। यह बहुत ही श्रम-साध्य एवं समूह-साध्य कार्य है यह जानते हुए भी उसमें संलग्न हो गये, आपश्री में अध्यवसाय की दृढ़ता, आगमों के प्रति अनन्य श्रद्धा और लोकोपकार की भावना प्रबल थी अतएव आपश्री अकेले ही अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित होकर चल पड़े।

अनुयोग वर्गीकरण से बहुत बड़ा लाभ यह है कि आगम का कौन-सा विषय किस विषय से सम्बन्धित है यह स्पष्ट रूपरेखा सामने आ जाती है। यह जैनागमों का कम्प्यूटर है। हमारे विद्वान् आचार्यों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया, यद्यपि परिश्रम करना सरल नहीं था फिर भी पूज्य गुरुदेव ने दृढ़ संकल्प कर लिया—अनजान राह पर चल अकेले चल.....।

आगमों के विषयों का सर्वप्रथम कागज की छोटी चिटों पर संकलन किया गया, गहराई से एक-एक विषय की परिश्रमपूर्वक शोध की गई, फिर विचार किया कि किसी योग्य श्रुतधर से परामर्श किया जाए, तव आपश्री उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द जी म. से मिले व उनके साथ संवत् २०१२ में जयपुर चातुर्मास किया। परन्तु कविश्री जी का स्वास्थ्य अनुकूल न होने के कारण यथेष्ट मार्गदर्शन नहीं मिला। वहीं पर धानेरा निवासी श्री रमणिकभाई मोहनलाल शाह से जो जयपुर में ही उस समय व्यापार करते थे, वे आये। वे इस कार्य से वहुत प्रभावित हुए और उन्होंने यथेष्ट योगदान भी दिया।

चातुर्मास पश्चात् हरमाड़ा में चाँदमल जी म. की दीक्षा हुई। पं. मिश्रीलाल जी म. 'मुमुक्षु' को सेवा में छोड़कर पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर आप पुनः कविश्री जी की सेवा में अनुयोग सम्पादन में मार्गदर्शन के लिए आगरा पधारे। वहाँ कविश्री जी के मन में निशीथभाष्य के सम्पादन का विचार वना हुआ था क्योंकि इसकी एक-दो हस्तलिखित प्रति ही मिलती थी वह भी वहुत जीर्णशीर्ण अशुद्ध स्थिति में देखकर तो पढ़ने का साहस ही नहीं होता। कविश्री जी के निर्देश से पूज्य गुरुदेव ने १४ माह के अल्प समय में अत्यधिक श्रम करके संपादन किया, प्रूफ रीडिंग आदि कार्य किये, २०१५ का चातुर्मास आगरा में ही किया।

वहीं पर पं. दलसुखभाई मालवणिया जी का आना हुआ, वे आपश्री की निष्ठा व कार्य-शैली देखकर वहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा-"मेरे पास अभी समय नहीं है फिर कभी आकर ही अनुयोग के कार्य को देख सकूँगा।"

हरमाड़ा से वार-वार समाचार आने के कारण वहाँ से विहार हो गया, पूज्य गुरुदेव की सेवा में पहुँचे। पथरी का ऑपरेशन होने के कारण नव माह अजमेर हॉस्पीटल में सेवा में रहे, वहीं पर पुनः पं. दलसुखभाई मालवणिया पधारे। वे एक माह रुके। उन्होंने उदारतापूर्वक अपने स्वयं के खर्च से सारा काम देखा और कहा-"यह वहुत ही श्रम-साध्य व लम्वे समय का काम है अतः आप अहमदावाद आवें। मैं इस काम के लिए समय दे दूँगा।"

डॉक्टरों की सलाह से पूज्यश्री को हरमाड़ा ठाणापति विठाया गया। वहाँ पर श्री शान्तिलाल जी देशरला व कुमार सत्यदर्शी आदि से आगमों को टाइप करवाया, संशोधन किया, फाइलें वनाईं। उन्हें लेकर पुनः पूज्य श्री घासीलाल जी म. के पास अहमदावाद सरसपुर में मार्गदर्शन हेतु पधारे। उन्होंने कुछ सुझाव दिये व उनका आशीर्वाद लिया। वहाँ चार माह रुककर पुनः हरमाड़ा गुरुदेव की सेवा में पधारे। पुनः टाइप आदि कार्य करवाया। २०१९ कार्तिक वदी ७ को पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म. का देहावसान हो गया।

पश्चात् विहार यात्राएँ प्रारम्भ हो गईं, चातुर्मास करना, व्याख्यान देना, फिर आने-जाने वालों का ताँता लगा रहने के कारण कार्य कैसे संभव हो? सामाजिक व्यवस्थाओं के कारण समय नहीं मिल पाया। फिर भी जो समय मिलता उसी में लेखन करना व करवाना।

जोधपुर व सोजत चातुर्मास कर, फिर संवत् २०२२ में दिल्ली पधारे। सब्जी मंडी में आचार्य श्री आत्माराम जी म. के सुशिष्य पं. श्री फूलचन्द जी म. 'श्रमण', श्री रतन मुनि जी म., श्री कान्ति मुनि जी म. के साथ चातुर्मास किया। फिर कार्य को वेग देने के लिए एकान्त में किग्ज्वे केंप में विराजे। वहाँ पर श्री शान्तिलाल जी वनमाली शेठ प्रवन्धक थे। जहाँ पर कागजों के चिटों पर प्रारम्भ में जो विषय-सूची तैयार की थी वह उद्योगशाला प्रेस में छपने दी। ग्रन्थ का नाम 'जैनागम निर्देशिका' रखा गया। यह ४५ आगमों की विषय-निर्देशिका तैयार हुई। विषय देखने के लिए वहुत उपयोगी ग्रन्थ सिद्ध हुआ वह अव अनुपलव्ध है। उसी समय समवायांग सानुवाद का भी प्रकाशन हुआ। स्थानांग सानुवाद का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ। कुछ दिन केंप में ठहरकर फिर शोरा कोठी सब्जी मण्डी में विराजे व चरणानुयोग का संपादन प्रारम्भ किया। छपाई भी साथ-साथ चल रही थी, लगभग २५० पेज छप गये थे। उसी समय फाइलों के कागजात किसी ने अस्त-व्यस्त कर दिये, वह खो गये। मुनिश्री का मन थोड़ा उदास हो गया। इस समय श्री वनारसीदास जी ओसवाल ने उत्साहित किया। फिर तिमारपुर निवासी उदार भावनाशील श्रावक श्री गुलशनराय जी जैन के यहाँ चातुर्मास हुआ। उन्होंने वहुत सेवा की, पुनः प्रयत्न किया किन्तु फाइलें व्यवस्थित न होने के कारण चरणानुयोग के कार्य को स्थगित करना पड़ा।

पूज्य मरुधरकेसरी जी म. का मारवाड़ आने के लिए आग्रह हुआ, अतः वहाँ से विहार कर उनके अर्ध-शताव्दी समारोह में सोजत सिटी आना पड़ा फिर सांडेराव चातुर्मास हुआ। पं. शोभाचन्द जी भारिल्ल आये, उनको गणितानुयोग की फाइलें दीं, उन्होंने उसका संपादन किया, फिर माह सुदी १५, संवत् २०२५ में मेरी दीक्षा हुई। उस समय पूज्य मरुधरकेसरी जी महाराज भी पधारे। पश्चात् अजमेर पधारे। वहाँ चार माह विराजे, गणितानुयोग का वैदिक यंत्रालय में मुद्रण हुआ। जिसे शीघ्र करवाने का श्रेय गुरुभक्त श्री रूपराज जी कोठारी को है। मदनगंज, और रिड़ के चातुर्मास के वाद सादड़ी-मारवाड़ में संवत् २०२८ का चातुर्मास हुआ। दो वर्षों में छेदसूत्रों का संपादन हुआ।

सादड़ी वर्षावास में श्रीचन्द जी सुराना आगरा से आये, उनको कार्य सौंपा, वे दो लिपिक लाये, चौमासे में उन्होंने प्रेस कॉपी की। फिर सांडेराव में राजस्थान प्रांतीय साधु-सम्मेलन हुआ। तत्पश्चात् फूलिया कलाँ, जोधपुर, कुचेरा, विजयनगर आदि स्थानों पर वर्षावास हुए।

वहाँ से सादड़ी-मारवाड़ महावीर भवन के उद्घाटन पर पधारे। तत्पश्चात् पूज्य मरुधरकेसरी जी म. का आशीर्वाद लेकर अहमदावाद की ओर विहार किया। उस समय विजयराज जी सा. वोहरा को पूज्य मरुधरकेसरी जी म. ने प्रेरणा दी कि "अनुयोग का कार्य कराने का ध्यान रखना।" पूज्य गुरुदेव आवू पर्वत पधारे। महावीर केन्द्र के स्थान का चयन किया। वहाँ से अहमदावाद पधारे, पं. दलसुखभाई मालवणिया जी उस समय एल. डी. इन्स्टीट्यूट में निर्देशक थे, उनके समीप ही चातुर्मास करना आवश्यक था। नवरंगपुरा में उपाश्रय नहीं वना था, ऐसी स्थिति में माणसा (पंजाव) के लाला देशराज जी अग्रवाल दर्शनार्थ आये। उनसे रोशनलाल जी म. का परिचय था। उन्होंने कहा-"यहाँ हमारे वंगले में गेस्ट हाउस है वहाँ आपको चातुर्मास के लिए स्थान अनुकूल देख लीजिए। स्थान अनुकूल लगा, वहीं पर चातुर्मास हुआ, लाला जी ने सेवा का वहुत लाभ लिया।

दरियापुरी संप्रदाय के श्री ताराबाई महासती जी भी वाडज में श्री हिम्मतभाई शामलदास जी के यहाँ विराजमान थे। उनको दर्शन देने के लिए पूज्य गुरुदेव का पधारना हुआ, वे बहुत प्रसन्न हुए। उनकी स्वाध्याय में बहुत रुचि थी, उन्होंने हिम्मतभाई को प्रेरणा दी, उनके यहाँ बहुत बड़ा पुस्तकालय था। उपयोग के लिए पुस्तकें दीं व उन्होंने भी अनुयोग के कार्य में बहुत रुचि ली। पीह वाले श्री मेघराज जी बम्ब हैदराबाद से दर्शनार्थ आये। वे बलदेवभाई को साथ लेकर आये, उन्होंने पूज्य गुरुदेव के कार्य को देखा, वे प्रतिदिन दर्शनार्थ आते रहे व कार्य देखते रहे।

पं. दलसुखभाई प्रतिदिन दो घन्टे आते थे, उन्हें पुराना कार्य पर्याप्त नहीं लगा। पुनः विचार किया कि कार्य शीघ्र कैसे हो? इसलिए सुत्तागमे के पाठ लेने का निश्चय किया। उसके अलग-अलग कटिंग हुए विषय छाँटे गये। फिर भी मूल पाठों की व्यवस्था के लिए अंगसुत्ताणि के कटिंग करके पाठ लिए गये और उन पर शीर्षक लगाये गये। चातुर्मास पश्चात् एल. डी. इन्स्टीट्यूट में विराजे। वहाँ संशोधन कार्य किया गया। बाद में लक्ष्मणभाई भोजक आदि ने प्रेस कॉपी तैयार की। फिर पं. अमृतभाई भोजक जो प्राकृत के अच्छे विद्वान् हैं उन्होंने प्राकृत के शीर्षक लगाये, ग्रन्थ मूल पाठ वाला तैयार हो गया। निर्णय हुआ कि एक भाग में मूल व एक भाग में अनुवाद दिया जाए उस अनुसार नई दुनियाँ प्रेस, इन्दौर में छपने दिया, धीमे काम होने के कारण अहमदाबाद भी एक प्रेस में कुछ हिस्सा छपने दिया। नवरंगपुरा उपाश्रय में चातुर्मास हुआ।

चातुर्मास पश्चात् नवरंगपुरा से विहार कर नारायणपुरा बलदेवभाई के बंगले पधारे वहीं पर चर्चा चली और वहीं **'आगम अनुयोग ट्रस्ट'** की स्थापना हुई।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस अनुयोग के कार्य का शुभारम्भ हरमाड़ा से हुआ, श्री चम्पालाल जी चौरड़िया मदनगंज, श्री अमरचन्द जी मारू हरमाड़ा, श्री धर्मीचन्द जी सुराना, श्री छोटमल जी मेहता, श्री नोरतमल जी संचेती आदि ने कार्य को बढ़ाने में योगदान दिया।

पूज्य गुरुदेव की दीक्षा सांडेराव में होने की वजह से उनका इस ओर ध्यान गया और उन्होंने 'आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद्' की स्थापना की व अब तक के सभी प्रकाशन इसी के द्वारा हुए। श्री ताराचन्द जी प्रताप जी, श्री हिम्मतमल जी प्रेमचन्द जी, श्री वृद्धिचन्द जी मेघराज जी, श्री नथमल जी निहालचन्द जी, श्री केशरीमल जी सेंसमल जी, श्री चम्पालाल जी हिम्मतमल जी आदि कार्यकर्ताओं ने अपने रिश्तेदारों, मित्रों, उदार ज्ञान प्रेमियों से सहयोग एकत्रित करना व सारी व्यवस्थाएँ सँभालने में बहुत परिश्रम किया। इस प्रकार कार्य होने के ३२ वर्ष पश्चात् अहमदाबाद में यह ट्रस्ट स्थापित हुआ। धर्मकथानुयोग के हिन्दी अनुवाद के लिए पं. देवकुमार जी को दिया गया।

वहाँ से राजस्थान की ओर विहार हुआ, उदयपुर, पाली होते हुए महावीर केन्द्र, आबू के उद्घाटन पर पधारे, आयंबिल ओली हुई। वहाँ से पुनः अहमदाबाद पधारे और राजस्थानी उपाश्रय में चातुर्मास हुआ।

तत्पश्चात् विहार करके बम्बई पधारे। शायन में दरियापुरी संप्रदाय के श्री शांतिलाल जी म., गोंडल संप्रदाय के श्री जसराज जी म. आदि अनेक संतों का मिलना हुआ, पूज्य श्री अमीचन्द जी म. ने अनुयोग के लिए विशेष प्रेरणा दी।

पूज्य गुरुदेव की विचारधारा सम्प्रदायवादी न होकर समन्वय प्रधान रही है, उसी दृष्टिकोण से श्वेताम्बर परम्परा के ४५ आगमों का आधार लेकर कार्य कर रहे थे परन्तु कुछ संकीर्ण विचार वाले श्रावकों ने विशेष जोर दिया इसलिए ३२ आगमों के अनुसार ही अनुयोग का कार्य करने का निर्णय हुआ।

महासती श्री मुक्तिप्रभा जी का सर्वप्रथम परिचय यहीं हुआ व अनुयोग के कार्य से प्रभावित होकर उन्होंने कार्य में सहयोग देना प्रारम्भ किया।

खार चातुर्मास के लिए पधारे, अनुयोग ट्रस्ट के कार्यकर्ता पहुँचे, श्री लाला शादीलाल जी जैन के नेतृत्व में मीटिंग हुई व निर्णय हुआ कि एक ही पेज पर दो कॉलम रहें जिसमें एक ओर मूल व एक ओर हिन्दी अनुवाद दिया जावे तो ही उपयोगी होगा, तदनुसार एक पेज के दो कॉलमों में मूल अनुवाद व्यवस्थित किया गया। अनुवाद का सरल होना, मूल के अनुसार शब्दानुलक्षी होना इसीलिए पाठों का अनेक जगह विस्तृत को संक्षिप्त व संक्षिप्त को विस्तृत करना पड़ा। प्राकृत के ठीक सामने हिन्दी देने से शब्दों के अर्थ का भी पाठकों को बोध हो जाता है।

आगरा से श्रीचन्द जी सुराना को बुलाया गया और उन्हें धर्मकथानुयोग पुनः छपने को दिया गया। जो मूल मात्र पहले छपा है वह गुजराती संस्करण के साथ देने का तय हुआ।

चातुर्मास बाद प्रॉस्टेट के दो ऑपरेशन हुए। स्वास्थ्य के कारण वालकेश्वर बम्बई चातुर्मास हुआ। महासती श्री मुक्तिप्रभा जी का चातुर्मास भी वहीं था। धर्मकथानुयोग भाग १ सानुवाद का शेष कार्य किया गया।

वहाँ से हैदराबाद चातुर्मासार्थ विहार हुआ। वहाँ गणितानुयोग के पुनः संपादन का कार्य चालू हुआ। पाठकों को यह ज्ञात ही है कि इसका पूर्व में संस्करण निकला था परन्तु उसकी प्रतियाँ समाप्त हो गईं। ट्रस्ट ने दुबारा छपाने का तय किया। संशोधन होने लगा, बहुत परिश्रम हुआ व दुबारा लगभग ३०० पेज बढ़े फिर भी कुछ पाठ ध्यान में आये सो द्रव्यानुयोग के तीसरे भाग के परिशिष्ट में दिये जा रहे हैं।

हैदराबाद में भी स्वास्थ्य बिगड़ गया, दो ऑपरेशन हुए। स्थिति गंभीर होने के कारण प्लेन से बम्बई लाये गये। जैन क्लीनिक में भरती किये गये। तीन छोटे ऑपरेशन हुए परन्तु सफलता नहीं मिली। डॉ. कोलावा वाले ने बताया कि "स्ट्रिक्चर बनने के कारण स्थिति गंभीर है, बड़ा ऑपरेशन खतरनाक है फिर भी प्रयत्न करते हैं।" सागारी संथारा कर लिया, उस समय पूज्य गुरुदेव ने अपने हृदय की दो-तीन बातें

विशेष रूप से कहीं–(१) अनुयोग का प्रकाशन होना, (२) आगमों का शुद्ध आधुनिक ढंग के गुटका साइज में प्रकाशित होना, (३) वृद्ध साधु-साध्वियों का सेवा केन्द्र होना। ये तीन इच्छाएँ वताई व उसी दिन से मेरा इस ओर लक्ष्य केन्द्रित हुआ। ७ घण्टे ऑपरेशन में लगे, ३ दिन में होश आया, ४ माह हॉस्पीटल में रहे, पश्चात् डॉक्टर के परामर्श से विश्राम हेतु देवलाली पधारे। चातुर्मास हुआ, वहाँ की जलवायु वहुत अनुकूल रही। वहीं पर 'वर्धमान महावीर सेवा केन्द्र' की स्थापना हुई, वहाँ अनेक साधु-साध्वियों की वहुत अच्छी सेवा वर्तमान में भी हो रही है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऑपरेशनों के समय महासती श्री मुक्तिप्रभा जी ने अपनी शिष्याओं के साथ वहुत सेवा की। सेवा केन्द्र के उद्घाटन के समय ही धर्मकथानुयोग मूल का विमोचन श्री ताराचन्द जी प्रताप जी सांडेराव वालों ने किया।

उद्घाटन पश्चात् विहार कर अहमदावाद होते हुए सोजत रोड़ पूज्य प्रवर्तक श्री मरुधरकेसरी जी म., स्वामी जी श्री व्रजलाल जी म. एवं युवाचार्य श्री मधुकर जी म. के अन्तिम दर्शन कर आवू पर्वत पधारे।

दीक्षा अर्ध-शताब्दी समारोह हुआ, धर्मकथानुयोग सानुवाद भाग १ का श्री मेघराज जी मिश्रीमल जी साकरिया सांडेराव वालों ने विमोचन किया. चातुर्मास आवू में ही हुआ, थोड़ा-थोड़ा लेखन कार्य चलता रहा। खंभात सम्प्रदाय के पं. श्री महेन्द्र ऋषि जी म. ने कार्य में सहयोग दिया।

वम्बई से महासती श्री मुक्तिप्रभा जी ठाणा ११ का आवू पर्वत पधारना हुआ। वे दिल्ली की ओर पधार रही थीं। तव पूज्य गुरुदेव ने फरमाया कि "अनुयोग का कार्य व्यवस्थित करवाकर फिर आगे वढ़ें। उन्होंने चरणानुयोग की फाइलें लीं, उनका पाली चातुर्मास हुआ व हमारा सांडेराव चातुर्मास हुआ। चातुर्मास वाद सादड़ी मारवाड़ में एक महीना महासतियाँ जी व पूज्य गुरुदेव का विराजना हुआ। कार्य देखा गया, वर्गीकरण का कार्य पूर्ण रूप से संतोषप्रद नहीं हुआ। फिर सोजत होकर सव आवू पर्वत आये, धर्मकथानुयोग सानुवाद के दूसरे भाग का श्री कांतिलाल जी व श्री माणकचन्द जी गांधी वम्बई वालों ने विमोचन किया।

सभी चरणानुयोग के काम में संलग्न हो गये। पूज्य गुरुदेव व महासती श्री मुक्तिप्रभा जी, श्री दिव्यप्रभा जी मूल पाठ का संशोधन करते; श्री अनुपमा जी, श्री भव्यसाधना जी लिखते; श्री राजेश जी भंडारी, श्री राजेन्द्र जी मेहता टाइप करते; श्री विरतिसाधना जी मिलान करते; मुझको भी काम में लगने हेतु श्री दिव्यप्रभा जी ने विशेष प्रेरणा दी। मैं भी टाइप किये हुए का निरीक्षण व पाठ मिलाना आदि कार्य करता। विषयों को कॉपी में लिखता, वत्तीस ही आगमों का कौन-सा विषय किस आगम का है व अनुयोग का है इसका विवरण तैयार करता। कार्य में सवके संलग्न होने से कार्य ने तीव्र गति पकड़ी।

धानेरा सभी का चातुर्मास हुआ। हम वाहर वलाणी वाग में काम में लगे रहे, श्री दर्शनप्रभा जी आदि व्याख्यान आदि कार्य सँभालते रहे। आगरा से गणितानुयोग का पुनः मुद्रण होकर आया। वहाँ से सभी अम्वा जी पहुँचे, पुनः काम में लगे, आदिनाथ भवन हेतु जमीन ली गई। वहीं पर श्री तिलोक मुनि जी का पदार्पण हुआ। उनका छेदसूत्रों का अनुभव होने से चरणानुयोग में मार्गदर्शन मिला। फिर व्यावर आगम समिति के लिए छेदसूत्रों का भी संपादन किया। सर्दी में अम्वा जी ही ठहरकर आवू पर्वत पर पहुँचे, चरणानुयोग का संपादन पूर्ण हुआ और आगरा छपने के लिए भेज दिया।

द्रव्यानुयोग का कार्य प्रारम्भ हुआ, महासतियाँ जी ने जोधपुर चातुर्मास के लिए विहार किया। हमारा आवू ही चातुर्मास हुआ, फिर सर्दी में अम्वा जी होकर सांडेराव गये। वहाँ से आवू पर्वत आये। वहीं पर महासती श्री मुक्तिप्रभा जी आदि ठाणा भी पधारे, पुनः द्रव्यानुयोग का कार्य प्रगति करने लगा, सादड़ी चातुर्मास स्थगित कर आवू ही १४ ठाणा का चातुर्मास हुआ। कार्य में प्रगति होती रही। फिर साध्वी जी श्री अनुपमा जी व श्री अपूर्वसाधना जी के वर्षीतप का पारणा होने से जोधपुर की ओर विहार हो गया, वहाँ पारणे पर श्री पुखराज जी लूंकड़ वम्बई वालों ने चरणानुयोग भाग १ का विमोचन किया।

महासती जी ने वहाँ से जयपुर चातुर्मास के लिए विहार किया। कार्य की गति मन्द हो गयी। हमारा चातुर्मास आवू ही हुआ। चातुर्मास पश्चात् मदनगंज, पीह आदि संघों का अत्याग्रह होने से उस ओर विहार हुआ। मदनगंज में महावीर कल्याण केन्द्र का उद्घाटन हुआ। हरमाड़ा में श्री संजय मुनि जी की दीक्षा हुई। उस समय महासती जी श्री मुक्तिप्रभा जी आदि का जयपुर से पदार्पण हुआ, उन्होंने वापस दिल्ली की ओर विहार किया। वहीं चातुर्मास किया। चरणानुयोग भाग २ का श्री आर. डी. जैन ने विमोचन किया।

हरमाड़ा दीक्षा देकर पुष्कर पहुँचे, वहाँ चार माह विराजकर द्रव्यानुयोग का कार्य करते रहे व साथ-साथ अनुयोग निर्देशिका का भी कार्य करते रहे। पीह चातुर्मास हुआ। आवू ओली पर पहुँचकर पुनः जोधपुर चातुर्मास के लिए पधारे।

चातुर्मास पूर्ण होते ही रावटी पधारे, वहाँ विशेष वस्ती नहीं थी, सेवा मन्दिर है जिसमें त्यागी विद्वत् पुरुष श्री जौहरीमल जी पारख रहते हैं। वहुत वड़ा पुस्तकालय है। तीन किलोमीटर दूर सूरसागर है जहाँ से प्रतिदिन गोचरी लाते। चार माह वहाँ ठहरे। पं. देवकुमार जी वीकानेर वालों को कार्य में लगाया गया, श्री गजेन्द्र जी राजावत व्यावर वाले टाइपिस्ट रहे।

श्री पारख जी ने कार्य देखा, उन्होंने कहा–इसमें अभी कमी है, मेरी पद्धति से कार्य करें, उनकी पद्धति से कार्य प्रारम्भ हुआ। दो माह कार्य चला, द्रौपदी के चीर की तरह लम्वा होने लगा, फिर सोचा गया कि इस अनुसार यदि कार्य होगा तो अनुयोग के लगभग १६ भाग हो जायेंगे व कई वर्षों में भी कार्य पूरा नहीं हो सकेगा। पुनः हमारी प्राचीन प्रणाली से ही कार्य चालू किया।

वहाँ से सूरसागर आये फिर कार्य चला, सोजत श्री संजय मुनि जी के वर्षीतप के पारणे पर जाकर एक माह में आये, चातुर्मास सूरसागर ही किया। अनुयोग समापन समारोह हुआ। इस समय तक तीन अनुयोग प्रकाशित हो गये थे व चौथा द्रव्यानुयोग का संपादन कार्य भी पूर्ण हो रहा था। सूरसागर संघ व श्री मोहनलाल जी सांड के अत्याग्रह से यह कार्यक्रम रखा गया, जोधपुर में विराजित सभी सम्प्रदायों

के साधु-साध्वी यहाँ पधारे, प्रवचन हुए, अनुयोग के लिए सहयोग एकत्रित हुआ। पूरा कार्य होने पर यह चिन्तन चला कि इसमें कोई पाठ तो नहीं रह गया है अतः ब्यावर की आगम बत्तीसी ली गई व उस पर निशान किये गये इस प्रकार ध्यान करने से अनेक पाठ सामने आये। उनको फिर यथास्थान व्यवस्थित करने में लगे व जो पाठ फिर भी रह गये उनको तीसरे भाग के परिशिष्ट में दिये हैं। अब एक भी पाठ नहीं रहा, यह विश्वास हो गया। सर्दी में वहीं रहे, १४ माह सूरसागर ठहरकर पावटा आये। कुछ दिन वहाँ ठहरकर कार्य किया, श्री सुनील जी मेहता शाहपुरा वाले को टाइप कार्य में लगाया गया फिर जैतारण पावन धाम पहुँचे, वहाँ एक माह रुककर मदनगंज चातुर्मास के लिए पधारे। वहाँ भी इस कार्य में लगे रहे। चातुर्मास पश्चात् हरमाड़ा पहुँचे, २ माह वहाँ रुके,.अत्यधिक श्रम किया। श्री तिलोक मुनि जी ने भी कार्य में योगदान किया। श्री मांगीलाल जी शर्मा जो अनेक वर्षों से सेवा कर रहे कुरड़ाया निवासी श्री शिवजीराम जी के सुपुत्र हैं वे भी इस कार्य में जुट गये। उन्होंने खूब श्रम किया। आखिर अन्तिम मंजिल पर पहुँच गये। जिस प्रिय क्षेत्र में पूज्य गुरुदेव श्री फतेहचन्द जी म. ७ वर्ष ठाणापति विराजे व ५० वर्ष पूर्व यह कार्य प्रारम्भ हुआ वहीं पर यह कार्य पूर्ण हुआ।

छपाई के लिए जोधपुर जे. के. कम्प्यूटर में द्रव्यानुयोग दिया हुआ था ५०० पेज तैयार हुए, प्रूफ देखे परन्तु बराबर सेट नहीं हुआ। आखिर रद्द करना पड़ा।

पुनः श्रीचन्द जी सुराना को आगरा से बुलाया गया, उन्हीं की देखरेख में द्रव्यानुयोग की छपाई चालू हुई।

हरमाड़ा से विहार कर आबू पर्वत पहुँचे। अब प्रूफ रीडिंग का कार्य चालू हुआ, श्री सुराना जी तीन बार प्रूफ देखते फिर श्री मांगीलाल जी ने देखा, पुनः मैं और पूज्य गुरुदेव देखते। इस प्रकार ग्रन्थ की छपाई आगे बढ़ती गई। भाग १ तैयार हुआ जिसका श्री नवनीतभाई चुन्नीलाल पटेल अहमदाबाद वालों ने विमोचन किया। सांडेराव चातुर्मास हुआ। फिर सादड़ी, नारलाई, सोजत आदि में प्रूफ रीडिंग परिशिष्ट आदि का कार्य चलता रहा।

सोजत में पूज्य श्री मरुधरकेसरी जी म. की पुण्य तिथि पर प्रवर्तक श्री रूपचन्द जी म. के सान्निध्य में द्रव्यानुयोग के द्वितीय भाग का श्री नेमीचन्द जी संघवी कुशालपुरा वालों ने विमोचन किया।

सभी अध्ययनों के आमुख डॉ. धर्मचन्द जी ने लिखे।

सोजत से विहार कर आबू पर्वत ओली तप कराने पधारे, परिशिष्ट, विषय-सूची आदि का कार्य चला। तीसरे भाग को सम्पन्न करने में लगे। अम्बा जी में चातुर्मास हुआ। चातुर्मास में ओमप्रकाश शर्मा ने स्थानांगसूत्र के मूल पाठ की प्रेस कॉपी की। निरयावलिकादि का पं. रूपेन्द्रकुमार जी ने संपादन किया। श्री बलदेवभाई नवनीतभाई का अत्याग्रह होने से अहमदाबाद की ओर विहार हुआ। वहाँ १ जनवरी १९९६ को सेठ श्री श्रेणिकभाई कस्तूरभाई की अध्यक्षता में 'अनुयोग लोकार्पण समारोह' हुआ। जिसमें अहमदाबाद में विराजित अनेक मुनिराज, महासतियाँ जी पधारे। श्री दीपचन्दभाई गार्डी आदि अनेक विशिष्ट व्यक्ति आये। गुजराती प्रकाशन का निर्णय हुआ। ट्रस्ट को लगभग २० लाख का योगदान प्राप्त हुआ।

इस प्रकार ५० वर्षों के प्रबल पुरुषार्थ से व सभी के महत्त्वपूर्ण योगदान से गुरुदेव की इच्छा पूर्ण हुई यह प्रसन्नता का विषय है।

पाठकों को यह ध्यान में रहे कि एक-एक विषय ५-७ बार लिखा गया व टाइप हुआ होगा, १० बार पढ़ा गया होगा। परन्तु पूर्ण व्यवस्थित न होने के कारण बार-बार संशोधन होता रहा। अब भी पूज्य गुरुदेव को पूर्ण संतोष नहीं है किन्तु लक्ष्य पूर्ण हो गया। वैसे पिछले १२ वर्ष में ही अर्थात् बम्बई के बाद ही चारों अनुयोगों का कार्य हुआ। पूज्य गुरुदेव का स्वास्थ्य अनुकूल न होते हुए व वृद्धावस्था होते हुए भी प्रतिदिन ७-८ घंटे श्रम करना, निर्देश देना यह अनुकरणीय है। आपने निशीथभाष्य व अनुयोग के अतिरिक्त नंदीसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र, दशवैकालिकसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र, निशीथसूत्र, आचारांगसूत्र (प्रथम श्रुत.), सूत्रकृतांगसूत्र (प्रथम श्रुत.), समवायांगसूत्र, स्थानांगसूत्र, प्रश्नव्याकरणसूत्र आदि के मूल मात्र का भी संपादन किया है।

स्थानांगसूत्र, समवायांगसूत्र, सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र, संजया नियंठा सानुवाद संपादन किया है। आयारदशा, बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र का सानुवाद विवेचन सहित सम्पादन किया है।

जैनागम निर्देशिका, सदुपदेश सुमन (५०० उपमाएँ) भाष्य कहानियाँ आदि अनेक ग्रन्थों का संपादन किया है।

आपकी प्रवचन शैली बहुत ही लाक्षणिक है। शब्दों की व्युत्पत्तियाँ सुनकर श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। आपके लेख प्रामाणिक, सचोट व क्रान्तिकारी होते हैं।

आप बहुत सरल हैं। यश नाम-कामना से दूर हैं, अनेक वर्षों से अन्न-जल नहीं ले रहे हैं।

वर्तमान में भी अनुयोग निर्देशिका, जीवाभिगमसूत्र आदि का संपादन कर रहे हैं।

महासती श्री मुक्तिप्रभा जी, श्री दिव्यप्रभा जी एवं उनकी शिष्याओं ने अनेक कष्ट सहन कर जो श्रम किया है, वह कभी विस्मरण नहीं किया जा सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पं. दलसुखभाई मालवणिया जी ने भी बिना पारिश्रमिक लिए निःस्वार्थभाव से अपना अमूल्य समय प्रदान किया है।

डॉ. सागरमल जी जैन निदेशक पार्श्वनाथ इन्स्टीट्यूट बनारस जो उच्च कोटि के विद्वान् हैं, उन्होंने अपना अनमोल समय निकालकर चरणानुयोग भाग १ व द्रव्यानुयोग भाग १ की विशाल भूमिका बिना पारिश्रमिक के लिखी है सो प्रशंसनीय है।

पं. देवकुमार जी जैन प्राकृत, संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं उनका भी वहुत योगदान मिला जिससे यह कार्य पूर्ण हो सका। चारों अनुयोग के मुद्रण, प्रूफ संशोधन आदि में श्रीचन्द जी सुराना आगरा का पूर्ण सहयोग रहा।

डॉ. धर्मीचन्द जी जैन ने अपना अमूल्य समय निकालकर प्रत्येक अध्ययन के आमुख व विस्तृत भूमिका लिखी है।

श्री राजेश भंडारी जोधपुर वाले टाइप कार्य में व श्री मांगीलाल जी शर्मा ने प्रूफ रीडिंग में सवसे अधिक श्रम किया है।

इस युग में अर्थव्यवस्था विना कुछ नहीं होता जिसमें संपादन, प्रकाशन में लगभग ३० लाख से ऊपर राशि का व्यय होना। यह सव श्रेय सांडेराव के कार्यकर्ताओं, ट्रस्ट के कार्यकर्ताओं व मन्त्री श्री जयन्तिभाई संघवी, सहमन्त्री डॉ. सोहनलाल जी संचेती को है। जिन्होंने वहुत श्रम किया। दिल्ली निवासी श्री गुलशनराय जी जैन, श्रीचन्द जी जैन 'जैन वंधु', श्री प्रभुदासभाई वोरा वम्बई आदि के योगदान को भी नहीं भुलाया जा सकता।

जहाँ-जहाँ पूज्य गुरुदेव का पदार्पण हुआ, चातुर्मास हुए, उन संघों का व श्रद्धाशील ज्ञानानुरागी श्रावकों का भी पंडितों के पारिश्रमिक आदि में योगदान प्राप्त हुआ है।

आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी द्वारा प्राक्कथन लेखन मार्गदर्शन, प्रवर्तक श्री रूपचन्द जी म. एवं उपप्रवर्तक श्री सुकन मुनि जी म. का भी समय-समय पर मार्गदर्शन मिला।

मेरे सहयोगी पं. श्री मिश्रीमल जी म. 'मुमुक्षु', सेवाभावी श्री चाँदमल जी म., पं. श्री रोशनलाल जी म. 'शास्त्री', श्री मिलन मुनि जी म., तपस्वी श्री संजय मुनि जी म. 'सरल' द्वारा गोचरी आदि वैयावच्च सेवाएँ तथा श्री गौतम मुनि जी म. की व्याख्यान सेवाएँ भुलायी नहीं जा सकतीं।

इस प्रकार सभी के योगदान से ही यह कार्य पूर्ण हो सका है जिनका भी प्रत्यक्ष व परोक्ष में सहयोग प्राप्त हुआ है उन सभी का मैं हृदय से आभारी हूँ।

लिम्वडी संप्रदाय के श्री भाष्कर मुनि जी म. का यहाँ गत वर्ष ओली पर पधारना हुआ। उनकी अनुयोग के प्रति विशेष रुचि रही, उन्होंने सौराष्ट्र कच्छ की अनेक लाइब्रेरियों में सेट भिजवाये। अनुयोग संपादन की प्रारम्भ से जानकारी ली। जो कुछ जानकारी थी वह उन्हें वताई, उनके प्रेम भरे आग्रह से ही मैंने अनुयोग की यात्रा लिखी है।

मुझे भी पूज्य गुरुदेव की सेवा व इस भावना को पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हुआ यह मेरा सौभाग्य है। इस कार्य से मुझे असीम आनन्द प्राप्त हुआ। मन एकाग्र हुआ, अनेक वार मैंने स्वयं ने अनुभव किया कि सिरदर्द आदि अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हुईं, थकावट महसूस हुई किन्तु कार्य में संलग्न होते ही शांति का अनुभव हुआ।

इस अनुयोग के कार्य में लगे रहने के कारण प्रवचन कला में प्रवीण नहीं हो सका जो सामाजिक दृष्टिकोण से आवश्यक है। क्योंकि आगम की सेवा से तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन होता है अतः मैंने अनुयोग के कार्य को प्राथमिकता दी। अब प्रवचन की प्रगति में संलग्न होना है पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से मैं अवश्य सफलता प्राप्त कर सकूँगा।

अनुयोगों का गुजराती भाषान्तर का प्रकाशन व आगमों का शुद्ध संस्करण गुटका साइज में प्रकाशन यह भावना भी गुरुदेव की पूर्ण करनी है। इसी आशा के साथ।

श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
आवू पर्वत



आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद

सहयोगी सदस्यों की नामावली

विशिष्ट सहयोगी

१. श्रीमती सूरज वेन चुन्नीभाई धोरीभाई पटेल, पार्श्वनाथ कॉरपोरेशन, अहमदावाद
हस्ते, सुपुत्र श्री नवनीतभाई, प्रवीणभाई, जयन्तिभाई
२. श्री वलदेवभाई डोसाभाई पटेल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
हस्ते, श्री वलदेवभाई, वच्चूभाई, वकाभाई
३. श्री गुलशनराय जी जैन, दिल्ली
४. श्रीचन्द जी जैन, जैन वन्धु, दिल्ली
५. श्री घेवरचंद जी कानुंगा, एल्कोवक्स प्रा. लि., जोधपुर
६. श्रीमती तारादेवी लालचंद जी सिंघवी, कुशालपुरा

प्रमुख स्तम्भ

१. श्री आत्माराम माणिकलाल पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
हस्ते, श्री वलवन्तलाल, महेन्द्रकुमार, शान्तिलाल शाह
२. श्री पार्श्वनाथ चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
हस्ते, श्री नवनीतभाई
३. श्री कालुपुर कॉमर्शियल को-ऑपरेटिव वैंक लि., अहमदावाद
४. श्री प्रेम ग्रुप पीपलिया कलां, श्री प्रेमराज गणपतराज वोहरा
हस्ते, श्री पूरणचंद जी वोहरा, अहमदावाद
५. आइडियल सीट मेटल स्टैपिंग एण्ड प्रेसिंग प्रा. लि.
हस्ते, श्री आर. एम. शाह, अहमदावाद
६. सेठ श्री चुन्नीलाल नरभेराम मेमोरियल ट्रस्ट, वम्वई
हस्ते, श्री मन्नुभाई बेकरी वाला, रुवी मिल, वम्वई
७. श्री प्रभूदासभाई एन. वोरा, वम्वई
८. श्री पी. एस. लूंकड़ चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्वई
हस्ते, श्री पुखराज जी लूंकड़
९. श्री गांधी परिवार, हैदरावाद
हस्ते, अमरचन्द रिखबचन्द गांधी
१०. श्री थानचंद मेहता फाउन्डेशन, जोधपुर
हस्ते, श्री नारायणचंद जी मेहता
११. श्रीमती उदयकंवर धर्मपत्नी श्री उम्मेदमल जी सांड, जोधपुर
हस्ते, श्री गणेशमल जी मोहनलाल जी सांड
१२. श्रीमती सोहनकंवर धर्मपत्नी डॉ. सोहनलाल जी संचेती एवं
सुपुत्र श्री शान्तिप्रकाश, महावीरप्रकाश, जिनेन्द्रप्रकाश व नगेन्द्रप्रकाश संचेती, जोधपुर
१३. श्री जेठमल जी चोरड़िया, महावीर ड्रग हाउस, वैंगलोर
१४. श्री शान्तिलाल जी नाहर, अहमदावाद

१५. श्री भीमराज जी जवेरचन्द जी, साण्डेराव
१६. श्री हीरालाल जी जीरावला, अहमदावाद

स्तम्भ

१. श्री रमणलाल माणिकलाल शाह, अहमदावाद
हस्ते, सुभद्रा वेन
२. श्री हिम्मतलाल सावलदास शाह, अहमदावाद
३. श्री मोहनलाल जी मुकनचंद जी वालिया, अहमदावाद
४. श्री विजयराज जी वालावक्स जी वोहरा सावरमती, अहमदावाद
५. श्री अजयराज जी के. मेहता ऐलिसब्रिज, अहमदावाद
६. श्री चिमनभाई डोसाभाई पटेल, अहमदावाद
हस्ते, नवनीतभाई
७. श्री साणन्द सार्वजनिक ट्रस्ट
हस्ते, श्री वलदेवभाई, अहमदावाद
८. श्री पंजाव जैन भ्रातृ सभा खार, वम्वई
९. श्री रतनकुमार जी जैन, नित्यानन्द स्टील रोलर मिल, वम्वई
१०. श्री माणकलाल जी रतनशी वगड़ीया, वम्वई
११. श्री राजमल रिखवचंद मेहता चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्वई
हस्ते, श्री सुशीला वेन रमणिकलाल मेहता, पालनपुर
१२. श्री हरीलाल जयचंद डोसी, विश्व वात्सल्य ट्रस्ट, वम्वई
१३. श्री तेजराज जी रूपराज जी वम्व, इचलकरंजी (महाराष्ट्र)
हस्ते, श्री माणकचन्द जी रूपराज जी वम्व, भादवा वाले
१४. श्रीमती सुगनीवाई मोतीलाल जी वम्व, हैदरावाद
हस्ते, श्री भीमराज जी वम्व पीह वाले
१५. श्री गुलावचंद जी मांगीलाल जी सुराणा, सिकन्द्रावाद
१६. श्री नेमनाथ जी जैन, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
१७. श्री वावूलाल जी धनराज जी मेहता, सादड़ी (मारवाड़)
१८. श्री हुक्मीचंद जी मेहता (एडवोकेट), जोधपुर
१९. श्री केशरीमल जी हीराचंद जी तातेड़ समदड़ी वाले, हुवली
२०. श्री आर. डी. जैन, जैन तार उद्योग, दिल्ली
२१. श्री देशराज जी पूरणचंद जी जैन, अहमदावाद
२२. श्री रोयल सिन्थेटिक्स प्रा. लि., वम्वई
२३. श्री विरदीचंद जी कोठारी, किशनगढ़
२४. श्री मदनलाल जी कोठारी महामंदिर, जोधपुर
२५. श्री जंवतराज जी सोहनलाल जी वाफणा, बैंगलोर
२६. श्री धनराज जी विमलकुमार जी रूणवाल, बैंगलोर
२७. श्री जगजीवनदास रतनशी वगड़ीया, दामनगर (गुजरात)
२८. श्री सुगाल एण्ड दामाणी, नई दिल्ली
२९. श्री भींवराज जी हजारीमल जी साण्डेराव वाले, कोसम्वा
३०. मै. मरुधर इलेक्ट्रिकल्स, बम्बई
हस्ते, श्री अक्षयकुमार जी सामसुखा जोधपुर वाले
३१. श्री विजयराज जी मेहता, अहमदावाद

महासंरक्षक

१. श्री माणिकलाल सी. गांधी, अहमदावाद
२. श्री स्वस्तिक कॉरपोरेशन, अहमदावाद
हस्ते, श्री हंसमुखलाल कस्तूरचंद
३. श्री विजय कंस्ट्रक्शन कं., अहमदावाद
हस्ते, श्री रजनीकान्त कस्तूरचंद

४. श्री करशनजीभाई लघुभाई निशर दादर, बम्बई
५. श्री जसवन्तलाल शान्तिलाल शाह, बम्बई
६. श्री वाडीलाल छोटालाल डेली वाला, बम्बई
हस्ते, श्री चन्द्रकान्त वी. शाह
७. श्री चम्पालाल जी हरखचंद जी कोठारी पीपाड़ वाले, बम्बई
८. श्रीमती लीलावती बेन जयन्तिलाल चेरिटेवल ट्रस्ट, बम्बई
९. श्री मूलचंद जी सरदारमल जी संचेती, जोधपुर
हस्ते, उमरावमल जी संचेती
१०. श्री उदयराज जी संचेती, जोधपुर
११. श्री मदनलाल जी संचेती, मनीष इन्डस्ट्रीज, जोधपुर
१२. श्री सूरजमल जी सा. गेहलोत सूरसागर, जोधपुर
१३. श्रीमती चन्द्रादेवी धर्मपत्नी गंभीरमल जी वम्ब, टौंक (राजस्थान)
१४. श्रीमती केली बाई चौधरी ट्रस्ट
हस्ते, *श्री शान्तिलाल जी धर्मीचंद जी, तिरुपती (आ. प्र.)*
१५. कृषिभूषण श्री विजयराज जी फतेहराज जी वरमेचा, नासिक सिटी
१६. श्री इन्दरचंद मेमोरियल चेरिटेवल ट्रस्ट, नासिक सिटी
हस्ते, श्री शान्तिलाल जी दूगड़
१७. श्रीमती ऊषादेवी गौतमचंद जी बोहरा, जैतारण
हस्ते, श्री जवन्तराज जी बोहरा
१८. श्री भंवरलाल जी हीराचंद जी मेहता, पाली (मारवाड़)
१९. श्री मेघराज जी रूपा जी साण्डेराव वाले, जय सन्स अम्ब्रेला इण्डस्ट्रीज, हुवली
२०. श्रीमती पानीबाई बालचंद जी बाफना, सादड़ी (मारवाड़)
हस्ते, श्री रूपचन्द जी वाफना
२१. श्री एस. एस. जैन सभा, कोल्हापुर मार्ग, सब्जी मण्डी, दिल्ली
२२. श्री धीरजभाई धरमशीभाई मोरबिया, आबू रोड
२३. श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, हरमाड़ा
२४. श्री नरेन्द्रकुमार जी छाजेड़, उदयपुर
२५. श्री सुगनचन्द जी जैन, मद्रास
२६. श्री अमरचन्द मारु चेरिटेबल ट्रस्ट, दिल्ली
हस्ते, माणकचन्द जी, धर्मीचन्द, प्रेमचन्द जी लूणावत, हरमाड़ा
२७. तपस्वी चन्दुभाई मेहता, जामनगर
२८. श्री भोगीलाल कक्कलभाई, धानेरा
२९. श्री जुहारमल जी दीपचन्द जी नाहटा, केकड़ी
हस्ते, धनराज लालचन्द सुरेशकुमार
३०. श्री मोडीलाल बरदीचंद सूर्या, खेड़ब्रह्मा
३१. श्री केवलचन्द जी जंवरीलाल जी बरमेचा, त्रिमूर्ति अटपड़ा वाले, मद्रास
३२. श्री मुकुनचन्द जी चन्दनमल जी लूंकड़, अहमदाबाद
३३. श्री पारसमल जी लुणकरण जी लुणावत, अहमदाबाद
३४. श्री रतीलाल चुन्नीलाल सोलंकी, सादड़ी (मारवाड़)
३५. श्री जवाहरलाल एस. कोठारी, अहमदाबाद
३६. श्रीमती खमाबाई मूलचन्द जी कोठारी पीपाड़ वाले, अहमदाबाद

संरक्षक

१. श्री भंवरलाल जी मोहनलाल जी भंडारी, अहमदाबाद
२. श्री नगीनभाई दोशी, अहमदाबाद
३. श्री मूलचंद जी जवाहरलाल जी बरड़िया, अहमदाबाद
४. श्री धिंगड़मल जी मुलतानमल जी कानूंगा, अहमदाबाद
५. श्री कान्तिलाल जीवनलाल शाह, अहमदाबाद
६. श्री शान्तिलाल टी. अजमेरा, अहमदाबाद

७. श्री चन्दुलाल शिवलाल संघवी, अहमदावाद
हस्ते, श्री जयन्तिभाई संघवी
८. श्रीमती पार्वती वेन शिवलाल तलखशीवाई अजमेरा ट्रस्ट, अहमदाबाद
हस्ते, श्री नवनीतमल मणिलाल अजमेरा
९. श्री शान्तिलाल अमृतलाल वोरा, अहमदावाद
१०. श्री कान्तिलाल मनसुखलाल शाह पालियाद वाला, अहमदावाद
११. श्री गिरधरलाल पुरुषोत्तमदास ऐलिसब्रिज, अहमदावाद
१२. श्री जयन्तिलाल भोगीलाल भावसार सरसपुर, अहमदावाद
१३. श्री भोगीलाल एण्ड कं., अहमदावाद
हस्ते, श्री दिनेशभाई भावसार
१४. श्री अहमदावाद स्टील स्टोर, अहमदावाद
हस्ते, जयन्तिलाल मनसुखलाल
१५. श्री जादव जी मोहनलाल शाह, अहमदावाद
१६. डॉ. श्री धीरजलाल एच. गोसलिया नवरंगपुरा, अहमदावाद
१७. श्री सज्जनसिंह जी भंवरलाल जी कांकरिया पीपाड़ वाले, अहमदाबाद
१८. श्री कान्तिलाल प्रेमचंद शाह मूँगफली वाला, अहमदावाद
१९. प्लाजा इन्डस्ट्रीज, अहमदावाद
हस्ते, धनकुमार भोगीलाल पारीख
२०. श्री नगीनदास शिवलाल, अहमदावाद
२१. श्रीमती कान्ता वेन भँवरलाल जी के वर्षीतप के उपलक्ष में
हस्ते, श्री सखीदास मनसुखभाई, अहमदावाद
२२. श्री दलीचंदभाई अमृतलाल देसाई, अहमदावाद
२३. श्री जयन्तिलाल के. पटेल साणन्द वाले, अहमदावाद
२४. श्री रामसिंह जी चौधरी, अहमदावाद
२५. श्री पोपटलाल मोहनलाल शाह, पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदाबाद
२६. श्री चिमनलाल डोसाभाई पटेल, अहमदावाद
२७. श्री जादव जी लाल जी वेल जी, बम्बई
२८. श्री गेहरीलाल जी कोठारी, कोठारी ज्वैलर्स, बम्बई
२९. श्री हिम्मतभाई निहालचन्द जी दोषी, बम्बई
३०. श्री आर. आर. चौधरी, बम्बई
३१. स्व. श्री मणिलाल नेमचन्द अजमेरा तथा कस्तूरी बेन मणिलाल की स्मृति में
हस्ते, श्री चम्पकभाई अजमेरा, बम्बई
३२. श्रीमती समरथ वेन चतुर्भुज वेकरी वाला, बम्बई
हस्ते, कान्तिभाई
३३. श्री छगनलाल शामजीभाई विराणी राजकोट वाले, बम्बई
३४. श्री रसिकलाल हीरालाल जवेरी, बम्बई
३५. श्रीमती तरुलता वेन रमेशचंद दफ्तरी, बम्बई
३६. श्री ताराचंद चतुरभाई वोरा वालकेश्वर, बम्बई
हस्ते, नन्दलालभाई
३७. श्री चम्पकलाल एम. लाखाणी, बम्बई
३८. श्री हीर जी सोजपाल कच्छ कपाया वाला, बम्बई
३९. श्री अमृतलाल सोभागचंद जी की स्मृति में
हस्ते, राजेन्द्रकुमार गुणवन्तलाल, बम्बई
४०. श्री एच. के. गांधी मेमोरियल ट्रस्ट घाटकोपर, बम्बई
हस्ते, वज्जुभाई गांधी

४१. श्री वाडीलाल मोहनलाल शाह सायन, बम्बई
४२. श्री नगराज जी चन्दनमल जी मेहता सादड़ी वाले, बम्बई
४३. श्री हरीश सी. जैन खार, जय सन्स, बम्बई
४४. श्री छोटालाल धनजीभाई दोमड़िया, बम्बई
४५. श्रीमती शान्ता बेन कान्तिलाल जी गांधी, बम्बई
४६. श्रीमती शिमला रानी जैन की स्मृति में जितेन्द्रकुमार जैन, बम्बई
४७. श्रीमती पारसदेवी मोहनलाल जी पारख, हैदराबाद
४८. श्री नवरतनमल जी कोटेचा बस्सी वाले, हैदराबाद
४९. श्रीमती बीदाम बेन घीसालाल जी कोठारी, हैदराबाद
५०. श्री पारसमल जी पारख, हैदराबाद
५१. श्री बाबूलाल जी कांकरिया, हैदराबाद
५२. श्री सज्जनराज जी कटारिया, सिकन्द्राबाद
५३. श्री दिनेशकुमार चन्द्रकान्त बैंकर, सिकन्द्राबाद
५४. श्री प्रेमचन्द जी पोमा जी साकरिया, साण्डेराव
५५. श्रीमती हंजाबाई प्रेमचंद जी साकरिया, साण्डेराव
५६. श्री विरदीचंद मेगराज जी साकरिया, साण्डेराव
५७. श्री जुहारमल जी लुम्बा जी साकरिया, साण्डेराव
५८. श्री ताराचंद जी भगवान जी साकरिया, साण्डेराव
५९. श्री कस्तूरचंद जी प्रताप जी साकरिया, साण्डेराव
६०. श्री ताराचंद जी प्रताप जी साकरिया, साण्डेराव
६१. श्री सुमेरमल जी मेड़तिया (एडवोकेट), जोधपुर
६२. श्री अगरचंद जी फतेहचंद जी पारख, जोधपुर
६३. श्री मुन्नीलाल जी मदनराज जी गोलेच्छा, जोधपुर
६४. श्री लुम्बचंद जी गौतमचंद जी सांड, जोधपुर
६५. श्री कैलाशचंद्र जी भंसाली, जोधपुर
६६. श्री मूलचंद जी भंसाली, जोधपुर
६७. श्री शान्तिलाल जी मुन्नालाल जी मुणोत सूरसागर, जोधपुर
६८. श्री लालचंद जी गौतमचंद जी मुणोत सूरसागर, जोधपुर
६९. श्री गुलराज जी पूनमचंद जी मेहता, मदनगंज
७०. श्री गणेशदास शान्तिलाल संचेती, मदनगंज
७१. श्री चम्पालाल जी पारसमल जी चौरड़िया, मदनगंज
७२. श्री सूरजमल कनकमल, मदनगंज
हस्ते, श्री महावीरचंद जी कोठारी
७३. श्री बुधसिंह जी पारसमल जी घीसुलाल जी बम्ब, मदनगंज
७४. श्री मांगीलाल जी चम्पालाल जी उत्तमचंद जी चौरड़िया, मदनगंज
७५. श्री हरखचंद जी रिखबचंद जी मेड़तवाल, केकड़ी
७६. श्री लादूसिंह जी गांग (एडवोकेट), शाहपुरा
७७. श्री जवरसिंह जी सुमेरसिंह जी बरड़िया, रूपनगढ़
७८. श्री नाहरमल जी बागरेचा, रावड़ियाद
हस्ते, श्री नोरतमल जी बागरेचा
७९. श्री शिवराज जी उत्तमचंद जी बम्ब, पीह
८०. श्री धनराज जी डांगी, फतेहगढ़
८१. श्री हुक्मीचंद जी चान्दमल जी ओम जी कोचेटा पीलवा वाले
कोचेटा फेब्रिक्स, पाली (मारवाड़)
८२. श्री लक्ष्मीचंद जी तालेड़ा, जयपुर

८३. श्री कंवरलाल जी धर्मीचंद जी वेताला, गोहाटी (आसाम)
८४. श्री भंवरलाल जी जुगराज जी फुलफगर, घोड़नदी (महाराष्ट्र)
८५. श्री गणशी देवराज, जालना (महाराष्ट्र)
८६. श्री कान्तिलाल जी रतनचंद जी वांठिया, पनवेल (महाराष्ट्र)
८७. मै. कन्हैयालाल माणकचंद एण्ड सन्स, वड़गाँव (पूणा)
८८. श्री रणजीतसिंह ओमप्रकाश जैन, कालावाली मण्डी (हरियाणा)
८९. श्री मदनलाल जी जैन, भटिण्डा (पंजाव)
९०. श्री भाईलाल जादव जी सेठ, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
९१. श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती सोजत वाले, सुरगाणा (महाराष्ट्र)
९२. श्री जे. डी. जैन, गाजियावाद (उत्तर प्रदेश)
९३. श्री प्रेमचंद जी जैन, आगरा
९४. श्री जी. एस. संघवी राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली
९५. श्री वी. अमोलकचंद अमरचंद मेहता, वैंगलोर
९६. श्री विजयराज जी पदमचन्द जी गादिया, कुड़की
९७. श्री शान्तिलाल जी वम्व, पीह
९८. श्री रजनीकान्त भाई देसाई, वम्वई
९९. श्री छोगालाल जी वोहरा, पाली
१००. श्री हमीरमल दलीचंद श्रीश्रीमाल, व्यावर
१०१. श्री अशोककुमार जी धीरजकुमार जी गादिया, वैंगलोर
१०२. श्री माणकचन्द जी ओसतवाल, वैंगलोर
१०३. श्री पूनमचन्द जी हरिशचन्द्र जी वडेर, जयपुर
१०४. श्री शान्तिलाल जी रंगलाल जी दक, अहमदावाद

सम्माननीय सदस्य

१. श्री पी. के. गांधी, वम्वई
२. श्री सुखलाल जी कोठारी खार, वम्वई
३. श्री नागरदास मोहनलाल खार, वम्वई
४. श्री आनन्दीलाल जी कटारिया वडाला, वम्वई
५. श्री वसन्तलाल के. दोसी विर्लेपाला, वम्वई
६. श्री प्रोसीसन टैक्सटाइल इन्जीनियरिंग एण्ड काम्पेन्ट्स, वम्वई
७. श्री मेहता इन्द्र जी पुरुषोत्तमदास दादर, वम्वई
८. श्री कोरसीभाई हीरजीभाई चेरिटेवल ट्रस्ट, वम्वई
९. श्री जयसुखभाई रामजीभाई शेठ कांदावाड़ी, वम्वई
१०. श्री चिमनलाल गिरधरलाल कांदावाड़ी, वम्वई
११. श्री मेघजीभाई थोभण कांदावाड़ी, वम्वई
हस्ते, मणिलाल वीरचंद
१२. श्री प्रितमलाल मोहनलाल दफ्तरी कांदावाड़ी, वम्वई
१३. मै. सीलमोहन एण्ड कं., वम्वई
हस्ते, रमणिकभाई धानेरा वाले
१४. श्री नरोत्तमदास मोहनलाल, वम्वई
१५. श्री वाडीलाल जेठालाल शाह वालकेश्वर, वम्वई
आचार्य यशोदेवसूरीश्वर जी की प्रेरणा से
१६. श्री जैन संस्कृति कला केन्द्र मरीनलाईन, वम्वई
१७. श्री मेघजी खीमजी तथा लक्ष्मी वेन मेघजी खीमजी, वम्वई
१८. श्री ताराचंद गुलावचंद, वम्वई
१९. श्री गिरधरलाल मन्छाचंद जवेरी धानेरा वाले, वम्वई

२०. श्रीमती भूरीबाई भंवरलाल जी कोठारी सेमा वाले, वम्बई
हस्ते, सागरमल मदनलाल रमेशचंद
२१. श्री पुखराज जी कावड़ीया सादड़ी वाले, न्यू राजुमणि ट्रांसपोर्ट, वम्बई
२२. श्री रसीकलाल हीरालाल जवेरी, वम्बई
२३. श्री प्रवीणभाई के. मेहता, वम्बई
२४. श्री प्रभुदासभाई रामजीभाई सेठ, वम्बई
२५. श्रीमती लता बेन विमलचंद जी कोठारी, वम्बई
२६. श्री कमलेश एन. शाह, वम्बई
२७. श्री अरविन्दभाई धरमशी लुखी, वम्बई
२८. श्री चांपशीभाई देवशी नन्दू, वम्बई
२९. श्री लालजी लखमशी केमिकल्स प्रा. लि., वम्बई
३०. श्री मूलचंद जी गोलेछा, जोधपुर
३१. श्री चम्पालाल जी चौपड़ा, जोधपुर
३२. श्री माणकचंद जी अशोककुमार जी, जोधपुर
३३. श्री मदनराज जी कर्णावट, जोधपुर
३४. श्री जेठमल जी लुंकड़, जोधपुर
३५. श्री मेहन्द्रकुमार जी राजेन्द्रकुमार जी, जोधपुर
३६. श्रीमती विमलादेवी मोतीलाल जी गुलेछा, जोधपुर
३७. श्री जैन बुक डिपो पावटा, जोधपुर
३८. श्री सायरचंद जी बागरेचा, जोधपुर
३९. श्री घेवरचंद जी पारसमल जी टाटिया, जोधपुर
४०. श्री भंवरलाल जी गणेशमल जी टाटिया, जोधपुर
४१. श्री लाभचंद जी टाटिया, जोधपुर
४२. श्री तेजराज जी गोदावत, जोधपुर
४३. श्री महावीर स्टोर्स, जोधपुर
४४. श्री पारसमल जी सुमेरमल जी संखलेचा, जोधपुर
४५. श्री मोहनलाल जी बोथरा, जोधपुर
४६. श्री जबरचंद जी सेठिया, जोधपुर
४७. श्री मूलचंद जी भंसाली, जोधपुर
४८. श्री सोमचंद जी सर्राफ, जोधपुर
४९. श्री केशरीमल जी चौपड़ा, जोधपुर
५०. श्री कनकराज जी गोलिया, जोधपुर
५१. श्री चम्पालाल जी बाफना, जोधपुर
५२. श्री ताराचंद जी सायरचंद जी पारख, जोधपुर
५३. श्री घेवरचंद जी पारख, जोधपुर
५४. श्री उदयराज जी पारख, जोधपुर
५५. श्री हरखराज जी मेहता, जोधपुर
५६. श्री लालचंद जी बाफना, जोधपुर
५७. श्री जैन खतरगच्छ संघ, जोधपुर
५८. श्री दिलीपराज जी कर्णावट, जोधपुर
५९. श्री शम्भूदयाल जी भंसाली, जोधपुर
६०. श्री चम्पालाल जी भंसाली, जोधपुर
६१. श्री चन्द्रसागर जी कुंभट, जोधपुर
६२. श्री महेन्द्रकुमार जी झामड़, जोधपुर
६३. श्री सूरजमल जी रमेशकुमार जी श्रीश्रीमाल, जोधपुर
६४. श्री प्रकाशमल जी डोसी प्रतापनगर, जोधपुर

६५. श्री सुगनचंद जी भंडारी, जोधपुर
६६. श्री मोहनलाल जी चम्पालाल जी गोठी महामन्दिर, जोधपुर
६७. श्री गुलाबचंद जी जैन, जोधपुर
६८. श्री नरसिंग जी दाधीच सूरसागर, जोधपुर
६९. श्री जीवराज जी कानूंगा, जोधपुर
७०. श्री भंवरलाल जी कानूंगा, जोधपुर
७१. श्री दलाल माणकचंद जी बोहरा, जोधपुर
७२. श्रीमती कमला सुराणा, जोधपुर
७३. श्री अशोककुमार जी बोहरा, जोधपुर
७४. श्रीमती मंजुदेवी अशोककुमार जी बोहरा, जोधपुर
७५. श्री सोहनलाल जी बडेर, जोधपुर
७६. श्री माणकचंद जी संचेती, जोधपुर
७७. श्री मदनचंद जी संचेती, जोधपुर
७८. श्री धनराज जी दिलीपचंद जी संचेती, जोधपुर
७९. श्री गौतमचंद जी संचेती, जोधपुर
८०. श्री प्रकाशचंद जी संचेती, जोधपुर
८१. श्री पुष्पचंद जी संचेती, जोधपुर
८२. श्री गणपतलाल जी संचेती, जोधपुर
८३. श्री भरतभाई जे. शाह, अहमदाबाद
८४. श्री लालभाई दलपतभाई चेरिटेबल ट्रस्ट, अहमदाबाद
८५. श्री महेन्द्रभाई सी. शाह नवरंगपुरा, अहमदाबाद
८६. श्री भींवराज जी भगवान जी धारीवाल, अहमदाबाद
८७. श्री पारसमल जी ओटरमल जी कावड़ीया, सादड़ी (मारवाड़)
८८. श्री हिम्मतमल जी प्रेमचंद जी साकरिया, साण्डेराव
८९. श्री रतीलाल विट्ठलदास गोसलिया, माधवनगर
९०. श्री हरखराज जी दौलतराज जी धारीवाल, हैदराबाद
९१. श्री एस. एन. भीकमचंद जी सुखाणी लाल बाजार, सिकन्द्राबाद
९२. श्री चुन्नीलाल जी बागरेचा, बालाघाट
९३. श्री प्रेमराज जी उत्तमचंद जी चौरड़िया, मदनगंज
९४. श्री मांगीलाल जी सोलंकी सादड़ी वाले, पूना
९५. श्री सोहनराज जी चौथमल जी संचेती सोजत वाले, सुरगाणा
९६. श्री लालचंद जी भंवरलाल जी संचेती, पाली
९७. श्रीमती कमला बेन मूलचंद जी गूगले, अहमदनगर
९८. श्रीमती लीला बेन पोपटलाल बोहरा, इचलकरंजी
९९. श्री पुखराज जी महावीरचंद जी मूथा पीह वाले, मद्रास
१००. श्री के. सी. जैन (एडवोकेट), हनुमानगढ़
१०१. श्रीमती मदनबाई खाबिया पादू वाले, मद्रास
१०२. श्री बाबूलाल जी कन्हैयालाल जी जैन, मालेगाँव
१०३. श्रीमती कमलाबाई केवलचंद जी आबड़, भटिण्डा (पंजाब)
१०४. श्री पारसमल जी सुखाणी, रायचूर
१०५. श्री प्रताप मुनि ज्ञानालय, बड़ी सादड़ी
१०६. श्री एच. अम्बालाल एण्ड सन्स, गुडियातम
हस्ते, श्री प्रेमराज जी पारसमल जी केवलचंद जी बगड़ी वाले
१०७. श्री यश. भंवरलाल जी श्रीश्रीमाल, बैंगलोर
१०८. श्री कल्याणमल जी कनकराज जी चौरड़िया ट्रस्ट, मद्रास

१०९. श्री कैलाशचंद जी दुगड़, मद्रास
११०. श्री मेहता विरदीचंद जुमचंद चेरिटेवल ट्रस्ट, मद्रास
१११. श्री दुलीचंद जी जैन, मद्रास
११२. श्री नेमीचंद जी उत्तमचंद जी संघवी, धुलिया
११३. श्री कपूरचंद जी कुलीश, राजस्थान पत्रिका, जयपुर
११४. श्री सन्मति जैन पुस्तकालय, वड़ोत मण्डी
११५. श्री विनोदकुमार जी हरीलाल जी गोसलिया, मुजफ्फरनगर
११६. श्री विजयकुमार जी जैन, अम्वाला शहर
११७. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ, भोपालगढ़
११८. श्री हंसराज जी जैन, भटिण्डा (पंजाव)
११९. श्री कीमतीलाल जी जैन, मेरठ सिटी
१२०. श्री संजयकुमार कल्याणमल जी सर्राफ, शाहजहाँपुर
१२१. श्री कलवा स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, कलवा (थाना)
१२२. श्री ए. पी. जैन, दिल्ली
१२३. श्री चम्पालाल जी चपलोत, भीलवाड़ा
१२४. श्री तिलोकचंद जी पोखरणा, मदनगंज
१२५. श्री उम्मेदसिंह जी चौधरी की स्मृति में
हस्ते, श्री अनन्तसिंह जी, कैरोट
१२६. श्री पन्नालाल जी प्रेमचंद जी चौपड़ा, अजमेर
१२७. श्री गांग जी कुंवर जी वोरा, समागोगा कच्छ
१२८. श्री मोहनलाल जी वावूलाल जी कांकरिया, हैदरावाद
१२९. श्री हीराचन्द जी चौपड़ा, साण्डेराव
१३०. श्री सज्जनमल जी वोहरा, पीसांगन
१३१. श्री गजराजसिंह जी डांगी, भीलवाड़ा
१३२. श्री एस. भंवरलाल जी पारसमल जी, गेलड़ा, आरकोणम्
१३३. शा. पोपटलाल मोहनलाल शाह पब्लिक चेरिटेवल ट्रस्ट, अहमदावाद
१३४. श्री आवू तलेटी तीर्थ मानपुर, आवू रोड
१३५. श्री उगरसिंह जी जैन, शास्त्री नगर, अहमदावाद
१३६. श्री ताराचन्द जी अचलदास जी खींवसरा, सादडी (मारवाड़)
१३७. श्री पोपटलाल अचलदास जी खींवसरा, सादड़ी (मारवाड़)
१३८. श्री ललीतकुमार कोठारी, शाहपुर, अहमदाबाद

ज्ञान-दान

१. एन. जे. छेड़ा, बम्बई
२. तीर्थराम जी जैन, होशियारपुर
३. तेजमल जी बाफणा (एडवोकेट), भीलवाड़ा
४. सौभागमल जी बहादुरमल जी नागौरी, सिंगोली (मध्य प्रदेश)
५. श्री मोहनलाल जी जंवरीलाल जी बोहरा, शोलापुर (कर्णाटक)
६. श्री कस्तूरभाई भोगीलाल शाह, प्रान्तिज (गुजरात)
७. श्री शान्तिलाल जी माणकचंद जी कोठारी, अहमदाबाद
८. श्री प्राणलाल वल्लभदास घाटलिया, बम्बई
९. श्री हजारीमल जी मोतीलाल जी कालूराम जी
माता धापूवाई बेटा पोता हस्ते, भूराराम जी उदयराम जी बागोर, भीलवाड़ा
१०. शा. फोजराज चुन्नीलाल बागरेचा जैन धार्मिक ट्रस्ट, बालाघाट
११. श्रीमती पुष्पा बेन एम. बागरेचा, अहमदावाद
१२. श्री सोहनलाल जी मोतीलाल जी लोढ़ा, अम्बाजी



द्रव्यानुयोग प्रकाशन योजना के सम्माननीय सहयोगी सदस्यों के चित्र व परिचय

श्री चुन्नी भाई धोरी भाई पटेल, अहमदाबाद

आप बहुत ही भावनाशील सुश्रावक हैं। सैकड़ों स्थानों पर उपाश्रय आदि में योगदान दिया है। अनेक अस्पताल आदि में सहयोग किया है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सूरजबैन भी बहुत भावनाशील थी। आ सुपुत्र श्री नवनीत भाई, जयंति भाई प्रवीण भाई भी बहुत भावनाशील उदार हृदयी धर्म श्रद्धालु श्रावक हैं। आपके परिवार का अनुयोग ट्रस्ट को बहुत बड़ा योगदान प्राप्त हुआ है।

श्री शांतीलाल जी नाहर, अहमदाबाद

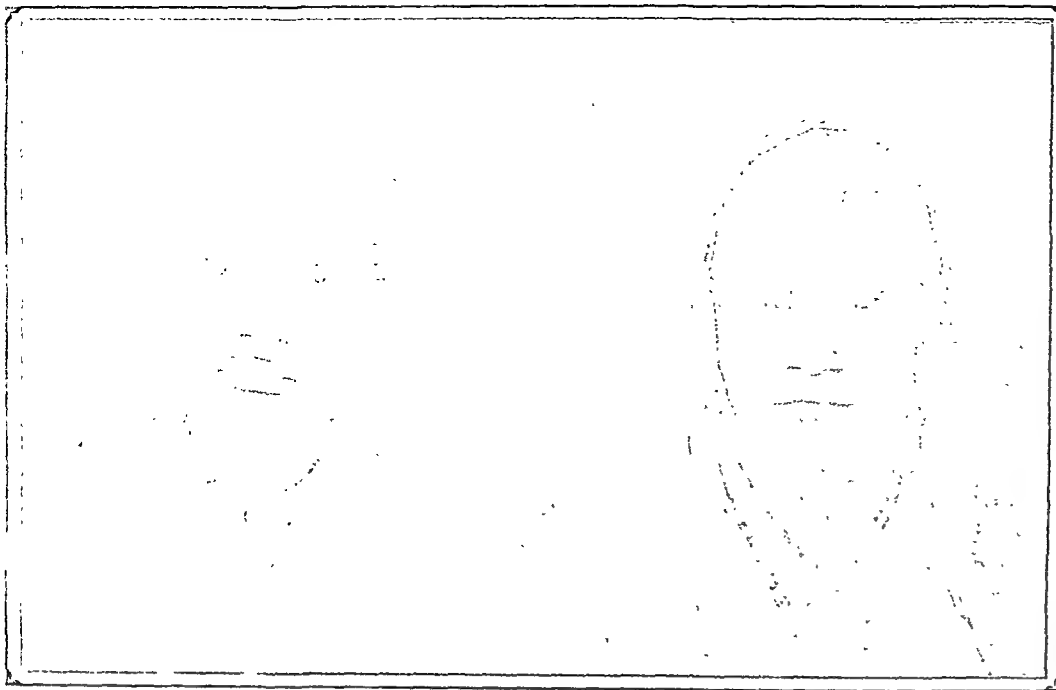
आप सरलमना मिलनसार समाज सेवी, सेवाभावी, उदार हृदयी सज्जन हैं। आप बोराना जिला भीलवाड़ा के मूल निवासी हैं। राजस्थान स्थानकवासी जैन संघ के उपाध्यक्ष हैं। लक्ष्मी मेटल ग्रुप के आप चैयर मैन हैं। अनेक सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं के ट्रस्टी हैं। अनुयोग ट्रस्ट में आपने विशेष सहयोग दिया है।

श्री जयंति भाई, के. पटेल, अहमदाबाद

आप मूलतः साणन्द के निवासी हैं। अनेक वर्षों तक संघ के प्रमुख रहे हुए हैं। अम्बाव जीवराज पार्क आदि अनेक संघों के ट्रस्टी हैं। बहुत ही उदार भावना वाले सज्जन व्यक्ति पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा भक्ति रखते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट में विशेष सह प्रदान किया है।

श्री धीरजलाल, धर्मशी मोरबीया, आबु रोड़

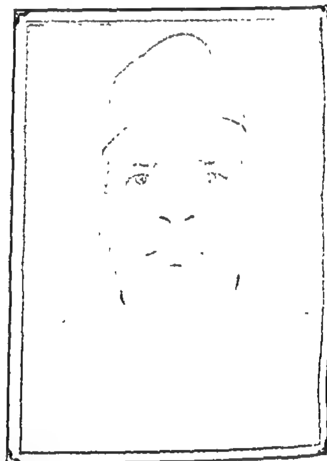
आप मूलतः कच्छ रापर के निवासी हैं। बहुत ही भावनाशील, उदार हृदयी, सेवाभावी सज्जन व्यक्ति हैं। आपका पूरा परिवार ही बहुत धर्म भावना वाला है। संत सतियों की सेवा में संलग्न रहता है। आपके केमिकल व मार्बल का बहुत बड़ा व्यवसाय है। अनुयोग ट्रस्ट में आपने बहुत बड़ा सहयोग दिया है। आपश्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ आबुरोड़ के अध्यक्ष हैं एवं कच्छ की सामाजिक संस्थाओं के साथ अच्छे सम्पर्क में हैं। रापर जीवदया मंडल (गौ-शाला) में अपना योगदान देकर उनमें बहुत अच्छी तरह से सेवा कर रहे हैं।



श्री सरदारमलजी सा. सामसुखा व श्रीमती उछबकंवरबाई सामसुखा (बम्बई)

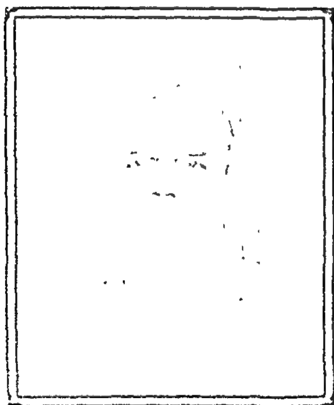
आप बहुत धार्मिक भावना वाले व उदार स्वभाव के थे। प्रतिदिन सामायिक आदि की प्रवृत्ति में लीन रहते थे।

आपके सुपुत्र श्री अक्षयकुमारजी आदि का मरुधर इलेक्ट्रिकल्स के नाम से बम्बई में बहुत बड़ा व्यवसाय है। पूरा परिवार बहुत धार्मिक भावना वाला है, पूज्य मरुधर केसरी जी म. के प्रति विशेष श्रद्धा भक्ति थी, उपाध्याय श्री जी एवं प्रवर्त्तक श्री जी के प्रति भी विशेष श्रद्धा रखते हैं भावना आनुपूर्वी एवं नन्दी सूत्र (गुटका साइज) के विमोचन का अवसर भी आपको प्राप्त हुआ। आपने आगम अनुयोग ट्रस्ट में विशेष सहयोग दिया।



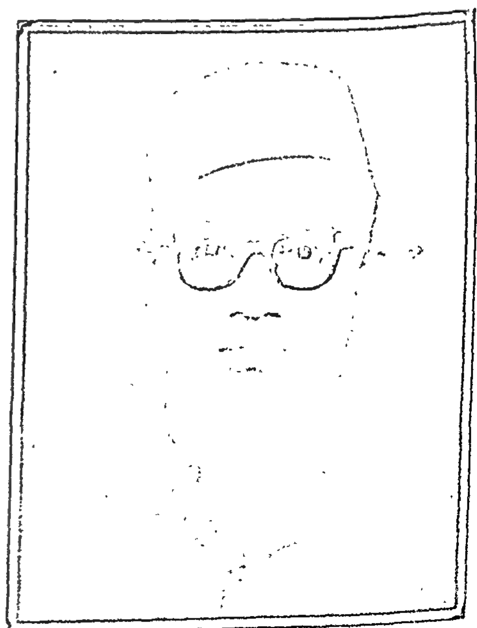
स्व. श्री रतीलाल जी चुन्नीलाल जी सोलंकी, सादड़ी (मारवाड़)

आप बहुत ही भावनाशील धर्म श्रद्धालु सुश्रावक थे। समाज के बहुत ही अच्छे कार्यकर्त्ता थे। श्री राजस्था[illegible] स्थानकवासी जैन संघ, साबरमती स्था. जैन संघ के आप ट्रस्टी थे। आपके सुपुत्र श्री रमेश भाई, राजेश भाई, हरिश भाई आदि भी उसी प्रकार सेवा आदि कार्यों में संलग्न हैं। वस्त्र एवं फाइनेन्स आदि का अहमदाबाद में व्यवसाय है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी सदस्य हैं।



श्री पारसमल जी, लुणकरण जी लुणावत, अहमदाबाद

आप मूलतः निम्बोल (जिला-पाली) राजस्थान निवासी हैं। बहुत ही अच्छे सेवाभावी कार्यकर्त्ता हैं। श्री स्थानकवासी जैन संघ मणीनगर (अहमदाबाद) के आप अध्यक्ष हैं। आपके ओटो फाइनेन्स का व्यवसाय है। बहुत ही उदार भावना वाले सज्जन व्यक्ति हैं। आपने अनुयोग ट्रस्ट में विशेष सहयोग दिया है।



स्व. श्री जवाहर लाल जी एस. कोठारी, रणसी गाँव (राज.)

आप बहुत ही धर्मानुरागी सुश्रावक थे। आपके बड़े सुपुत्र श्री बुद्धमल जी कोठारी तमिलनाडु में व्यवसाय करते हैं। द्वितीय सुपुत्र श्री पद्मचन्द जी अहमदाबाद में फाइनेन्स का व्यवसाय करते हैं।

[illegible] स्थानकवासी जैन संघ, युवक मंडल, राजस्थानी संघ, राजस्थान सेवा समिति [illegible] एसोसियेशन आदि अनेक संस्थाओं के आप प्रमुख सेक्रेट्री आदि पदों [illegible] सेवाभावी कार्यकर्त्ता हैं। आपके भ्राता श्री चैनराज जी एवं [illegible] के व्यवसाय में ही हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट में सहयोग [illegible]





श्री वृद्धिचन्द जी मेघराज जी, सांडेराव

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक संघ सांडेराव एवं वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत के आप प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। महावीर केन्द्र में कार्यालय का आपकी ओर से ही निर्माण हुआ है। आयंबिल ओली का सफल संचालन आप ही करते रहे हैं। श्री मूलचन्द जी, शेषमल जी, उम्मेदमल जी एवं आप चार भाइयों में सबसे बड़े हैं। पूज्य गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।

स्व. श्री माणकचन्दजी बाफणा, बड़गाँव

आप महाराष्ट्र के प्रसिद्ध श्रावकों में थे। आचार्य सम्राट् श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के प्रति आपकी दृढ़ श्रद्धा थी, तथा धार्मिक परीक्षा बोर्ड के प्रमुख कार्यकर्ता थे। बड़गाँव में छह दीक्षा एक साथ कराने का महान् लाभ आपने लिया था।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप प्रमुख सहयोगी थे।



श्रीमती शान्ताबेन कान्तिलाल जी गाँधी, बम्बई

आप धर्म में दृढ़ श्रद्धा वाली श्राविका हैं। आपके पतिदेव बहुत ही उदार हृदयी एवं सरल स्वभाव के सज्जन थे। बम्बई में कपड़े का व्यवसाय है एवं बहुत-सी संस्थाओं से जुड़े हुए हैं। श्री वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत के प्रमुख सहयोगी कार्यकर्त्ता हैं। पूज्य गुरुदेव श्री जी के प्रति आप दोनों की अनन्य श्रद्धा भक्ति रही है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी हैं।

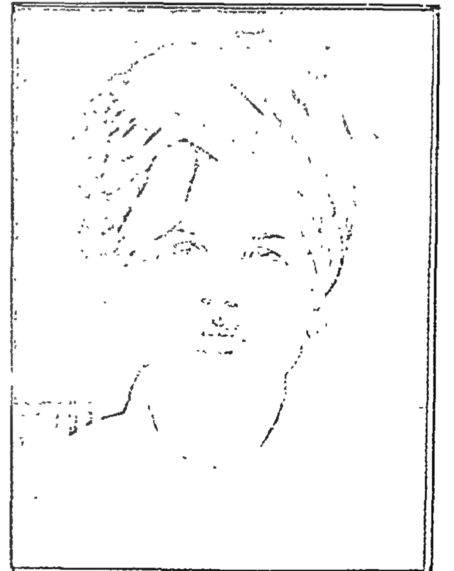


स्व. श्री हिम्मतमल जी, प्रेमचन्द जी, सांड़ेराव

आप बहुत ही सरल आत्मा, भावनाशील, उदार हृदयी सुश्रावक थे। सांड़ेराव संघ के आप बहुत ही अच्छे कार्यकर्त्ता थे। श्री वर्धमान महावीर केन्द्र आबू पर्वत के आप ट्रस्टी थे। आपके सुपुत्र श्री देवीचन्द जी, श्री विमलकुमार जी, श्री रमेशकुमार जी भी उसी प्रकार सेवाभावी उदार भावना वाले हैं। सांड़ेराव संघ व आबू पर्वत केन्द्र की प्रवृत्तियों का संचालन करते हैं। पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी बने हैं।

स्व. श्री पृथ्वीराज जी कोचेटा, पीलवा (नागौर)

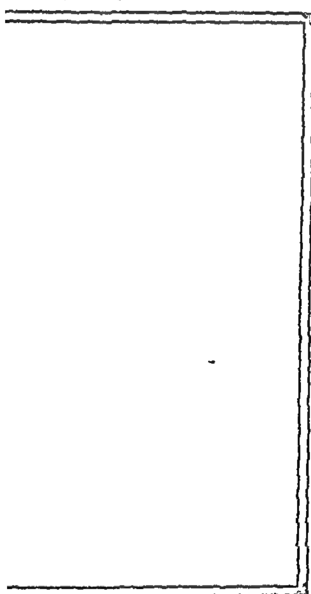




आप बहुत ही धार्मिक रुचि वाले श्रावक थे। आपके सुपुत्र श्री पारसमल जी, हुक्मीचन्द जी, चांदमल जी ओम जी आदि पिता के आज्ञाकारी सुपुत्र और धार्मिक प्रवृत्ति वाले श्रावक हैं। पाली, इचलकरंजी, माधवनगर, सांगली आदि में आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं। पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी म. के प्रति आपके सभी परिवार की विशेष भक्ति है। श्री हुक्मीचन्द जी ने इस प्रकाशन में रुचिपूर्वक सहयोग प्रदान किया है।

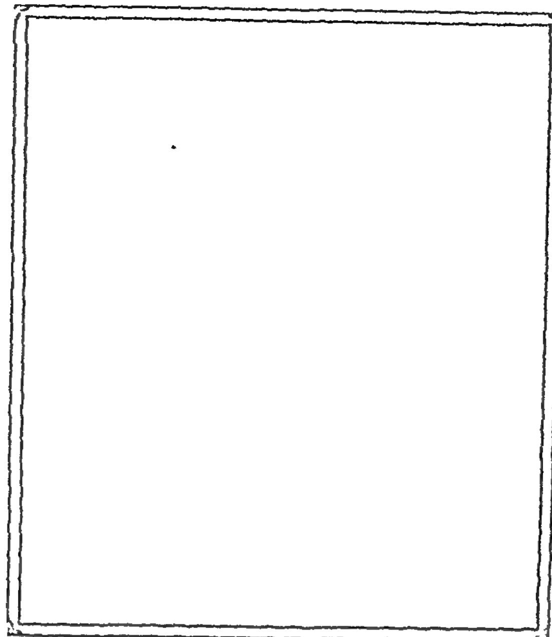
कगलूसिंह जी कोठारी,
मदनगंज

संघ के प्रति असीम श्रद्धा वाले आपके सुपुत्र श्री महावीरचन्द धर्म में उसी प्रकार श्रद्धा रखते आपकी पूज्य गुरुदेव के प्रति है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सदस्य हैं।



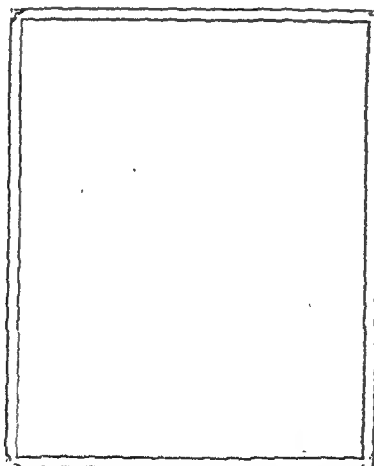
ाजीतसिंह जी जैन,
सा (हरियाणा)

श्रावक श्री लक्खूरामजी जैन ालावाली (जिला-सिरसा, के सुपुत्र हैं। स्वामी जी महाराज के आप परम स्वी श्री रोशन मुनि जी म. के ापकी विशेष भक्ति है। ार्मिक कार्यों में आप सहयोग देते हैं। आगम ...क्रिय सदस्य हैं।



स्व. श्री जुहारमल जी लुम्बा जी
साकरिया (सांडेराव)

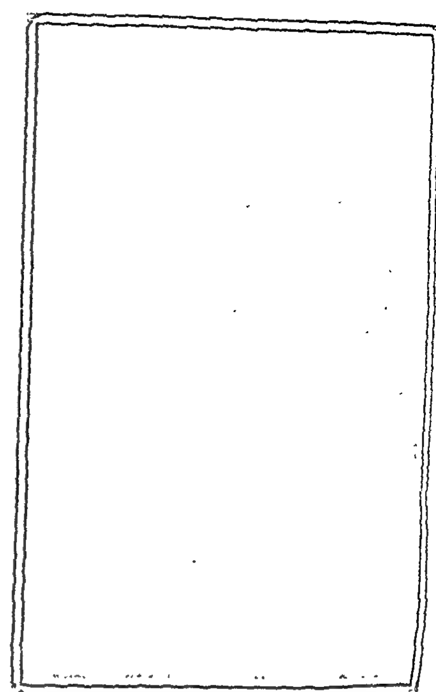
आपका परिवार बहुत ही धर्मनिष्ठ तथा उदारमना है। आपकी भाँति आपकी धर्मपत्नी सौ. पानीबाई भी बहुत ही धर्मशीला, सेवा-परायण सुश्राविका है। आपके सुपुत्र श्री चम्पालाल जी, फुटरमल जी, हस्तीमल जी, सागरमल जी और रमेशचन्द जी सभी भाई धर्मप्रेमी व गुरुदेवश्री के परम भक्त हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट एवं श्री वर्द्धमान महावीर केन्द्र, आबू पर्वत आदि संस्थाओं में आपका सक्रिय सहयोग मिलता रहा है।



स्व. सुभाषचन्द घीसालाल जी कोठारी,
हैदराबाद

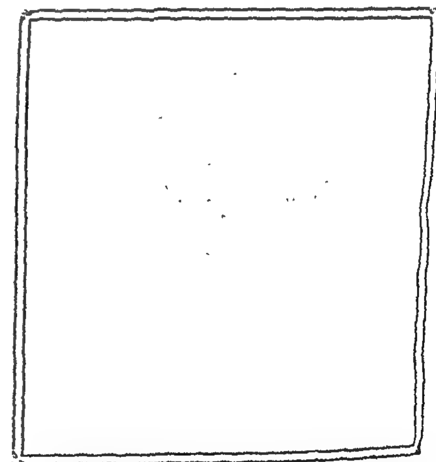
आपके पूर्वज पीही (मारवाड़) निवासी थे। वर्तमान में आपके परिवार का हैदराबाद में फायनेन्स का व्यवसाय है। आपकी माताजी बिदामबाई ने आपके पूरे परिवार में धार्मिक संस्कारों का सिंचन किया जिससे परिवार की धर्म में दृढ़ श्रद्धा है।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी हैं।



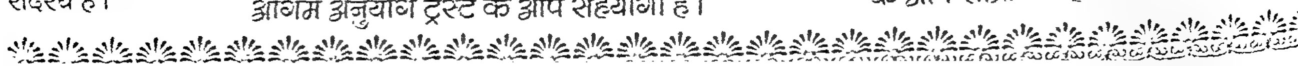
श्री चम्पालालजी चौरड़िया,
मदनगंज

आप मदनगंज श्रावक संघ के प्रमुख कार्यकर्ता हैं एवं स्वभाव से गम्भीर और धर्म में श्रद्धा वाले दृढ़ श्रद्धालु श्रावक हैं। आपकी पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा है। महावीर कल्याण केन्द्र मदनगंज, ध्यान साधना केन्द्र आबू पर्वत आदि अनेक संस्थाओं के ट्रस्टी हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी सदस्य हैं।



स्व. श्री ताराचन्द जी भगवान जी,
सांडेराव

आप धार्मिक आराधना उपासना में विशेष प्रबल भावना रखते थे। आपका व्यवसाय क्षेत्र बम्बई है। आप शरीर से अस्वस्थ होते हुए भी सदा प्रसन्नचित रहते थे। युवावस्था में ही आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया था। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।



द्रव्यानुयोग प्रकाशन योजना के सम्माननीय सहयोगी सदस्यों के चित्र व परिचय



श्री चन्दनमल जी, मुकुन्दचन्द जी लुंकड़, अहमदाबाद

आप पचपदरा (मारवाड़) के मूल निवासी हैं। बहुत ही धर्म श्रद्धालु एवं उदार भावना वाले श्रावक हैं। आपने पूज्य पिताजी की स्मृति में अपने गाँव में बहुत बड़े स्थानक का भी निर्माण करवाया है। आबु पर्वत पर चैत्री आयंबिल ओली भी आपने करवाई। आपके सुपुत्र श्री पूनमचन्द जी, कांतिलाल जी, महावीरचन्द जी भी भावनाशील हैं। पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट में सहयोगी बने हैं।

श्रीमती खम्माबाई श्री मूलचन्द जी कोठारी, अहमदाबाद

आप पिपाड़ सिटी (राज.) के निवासी हैं। वहाँ का कोठारी परिवार बहुत ही धर्म श्रद्धालु एवं उदार भावना वाला है। सेठ श्री मूलचन्द जी सा. एवं खम्माबाई दोनों ही बहुत ही सेवाभावी हैं। प्रत्येक कार्य में अग्रसर रहते हैं। उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि जी म. सा. के प्रति विशेष श्रद्धा भक्ति थी। वर्तमान आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म. सा. के भी परम भक्त हैं। अनुयोग ट्रस्ट में सहयोग प्रदान किया है।



श्री नरेन्द्रकुमार जी छाजेड़, उदयपुर

आप स्वामी जी श्री छगनलाल जी म. के परम भक्त शाहपुरा (राज.) के प्रसिद्ध न्यायाधीश समाज के कर्णधार श्री सरदारमल जी सा. छाजेड़ के सुपौत्र एवं श्री मानमल जी सा. छाजेड़ के सुपुत्र हैं। बहुत ही भावनाशील श्रावक हैं। श्रुति सिन्थेटिक्स लिमिटेड के प्रबन्ध निर्देशक एवं भंवाल सिंथेटिक्स के चेयरमैन हैं।

आपकी आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी म., उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म. 'कमल', प्रवर्त्तक श्री महेन्द्र मुनि जी म. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी हैं।

श्रीमान केवलचंद जी ब्रह्मेचा

शान्त एवं सरल स्वभाव वाले उदारमना श्री जुगराजजी, खींवराजजी, केवलचन्दजी ब्रह्मेचा इन तीनों भाईयों का मद्रास जैन समाज में विशिष्ट स्थान है। आप राजस्थान में अटपड़ा ग्राम के निवासी श्रीमान् धनराजजी ब्रह्मेचा एवं इच्छाबाई के सुपुत्र हैं।

आपका मद्रास में "श्री जैन जरी स्टोर" श्री जैन क्लॉथ सेन्टर नामक प्रसिद्ध व्यापार है।

श्रीमान् केवलचन्दजी सा. अपने नियम, पच्छखान में अडिग हैं, नियमित सामायिक करना, २० वर्षों से एकाशन व चौविहार करते हैं। आपकी प्रेरणा से धनराज, जुगराज ब्रह्मेचा चेरिटेबल ट्रस्ट, जुगराज, खींवराज, केवलचंद ब्रह्मेचा ट्रस्ट, के. बी. जैन ट्रस्ट चलते हैं।

आप तीनों भाईयों को "त्रिमूर्ति" नाम से जाना जाता है। पूरा परिवार धर्म श्रद्धालु है, ट्रस्ट में विशेष सहयोग दिया है।



श्रीमान अमरचंद जी मेहता, बैंगलोर

आपके पूज्य पिताश्री अमोलकचंद जी सा. मेहता मूलतः रायपुर (मारवाड़) के निवासी थे। श्री अमोलकचंद जी सा. वहाँ पर प्रतिष्ठित कामदार थे। आज भी वहाँ पर कामदारों का ठिकाना प्रसिद्ध है। उनके सुपुत्र श्रीमान् अमरचंदजी सा. अभी बेंगलोर में रहते हैं। बहुत बड़ा व्यवसाय है। सभी परिवार बहुत ही धर्म श्रद्धालु हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी हैं।

स्व. शा. कस्तूरचन्दजी प्रतापजी साकरिया, सांडेराव

आप सांडेराव (बांकलीवास) निवासी प्रतापजी कपूर जी के सुपुत्र थे। स्व. तपस्वी स्वामी श्री वक्तावरमल जी म. के अनन्य भक्तों में से एक थे। आपके सुपुत्र शांतिलाल जी, कांतिलाल जी, मदनलाल जी, विमलचन्द जी, सुरेश कुमार जी, जगदीश जी भी धर्म में दृढ़ श्रद्धाभाव रखते हैं। सन् ८५ में गुरुदेव के चातुर्मास में आपके घर से ही पाँच मास खमण हुए। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के सक्रिय सहयोगी रहे हैं।

श्री जब्बरसिंहजी बरड़िया, रूपनगढ़

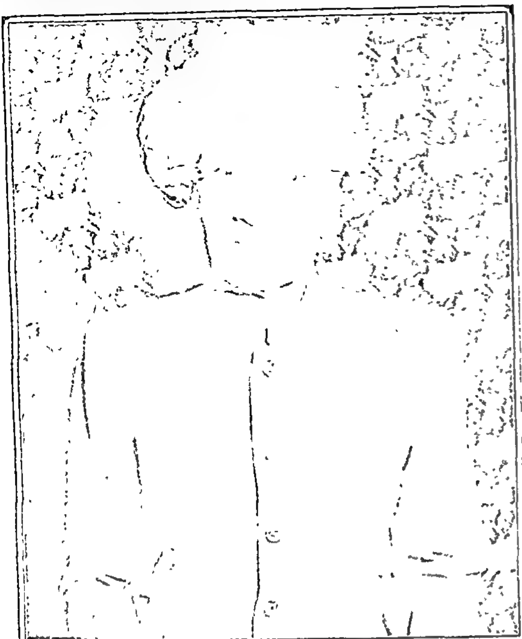
आप रूपनगढ़ के स्वर्गीय श्रावक श्री रामसिंह जी साहब के सुपुत्र हैं। संघ के अच्छे कार्यकर्ता हैं। [illegible] पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा है। आपका सभी परिवार धर्म एवं समाज सेवा में भाग लेता रहता है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।

श्री लालचन्द जी श्रीश्रीमाल, ब्यावर (राज.)

आप आचार्य जयमल श्रावक संघ के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। बहुत ही उदार हृदयी धर्म श्रद्धालु श्रावक हैं। आपकी आचार्यकल्प श्री शुभचन्द्र जी म. सा. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति है। ब्यावर में [illegible] श्रीश्रीमाल व मद्रास में [illegible] श्रीश्रीमाल के नाम से प्रसिद्ध [illegible]।

स्व. श्रीमान् [illegible] जी [illegible], (गढ़ सिवाना) अहमदाबाद

[illegible]





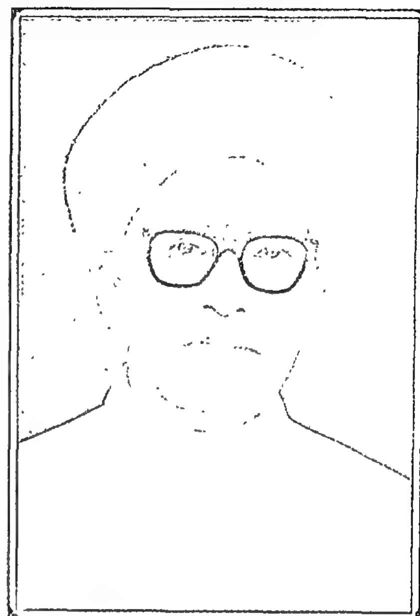
श्री लादुसिंह जी गांग (एडवोकेट), शाहपुरा

आप बहुत ही उदार विचारों के हैं। शाहपुरा संघ के कर्मठ समाजसेवी श्रावक हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म. की स्मृति में वर्धमान महावीर केन्द्र, आबू पर्वत पर स्थापित होम्योपैथिक औषधालय, वेणी-मोहन चिकित्सालय की स्थापना में भी आपका प्रमुख योगदान रहा है।

आपकी पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति है। आपके सुपुत्र ज्ञानचन्द जी आदि भी धार्मिक भावना वाले हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी सदस्य हैं।





स्व. श्री हरखचन्द जी सा. मेड़तवाल, केकड़ी (राज.)

आप केकड़ी के उदार हृदयी, धर्म श्रद्धालु श्रावक थे। बहुत ही सरल हृदयी थे। आपके सुपुत्र श्री रिखबचन्द जी आदि सभी पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। ब्यावर में श्री कल्याणमल हरखचन्द के नाम से प्रसिद्ध फर्म है। आप ट्रस्ट के सक्रिय सदस्य हैं।



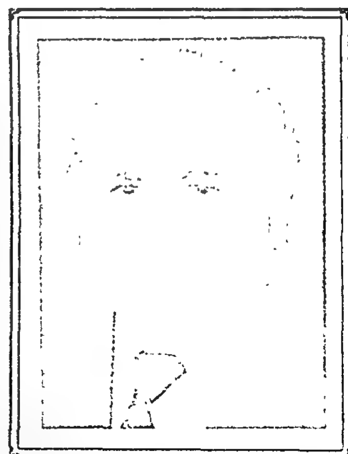
स्व. श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन, बम्बई

आप मूलतः हरियाणा के निवासी थे। फिर दिल्ली आकर बसे। वहाँ पर आपके परिवार की सोरा कोठी नाम से बहुत बड़ी जगह थी जिसमें स्थानक भी बनवाया हुआ है फिर बम्बई आकर फिल्म व्यवसाय किया, परन्तु विकृतियों के कारण वह कार्य छोड़कर विज्ञापन कम्पनी की स्थापना की। जो आज 'आरेज' के नाम से प्रसिद्ध है। श्री राजेन्द्रकुमार जी का ६२ वर्ष की उम्र में ही २० जून १९९२ को स्वर्गवास हो गया।

आपकी माताजी धर्मानुरागिनी सुश्राविका उदार भावनाशील श्रीमती मायादेवी जैन ने अपने होनहार सुपुत्र की स्मृति में ट्रस्ट को योगदान दिया।

श्री गौतमचन्द जी मुणोत, सूरसागर, (जोधपुर)

आप बहुत ही भावनाशील हैं। श्री लालचंद जी सा. मुणोत के सुपुत्र हैं। श्री भंवरलाल जी सा. प्रताप नगर वालों के छोटे भ्राता हैं। सूरसागर संघ के अध्यक्ष हैं। उपाध्याय श्री जी का लेखन कार्य हेतु १६ माह वहाँ विराजना हुआ उस समय आपने सेवा का बहुत लाभ लिया। अनुयोग समापन समारोह, जिसमें सभी सम्प्रदायों के साधु साध्वी पधारे व ७-८ हजार जनता की उपस्थिति थी उनकी गौतम प्रसादी (स्वधर्मि वात्सल्य) का लाभ आपके परिवार ने लिया। पूरे परिवार की पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा भक्ति है। आगम अनुयोग ट्रस्ट में सहयोग प्रदान किया है।



स्व. श्री हरीश सी. जैन, बम्बई

आपका जन्म पंजाब में हुआ तथा बम्बई आकर आपने विज्ञापन व्यवसाय प्रारम्भ किया। कठिन परिश्रम तथा गहरी सूझ-बूझ, मृदु व्यवहार के कारण आप प्रगति के शिखर पर चढ़ते गये। आज शिखर पर चढ़ते गये। आज आपका संस्थान जैसन्स (इण्डिया लि.) सम्पूर्ण विश्व के विज्ञापन व्यवसाय में प्रमुख स्थान रखता है। आप सामाजिक सेवा कार्यों में विशेष रुचि रखते थे। साधु-संतों के प्रति आपकी गहरी श्रद्धा-भावना थी। पंजाब जैन भ्रातृ सभा, खार के आप अध्यक्ष रहे तथा अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध थे।

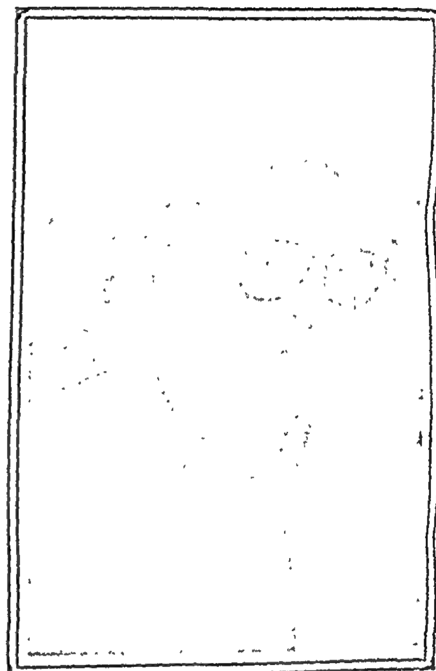
आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी बने।

स्व. शा. कस्तूरचन्दजी प्रतापजी साकरिया, सांडेराव

आप सांडेराव (बांकलीवास) निवासी प्रतापजी कपूर जी के सुपुत्र थे। स्व. तपस्वी स्वामी श्री वक्तावरमल जी म. के अनन्य भक्तों में से एक थे। आपके सुपुत्र शांतिलाल जी, कांतिलाल जी, मदनलाल जी, विमलचन्द जी, सुरेश कुमार जी, जगदीश जी भी धर्म में दृढ़ श्रद्धाभाव रखते हैं। सन् ८९ में गुरुदेव के चातुर्मास में आपके घर से ही पाँच मास खमण हुए। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के सक्रिय सहयोगी रहे हैं।







श्री जब्बरसिंहजी बरड़िया, रूपनगढ़

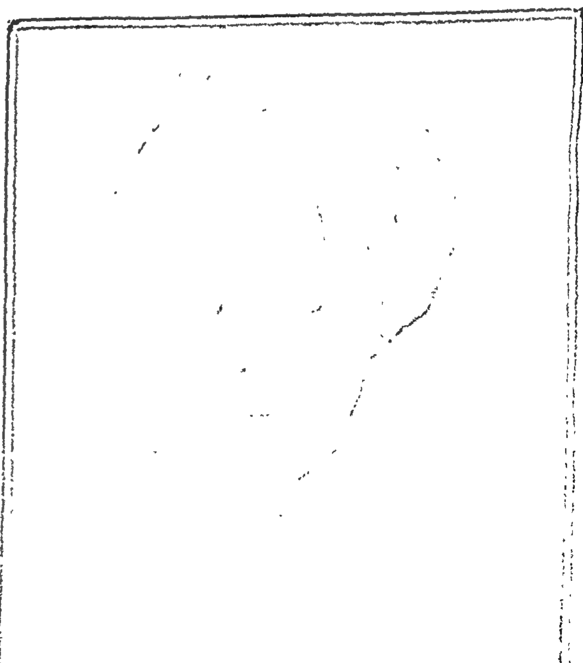


[illegible] रूपनगढ़ के स्वर्गीय श्रावक श्री रामसिंह जी साहब के सुपुत्र हैं। संघ के अच्छे कार्यकर्ता हैं। [illegible] पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा है। आपका सभी परिवार धर्म एवं समाज सेवा में भाग [illegible] रहता है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।



श्री लालचन्द जी श्रीश्रीमाल, ब्यावर (राज.)

आप आचार्य जयमल श्रावक संघ के प्रमुख कार्यकर्ता हैं। बहुत ही उदार हृदयी धर्म श्रद्धालु श्रावक हैं। आपकी आचार्यकल्प श्री शुभचन्द्र जी म. सा. के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति है। ब्यावर में [illegible]





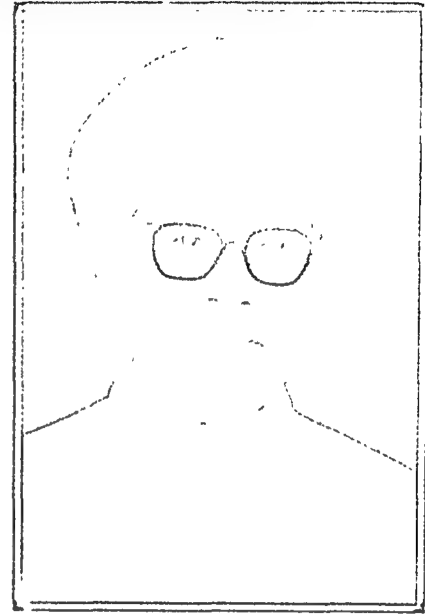
श्री लालुसिंह जी गांग (एडवोकेट), शाहपुरा

आप बहुत ही उदार विचारों के हैं। शाहपुरा संघ के कर्मठ समाजसेवी श्रावक हैं।

पूज्य गुरुदेव श्री प्रतापमल जी म. की स्मृति में वर्धमान महावीर केन्द्र, आबू पर्वत पर स्थापित होम्योपैथिक औषधालय, वेणी-मोहन चिकित्सालय की स्थापना में भी आपका प्रमुख योगदान रहा है।

आपकी पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति है। आपके सुपुत्र ज्ञानचन्द जी आदि भी धार्मिक भावना वाले हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी सदस्य हैं।





स्व. श्री हरखचन्द जी सा. मेड़तवाल, केकड़ी (राज.)

आप केकड़ी के उदार हृदयी, धर्म श्रद्धालु श्रावक थे। बहुत ही सरल हृदयी थे। आपके सुपुत्र श्री रिखबचन्द जी आदि सभी पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति रखते हैं। ब्यावर में श्री कल्याणमल हरखचन्द के नाम से प्रसिद्ध फर्म है। आप ट्रस्ट के सक्रिय सदस्य हैं।



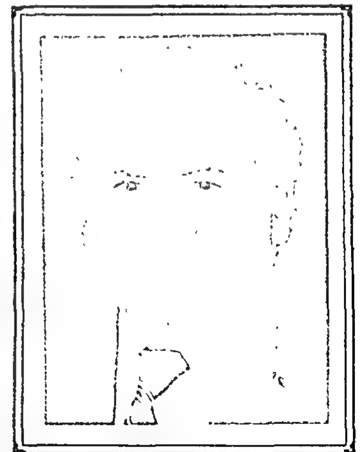
स्व. श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन, बम्बई

आप मूलतः हरियाणा के निवासी थे। फिर दिल्ली आकर बसे। वहाँ पर आपके परिवार की सोरा कोठी नाम से बहुत बड़ी जगह थी जिसमें स्थानक भी बनवाया हुआ है फिर बम्बई आकर फिल्म व्यवसाय किया, परन्तु विकृतियों के कारण वह कार्य छोड़कर विज्ञापन कम्पनी की स्थापना की। जो आज 'आरेज' के नाम से प्रसिद्ध है। श्री राजेन्द्रकुमार जी का ६२ वर्ष की उम्र में ही २० जून १९९२ को स्वर्गवास हो गया।

आपकी माताजी धर्मानुरागिनी सुश्राविका उदार भावनाशील श्रीमती मायादेवी जैन ने अपने होनहार सुपुत्र की स्मृति में ट्रस्ट को योगदान दिया।

श्री गौतमचन्द जी मुणोत, सूरसागर, (जोधपुर)

आप बहुत ही भावनाशील हैं। श्री लालचंद जी सा. मुणोत के सुपुत्र हैं। श्री भंवरलाल जी सा. प्रताप नगर वालों के छोटे भ्राता हैं। सूरसागर संघ के अध्यक्ष हैं। उपाध्याय श्री जी का लेखन कार्य हेतु १६ माह वहाँ विराजना हुआ उस समय आपने सेवा का बहुत लाभ लिया। अनुयोग समापन समारोह, जिसमें सभी सम्प्रदायों के साधु साध्वी पधारे व ७-८ हजार जनता की उपस्थिति थी उनकी गौतम प्रसादी (स्वधर्मि वात्सल्य) का लाभ आपके परिवार ने लिया। पूरे परिवार की पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा भक्ति है। आगम अनुयोग ट्रस्ट में सहयोग प्रदान किया है।

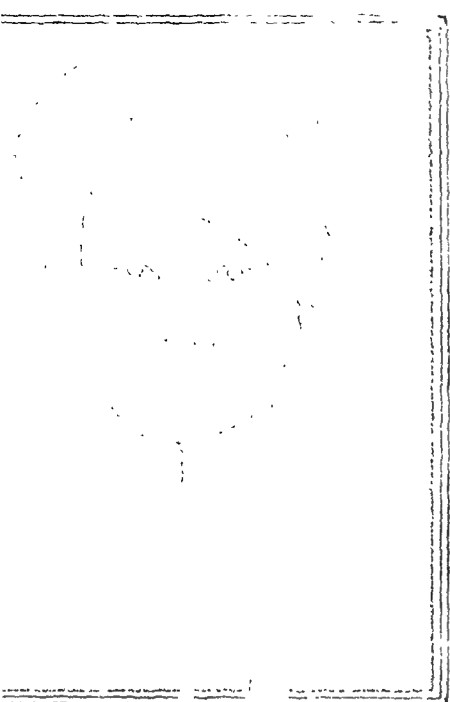


स्व. श्री हरीश सी. जैन, बम्बई

आपका जन्म पंजाब में हुआ तथा बम्बई आकर आपने विज्ञापन व्यवसाय प्रारम्भ किया। कठिन परिश्रम तथा गहरी सूझ-बूझ, मृदु व्यवहार के कारण आप प्रगति के शिखर पर चढ़ते गये। आज शिखर पर चढ़ते गये। आज आपका संस्थान जैसन्स (इण्डिया लि.) सम्पूर्ण विश्व के विज्ञापन व्यवसाय में प्रमुख स्थान रखता है। आप सामाजिक सेवा कार्यों में विशेष रुचि रखते थे। साधु-संतों के प्रति आपकी गहरी श्रद्धा-भावना थी। पंजाब जैन भ्रातृ सभा, खार के आप अध्यक्ष रहे तथा अनेक संस्थाओं से सम्बद्ध थे।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी बने।



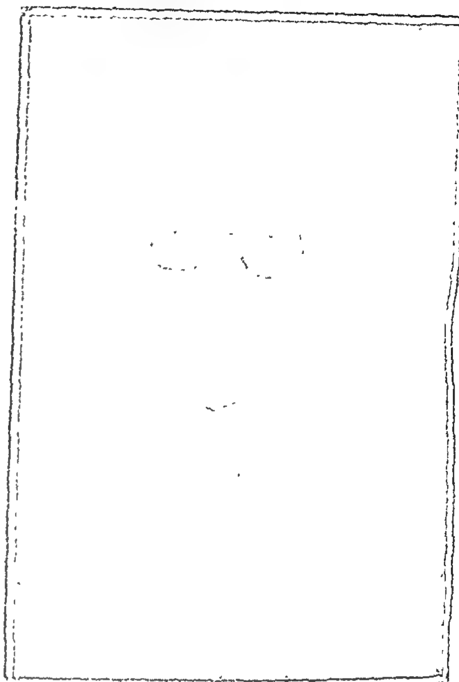




स्व. श्री लूमचन्द जी सांड, जोधपुर

आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान "लूमचन्द तिलोकचन्द", कटला बाजार, जोधपुर का केश तेल, सुगन्ध, इत्र, सेंट इत्यादि का होलसेल व्यापार में अग्रणी स्थान है। आप बहुत ही धार्मिक प्रवृत्ति के सरल स्वभावी उदार हृदय श्रावक थे। आप स्व. पूज्य स्वामी जी श्री हजारीमल जी म. सा. एवं युवाचार्य पूज्य श्री मिश्रीमल जी म. सा. 'मधुकर' के अनन्य भक्त थे। आपके तीन सुपुत्र सर्वश्री गौतमचन्द जी, धनेचन्द जी धनराज जी सांड अपने पैतृक व्यवसाय में संलग्न हैं। आप आगम अनुयोग ट्रस्ट के सहयोगी हैं।

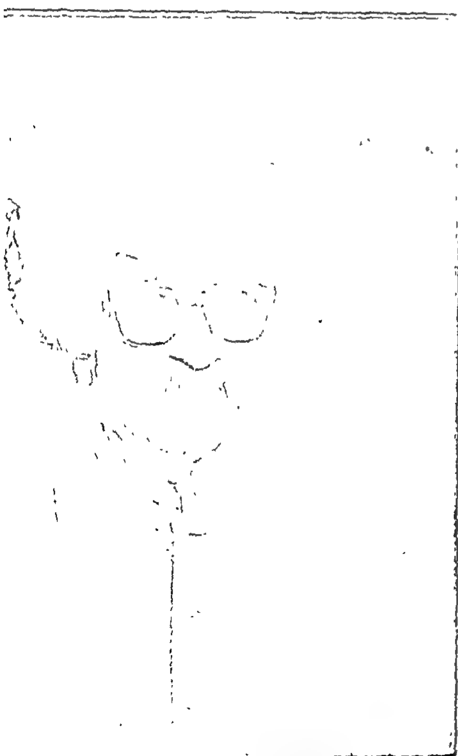




स्व. श्री मुन्नीलाल जी गुलेछा, जोधपुर



आप बहुत ही धर्म श्रद्धालु उदार हृदयी त्यागी पुरुष थे। छोटी उम्र से ही रात्रि-भोजन आदि अनेक प्रकार के प्रत्याख्यान कर लिये। आपकी ज्ञान में विशेष रुचि थी। आप अनेक वर्षों तक श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, जोधपुर के अध्यक्ष रहे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती ...लकंवर व चारों सुपुत्र व दो सुपुत्रियाँ भी बहुत धर्म श्रद्धालु हैं।



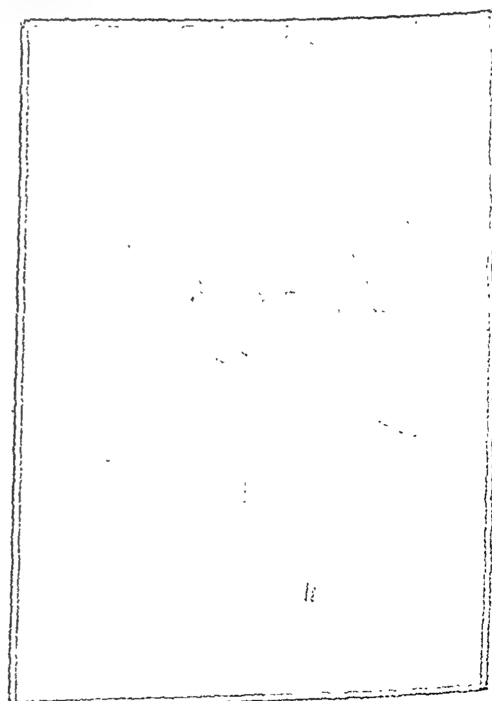


स्व. श्री पृथ्वीराज जी बम्ब, पीह

आप बहुत ही धार्मिक श्रद्धा वाले सुश्रावक थे। पूज्य गुरुदेव ने और आपने बचपन में साथ-साथ अध्ययन किया।

आपके सुपुत्र श्री तेजराज जी व शान्तिलाल जी एवं सुपुत्रियाँ व दामाद श्री पूनमचंद जी डुगड़ (कररकेड़ी), श्री सुरेशकुमार जी लुणावत, तिलोरा वाले भी पूज्य गुरुदेव के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति रखते हैं व धर्म-श्रद्धालु हैं। श्री शान्तिलाल जी ने पूज्य पिताजी की स्मृति में आगम अनुयोग ट्रस्ट को विशेष योगदान दिया है।





स्व. श्री दौलतराज जी पारख, जोधपुर



...। बहुत उदार दानवीर सुश्रावक थे। स्व. युवाचार्य श्री मधुकर जी महाराज के अनन्य ...त थे। आपका अगरचंद फतेहचन्द नाम से जोधपुर में कपड़े का व्यवसाय है। आप ...पारिक क्षेत्र में भी अग्रणीय थे व सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में भी आपका विषेष ...गदान रहा है। वर्तमान में आपके भाई छोटमल जी एवं सुपुत्र मोहनलाल जी आदि भी ...ाज के अग्रणी कार्यकर्त्ता हैं। आपकी स्मृति में महावीर भवन में बहुत बड़े हॉल के ...र्माण में श्री... ...दान दिया गया।



श्रीमती पारसदेवी मोहनलाल जी पारख, हैदराबाद

श्री मोहनलाल जी सा. मूलतः भागिया (मारवाड़) निवासी हैं। आप बहुत ही उदार हृदय के धर्मप्रेमी सज्जन हैं। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सदा सहयोग प्रदान करते रहते हैं। हैदराबाद में आपका फाइनेन्स का व्यवसाय है। साधु-सन्तों के प्रति विशेष भक्ति भाव है। श्रीमती पारसदेवी जी बहुत सरलमना, सेवाभावी और धार्मिक कार्यों में तन-मन-धन से सहयोग करती रहती हैं।

आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।



श्रीमती गेहरीलाल जी कोठारी, बम्बई

श्रीमान गेहरीलाल जी सा. कोठारी मेवाड़ संघ शिरोमणि स्व. प्रवर्तक श्री अम्बालाल जी म. के प्रति विशेष भक्ति-भाव रखने वाले धर्मप्रेमी उदार हृदय सज्जन हैं। आप समाज के सभी कार्यों में तन-मन-धन से आगे रहकर सेवा करते थे। बड़े ही हँसमुख, सरल स्वभावी और दानी सज्जन थे। आप मूलतः सेमा (मेवाड़) निवासी हैं। वर्तमान में 'कोठारी ज्वैलर्स' नाम से सायन (बम्बई) में आपका व्यवसाय है। आप ट्रस्ट के सक्रिय सदस्य हैं।

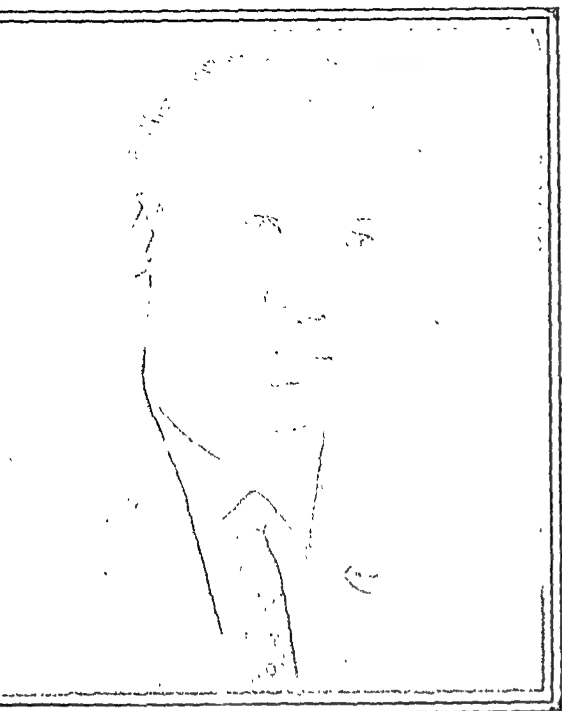
स्व. श्रीमती हंजाबाई प्रेमचन्द जी साकरिया, बम्बई

आपका जीवन बहुत ही धर्ममय/त्यागमय था। आपके सुपुत्र श्री साकलचन्द जी, डॉ. घीसुलाल जी आदि सभी परिवार की पूज्य गुरुदेव के प्रति गहरी श्रद्धा एवं भक्ति है। साकरिया ब्रादर्स नाम से सायन (बम्बई) में आपके परिवार का मेडिकल व्यवसाय है। आगम अनुयोग ट्रस्ट को आपका सक्रिय सहयोग मिला है।



स्व. श्रीमती शिमलारानी जैन, दिल्ली

कपूरथला निवासी श्री जितेन्द्रनाथ जैन की धर्मपत्नी श्रीमती शिमलारानी बहुत ही धार्मिक भावना वाली श्रद्धालु श्राविका थीं। श्री जितेन्द्रनाथ जी अच्छे श्रद्धालु श्रावक हैं। आपके श्री महेन्द्र जैन, रवीन्द्र जैन आदि तीन सुपुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। परिवार का दिल्ली एवं बम्बई में मेटल व्यवसाय है। पूज्य महासती श्री मुक्तिप्रभा जी म. की प्रेरणा से आप ने ट्रस्ट की सदस्यता ग्रहण कर आगम प्रकाशन में सहयोगी बने हैं।



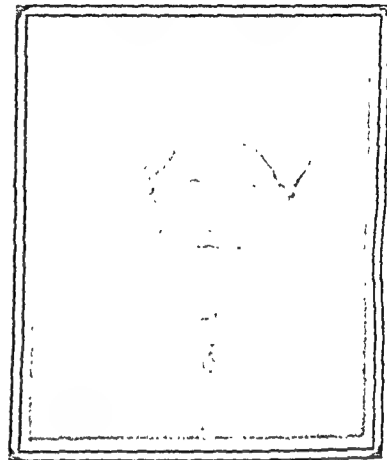


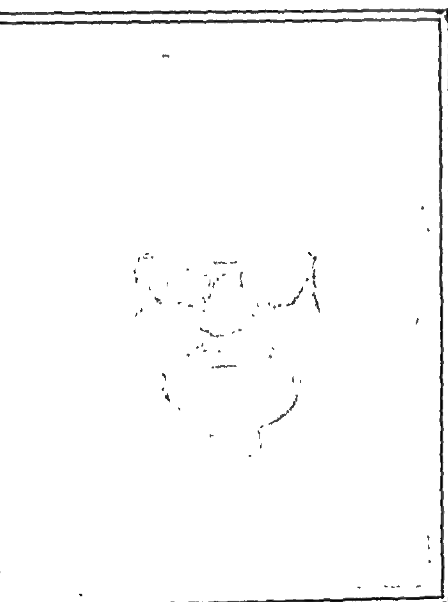
श्रीमान लक्ष्मीचन्दजी तालेड़ा, जयपुर

आप ब्यावर के प्रसिद्ध श्रावक श्री स्वरूपचन्द जी तालेड़ा के सुपुत्र हैं। आप अनेक धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं में सक्रिय सहयोग करते रहते हैं। साधु संतों की सेवा भी तन-मन-धन से करते रहते हैं।

स्वर्गीय जैन दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज के प्रति आपके परिवार की अनन्य आस्था रही है। वर्तमान में आपका जयपुर में "ओसवाल केबल्स (प्रा. लि.), जयपुर" के नाम से औद्योगिक प्रतिष्ठान है।









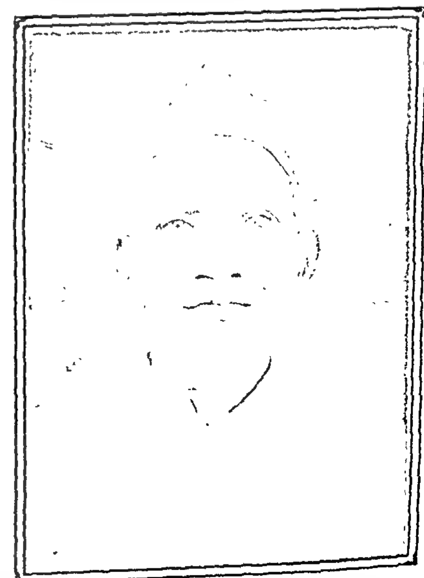
स्व. श्री प्रेमचन्द जी पोमा जी, साकरिया (सांडेराव)

आप सांडेराव के प्रमुख श्रावक श्री पोमा जी दलीचन्द जी के सुपुत्र थे। श्री पोमा जी तपस्वी गुरुदेव श्री वख्तावरमल जी म. के अनन्य भक्त थे। आपका भी जीवन बहुत धर्ममय सादगीपूर्ण था। आप सरल हृदय के श्रद्धाशील श्रावक थे। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी थे।

स्व. श्री मांगीलाल जी सा. चौरड़िया, मदनगंज

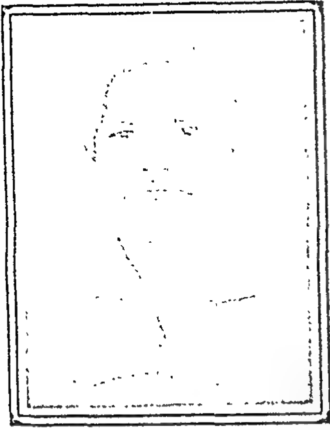
आपकी धर्म के प्रति विशेष श्रद्धा थी। आप ९० वर्ष की उम्र में भी सभी कार्य अपने हाथ से करते थे। आपके सुपुत्र श्री नेमीचन्दजी व गुमानमलजी भी बहुत ही उत्साही, समाजसेवी कार्यकर्त्ता हैं। श्री नेमीचन्द जी महावीर कल्याण केन्द्र, मदनगंज के ट्रस्टी हैं आपने उनकी स्मृति में ३१,०००/- रु. का योगदान दिया है। व आपकी धर्मपत्नी ने मास खमण तप भी किया है। आपकी पूज्य गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति है। श्री चम्पालाल जी, उत्तमचन्द जी आदि पूरे परिवार का ही ट्रस्ट में योगदान रहा है।





एक बहुआयामी प्रतिभा
स्व. श्री ताराचन्दजी सा. कक्कड़, सरवाड़, जिला अजमेर (राज.)

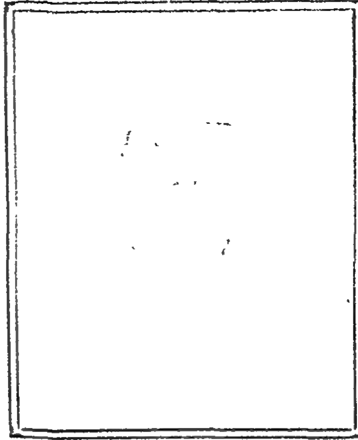
प्रियधर्मी सरलमना स्व. श्री शार्दूलसिंह जी सा. कक्कड़ के सुपुत्र स्व. श्री "कक्कड़ सा." दृढ़धर्मी श्रद्धालु सुश्रावक थे। अपनी कुशाग्र बुद्धि, स्वाभिमानता एवं दूरदर्शिता में अनेक वर्षों तक श्रावक संघ के मंत्री के रूप में सामाजिक धार्मिक सेवा के साथ नगरपालिका का वाइस चेयरमेन का पद सुशोभित कर राजनैतिक क्षेत्र में कदम रखकर नगर की सेवा की। साधु-संतों के प्रति भी आपकी अगाध श्रद्धा भक्ति थी। जीवदया के कार्यों यथा अमरबकराशाला कबूतर भवन आदि में आपकी विशेष रुचि थी। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रप्रभा बहन एवं सुपुत्र भंवरलाल जी ज्ञानचंदजी उत्तमचंदजी सुरेन्द्रकुमारजी नरेन्द्रकुमारजी वीरेन्द्रकुमारजी आदि पूरा परिवार उपाध्याय प्रवर के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति रखता है एवं समाजसेवा तथा धार्मिक प्रवृत्ति में अग्रणी है। स्व. श्री कक्कड़ सा. गुरुदेव श्री के तरुण अवस्था के साथी थे। आप ट्रस्ट के सक्रिय सहयोगी बने।





श्री बाबूलाल जी कटारिया, सारण (मारवाड़)

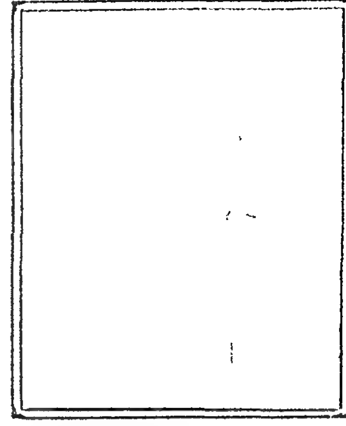
आप श्री केवलचन्द जी कटारिया के सुपुत्र हैं। हैदराबाद में आपका इलैक्ट्रिक सामान का व्यवसाय है। आपके दो सुपुत्र तथा एक सुपुत्री है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सक्रिय सहयोगी हैं।





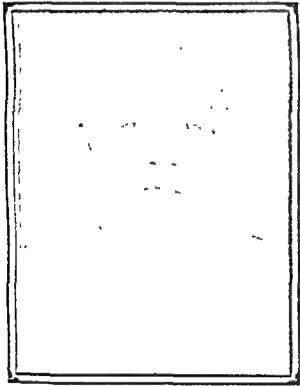
श्री धनराज जी डांगी, फतेहगढ़-सरवाड़ (अजमेर)

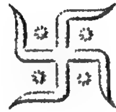
आप स्थानीय संघ के प्रमुख कार्यकर्त्ता हैं। धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा-भावना रखते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति आपकी अनन्य आस्था है। मद्रास, अहमदाबाद, ब्यावर, दिल्ली आदि में आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी हैं।



श्री सज्जनराज जी जैन, सिकन्दराबाद

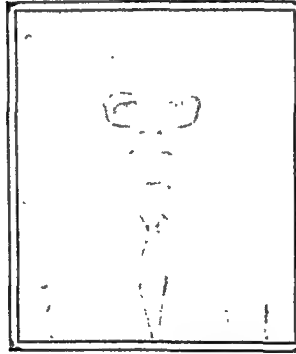
आप मूल बगड़ी (राज.) निवासी हैं। श्री मिश्रीलाल जी कटारिया के सुपुत्र हैं वर्तमान में सिकन्दराबाद में बहुत अच्छा व्यवसाय है। सिकन्दराबाद संघ के उदारमना, सेवाभावी, कार्यकर्त्ता तथा अनेक संस्थाओं के अधिकारी पद पर कार्यरत हैं। स्व. पूज्य गुरुदेव श्री मरुधर केसरी जी म. के परम श्रद्धालु भक्त हैं। आपकी धर्मपत्नी शारदा देवी व सुपुत्र महेन्द्र कुमार, सुरेन्द्र कुमार राजेन्द्र कुमार भी धर्म भावना वाले हैं।

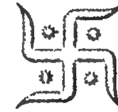




श्री विजयराज जी गादिया, रिड़

आप मूलतः कुड़की निवासी हैं। धर्मप्रेमी सुश्रावक श्री गोपीचंद जी सा. एवं श्रीमती एंजनकंवर बाई के दत्तक पुत्र हैं। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती जतनकंवर जी भी बहुत भावनाशील हैं। श्री गादिया सा. पूज्य गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं। बहुत ही उदार भावना वाले हैं। वर्तमान में कुड़की ही रहते हैं व किशनगढ़ में आपका मार्बल का व्यवसाय है। आपके सुपुत्र पदमचंद जी आदि की भी धर्म में रुचि है। आप ट्रस्ट के सम्माननीय सदस्य हैं।



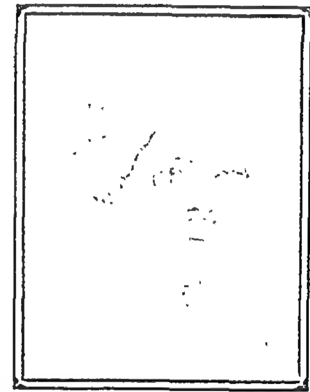


श्री मदनलाल जी जैन, भटिंडा (पंजाब)

आप सुप्रसिद्ध श्रद्धालु सेठ श्री रामलाल जी जैन (अम्बाला सिटी) के सुपुत्र हैं। उत्तर भारत के कोटन एवं टेक्सटाइल्स व्यवसाय में आपका प्रमुख स्थान है। लुधियाना, भटिंडा, अम्बाला, डब्बावाली आदि क्षेत्रों में आपके व्यापारिक प्रतिष्ठान हैं।

देव-गुरु-धर्म के प्रति आपकी गहरी आस्था है। भटिंडा स्थानकवासी संघ के आप अध्यक्ष हैं तथा अनेक सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध हैं।

श्री सुमन मुनि जी म. की प्रेरणा से आप ट्रस्ट के सहयोगी सदस्य बने।



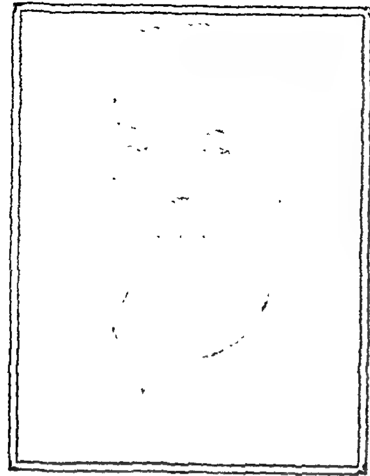


श्री शिवराज जी बम्ब, पीह (मारवाड़)

आप बहुत धर्म श्रद्धालु, उदार हृदयी श्रावक हैं। प्रतिदिन सामायिक आदि धार्मिक क्रियाएँ करते हैं। आपकी धर्मपत्नी जी भी स्वाध्याय आदि में विशेष रुचि रखती हैं। आपके सुपुत्र उत्तमचन्द जी आदि सभी धर्मप्रेमी हैं। आपके भाई भींवराज जी आदि का हैदराबाद में व्यवसाय है तथा वहाँ पर स्थानक भी बनवाया है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के आप सहयोगी हैं।

आगम अनुयोग के सम्पादन/संकलन एवं मुद्रण में समर्पित सहयोगी

सम्पादक मण्डल

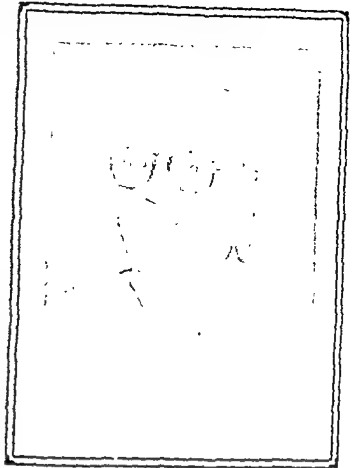


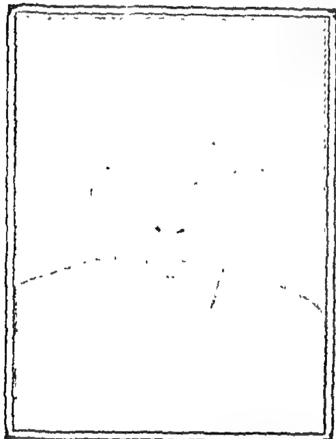


अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान
मूर्धन्य मनीषी श्री दलसुख भाई मालवणिया
(अहमदाबाद)

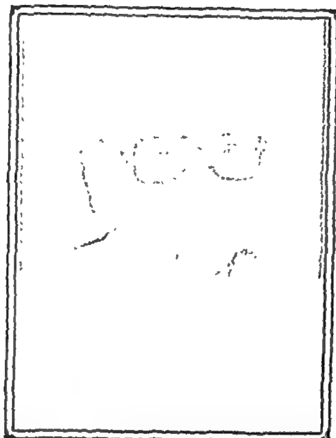


विश्रुत विद्वान साहित्य मनीषी
डॉ. सागरमल जी जैन
(वाराणसी)

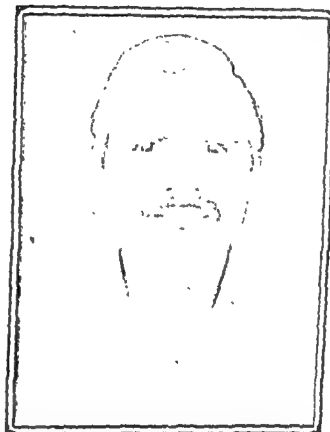




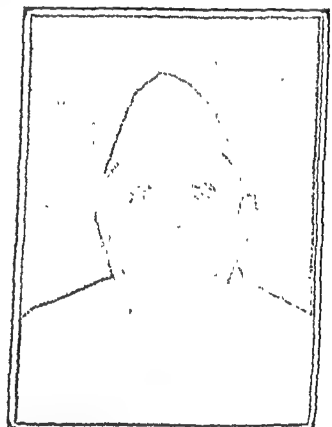
जैन दर्शन के गहन अभ्यासी
विद्वान श्री देवकुमार जी जैन



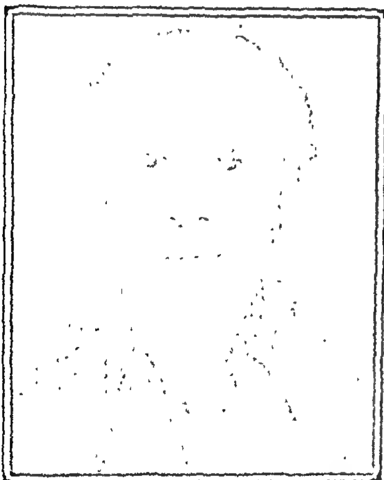
सुप्रसिद्ध सम्पादक मुद्रण कला विशेषज्ञ
श्रीचन्द सुराना 'सरस'



गहन अध्येता अनुसंधाता विद्वान
डॉ. धर्मचन्द्र जी जैन (जोधपुर)



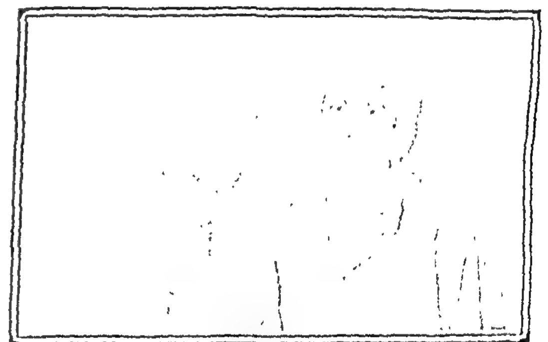
समाजसेवी, धर्मशील कर्मनिष्ठ-
जीवन के प्रतीक श्री जयन्ती भाई
चन्दुलाल जी संघवी (पीपलीवाला)
मंत्री-अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद



अनुयोग ट्रस्ट के सहमंत्री
समर्पित सेवाभावी
डॉ. सोहनलाल जी संचेती (जोधपुर)



आगम अनुयोग कार्य के टाइपिंग आदि कार्य में
सेवाभावी सहयोगी श्री सुनीलकुमार,
श्री राजेन्द्रकुमार मेहता (शाहपुरा)



उपाध्यायश्री की सेवा में समर्पित श्री शिवजी रामजी शर्मा
एवं उनके सुपुत्र टाइप आदि व्यवस्था संभालने वाले
श्री मांगीलाल जी शर्मा (कुरडायाँ)

※ आभार दर्शन ※

श्री स्थानकवासी जैन संघ, नारायणपुरा, अहमदाबाद

[illegible] श्री स्थानकवासी जैन संघ, अहमदाबाद में बहुत ही सेवाभावी [illegible] की सेवा बहुत ही सद्भावना के साथ की जाती है। आनन्द- [illegible] चलता है। आगम अनुयोग ट्रस्ट के कार्यालय की [illegible] आदि में बहुत बड़ा योगदान प्राप्त हुआ [illegible] रहेगा। ऐसी अभिलाषा है।

श्री मोहनलाल जी सांड, जोधपुर

आप बहुत ही उदार भावना वाले सेवाभावी कार्यकर्ता हैं। स्पष्टवादी हैं। प्रभावशाली हैं। आपने इस अनुयोग के विशाल कार्य को पूर्ण करने में बहुत बड़ा योगदान दिया है तथा दूसरों से भी दिलवाया है। अनुयोग प्रकाशन समारोह आपके ही प्रयत्नों से सफल हुआ है। आपने फोटो प्रकाशन भी किया है। पूज्य गुरुदेव [illegible] के परम भक्त रहे हैं।

प्रस्तावना

–डॉ. धर्मचन्द जैन

चार अनुयोग

उपाध्यायप्रवर पं. रत्न मुनि श्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' ने ईसवीय बीसवीं शती के अन्तिम चरण में आगम अनुयोग के सम्पादन एवं प्रकाशन की दिशा में स्थायी महत्त्व का ऐतिहासिक कार्य किया है। उनका यह कार्य अनुयोग-विभाजन के प्रथम प्रवर्तक आचार्य आर्यरक्षित की भी स्मृति दिलाता है।

आर्यरक्षित के पूर्ववर्ती आचार्य आर्यवज्र के समय तक अनुयोगों का पृथक्करण नहीं हुआ था। उस समय एक सूत्र की व्याख्या रूप एक अनुयोग प्रयुक्त किए जाने पर भी प्रत्येक सूत्र में चरणानुयोग आदि चारों अनुयोगों का अर्थ कहा जाता था। यह तथ्य स्वयं भद्रबाहु ने आवश्यकसूत्र की निर्युक्ति में स्पष्ट किया है।[1] जिनभद्रगणि ने विशेषावश्यकभाष्य में तथा मलधारी हेमचन्द्र ने उसकी वृत्ति में इस तथ्य को पुष्ट किया है।[2] आर्यरक्षित ने आचार्य आर्यवज्र से ही सूत्र के अर्थ का अध्ययन करके अनुयोगों का पृथक्करण किया था। आर्यरक्षित के शिष्य थे–दुर्बलिकापुष्यमित्र। आर्यरक्षित ने जब दुर्बलिकापुष्यमित्र को श्रुत एवं अर्थ का ज्ञान कराते समय कठिनाई का अनुभव किया तथा भावी पुरुषों को मति, मेधा एवं धारणा की दृष्टि से हीन समझा तो उन्होंने अनुयोगों एवं नयों का पृथक्करण कर दिया।

आचार्य आर्यरक्षित ने जिन चार अनुयोगों में श्रुत का विभाजन किया उन चार अनुयोगों का कथन आचार्य भद्रबाहु ने इस प्रकार किया है–

"कालियसुयं च इसिभासियाइं तइओ य सूरपन्नत्ती।
सव्वो य दिट्ठिवाओ चउत्थओ होइ अणुओगो॥"[3]

अर्थात् अनुयोग चार प्रकार का है–(१) कालिकश्रुत, (२) ऋषिभाषित, (३) सूर्यप्रज्ञप्ति और (४) समस्त दृष्टिवाद। आचारांग आदि ग्यारह अंगसूत्रों का अध्ययन काल-ग्रहण आदि विधि से किया जाता है इसलिए इन्हें कालिक कहा जाता है। कालिकसूत्रों को चरणकरणानुयोग भी कहा गया, क्योंकि इनमें धर्मकथा आदि अन्य अनुयोगों के होते हुए भी प्राधान्य चरणकरणानुयोग का है। ऋषिभाषित एवं उत्तराध्ययनसूत्र में नमि-कपिल आदि महर्षियों के धर्माख्यानकों का कथन होने से ये धर्मकथानुयोग कहे गए। सूर्यप्रज्ञप्ति में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि की विचरण-गति का प्रतिपादन मुख्य है इसलिए यह गणितानुयोग है। दृष्टिवाद नामक बारहवें अंगसूत्र में चालना = प्रत्यवस्थान आदि के द्वारा जीव आदि द्रव्यों का ही प्रतिपादन किया जाता है, इसलिए वह द्रव्यानुयोग है। आचार्य भद्रबाहु ने महाकल्पसूत्र एवं शेष छेदसूत्रों का समावेश चरणकरणानुयोग में किया है, क्योंकि ये भी कालिकसूत्र हैं।[4] इस प्रकार भद्रबाहु ने आर्यरक्षित के अनुसार चार अनुयोगों का निम्नांकित विभाजन प्रस्तुत किया है–

(१) चरणकरणानुयोग–कालिकश्रुत (ग्यारह अंगसूत्र, महाकल्पसूत्र एवं शेष छेदसूत्र)
(२) धर्मकथानुयोग[5]–ऋषिभाषित (उत्तराध्ययनसूत्र भी)
(३) गणितानुयोग–सूर्यप्रज्ञप्ति
(४) द्रव्यानुयोग–दृष्टिवाद

चार अनुयोगों के इन नामों का विशेषावश्यकभाष्य के रचयिता जिनभद्रगणि ने स्पष्ट रूप से निम्नांकित गाथा में उल्लेख किया है–

"भण्णंतऽणुओगा चरण-धम्म-संखाण-दव्वाणं।"[6]

अर्थात् चरणानुयोग, धर्मकथानुयोग, संख्यानानुयोग (गणितानुयोग) और द्रव्यानुयोग ये चार अनुयोग कहे गए हैं। श्वेताम्बर जैन परम्परा

---

१. जावं ति अज्जवइरा अपुहत्तं कालियाणुओगस्स। तेणारेण पुहत्तं कालियसुय दिट्ठिवाए य॥
अपुहत्तेऽणुओगो चत्तारि दुवारभासई एगो। पुहत्ताणुओगकरणे ते अत्थ तओ उ वुच्छिन्ना॥
–आवश्यकनिर्युक्ति ७६३ एवं ७७३ (हर्षपुष्पामृत ग्रन्थमाला)

२. द्रष्टव्य, विशेषावश्यकभाष्य, भाग २, दिव्यदर्शन ट्रस्ट, बम्बई, गाथा २२८५ एवं २२८७ एवं इनकी वृत्ति

३. विशेषावश्यकभाष्य, भाग २ में गाथा २२९४ के रूप में प्राप्त

४. जं च महाकप्प सुयं जाणि अ सेसाणि छेअसुत्ताणि। चरणकरणाणुओगो त्ति कालियत्थे उवगयाणि॥
–विशेषावश्यकभाष्य, भाग २ में गाथा २२९५ के रूप में प्राप्त

५. धर्मकथानुयोग आदि नामों का उल्लेख मलधारी हेमचन्द्र ने विशेषावश्यकभाष्य पर अपनी वृत्ति में किया है। द्रष्टव्य, विशेषावश्यकभाष्य, भाग २, गाथा २२९४-२२९५ की वृत्ति

६. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा २२८१

में अनुयोगों का यही क्रम मान्य है। दिगम्बर परम्परा में अनुयोगों के नाम भिन्न हैं तथा उनके नाम द्रव्यसंग्रह टीका एवं पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति के अनुसार इस प्रकार हैं-(१) प्रथमानुयोग, (२) चरणानुयोग, (३) करणानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग। प्रथमानुयोग में तिरेसठ शलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन होता है। अर्थात् यह एक प्रकार से श्वेताम्बर परम्परा में मान्य धर्मकथानुयोग की श्रेणी में आता है। चरणानुयोग में उपासकाध्ययन आदि के श्रावकधर्म, तथा आचाराराधन आदि के यतिधर्म को मुख्य रूप से सम्मिलित किया गया है। करणानुयोग में त्रिलोकसार आदि के गणितीय विषय का समावेश होता है। श्वेताम्बर परम्परा में इसे गणितानुयोग कहा गया है। द्रव्यानुयोग में जीवादि षड्द्रव्यों के वर्णन की प्रधानता होती है तथा जीवादि के शुद्धाशुद्ध रूप का विचार किया जाता है। इस प्रकार विषय-वस्तु एवं नामों की दृष्टि से दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। क्रम में अन्तर अवश्य है। दिगम्बर परम्परा में प्रथमानुयोग किंवा धर्मकथानुयोग को चरणानुयोग के पूर्व रखा गया है तथा श्वेताम्बर परम्परा में धर्मकथानुयोग के पूर्व चरणकरणानुयोग को स्थान दिया गया है।

अनुयोगों के उपर्युक्त विभाजन में एक विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि भद्रबाहु (चौथी शती ई. पू.) ने जहाँ अंगसूत्रादि आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त करने का निर्देश किया है वहाँ वृहद्द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव (१६वीं शती) ने सूत्रों की विषय-वस्तु को अनुयोग-विभाजन में अलग से भी महत्त्व दिया है। जैसे श्रावकधर्म एवं यतिधर्म का वर्णन करने वाले सूत्रों को उन्होंने चरणानुयोग में सम्मिलित किया है, वैसे ही भद्रबाहु ने कालिकसूत्रों को चरणकरणानुयोग में रखा है। प्रथमानुयोग अथवा धर्मकथानुयोग में दिगम्बर परम्परा में तिरेसठ शलाका पुरुषों का वर्णन करने वाले पुराणों को स्थान दिया गया है वहाँ श्वेताम्बर परम्परा में ऋषिभाषित, उत्तराध्ययनसूत्र जैसे आगमों को धर्मकथानुयोग कहा है। श्वेताम्बर परम्परा में चरणानुयोग को चरणकरणानुयोग कहा है एवं गणितानुयोग की अलग से गणना की गयी है, जबकि दिगम्बर परम्परा में करणानुयोग के अन्तर्गत गणितानुयोग का समावेश होता है।

उपाध्यायप्रवर श्री कन्हैयालाल जी महाराज 'कमल' ने युग की माँग को ध्यान में रखते हुए लगभग ५० वर्षों के अथक परिश्रम से श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा को मान्य ३२ आगमों के आधार पर चार अनुयोगों को प्रस्तुत किया है। चार अनुयोगों में से चरणानुयोग, धर्मकथानुयोग एवं गणितानुयोग का प्रकाशन पहले ही हो चुका है। द्रव्यानुयोग का प्रकाशन इस तृतीय भाग के साथ पूर्णता को प्राप्त हो रहा है।

आचार्य आर्यरक्षित के द्वारा किए गए अनुयोग-विभाजन के कार्य को उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी महाराज ने आगे बढ़ाया है। आर्यरक्षित ने जहाँ अनुयोगों का स्थूल विभाजन करके विभिन्न आगमों को विषय-वस्तु के प्राधान्य से अलग-अलग अनुयोगों में वर्गीकृत किया था वहाँ उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी महाराज ने आगमों की आन्तरिक विषय-वस्तु को विभिन्न अनुयोगों में वर्गीकृत कर तत्सम्बद्ध अनुयोगों में व्यवस्थित कर दिया है। इस कार्य में उपाध्यायप्रवर को कठोर श्रम करना पड़ा है। कौन-सी विषय-वस्तु किस अनुयोग में जाएगी, यह निर्धारित करना भी कोई सरल कार्य नहीं है। धर्मकथानुयोग की विषय-वस्तु चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग से भी सम्बद्ध हो सकती है। फिर भी स्वविवेक के आधार पर उपाध्यायप्रवर ने आगमों की आन्तरिक विषय-वस्तु का जो चार अनुयोगों में विभाजन किया है वह जिज्ञासु पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। अनेक शोधार्थियों को इससे महती सुविधा का अनुभव होगा। इस विभाजन से पाठकों को एक तत्त्व या विषय पर सम्पूर्ण आगम में वर्णित तथ्यों को जानने में सुविधा होगी।

आर्यरक्षित एवं उपाध्यायप्रवर के अनुयोग-विभाजन में एक स्थूल भेद यह है कि आर्यरक्षित ने जहाँ श्वेताम्बरों को मान्य समस्त आगमों (विशेषतः अंगसूत्र, उपांगसूत्र, छेदसूत्र एवं मूलसूत्र) का चार अनुयोगों में विभाजन किया है वहाँ उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी महाराज ने श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन परम्परा को मान्य ३२ आगमों की विषय-वस्तु का ही चार अनुयोगों में विभाजन एवं व्यवस्थापन किया है। जिन ३२ आगमों को उपाध्यायश्री ने आधार बनाया है, वे इस प्रकार हैं-

ग्यारह अंग आगम-(१) आचारांग, (२) सूत्रकृतांग, (३) स्थानांग, (४) समवायांग, (५) भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति), (६) ज्ञाताधर्मकथा, (७) उपासकदशा, (८) अंतकृद्दशा, (९) अनुत्तरोपपातिक, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकसूत्र।

बारह उपांग आगम-(१) औपपातिक, (२) राजप्रश्नीय, (३) जीवाजीवाभिगम, (४) प्रज्ञापना, (५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (६) चन्द्रप्रज्ञप्ति, (७) सूर्यप्रज्ञप्ति, (८) निरयावलिया, (९) कल्पावतंसिका, (१०) पुष्पिका, (११) पुष्पचूलिका, (१२) वृष्णिदशा।

चार मूलसूत्र-(१) उत्तराध्ययन, (२) दशवैकालिक, (३) नन्दीसूत्र, (४) अनुयोगद्वारसूत्र।

चार छेदसूत्र-(१) दशाश्रुतस्कन्ध, (२) बृहत्कल्पसूत्र, (३) व्यवहारसूत्र, (४) निशीथसूत्र।

बत्तीसवाँ-आवश्यकसूत्र। (११ + १२ + ४ + ४ + १ = ३२)

बत्तीस आगमों के आधार पर किए गए इस अनुयोग-व्यवस्थापन की एक विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत प्रत्येक अनुयोग में विभिन्न अध्ययन बनाए गए हैं एवं फिर उन अध्ययनों के अन्तर्गत सम्बद्ध सामग्री को योजित किया गया है। अध्ययनों के अन्दर भी अनेक उपशीर्षक हैं जिनका प्राकृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में नामकरण किया गया है। उपाध्यायप्रवर ने हिन्दी पाठकों के लिए अनुयोगों के मूल पाठ के समक्ष ही उसका हिन्दी अर्थ दिया है, जो अत्यन्त सुविधाजनक है।

विशेषावश्यकभाष्य में एक प्रश्न उठाया गया कि आर्यरक्षितसूरि की परम्परा में गोष्ठामाहिल को वादविजयी होने पर हुए मिथ्यात्व के उदय के कारण सातवाँ निह्नव माना गया, तो अनुयोग एवं नय का निरूपण करने वाले आर्यरक्षित को निह्नव क्यों नहीं कहा गया? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए जिनभद्रगणि ने कहा कि आर्यरक्षित ने नय एवं अनुयोगों का निरूपण प्रवचन के हितार्थ ही किया था, उन्होंने यह कार्य मिथ्यात्वभावना से एवं मिथ्याभिनिवेश से नहीं किया था। यदि मिथ्याभिनिवेश से जिनोक्त पद की कोई अवहेलना करता है तो वह

वहुरत आदि सात निह्नवों के समान निह्नव कहलाता है। उपाध्यायप्रवर ने भी अनुयोग-व्यवस्थापन का कार्य प्रवचन-हितार्थ ही किया है, मिथ्यात्वभावना से एवं मिथ्याभिनिवेश से नहीं किया है, अतः वे निह्नव नहीं, अपितु जिनवाणी के उपकारक हैं।

'अनुयोग' शब्द के अन्य प्रयोग

'अनुयोग' शब्द का प्रयोग आगम में अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न अभिप्राय से हुआ है।

(१) समवायांग एवं नन्दीसूत्र में दृष्टिवाद अंग के पाँच प्रकारों में 'अनुयोग' शब्द का प्रयोग हुआ है। दृष्टिवाद के पाँच प्रकार हैं–(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग और (५) चूलिका। इनमें से अनुयोग को दो प्रकार का निरूपित किया गया है–(१) मूलप्रथमानुयोग और (२) गंडिकानुयोग। ये दोनों अनुयोग मात्र दृष्टिवाद के अंग हैं, अतः इनमें अन्य अंग, उपांग, छेद एवं मूलसूत्रों का समावेश नहीं होता। इन दोनों अनुयोगों में मात्र दृष्टिवाद का विषय ही समाविष्ट होता है। मूलप्रथमानुयोग में अरिहंतों एवं सिद्धिपथ को प्राप्त हुए महापुरुषों का वर्णन सम्मिलित रहता है तथा गंडिकानुयोग में कुलकरगंडिका, तीर्थंकरगंडिका, गणधरगंडिका आदि का समावेश होता है। स्थूल रूप से विचार करें तो मूलप्रथमानुयोग एवं गंडिकानुयोग का समावेश धर्मकथानुयोग में किया जा सकता है।

(२) 'अनुयोग' शब्द का दूसरा प्रयोग 'अणुओगद्दारा' पद में हुआ है। नन्दीसूत्र एवं समवायांगसूत्र में विभिन्न आगमों का परिचय देते हुए वाचना, प्रतिपत्ति, वेढ़, श्लोक, निर्युक्ति, संग्रहणी आदि के साथ अनुयोगद्वारों का भी उल्लेख किया गया है। प्रायः संख्यात अनुयोगद्वारों का उल्लेख रहता है। अनुयोगद्वारसूत्र में भी श्रुतज्ञान के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति का निर्देश है। अनुयोग का अर्थ 'सूत्र के साथ का योजन' है। सूत्र की वाचना के पश्चात् इस अनुयोग की प्रवृत्ति होती है। अनुयोगद्वारसूत्र तो पूर्णरूपेण अनुयोग की विधि का निदर्शन है। अनुयोगद्वारसूत्र में आवश्यकसूत्र के प्रथम सामायिक अध्ययन के चार अनुयोगद्वार इस प्रकार कहे गए हैं–(१) उपक्रम, (२) निक्षेप, (३) अनुगम और (४) नय।[1] नाम, क्षेत्र आदि के आधार पर शब्द का कथन उपक्रम है। उसका फिर नाम, स्थापना आदि में अर्थ खोजना निक्षेप है। अनुकूल अर्थ का कथन अनुगम है तथा अभीष्ट अभिप्राय को पकड़ना नय का कार्य है। इस प्रकार 'अनुयोग' की पूर्णता उपक्रम आदि के द्वारा सम्पन्न होती है।

(३) आचार्य भद्रवाहु ने आवश्यकनिर्युक्ति में अनुयोग का सात प्रकार का निक्षेप वतलाया है, यथा–(१) नामानुयोग, (२) स्थापनानुयोग, (३) द्रव्यानुयोग, (४) क्षेत्रानुयोग, (५) कालानुयोग, (६) वचनानुयोग और (७) भावानुयोग।[2] जिनभद्रगणि ने विशेषावश्यकभाष्य में इन सवकी व्याख्या की है।[3] संक्षेप में कहा जाय तो इन्द्र आदि के साथ 'इन्द्र' आदि नामों का योग या सम्बन्ध नामानुयोग है। काष्ठादि में आचार्य आदि की स्थापना का अनुयोजन या व्याख्यान स्थापनानुयोग है। द्रव्य का, द्रव्य में अथवा द्रव्य से जो पर्यायादि का योग है वह द्रव्यानुयोग है। द्रव्यानुयोग व्याख्यानस्वरूप भी होता है। अनुरूप या अनुकूल योग अर्थात् सम्वन्ध को इस दृष्टि से अनुयोग कहा गया है। इसी प्रकार क्षेत्र, काल, वचन एवं भाव में भी अनुयोग घटित होते हैं। जिस प्रकार अनुयोग का सप्तविध निक्षेप कहा गया है उसी प्रकार अननुयोग का भी सात प्रकार का निक्षेप है, यथा–(१) नामाननुयोग, (२) स्थापनाननुयोग, (३) द्रव्याननुयोग, (४) क्षेत्राननुयोग, (५) कालाननुयोग, (६) वचनाननुयोग और (७) भावाननुयोग।

'अनुयोग' के विभिन्न अर्थ

अनुयोग का प्रायः व्याख्या अर्थ प्रसिद्ध है। भद्रवाहु की निर्युक्ति में अनुयोग को नियोग, भाषा, विभाषा एवं वार्तिक का एकार्थक कहा गया है।[4] ये सभी शब्द अनुयोग के व्याख्या अर्थ को ही स्पष्ट करते हैं। जिनभद्रगणि ने 'अनुयोग' के विभिन्न अर्थों का प्रणयन करते हुए कहा है–

"अणुओयणमणुओगो सुयस्स नियएण जमभिधेएणं।
वावारो वा जोगो जो अणुरूवोऽणुकूलो वा।।
अहवा जमत्थओ थोव-पच्छभावेहिं सुयमणुं तस्स।
अभिधेये वावारो जोगो तेणं व संबंधो।।"[5]

उपर्युक्त दो गाथाओं में अनुयोग के जो अर्थ गुम्फित हैं, उन्हें क्रमशः इस प्रकार रखा जा सकता है–

(१) सूत्र का अपने अभिधेय अर्थ के साथ अनुयोजन या सम्वन्धन अनुयोग है।

(२) योग का एक अर्थ व्यापार है। इसलिए अनुकूल या अनुरूप योग अर्थात् सूत्र का अपने अभिधेय अर्थ में व्यापार अनुयोग है। यथा 'घट' शब्द से 'घट' अर्थ का कथन अनुयोग है।

---

१. तत्थ पढमज्झयणं सामाइयं। तस्स णं इमे चत्तारि अणुओगद्दारा भवंति। तं जहा–(१) उवक्कमे, (२) णिक्खेवे, (३) अणुगमे, (४) णए।
–अनुयोगद्वारसूत्र ७५ (व्यावर प्रकाशन)

२. नामं ठवणा दविए खेत्ते काले वयणभावे य। एसो अणुओगस्स उ निक्खेवो होइ सत्तविहो।। *–आवश्यकनिर्युक्ति १३२*

३. द्रष्टव्य, विशेषावश्यकभाष्य, भाग १, गाथा १३८९-१४०९

४. अणुओगो य निओगो भास-विभासा य वत्तियं चेव। एए अणुओगस्स उ नामा एगट्ठिया पंच।। *–आवश्यकनिर्युक्ति १३१*

५. विशेषावश्यकभाष्य, गाथा १३८६-१३८७

(३) अनुयोग का प्राकृत शब्द 'अणुओग' है। अणु का अर्थ है–सूत्र। अर्थ के आनन्त्य की अपेक्षा सूत्र को अणु कहा जाता है। अथवा तीर्थंकरों के द्वारा 'उप्पन्नेइ वा' इत्यादि त्रिपदी का अर्थ कहा जाता है उसके पश्चात् ही गणधर सूत्र की रचना करते हैं, इसलिए उस अणु अर्थात् सूत्र का अभिधेय अर्थ में व्यापार या योग 'अणुयोग' है।

(४) अनुयोग के उपर्युक्त अर्थों के अतिरिक्त 'व्याख्यान' अर्थ का भूरिशः प्रयोग हुआ है। विशेषावश्यकभाष्य के वृत्तिकार मलधारी हेमचन्द्र ने 'अनुयोगस्तु व्याख्यानम्'[1] 'अनुयोगो व्याख्यानं विधि-प्रतिषेधाभ्यामर्थप्ररूपणम्'[2] इत्यादि वाक्यों में अनुयोग का व्याख्यान या व्याख्या अर्थ प्रतिपादित किया है। सूत्र का अभिधेय अर्थ के साथ योजन भी एक प्रकार से सूत्र का व्याख्यान ही है।

'अनुयोग' शब्द 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'युज्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है, जिसका पूर्व निर्दिष्ट अर्थों में से एक अर्थ है–अनुरूप योग। बिखरी हुई विषय-वस्तु का अनुरूपेण एकत्र संयोजन भी इस दृष्टि से 'अनुयोग' है। चार प्रसिद्ध अनुयोगों के नामों का आश्रय लेकर उपाध्यायप्रवर श्री कन्हैयालाल जी महाराज ने ३२ आगमों का चार अनुयोगों में अनुरूप संयोजन किया है, जिससे सूत्र की व्याख्या एवं सम्बद्ध विषय-वस्तु को एक साथ समझने में सुविधा का अनुभव होगा।

द्रव्यानुयोग का महत्त्व एवं स्वरूप

चार अनुयोगों में द्रव्यानुयोग का विशिष्ट महत्त्व है क्योंकि यह अन्य तीन अनुयोगों में भी न्यूनाधिक रूप में अनुगत है। मोक्ष-प्राप्ति की दृष्टि से भी द्रव्यानुयोग का ज्ञान अपरिहार्य है। षड्द्रव्य एवं नवतत्त्व से सम्बद्ध समस्त विवेचन द्रव्यानुयोग में समाहित होता है। नवतत्त्वों के स्वरूप को समझकर उन पर यथार्थ श्रद्धा करने से दर्शन सम्यक् बनता है तथा दर्शन के सम्यक् होने पर ही ज्ञान एवं आचरण सम्यक् होते हैं। अतएव द्रव्यानुयोग मोक्षमार्ग को जानने की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। भोजसागर (१६वीं शती) विरचित 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' में द्रव्यानुयोग को चरणानुयोग एवं करणानुयोग का सार बताते हुए उसे पण्डितजनों को प्रिय प्रतिपादित किया गया है।[3] भोजसागर ने षड्द्रव्यविचार, सूत्रकृतांग आदि सूत्रों तथा सम्मतिप्रकरण व तत्त्वार्थसूत्र आदि को द्रव्यानुयोग कहा है। सम्मतिग्रन्थ (सिद्धसेन रचित) से भोजसागर ने एक गाथा उद्धृत करते हुए द्रव्यानुयोग का महत्त्व स्थापित किया है। गाथा है–

"चरणकरणप्पहाणा ससमय-परसमयमुक्कवावारा।
चरणकरणस्स सारं णिच्छयसुद्धं न जाणंति॥"[4]

अर्थात् चरणकरणानुयोग के ज्ञान से सम्पन्न जन भी स्वसमय एवं परसमय के व्यापार से मुक्त रहते हैं, क्योंकि वे चरणकरणानुयोग के सारभूत निश्चय शुद्ध द्रव्यानुयोग को नहीं जानते हैं। पण्डित टोडरमल ने भी चार अनुयोगों में द्रव्यानुयोग को प्रधान स्वीकार किया है।

द्रव्यानुयोग क्या है? इसका स्वरूप बतलाते हुए जिनभद्रगणि कहते हैं–

"दव्वस्स जोऽणुजोगो दव्वे दव्वेण दव्वहेऊ वा।
दव्वस्स पज्जवेण व जोग्गो दव्वेण वा जोगो॥"[5]

अर्थात् द्रव्य का अनुयोग ही प्रमुख रूप से द्रव्यानुयोग है। अनुयोग का अर्थ यहाँ व्याख्यान अथवा अनुरूप से योग या सम्बन्ध है। द्रव्य का अधिकरणभूत द्रव्य से योग, करणभूत द्रव्य से योग, हेतुभूत द्रव्य से योग भी निक्षेप की संभावनाओं में द्रव्यानुयोग है। द्रव्य का पर्याय के साथ योग भी इस प्रकार द्रव्यानुयोग की परिधि में आता है, यथा–वस्त्र का कुसुम्भ रंग-पर्याय से अनुयोग। इस प्रकार द्रव्यानुयोग के विभिन्न रूप हो सकते हैं, किन्तु शास्त्र की दृष्टि से द्रव्यानुयोग का अर्थ द्रव्यों की व्याख्या का अनुरूप व्यवस्थापन लेना ही उचित होगा।

द्रव्यानुयोग के जिनभद्रगणि ने दो भेद किए हैं–(१) जीव द्रव्य का अनुयोग एवं (२) अजीव द्रव्य का अनुयोग। जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य के अनुयोग को भी उन्होंने चार प्रकार का प्रतिपादित किया है–(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से और (४) भाव से।

प्रस्तुत द्रव्यानुयोग

उपाध्यायप्रवर श्री कन्हैयालाल जी महाराज ने आचरण या चारित्र से सम्बद्ध आगम-विषय-वस्तु को चरणानुयोग में संकलित किया है। आगम की धर्मकथाओं का संयोजन उन्होंने धर्मकथानुयोग में किया है; जैन गणित, खगोल एवं ज्योतिष से सम्बद्ध सामग्री को गणितानुयोग में रखा है तथा शेष समस्त आगम-वस्तु को द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत संगृहीत किया है। द्रव्यानुयोग में षड्द्रव्यों के सम्बन्ध में तो विषय-वस्तु संगृहीत है ही, किन्तु इसमें कर्मसिद्धान्त, ज्ञान, दर्शन, लेश्या आदि के सम्बन्ध में भी विभिन्न अध्ययन संयोजित हैं। द्रव्यानुयोग के तीनों भागों में मिलाकर ४६ अध्ययन हैं। ४७वाँ अध्ययन प्रकीर्णक नाम से है, जिसमें ४६ अध्ययनों के पश्चात् अवशिष्ट सामग्री को रखा गया है। ४६ अध्ययन इस प्रकार हैं–(१) द्रव्यानुयोग, (२) द्रव्य, (३) अस्तिकाय, (४) पर्याय, (५) परिणाम, (६) जीवाजीव, (७) जीव, (८) प्रथमाप्रथम, (९) संज्ञी, (१०) योनि, (११) संज्ञा, (१२) स्थिति, (१३) आहार, (१४) शरीर, (१५) विकुर्वणा, (१६) इन्द्रिय, (१७) उच्छ्वास, (१८) भाषा, (१९) योग, (२०) प्रयोग, (२१) उपयोग, (२२) पासणया, (२३) दृष्टि, (२४) ज्ञान, (२५) संयत, (२६) लेश्या, (२७) क्रिया, (२८) आस्रव, (२९) वेद, (३०) कषाय, (३१) कर्म, (३२) वेदना, (३३) गति, (३४) नरकगति,

---

१. विशेषावश्यकभाष्य, भाग १, गाथा १, पृ. १
२. वही, पृ. २
३. विना द्रव्यानुयोगोऽहं चरणकरणाख्ययोः।सारं नेति कृतिप्रेष्ठं निर्दिष्टं सम्मतौ स्फुटम्॥
४. सन्मतिप्रकरण ३/६७
५. विशेषावश्यकभाष्य १३९१

(३५) तिर्यञ्चगति, (३६) मनुष्यगति, (३७) देवगति, (३८) वक्रंति, (३९) गर्भ, (४०) युग्म, (४१) गम्मा, (४२) आत्मा, (४३) समुद्घात, (४४) चरमाचरम, (४५) अजीव द्रव्य और (४६) पुद्गल।

उपर्युक्त अध्ययनों में से ज्ञान अध्ययन तक के प्रथम २४ अध्ययनों की विषय-वस्तु द्रव्यानुयोग के प्रथम भाग में प्रकाशित हुई है। द्वितीय भाग में २५वें संयत अध्ययन से ३८वें वक्रंति अध्ययन तक प्रकाशित हैं। गर्भ से पुद्गल तक के शेष अध्ययन एवं प्रकीर्णक का प्रकाशन प्रस्तुत तृतीय भाग में हुआ है।

३२ आगमों की विषय-वस्तु को चार अनुयोगों में विभक्त करने का श्रमसाध्य कार्य उपाध्यायप्रवर ने पूर्ण कर लिया है, किन्तु यह अत्यन्त ही कठिन कार्य है। इसकी कठिनाई का एक कारण यह भी है कि एक अनुयोग की विषय-वस्तु दूसरे अनुयोग से भी सम्बद्ध होती है। चरणानुयोग एवं धर्मकथानुयोग में द्रव्यानुयोग की विषय-वस्तु का प्राप्त होना सहज सम्भव है। इसी प्रकार द्रव्यानुयोग के एक अध्ययन की विषय-वस्तु दूसरे अध्ययन से भी सम्बद्ध हो सकती है। इसलिए अनुयोगों का व्यवस्थापन एवं अध्ययनों का नियोजन अत्यन्त ही दुष्कर कार्य था। उपाध्यायप्रवर ने इस कार्य को स्वविवेक से सम्पन्न किया है। द्रव्यानुयोग के इन तीनों भागों में उन्होंने एक अतीव उपयोगी कार्य यह किया है कि प्रत्येक भाग के अन्त में उस खण्ड से सम्बद्ध अध्ययनों के परिशिष्ट दिए हैं, जिनमें उन अध्ययनों से सम्बन्धित जो जानकारी अन्य अनुयोगों एवं अध्ययनों में आई है उसकी पृष्ठ संख्या एवं सूत्र संख्या का निर्देश कर दिया है, जिससे पाठक को एक अध्ययन से सम्बद्ध सम्पूर्ण विषय-वस्तु चारों अनुयोगों से प्राप्त करने में अत्यन्त सुविधा का अनुभव होगा।

द्रव्यानुयोग की विषय-वस्तु व्यापक है, तथापि षड्द्रव्यों का वर्णन द्रव्यानुयोग का एक प्रमुख विषय है। षड्द्रव्य हैं–(१) धर्म, (२) अधर्म, (३) आकाश, (४) काल, (५) पुद्गल और (६) जीव। इन षड्द्रव्यों में से जीव एवं पुद्गल के प्रस्तुत द्रव्यानुयोग में स्वतन्त्र अध्ययन भी हैं तथा अनेक अध्ययन जीव एवं पुद्गल के वर्णन से ही सम्बद्ध हैं। उल्लेखनीय यह है कि धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल द्रव्यों के निरूपण हेतु द्रव्यानुयोग के तीनों खण्डों में कोई भी स्वतन्त्र अध्ययन नहीं है। इन चार द्रव्यों से सम्बद्ध जानकारी अनेक अध्ययनों में उपलब्ध है। षड्द्रव्यों में से किस द्रव्य का वर्णन किस अध्ययन में प्राप्त होता है, इसकी स्थूल रूपरेखा इस प्रकार रखी जा सकती है–

धर्म द्रव्य–द्रव्य अध्ययन, अस्तिकाय अध्ययन, पर्याय अध्ययन एवं अजीव अध्ययन।

अधर्म द्रव्य–उपर्युक्त चारों अध्ययन।

आकाश द्रव्य–उपर्युक्त चारों अध्ययन।

काल द्रव्य–द्रव्य अध्ययन, पर्याय अध्ययन, जीवाजीव अध्ययन एवं अजीव अध्ययन।

जीव द्रव्य–अजीव एवं पुद्गल अध्ययनों को छोड़कर प्रायः शेष सभी अध्ययन जीव द्रव्य से सम्बद्ध हैं।

पुद्गल द्रव्य–द्रव्य अध्ययन, अस्तिकाय अध्ययन, पर्याय अध्ययन, परिणाम अध्ययन, जीवाजीव अध्ययन, अजीव अध्ययन एवं पुद्गल अध्ययन।

द्रव्य

द्रव्य के स्वरूप एवं भेदों के निरूपण में जैनदर्शन का अपना वैशिष्ट्य है। धर्म एवं अधर्म द्रव्य अन्य किसी भारतीयदर्शन में निरूपित नहीं हैं। यह एकमात्र जैनदर्शन है जिसमें धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य को भी द्रव्यों की गणना में स्थान दिया गया है। धर्म द्रव्य पुद्गल, जीव आदि द्रव्यों की गति में निमित्त कारण बनता है तथा अधर्म द्रव्य स्थिति में निमित्त कारण बनता है। सांख्यदर्शन में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहते हुए उसमें सत्त्व, रज एवं तम ये तीन गुण माने गए हैं। सत्त्वगुण लघु, प्रकाशक एवं प्रीत्यात्मक होता है। रजोगुण प्रवर्तक, चल एवं अप्रीत्यात्मक होता है। तमोगुण का वैशिष्ट्य है कि वह गुरु, प्रवृत्ति-प्रतिबन्धक (वरणक) एवं विषादात्मक होता है। इन तीन गुणों में रजोगुण को प्रवर्तक एवं तमोगुण को प्रवृत्ति का प्रतिबन्धक कहा गया है जो क्रमशः धर्म एवं अधर्म द्रव्यों से साम्य प्रदर्शित करता है, किन्तु धर्म एवं अधर्म द्रव्य का जैनदर्शन में जो स्वातन्त्र्य निरूपित है, वह सांख्यदर्शन में रजोगुण एवं तमोगुण का नहीं। प्रकृति में तीनों गुण सहभावी हैं, उनके बिना प्रकृति का कोई स्वरूप नहीं है, जबकि धर्म-अधर्म द्रव्य पूर्णतः स्वतन्त्र हैं। दूसरी बात यह है कि धर्म एवं अधर्म द्रव्य लोकव्यापी हैं जबकि रजोगुण एवं तमोगुण नहीं। तीसरी बात यह है कि रजोगुण एवं तमोगुण को प्रकृति की अपेक्षा है, धर्म एवं अधर्म द्रव्यों को रहने के लिए लोकाकाश की आवश्यकता है, अन्य किसी द्रव्य की नहीं।

'आकाश' को द्रव्य रूप में प्रायः सभी दर्शनों ने स्वीकार किया है, किन्तु आकाश के लोकाकाश एवं अलोकाकाश के रूप में दो भेद प्रायः जैनेतरदर्शनों में प्राप्त नहीं होते हैं। जैनदर्शन में आकाश दो भागों में विभक्त है–लोकाकाश एवं अलोकाकाश। यह विभाजन कल्पित विभाजन है। आकाश के कोई वास्तविक टुकड़े नहीं किए जा सकते, किन्तु जो आकाश चौदह राजू लोक तक सीमित है उसे लोकाकाश कहा जाता है तथा इस परिधि से बाहर का आकाश अलोकाकाश कहा जाता है। लोकाकाश में वस्तुएँ देखी जा सकती हैं। अलोक में आकाश के अतिरिक्त अन्य किसी भी द्रव्य का होना स्वीकार नहीं किया गया है। धर्म, अधर्म, काल, जीव एवं पुद्गल द्रव्य लोकाकाश तक ही सीमित हैं। मुक्त या सिद्ध जीव भी लोक की परिधि को नहीं लाँघता। वह लोक के ऊर्ध्व भाग में स्थित रहता है तथा वहाँ रहकर ही समस्त लोकालोक को जानता है। न्याय, वैशेषिक, सांख्य, वेदान्त आदि दर्शनों में 'शब्द' को आकाश द्रव्य का गुण माना गया है, जबकि जैनदर्शन में आकाश का गुण अवगाहन करना है, शब्द तो एक प्रकार का पुद्गल है। उसका समावेश पुद्गल द्रव्य के अन्तर्गत होता है।

'काल' द्रव्य की चर्चा भी भारतीयदर्शन में होती रही है। वैशेषिकदर्शन में काल का विस्तृत निरूपण हुआ है। प्रशस्तपादभाष्य में काल

का स्वरूप इस प्रकार निरूपित है–"कालः परापरव्यतिकरयौगपद्यायौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गः।"[1] अर्थात् काल द्रव्य के कारण ही परत्व एवं अपरत्व अथवा ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ का व्यवहार होता है। काल के कारण ही युगपद् एवं अयुगपद् तथा चिर एवं क्षिप्र का व्यवहार होता है। काल का वर्णन व्याकरणदर्शन में भी हुआ है। क्रिया की निष्पत्ति में वहाँ काल को एक कारण माना गया है। जैनदर्शन में काल को वर्तनालक्षण वाला कहा गया है। जिसका तात्पर्य है कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय-परिवर्तन में काल निमित्त कारण बनता है। काल को पृथक् द्रव्य के रूप में स्वीकार करने में जैनों में मतभेद रहा है। आगमों में जहाँ काल का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है, वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में 'कालश्चेत्येके' सूत्र के द्वारा मान्यताभेद का उल्लेख किया गया है। काल को व्यवहारकाल एवं परमार्थकाल की दृष्टि से दो प्रकार का माना जाता है। व्यवहारकाल को अढाईद्वीप तक माना गया है, क्योंकि मनुष्य इसका व्यवहार अढाईद्वीप तक ही करता है। समय, आवलिका, मुहूर्त्त, दिवस, पक्ष, मास, वर्ष, पल्योपम, सागरोपम आदि के रूप में काल का व्यवहार होता है। परमार्थकाल अढाईद्वीप के बाहर भी विद्यमान है। अन्य द्रव्यों से काल का यह वैशिष्ट्य है कि इसके कोई प्रदेश नहीं हैं। यह अप्रदेशी है एवं अनस्तिकाय है।

'पुद्गल' जैनदर्शन का विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है। जैनदर्शन में वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्शयुक्त द्रव्य को पुद्गल कहा गया है। संसार में जितनी भी दृश्यमान एवं दृश्यमान होने की योग्यता रखने वाली वस्तुएँ हैं वे सब पुद्गल द्रव्य ही हैं। इस दृष्टि से पुद्गल को रूपी द्रव्य कहा जाता है। षड्द्रव्यों में शेष पाँच द्रव्य अरूपी हैं। पुद्गल द्रव्य स्कन्ध, देश, प्रदेश एवं परमाणु के रूप में उपलब्ध होता है।[2]

'जीव' द्रव्य चेतनालक्षणयुक्त होता है। तत्त्वार्थसूत्र में जीव का लक्षण 'उपयोग' कहा गया है। उपयोग दो प्रकार का होता है–(१) साकार और (२) निराकार। साकार उपयोग को ज्ञान एवं निराकार उपयोग को दर्शन कहा जाता है। इस प्रकार जो द्रव्य ज्ञान एवं दर्शनयुक्त होता है वह जीव है। जीव दो प्रकार के होते हैं–संसारस्थ एवं सिद्ध। सिद्ध जीव अष्टविध कर्मों से मुक्त होकर अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, क्षायिक सम्यक्त्व आदि गुणों से युक्त होते हैं। उनका सुख अव्याबाध होता है। वे अमूर्त, अगुरुलघु एवं अनन्तवीर्य से युक्त होते हुए भी पुनः संसार में जन्म ग्रहण नहीं करते। हिन्दू परम्परा में जहाँ अवतारों की परिकल्पना के अन्तर्गत एक भगवान ही विभिन्न अवतार ग्रहण करते हैं, वहाँ जैनधर्म में एक बार मोक्ष को प्राप्त जीव का संसार में पुनः जन्म स्वीकार नहीं किया गया। सिद्धों के अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन एवं अनन्तसुख को प्राप्त करना संसारस्थ प्राणियों का उत्कृष्टतम उद्देश्य है। संसारस्थ प्राणी जीवाजीव का सम्मिलित रूप है। उनका सम्मिलन संयोग रूप है। संसारस्थ प्राणी को देहादि का प्राप्त होना उसका अजीव के साथ संयोग सिद्ध करता है। व्यवहार में देहादियुक्त प्राणियों को जीव ही कहा जाता है, अजीव नहीं। ऐसे जीवों का अनेक प्रकार से विभाजन किया जाता है। चार गतियों के आधार पर इन्हें (१) नरकगति, (२) तिर्यञ्चगति, (३) मनुष्यगति एवं (४) देवगति के जीवों में विभक्त किया जाता है। पाँच इन्द्रियों के आधार पर इन्हें (१) एकेन्द्रिय, (२) द्वीन्द्रिय, (३) त्रीन्द्रिय, (४) चतुरिन्द्रिय एवं (५) पंचेन्द्रिय में विभक्त किया जाता है। छह काया के आधार पर इन्हें छह प्रकार का निरूपित किया जाता है–(१) पृथ्वीकाय, (२) अप्काय, (३) तेजस्काय, (४) वायुकाय, (५) वनस्पतिकाय और (६) त्रसकाय। पर्याप्त एवं अपर्याप्त के आधार पर भी जीवों का विभाजन किया जाता है। 'पर्याप्त' से तात्पर्य है अपने योग्य आहार, इन्द्रिय आदि पर्याप्तियों को ग्रहण करने का कार्य पूर्ण कर लेना तथा 'अपर्याप्त' से तात्पर्य है इन पर्याप्तियों को पूर्ण न करना। एक जीव में कम से कम चार पर्याप्तियाँ होती हैं–(१) आहार, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय और (४) श्वासोच्छ्वास। ये चार पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय जीव में पाई जाती हैं। द्वीन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों में भाषा पर्याप्ति अधिक होती है तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव में मन पर्याप्ति को मिलाकर छह पर्याप्तियाँ होती हैं। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म एवं बादर के भेद से दो प्रकार के निरूपित किए जाते हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को काटा, छेदा या भेदा नहीं जा सकता। बादर एकेन्द्रिय जीवों को घात आदि से प्राणविहीन किया जा सकता है।

सम्पूर्ण द्रव्यानुयोग में जीव से सम्बद्ध वर्णन का प्रमुख स्थान है। अधिकांश भाग में जीव द्रव्य की ही विभिन्न स्थितियों एवं उसके विभिन्न स्वरूपों का वर्णन निहित है। द्रव्यानुयोग में अधिकांश निरूपण जीव के चौबीस दण्डकों के अन्तर्गत हुआ है। जीवों के विभाजन में चौबीस दण्डकों का विशेष महत्त्व है। इस वर्गीकरण में गति, इन्द्रिय एवं काय का वर्गीकरण भी सम्मिलित हो जाता है। 'दण्डक' का अभिप्राय है दण्ड अर्थात् फल भोगने का स्थान। लोक में अधोलोक से ऊर्ध्वलोक की ओर जीवों की प्राप्ति का प्रायः एक क्रम है उसी के आधार पर चौबीस दण्डकों का क्रम निर्धारित किया गया है। चौबीस दण्डक इस प्रकार हैं–

सात प्रकार के नारकी जीवों का	=	१	दण्डक
दस भवनपति देवों के	=	१०	दण्डक
पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावरों (एकेन्द्रियों) के	=	५	दण्डक
तीन विकलेन्द्रियों (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय) के	=	३	दण्डक
तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का	=	१	दण्डक
मनुष्य का	=	१	दण्डक
वाणव्यन्तर देवों का	=	१	दण्डक
ज्योतिषी देवों का	=	१	दण्डक
वैमानिक देवों का	=	१	दण्डक
		२४	दण्डक

१. प्रशस्तपादभाष्य, किरणावली सहित, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, सन् १९७१, पृ. ७६
२. 'पुद्गल' नाम से द्रव्यानुयोग में एक पृथक् अध्ययन है। इस प्रस्तावना में उसकी चर्चा आगे पृ. ४८-५० पर की गई है अतः वहाँ द्रष्टव्य है।

उपर्युक्त दण्डकों में पाँच स्थावरों को छोड़कर शेष जीवों की उपलब्धि का अधोलोक से ऊर्ध्वलोक की ओर एक निश्चित क्रम है। नारकी जीव अधोलोक में रहते हैं। भवनपति देव अधोलोक एवं तिर्यक्लोक में रहते हैं। विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, मनुष्य एवं वाणव्यन्तर ज्योतिषी देव तिर्यक्लोक में रहते हैं। वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में रहते हैं।

द्रव्यानुयोग के विभिन्न अध्ययनों को समझने के लिए इन चौवीस दण्डकों का हमें पद-पद पर अवलम्बन लेना पड़ता है।

संख्या की दृष्टि से संसार में अनन्त जीव हैं। एक जीव के असंख्यात आत्म-प्रदेश हैं। जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं उतने ही एक जीव के प्रदेश कहे गए हैं।

षड्द्रव्यों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय संख्या की दृष्टि से तुल्य हैं तथा षड्द्रव्यों में सबसे अल्प हैं। उनसे जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं, उनसे पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं। उनके अद्धासमय द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।

अस्तिकाय

छह द्रव्यों में से 'काल' को छोड़कर पाँच द्रव्य अस्तिकाय कहे जाते हैं। बहुप्रदेशी होने के कारण इन द्रव्यों को अस्तिकाय कहा जाता है। काल अनस्तिकाय है, क्योंकि वह अप्रदेशी है। प्रदेशसमूह का नाम अस्तिकाय है। अस्तिकाय द्रव्य हैं–(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) पुद्गलास्तिकाय और (५) जीवास्तिकाय। 'अस्तिकाय' शब्द प्रदेश-समूह के होने का द्योतक है। 'काय' का अर्थ समूह होता है। जो द्रव्य प्रदेश-समूहयुक्त होता है वह अस्तिकाय है। धर्म, अधर्म आदि पाँच द्रव्य अपने प्रदेश-समूहयुक्त होते हैं, अतः ये पाँच अस्तिकाय हैं। काल का कोई प्रदेश नहीं होता। इसलिए वह समूह रूप में नहीं रहता।

षड्द्रव्यों के विवेचन में अस्तिकाय का भी विवेचन समाहित हो जाता है, किन्तु अस्तिकाय शब्द में कुछ वैशिष्ट्य निहित है। धर्मास्तिकाय से तात्पर्य है सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय। एक प्रदेश न्यून धर्मास्तिकाय को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जाता। धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेशों का समग्र रूप से जब ग्रहण होता है तभी उसे धर्मास्तिकाय कहा जाता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के भी समग्र प्रदेश गृहीत होने पर उन्हें उन-उन अस्तिकायों के रूप में कहा जाता है। धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं तथा आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश कहे गए हैं।[१] षड्द्रव्यों के निरूपण में धर्म, अधर्म एवं जीव द्रव्य में असंख्यात प्रदेश माने गए हैं तथा आकाश में अनन्त प्रदेश कहे गए हैं। पुद्गल में संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त प्रदेश माने गए हैं। पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी होकर भी अनेक स्कन्ध रूप बहुत प्रदेशों को ग्रहण करने की योग्यता के कारण बहुप्रदेशी होता है, इसलिए उपचार से उसे 'काय' या अस्तिकाय कहा जाता है।[२]

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में धर्मास्तिकाय आदि के जो पर्यायार्थक अभिवचन दिए गए हैं, उनसे इन धर्म-अधर्म आदि के अर्थ का व्यापक परिचय मिलता है। धर्मास्तिकाय के अभिवचन में प्राणातिपातविरमण यावत् परिग्रहविरमण, क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक आदि को भी स्थान दिया गया है। इनके विपरीत अधर्मास्तिकाय के अभिवचन हैं।

पर्याय

द्रव्य के साथ पर्याय का विचार आवश्यक है, क्योंकि द्रव्य विभिन्न पर्यायों अथवा अवस्थाओं में ही प्राप्त होता है। द्रव्य की अवस्था विशेष को पर्याय कहा जाता है। दर्शनग्रन्थों में द्रव्य के क्रमभावी परिणाम को पर्याय कहा गया है[३] तथा गुण एवं पर्याय से युक्त पदार्थ को द्रव्य कहा गया है।[४] दार्शनिक जगत् में एक ही वस्तु की विभिन्न अवस्थाओं को उसकी पर्याय कहा जाता है। जैसे एक ही मनुष्य की बाल, युवा, प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था उसकी पर्यायें हैं। एक ही स्वर्ण की कड़ा, कुण्डल एवं हार उस स्वर्ण की पर्यायें हैं। आगम में पर्याय का यह 'क्रमभावी' अर्थ स्फुटरूपेण प्रयुक्त नहीं हुआ है। आगम में तो एक द्रव्य जितनी अवस्थाओं में प्राप्त हो सकता है, वे अवस्थाएँ उस द्रव्य की पर्यायें कहलाती हैं। जैसे जीव की पर्यायें हैं–नारक, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और सिद्ध। पर्याय को प्रज्ञापनासूत्र में दो प्रकार का प्रतिपादित किया गया है–जीव पर्याय और अजीव पर्याय। पर्याय का गहन विचार किया जाय तो जीव की अनन्त पर्यायें हैं एवं अजीव पर्याय भी अनन्त हैं। पर्याय का लक्षण देते हुए उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और वियोग ये पर्यायों के लक्षण हैं। प्रत्येक पर्याय अपने आप में एक एवं अन्य पर्यायों से पृथक् होती है। पर्याय का अन्तर संख्या (अथवा ज्ञान) एवं आकृति के आधार पर भी होता है। संयोग एवं वियोग से भी पर्याय-परिवर्तन होता रहता है, इसलिए इन्हें (एकत्वादि को) पर्याय का लक्षण कहा गया है। प्रज्ञापनासूत्र में जीवों की संख्या के आधार पर जीव पर्याय अनन्त कही गई हैं। दण्डकों के आधार पर प्रत्येक दण्डक के जीव की अनन्त पर्यायों का कथन आगम में (१) द्रव्य, (२) प्रदेश, (३) अवगाहना, (४) स्थिति, (५) वर्ण, (६) गन्ध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) ज्ञान, (१०) अज्ञान और (११) दर्शन इन ग्यारह द्वारों के माध्यम से निरूपित किया गया है।

---

१. द्रव्यानुयोग, भाग १, पृ. ३३

२. एयपदेसो वि अणू णाणाखंधप्पदेसदो होदि। बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्णू॥ *–द्रव्यसंग्रह २६*

३. पर्यायस्तु क्रमभावी, यथा तत्रैव सुखदुःखादि। *–प्रमाणनयतत्त्वालोक ५/८*

४. गुणपर्यायवद् द्रव्यम्। *–तत्त्वार्थसूत्र ५/३८*

अजीव पर्याय को रूपी एवं अरूपी–अजीव पर्याय के रूप में विभक्त किया जाता है। इनमें अरूपी अजीव पर्याय के दस भेद हैं–(१) धर्मास्तिकाय, (२) उसके देश और (३) प्रदेश, (४) अधर्मास्तिकाय, (५) उसके देश और (६) प्रदेश, (७) आकाशास्तिकाय, (८) उसके देश और (९) प्रदेश और (१०) अद्धासमय। रूपी अजीव पर्याय के चार भेद हैं–(१) स्कन्ध, (२) देश, (३) प्रदेश और (४) परमाणु। रूपी अजीव पर्याय अनन्त हैं क्योंकि परमाणु पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं यावत् अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं। एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श द्वारों से उनमें भिन्नता रहती है। जीव एवं पुद्गल की अनन्त पर्यायों का तो आगम में स्पष्ट कथन हुआ है, किन्तु धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल की अनन्त पर्यायों पर आगमों में कोई कथन नहीं हुआ है, जो पर्याय के दार्शनिक = चिन्तन पर प्रश्न-चिन्ह खड़ा करता है।

परिणाम

पर्याय एवं परिणाम में विशेष भेद नहीं है। द्रव्य की विभिन्न अवस्थाओं को जहाँ पर्याय कहा गया है वहाँ पर्याय में परिणमन को परिणाम कहा जा सकता है। 'परिणाम' का निरूपण प्रज्ञापनासूत्र में हुआ है जहाँ परिणाम के जीव एवं अजीव परिणाम भेद करके उनके दस-दस प्रकार बताए गए हैं। जीव परिणाम के दस प्रकार हैं–(१) गति, (२) इन्द्रिय, (३) कषाय, (४) लेश्या, (५) योग, (६) उपयोग, (७) ज्ञान, (८) दर्शन, (९) चारित्र और (१०) वेद। इनमें प्रत्येक के अपने-अपने अवान्तर भेद भी हैं जो कुल ४३ हैं। अजीव परिणाम भी दस प्रकार के हैं–(१) बन्धन, (२) गति, (३) संस्थान, (४) भेद, (५) वर्ण, (६) गंध, (७) रस, (८) स्पर्श, (९) अगुरुलघु और (१०) शब्द परिणाम। अजीव परिणाम में बन्धन के दो अवान्तर भेद हैं–(१) स्निग्ध एवं (२) रुक्ष। गति के भी दो प्रकार हैं–(१) स्पृशद्गति एवं (२) अस्पृशद्गति। दीर्घगति एवं ह्रस्वगति की दृष्टि से भी भेद किए गए हैं। संस्थान परिणाम पाँच प्रकार का है–(१) परिमण्डल, (२) वृत्त, (३) त्र्यंश, (४) चतुरस और (५) आयत। भेद परिणाम भी पाँच प्रकार का है–(१) खण्ड, (२) प्रतर, (३) चूर्णिका, (४) अनुतटिका और (५) उत्कटिका। वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श के क्रमशः पाँच, दो, पाँच एवं आठ भेद प्रसिद्ध हैं। अगुरुलघु एक प्रकार का ही होता है। उसके कोई भेद नहीं हैं। शब्द परिणाम को शुभ एवं अशुभ में विभक्त किया जाता है। इन विभिन्न परिणामों के फलस्वरूप पर्याय बदलती रहती है।

जीवाजीव

षड्द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल ये पाँच द्रव्य 'अजीव' हैं तथा एक जीव द्रव्य 'जीव' है। परमार्थतः जीव एवं अजीव द्रव्य पूर्णतः पृथक् हैं। न तो कभी जीव द्रव्य अजीव बन सकता है और न अजीव द्रव्य जीव बन सकता है। किन्तु जीव का अजीव के साथ इस प्रकार का गाढ़ सम्बन्ध है कि अजीव को भी जीव के रूप में व्यवहृत किया जाता है। जीव एवं पुद्गल के गाढ़ सम्बन्ध के कारण शरीर, इन्द्रिय आदि के आधार पर पुद्गल पर भी जीव का आरोप एवं व्यवहार होता ही है। जीव एवं अजीव दोनों शाश्वत हैं। इनमें से कौन पहले हुआ एवं कौन बाद में, इस प्रश्न का उत्तर मुर्गी एवं अण्डे की समस्या के उत्तर की भाँति है और वह यह कि ये दोनों शाश्वत हैं। जीव एवं पुद्गल के पारस्परिक सम्बन्ध के कारण अजीव पुद्गल (देहादि) पर जीव का व्यवहार करना तो साधारण बात है, किन्तु ग्राम, नगर, क्षेत्र आदि को भी वहाँ पर जीवों के रहने के कारण उपचार से कथंचित् जीव (एवं अजीव) कहा गया है। जीव के परिभोग में आने से ये जीव की भाँति व्यवहृत होते हैं। 'गाँव जल गया' कहने से हम समझते हैं कि गाँव में रहने वाले प्राणी भी जल गए। इस प्रकार 'गाँव' शब्द जीव को भी अपने अर्थ में सम्मिलित कर लेता है। यही नहीं, जीव के द्वारा व्यवहृत आनप्राण, स्तोक आदि को जीव एवं अजीव दोनों कहा गया है।

जीव

द्रव्य अध्ययन में जीव के सम्बन्ध में कुछ कहा जा चुका है। यहाँ पर इतना ही विशेष कथन है कि जीव द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत एवं अनादि-अनन्त है। उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम वाला जीव आत्म-भाव से जीवभाव (चैतन्य) को प्रकट करता है। जीव को जैसी देह मिली है उसके अनुसार ही वह अपने आत्म-प्रदेशों का संकोच एवं विस्तार कर लेता है। इसे जैनदर्शन में जीव का देह परिमाणत्व कहा जाता है। जैनदर्शन की मान्यता है कि जीव स्वयं अपने कर्मों का कर्ता एवं भोक्ता है। किसी ईश्वर के द्वारा कर्मों का फल नहीं दिया जाता। जीव के स्वरूप का वर्णन करते हुए बृहद्द्रव्यसंग्रहकार श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा है–

"जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।।"[1]

अर्थात् जीव उपयोगमय होता है, अमूर्तिक (अरूपी) होता है, कर्ता एवं भोक्ता होता है, वह स्वदेह परिमाण होता है। स्वभावतः वह ऊर्ध्वगति करता है। संसारस्थ एवं सिद्ध की अपेक्षा वह दो प्रकार का होता है। उपयोगमय होने का तात्पर्य है ज्ञानदर्शनमय होना, क्योंकि ज्ञान को साकारोपयोग एवं दर्शन को निराकारोपयोग कहा गया है। द्रव्यानुयोग के प्रथम भाग में भी यह बात कही गई है कि ज्ञान एवं दर्शन नियमतः आत्मा हैं तथा आत्मा भी नियमतः ज्ञान-दर्शन रूप है। जीव की दूसरी विशेषता है कि वह अमूर्त अर्थात् अरूपी है। शरीर एवं कर्मादि की अपेक्षा से जीव व्यवहार में रूपी है, किन्तु परमार्थतः तो वह अरूपी ही है।[2] जीव एवं सुख-दुःख का स्वयं कर्ता एवं भोक्ता होता है, यह तथ्य उत्तराध्ययनसूत्र में भी स्पष्टरूपेण उल्लिखित है।[3] जीव अपने आत्म-प्रदेशों का शरीर के अनुसार संकोच एवं विस्तार कर लेता

---

१. बृहद्द्रव्यसंग्रह २
२. अरूविणो जीवघणा नाणदंसणसन्निया। –उत्तराध्ययन ३६/६६
३. अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य। –वही २०/३७

है। जीव के आत्म-प्रदेश अमूर्त हैं तथापि उनमें संकोच-विस्तार सम्भव है। जीव को ऊर्ध्वगमनशील इसलिए कहा गया है, क्योंकि वह कर्ममुक्त होने पर ऊर्ध्वगमन कर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाता है।

अपेक्षाविशेष से जीवों को सादि-सान्त, सादि-अनन्त, अनादि-सान्त और अनादि-अनन्त भी कहा गया है। नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव गति-आगति की अपेक्षा सादि-सान्त हैं। सिद्ध-जीव गति की अपेक्षा सादि-अनन्त हैं। लब्धि की अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि-सान्त हैं और संसार की अपेक्षा से अभवसिद्धिक जीव अनादि-अनन्त हैं। द्रव्य की दृष्टि से जीव शाश्वत है तथा पर्याय की दृष्टि से अशाश्वत है। अजीव द्रव्य जीव द्रव्य के परिभोग में आते हैं, किन्तु जीव द्रव्य अजीव द्रव्यों के परिभोग में नहीं आते हैं। जीव द्रव्य अजीव द्रव्य पुद्गल को ग्रहण करके उसे शरीर, इन्द्रिय, योग एवं श्वासोच्छ्वास में परिणत करते हैं।

प्रथमाप्रथम

जीवों में जो भाव या अवस्थाएँ पहले से चली आ रही हैं उनकी अपेक्षा जीवों को अप्रथम तथा जो भाव या अवस्था पहली बार प्राप्त हो उस अपेक्षा से जीवों को प्रथम कहा जाता है। जैसे जीव को जीवभाव पहले से प्राप्त है, अतः वह जीवभाव की अपेक्षा से अप्रथम है, किन्तु सिद्धभाव प्राप्त करने की अपेक्षा से सिद्धजीव प्रथम हैं, क्योंकि उन्हें सिद्धभाव पहले से प्राप्त नहीं था। द्रव्यानुयोग के प्रथमाप्रथम अध्ययन में जीव, आहार, भवसिद्धिक, संज्ञी, लेश्या आदि १४ द्वारों में जीव के प्रथमाप्रथमत्व का जो निरूपण हुआ है वह सामान्य जीव की अपेक्षा से भी है, नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौवीस दण्डकों की अपेक्षा से भी है तथा सिद्धों की अपेक्षा से भी है।

संज्ञी, संज्ञा और योनि

'संज्ञा' एवं 'संज्ञी' शब्द भाषागत रचना की दृष्टि से समान प्रतीत होते हैं, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से इनमें महदन्तर है। 'संज्ञी' शब्द का प्रयोग आगम में समनस्क अर्थात् मन वाले जीवों के लिए हुआ है। संज्ञी जीवों में हिताहित का विचार करने का सामर्थ्य होता है। मन के सद्भाव में वे शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप को ग्रहण कर सकते हैं। प्रज्ञापनासूत्र के भाषा पद में सण्णी (संज्ञी) शब्द का प्रयोग शब्द संकेत को ग्रहण करने वाले जीव के लिए हुआ है। इस दृष्टि से जो बालक शब्द संकेत से अर्थ या पदार्थ को नहीं जानता, वह भी एक प्रकार से असंज्ञी ही है। मन का विषय श्रुतज्ञान को माना गया है। श्रुतज्ञान शब्द, संकेत आदि के माध्यम से होता है। मन को अनिन्द्रिय एवं नोइन्द्रिय भी कहा गया है। मन से मतिज्ञान भी होता है। इसलिए मन से होने वाले अवग्रह, ईहा, अवाय एवं धारणा नामक मतिज्ञान के भेद स्वीकार किए गए हैं। वैसे शब्द के आश्रय से होने वाला जो परिणामात्मक ज्ञान है वह मन के द्वारा ही होता है, इसलिए मन का विषय 'श्रुत' माना गया है। मन मनन एवं विचार का प्रमुख माध्यम है। यह दो प्रकार का प्रतिपादित है–द्रव्यमन और भावमन। द्रव्यमन पुद्गलों द्वारा निर्मित है तथा भावमन तो जीवरूप ही है, वह जीव से सर्वथा भिन्न नहीं है। यहाँ पर जो 'संज्ञी' शब्द का प्रयोग हुआ है वह द्रव्यमन वाले जीवों के लिए हुआ है। इस दृष्टि से गर्भ से एवं उपपात से जन्म लेने वाले पंचेन्द्रिय जीव ही संज्ञी कहे जाते हैं।

'संज्ञा' शब्द का प्रयोग 'नाम' के लिए भी होता है। यह मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्दों में भी परिगणित है तथा अकलंक ने इसे प्रत्यभिज्ञान प्रमाण के अर्थ में ग्रहण किया है। इस प्रकार संज्ञा 'ज्ञान' के अर्थ में भी प्रयुक्त है। किन्तु आगम में आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदि की अभिलाषा को व्यक्त करने के लिए संज्ञा शब्द का प्रयोग हुआ है। आहारादि की अभिलाषा से संसारी जीवों को जाना जाता है, इसलिए भी आहारादि को संज्ञा कहा गया है। सामान्यतः संज्ञा के चार भेद हैं–आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा। चार गति के चौवीस दण्डकों में ये चारों संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं। संज्ञाओं की उत्पत्ति के विभिन्न कारण हैं। ये वेदनीय अथवा मोहनीयकर्म के उदय से भी उत्पन्न होती हैं तथा इनका श्रवण करने के अनन्तर उत्पन्न मति से भी उत्पन्न होती हैं। इनका सतत चिन्तन करते रहने से भी ये उत्पन्न होती हैं। आहारसंज्ञा में पेट का खाली रहना, भयसंज्ञा में सत्त्वहीनता, मैथुनसंज्ञा में माँस-शोणित का अत्यधिक उपचय और परिग्रहसंज्ञा में परिग्रह का स्वयं के पास रहना भी उत्पत्ति में कारण बनता है। संज्ञाओं की उत्पत्ति में कर्मोदय आन्तरिक कारण है तथा पेट खाली रहना आदि बाह्य कारण हैं। संज्ञा अगुरुलघु होती है। संज्ञा की क्रिया का करण संज्ञाकरण तथा संज्ञा की रचना को संज्ञानिर्वृत्ति कहते हैं।

संज्ञा के १० भेद भी प्रतिपादित हैं। आहारादि चार संज्ञाओं में क्रोध, मान, माया, लोभ, ओघ और लोक संज्ञाओं को मिला देने पर १० भेद बन जाते हैं। आचारांगनिर्युक्ति में संज्ञा के १० भेद प्रतिपादित हैं। वहाँ पर इन दस संज्ञाओं में मोह, धर्म, सुख, दुःख, जुगुप्सा और शोक को योजित किया गया है। सकषायी जीवों में आहारादि संज्ञाएँ पाई जाती हैं तथा पूर्ण वीतराग अवस्था प्राप्त होने पर ये संज्ञाएँ नहीं रहती हैं।

जीव के जन्म ग्रहण करने के स्थान को योनि कहते हैं। भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से योनि के भेद किए जाते हैं। स्पर्श की अपेक्षा योनि तीन प्रकार की है–शीत, उष्ण और शीतोष्ण। चेतना की अपेक्षा उसके सचित्त, अचित्त एवं मिश्र भेद हैं। आवरण की अपेक्षा उसके तीन प्रकार हैं–संवृत, विवृत और संवृत-विवृत। सभी जीव योनि में ही जन्म ग्रहण करते हैं, चाहे वह जन्म उपपात से हो, गर्भ से हो अथवा सम्मूर्च्छिम हो। जैनागमों में ८४ लाख जीव योनियों का उल्लेख प्राप्त होता है, यथा–सात लाख पृथ्वीकायिक, सात लाख अप्कायिक, सात लाख तेजस्कायिक, सात लाख वायुकायिक, दस लाख प्रत्येक वनस्पति, चौदह लाख साधारण वनस्पति, दो लाख द्वीन्द्रिय, दो लाख त्रीन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं चौदह लाख मनुष्य।

स्थिति

'स्थिति' शब्द का प्रयोग आगम में तीन प्रकार से हुआ है–(१) कर्मस्थिति, (२) भवस्थिति और (३) कायस्थिति। ज्ञानावरण आदि आठों कर्मों की फलदान अवधि को कर्मस्थिति कहा जाता है। प्रायः एक भव में उस गति एवं आयुष्य का बना रहना भवस्थिति माना जाता है तथा

अनेक भवों तक एक ही प्रकार की गति आदि का रहना कायस्थिति कहा जाता है, किन्तु स्थिति अध्ययन में कायस्थिति एवं भवस्थिति का प्रयोग आयुष्यकर्म की स्थिति के अर्थ में हुआ है। देवों एवं नारकियों की भवस्थिति कही गई है तथा मनुष्यों और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों की कायस्थिति कही गई है।[1] किन्तु एक भव की दृष्टि से चौवीस ही दण्डकों के जीवों की स्थिति का निरूपण करना स्थिति अध्ययन का लक्ष्य रहा है।

आहार

जीव जिन पुद्‌गलों को शरीर, इन्द्रिय आदि के निर्माण एवं संचालन हेतु ग्रहण करता है, उन्हें आहार कहते हैं। ग्रहण करने की विधि के आधार पर आहार चार प्रकार का निरूपित है-(१) लोमाहार, (२) प्रक्षेपाहार (कवलाहार), (३) ओजाहार और (४) मनोभक्षी आहार। लोमों या रोमों के द्वारा आहार योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करना लोमाहार है। कवल या ग्रास के रूप में आहार ग्रहण करना कवलाहार कहा जाता है। सम्पूर्ण शरीर के द्वारा आहार योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण करना ओजाहार है। यह ओजाहार जीव के द्वारा जन्म ग्रहण करते समय अपर्याप्तक अवस्था में एक बार ही किया जाता है। मन के द्वारा आहार करना मनोभक्षी आहार कहलाता है। मनोभक्षी आहार केवल देवों में उपलब्ध होता है। लोमाहार सभी चौवीस दण्डकों के जीव करते हैं। प्रक्षेपाहार द्वीन्द्रिय से लेकर मनुष्य तक के औदारिकशरीरी जीव करते हैं। नैरयिक एवं देवगति के देव वैक्रियशरीरी होने के कारण कवलाहार नहीं करते हैं। एकेन्द्रिय जीवों के मुख नहीं होता, अतः वे भी कवलाहार नहीं करते हैं।

चार स्थितियों में जीव आहार ग्रहण नहीं करता है-(१) विग्रहगति में, (२) केवली समुद्‌घात के समय, (३) शैलेशी अवस्था में एवं (४) सिद्ध होने पर। केवली के कवलाहार को लेकर दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मान्यता में भेद है। दिगम्बर मान्यता के अनुसार केवली कवलाहार नहीं करते हैं, जबकि श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार कवलाहार एवं केवलज्ञान में परस्पर कोई विरोध नहीं है, इसलिए केवली भी कवलाहार ग्रहण करते हैं। श्वेताम्बर दार्शनिक वादिदेवसूरि ने प्रतिपादित किया है कि कवलाहार ग्रहण करने से केवली असर्वज्ञ नहीं हो जाता, क्योंकि कवलाहार एवं सर्वज्ञता में परस्पर कोई विरोध नहीं है।[2]

शरीर

जब तक जीव आठ कर्मों से मुक्त नहीं होता है तब तक उसका शरीर के साथ सम्बन्ध बना रहता है। यह जीव एवं शरीर का अनादि सम्बन्ध है। संसारी जीव सशरीरी होते हैं तथा सिद्ध जीव अशरीरी होते हैं। शरीर की प्राप्ति नामकर्म से होती है। जब तक नामकर्म शेष है तब तक शरीर की प्राप्ति होती रहती है। शरीर पाँच प्रकार के हैं-(१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तेजस् और (५) कार्मण। प्रधान या उदार पुद्‌गलों से निर्मित शरीर औदारिक कहलाता है। विविध और विशेष प्रकार की क्रियाएँ करने में सक्षम शरीर वैक्रिय कहा जाता है। आहारकलब्धि से निर्मित शरीर आहारक शरीर होता है। आहार के पाचन में सहायक तथा तेजोलेश्या की उत्पत्ति का आधार शरीर तेजस् कहलाता है। यह तेजस् पुद्‌गलों से बना होता है। कार्मण पुद्‌गलों से निर्मित शरीर कार्मण कहलाता है। इन पाँच शरीरों में से तेजस् और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों में पाये जाते हैं। ये दोनों शरीर जीव में तब भी विद्यमान होते हैं जब वह एक काया को छोड़कर दूसरी काया को धारण करने के बीच विग्रहगति में होता है। औदारिकशरीर तिर्यञ्चगति के एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों में एवं मनुष्यों में पाया जाता है। वैक्रियशरीर नैरयिकों एवं देवों में जन्म से होता है तथा मनुष्य एवं संज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय को विशेष लब्धि से प्राप्त होता है। नैरयिक एवं देवों को जन्म से प्राप्त होने वाले वैक्रियशरीर को औपपातिक कहा गया है तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य को प्राप्त होने वाले वैक्रियशरीर को लब्धिप्रत्यय कहा गया है। विभिन्न विक्रियाएँ करने के कारण बादर वायुकाय के जीवों में भी वैक्रियशरीर माना गया है। आहारकशरीर मात्र प्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती चौदह पूर्वधारी मनुष्यों में पाया जाता है। पाँच शरीरों में कार्मणशरीर अगुरुलघु है तथा शेष चार शरीर गुरुलघु हैं। शरीर की उत्पत्ति जीव के उत्थान, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषाकार पराक्रम के निमित्त से होती है।

संहनन एवं संस्थान की विषय-वस्तु भी शरीर से सम्बद्ध है। इसलिए शरीर अध्ययन में इनके सम्बन्ध में भी सामग्री सन्निहित है।

विकुर्वणा

विकुर्वणा प्रायः वैक्रियशरीर के माध्यम से की जाती है। विकुर्वणा का अर्थ है विभिन्न प्रकार के रूप, आकार आदि की रचना करना। भावितात्मा अनगार, देव, नैरयिक, वायुकायिक जीव एवं बलाहक प्रायः इस प्रकार की विकुर्वणा करते हैं। विकुर्वणा या विक्रिया मुख्यतः तीन प्रकार की होती है-(१) बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण करके की जाने वाली, (२) बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण किए बिना की जाने वाली तथा (३) बाह्य पुद्‌गलों को ग्रहण करके एवं ग्रहण न करके की जाने वाली विकुर्वणा। विकुर्वणा के तीन भेद आन्तरिक पुद्‌गलों को ग्रहण करने, ग्रहण न करने एवं मिश्रित स्थिति से भी बनते हैं। जब बाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के पुद्‌गलों को ग्रहण करने, ग्रहण न करने एवं मिश्रित होने की स्थिति बनती है तब भी विक्रिया के तीन भेद बनते हैं। विकुर्वणा के लिए वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से युक्त पुद्‌गलों की आवश्यकता होती है।

भावितात्मा अनगार विभिन्न रूपों की विकुर्वणा कर सकता है। वह अश्व, हाथी, सिंह, बाघ आदि का रूप बनाकर अनेक योजन तक

---

१. द्रव्यानुयोग, भाग १, पृ. २८७

२. न च कवलाहारवत्त्वेन तस्यासर्वज्ञत्वं, कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात्। —प्रमाणनयतत्त्वालोक २/२७

गमन कर सकता है। यही नहीं वह ग्राम, नगर आदि के रूपों की भी विकुर्वणा कर सकता है। उल्लेखनीय है कि भावितात्मा अनगार में विभिन्न विकुर्वणाओं को करने का सामर्थ्य होते हुए भी वे कभी इस प्रकार की विकुर्वणाएँ नहीं करते हैं। जो विकुर्वणाएँ की जाती हैं, उन्हें मायी अनगार करता है, अमायी अनगार नहीं। असंवृत अनगार एक वर्ण का दूसरे वर्ण में, एक रस का दूसरे रस आदि में परिणमन करने में समर्थ हैं।

देव दो प्रकार के हैं-(१) मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक एवं (२) अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक। इनमें अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव यथेच्छ विकुर्वणा कर सकते हैं, किन्तु मायी मिथ्यादृष्टि देव यथेच्छ विकुर्वणा नहीं कर पाते। मायी मिथ्यादृष्टि देव यदि ऋजु रूप की विकुर्वणा करना चाहते हैं तो वक्ररूप की विकुर्वणा हो जाती है और जब वे वक्ररूप की विकुर्वणा करना चाहते हैं तो ऋजुरूप की विकुर्वणा हो जाती है। अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक देव के साथ ऐसा नहीं होता। वह जब जिस रूप की विकुर्वणा करना चाहता है तब उसी रूप की विकुर्वणा हो जाती है। महर्द्धिक देव एकरूप यावत् अनेक रूपों की विकुर्वणा कर सकते हैं। ये हजारों रूपों की विकुर्वणा करके परस्पर एक-दूसरे के साथ संग्राम करने में समर्थ हैं, किन्तु वैक्रियकृत वे शरीर एक ही जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं। नैरयिकों में प्रथम नरक से लेकर पंचम नरक तक के नैरयिक एक रूप की भी विकुर्वणा करते हैं और अनेक रूपों की भी विकुर्वणा करते हैं। विकुर्वणा करने से उनकी वेदना की उदीरणा होती है। छठी एवं सातवीं नरक के नैरयिक गोबर के कीड़ों के समान बहुत बड़े वज्रमय मुख वाले रक्तवर्ण कुंथुओं के रूपों की विकुर्वणा करते हैं। वायुकाय के जीव एवं बलाहक (मेघ पंक्ति) भी अपने सामर्थ्य के अनुसार विकुर्वणा करते हैं।

विकुर्वणा आत्म-कर्म एवं आत्म-प्रयोग से होती है, पर-कर्म एवं पर-प्रयोग से नहीं। सम्यग्दृष्टि देवों में नवग्रैवेयक एवं पाँच अनुत्तरविमानवासी देव अनेकविध विकुर्वणा करने में समर्थ होते हुए भी विकुर्वणा नहीं करते हैं।

इन्द्रिय

इन्द्र का अर्थ है आत्मा। जो आत्मा (इन्द्र) का लिंग है वह इन्द्रिय है। इन्द्रियाँ व्यावहारिक दृष्टि से आभिनिबोधिक ज्ञान में सहायभूत होती हैं। श्रुतज्ञान आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानपूर्वक होता है, इसलिए श्रुतज्ञान में भी इन्द्रियों को निमित्त माना जा सकता है। जैनदर्शन में 'इन्द्रिय' शब्द से मन का ग्रहण नहीं होता है। मन इसीलिए अनिन्द्रिय या नोइन्द्रिय कहा गया है। इन्द्रियाँ पाँच प्रकार की हैं-(१) श्रोत्रेन्द्रिय, (२) चक्षु-इन्द्रिय, (३) घ्राणेन्द्रिय, (४) रसनेन्द्रिय और (५) स्पर्शनेन्द्रिय। ये पाँचों इन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों के नाम से जानी जाती हैं। जैनेतरदर्शनों में पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी स्वीकार की गई हैं, यथा-(१) पाणि (हाथ), (२) पाद (पैर), (३) पायु, (४) उपस्थ एवं (५) वाक्। जैनदर्शन में कर्मेन्द्रियों का अलग से कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, किन्तु इनका समावेश शरीर के अंगोपांगों में हो जाता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों में श्रोत्र से शब्द का, चक्षु से रूप का, घ्राण से गन्ध का, जिह्वा से रस का तथा स्पर्शनेन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान होता है। वर्णादि के भेदों के आधार पर पाँच इन्द्रियों के २३ विषय और २४० विकार माने जाते हैं। शब्द एवं रूप विषय को आगम में काम कहा गया है तथा गन्ध, रस एवं स्पर्श को भोग कहा गया है। पाँचों को मिलाकर काम-भोग कहा जाता है। पाँच इन्द्रियों में चक्षु को छोड़कर शेष चार इन्द्रियाँ प्राप्यकारी हैं अर्थात् वे विषयों के स्पृष्ट होने पर ही उनका ज्ञान कराती हैं, अन्यथा नहीं। जबकि चक्षु-इन्द्रिय एवं मन को अप्राप्यकारी माना गया है, क्योंकि ये विषयों से अस्पृष्ट रहकर ही उनका ज्ञान करा देते हैं। न्याय-वैशेषिकदर्शन में चक्षु को भी प्राप्यकारी माना गया है तथा बौद्धदर्शन में चक्षु एवं श्रोत्र दो इन्द्रियों को अप्राप्यकारी कहा गया है।

पाँचों प्रकार की इन्द्रियाँ द्रव्य एवं भाव के भेद से दो-दो प्रकार की होती हैं। आगम में द्रव्येन्द्रिय के आठ भेद प्रतिपादित हैं-दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो घ्राण, एक जिह्वा और एक स्पर्शन। भावेन्द्रिय पाँच प्रकार की कही गई हैं-श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन। तत्त्वार्थसूत्र में इन्द्रिय के द्रव्य एवं भाव भेद करते समय द्रव्येन्द्रिय के दो प्रकार कहे गए हैं-(१) निर्वृत्ति एवं (२) उपकरण।[१] निर्वृत्ति का अर्थ है रचना। निर्माण नामकर्म एवं अंगोपांग नामकर्म के फलस्वरूप विशिष्ट पुद्गलों से इन्द्रिय की रचना होना निर्वृत्ति द्रव्येन्द्रिय है। यह इन्द्रिय का आकार मात्र होता है। उपकरण द्रव्येन्द्रिय निर्वृत्ति का उपघात नहीं होने देती तथा उसकी स्थिति आदि में सहायता करती है। भावेन्द्रिय भी दो प्रकार की होती हैं-(१) लब्धि और (२) उपयोग।[२] लब्धि का अर्थ है जानने की शक्ति। जानने की शक्ति ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है। उपयोग का तात्पर्य है जानने की शक्ति का व्यापार।

जिस जीव में जितनी इन्द्रियाँ पायी जाती हैं, वह जीव उसी नाम से पुकारा जाता है, यथा-जिस जीव में एक स्पर्शनेन्द्रिय पायी जाती है उसे एकेन्द्रिय; जिसमें स्पर्श एवं रसना ये दो इन्द्रियाँ पायी जाती हैं उसे द्वीन्द्रिय; जिसमें स्पर्शन, रसना एवं घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ पायी जाती हैं उसे त्रीन्द्रिय; जिसमें चक्षु सहित चार इन्द्रियाँ पायी जाती हैं उसे चतुरिन्द्रिय एवं जिसमें श्रोत्र सहित पाँचों इन्द्रियाँ पायी जाती हैं उस जीव को पंचेन्द्रिय कहा जाता है।

हमें जो पाँच इन्द्रियाँ प्राप्त हुई हैं वे वस्तुतः ज्ञानेन्द्रियों के रूप में प्राप्त हुई हैं, किन्तु उन्हें हम भोगेन्द्रियों के रूप में अधिक प्रयोग कर रहे हैं। इन्द्रियों से न केवल शब्दादि को जानते हैं अपितु उनसे भोग में अधिक प्रवृत्त होते हैं।

उच्छ्वास

संसारस्थ प्राणी में कम से कम चार प्राण आवश्यक रूप से पाए जाते हैं-(१) स्पर्शनेन्द्रियबलप्राण, (२) कायबलप्राण, (३) श्वासोच्छ्वास

१. निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्। *-तत्त्वार्थसूत्र २/१७*
२. लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्। *-वही २/१८*

और (४) आयुष्य। इन चार प्राणों में श्वासोच्छ्वास को भी प्राण की श्रेणी में लिया गया है। आधुनिक विज्ञान में भी श्वसन क्रिया को सजीवता का एक आधार माना गया है। आगम में भी चारों गतियों के पर्याप्तक जीवों में श्वासोच्छ्वास प्राण को अनिवार्य माना गया है। आगम में श्वसन क्रिया को प्रतिपादित करने वाले आन, प्राण, उच्छ्वास एवं निःश्वास शब्दों का प्रयोग हुआ है। सभी जीव ये चार क्रियाएँ करते हैं। उनमें स्वाभाविक रूप से श्वास ग्रहण करने की क्रिया को आन एवं छोड़ने की क्रिया को प्राण कह सकते हैं तथा ऊँचा श्वास लेने एवं श्वास बाहर निकालने को उच्छ्वास एवं निःश्वास कहा जा सकता है। कुल मिलाकर ये चारों शब्द श्वसन क्रिया को ही अभिव्यक्त करते हैं। यह श्वसन क्रिया मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों, कीड़ों-मकोड़ों आदि प्राणियों में तो हमें स्पष्ट दिखाई देती है, किन्तु आगम के अनुसार वैक्रिय शरीरधारी नैरयिकों एवं देवों में भी निरन्तर श्वसन क्रिया चलती रहती है। भगवान महावीर से उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम ने प्रश्न किया कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों में होने वाले आन, प्राण एवं श्वासोच्छ्वास को तो हम जानते-देखते हैं, किन्तु पृथ्वीकाय से वनस्पतिकाय पर्यन्त के एकेन्द्रिय जीव में आन, प्राण एवं श्वासोच्छ्वास होता है या नहीं? भगवान ने उत्तर दिया–हे गौतम ! ये पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीव भी श्वासोच्छ्वास करते हैं। इनमें भी आन-प्राण एवं उच्छ्वास-निःश्वास की क्रियाएँ होती हैं। आधुनिक विज्ञानवेत्ता वनस्पति में श्वसन क्रिया सिद्ध करने में सफल हो गए हैं, किन्तु पृथ्वीकायिकादि जीवों में श्वसन क्रिया सिद्ध करना उनके लिए अभी शेष है। महावीर की दृष्टि में पृथ्वीकायिकादि सभी जीव श्वसन क्रिया करते हैं। पृथ्वीकायिकादि जीव एकेन्द्रियों को ही श्वासोच्छ्वास के रूप में ग्रहण करते हैं।[1] नैरयिक जीव श्वासोच्छ्वास के रूप में अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय एवं अमनोज्ञ पुद्गलों को ग्रहण करते हैं तो देव इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ आदि पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। तिर्यञ्चगति के जीवों एवं मनुष्यों के द्वारा श्वासोच्छ्वास में क्या ग्रहण किया जाता है, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु ये भी वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से युक्त पुद्गलों को ही श्वास-प्रश्वास के रूप में ग्रहण करते हों और छोड़ते हों ऐसा सम्भव है। विज्ञान की मान्यता के अनुसार मनुष्यादि जीव ऑक्सीजन गैस को श्वास रूप में ग्रहण करते हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड गैस को निकालते हैं। विज्ञान की दृष्टि से ये दोनों वायु हैं, किन्तु सजीव हैं या निर्जीव, यह एक प्रश्न उठता है, दूसरा प्रश्न यह भी उठता है कि मनुष्यादि जीव श्वास के रूप में वायु के माध्यम से पुद्गलों को ग्रहण करते हैं या वायु को अथवा दोनों को? यह विचारणीय है। श्वासोच्छ्वास क्रिया का काल चौबीस दण्डक के जीवों में अलग-अलग है।

भाषा

द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के पर्याप्तक जीवों में भाषा का प्रयोग होता है। भाषा पर्याप्ति पूर्ण कर लेने पर इन जीवों में अपनी बात कहने की क्षमता प्राप्त हो जाती है। भाषा का प्रयोग हमें मनुष्यों में जिस प्रकार प्रभावशाली ढंग से होता दिखाई देता है उतना अन्य जीवों में नहीं। पशु-पक्षियों में भी हमें यत्किंचित् भाषा का प्रयोग दिखाई देता है, किन्तु लट, चींटी, मक्खी जैसे विकलेन्द्रियों में तो इसके प्रयोग का हमें कोई साक्षात् बोध नहीं होता है, किन्तु आगम उनमें भी भाषा का व्यवहार स्वीकार करता है। चींटियों में ऐसा व्यवहार अनुमित भी होता है। जो सहयोग एवं सहकर्मिता उनमें देखने को मिलती है वह बिना भाषा-व्यवहार के सम्भव नहीं है।

भाषा में शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे शब्द पौद्गलिक हैं वैसे भाषा भी पौद्गलिक हैं। जैनागमों के अनुसार भाषा का मूल कारण जीव है। जीव जब भाषावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है तभी वह उन्हें भाषा के रूप में अभिव्यक्त करता है। भाषा की उत्पत्ति शरीर से मानी गई है तथा उसका आकार वज्र की भाँति स्वीकार किया गया है। भाषा का अन्त लोकान्त में होता है, अर्थात् भाषा के पुद्गल लोक के अन्त तक पहुँच सकते हैं। ऐसा होने पर भी जैनों ने भाषा को नित्य नहीं माना है। भाषा लोकान्त तक पहुँचकर अथवा संख्यात योजनों तक जाकर विध्वंस को प्राप्त हो जाती है।

भाषा के सम्बन्ध में दार्शनिकों ने गहन विचार किया है। मीमांसक एवं वैयाकरण शब्द को नित्य मानते हैं। बौद्धदार्शनिक शब्द को अनित्य एवं कृतक मानते हैं। वाक्यपदीप में भर्तृहरि ने शब्द को ब्रह्मरूप प्रतिपादित किया है, यथा–

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"[2]

अर्थात् शब्दतत्त्व अनादिनिधन, अक्षर एवं ब्रह्मरूप है। उससे ही जगत् की अर्थरूप में परिणति होती है। काव्यादर्श में दण्डी ने शब्द के महत्त्व पर इस प्रकार प्रकाश डाला है–

"इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते॥"[3]

अर्थात् यदि संसार में शब्द नामक ज्योति प्रदीप्त नहीं होती तो समस्त संसार गहन अंधकारमय हो जाता। शब्द से हमारा समस्त व्यवहार होता है, इसलिए उसके अभाव में संसार अंधकारमय है।

सर्वार्थसिद्धि में शब्द को दो प्रकार का बतलाया है–(१) भाषात्मक और (२) अभाषात्मक। अभाषात्मक शब्द अचेतन जड़ से उत्पन्न होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–(१) प्रायोगिक एवं (२) वैस्रसिक। जो शब्द बादलों के गर्जन की भाँति बिना प्रयत्न के उत्पन्न होते हैं वे वैस्रसिक शब्द हैं तथा जो शब्द प्रयत्न द्वारा उत्पन्न होते हैं वे प्रायोगिक शब्द कहलाते हैं। वीणा, घण्टा आदि के शब्द इस दृष्टि से प्रायोगिक हैं। प्रायोगिक शब्द के पाँच प्रकार कहे गए हैं–(१) तत, (२) वितत, (३) घन, (४) शुषिर और (५) संघर्ष। भाषात्मक शब्द भी दो प्रकार का होता है–(१) साक्षर और (२) अनक्षर। अक्षरयुक्त शब्द साक्षर हैं तथा द्वीन्द्रियादि जीवों के द्वारा कहे गए शब्द अनक्षर हैं।

---

१. द्रव्यानुयोग, भाग १, पृ. ५१५

२. वाक्यपदीप १/१

३. काव्यादर्श १/४

व्याकरणदर्शन में शब्द के चार प्रकार या अवस्थाएँ हैं–(१) परा, (२) पश्यन्ती, (३) मध्यमा और (४) वैखरी। उच्चारण के पूर्व शब्दतत्त्व अपनी मूल अवस्था में रहता है। उसी शब्दतत्त्व को भर्तृहरि ने अनादि, अक्षर ब्रह्म कहा है। इसे विद्वानों ने परावाणी कहा है। पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाक् इसी के विवर्त हैं। वक्ता की विवक्षा के प्रयत्न से सूक्ष्म स्पन्दन उत्पन्न होता है। इस स्थिति में ज्ञात या अनुभूत अर्थ और शब्द का योग होता है। वाणी की यह स्थिति 'पश्यन्ती' है। नाभिदेशस्थ पश्यन्ती वाणी जब प्राणवायु से उद्वेजित होकर हृदयाकाश में आ जाती है तो उसे मध्यमा वाणी कहा जाता है। लोक-व्यवहार में जिस ध्वन्यात्मक शब्द का प्रयोग किया जाता है वह वैखरी वाणी है। श्रोत्र के द्वारा वैखरी भाषा को ही सुना जाता है।

जैनागमों में जिस भाषा का वर्णन प्राप्त है वह व्याकरणदर्शन की वैखरी वाक् ही है। भाषा के लिए कहा गया है कि भाषा जब बोली जाती है तभी वह भाषा कहलाती है, उसके पूर्व एवं पश्चात् नहीं।

जैनदर्शन के अनुसार भाषा के मुख्यतः चार प्रकार हैं–(१) सत्य, (२) मृषा, (३) सत्यामृषा (मिश्र) और (४) असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा। सत्य भाषा जनपद सत्य, सम्मत सत्य आदि के भेद से १० प्रकार की कही गई है। मृषा भाषा के भी क्रोधनिसृता, माननिसृता आदि दस प्रकार हैं। सत्यामृषा के उत्पन्न मिश्रिता आदि दस तथा असत्यामृषा के आमंत्रणी आदि बारह भेद प्रतिपादित हैं। इनमें से केवली दो ही प्रकार की भाषा बोलते हैं–(१) सत्य और (२) असत्यामृषा।

जैन आगमों में भाषाविषयक चिन्तन समृद्ध है, जो आधुनिक भाषाविदों के लिए भी अध्ययन की उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है। आगमों की मान्यता है कि जीव भाषावर्गणा के जिन द्रव्यों को सत्य भाषा के रूप में ग्रहण करता है, वह उन्हें सत्य भाषा के रूप में निकालता है। जिन द्रव्यों को वह मृषा भाषा के रूप में ग्रहण करता है, उन्हें मृषा भाषा के रूप में निकालता है। इसी प्रकार सत्यामृषा एवं असत्यामृषा भाषा के रूप में द्रव्यों को ग्रहण करने पर क्रमशः उन्हीं भाषाओं के रूप में उन द्रव्यों को निकालता है।

योग-प्रयोग

योग एवं प्रयोग में बहुत सूक्ष्म भेद है। मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति को जहाँ योग कहा गया है वहाँ योग के साथ जीव के व्यापार का जुड़ जाना प्रयोग है।

मन, वचन एवं काया के कारण जीव के प्रदेशों में जो स्पन्दन या हलचल होती है उसे भी योग कहा गया है। योगदर्शन में 'योग' शब्द का प्रयोग 'चित्त की वृत्तियों के निरोध' अर्थ में हुआ है।[1] भगवद्गीता में कर्म के कौशल को योग कहा गया है।[2] योग एक प्रकार से समाधि के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। जैनाचार्यों ने योग का समाधि अर्थ स्वीकार करते हुए योगविषयक ग्रन्थों की रचना की है किन्तु आगम में योग का अर्थ समाधि नहीं है। आगम में तो मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति को योग कहा गया है। यह योग कर्मबन्ध में निमित्त बनता है। विशेषतः प्रकृतिबंध एवं प्रदेशबंध में योग को निमित्त माना गया है।

योग एवं प्रयोग में जो स्पष्ट भेद है वह यह कि प्रयोग में जीव के व्यापार की प्रधानता होती है जबकि योग में मन, वचन एवं काया के व्यापार की प्रधानता होती है।[3]

योग के जिस प्रकार तीन एवं पन्द्रह भेद हैं उसी प्रकार प्रयोग के भी वे ही तीन एवं पन्द्रह भेद हैं। तीन भेद हैं–(१) मन, (२) वचन और (३) काया। पन्द्रह में इनका ही विस्तार है। तदनुसार मन के ४, वचन के ४ और काया के ४ भेदों की गणना होती है। मन के ४ भेद हैं–सत्य, मृषा, सत्यामृषा एवं असत्यामृषा। वचन के भी इसी प्रकार सत्य, मृषा, सत्यामृषा एवं असत्यामृषा भेद होते हैं। काया के ७ भेद हैं–(१) औदारिकशरीरकाय, (२) औदारिकमिश्रकाय, (३) वैक्रियशरीरकाय, (४) वैक्रियमिश्रकाय, (५) आहारकशरीरकाय, (६) आहारक-मिश्रशरीरकाय और (७) कार्मणशरीरकाय।

मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर उन्हें मनरूप में परिणत करना तथा चिन्तन-मनन करना मनोयोग है। भाषावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर वस्तु स्वरूप का कथन करना, बोलना वचनयोग है। औदारिक आदि शरीरों से हलन-चलन, संक्रमण आदि क्रियाएँ करना काययोग है। मन आत्मा से भिन्न, रूपी एवं अचित्त है। वह अजीव होकर भी जीवों के होता है, अजीवों के नहीं। व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में मन के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य आया है कि मनन करते समय ही मन 'मन' कहलाता है उसके पूर्व एवं पश्चात् नहीं।[4]

मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति के आधार पर दण्ड भी तीन प्रकार के कहे गए हैं–(१) मनोदण्ड, (२) वचनदण्ड और (३) कायदण्ड। गुप्ति भी तीन प्रकार की कही गई है–(१) मनोगुप्ति, (२) वचनगुप्ति, और (३) कायगुप्ति।

द्रव्यानुयोग के प्रयोग अध्ययन में गतिप्रपात का भी समावेश किया गया है। इसके अन्तर्गत पाँच प्रकार की गतियों का निरूपण हुआ है, यथा–(१) प्रयोगगति (२) ततगति, (३) बन्धछेदनगति, (४) उपपातगति और (५) विहायोगति। विहायोगति के अन्तर्गत १७ प्रकार की गति का निरूपण है जिनमें स्पृशद्गति, अस्पृशद्गति आदि की गणना की गई है। गति का यह वर्णन वैज्ञानिकों के लिए शोध का विषय है। विशेषतः अस्पृशद्गति का वर्णन आश्चर्यजनक है जिसके अनुसार परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों को परस्पर स्पर्श किए बिना होने वाली गति को अस्पृशद्गति कहा गया है। स्पृशद्गति के उदाहरण तो आधुनिक विज्ञान में उपलब्ध हैं, यथा–रेडियो, दूरदर्शन आदि की तरंगें स्पृशद्गति वाली हैं, किन्तु अस्पृशद्गति का तथ्य शोध का विषय है।

---

१. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। –योगसूत्र १/२

२. योगः कर्मसु कौशलम्।

३. साध्वी डॉ. मुक्तिप्रभा जी ने अपने शोधप्रबन्ध 'योग-प्रयोग-अयोग' में योग एवं प्रयोग के भिन्न अर्थों को ग्रहण किया है।

४. द्रव्यानुयोग, भाग १, पृ. ५४०

उपयोग-पासणया

आगमों में ज्ञान एवं दर्शन को उपयोग कहा गया है। ज्ञान को साकार उपयोग एवं दर्शन को निराकार उपयोग कहा जाता है। ये दोनों उपयोग जीव के लक्षण हैं। साकारोपयोग के पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान के आधार पर आठ भेद किये जाते हैं, यथा–(१) आभिनिबोधिकज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यवज्ञान, (५) केवलज्ञान, (६) मत्यज्ञान, (७) श्रुतअज्ञान और (८) विभंगज्ञान। अनाकारोपयोग के चार भेद हैं–(१) चक्षुदर्शन, (२) अचक्षुदर्शन, (३) अवधिदर्शन और (४) केवलदर्शन।

ज्ञान-अज्ञान के सम्बन्ध में आगे ज्ञान शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया गया है। अतः यहाँ पर दर्शन पर विचार कर लेना आवश्यक है। 'दर्शन' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता आया है। दर्शन शब्द दृष्टि एवं फिलॉसफी के अर्थ में तो प्रयुक्त होता ही है, किन्तु जैनदर्शन में उसका प्रयोग ज्ञान के पूर्व होने वाले सामान्य ग्रहण अथवा स्वसंवेदन के अर्थ में भी होता रहा है। दर्शनरूप अनाकारोपयोग निर्विकल्पक होता है। इसके चक्षुदर्शन आदि चार प्रकार निरूपित हैं। चक्षु से होने वाला दर्शन चक्षुदर्शन कहा जाता है तथा चक्षु से भिन्न इन्द्रियों एवं मन के द्वारा होने वाला सामान्य ग्रहण अचक्षुदर्शन कहा जाता है। अवधिदर्शन अवधिज्ञान के पूर्व सामान्य ग्राहक होता है किन्तु केवलदर्शन में यह बात नहीं है। प्रारम्भ में केवलज्ञान पहले होता है, उसके पश्चात् फिर केवलदर्शन एवं केवलज्ञान का क्रम प्रारम्भ होता है।

उपयोग के रूप में आगम के अनुसार ज्ञान एवं दर्शन युगपद्भावी नहीं हैं। एक अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् ही इन उपयोगों में परिवर्तन होता रहता है। केवलज्ञानियों में भी एक समय में एक ही उपयोग पाया जाता है। दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं। सिद्धसेनसूरि का मानना है कि केवलज्ञान एवं केवलदर्शनोपयोग युगपद्भावी हैं। केवलज्ञानावरण एवं केवलदर्शनावरण कर्मों का सम्पूर्ण क्षय हो जाने के कारण इन दोनों उपयोगों का युगपद्भाव मानना चाहिए। सिद्धसेनसूरि का यह तर्क आगम विरुद्ध है। जिनभद्रगणि, वीरसेन आदि अनेक आचार्यों ने केवलज्ञान एवं केवलदर्शन के युगपद्भाव एवं क्रमभाव को लेकर विचार किया है। आगम में कहा गया है कि केवलज्ञानी जिस समय रत्नप्रभा पृथ्वी आदि को आकारों, हेतुओं, उपमाओं, दृष्टान्तों, वर्णों, संस्थानों, प्रमाणों और उपकरणों से जानते हैं उस समय देखते नहीं हैं तथा जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं हैं।

पासणया एवं उपयोग में विशेष अन्तर नहीं है। एक स्थूल अन्तर यह है कि उपयोग में ज्ञान एवं दर्शन के समस्त भेद गृहीत होते हैं, जबकि पासणया में मतिज्ञान, मतिअज्ञान एवं अचक्षुदर्शन का ग्रहण नहीं होता। पासणया के लिए संस्कृत में पश्यता शब्द का प्रयोग हुआ है, जो बौद्धदर्शन में प्रचलित विपश्यना से भिन्न है। पासणया भी उपयोग की भाँति साकार एवं अनाकार में विभक्त है। साकार पासणया में श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवलज्ञान, श्रुतअज्ञान एवं विभंगज्ञान का समावेश होता है जबकि अनाकार पश्यता में चक्षु, अवधि एवं केवलदर्शन की गणना होती है।

दृष्टि

स्थूलरूप से 'दृष्टि' शब्द का अर्थ नेत्र या नेत्रों से देखना लिया जाता है। किन्तु जैनागमों में 'दृष्टि' शब्द जीवन एवं जगत् के प्रति जीव के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। दृष्टि का सम्बन्ध आत्मा से है, बाह्य शरीर, इन्द्रियादि से नहीं। कोई भी जीव दृष्टिविहीन नहीं होता, चाहे वह एकेन्द्रिय का पृथ्वीकायिक जीव हो या सिद्ध जीव। सबमें दृष्टि विद्यमान है। दृष्टि तीन प्रकार की कही गई है–(१) सम्यग्दृष्टि, (२) मिथ्यादृष्टि और (३) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)। जो जीव संसार में सुख समझकर विषयभोगों में रमते हैं वे मिथ्यादृष्टि होते हैं। जो जीव इनसे ऊपर उठकर मोक्षसुख के अभिलाषी होते हैं वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। इनकी विषयभोगों में आसक्ति घट जाती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए सात प्रकृतियों का क्षय, उपशम या क्षयोपशम होना आवश्यक है। वे सात प्रकृतियाँ मोहकर्म की हैं–अनन्तानुबन्धी कषाय का चतुष्क, सम्यक्त्वमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय एवं मिश्रमोहनीय। जब मोहकर्म की ये सात प्रकृतियाँ क्षीण होती हैं तभी दृष्टि सम्यक् बन पाती है। जब सम्यग्दर्शन भी न हो, मिथ्यादृष्टि भी न हो तो उसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।

तत्त्वार्थसूत्र में जीवादि तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धा करने को सम्यग्दर्शन कहा गया है।[1] जीवादि सात या नवतत्त्वों पर श्रद्धा होने का तात्पर्य है जीवन एवं जगत् के प्रति सम्यक् दृष्टिकोण। सम्यग्दर्शन का एक अभिप्राय है सुदेव, सुगुरु एवं सुधर्म पर श्रद्धा करना। अरिहंत एवं सिद्ध को सुदेव मानना, सुसाधु को गुरु मानना एवं जिनेन्द्र द्वारा प्ररूपित धर्म को धर्म मानना–सम्यक्त्व की एक पहचान है। सम्यक्त्व के पाँच लक्षण माने गये हैं–(१) शम, (२) संवेग, (३) निर्वेद, (४) अनुकम्पा और (५) आस्था। क्रोधादि कषायों का शमन शम है। धर्म के प्रति उत्साह, साधर्मिकों के प्रति अनुराग या परमेष्ठियों के प्रति प्रीति संवेग है। विषयभोगों से वैराग्य निर्वेद है। दुःखी प्राणियों के दुःख से अनुकम्पित होना अनुकम्पा है। जिनदेव, सुसाधु एवं जिनप्रणीत पर श्रद्धा करना एवं तत्त्वार्थों पर श्रद्धा करना आस्था या आस्तिक्य है। जो जिनवचनों पर श्रद्धा रखकर उन्हें जीवन में अपनाता है वह निर्मल एवं संक्लेशरहित होकर संसार-भ्रमण को परीत अर्थात् सीमित कर लेता है।[2]

ज्ञान

ज्ञान आत्मा का लक्षण है एवं वह आत्मा से अभिन्न है। वह आत्म-स्वरूप ही है। "जे आया से विण्णाया, जे विण्णाया से आया।" वाक्य

---

१. तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। –*तत्त्वार्थसूत्र १/२*

२. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं। अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्त संसारी॥ –*उत्तराध्ययन ३६/२६४*

से भी यह बात स्पष्ट होती है कि जो विज्ञाता है वह आत्मा है और जो आत्मा है वह विज्ञाता है। न्यायदर्शन में आत्मा को ज्ञान का अधिकरण माना गया है। आत्मा मूलतः न्यायदर्शन में जड़ है। उसमें ज्ञानगुण आगतगुण है। वेदान्त में आत्मा को नित्य, ज्ञानात्मक एवं आनन्दयुक्त स्वीकार किया गया है। बौद्धदर्शन में विज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान अथवा ज्ञान ही सत् है। बौद्धों ने आत्मा का पृथक् अस्तित्व स्वीकार नहीं किया है, विज्ञान या ज्ञान की सन्तति से ही पुनर्जन्म सिद्ध कर दिया है। सांख्यदर्शन में ज्ञान को जड़ प्रकृति का कार्य स्वीकार किया गया है।

जैनदर्शन में आत्मा के विभिन्न लक्षण हैं, जिनमें ज्ञान एवं दर्शन मुख्य हैं। ज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो आत्मा में ज्ञान की न्यूनाधिकता होती रहती है, किन्तु आत्मा कभी ज्ञानरहित नहीं होता। ज्ञान का आवरण नष्ट हो जाने पर पूर्ण ज्ञान अथवा केवलज्ञान प्रकट हो जाता है। आत्मा स्वभावतः ज्ञानात्मक है। यह ज्ञान बाह्य पदार्थों से आया हुआ नहीं है, किन्तु इससे बाह्य पदार्थों को जाना अवश्य जाता है। ज्ञानावरण कर्म आत्मा के ज्ञान को आवरित अवश्य करता है, किन्तु इससे आत्मा कभी ज्ञानशून्य नहीं बनती। यह अवश्य है कि कभी आत्मा में ज्ञान होता है एवं कभी अज्ञान। जब जीव मिथ्यादृष्टियुक्त होता है तो उसके ज्ञान को अज्ञान कहा जाता है तथा जब वह सम्यग्दृष्टियुक्त होता है तो उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से जानने की योग्यता का विकास होता है। बाह्य पदार्थों को जैनदर्शन में ज्ञान की उत्पत्ति में कारण नहीं माना गया, किन्तु ज्ञान के द्वारा उन्हीं बाह्य पदार्थों को जाना जाता है, जो अस्तित्ववान् हैं, थे या रहेंगे।

ज्ञान जैनदर्शन में स्व-पर-प्रकाशक है, किन्तु इसके सम्बन्ध में द्रव्यानुयोग में स्पष्ट कथन प्राप्त नहीं है। दर्शनग्रन्थों में एवं कुन्दकुन्दाचार्य ने इसका स्पष्ट निरूपण किया है।[१] कुन्दकुन्द ने वहाँ ज्ञान की भाँति दर्शन को भी स्व-पर-प्रकाशक माना है। धवला टीकाकार वीरसेनाचार्य ने दर्शन को स्व-संवेदन या अन्तर्चित् प्रकाशक माना है तथा ज्ञान को बाह्य प्रकाशक स्वीकार किया है।[२] इससे दर्शन स्व-प्रकाशक एवं ज्ञान पर-प्रकाशक सिद्ध होता है।

दर्शन एवं ज्ञान में क्या अन्तर है, इसे सिद्धसेनसूरि ने इस प्रकार स्पष्ट किया है–

"जं सामण्णगहणं दंसणमेयं विसेसियं नाणं।
दोण्ह वि णयाण एसो पाडेक्कं अत्थपज्जाओ॥"[३]

अर्थात् जो सामान्य ग्रहण है वह दर्शन है तथा जो विशेष ग्रहण है वह ज्ञान है। द्रव्यार्थिक नय से दर्शन सामान्य का ग्रहण करता है तथा पर्यायार्थिक नय से वह विशेष का ग्रहण करता है। वीरसेनाचार्य ने इस मान्यता पर आक्षेप किया है। उनका कथन है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है। उसमें से सामान्य एवं विशेष का ग्रहण अलग-अलग नहीं होता, अपितु एक साथ होता है। वस्तु को सामान्य एवं विशेष में नहीं बाँटा जा सकता। वीरसेनाचार्य ने सामान्य ग्रहण को भी दर्शन स्वीकार किया है, किन्तु तब से सामान्य का अर्थ आत्मा करके आत्म-ग्रहण को दर्शन कहते हैं।[४] वीरसेन के इस मन्तव्य पर भी प्रश्न खड़ा होता है कि यदि आत्म-ग्रहण को ही दर्शन कहा जायेगा तो दर्शन के चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन आदि भेद किस प्रकार घटित होंगे।

जिनभद्रगणि ने मतिज्ञान के एक भेद अवग्रह को परिभाषित करते हुए सामान्य ग्रहण को अवग्रह कहा है। यहाँ सिद्धसेन निरूपित दर्शन-लक्षण एवं जिनभद्रगणि के अवग्रह-लक्षण में कोई भेद नहीं रह जाता है क्योंकि दोनों में सामान्य ग्रहण मौजूद है। आगम तो दर्शन एवं ज्ञान को पृथक् मानता है, इसलिए दोनों का अलग-अलग प्रयोग हुआ है। दूसरी बात यह है कि दर्शनगुण दर्शनावरणकर्म के क्षय या क्षयोपशम से प्रकट होता है तथा ज्ञानगुण ज्ञानावरणकर्म के क्षय या क्षयोपशम से अभिव्यक्त होता है।

दर्शन एवं ज्ञान में कुछ मौलिक भेद हैं, यथा–(१) ज्ञान साकार होता है एवं दर्शन निराकार होता है। (२) ज्ञान सविकल्पक होता है एवं दर्शन निर्विकल्पक होता है। (३) पहले दर्शन होता है एवं फिर ज्ञान होता है। (४) दर्शनावरणकर्म के क्षय या क्षयोपशम से दर्शन प्रकट होता है तथा ज्ञानावरणकर्म के क्षय या क्षयोपशम से ज्ञान प्रकट होता है। (५) वस्तु के प्रथम निर्विशेष संवेदन को दर्शन कहा जा सकता है तथा ज्ञान को सविशेष (साकार) संवेदन कहा जा सकता है।

सामान्य ग्रहण का अर्थ सामान्य का ग्रहण न करके सामान्य रूप से ग्रहण किया जाय तो सिद्धसेन के द्वारा प्रदत्त लक्षण में आक्षेप नहीं रहता। दर्शन में वस्तु का ग्रहण सामान्यरूपेण अर्थात् निर्विशेषरूपेण होता है। इसमें भेद का ग्रहण नहीं होता।

ज्ञान के पाँच एवं अज्ञान के तीन प्रकार हैं। ज्ञान के पाँच प्रकार हैं–(१) आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान), (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःपर्यायज्ञान और (५) केवलज्ञान। अज्ञान के तीन प्रकार हैं–(१) मतिअज्ञान, (२) श्रुतअज्ञान और (३) विभंगज्ञान।

---

१. (i) स्व-परव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम्। *–प्रमाणनयतत्त्वालोक १/१*
(ii) अप्पाणं विणु णाणं णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो। म्हा सपरपयासं णाणं तह दंसणं होदि॥ *–नियमसार १७१*

२. (i) अन्तर्बहिर्मुखयोश्चित्प्रकाशयोर्दर्शनज्ञानव्यपदेशभाजोरेकत्वविरोधात्। *–धवला, पुस्तक १, पृ. १४६*
(ii) वीरसेनाचार्य ने दर्शन को अंतरंग उपयोग एवं ज्ञान को बहिरंग उपयोग भी कहा है। *–द्रष्टव्य, धवला, पुस्तक १३, पृ. २०८*

३. सन्मतिप्रकरण २/१

४. धवला, पुस्तक १, पृ. १४९

अज्ञान का अर्थ विपरीत ज्ञान है, ज्ञान का अभाव नहीं। ज्ञानी भी जानता है एवं अज्ञानी भी जानता है, किन्तु दोनों की दृष्टि भिन्न होती है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि होता है जबकि ज्ञानी सम्यग्दृष्टि होता है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान 'अज्ञान' कहा जाता है तथा सम्यग्दृष्टि का ज्ञान 'सम्यग्ज्ञान' कहा जाता है।

मन एवं इन्द्रियों की सहायता से होने वाला ज्ञान मतिज्ञान है। इसे ही आगमों में आभिनिवोधिकज्ञान कहा गया है। मतिज्ञान में स्मृति, प्रत्यभिज्ञान (संज्ञा), तर्क (चिन्ता) और आभिनिवोध (अनुमान) का भी समावेश हो जाता है। श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। यह संकेतग्राही ज्ञान है। मतिज्ञान से फलित होने वाला ज्ञान है। मति एवं श्रुतज्ञान इन्द्रिय एवं मन के सापेक्ष होने के कारण परोक्ष कहे गये हैं। नन्दीसूत्र में एक अपेक्षा से इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान को भी प्रत्यक्ष कहा गया है। यही नहीं जैनदर्शन में जो प्रमाणमीमांसा का विकास हुआ उसमें भी इन्द्रिय एवं मन से होने वाले ज्ञान को प्रत्यक्ष की श्रेणी में लेते हुए सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष नाम दिया गया है।

अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान एवं केवलज्ञान में इन्द्रिय एवं मन की अपेक्षा नहीं होती। ये तीनों ज्ञान सीधे आत्मा से होने के कारण प्रत्यक्ष कहे गये हैं। दार्शनिकों ने इन तीनों का पारमार्थिक प्रत्यक्ष या मुख्य प्रत्यक्ष नाम दिया है। अवधिज्ञान में आत्मा के द्वारा रूपी द्रव्यों को एक निश्चित क्षेत्र तक प्रत्यक्ष रूप से जाना जाता है। अवधिज्ञान अनुगामी, अननुगामी, हीयमान, वर्धमान, प्रतिपाती एवं अप्रतिपाती के भेद से छह प्रकार का होता है। मनःपर्यायज्ञान में दूसरे के मन की पर्यायों को जाना जाता है। केवलज्ञान के द्वारा तीनों लोकों एवं तीनों कालों की समस्त पर्यायों को जान लिया जाता है। केवलज्ञान का दूसरा नाम अनन्तज्ञान भी है। इस ज्ञान के प्राप्तकर्त्ता को अनन्तज्ञानी या सर्वज्ञ भी कहा जाता है। सर्वज्ञ को कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है।

संयत

'संयम' शब्द चरणानुयोग का विषय है, किन्तु संयमपालक संयत-व्यक्ति द्रव्यानुयोग का विषय बनता है। इसलिए संयत की चर्चा द्रव्यानुयोग में की गई है। सांसारिक जीवों को तीन भागों में विभक्त किया जाता है-(१) संयत, (२) संयतासंयत और (३) असंयत। महाव्रतधारी साधु-साध्वियों को संयत, पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावकों को संयतासंयत एवं शेष (प्रथम से चतुर्थ गुणस्थानवर्ती) जीवों को असंयत कहा जाता है। कोई जीव सम्यग्दृष्टि होने पर भी तब तक असंयत ही बना रहता है जब तक वह देशविरत या सर्वविरत न हो जाय। संयत सर्वविरति चारित्र से युक्त होते हैं। चारित्र के पाँच भेदों के आधार पर संयत भी पाँच प्रकार के कहे गये हैं-(१) सामायिक संयत, (२) छेदोपस्थापनीय संयत, (३) परिहारविशुद्धि संयत, (४) सूक्ष्मसंपराय संयत और (५) यथाख्यात संयत।[1]

संयतों अथवा साधुओं को आगम में 'निर्ग्रन्थ' भी कहा गया है। निर्ग्रन्थ पाँच प्रकार के होते हैं-(१) पुलाक, (२) बकुश, (३) कुशील, (४) निर्ग्रन्थ और (५) स्नातक। संयमवान् होते हुए भी जो साधु किसी छोटे-से दोष के कारण संयम को किंचित् असार कर देता है वह पुलाक कहलाता है। बकुश वह श्रमण है जो आत्म-शुद्धि की अपेक्षा शरीर की विभूषा एवं उपकरणों की सजावट में अधिक रुचि रखता है। कुशील निर्ग्रन्थ दो प्रकार का होता है-(१) प्रतिसेवना कुशील और (२) कषाय कुशील। जो साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लिंग एवं शरीर आदि हेतुओं से संयम के मूलगुणों या उत्तरगुणों में दोष लगाता है उसे प्रतिसेवना कुशील कहते हैं। कषाय कुशील संयम के मूलगुणों एवं उत्तरगुणों में दोष नहीं लगाता, किन्तु संज्वलन कषाय की प्रकृति से वह युक्त होता है। 'निर्ग्रन्थ' भेद में कषाय प्रकृति एवं दोषों के सेवन का सर्वथा अभाव होता है। उसमें सर्वज्ञता प्रकट होने वाली रहती है तथा राग-द्वेष का अभाव हो जाता है। 'निर्ग्रन्थ' शब्द का वास्तविक अर्थ 'राग-द्वेष की ग्रन्थि से रहित' इसमें पूर्णतः घटित होता है। यह निर्ग्रन्थ वीतराग होता है। सर्वज्ञतायुक्त निर्ग्रन्थ 'स्नातक' कहे जाते हैं। पंचविध निर्ग्रन्थों में यह सर्वोत्कृष्ट स्थिति है।

संयत को प्रमत्त संयत एवं अप्रमत्त संयत की दृष्टि से भी विभक्त किया जाता है। प्रमत्त संयत साधु छठे गुणस्थान में रहता है तथा सातवें से वह अप्रमत्त दशा में रहता है।

लेश्या

सयोगी आत्मा के शुभाशुभ परिणाम लेश्या कहलाते हैं। लेश्या का सम्बन्ध योग से है। जब तक योग है तब तक लेश्या है, मन-वचन-काया की प्रवृत्तिरूप योग का अभाव होने पर लेश्या का भी अभाव हो जाता है। आवश्यकसूत्र की हारिभद्रीय टीका में लेश्या को परिभाषित करते हुए कहा गया है-"**श्लेषयन्त्यात्मानमष्टविधेन कर्मणा इति लेश्याः।**" अर्थात् जो आत्मा को अष्टविध कर्मों से श्लिष्ट करती है, वह लेश्या है। एक अन्य परिभाषा 'लिम्पतीति लेश्या' (धवला टीका) के अनुसार जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती है, वह लेश्या है। कर्मबंधन में प्रमुख हेतु कषाय और योग हैं। योग से कर्मपुद्गलरूपी रजकण आते हैं। कषायरूपी गोंद से वे आत्मा पर चिपकते हैं, किन्तु कषाय-गोंद को गीला करने वाला जल 'लेश्या' है। सूखा गोंद रजकण को नहीं चिपका सकता। इस प्रकार कषाय और योग से लेश्या भिन्न है। सर्वार्थसिद्धि, धवला टीका आदि ग्रन्थों में कषाय के उदय से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहा गया है।

लेश्या मुख्यतः दो प्रकार की होती है-(१) द्रव्यलेश्या और (२) भावलेश्या। मन, वचन एवं काया के माध्यम से जो आत्म-भावों की अभिव्यक्ति है, वह द्रव्यलेश्या है। द्रव्यलेश्या पौद्गलिक होती है और भावलेश्या अपौद्गलिक। द्रव्यलेश्या में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं, भावलेश्या अगुरुलघु होती है एवं वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से रहित होती है।

द्रव्य एवं भाव-इन दोनों प्रकार की लेश्याओं के छह भेद हैं-(१) कृष्णलेश्या, (२) नीललेश्या, (३) कापोतलेश्या, (४) तेजोलेश्या,

---

१. विस्तृत परिचय के लिए द्रव्यानुयोग, भाग २, पृ. ७९० पर आमुख देखा जाय।

(५) पद्मलेश्या और (६) शुक्ललेश्या। इनमें से प्रथम तीन लेश्याएँ अधर्म लेश्याएँ हैं तथा तेजो, पद्म एवं शुक्ल ये तीन लेश्याएँ धर्म लेश्याएँ हैं। अधर्म लेश्याएँ दुर्गतिगामिनी, संक्लिष्ट, अमनोज्ञ, अविशुद्ध, अप्रशस्त और शीत-रूक्ष स्पर्श वाली हैं तथा धर्म लेश्याएँ सुगतिगामिनी, असंक्लिष्ट, मनोज्ञ, विशुद्ध, प्रशस्त और स्निग्ध-उष्ण स्पर्श वाली हैं। ये छहों लेश्याएँ उत्तरोत्तर शुभ हैं।

वर्ण की अपेक्षा कृष्णलेश्या में काला वर्ण, नीललेश्या में नीला वर्ण, कापोतलेश्या में कबूतरी वर्ण, तेजोलेश्या में लाल वर्ण, पद्मलेश्या में पीला वर्ण और शुक्ललेश्या में श्वेत वर्ण होता है। रस की अपेक्षा कृष्णलेश्या में कड़वा, नीललेश्या में तीखा, कापोतलेश्या में कसैला, तेजोलेश्या में खटमीठा, पद्मलेश्या में कसैला-मीठा और शुक्ललेश्या में मधुर रस होता है। गंध की अपेक्षा कृष्ण, नील व कापोतलेश्याएँ दुर्गन्धयुक्त हैं तथा तेजो, पद्म व शुक्ललेश्याएँ सुगन्धयुक्त हैं। स्पर्श की अपेक्षा कृष्ण, नील व कापोतलेश्याएँ कर्कश स्पर्शयुक्त हैं तथा तेजो, पद्म व शुक्ललेश्याएँ कोमल स्पर्शयुक्त हैं।

प्रदेश की अपेक्षा कृष्ण से शुक्ललेश्या तक सभी लेश्याओं में अनन्त प्रदेश हैं। वर्गणा की अपेक्षा प्रत्येक लेश्या में अनन्त वर्गणाएँ हैं। प्रत्येक लेश्या असंख्यात आकाश प्रदेशों में है। यह वर्णन द्रव्यलेश्या के अनुसार है।

भावलेश्या की दृष्टि से कृष्णलेश्या का लक्षण देते हुए कहा गया है कि जो जीव पाँच आस्रवों में प्रवृत्त है, तीन गुप्तियों से अगुप्त है, षट्कायिक जीवों के प्रति अविरत है, महाआरम्भ में परिणत है, क्षुद्र एवं साहसी है, निःशंक परिणाम वाला, नृशंस एवं अजितेन्द्रिय है वह कृष्णलेश्या में परिणत होता है।

ईर्ष्यालु, असहिष्णु, अतपस्वी, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, विषयासक्त, द्वेषी, शठ, प्रमादी, रसलोलुप, आरम्भ से अविरत, क्षुद्र एवं दुःसाहसी जीव नीललेश्या में परिणत होता है।

जो वाणी से वक्र, आचार से वक्र, कपटी, सरलता से रहित, अपने दोषों को छिपाने वाला, औपधिक मिथ्यादृष्टि, अनार्य, दुष्टवादी, चोर, मत्सरी आदि होता है वह कापोतलेश्या में परिणत होता है।

जो नम्र, अचपल, मायारहित, अकुतूहली, विनयशील, दान्त, योग एवं उपधान (तप) युक्त है, प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी, पापभीरु एवं हितैषी है वह तेजोलेश्या में परिणत होता है।

जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त पतले हैं, जो प्रशान्तचित्त है, आत्मा का दमन करता है, योग एवं उपधानयुक्त है, अल्पभाषी, उपशान्त और जितेन्द्रिय है, वह पद्मलेश्या में परिणत होता है।

जो आर्त और रौद्रध्यानों का त्याग करके धर्म एवं शुक्लध्यान में लीन है, प्रशान्तचित्त और दान्त है, पाँच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त एवं जितेन्द्रिय है, वह शुक्ललेश्या में परिणत होता है।

लेश्या के सम्बन्ध में अन्य जानने योग्य विन्दु निम्न प्रकार हैं–

(१) जीव जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके काल करता है वह उसी लेश्या वाले जीवों में उत्पन्न होता है।

(२) पौद्गलिक होकर भी लेश्या आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों में कहीं भी समाविष्ट नहीं होती है। इसका तात्पर्य है कि वह कर्मरूप नहीं है। किन्तु २१ औदयिकभावों में गति एवं कषाय के साथ लेश्या की भी गणना की गई है। औदयिकभावरूप होने से लेश्या का कर्म-परिणाम के साथ भी सम्बन्ध जुड़ जाता है। कषायोदय से अनुरंजित मानने पर लेश्या को चारित्रमोहकर्म के साथ तथा योग से परिणत मानने पर नामकर्म के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है। किन्तु यह ज्ञातव्य है कि कषाय के अभाव में भी १२वें एवं १३वें गुणस्थान में शुक्ललेश्या पायी जाती है। इससे सिद्ध होता है कि लेश्या का सम्बन्ध कषाय से नहीं है, योग से ही है।

(३) पहले से छठे गुणस्थान तक छहों लेश्याएँ होती हैं। सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म व शुक्ललेश्याएँ होती हैं, जबकि आठवें से तेरहवें गुणस्थान तक मात्र शुक्ललेश्या होती है।

(४) एक लेश्या अन्य लेश्या को प्राप्त होकर उसके वर्णादि में परिणमन कर सकती है, किन्तु आकार भावमात्रा, प्रतिभाग भावमात्रा की अपेक्षा परिणमन नहीं होता है।

(५) नैरयिक जीवों में समुच्चय से कृष्ण, नील एवं कापोतलेश्याएँ होती हैं। भवनपति, वाणव्यन्तर, पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तेजोलेश्या को मिलाकर चार लेश्याएँ हैं। तेजस्काय, वायुकाय और विकलेन्द्रिय जीवों में कृष्ण से कापोत तक तीन लेश्याएँ हैं। वैमानिक देवों में तेजो, पद्म व शुक्ल ये तीन लेश्याएँ हैं। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय और मनुष्य में छहों लेश्याएँ हैं। ज्योतिषी देवों में एकमात्र तेजोलेश्या है।

आधुनिक व्याख्याकार लेश्या को आभामण्डल का प्रमुख कारण मानते हैं। व्यक्ति का आभामण्डल (aura) उसकी लेश्याओं का परिचायक होता है।

क्रिया

साधारणतः हम किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए जो प्रवृत्ति करते हैं, उसे क्रिया कहते हैं। वह क्रिया जीव में भी हो सकती है और अजीव में भी, किन्तु जैनदर्शन की पारिभाषिक 'क्रिया' का सम्बन्ध जीव से है। जव तक जीव में मन, वचन एवं काया का योग प्राप्त है तव तक ही उसमें क्रिया मानी जाती है। जव जीव अयोगी अवस्था अर्थात् शैलेशी अवस्था को अथवा सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह अक्रिय हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि विना योग के क्रिया नहीं होती है। क्रिया का कारण अथवा माध्यम योग है।

द्रव्यानुयोग में क्रिया का विविध प्रकार से विभाजन उपलब्ध है। जिस निमित्त, हेतु, फल अथवा साधन से क्रिया की जाती है, उसी निमित्त, हेतु, फल अथवा साधन के आधार पर क्रिया का नामकरण कर दिया जाता है। इसलिए क्रिया के अनेक विभाजन हैं। स्थानांगसूत्र में क्रिया को दो प्रकार की कहते हुए दसों विभाजन किये गये हैं। कुछ विभाजन इस प्रकार के हैं, जिनका समावेश क्रिया के पाँच प्रकारों अथवा पच्चीस प्रकारों में हो जाता है।

कषाय की उपस्थिति में जो क्रिया होती है वह साम्परायिकी क्रिया कही जाती है तथा जो कषायरहित अवस्था में क्रिया होती है वह ऐर्यापथिकी क्रिया कहलाती है। इसका आशय यह है कि क्रिया कषायनिरपेक्ष है। क्रिया की निष्पत्ति में योग आवश्यक है, कषाय नहीं।

क्रिया के विविध विभाजनों में कायिकी आदि पाँच क्रियाओं का विभाजन प्रसिद्ध है। वे पाँच क्रियाएँ हैं-(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी और (५). प्राणातिपातिकी। जिस क्रिया में काया की प्रमुखता हो उसे कायिकी क्रिया कहते हैं। जो क्रिया शस्त्र आदि उपकरणों से की जाती है उसे आधिकरणिकी क्रिया कहते हैं। जो क्रिया द्वेषपूर्वक की जाती है उसे प्राद्वेषिकी, जो क्रिया दूसरे प्राणियों को कष्टकारी हो उसे पारितापनिकी तथा प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाली क्रिया को प्राणातिपातिकी क्रिया कहते हैं। जीव के चौबीस ही दण्डकों में ये पाँचों प्रकार की क्रियाएँ पायी जाती हैं।

क्रिया से आस्रव होता है। आस्रव के अनन्तर कर्मबंध होता है। यदि क्रिया कषाययुक्त है तो बंध अवश्य होता है और यदि क्रिया कषायरहित है तो मात्र आस्रव होता है, बंध नहीं। इसलिए दो प्रकार के क्रियास्थान कहे गये हैं-(१) धर्मस्थान और (२) अधर्मस्थान। धर्मपूर्वक की गई क्रिया धर्मस्थान की द्योतक है तथा अधर्मपूर्वक की गई क्रिया अधर्मस्थान की द्योतक है। क्रिया शब्द का प्रयोग चारित्र के अर्थ में भी होता रहा है। इसीलिए **'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः'** अथवा **'नाणकिरियाहिं मोक्खो'**[1] कथन प्रचलित है। इस प्रकार ज्ञान के आचरण रूप जो चारित्र है वह धर्मस्थान क्रिया है, शेष सब क्रियाएँ अधर्मस्थान के अन्तर्गत समाविष्ट होती हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति, गुप्ति आदि क्रियाओं में रुचि को क्रियारुचि कहा गया है, यह एक प्रकार से धर्मस्थान क्रियारुचि ही है। साधक को अधर्मपरक क्रिया का त्यागकर धर्मपरक क्रिया अपनानी चाहिए। सदोष क्रियाओं का त्याग करना ही साधक के हित में है।

आस्रव

आत्मा के साथ कर्मपुद्गलों के चिपकने को बंध कहते हैं। बंध के पूर्व कर्मपुद्गलों के आगमन को आस्रव कहते हैं। यदि आस्रव नहीं हो तो बंध भी न हो। बंध के पूर्व आस्रव का होना अनिवार्य है। कर्मों का आस्रव सावद्य या पापकारी क्रियाओं के कारण होता है। आस्रव के प्रमुख रूप से पाँच द्वार हैं-(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय और (५) योग। मिथ्यात्व जीव का जीवन एवं ज़गत् के प्रति असम्यक् दृष्टिकोण है। दूसरे शब्दों में सम्यक्त्व का विपरीतभाव मिथ्यात्व है। मिथ्यात्वी की कुदेव, कुगुरु एवं कुधर्म पर श्रद्धा होती है, सुदेव, सुगुरु एवं सुधर्म पर नहीं। जीवादि तत्त्वों पर यथार्थश्रद्धा न होना भी मिथ्यात्व है। हिंसादि पापों से विरत न होना अविरति है। प्रमाद का अर्थ है-आत्म-स्वरूप का विस्मरण। क्रोधादि भावों को 'कषाय' कहा जाता है। 'योग' मन, वचन एवं काया की प्रवृत्ति का नाम है। इन पाँच कारणों के अतिरिक्त कारण भी आस्रव के भेदों में बताये गये हैं किन्तु उनका समावेश इन पाँच द्वारों में ही हो जाता है। तत्त्वार्थसूत्र में आस्रव के इन पाँच द्वारों की गणना बंधहेतुओं में की गई है।[2] कर्मग्रन्थ में भी इन्हें बंधहेतु कहा गया है तथा बंधहेतुओं के ५७ भेदों में मिथ्यात्व के ५, अविरति के १२, कषाय के २५ एवं योग के १५ भेदों की गणना की गई है। आस्रव के द्वार ही एक प्रकार से बंध के हेतु होते हैं, क्योंकि उनके होने पर ही बंध होता है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र में आस्रव के ये पाँच भेद निरूपित हैं-(१) हिंसा, (२) मृषा, (३) अदत्तादान, (४) अब्रह्म और (५) परिग्रह। इनका वहाँ पर विस्तार से निरूपण है, जिसका समावेश द्रव्यानुयोग के आस्रव अध्ययन में कर लिया गया है।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि योग के दो रूप हैं-शुभ एवं अशुभ। उनमें शुभ योग से पुण्य का आस्रव होता है तथा अशुभ योग से पापकर्म का आस्रव होता है। आस्रव के पश्चात् बंध कषाय से होता है। किसी भी कर्म की स्थिति का बंध कषाय से ही होता है। अनुभाग बंध भी कषाय से होता है, किन्तु प्रकृति एवं प्रदेशबंध योग से होता है। स्थितिबंध का यह नियम है कि जितनी कषाय की तीव्रता होगी उतना ही स्थितिबंध अधिक होगा फिर वह बंध चाहे पुण्यकर्म का हो या पाप प्रकृति का। अनुभागबंध इससे भिन्न है। कषाय के बढ़ने से पापकर्म का अनुभागबंध अधिक होता है तथा कषाय के घटने से पुण्यकर्म का अनुभाग बढ़ता है।

आस्रव का निरोध संवर कहलाता है। साधक आस्रव को रोककर संवर की साधना करता है। आस्रव के भेदों से विपरीत संवर के भेद होते हैं। नवतत्त्वों में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष की गणना होती है। सात तत्त्वों में पुण्य एवं पाप की गणना नहीं होती। तब पुण्य एवं पाप का समावेश आस्रव में कर लिया जाता है। नवतत्त्वों की चर्चा भी द्रव्यानुयोग का विषय है।[3]

वेद

वैदिक परम्परा में चार वेद प्रसिद्ध हैं-(१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद और (४) अथर्ववेद। किन्तु जैनदर्शन में 'वेद' शब्द का प्रयोग स्त्री, पुरुष आदि के आपसी सहवास की वासना के अर्थ में हुआ है। दूसरे शब्दों में काम-वासना का अनुभव 'वेद' है। वेद तीन प्रकार

के हैं–(१) स्त्रीवेद, (२) पुरुषवेद और (३) नपुंसकवेद। वेद शब्द बाह्य लिङ्ग का द्योतक नहीं है। स्त्री आदि के बाह्य लिङ्ग होने पर भी वेद का होना आवश्यक नहीं है। वीतरागी पुरुषों के बाह्य लिङ्ग तो बना रहता है, किन्तु काम-वासनारूप वेद क्षय को प्राप्त हो जाता है। नवें गुणस्थान के बाद तीन वेदों में से किसी का भी उदय नहीं रहता है।

स्त्रीवेद का तात्पर्य है स्त्री के द्वारा पुरुष से सहवास की इच्छा। पुरुषवेद का अर्थ है पुरुष द्वारा स्त्री के सहवास की अभिलाषा। नपुंसकवेद से दोनों के साथ ही सहवास की अभिलाषा होती है।

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम मनुष्य एवं समस्त नैरयिक जीवों में नपुंसकवेद होता है। देवों में दो वेद होते हैं–(१) स्त्रीवेद एवं (२) पुरुषवेद। गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं गर्भज मनुष्यों में तीनों वेद पाये जाते हैं। चार गतियों के चौबीस दण्डकों में मनुष्य का ही एक दण्डक ऐसा है जो अवेदी भी हो सकता है।

मैथुन प्रवृत्ति पाँच प्रकार की कही गई है–(१) कायपरिचारणा, (२) स्पर्शपरिचारणा, (३) रूपपरिचारणा, (४) शब्दपरिचारणा एवं (५) मनःपरिचारणा। काया से सहवास कायपरिचारणा है, मात्र स्पर्श से मैथुन सेवन स्पर्शपरिचारणा है। इसी प्रकार रूप एवं शब्द से परिचारणा संभव है। परिचारणा का अन्तिम भेद मनःपरिचारणा है। इसमें मन से ही मैथुन सेवन किया जाता है।

कषाय

संसार में जीव के परिभ्रमण का प्रमुख कारण कषाय है। कषाय ही कर्मबंध का प्रमुख हेतु है। राजवार्तिक में 'कषाय' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है–"**कषत्यात्मानं हिनस्ति इति कषायः।**"[1] अर्थात् जो आत्मा के स्वभाव को कषता है, हिंसित करता है वह कषाय है। सर्वार्थसिद्धि में कषायों को कषाय नामक न्यग्रोधादि की उपमा दी गई है। जिस प्रकार न्यग्रोधादि संश्लेष के कारण होते हैं उसी प्रकार क्रोधादि कषाय भी कर्मबंध में संश्लेष के कार्य करते हैं।[2]

कषाय चार प्रकार के प्रतिपादित हैं–(१) क्रोध, (२) मान, (३) माया और (४) लोभ। क्रोध का अर्थ है संरंभ या रोष।[3] क्रोध से अशान्ति उत्पन्न होती है तथा क्षमाशीलता भंग होती है। मानकषाय अहंकार का द्योतक है तथा विनय का नाशक है। मायाकषाय सरलता का नाशक है, सत्य से दूर ले जाता है। इसे छल, कपट आदि शब्दों से परिभाषित किया जाता है। मायावी व्यक्ति भीतर एवं बाहर से अलग-अलग होता है। लोभकषाय जीव में तृष्णा एवं इच्छाओं को प्रोत्साहन देता है। इसे उत्तराध्ययनसूत्र में सर्वनाशक कहा गया है।

ये चारों कषाय एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी चौबीस दण्डकों में पाये जाते हैं। जैनदर्शन में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय में भी क्रोधादि कषायों को स्वीकार करना जैनधर्म-दर्शन की सूक्ष्मता का परिचायक है। आधुनिक विज्ञान ने भी वनस्पति में चेतना एवं भय, क्रोधादि आवेगों की उत्पत्ति स्वीकार की है।

कषायों का कथन राग-द्वेष के रूप में भी किया जाता है। तब क्रोध एवं मान को द्वेष में तथा माया एवं लोभ को राग में सम्मिलित किया जाता है। यह विभाजन आगमों में सीधा-सीधा प्राप्त नहीं होता है, किन्तु व्यवहार में इसका प्रचलन है।

चार कषायों में प्रत्येक कषाय चार-चार प्रकार का प्रतिपादित है। वे चार प्रकार हैं–(१) अनन्तानुबंधी, (२) अप्रत्याख्यानावरण, (३) प्रत्याख्यानावरण और (४) संज्वलन। आगमों में इन्हें समझाने के लिए विविध दृष्टान्त दिये गये हैं,[4] जो इन भेदों की तीव्रता एवं मन्दता को अभिव्यक्त करते हैं।

अनन्तानुबंधी आदि पदों का क्या अभिप्राय है, इसे यदि जीवन-व्यवहार में देखें तो कहा जा सकता है कि जो कषाय अनन्त अनुबंधयुक्त होता है, जो निरन्तर सघन बना रहता है वह अनन्तानुबंधी है। अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क का बंध दूसरे गुणस्थान तक होता है तथा उदय चतुर्थ गुणस्थान तक होता है। अप्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क अनन्तानुबंधी कषायचतुष्क से कम सघन होता है। इसका बंध एवं उदय चतुर्थ गुणस्थान तक ही होता है। सम्यग्दृष्टि प्राप्त हो जाने पर भी अप्रत्याख्यानावरण के कारण विरति प्राप्त नहीं होती। प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का बंध एवं उदय पाँचवें गुणस्थान तक होता है, अर्थात् इसमें भोगों का पूर्ण त्याग नहीं होता। श्रावक होने तक इसका बंध एवं उदय रहता है। संज्वलन कषायचतुष्क अत्यल्प होता है। इस कषाय का स्फुरण मात्र होता है। संज्वलन क्रोध, मान, माया एवं लोभ का बंध नवें गुणस्थान के बाद नहीं होता जबकि उदय दसवें गुणस्थान तक रहता है।

हमें क्रोध, मान, माया एवं लोभ के स्थूल रूप का तो अनुभव होता रहता है, किन्तु इनकी सूक्ष्मता एवं निरन्तरता का अनुभव नहीं होता, जबकि हम इन कषायों से सदैव घिरे हुए हैं। साधक जब उत्तरोत्तर साधना में आगे बढ़ता जाता है तो उसे कषायों पर विजय प्राप्त होती है एवं वह उनकी सूक्ष्मता को जानने में समर्थ होता है।

कर्म

जैनागमों में कर्म का सूक्ष्म विवेचन विद्यमान है। कम्मपयडि एवं कर्मग्रन्थों का निर्माण भी आगमों के आधार पर हुआ है, जिनमें

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक, भारतीय ज्ञानपीठ २/६, पृ. १०८

२. सर्वार्थसिद्धि, भारतीय ज्ञानपीठ ६/४, पृ. २४६

३. क्रोधो रोषः संरंभः इत्यर्थान्तरम्। —*धवला टीका ६/१, ९, १, २३/४१/४*

४. दृष्टान्त द्रव्यानुयोग, भाग २, पृ. १०७० पर द्रष्टव्य हैं।

कर्मसिद्धान्त का व्यवस्थित निरूपण उपलब्ध होता है। दिगम्बर ग्रन्थ षट्खण्डागम एवं कषायपाहुड में भी कर्म का विशद विवेचन है। श्वेताम्बर आगमों में मुख्यतः प्रज्ञापनासूत्र, व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र एवं स्थानांगसूत्र में कर्म का विवेचन उपलब्ध होता है। द्रव्यानुयोग के कर्म अध्ययन में कर्म का सर्वांगीण निरूपण संक्षेप में उपलब्ध है। आगमों में कर्म के विविध पक्षों पर चर्चा है। जो कर्मग्रन्थों में प्रायः नहीं मिलती है, इसलिए आगमों में निरूपित कर्म-विवेचन का विशेष महत्त्व है। यह अवश्य है कि कर्मग्रन्थों में कर्मसिद्धान्त का व्यवस्थित प्रतिपादन है, जबकि आगमों में वह बिखरा हुआ है। द्रव्यानुयोग के कर्म अध्ययन में उसका एकत्र संग्रह किया गया है।

कर्मसिद्धान्त के सम्बन्ध में जैनदर्शन की मान्यताएँ अद्भुत हैं। उन मान्यताओं को संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है-(१) जीव अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों का फल स्वयं भोगता है। (२) कर्मों का फल प्रदान करने के लिए किसी नियन्ता या ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है। (३) जीव जिन कर्मों से आबद्ध होता है वे कर्म ही स्वयं समय आने पर फल प्रदान करते हैं। (४) कर्म दो प्रकार के माने गये हैं-(१) द्रव्यकर्म और (२) भावकर्म। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योगरूप हेतुओं से जो किया जाता है वह भावकर्म है। किसी अपेक्षा से राग-द्वेषादि को भी भावकर्म कह दिया जाता है। भावकर्म के कारण कार्मण-वर्गणाएँ जब जीव के साथ बंध को प्राप्त हो जाती हैं तो वे द्रव्यकर्म कही जाती हैं। (५) द्रव्यकर्म ही जीव को समय आने पर फल प्रदान करते हैं। (६) जीव एवं कर्म का अनादि सम्बन्ध है, किन्तु इस सम्बन्ध का अन्त किया जा सकता है, क्योंकि यह सम्बन्ध दो भिन्न द्रव्यों का है। (७) कर्मयुक्त जीव को संसारी जीव कहा जाता है, क्योंकि वह संसार में एक गति से दूसरी गति में परिभ्रमण करता रहता है। जो जीव पूर्णतः कर्ममुक्त हो जाता है उसे सिद्ध जीव कहते हैं। (८) जीव के जो स्वाभाविक गुण हैं वे भी विभिन्न कर्मों के कारण आवरित हो जाते हैं। जैसे ज्ञानावरणकर्म से ज्ञानगुण एवं दर्शनावरणकर्म से दर्शनगुण आवरित हो जाता है। मोहनीयकर्म से सम्यक्त्व एवं अन्तरायकर्म से दानादि लब्धियाँ प्रभावित होती हैं। (९) कर्म आठ प्रकार के माने गये हैं-(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्य, (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अन्तराय। (१०) इन आठ कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय को घातिकर्म कहा जाता है क्योंकि ये चारों कर्म आत्म-गुणों का घात करते हैं। शेष चार कर्मों-वेदनीय, आयुष्य, नाम एवं गोत्र को अघातिकर्म कहा जाता है, क्योंकि ये आत्म-गुणों का घात नहीं करते हैं। (११) कर्मों को पाप एवं पुण्यकर्मों के रूप में भी विभक्त किया जाता है। आठ कर्मों से चार घातिकर्म तो पापरूप ही होते हैं, किन्तु अघातिकर्म पाप एवं पुण्य दोनों प्रकार के होते हैं, यथा-वेदनीयकर्म के दो भेदों में सातावेदनीय को पुण्यरूप एवं असातावेदनीय को पापरूप कहा जाता है। (१२) कर्म के चार रूप माने गये हैं-(१) प्रकृतिकर्म, (२) स्थितिकर्म, (३) अनुभावकर्म और (४) प्रदेशकर्म। बद्धकर्मों के स्वभाव को प्रकृतिकर्म, उनके ठहरने की कालावधि को स्थितिकर्म, फलदान-शक्ति को अनुभावकर्म तथा परमाणु-पुद्गलों के संचय को प्रदेशकर्म कहते हैं। (१३) सभी प्रकार के कर्मों का इन चार रूपों में बंध होता है। उदयादि भी इन चार रूपों में होता है। (१४) कर्मसिद्धान्त में बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, निधत्त और निकाचित् करण का बड़ा महत्त्व है। कर्म-प्रकृतियों का बँधना बंध कहलाता है। उनका फल प्रदान करते समय प्रकट होना उदय है तथा उदयकाल के पूर्व जो प्रक्रिया होती है उसे उदीरणा कहते हैं। तप आदि के माध्यम से कर्मों की उदीरणा कभी-कभी समय के पूर्व भी हो जाती है। जब बँधा हुआ कर्म उदीरणा, उदय आदि को प्राप्त न हो तो उसे सत्ता में स्थित कर्म कहा जाता है। जब बँधे हुए कर्म की उत्तर प्रकृतियों की स्थिति एवं अनुभाव में वृद्धि होती है तो उसे उत्कर्षण कहते हैं तथा जब उनके स्थिति एवं अनुभाव में कमी आती है तो उसे अपकर्षण कहा जाता है। जब कर्म की उत्तर प्रकृति उसी कर्म की अन्य उत्तर प्रकृति में परिवर्तित होती है तो इसे संक्रमण कहा जाता है। जिस कर्म का उत्कर्षण एवं अपकर्षण न हो उसे निधत्त कहते हैं तथा जब कर्म-प्रकृतियों का संक्रमण भी न हो तो उसे निकाचित्करण कहते हैं। (१५) कर्म अगुरुलघु होते हैं, तथापि कर्म से जीव विविध रूपों में परिणत होते हैं एवं उनका फल भोगते हैं। (१६) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों की ९७ उत्तर प्रकृतियाँ हैं। किसी अपेक्षा से १२२, १४८ और १५८ उत्तर प्रकृतियाँ भी गिनी जाती हैं। इनमें मुख्यतः नामकर्म की प्रकृतियों की संख्या में अन्तर आता है, अन्य में नहीं। (१७) ज्ञानावरण से अन्तराय तक के सभी कर्म पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस और चार स्पर्श वाले होते हैं। (१८) बँधे हुए कर्म जीव के साथ जितने समय तक टिकते हैं उसे उनका स्थितिकाल कहते हैं। (१९) बद्धकर्म का उदयरूप या उदीरणारूप प्रवर्तन जिस काल में नहीं होता उसे अबाधा या अबाधाकाल कहते हैं। कर्मों के उदयाभिमुख होने का काल निषेक काल है। अबाधाकाल सामान्यतः कर्म के उत्कृष्ट स्थितिकाल के अनुपात में होता है। (२०) आत्मा ही अपने कर्मों का कर्ता एवं वही उनका विकर्ता है। अर्थात् बंधन में भी वही प्राप्त होता है एवं मुक्त भी वही होता है। (२१) कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं। (२२) कर्मों के सम्बन्ध में एक यह मान्यता चल पड़ी है कि बद्धकर्मों का वेदन किये बिना मोक्ष नहीं होता। किन्तु यह मान्यता एकान्त रूप से सत्य नहीं है। आगम में दो प्रकार के कर्म प्रतिपादित हैं-प्रदेशकर्म और अनुभागकर्म। इनमें से प्रदेशकर्म अवश्य भोगना पड़ता है, किन्तु अनुभागकर्म का वेदन आवश्यक नहीं है। जीव किसी अनुभागकर्म का वेदन करता है और किसी का नहीं, क्योंकि वह संक्रमण, स्थितिघात, रसघात आदि के द्वारा उन्हें परिवर्तित कर सकता है एवं निर्जरा भी कर सकता है।

वेदना

जीव को सुख-दुःख आदि का अनुभव होना वेदना है। जिसका वेदन किया जाता है उसे भी उपचार से वेदना कहते हैं। वेदनीयकर्म से वेदना का गहरा सम्बन्ध है। वेदनीयकर्म के दो भेद हैं-साता एवं असाता। वेदना का अनुभव प्रायः इन दो ही प्रकारों में विभक्त होता है, तथापि वेदना के विविध पक्षों के आधार पर उसके अनेक भेद निरूपित हैं। स्पर्श के आधार पर वेदना तीन प्रकार की है-(१) शीत, (२) उष्ण एवं (३) शीतोष्ण। वेदना शारीरिक, मानसिक एवं उभयविध होने से भी तीन प्रकार की होती है। वह साता, असाता एवं साता-असाता के रूप में भी वेदित होती है। उसे दुःखरूप, सुखरूप एवं अदुःख-सुखरूप वेदित होने से भी तीन प्रकार का कहा गया है। वेदना का वेदन-(१) द्रव्यतः, (२) क्षेत्रतः, (३) कालतः एवं (४) भावतः होने से वेदना के चार प्रकार भी हैं।

समस्त वेदनाओं का विभाजन दो भेदों में हो सकता है। कुछ वेदनाएँ आभ्युपगमिकी होती हैं अर्थात् उन्हें स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया जाता है, यथा–केशलोच आदि। कुछ वेदनाएँ औपक्रमिकी होती हैं जो वेदनीयकर्म के उदीरित होने से प्रकट होती हैं। इन वेदनाओं का वेदन जव संज्ञीभूत जीव करते हैं तव वह वेदना 'निदा वेदना' कहलाती है तथा जब इनका वेदन असंज्ञीभूत जीव करते हैं तो यह वेदना 'अनिदा वेदना' कही जाती है।

व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में एवम्भूत एवं अनेवम्भूत वेदना का निरूपण है। जब वेदना का वेदन कर्मबंध के अनुरूप होता है तो उसे 'एवम्भूत वेदना' कहते हैं तथा जव कर्मबंध से परिवर्तित रूप में वेदना का वेदन होता है तो उसे अनेवम्भूत वेदना कहा जाता है। पृथ्वीकायिक आदि जीवों को भी वेदना का अनुभव होता है। आक्रान्त किये जाने पर उन्हें अनिष्ट वेदना का अनुभव होता है।

एकेन्द्रियादि जीवों में वेदना का प्रतिपादन जीव-रक्षा एवं पर्यावरण की दृष्टि से बड़ा महत्त्व रखता है। संसारस्थ प्राणी कभी सुखरूप वेदना का वेदन करते हैं तथा कभी दुःखरूप वेदना का वेदन करते हैं, इसलिए कोई भी प्राणी हिंस्य नहीं है।

वेदना एवं निर्जरा में भेद है। वेदना कर्म की होती है तथा निर्जरा नोकर्म की होती है। वेदना का समय भिन्न होता है एवं निर्जरा का समय भिन्न होता है। वेदना कर्म के उदय में आने पर होती है तथा फल दे दिये जाने पर नोकर्म की निर्जरा होती है।

गति और उसके प्रकार

'गति' शब्द गमन का वाचक है। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदिग्रन्थों में गति का लक्षण इस प्रकार दिया गया है–"देशाद् देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः।" अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त करने का जो हेतु या कारण है उसे गति कहते हैं। वस्तुतः गति तो क्रिया की वोधक होती है, किन्तु उपचार से गति के कारण जो अवस्था प्राप्त होती है उसे भी गति कह दिया जाता है। नरकगति आदि को गति इसी दृष्टि से कहा गया है।

गति-क्रिया जीव एवं पुद्गल द्रव्यों में पायी जाती है, शेष चार द्रव्यों में नहीं। ये दो द्रव्य ही एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर गमन करते हैं। षड्द्रव्यों में धर्म, अधर्म एवं आकाश तो लोकव्यापी हैं, अतः इनमें कोई गति-क्रिया नहीं होती है। काल अप्रदेशी है, इसलिए उसमें भी गति सम्भव नहीं। इसलिए जीव एवं पुद्गल में ही गति-क्रिया सम्भव है। स्थानांगसूत्र में गति आठ प्रकार की निरूपित है, यथा–(१) नरकगति, (२) तिर्यञ्चगति, (३) मनुष्यगति, (४) देवगति, (५) सिद्धगति, (६) गुरुगति, (७) प्रणोदनगति और (८) प्राग्भारगति। इनमें से प्रारम्भ की पाँच गतियाँ जीव से सम्बद्ध हैं तथा अन्तिम तीन गतियाँ पुद्गल में उपलब्ध होती हैं। इनमें परमाणु की स्वाभाविक गति को गुरुगति कहा जाता है। प्रेरित करने पर जो गति होती है वह प्रणोदनगति है। यह जीव एवं पुद्गल दोनों में सम्भव है। प्राग्भारगति एक प्रकार से वजन के बढ़ने पर नीचे झुकने की गति अथवा गुरुत्वाकर्षण की गति का बोधक है। यह भी पुद्गल में पायी जाती है। प्रारम्भिक पाँच गतियों में चार संसारी जीवों में होती हैं तथा पाँचवीं गति मुक्त-जीव में एक ही बार होती है।

संसारी जीवों की चार गतियाँ प्रसिद्ध हैं–(१) नरकगति, (२) तिर्यञ्चगति, (३) मनुष्यगति और (४) देवगति।[1]

व्युत्क्रान्ति

जीव एक स्थान से उद्वर्तन (मरण) करके दूसरे स्थान पर जन्म ग्रहण करता है उसे व्युत्क्रान्ति कहा जा सकता है। व्युत्क्रान्ति शब्द ऐसी विशिष्ट मृत्यु के लिए प्रयुक्त है जिसके अनन्तर जीव जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार व्युत्क्रान्ति के अन्तर्गत उपपात, जन्म, उद्वर्तन, च्यवन, मरण आदि का तो समावेश होता ही है, किन्तु इससे सम्वद्ध विग्रहगति, सान्तर-निरन्तर उपपात, सान्तर-निरन्तर उद्वर्तन, उपपात विरह, उद्वर्तन विरह आदि अनेक तथ्यों का भी अन्तर्भाव हो जाता है। गति-आगति का चिन्तन भी इस प्रकार व्युत्क्रान्ति का ही एक अंग है। सारांश में कहें तो मरण से लेकर जन्म ग्रहण करने तक का समस्त क्रियाकलाप व्युत्क्रान्ति का क्षेत्र है।

द्रव्यानुयोग के व्युत्क्रान्ति अध्ययन में व्यापक रूप से उपर्युक्त विषय-वस्तु का विवेचन हुआ है।

गर्भ

गर्भ अध्ययन में उन जीवों के जन्म का विवेचन है जो गर्भ से जन्म ग्रहण करते हैं। इसके साथ ही विग्रहगति एवं मरण का भी विशद वर्णन हुआ है। यह अध्ययन व्युत्क्रान्ति अध्ययन का पूरक है।

जन्म तीन प्रकार का होता है–(१) सम्मूर्च्छिम-जन्म, (२) गर्भ-जन्म और (३) उपपात-जन्म। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रियादि जीवों का जन्म सम्मूर्च्छिम-जन्म कहलाता है। देवों एवं नैरयिकों का जन्म विना माता-पिता के संयोग के होने से उपपात-जन्म कहलाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कुछ जीव ऐसे हैं जिनका जन्म गर्भ से होता है। चौवीस दण्डकों में मात्र दो दण्डकों के जीवों का जन्म गर्भ से होता है। वे दण्डक हैं–(१) मनुष्य और (२) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च। नरक, दस भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक देवों का अर्थात् १४ दण्डकों के जीवों का जन्म उपपात-जन्म होता है। शेष ८ दण्डकों (पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय) का जन्म सम्मूर्च्छिम जन्म होता है। मनुष्य एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों में भी कुछ जीव सम्मूर्च्छिम जन्म से उत्पन्न होते हैं।

गर्भगत जीव के शरीर में माता के तीन अंग होते हैं–(१) माँस, (२) शोणित और (३) मस्तिष्क। पिता के भी तीन अंग होते हैं–

१. गतियों के सम्बन्ध में विशेष विवेचन हेतु गति, नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति एवं देवगति अध्ययन (द्रव्यानुयोग, भाग-२) एवं उनके आमुख द्रष्टव्य हैं।

(१) हड्डी, (२) मज्जा और (३) केश, दाढ़ी, मूँछ, रोम व नख। गर्भ धारण किस प्रकार होता है तथा किस प्रकार नहीं, इसका विवेचन स्थानांगसूत्र में हुआ है जो गर्भ अध्ययन में समाविष्ट है।

आधुनिक युग में गर्भ धारण करने के सम्बन्ध में टेस्ट ट्यूब बेबी (परखनली शिशु) का आविष्कार हुआ है, किन्तु इससे आगम का कोई विरोध नहीं है। कभी-कभी वच्चा स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक के रूप में जन्म न लेकर विचित्र आकृति ग्रहण कर लेता है। इसका उल्लेख स्थानांगसूत्र में उपलब्ध है।[1]

जीव जव एक शरीर को छोड़कर अन्यत्र जन्म ग्रहण करने के लिए गति करता है तो उसे विग्रहगति कहा जाता है। विग्रहगति में जीव को प्रायः एक, दो या तीन समय लगते हैं, किन्तु एकेन्द्रिय जीवों को विग्रहगति में चार समय तक लग जाते हैं।

मरण के पाँच प्रकार भी निरूपित हैं तथा १७ प्रकार भी प्रतिपादित हैं। पाँच मरण हैं–(१) आवीचिमरण, (२) अवधिमरण, (३) आत्यन्तिकमरण, (४) वालमरण और (५) पण्डितमरण। इनमें बालमरण के वलयमरण, वशार्तमरण आदि १२ प्रकार हैं तथा पण्डितमरण दो प्रकार का प्रतिपादित है–(१) पादपोपगमन और (२) भक्तप्रत्याख्यान।[2]

आगम में मृत्यु के समय जीव के निकलने के पाँच मार्ग प्रतिपादित हैं–(१) पैर, (२) उरु, (३) हृदय, (४) सिर और (५) सर्वांग शरीर। पैरों से निर्याण करने वाला जीव नरकगामी होता है, उरु से निर्याण करने वाला तिर्यग्गामी, हृदय से निर्याण करने वाला मनुष्यगामी, सिर से निर्याण करने वाला देवगामी और सर्वांग से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति को प्राप्त करता है।

युग्म

जैनागमों में 'युग्म' शब्द चार की संख्या का द्योतक है। चार की संख्या के आधार पर युग्म का विचार किया जाता है। प्रायः गणितशास्त्र में समसंख्या को युग्म एवं विषम संख्या को ओज कहा जाता है। इन युग्म एवं ओज संख्याओं का विचार जब चार की संख्या के आधार पर किया जाता है तो युग्म के चार भेद बनते हैं–(१) कृतयुग्म, (२) ओज, (३) द्वापरयुग्म और (४) कल्योज। इनमें से दो 'युग्म' अर्थात् सम राशियाँ हैं तथा दो 'ओज' अर्थात् विषम राशियाँ हैं। इन सबका विचार चार की संख्या के आधार पर किये जाने से इन्हें युग्म राशियाँ कहा जाता है। जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में चार शेष रहे वह 'कृतयुग्म' है, यथा–८, १२, १६, २०, २४ आदि संख्याएँ। जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में तीन शेष रहे उसे त्र्योज कहते हैं, यथा–७, ११, १५, १९ आदि संख्याएँ। जिस राशि में से चार-चार घटाने पर अन्त में दो शेष रहे उसे द्वापरयुग्म एवं जिसमें एक शेष रहे उसे कल्योज कहते हैं, यथा–६, १०, १४, १८ आदि संख्याएँ द्वापरयुग्म एवं ५, ९, १३, १७ आदि संख्याएँ कल्योज हैं।

गम्मा (गमक)

चौवीस दण्डकों में परस्पर गति-आगति अथवा व्युत्क्रान्ति के आधार पर उपपात आदि २० द्वारों से गमक अध्ययन में प्रमुखतः विचार किया गया है। २० द्वार हैं–(१) उपपात, (२) परिमाण (संख्या), (३) संहनन, (४) उच्चत्व (अवगाहना), (५) संस्थान, (६) लेश्या, (७) दृष्टि, (८) ज्ञान-अज्ञान, (९) योग, (१०) उपयोग, (११) संज्ञा, (१२) कषाय, (१३) इन्द्रिय, (१४) समुद्घात, (१५) वेदना, (१६) वेद, (१७) आयुष्य, (१८) अध्यवसाय, (१९) अनुवन्ध और (२०) कायसंवेध।

उपपात द्वार के अन्तर्गत यह विचार किया गया है कि अमुक दण्डक का जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होता है। परिमाण द्वार में उनकी उत्पत्ति की संख्या के सन्दर्भ में विचार किया गया है। संहनन द्वार के अन्तर्गत अमुक दण्डक में उत्पन्न होने वाले (किन्तु अधुना यावत् अनुत्पन्न) जीव के संहननों की चर्चा है। उच्चत्व द्वार में वर्तमान भव की अवगाहना का वर्णन है। संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान-अज्ञान, योग, उपयोग, संज्ञा, कषाय, इन्द्रिय एवं समुद्घात द्वारों में उत्पद्यमान जीव में इनसे सम्वद्ध प्ररूपणा है। वेदना द्वार में साता एवं असातावेदना का तथा वेद द्वार में स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसकवेद का विचार किया गया है। आयुष्य द्वार के अन्तर्गत 'स्थिति' की चर्चा है। अध्यवसाय दो प्रकार के होते हैं–(१) प्रशस्त एवं (२) अप्रशस्त। जो जीव जिस दण्डक में उत्पन्न होने वाला होता है उसके अनुसार ही उसके प्रशस्त या अप्रशस्त अध्यवसाय अर्थात् भाव पाये जाते हैं। अनुवन्ध एवं कायसंवेध ये दो द्वार इस अध्ययन में सर्वथा विशिष्ट हैं। अनुवन्ध का तात्पर्य है विवक्षित पर्याय का अविच्छिन्न या निरन्तर वने रहना तथा कायसंवेध का तात्पर्य है वर्ण्यमान काय से दूसरी काय में या तुल्यकाय में जाकर पुनः उसी काय में लौटना। इन वीस द्वारों के माध्यम से प्रत्येक दण्डक के विविध प्रकार के जीवों की जो जानकारी इस अध्ययन में संकलित है वह अत्यन्त सूक्ष्म एवं युक्तिसंगत है।

२० द्वारों के निरूपण में यत्र-तत्र नौ गमकों का भी प्रयोग हुआ है। ये नौ गमक ओघ, जघन्य एवं मध्यम स्थितियों के कारण वने हैं। गमक अध्ययन का आधार व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र का चौवीसवाँ शतक है अतः विशेष जानकारी हेतु इस शतक की टीका या वृत्ति का अनुशीलन सहायक होगा।

आत्मा

'आत्मा' एवं 'जीव' शब्द आगम में एकार्थक हैं, इसलिए जीव अध्ययन का विवेचन होने के पश्चात् 'आत्मा' के पृथक् अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती है, तथापि 'आत्मा' शब्द से आगम में जो विशिष्ट विवेचन उपलब्ध है, उसे इस अध्ययन में संकलित किया गया है।

---

१ स्थानांगसूत्र [illegible], सूत्र [illegible]

२ पंडितमरण अथवा समाधिमरण के सम्बन्ध में विशेष जानकारी हेतु 'प्रकीर्णक साहित्य में समाधिमरण की अवधारणा' (प्रकीर्णक साहित्य : मनन [illegible], उदयपुर) लेख द्रष्टव्य है।

'आत्मा' शब्द जीव का सूक्ष्म एवं विशिष्ट विवेचन करता है। इस आत्मा को जीवात्मा भी कहा गया है। वेदान्तदर्शन में 'आत्मा' शब्द ब्रह्म के लिए प्रयुक्त हुआ है तथा 'जीव' शब्द अज्ञानाच्छन्न सांसारिक प्राणियों के लिए प्रयुक्त होता है। जैनदर्शन में जीव एवं आत्मा में ऐसा भेद नहीं है। यहाँ पर संसारी प्राणियों को भी जीव कहा गया है तथा मुक्त (सिद्ध) जीवों को भी जीव कहा गया है। इस प्रकार जीवों की संख्या अनन्त है, फिर भी चैतन्य के साम्य की दृष्टि से ठाणांगसूत्र में 'एगे आया' अर्थात् 'आत्मा एक है' कथन का प्रयोग हुआ है।

संख्या की दृष्टि से जैनदर्शन में अनन्त आत्माएँ मान्य हैं। वेदान्तदर्शन ब्रह्म या आत्मा को संख्या की दृष्टि से एक मानता है तथा संसारी जीवों में उसका ही चैतन्यांश स्वीकार करता है, किन्तु जैनदर्शन में आत्मा एक नहीं, अनन्त हैं।

आत्मा का स्वरूप ज्ञानदर्शनमय है। आत्मा कदाचित् ज्ञानरूप है तथा कदाचित् अज्ञानरूप है, किन्तु ज्ञान नियमतः आत्मा है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं है, अपितु मिथ्यादर्शन की उपस्थिति में जो ज्ञान होता है उसे ही अज्ञान कहा जाता है। दर्शन नियमतः आत्मा होता है तथा आत्मा नियमतः दर्शन होता है।

आत्मा को अपेक्षाविशेष से आठ प्रकार का कहा गया है–(१) द्रव्य-आत्मा, (२) कषाय-आत्मा, (३) योग-आत्मा, (४) उपयोग-आत्मा, (५) ज्ञान-आत्मा, (६) दर्शन-आत्मा, (७) चारित्र-आत्मा और (८) वीर्य-आत्मा। इनमें द्रव्य-आत्मा का तात्पर्य है आत्मा का द्रव्य से होना अथवा प्रदेशयुक्त जीव द्रव्य के रूप में होना। यह द्रव्य-आत्मा तो सभी जीवों में सदैव रहती है। कषाययुक्त आत्मा को कषाय-आत्मा; मन, वचन एवं काया के योग से युक्त आत्मा को योग-आत्मा; ज्ञान-दर्शन रूप उपयोग सम्पन्न आत्मा को उपयोग-आत्मा; ज्ञान-गुण-लक्षण की दृष्टि से उसे ज्ञान-आत्मा एवं दर्शन-गुण-लक्षण की अपेक्षा से उसे दर्शन-आत्मा कहते हैं। इसी प्रकार चारित्रयुक्त होने की अपेक्षा से उसे चारित्र-आत्मा एवं वीर्य-पराक्रम से सम्पन्न होने के कारण उसे वीर्य-आत्मा कहा जाता है। इनमें द्रव्य-आत्मा, उपयोग-आत्मा, ज्ञान-आत्मा, दर्शन-आत्मा और वीर्य-आत्मा सभी जीवों में एक साथ हो सकती हैं। कषाय-आत्मा तो सकषायी संसारी जीवों में होती है तथा योग-आत्मा सयोगीकेवली गुणस्थान तक पायी जाती है। चारित्र-आत्मा चारित्रयुक्त जीवों में होती है। 'आत्मा' का यह विश्लेषण एक ही जीव के विभिन्न आयामों को प्रकट करता है।

ज्ञातव्य तथ्य यह है कि प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, औत्पातिकी यावत् पारिणामिकी बुद्धि, अवग्रह यावत् धारणा, उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम, नैरयिकत्व यावत् वैमानिकत्व, ज्ञानावरण यावत् अन्तरायकर्म, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, तीनों दृष्टियाँ, चारों दर्शन, पाँचों ज्ञान एवं तीनों अज्ञान, आहारादि चार संज्ञाएँ, पाँचों शरीर, तीनों योग, साकारोपयोग एवं अनाकारोपयोग तथा इनके जैसे और भी पदार्थ आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र परिणमन नहीं करते हैं। ये सब आत्मा के साथ सम्बद्ध हैं तथा उसमें ही परिणमन करते हैं। शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श को ग्रहण करने का कार्य आत्मा दो प्रकार से करती है–शरीर के एक भाग से अथवा समस्त शरीर से। अवभास, प्रभास, विक्रिया, परिचारणा, भाषा, आहार, परिणमन, वेदन और निर्जरा आदि क्रियाएँ भी आत्मा उपर्युक्त दो प्रकारों से करती है।

समुद्घात

विभिन्न कारणों से जब जीव के आत्म-प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं तो उसे समुद्घात कहा जाता है। वे आत्म-प्रदेश पुद्गलयुक्त होते हैं, इसलिए समुद्घातों का निरूपण करते समय आगम में पुद्गलों को भी शरीर से बाहर निकालने का वर्णन मिलता है।

जैनदर्शन एक ओर आत्मा को स्वदेह-परिमाण स्वीकार करता है तो दूसरी ओर समुद्घात के समय आत्म-प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलकर सम्पूर्ण लोक में फैल जाने की बात भी स्वीकार करता है। यह जैनदर्शन की अनूठी मान्यता है। आगम के अनुसार समुद्घात के समय जो पुद्गलयुक्त आत्म-प्रदेश लोक में फैलते हैं, वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्द्रियों के माध्यम से उनका अनुभव नहीं किया जा सकता। विशेषतः केवली समुद्घात के समय आत्म-प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं, किन्तु इसका अनुभव छद्मस्थ जीवों को नहीं होता। जैनागम में प्रतिपादित समुद्घात की अवधारणा वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य एवं शोध का विषय है।

समुद्घात सात प्रकार के होते हैं–(१) वेदना, (२) कषाय, (३) मारणान्तिक, (४) वैक्रिय, (५) तेजस्, (६) आहारक और (७) केवली।

वेदना के असह्य होने पर उसे सहन करने अथवा निर्जरित करने के लिए जीव वेदना समुद्घात करता है। कषाय समुद्घात कषाय का आवेग बढ़ने पर होता है। मारणान्तिक समुद्घात देह-त्याग के समय होता है। वैक्रिय समुद्घात वैक्रियलब्धि के होने पर अथवा उत्तरवैक्रिय करते समय किया जाता है। तेजस् समुद्घात तेजोलेश्या का प्रयोग करते समय या ऐसे ही अन्य प्रसंग में किया जाता है। आहारक समुद्घात तब किया जाता है जब कोई चौदह पूर्वधारी मुनि आहारक शरीर का पुतला जिनेन्द्र देव से विशिष्ट जानकारी हेतु बाहर भेजता है। केवली समुद्घात का प्रयोजन भिन्न है। जब केवली के आयुष्यकर्म की स्थिति कम हो तथा वेदनीय, गोत्र एवं नामकर्म की स्थिति अधिक हो तो उसे सम करने के लिए केवली समुद्घात किया जाता है। केवली समुद्घात के अलावा छह समुद्घात छद्मस्थों में पाये जाते हैं। छद्मस्थ में होने वाले समुद्घातों का काल असंख्यात समय है जबकि केवली समुद्घात का काल मात्र आठ समय है।

इन समुद्घातों में से केवली समुद्घात एक बार होता है और वह भी केवली बनने पर किसी-किसी केवली को होता है। आहारक समुद्घात मनुष्य पर्याय में एक जीव की अपेक्षा अतीत में उत्कृष्ट तीन हुए हैं तथा भविष्य में चार से अधिक नहीं होते। यह मात्र चौदह पूर्वधारी मुनि को छठे गुणस्थान में होता है। वेदना, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय एवं तेजस् समुद्घात कदाचित् असंख्यात तथा कदाचित् अनन्त तक हो सकते हैं।

चरमाचरम

आगम में जीवादि द्रव्यों की विविध प्रकार से प्ररूपणा हुई है। इससे इन द्रव्यों की विविध विशेषताएं प्रकट हुई हैं। चरम एवं अचरम की दृष्टि द्वारा निरूपण भी यही प्रयोजन सिद्ध करता है। चरम का अर्थ होता है-अन्तिम एवं अचरम का अर्थ होता है-जो अन्तिम न हो। जीव एवं अजीव द्रव्य जिस अवस्था-विशेष अथवा भाव-विशेष को पुनः प्राप्त नहीं करेंगे, उस अवस्था एवं भाव-विशेष की अपेक्षा वे चरम एवं जिसे पुनः प्राप्त करेंगे, उसकी अपेक्षा अचरम कहे जाते हैं।

चरम एवं अचरम की दृष्टि से षड्द्रव्यों में से जीव एवं पुद्गल का ही विचार किया जाता है, शेष चार द्रव्यों-धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल का चरम-अचरम संभव नहीं है। इसलिए आगम में इन चारों के चरम एवं अचरम का कोई विचार नहीं हुआ है।

चौवीस दण्डकों एवं जीव-सामान्य में चरमाचरमत्व का निरूपण ११ द्वारों से किया गया है। वे ११ द्वार हैं-(१) गति, (२) स्थिति, (३) भव, (४) भाषा, (५) आनापान, (६) आहार, (७) भाव, (८) वर्ण, (९) गंध, (१०) रस एवं (११) स्पर्श द्वार। जीव कथंचित् चरम है एवं कथंचित् अचरम है। जीवभाव की अपेक्षा वह अचरम है तथा नैरयिकभाव की अपेक्षा वह चरम है। अन्य विवक्षा से १४ द्वारों में भी चरमाचरमत्व का निरूपण हुआ है। वे १४ द्वार हैं-(१) जीव, (२) आहारक, (३) भवसिद्धिक, (४) संज्ञी, (५) लेश्या, (६) दृष्टि, (७) संयत, (८) कषाय, (९) ज्ञान, (१०) योग, (११) उपयोग, (१२) वेद, (१३) शरीर एवं (१४) पर्याप्तक द्वार।

अजीव द्रव्यों में से पुद्गल के चरमाचरमत्व पर विचार किया जाता है। पुद्गल के पाँच संस्थान प्रतिपादित हैं-(१) परिमण्डल, (२) वृत्त, (३) त्रिकोण, (४) चतुष्कोण और (५) आयत। पंचकोण, षट्कोण आदि का समावेश उपलक्षण से चतुष्कोण में ही हो जायेगा। ये सभी संस्थान नियम से एक की अपेक्षा अचरम एवं बहुवचन की अपेक्षा चरम होते हैं। परमाणु पुद्गल द्रव्यादेश से अचरम हैं तथा क्षेत्रादेश, कालादेश एवं भावादेश से वह कदाचित् चरम हैं और कदाचित् अचरम हैं।

अजीव

लोक में मुख्यतः दो ही द्रव्य हैं-(१) जीव द्रव्य और (२) अजीव द्रव्य। षड्द्रव्यों में से जीव को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों-(१) धर्म, (२) अधर्म, (३) आकाश, (४) काल और (५) पुद्गल की गणना अजीव द्रव्य में की जाती है। जीव द्रव्य चेतनायुक्त होता है, उसमें ज्ञान एवं दर्शन गुण रहते हैं, जबकि अजीव द्रव्य चेतनाशून्य होता है तथा वह ज्ञान-दर्शन गुणों से रहित होता है। जीव द्रव्य उपयोगमय होता है, जबकि अजीव द्रव्य में उपयोग नहीं पाया जाता। जीव एवं अजीव की भेदक रेखाएँ अनेक हैं, किन्तु मुख्यतः ज्ञान, दर्शन, उपयोग या चैतन्य के आधार पर इन्हें पृथक् किया जाता है।

अजीव द्रव्य भी दो प्रकार के होते हैं-(१) रूपी अजीव द्रव्य और (२) अरूपी अजीव द्रव्य। जो द्रव्य वर्ण, गंध, रस, स्पर्श एवं संस्थान (आकृति) से युक्त होते हैं वे रूपी अजीव द्रव्य कहलाते हैं तथा जो अजीव द्रव्य वर्णादि से रहित होते हैं वे अरूपी अजीव द्रव्य कहे जाते हैं। अरूपी अजीव द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल द्रव्य की गणना होती है तथा रूपी अजीव द्रव्य की कोटि में मात्र पुद्गल द्रव्य का समावेश होता है। पुद्गल द्रव्य में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान पाया जाता है इसलिए यह रूपी कहलाता है तथा शेष धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल द्रव्यों में वर्णादि नहीं पाये जाते इसलिए वे अरूपी कहलाते हैं।[1]

पुद्गल

समस्त जगत् में जो कुछ भी दृश्यमान है अथवा इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य है वह सब पुद्गल है। षड्द्रव्यों में यही एक ऐसा द्रव्य है जो मूर्त या रूपी है। तत्त्वार्थसूत्र में पुद्गल का लक्षण इस प्रकार दिया गया है-"स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः।"[2] अर्थात् जो स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्ण से युक्त हैं वे पुद्गल हैं। पुद्गल द्रव्यों की कुछ पर्यायें और भी हैं,[3] जिन्हें भी पुद्गल के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया जाता है। वे पर्यायें उत्तराध्ययनसूत्र में शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया एवं आतप के रूप में कही गई हैं तथा तत्त्वार्थसूत्र में बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान एवं भेद से युक्त को भी पुद्गल कहा गया है।[4]

जो इन्द्रियगोचर होता है वह पुद्गल ही होता है, किन्तु पुद्गल के परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध आदि ऐसे सूक्ष्म अंश भी हैं, जिन्हें इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। तथापि इनमें वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श की उपलब्धि के कारण इन्हें पुद्गल ही कहा जाता है। इन्हें अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान अथवा केवलज्ञान से जाना जाता है।

पुद्गल का एक निरुक्तिपरक अर्थ यह किया जाता है कि जो पूरण एवं गलन अवस्था को प्राप्त हो वह पुद्गल है। संघात से यह पूरण अवस्था को तथा भेद से गलन अवस्था को प्राप्त होता है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार जीव जिन्हें शरीर, आहार, विषय, इन्द्रिय आदि के रूप में ग्रहण करता है, वे पुद्गल हैं।

---

१. अजीव द्रव्य के सम्बन्ध में इस प्रस्तावना में द्रव्य, अस्तिकाय, पर्याय, परिणाम, जीवाजीव एवं पुद्गल शीर्षक द्रष्टव्य हैं।

२. (i) तत्त्वार्थसूत्र ५/२३

(ii) रूपिणः पुद्गलाः। -५/३ सूत्र भी उपलब्ध है।

३. उत्तराध्ययनसूत्र २८/१२, द्रव्यानुयोग, पृ. १८७१

४. शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च। -तत्त्वार्थसूत्र ५/२४

पुद्गल के मुख्यतः दो भेद हैं–(१) परमाणु या अणु और (२) स्कन्ध। किसी अपेक्षा से पुद्गल के चार भेद भी प्रतिपादित हैं–(१) स्कन्ध, (२) स्कन्ध देश, (३) स्कन्ध प्रदेश और (४) परमाणु। अनेक परमाणुओं का संघात स्कन्ध कहलाता है। पुद्गल द्रव्य का वह प्रत्येक खण्ड जो स्वतन्त्र सत्तावान् है वह स्कन्ध है, यथा–ईंट, पत्थर, कुर्सी, टेबल आदि। एक से अधिक स्कन्ध मिलकर भी एक नया स्कन्ध वन सकता है, यथा–अनेक पत्थरों से मिलकर वनी दीवार। स्कन्ध का जब विभाजन होता है तो वह अनेक परमाणुओं में विभक्त हो सकता है, किन्तु जव तक परमाणु की अवस्था नहीं आती तब तक वह स्कन्धों में ही विभक्त होता है। इस प्रकार स्वतन्त्र सत्ता की दृष्टि से स्कन्ध एवं परमाणु भेद ही उपलब्ध होते हैं। देश एवं प्रदेश भेद बुद्धि-परिकल्पित हैं, वास्तविक नहीं। जब स्कन्ध का कोई खण्ड बुद्धि से कल्पित किया जाता है तो उसे देश कहते हैं, यथा–पृथ्वी स्कन्ध का बुद्धिकल्पित देश 'भारत' है। कोई टेबल एक स्कन्ध है, उसका एक हिस्सा जो उससे अलग नहीं हुआ है वह उस टेबल-स्कन्ध का देश कहलाता है। स्कन्ध से अविभक्त परमाणु को प्रदेश कहते हैं। जव वह स्कन्ध से पृथक् हो जाता है तो 'परमाणु' कहा जाता है। यह पुद्गल का अविभाज्य अंश होता है। पुद्गल को स्कन्ध की अपेक्षा भिदुर स्वभाव वाला तथा परमाणु की अपेक्षा अभिदुर स्वभाव वाला कहा जाता है। इन्द्रियग्राह्य पुद्गल बादर एवं शेष सूक्ष्म हैं।

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान में परिणमित होने की दृष्टि से पुद्गल पाँच प्रकार का होता है–(१) वर्णपरिणत, (२) गन्धपरिणत, (३) रसपरिणत, (४) स्पर्शपरिणत एवं (५) संस्थानपरिणत। किन्तु प्रत्येक पुद्गल द्रव्य में ये पाँचों गुण रहते हैं। कोई भी पुद्गल ऐसा नहीं है जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान (आकार) से रहित हो।

वर्ण के पाँच प्रकार हैं–(१) काला, (२) नीला, (३) लाल, (४) पीला और (५) श्वेत। गंध के दो प्रकार हैं–(१) सुरभिगंध और (२) दुरभिगंध। रस पाँच प्रकार का है–(१) तिक्त, (२) कटु, (३) कषैला, (४) खट्टा और (५) मीठा। स्पर्श के आठ प्रकार हैं–(१) कर्कश, (२) मृदु, (३) गुरु, (४) लघु, (५) शीत, (६) उष्ण, (७) रुक्ष और (८) स्निग्ध। संस्थान के पाँच या छह प्रकार प्रतिपादित हैं। पाँच प्रकार हैं–(१) परिमण्डल, (२) वृत्त, (३) त्रिकोण, (४) चतुष्कोण और (५) आयत। छह प्रकार मानने पर (६) अनियंत की भी गणना होती है।

पुद्गल द्रव्य परमाणु के पश्चात् द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, पंचप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी होता है। दश के पश्चात् संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी एवं अनन्तप्रदेशी पुद्गलों का निरूपण किया जाता है। एक परमाणु पुद्गल, एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श वाला होता है। द्विप्रदेशी स्कन्ध कदाचित् एक वर्ण वाला, कदाचित् दो वर्ण वाला, कदाचित् एक गंध वाला, कदाचित् दो गंध वाला, कदाचित् एक रस वाला, कदाचित् दो रस वाला, कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला और कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है। इस प्रकार त्रिप्रदेशी आदि स्कन्धों में रस, वर्ण आदि की संख्या कदाचित् वढ़ती जाती है। इससे द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी वर्णादि की अपेक्षा अनेक भंग वन जाते हैं।

वर्णादि के परिणमन को लेकर आगम में वर्णपरिणत के १०० भेद, गंधपरिणत के ४६ भेद, रसपरिणत के १०० भेद, स्पर्शपरिणत के १८४ भेद और संस्थानपरिणत के १०० भेद प्रतिपादित हैं। कुल मिलाकर इनके ५३० भेद या भंग बनते हैं।[१]

पुद्गल के भेद एवं संघात का तत्त्वार्थसूत्र में तो कथन मिलता ही है, किन्तु व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में उसका विस्तार से निरूपण हुआ है। तत्त्वार्थसूत्र में संघात, भेद एवं संघात-भेद से स्कन्ध की उत्पत्ति का निरूपण है[२] तथा भेद से अणु या परमाणु की उत्पत्ति का कथन है।[३] स्कन्ध दो प्रकार का माना जाता है–(१) चाक्षुष–जिसे आँख से देखा जा सके और (२) अचाक्षुष–जिसे आँख से न देखा जा सके। चाक्षुष स्कन्ध की उत्पत्ति भेद एवं संघात से होती है।[४] व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र में कहा गया है कि पुद्गलों का संघात एवं भेद कभी अपने स्वभाव से होता है और कभी दूसरे निमित्त से होता है। परमाणु पुद्गलों के मिलने से स्कन्ध का निर्माण होता है तथा पुद्गल का अधिकतम विभाजन परमाणु पुद्गल के रूप में होता है।

एक परमाणु गति करने पर एक समय में लोक के अन्त तक पहुँच सकता है। परमाणु की इस प्रकार की गति का वर्णन अन्य किसी भारतीयदर्शन में नहीं है तथा यह वैज्ञानिकों के लिए भी शोध की प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस समय सर्वाधिक गतिशील वस्तु प्रकाश है जो एक सेकण्ड में लगभग ३ लाख किलोमीटर की दूरी तय करता है। जैनदर्शन के अनुसार प्रकाश भी पुद्गल का ही एक प्रकार है। पुद्गल की गति इससे भी तीव्र हो सकती है। एक परमाणु एक समय में सम्पूर्ण लोक तक पहुँच सकता है। भगवतीसूत्र में वर्णित अस्पृशद्गति से भी इसका समर्थन होता है।[५]

स्थानांगसूत्र में तीन कारणों से पुद्गल का प्रतिघात वतलाया गया है–(१) एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से टकराकर प्रतिहत होता है, (२) रुक्ष स्पर्श से प्रतिहत होता है और (३) लोकान्त में जाकर प्रतिहत होता है।

परमाणु के जैनागमों में चार प्रकार प्रतिपादित हैं–(१) द्रव्यपरमाणु, (२) क्षेत्रपरमाणु, (३) कालपरमाणु और (४) भावपरमाणु। द्रव्यपरमाणु के अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य ये चार भेद किए गए हैं। क्षेत्रपरमाणु के अनर्द्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाज्य ये

---

१. विवरण के लिए द्रष्टव्य, द्रव्यानुयोग, पृ. १२२७-१२२८
२. संघातभेदेभ्यः उत्पद्यन्ते। –तत्त्वार्थसूत्र ५/२६
३. भेदादणुः। –वही ५/२७
४. भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः। –वही ५/२८
५. परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों को परस्पर स्पर्श किए विना होने वाली गति को अस्पृशद्गति कहते हैं।

टीका का निर्माण किया, प्रश्नव्याकरण एवं बृहत्कल्पसूत्र का हिन्दी अनुवाद एवं विवेचन प्रस्तुत किया जो विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए। अंतगडदशासूत्र की संस्कृत छाया, शब्दार्थ एवं हिन्दी अनुवाद तैयार किया जो सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर से प्रकाशित हुआ। उत्तराध्ययनसूत्र एवं दशवैकालिकसूत्र का हिन्दी पद्यानुवाद के साथ प्रस्तुति कराकर भी आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज ने आगम साहित्य की सेवा की।

अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना ने मूल आगमों का अंगपविट्ठ एवं अनंगपविट्ठ के रूप में ३२ आगमों का प्रकाशन किया। भगवतीसूत्र का हिन्दी अनुवाद के साथ सात भागों में भी इसी संस्था ने प्रकाशन किया।

श्री मधुकर जी महाराज युवाचार्य द्वारा प्रवर्तित आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर का इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विभिन्न जैन संतों एवं विद्वानों के सहयोग से इस संस्था ने विस्तृत भूमिका के साथ ३२ आगमों का हिन्दी विवेचन के साथ सुन्दर प्रकाशन किया है।

तेरापंथ संस्था जैन विश्वभारती, लाडनूं ने भी आगम प्रकाशन की दिशा में महत्त्व का कार्य किया है। गणाधिपति श्री तुलसी जी (पूर्व में आचार्य) एवं आचार्य महाप्रज्ञ (पहले मुनि नथमल एवं युवाचार्य महाप्रज्ञ) के सम्पादन में अंगसुत्ताणि के तीन भाग एवं उवंगसुत्ताणि के दो भाग व नवसुत्ताणि में मूल आगमों का प्रकाशन हुआ है। आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिकसूत्र भी हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणों के साथ प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने हाल ही में आचारांगसूत्र पर संस्कृत में भाष्य की रचना की है जो हिन्दी अनुवाद एवं परिशिष्ट के साथ सन् १९९४ ई. में प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व भगवतीसूत्र पर भाष्य का एक भाग उनका प्रकाशित हो चुका है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक संस्थाओं में आगमोदय समिति, सूरत; श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई एवं हर्षपुष्पामृत ग्रन्थमाला, लाखाबावल (सौराष्ट्र) के नाम प्रमुख हैं। आगमोदय समिति, सूरत से श्री सागरानन्दसूरि द्वारा संपादित आगमों का प्रकाशन हुआ। हर्षपुष्पामृत ग्रन्थमाला में 'आगम-सुधा-सिन्धु' नाम से ४५ आगमों का संकलन-संपादन १४ भागों में हुआ है। इसी प्रकार श्री आनन्दसागर जी के संपादन में 'आगमरत्नमंजूषा' के अन्तर्गत सभी आगम प्रकाशित हुए हैं।

महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से लगभग २० आगमों का प्रकाशन हो चुका है। यहाँ से प्रकाशित आगमों को पाठ-निर्धारण की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। मुनि श्री पुण्यविजय जी, मुनि श्री जम्बूविजय जी, पं. श्री बेचरदास जी दोशी, पं. श्री दलसुखभाई मालवणिया आदि प्रमुख विद्वानों की सूक्ष्मेक्षिका का उपयोग इन आगमों के सम्पादन में हुआ है, इसलिए इन्हें विद्वज्जगत् में अधिक प्रामाणिक माना जाता है।

जैन आगमों पर शोध कार्य भी हुए हैं। अनेक विश्वविद्यालयों में विद्वानों ने आगमों को आधार बनाकर अपने शोध प्रबन्ध लिखे हैं तथा पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। किन्तु अभी उच्चस्तरीय कार्यों की गुंजाइश ज्यों की त्यों है।

उपसंहार

तत्त्वज्ञान की दिशा में द्रव्यानुयोग का महत्त्व असंदिग्ध है। द्रव्यानुयोग का यह प्रकाशन तत्त्वजिज्ञासुओं का तो पथ-प्रदर्शन करेगा ही, किन्तु इक्कीसवीं शती में होने वाले आगम अनुशीलन को भी एक दिशा प्रदान करेगा। आगमों में उपलब्ध पाठभेद एवं संक्षिप्तीकरण से होने वाली कठिनाई का निवारण करने की दिशा में समुचित प्रयास को बल मिले, ऐसी आशा है। दिगम्बर एवं श्वेताम्बरों के भेद को भुलाकर यदि समस्त आगमों के अध्ययन की रुचि जागृत हो तो महत्त्व का कार्य हो सकता है।

आज आवश्यकता है आगमों का प्राण समझने की तथा उन्हें हृदयंगम कर जन-समाज के लिए उपयोगी एवं प्रेरणादायी रूप में प्रस्तुत करने की। आने वाले समय में अनुभवी साधक-विद्वान् इस ओर आशा है अपने चरण बढ़ायेंगे।

प्रस्तावना-लेखन में हुए विलम्ब के लिए कृपाशील उपाध्यायप्रवर अनुयोग प्रवर्तक श्री कन्हैयालाल जी महाराज से करबद्ध क्षमाप्रार्थी हूँ तथा पाठकों की ज्ञान-वृद्धि हेतु मंगल कामना करता हूँ। उनके सुझाव एवं सद्भाव के लिए सदैव स्वागत है।

–डॉ. धर्मचन्द जैन
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय
जोधपुर-३४२ 010

वसन्त पंचमी
२४ जनवरी, १९९६

विषय-सूची

भाग ३

अध्ययन ३९ से ४६ तथा प्रकीर्णक

विषयानुक्रमणिका

४१. गम्मा अध्ययन

४२. आत्मा अध्ययन

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
४.	आत्मा द्वारा शव्दों के अनुभूति स्थान का प्ररूपण,	१६७६
५.	प्राणातिपातादि में प्रवर्तमान जीवों और जीवात्माओं में एकत्व का प्ररूपण,	१६७६-१७७७
६.	प्राणातिपातादि के आत्म परिणामित्व का प्ररूपण,	१६७७
७.	द्रव्यात्मादि आठ आत्माओं के परस्पर सहभाव का प्ररूपण,	१६७७-१६७९
८.	द्रव्यादि आत्माओं का अल्पवहुत्व,	१६७९
९.	शरीर को छोड़कर आत्मनिर्याण के द्विविधत्व का प्ररूपण,	१६७९

४३. समुद्घात अध्ययन

४४. चरमाचरम अध्ययन

अजीवों का चरमाचरमत्व

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक

४५. अजीव द्रव्य अध्ययन

४६. पुद्गल अध्ययन

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक

प्रकीर्णक

सूत्रांक	विषय	पृष्ठांक
१८.	विशेष-विवक्षा से सत्व के चार प्रकार,	११००
१९.	रोगोत्पत्ति के चार कारण,	११००
२०.	व्याधि के चार प्रकार,	११००
२१.	चिकित्सा के चार अंग,	११००
२२.	चिकित्सक के चार प्रकार,	११००-११०१
२३.	विकथा के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण,	११०१
२४.	दण्ड के पांच प्रकार,	११०१
२५.	निधि के पांच प्रकार,	११०१-११०२
२६.	इन्द्रिय विषयों में अनुरक्त के पांच हेतु,	११०२
२७.	प्रतिघातों के पांच प्रकार,	११०२
२८.	आजीविकों के पांच प्रकार,	११०२
२९.	सुप्त से जागृत होने के पांच हेतु,	११०२
३०.	शौच के पांच प्रकार,	११०२
३१.	उन्माद के पांच प्रकार,	११०२-११०३
३२.	छेदन के पांच प्रकार,	११०३
३३.	आनन्तर्य के पांच प्रकार,	११०३
३४.	मनुष्य के छह भेद और उनके स्वरूप का प्ररूपण,	११०३-११०५
३५.	छहों दिशाओं में जीवों की गति-आगति आदि प्रवृत्तियों का प्ररूपण,	११०६
३६.	विष परिणाम के छह प्रकार,	११०६
३७.	वचन प्रयोग के सात प्रकार,	११०६-११०७
३८.	विकथा के सात प्रकार,	११०७
३९.	सात भय स्थान,	११०७
४०.	आयुर्वेद के आठ अंग,	११०७
४१.	पुण्य के नौ प्रकार,	११०७-११०८
४२.	सद्भाव पदार्थों के नव भेदों के नाम,	११०८
४३.	रोगोत्पत्ति के नौ कारण,	११०८
४४.	शरीर के मल द्वारों के नौ नाम,	११०८
४५.	विवक्षा से अनन्तक के दस प्रकार,	११०८
४६.	दान के दस निमित्त कारणों का प्ररूपण,	११०८-११०९
४७.	दुःषम और सुषम काल का लक्षण,	११०९
४८.	दस प्रकार के बलों का प्ररूपण,	११०९
४९.	दस प्रकार के शस्त्रों का प्ररूपण,	११०९
५०.	आशंसा प्रयोग के दस भेद,	१११०
५१.	अस्थिर-स्थिर-बालभाव आदि का परिवर्तन-अपरिवर्तन और शाश्वतादि का प्ररूपण,	१११०
५२.	शैलेशी प्रतिपन्नक अणगार के पर प्रयोग के विना एजनादि के निषेध का प्ररूपण,	१११०
५३.	एजना के भेद और चार गतियों में प्ररूपण,	१११०-११११
५४.	चलना के भेद-प्रभेद और उनके स्वरूप का प्ररूपण,	११११-१११२
५५.	जीवों के भय हेतु का प्ररूपण,	१११२-१११३
५६.	युद्ध करते हुए पुरुषों के जय-पराजय हेतु का प्ररूपण,	१११३
५७.	अंगभूत और अंतःस्थित वस्तु समूह के द्वारा राजगृह नगर का प्ररूपण,	१११३-१११४
५८.	क्षीणभोगी छद्मस्थादि मनुष्यों में भोगित्व का प्ररूपण,	१११४-१११५
५९.	आदर्श आदि को देखने सम्बन्धी विज्ञान,	१११५
६०.	दौड़ते हुए घोड़े के 'खु खु' शब्द करने के हेतु का प्ररूपण,	१११५
६१.	द्रव्यानुयोग का उपसंहार,	१११५

तीनों भागों की संयुक्त सूची

भाग	अध्ययन	विषय	पृष्ठ
१.	१-२४	१०००	१-७८८
२.	२५-३८	८१२	७८९-१५३६
३.	३९-४६	३८८	१५३७-१९१८
	४६	२२००	

परिशिष्ट–



॥ द्रव्यानुयोग तृतीय भाग ॥

(अध्ययन ३९ से ४६ तथा परिशिष्ट युक्त)

गर्भ अध्ययन : आमुख

इस गर्भ अध्ययन में उन जीवों के जन्म का विवेचन है जो गर्भ से जन्म ग्रहण करते हैं। इसके साथ ही विग्रहगति एवं मरण का भी विशद वर्णन है। यह अध्ययन वक्रंति (व्युत्क्रान्ति) अध्ययन का पूरक अध्ययन है।

कुछ जीवों का जन्म सम्मूर्च्छिम जन्म कहलाता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रियादि जीवों का जन्म इसी श्रेणी में आता है। देवों एवं नैरयिकों का जन्म विना माता-पिता के संयोग के होने से उपपात जन्म कहलाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि कुछ जीव ऐसे हैं जिनका जन्म गर्भ से होता है।

चौवीस दण्डकों में से मात्र दो दण्डकों के जीवों का जन्म गर्भ से होता है–१. मनुष्य और २. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का। इन दोनों के चर्मयुक्त पर्व होते हैं। ये दोनों शुक्र ओर रक्त से उत्पन्न होते हैं। ये दोनों गर्भ में रहते हुए आहार ग्रहण करते हैं तथा वृद्धिंगत होते हैं। गर्भ में रहते हुए इनकी हानि, विक्रिया, गतिपर्याय, समुद्घात, कालसंयोग, गर्भ से निर्गमन और मृत्यु होती है।

गर्भधारण करने व न करने के सम्वन्ध में स्थानांग सूत्र में वहुत सी वातें दी गई हैं। पाँच कारणों से स्त्री पुरुप का सहवास न करती हुई भी गर्भ धारण कर सकती है–१. कुआसन से वैठी स्त्री की अनावृत योनि में शुक्रपुद्गल चले जाने से २. शुक्र-पुद्गलों से युक्त वस्त्र को योनि-देश में प्रविष्ट कराने पर ३. स्वयं ही अपने हाथ से शुक्र-पुद्गलों को योनि देश में प्रवेश कराने पर ४. दूसरे के द्वारा शुक्र-पुद्गलों को योनि-देश में प्रवेश कराने पर ५. शीतोदक में स्नान करती हुए स्त्री के योनि स्थान में शुक्र-पुद्गलों के प्रवेश कर जाने से। पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ धारण नहीं करती है–१. स्त्री के पूर्ण युवति न होने पर २. यौवन वीत जाने पर ३. जन्म से ही वंध्या होने पर ४. रोगयुक्त होने पर ५. शोकग्रस्त होने पर। ऐसे पाँच-पॉच अन्य कारण और भी हैं जिनसे स्त्री पुरुप का सहवास प्राप्त करके भी गर्भ धारण नहीं करती है, यथा–१. स्त्री के सदा ऋतुमती रहने पर २. कभी भी ऋतुमती न होने पर ३. गर्भाशय के नष्ट हो जाने पर ४. गर्भाशय की शक्ति क्षीण होने पर तथा ५. अप्राकृतिक क्रीड़ा करने पर। अन्य पाँच कारण हैं–१. ऋतुकाल में वीर्यपात होने तक पुरुप का सेवन न करने से २. समागत शुक्र पुद्गलों के विध्वस्त हो जाने से ३. पित्त प्रधान शोणित के उदीर्ण होने से ४. देव, कर्म, शाप आदि से ५. पुत्र-फलदायी कर्म के अर्जित न होने से।

मानुपी स्त्रियों के गर्भ चार प्रकार के होते हैं–१. स्त्री के रूप में, २. पुरुप के रूप में, ३. नपुंसक के रूप में, ४. विम्व विचित्र आकृति के रूप में। शुक्र अल्प और रज अधिक होने पर स्त्री, शुक्र अधिक और रज अल्प होने पर पुरुप, रज व शुक्र समान होने पर नपुंसक तथा वायुविकार के कारण स्त्री रज के स्थिर होने पर विम्व उत्पन्न होता है। गर्भस्थ जीव शुभ भावों से काल करने पर देवलोक में उत्पन्न होता है तथा अशुभ भावों से काल करने पर नरक में जाता है। गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रिय सहित भी उत्पन्न होता है तथा इन्द्रिय रहित भी उत्पन्न होता है। भावेन्द्रियों की अपेक्षा वह इन्द्रियों सहित उत्पन्न होता है तथा द्रव्येन्द्रियों की अपेक्षा वह इन्द्रियरहित उत्पन्न होता है। इसी प्रकार गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव तैजस् एवं कार्मण शरीरों की अपेक्षा सशरीर उत्पन्न होता है तथा औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों की अपेक्षा शरीर रहित उत्पन्न होता है। गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श परिणाम से परिणमित होता है।

विभिन्न गर्भों की काल-स्थिति भिन्न-भिन्न होती है। उदक गर्भ-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक उदक गर्भ के रूप में रहता है। तिर्यग्योनिक गर्भ जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष तक तिर्यग्योनिक गर्भ के रूप में रहता है। मानुषी गर्भ जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वारह वर्ष तक मानुपी गर्भ के रूप में रहता है। काय-भवस्थ जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौवीस वर्ष काय-भवस्थ के रूप में रहता है। मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च सम्वन्धी योनिगत वीर्य योनिभूत जननशक्ति के रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वारह मुहूर्त तक रहता है। गर्भगत जीव पर माता के सुखी दुःखी होने, लेटने, जागने आदि का प्रभाव होता है। प्रसवकाल में गर्भगत जीव सिर या पैरों से वाहर आने पर भलीभाँति आ जाता है किन्तु टेड़ा निकलने पर मर जाता है।

गर्भगत जीव के शरीर में माता के तीन अंग होते हैं–१. माँस, २. शोणित और ३. मस्तिष्क। पिता के भी तीन अंग होते हैं–१. हड्डी, २. मज्जा और ३. केश, दाड़ी, मूँछ, रोम व नख। माता-पिता के वे अंग जीव के भवधारणीय शरीर रहने तक रहते हैं, उसके नष्ट होने पर नष्ट हो जाते हैं। यह जीव सभी गतियों में अनन्त वार जन्म ले चुका है। सभी जीव सवके माता-पिता, भाई, वहन आदि बन चुके हैं।

विग्रहगति पर भी इस अध्ययन में विस्तृत विचार हुई है। जीव कदाचित् विग्रहगति को प्राप्त होता है और कदाचित् विग्रह गति को प्राप्त नहीं होता। विग्रह गति में प्रायः एक समय, दो समय या तीन समय लगते हैं, किन्तु एकेन्द्रिय जीवों की विग्रहगति में चार समय तक लग जाते हैं। सात प्रकार की श्रेणियाँ हैं–ऋज्वायता (सीधी), एकतोवक्रा (एक मोड़ वाली), उभयतोवक्रा (दो मोड़ वाली) आदि। इनमें जो जीव ऋज्वायता श्रेणी से उत्पन्न

होता है वह एक समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है। जो जीव एकतोवक्राश्रेणी से उत्पन्न होता है वह दो समय की विग्रहगति से तथा उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होने वाला जीव तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है। विश्रेणि से उत्पन्न होने वाला जीव चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

मरण सतरह प्रकार का भी होता है और पाँच प्रकार भी होता है। मरण के पाँच प्रकार हैं-१. आवीचिमरण, २. अवधिमरण, ३. आत्यन्तिक मरण, ४. बालमरण और ५. पण्डित मरण। इन पाँच प्रकार के मरणों के अनेक भेदोपभेद हैं। प्रमुखतया प्रथम तीन मरणों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव इन पाँच भेदों में विभक्त किया गया है। ये द्रव्यादि सभी मरण चारों गतियों में संभव हैं। बालमरण के १२ भेद हैं-वलयमरण, वशार्तमरण आदि। इनमें विष भक्षण करके मरना, अग्नि में जलकर मरना, पानी में डूबकर मरना आदि मरण सम्मिलित हैं। पंडित मरण दो प्रकार का है-१. पादपोपगमन और २. भक्त प्रत्याख्यान। पादपोपगमन मरण भी दो प्रकार का होता है-निराहार और आहार सहित। यह मरण सेवा-सुश्रूषा रहित है। भक्त प्रत्याख्यान में आहार त्याग किया जाता है किन्तु सेवा-सुश्रूषा नहीं की जाती।

मृत्यु के समय शरीर में से जीव के निकलने के पाँच मार्ग कहे गए हैं-१. पैर, २. उरु, ३. हृदय, ४. सिर और ५. सर्वाङ्ग शरीर। पैरों से निर्याण करने वाला जीव नरकगामी होता है, उरु से निर्याण करने वाला तिर्यग्गामी, हृदय से निर्याण करने वाला मनुष्यगामी, सिर से निर्याण करने वाला देवगामी और सर्वांग से निर्याण करने वाला जीव सिद्धगति प्राप्त करता है।

इस प्रकार इस गर्भ अध्ययन में जन्म से लेकर मरण तक की विविध जानकारियों का विशद विवेचन हुआ है।



३९. गब्भऽज्झयणं

सुत्त

१. गब्भाइ पयाणं सामित्तं–

१. दोण्हं गब्भवक्कंति पण्णत्ता, तं जहा–
१. मणुस्साणं चेव, २. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

२. दोण्हं छविपव्वा पण्णत्ता, तं जहा–
१. मणुस्साणं चेव, २. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

३. दो सुक्क-सोणियसंभवा पण्णत्ता, तं जहा–
१. मणुस्साणं चेव, २. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

४. दोण्हं गब्भत्थाणं आहारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. मणुस्साणं चेव, २. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।

५. दोण्हं गब्भत्थाणं वुड्ढी पण्णत्ता, तं जहा–
१. मणुस्साणं चेव, २. पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं चेव।
एवं निव्वुड्ढी, विगुव्वणा, गइपरियाए, समुग्घाए, कालसंजोगे आयाती मरणं। *–ठाणं अ. २, उ. ३, सु. ७९*

२. भवस्स चउव्विहत्त परूवणं–

चउव्विहे भवे पण्णत्ते, तं जहा–
१. णेरइयभवे, २. तिरिक्खजोणियभवे,
३. मणुस्सभवे ४. देवभवे
–ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९४

३. गब्भ धारणस्स विहि–णिसेह कारण परूवणं–

पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणी वि गब्भं धरेज्जा, तं जहा–

१. इत्थी दुव्वियडा दुन्निसण्णा सुक्कपोग्गले अहिट्ठिज्जा,
२. सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे व से वत्थे अंतो जोणिए अणुपविसेज्जा,
३. सइं व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा,
४. परो व से सुक्कपोग्गले अणुपवेसेज्जा,
५. सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गला अणुपविसेज्जा।

इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणी वि गब्भं धरेज्जा।

१ पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा–
१. अप्पत्तजोव्वणा,
२. अतिक्कंतजोव्वणा,
३. जातिवंझा,

३९. गर्भ अध्ययन

सूत्र

१. गर्भ आदि पदों का स्वामित्व–

१. दो की गर्भव्युत्क्रान्ति होती है, यथा–
१. मनुष्यों की, २. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों की।

२. दो के चर्मयुक्त पर्व (सन्धि-वन्धन) होते हैं, यथा–
१. मनुष्यों के, २. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के।

३. दो शुक्र और रक्त से उत्पन्न होते हैं, यथा–
१. मनुष्य, २. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक।

४. दो गर्भ में रहते हुए आहार लेते हैं, यथा–
१. मनुष्य, २. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक।

५. दो की गर्भ में रहते हुए वृद्धि होती है, यथा–
१. मनुष्यों की, २. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों की।
इसी प्रकार (दो की गर्भ में रहते हुए) हानि, विक्रिया, गतिपर्याय, समुद्घात, कालसंयोग, गर्भ से निर्गमन और मृत्यु होती है।

२. भव के चतुर्विधत्व का प्ररूपण–

भव (उत्पत्ति) चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नैरयिक भव, २. तिर्यञ्चयोनिक भव,
३. मनुष्य भव, ४. देव भव।

३. गर्भ धारण के विधि-निषेध के कारणों का प्ररूपण–

पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास न करती हुई भी गर्भ को धारण कर लेती है, यथा–

१. अनावृत तथा दुर्निषण्ण (कुआसन) से बैठी हुई स्त्री के योनि-देश में शुक्रपुद्गलों का आकर्षण होने पर,
२. शुक्र-पुद्गलों से संसृष्ट वस्त्र के योनि-देश में प्रविष्ट हो जाने पर,
३. स्वयं अपने ही हाथों से शुक्र-पुद्गलों को योनि-देश में अनुप्रविष्ट कर देने पर,
४. दूसरों के द्वारा शुक्र-पुद्गलों के योनि-देश में अनुप्रविष्ट किए जाने पर,
५. शीतल जल में स्नान करती हुई स्त्री के योनि-देश में शुक्र-पुद्गलों के अनुप्रविष्ट हो जाने पर।

इन पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास न करती हुई भी गर्भ धारण कर सकती है।

१. पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती है, यथा–
१. पूर्ण युवती न हो तो
२. विगतयौवना हो तो
३. जन्म से ही वंध्या हो तो

४. गेलन्नपुट्ठा,
५. दोमणंसिया।
इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं नो धरेज्जा।

२. पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा–
१. निच्चोउया,
२. अणोउया,
३. वावन्नसोया,
४. वाविद्धसोया,
५. अणंगपडिसेविणी।
इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं नो धरेज्जा।

३. पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं नो धरेज्जा, तं जहा–
१. उउम्मि णो णिगामपडिसेविणी या वि भवइ
२. समागया वा से सुक्कपोग्गला पडिविद्धंसंति,
३. उदिन्ने वा से पित्तसोणिए,
४. पुरा वा देवकम्मुणा,
५. पुत्तफले वा नो निव्विट्ठे भवइ।
इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं संवसमाणी वि गब्भं नो धरेज्जा। –ठाणं अ. ५, उ. २, सु. ४१६

४. रोग से स्पृष्ट हो तो
५. दौर्मनस्क (शोकग्रस्त) हो तो
इन पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती है।

२. पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती है, यथा–
१. सदा ऋतुमती रहने से,
२. कभी भी ऋतुमती न होने से,
३. गर्भाशय नष्ट हो जाने से,
४. गर्भाशय की शक्ति क्षीण हो जाने से,
५. अप्राकृतिक काम-क्रीड़ा करने से,
इन पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती है।

३. पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती है, यथा–
१. ऋतुकाल में वीर्यपात होने तक पुरुष का प्रतिसेवन नहीं करने से,
२. समागत शुक्र-पुद्गलों के विध्वस्त हो जाने से,
३. पित्त-प्रधान शोणित (रक्त) के उदीर्ण हो जाने से,
४. देव प्रयोग (श्राप आदि) से,
५. पुत्र फलदायी कर्म के अर्जित न होने से।
इन पाँच कारणों से स्त्री पुरुष का सहवास करती हुई भी गर्भ को धारण नहीं करती है।

४. माणुसी गब्भस्स चउव्विहत्तं–

चत्तारि मणुस्सीगब्भा पण्णत्ता, तं जहा–
१. इत्थित्ताए,
२. पुरिसत्ताए,
३. णपुंसगत्ताए,
४. विंवत्ताए

गाहाओ– अप्पं सुक्कं वहुं ओयं, इत्थी तत्थ पजायइ।
अप्पं ओयं वहुं सुक्कं, पुरिसो तत्थ पजायइ॥
दोण्हं पि रत्तसुक्काणं, तुल्लभावे णपुंसओ।
इत्थीओयसमायोगे, विंवं तत्थ पजायइ॥
–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७७

४. मानुषी गर्भ के चार प्रकारों का प्ररूपण–

मनुष्य स्त्रियों के गर्भ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. स्त्री के रूप में,
२. पुरुष के रूप में,
३. नपुंसक के रूप में,
४. बिम्ब विचित्र (आकृति) के रूप में,

गाथार्थ–शुक्र अल्प और रज अधिक होने पर स्त्री पैदा होती है। ओज अल्प और शुक्र अधिक होने पर पुरुष पैदा होता है।
रक्त (ओज) और शुक्र दोनों के समान होने पर नपुंसक पैदा होता है। (वायु-विकार के कारण) स्त्री रज के स्थिर होने पर विंब होता है।

५. गब्भगयजीवस्स नेरइय-देवेसु उववज्जण कारणाणि परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे नेरइएसु उववज्जेज्जा?
उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।
प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'गब्भगए समाणे जीवे नेरइएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा?'

५. गर्भगत जीव के नरक और देवों में उत्पन्न होने के कारणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! गर्भ में रहा हुआ जीव क्या नारकों में उत्पन्न होता है?
उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।
प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"गर्भ में रहा हुआ कोई जीव नैरयिकों में उत्पन्न होता है और कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है?"

उ. गोयमा ! से णं सन्नी पंचेंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए पराणीयं आगयं सोच्चा निसम्म पएसे निच्छुभंति,

निच्छुभित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ,

वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णित्ता चाउरंगिणिं सेणं विउव्वइ,

चाउरंगिणीं सेणं विउव्वेत्ता चाउरंगिणिए सेणाए पराणीएणं सद्धिं संगामं संगामेइ,

से णं जीवे—अत्थकामए, रज्जकामए, भोगकामए, कामकामए, अत्थकंखिए, रज्जकंखिए, भोगकंखिए, कामकंखिए,

अत्थपिवासिए, रज्जपिवासिए, भोगपिवासिए, कामपिवासिए,

तच्चित्ते तम्मणे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणाभाविए

एएसि णं अंतरंसि कालं करेज्जा नेरइएसु उववज्जइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

"गब्भगए समाणे जीवे अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।"

प. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे देवलोगेसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

"गब्भगए समाणे जीवे अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा ?"

उ. गोयमा ! से णं सन्नी पंचिंदिए सव्वाहिं पज्जत्तीहिं पज्जत्तए तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अंतिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म तओ भवइ संवेगजायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते,

से णं जीवे-धम्मकामए पुण्णकामए सग्गकामए मोक्खकामए, धम्मकंखिए पुण्णकंखिए सग्गकंखिए मोक्खकंखिए,

धम्मपिवासिए पुण्णपिवासिए सग्गपिवासिए मोक्खपिवासिए,

तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणाभाविए,

एएसि णं अंतरंसि कालं करेज्जा देवलोएसु उववज्जइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

उ. गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय और समस्त पर्याप्तियों से परिपूर्ण जीव, वीर्यलब्धि और वैक्रियलब्धि द्वारा शत्रुसेना का आगमन सुनकर, अवधारण करके अपने आत्मप्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है,

बाहर निकालकर वैक्रियसमुद्घात करता है,

वैक्रिय समुद्घात करके चतुरंगिणी सेना की विकुर्वणा करता है,

चतुरंगिणी सेना की विकुर्वणा करके उस सेना से शत्रुसेना के साथ युद्ध करता है।

वह अर्थ (धन) का कामी, राज्य का कामी, भोग का कामी, काम का कामी, अर्थाकांक्षी, राज्याकांक्षी, भोगाकांक्षी, कामाकांक्षी,

अर्थ-पिपासु, राज्य-पिपासु, भोग-पिपासु एवं काम-पिपासु,

उन्हीं में चित्त वाला, उन्हीं में मन वाला, उन्हीं में आत्मपरिणाम वाला, उन्हीं में अध्यवसित, उन्हीं में प्रयत्न-शील, उन्हीं में उपयोग वाला, उन्हीं के लिए क्रिया करने वाला और उन्हीं भावनाओं से भावित हो और

उसी समय में मृत्यु को प्राप्त हो तो वह नरक में उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—

"गर्भ में रहा हुआ कोई जीव नैरयिकों में उत्पन्न होता है और कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है।"

प्र. भंते ! गर्भस्थ जीव क्या देवलोक में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! कोई जीव उत्पन्न होता है और कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—

"गर्भस्थ जीव कोई देवलोक में उत्पन्न होता है और कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है ?"

उ. गौतम ! वह गर्भस्थ संज्ञी पंचेन्द्रिय और सब पर्याप्तियों से पर्याप्त जीव, तथारूप श्रमण या माहन के पास एक भी आर्य और धार्मिक सुवचन सुनकर अवधारण करके शीघ्र ही संवेग से धर्मश्रद्धालु बनकर, धर्म में तीव्र अनुराग रक्त होकर,

वह धर्म का कामी, पुण्य का कामी, स्वर्ग का कामी, मोक्ष का कामी, धर्माकांक्षी, पुण्याकांक्षी, स्वर्ग का आकांक्षी, मोक्षाकांक्षी,

धर्मपिपासु, पुण्यपिपासु, स्वर्गपिपासु एवं मोक्षपिपासु,

उसी में चित्त वाला, उसी में मन वाला, उसी में आत्मपरिणाम वाला, उसी में अध्यवसित, उसी में तीव्र प्रयत्नशील, उसी में उपयोगयुक्त, उसी के लिए अर्पित होकर क्रिया करने वाला, उसी की भावनाओं से भावित हो और

उसी समय में मृत्यु को प्राप्त हो तो देवलोक में उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—

"गब्भगए समाणे जीवे अत्थेगइए उववज्जेज्जा अत्थेगइए नो उववज्जेज्जा। -विया. १, उ. ७, सु. १९-२०

६. गब्भं वक्कमाणस्स जीवस्स सिय सइंदियं ससरीरं उव्वत्ति परूवणं-

प. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कमाणे किं सइंदिए वक्कमइ, अणिंदिए वक्कमइ?

उ. गोयमा ! सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
"गब्भं वक्कमाणे जीवे सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ?"

उ. गोयमा ! दव्विंदियाइं पडुच्च अणिंदिए वक्कमइ, भाविंदियाइं पडुच्च सइंदिए वक्कमइ।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-
"गब्भं वक्कमाणे जीवे सिय सइंदिए वक्कमइ, सिय अणिंदिए वक्कमइ।"

प. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कमाणे किं ससरीरी वक्कमइ, असरीरी वक्कमइ?

उ. गोयमा ! सिय ससरीरी वक्कमइ, सिय असरीरी वक्कमइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-
"गब्भं वक्कमाणे जीवे सिय ससरीरी वक्कमइ, सिय असरीरी वक्कमइ?"

उ. गोयमा ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारयाइं पडुच्च असरीरी वक्कमइ, तेयाकम्माइं पडुच्च ससरीरी वक्कमइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-
"गब्भं वक्कमाणे जीवे सिय ससरीरी वक्कमइ सिय असरीरी वक्कमइ।" -विया. स. १, उ. ७, सु. १०-११

७. गब्भं वक्कमाणे जीवस्स वण्णाइ परूवणं-

प. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कमाणे कतिवण्णं कतिगंधं कतिरसं कतिफासं परिणामं परिणमइ?

उ. गोयमा ! पंचवण्णं दुगंधं पंचरसं अट्ठफासं परिणामं परिणमइ।[1] -विया. स. १२, उ. ५, सु. ३६

८. दगगब्भस्स पगारा समयं च परूवणं-

चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा-
१. उस्सा, २. महिया, ३. सीता, ४. उसिणा।
चत्तारि दगगब्भा पण्णत्ता, तं जहा-
१. हेमगा,
२. अब्भसंथडा,
३. सीओसिणा, ४. पंचरूविया।

"कोई गर्भस्थ जीव देवलोक में उत्पन्न होता है और कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है।"

६. गर्भ में उत्पन्न होते हुए जीव के सइन्द्रिय-सशरीर उत्पत्ति का प्ररूपण-

प्र. भंते ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या इन्द्रियसहित उत्पन्न होता है या इन्द्रियरहित उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! इन्द्रियसहित भी उत्पन्न होता है और इन्द्रियरहित भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
"गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रियसहित भी उत्पन्न होता है और इन्द्रियरहित भी उत्पन्न होता है?"

उ. गौतम! द्रव्येन्द्रियों की अपेक्षा वह बिना इन्द्रियों का उत्पन्न होता है और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियों सहित उत्पन्न होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-
"गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रियसहित भी उत्पन्न होता है और इन्द्रियरहित भी उत्पन्न होता है।"

प्र. भंते ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या शरीर सहित उत्पन्न होता है या शरीर रहित उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह शरीर सहित भी उत्पन्न होता है और शरीररहित भी उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि-
"गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव शरीरसहित भी उत्पन्न होता है और शरीररहित भी उत्पन्न होता है?"

उ. गौतम ! औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों की अपेक्षा शरीररहित उत्पन्न होता है तथा तैजस् और कार्मण शरीरों की अपेक्षा शरीरसहित उत्पन्न होता है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि-
"गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव शरीरसहित भी उत्पन्न होता है और शरीररहित भी उत्पन्न होता है।"

७. गर्भ में उत्पन्न होते हुए जीव के वर्णादि का प्ररूपण-

प्र. भंते ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श परिणाम से परिणमित होता है?

उ. गौतम ! वह जीव पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श परिणाम से परिणमित होता है।

८. उदक गर्भ के प्रकार और समय का प्ररूपण-

उदक गर्भ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. ओस, २. मिहिका (कोहरा), ३. अतिशीत, ४. अतिउष्ण।
उदक गर्भ चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा-
१. हिमपात,
२. अभ्रसंस्तृत-आकाश का बादलों से ढंका रहना,
३. अतिशीतोष्ण, ४. पंचरूपिका।
(१. गर्जन, २. विद्युत, ३. जल, ४. वात तथा ५. बादलों के संयुक्त योग से।)

---

१. विया. स. २०, उ. ३, सु. २

१. माहे उ हेमगा गब्भा,
२. फग्गुणे अब्भसंथडा
३. सितोसिणा उ चित्ते,
४. वइसाहे पंचरूविया। *–ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७६*

१. माघ में हिमपात से उदक गर्भ रहता है।
२. फाल्गुन में आकाश के बादलों से आच्छादित होने पर उदक गर्भ रहता है।
३. चैत्र में अतिशीत तथा अतिउष्णता से उदक गर्भ रहता है।
४. वैशाख में पंचरूपिका होने से उदक गर्भ रहता है।

९. उदग-तिरिक्ख जोणिय-मणुस्सी गब्भस्स कायट्ठिई परूवणं–

प. उदगगब्भे णं भंते ! उदगगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्कं समयं,
उक्कोसेणं छ मासा।
प. तिरिक्खजोणियगब्भे णं भंते ! तिरिक्खजोणियगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं अट्ठ संवच्छराइं।
प. मणुस्सीगब्भे णं भंते ! मणुस्सीगब्भे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं।
प. काय-भवत्थे णं भंते ! काय भवत्थे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं चउव्वीसं संवच्छराइं।
प. मणुस्स-पंचेंदियतिरिक्खजोणियबीए णं भंते ! जोणिब्भूए केवइयं कालं संचिट्ठइ?
उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता। *–विया. स. २, उ. ५, सु. २-६*

९. उदक-तिर्यञ्चयोनिक-मनुष्य स्त्रियों के गर्भ आदि की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! उदकगर्भ, (पानी का गर्भ) उदकगर्भ के रूप में कितने काल तक रहता है?
उ. गौतम ! जघन्य एक समय,
उत्कृष्ट छह मास तक।
प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चयोनिकगर्भ, तिर्यञ्चयोनिकगर्भ के रूप में कितने काल तक रहता है?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट आठ वर्ष तक।
प्र. भंते ! मानुषीगर्भ, मानुषीगर्भ के रूप में कितने काल तक रहता है?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट बारह वर्ष तक।
प्र. भंते ! काय भवस्थ जीव काय भवस्थ के रूप में कितने काल तक रहता है?
उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट चौवीस वर्ष तक।
प्र. भंते ! मनुष्य और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक सम्बन्धी योनिगत बीज (वीर्य) योनिभूत (प्रजनन शक्ति) रूप में कितने काल तक रहता है?
उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त,
उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक।

१०. गब्भट्ठियस्स जीवस्स अवट्ठाण परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! गब्भगए समाणे उत्ताणए वा, पासिल्लए वा, अंबखुज्जए वा, अच्छेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, निसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा,
मातुए सुवमाणीए सुवइ, जागरमाणीए जागरइ,
सुहियाए सुहिए भवइ, दुहियाए दुहिए भवइ?
उ. हंता, गोयमा ! जीवे णं गब्भगए समाणे उत्ताणए वा जाव दुहियाए दुहिए भवइ।
अहे णं पसवणकाल समयंसि सीसेण वा, पाएहिं वा आगच्छइ सममागच्छइ, तिरियमागच्छइ विणिहायमावज्जइ। *–विया. स. १, उ. ७, सु. २१-२२ (क)*

१०. गर्भ में स्थित जीव के अवस्थान का प्ररूपण–

प्र. भंते ! गर्भ में रहा हुआ जीव क्या उत्तानक चित-लेटा हुआ, करवट लिये, आम के समान कुबड़ा, खड़ा बैठा या सोता हुआ होता है तथा
माता के सोने पर सोया हुआ, जागने पर जागा हुआ,
सुखी होने पर सुखी और दुखी होने पर दुःखी होता है?
उ. हाँ, गौतम ! गर्भ में रहा हुआ जीव उत्तानक यावत् माता के दुःखी होने पर दुःखी होता है,
प्रसवकाल में अगर वह गर्भगत जीव मस्तक द्वारा या पैरों द्वारा गर्भ से बाहर आए तब तो भली-भांति आ जाता है यदि वह टेड़ा (आड़ा) होकर आता है तो मर जाता है।

११. एग भवग्गहणं पडुच्च एग जीवस्स जणयप्पमाणं–

प. एगजीवे णं भंते ! एगभवग्गहणेणं केवइयाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ?

११. एक भवग्रहण की अपेक्षा एक जीव के जनकों का प्रमाण–

प्र. भंते ! एक जीव एक भव ग्रहण की अपेक्षा कितने जीवों का पुत्र हो सकता है?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं इक्कस्स वा, दोण्हं वा, तिण्हं वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तस्स जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छइ।

–विया. स. २, उ. ५, सु. ७

१२. एगभवग्गहणं पडुच्च एग जीवस्स पुत्त संखा–

प. एगजीवस्स णं भंते ! एगभवग्गहणेणं केवइया जीवा पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति ?"

उ. गोयमा ! इत्थीए य पुरिसस्स य कम्मकडाए जोणीए मेहुणवत्तिए नामं संजोए समुप्पज्जइ।

ते दुहओ सिणेहं संचिणंति संचिणित्ता तत्थ णं जहन्नेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,

उक्कोसेणं सयसहस्सपुहत्तं जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा उक्कोसेणं सयसहस्स पुहत्तं जीवाणं पुत्तत्ताए हव्वमागच्छंति।"

–विया. स. २, उ. ५, सु. ८

१३. जीव सरीरे माइ पिइअंग परूवणं–

प. कइ णं भंते ! माइअंगा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ माइअंगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. मंसे, २. सोणिए, ३. मत्थुलुंगे।[1]

प. कइ णं भंते ! पिइअंगा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ पिइअंगा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठि, २. अट्ठिमिंजा, ३. केसमंसुरोमनहे।

–विया. स. १, उ. ७, सु. १६-१७

१४. माइ-पिइअंगाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. अम्मपिइए अंगाणं भंते ! सरीरए केवइयं कालं संचिट्ठइ ?

उ. गोयमा ! जावइयं से कालं भवधारणिज्जे सरीरए अव्ववन्ने भवइ, एवइयं काले संचिट्ठंति, अहे णं समए-समए वोक्कसिज्जमाणे-वोक्कसिज्जमाणे चरमकालसमयंसि वोच्छिन्ने भवंति।

–विया. स. १, उ. ७, सु. १८

१५. जीव-चउवीसदंडएसु एगत्त-पुहत्तेणं विग्गहगइ समावन्नगाइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नए अविग्गहगइसमावन्नए ?

उ. गौतम ! एक जीव एक भव में जघन्य एक, दो या तीन जीवों का और उत्कृष्ट शत पृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ तक) जीवों का पुत्र हो सकता है।

१२. एक भव ग्रहण की अपेक्षा एक जीव के पुत्रों की संख्या–

प्र. भंते ! एक जीव के एक भव में कितने जीव पुत्र रूप में (उत्पन्न) हो सकते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य एक, दो या तीन जीव और उत्कृष्ट लक्षपृथक्त्व (दो लाख से लेकर नौ लाख तक) जीव पुत्र रूप में उत्पन्न हो सकते हैं।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट लक्षपृथक्त्व जीव पुत्र रूप में उत्पन्न हो सकते हैं ?"

उ. गौतम ! (कर्मकृत नामकर्म से निष्पन्न और वेदोदय से) योनि में स्त्री और पुरुष का जब मैथुनवृत्तिक सम्भोग निमित्तक संयोग निष्पन्न होता है।

तब उन दोनों के स्नेह से पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज का संयोग सम्बन्ध होता है और संयोग होने पर उसमें से जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट लक्षपृथक्त्व (दो लाख से लेकर नौ लाख तक) जीव पुत्र रूप में उत्पन्न हो सकते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट लक्षपृथक्त्व जीव पुत्र रूप में उत्पन्न हो सकते हैं।"

१३. जीव के शरीर में माता-पिता के अंगों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (जीव के शरीर में) माता के अंग कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! माता के तीन अंग कहे गए हैं, यथा–

१. मांस, २. शोणित (रक्त), ३. मस्तक का भेजा (दिमाग)।

प्र. भंते ! पिता के कितने अंग कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पिता के तीन अंग कहे गए हैं, यथा–

१. हड्डी, २. मज्जा, ३. केश, दाढी, मूंछ, रोम, नख।

१४. माता-पिता के अंगों की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! माता-पिता के अंग शरीर में कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! भवधारणीय शरीर जितने समय तक रहता है, उतने समय तक वे अंग रहते हैं और भवधारणीय शरीर प्रति समय क्षीण होते-होते अन्तिम समय में वे (अंग भी) नष्ट हो जाते हैं तब माता-पिता के वे अंग भी नष्ट हो जाते हैं।

१५. जीव-चौवीस दंडकों में एकत्व बहुत्व की विग्रहगति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जीव विग्रहगतिसमापन्नक है या अविग्रहगति-समापन्नक है ?

१. ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २०९

उ. गोयमा ! सिय विग्गहगइसमावन्नए, सिय अविग्गहगइसमावन्नगे।

दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. जीवाणं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नगा, अविग्गहगइसमावन्नगा?

उ. गोयमा ! विग्गहगइसमावन्नगा वि, अविग्गहगइ-समावन्नगा वि।

प. नेरइया णं भंते ! किं विग्गहगइसमावन्नगा, अविग्गहगइसमावन्नगा?

उ. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव होज्जा अविग्गहगइसमावन्नगा,

२. अहवा अविग्गहगइसमावन्नगा य विग्गहगइ-समावन्नगे य,

३. अहवा अविग्गहगइसमावन्नगा य विग्गहगइ-समावन्नगा य,

एवं जीव एगिंदियवज्जो तियभंगो।[1]

–विया. स. १, उ. ७, सु. ७-८

उ. गौतम ! कदाचित् विग्रहगति को प्राप्त होता है और कदाचित् विग्रहगति को प्राप्त नहीं होता है।

दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (वहुत से) जीव विग्रहगति को प्राप्त होते हैं या अविग्रहगति को प्राप्त होते हैं?

उ. गौतम ! (वहुत से) जीव विग्रहगति प्राप्त भी हैं और अविग्रहगति प्राप्त भी हैं।

प्र. भंते ! क्या नैरयिक विग्रहगति को प्राप्त होते हैं या अविग्रहगति को प्राप्त होते हैं?

उ. गौतम ! १. वे सभी विग्रहगति को प्राप्त नहीं होते हैं।

२. अथवा वहुत से अविग्रहगति को प्राप्त नहीं होते और कोई एक विग्रहगति को प्राप्त होता है।

३. अथवा वहुत से (जीव) अविग्रहगति को प्राप्त नहीं होते और वहुत से (जीव) विग्रहगति को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार जीव सामान्य और एकेन्द्रिय को छोड़कर सर्वत्र तीन-तीन भंग कहने चाहिए।

१६. विविह दिसाओ पडुच्च एगिंदियाणं विग्गहगइस्स समय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! एगिंदिया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! पंचविहा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुढविकाइया जाव ५. वणस्सईकाइया।

एवमेए वि चउक्कएणं भेएणं भाणियव्वा जाव वणस्सईकाइया।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–

"एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा?

उ. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. उज्जुआयता सेढी, २. एगओवंका, ३. दुहओवंका, ४. एगओखहा, ५. दुहओखहा, ६. चक्कवाला, ७. अद्धचक्कवाला।

१. उज्जुयायताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

२. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

१६. विविध दिशाओं की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों की विग्रहगति के समय का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! एकेन्द्रिय पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. पृथ्वीकाय यावत् ५. वनस्पतिकाय।

इस प्रकार इनके भी वनस्पतिकायिक पर्यंत प्रत्येक के चार-चार भेद कहने चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वदिशा के चरमान्त में मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिमी चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिकरूप में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह एक समय की, दो समय की या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है?"

उ. गौतम ! मैंने सात श्रेणियाँ कही हैं, यथा–

१. ऋज्वायता, २. एकतोवक्रा, ३. उभयतोवक्रा, ४. एकतःखा, ५. उभयतःखा, ६. चक्रवाल, ७. अर्द्धचक्रवाल।

१. जो पृथ्वीकायिक जीव ऋज्वायता श्रेणी से उत्पन्न होता है वह एक समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

२. जो एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है, वह दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

१. ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २२५

एवं पज्जत्तबायरपुढविकाइओ वि (८०)

इसी प्रकार पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक के उपपात का कथन करना चाहिए। (८०)

एवं आउकाइओ वि चउसु वि गमएसु पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए एयाए चेव वत्तव्वयाए एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो (१६०)

इसी प्रकार अप्कायिक जीवों का भी चार गमकों द्वारा पूर्वी चरमान्त में मरण समुद्घात से मरकर इन्हीं पूर्वोक्त बीस स्थानों में पूर्ववत् उपपात का कथन करना चाहिए। (१६०)

सुहुम तेउकाइओ वि अपज्जत्तओ पज्जत्तओ य एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो (४० = २००)

अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक जीवों का भी इन्हीं बीस स्थानों में पूर्ववत् उपपात कहना चाहिए। (४० = २००)

प. अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! मणुस्सखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

प्र. भंते ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीव, जो मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिमी चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गोयमा ! सेसं तहेव जाव से तेणट्ठेणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा। (१ = २०१)

उ. गौतम ! इस कारण से वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है पर्यन्त समग्र कथन पूर्ववत् करना चाहिए। (१ = २०१)

एवं पुढविकाइएसु चउव्विहेसु वि उववाएयव्वो। (३ = २०४)

इसी प्रकार चारों प्रकार के पृथ्वीकायिक जीवों में भी पूर्ववत् उपपात कहना चाहिए। (३-२०४)

एवं आउकाइएसु चउव्विहेसु वि। (४ = २०८)

चार प्रकार के अप्कायिकों में भी इसी प्रकार उपपात कहना चाहिए। (४ = २०८)

तेउकाइएसु सुहुमेसु अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य एवं चेव उववाएयव्वो। (२ = २१०)

सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव के पर्याप्त और अपर्याप्त में भी इसी प्रकार उपपात कहना चाहिए। (२ = २१०)

प. अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! मणुस्सखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए मणुस्सखेत्ते अपज्जत्तबायर-तेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

प्र. भंते ! अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीव, जो मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके मनुष्यक्षेत्र में अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है,

तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गोयमा ! सेसं तं चेव। (१ = २११)

उ. गौतम ! इसका उपपात पूर्ववत् कहना चाहिए। (१ = २११)

एवं पज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए वि उववाएयव्वो। (१ = २१२)

इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप में भी उपपात का कथन करना चाहिए (१ = २१२)

वाउकाइयत्ताए य, वणस्सइकाइयत्ताए य जहा पुढविकाइएसु तहेव चउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वो। (८ = २२०)

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के चार भेदों का उपपात कहा उसी प्रकार वायुकायिकों और वनस्पतिकायिकों के रूप से भी उपपात का कथन करना चाहिए (८ = २२०)

एवं पज्जत्तबायरतेउकाइओ वि समयखेत्ते समोहणावेत्ता एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो जहेव अपज्जत्तओ उववाइओ (२०)

इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक का भी समय (मनुष्य) क्षेत्र में समुद्घात करके इन्हीं (पूर्वोक्त) बीस स्थानों में उपपात का कथन करना चाहिए। (२०)

एवं सव्वत्थ वि बायरतेउकाइया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य समयखेत्ते उववाएयव्वा, समोहणावेयव्वा वि (= २४०)

इसी प्रकार सर्वत्र पर्याप्त और अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक का मनुष्यक्षेत्र में उपपात और समुद्घात का कथन करना चाहिए। (२४०)

वाउकाइया, वणस्सइकाइया य जहा पुढविकाइया तहेव चउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वा जाव–

पृथ्वीकायिक के उपपात के समान वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के चार-चार भेदों का उपपात कहना चाहिए यावत्–

प. पज्जत्तबायरवणस्सइकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणेत्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पज्जत्तबायरवणस्सइकाइयत्ताए उववज्जित्तए

प्र. भंते ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीव इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वी चरमान्त में मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिमी चरमान्त में पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य हो तो,

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! सेसं तहेव जाव से तेणट्ठेणं जाव विग्गहेणं उववज्जेज्जा। (२४० + ८० + ८० = ४००)

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! सेसं तहेव निरवसेसं।

एवं जहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमंते सव्वपदेसु वि समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाइया, जे य समयखेत्ते समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाइया,

एवं एएणं चेव कमेणं पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य समोहया पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाएयव्वा तेणेव गमएणं।(४०० = ८००)

एवं एएणं गमएणं दाहिणिल्ले चरिमंते समोहयाणं समयखेत्ते य, उत्तरिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाओ। (४०० = १२००)

एवं चेव उत्तरिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य समोहया, दाहिणिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाएयव्वा तेणेव गमएणं।(४०० = १६००)

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव रयणप्पभाए।

एवं एएणं कमेणं जाव पज्जत्तएसु सुहुमतेउकाइएसु।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जिज्जा।

प. से केणंट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?"

उ. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. उज्जुआयता जाव ७. अद्धचक्कवाला।

१. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! इस कारण से वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है पर्यंत समग्र कथन करना चाहिए। (२४० + ८० + ८० = ४००)

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी के पश्चिमी-चरमान्त में मरण समुद्घात करके रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वी चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य हो तो–

भन्ते ! कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् समस्त कथन करना चाहिए।

जिस प्रकार पूर्वी-चरमान्त के सभी पदों में समुद्घात करके पश्चिमी चरमान्त में और मनुष्यक्षेत्र में उपपात कहा उसी प्रकार मनुष्यक्षेत्र में समुद्घात पूर्वक पश्चिमी चरमान्त में और मनुष्यक्षेत्र में उपपात कहना चाहिए।

इसी प्रकार इसी क्रम से पश्चिमी चरमान्त में और मनुष्य क्षेत्र में समुद्घात करके पूर्वी चरमान्त में और मनुष्यक्षेत्र में उसी आलापक से उपपात होता है कहना चाहिए। ४०० = ८००।

इसी प्रकार इसी आलापक से दक्षिण के चरमान्त में समुद्घात करके मनुष्य क्षेत्र में और उत्तर के चरमान्त में समुद्घात करके मनुष्य क्षेत्र में उपपात कहना चाहिए।(४००=१२००)

इसी प्रकार उत्तरी चरमान्त में समुद्घात करके मनुष्य क्षेत्र में एवं दक्षिणी चरमान्त में समुद्घात करके मनुष्यक्षेत्र में उपपात कहना चाहिए। (४०० = १६००)

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव शर्कराप्रभापृथ्वी के पूर्वी चरमान्त में मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभापृथ्वी के पश्चिमी चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के रूप से उत्पन्न होने योग्य हो तो–भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के समान यहां भी कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार इसी क्रम से पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव शर्कराप्रभापृथ्वी के पूर्वी चरमान्त में मरणसमुद्घात करके मनुष्य क्षेत्र के अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य हो तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! मैंने सात श्रेणियां कही गई हैं, यथा–

१. ऋज्वायता यावत् ७. अर्द्धचक्रवाला।

१. जो एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है वह दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

२. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।"

एवं पज्जत्तएसु वि बायरतेउकाइएसु।

सेसं जहा रयणप्पभाए।

जे वि बायरतेउकाइया अपज्जत्तगा य, पज्जत्तगा य समयखेत्ते समोहया समोहणित्ता,

दोच्चाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते

पुढविकाइएसु चउव्विहेसु,

आउकाइएसु चउव्विहेसु,

तेउकाइएसु दुविहेसु,

वाउकाइएसु चउव्विहेसु,

वणस्सइकाइएसु चउव्विहेसु उववज्जंति,

ते वि एवं चेव दुसमइएण वा विग्गहेणं उववाएयव्वा।

बायरतेउकाइया अपज्जत्तगा पज्जत्तगा य जाहे तेसु चेव उववज्जंति ताहे,

जहेव रयणप्पभाए तहेव एगसमइय-दुसमइय-तिसमइय विग्गहा भाणियव्वा,

सेसं जहेव रयणप्पभाए तहेव निरवसेसं।

जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया एवं जाव अहेसत्तमाए भाणियव्वा।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! अहे लोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए –

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?"

उ. गोयमा ! अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं अहेलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए एगपयरम्मि अणुसेढिं उववज्जित्तए से णं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

जे भविए विसेढिं उववज्जित्तए से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।"

२. जो उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होता है वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।"

इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप से उत्पन्न होने वाले का कथन करना चाहिए।

शेष सब कथन रत्नप्रभापृथ्वी के समान है।

जो बादरतेजस्कायिक अपर्याप्त और पर्याप्त जीव मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभापृथ्वी के पश्चिमी चरमान्त में,

चारों प्रकार के पृथ्वीकायिक जीवों में,

चारों प्रकार के अप्कायिक जीवों में,

दो प्रकार के तेजस्कायिक जीवों में,

चार प्रकार के वायुकायिक जीवों में,

चार प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों में उत्पन्न होते हैं।

उनका भी दो या तीन समय की विग्रहगति से उपपात कहना चाहिए।

जब पर्याप्त और अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीव उन्हीं में उत्पन्न होते हैं तब उनके लिए

रत्नप्रभापृथ्वी के कथनानुसार एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति कहनी चाहिए।

शेष सब कथन रत्नप्रभापृथ्वी के समान जानना चाहिए।

जिस प्रकार शर्कराप्रभापृथ्वी के लिए कहा उसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोक क्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में मरण समुद्घात करके ऊर्ध्वलोक की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य हो तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह जीव तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोक क्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक क्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के रूप में एक प्रतर की अनुश्रेणी (समश्रेणी) में जो उत्पन्न होने योग्य है वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

जो विश्रेणी में उत्पन्न होने योग्य है वह चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।"

एवं पज्जत्त सुहुम पुढविकाइयत्ताए वि।

इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने वाले के लिए भी कहना चाहिए।

एवं जाव पज्जत्त सुहुम तेउकाइयत्ताए।

इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक रूप में उत्पन्न होने वाले के लिए भी जानना चाहिए।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! अहेलोय खेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्तबायर तेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. उज्जुआयता जाव ७. अद्धचक्कवाला।

१. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

२. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

एवं पज्जत्तएसु वि बायरतेउकाइएसु वि उववाएयव्वो।

वाउक्काइय-वणस्सइकाइयत्ताए चउक्कएणं भेएणं जहा आउकाइयत्ताए तहेव उववाएयव्वो।

एवं जहा अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयस्स गमओ भणिओ एवं पज्जत्तसुहुमपुढविकाइयस्स वि भाणियव्वो, तहेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो।

अहेलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जाव विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

एवं बायरपुढवीकाइयस्स वि अपज्जत्तगस्स पज्जत्तगस्स य भाणियव्वं।(८०)

एवं आउकाइयस्स चउव्विहस्स वि भाणियव्वं।(१८०)

सुहुमतेउकाइयस्स दुविहस्स वि एवं चेव।(२००)

प. अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव अधोलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके मनुष्य क्षेत्र में अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य है, तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! मैंने सात श्रेणियाँ कही हैं, यथा–

१. ऋज्वायता यावत् ७. अर्द्धचक्रवाला।

१. एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होने पर दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है,

२. उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होने पर तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह दो समय या तीन समय की विग्रह गति से उत्पन्न होता है।"

इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीवों का भी उपपात जानना चाहिए।

जिस प्रकार अप्कायिक रूप में उत्पन्न होने का कथन किया है उसी प्रकार वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के चार-चार भेदों के उपपात का कथन करना चाहिए।

जिस प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का आलापक कहा उसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का आलापक और पूर्वोक्त बीस स्थानों में उपपात कहना चाहिए।

जिस प्रकार अधोलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके यावत् विग्रहगति में उपपात कहा है,

उसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक के उपपात का भी कथन करना चाहिए।(८०)

चारों प्रकार के अप्कायिक जीवों का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।(१८०)

दोनों प्रकार के (पर्याप्त और अपर्याप्त) सूक्ष्मतेजस्कायिक जीव के उपपात का कथन भी इसी प्रकार है।(२००)

प्र. भंते ! यदि अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोकक्षेत्र की त्रसनाडी से बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होने योग्य हो तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?"

उ. गोयमा ! अट्ठो तहेव सत्त सेढीओ एवं जाव–

प. अपज्जत्तबायर तेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते पज्जत्तसुहुमतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए–
से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! सेसं तं चेव।

प. अपज्जत्तबायरतेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्तबायर-तेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए –
से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प्र. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा,"

उ. गोयमा ! अट्ठो जहेव रयणप्पभाए तहेव सत्त सेढीओ।

एवं पज्जत्तबायरतेउकाइयत्ताए वि।

वाउकाइएसु वणस्सइकाइएसु य जहा पुढविकाइएसु उववाइओ तहेव चउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वो।

एवं पज्जत्तबायरतेउकाइओ वि एएसु चेव ठाणेसु उववाएयव्वो।
वाउकाइय-वणस्सइकाइयाणं जहेव पुढविकाइयत्ते उववाइओ तहेव भाणियव्वो।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! उड्ढलोग-खेत्तणालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए समोहणित्ता जे भविए अहेलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं उड्ढलोगखेत्तनालीए वि बाहिरिल्ले खेत्ते समोहयाणं अहेलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते उववज्जयाणं सो चेव गमओ निरवसेसो भाणियव्वो जाव बायरवणस्सइकाइयो पज्जत्तओ बायरवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु उववाइओ।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए समोहणित्ता जे भविए लोगस्स

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"वह दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! इसका कथन सप्तश्रेणी पर्यन्त पूर्वोक्त प्रकार से ही करना चाहिए इसी प्रकार यावत्–

प्र. भंते ! जो अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में पर्याप्त सूक्ष्मतेजस्कायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है, तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके मनुष्य क्षेत्र में अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य हो तो–
भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"वह एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! जैसे रत्नप्रभापृथ्वी में सप्त श्रेणी का कथन किया वैसे ही यहां जानना चाहिए।
इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक रूप के उपपात के लिए भी कहना चाहिए।
जिस प्रकार पृथ्वीकायिक का चारों भेदों सहित उपपात कहा, उसी प्रकार वायुकायिक और वनस्पतिकायिक का भी चार-चार भेद सहित उपपात कहना चाहिए।
इसी प्रकार पर्याप्त बादरतेजस्कायिक जीव का उपपात भी इन्हीं स्थानों में जानना चाहिए।
जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के रूप में उपपात का कथन किया उसी प्रकार वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के उपपात का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोक की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके अधोलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक रूप से उत्पन्न होने योग्य है तो–
भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।
इसी प्रकार ऊर्ध्वलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके अधोलोकक्षेत्र की त्रसनाडी के बाहर के क्षेत्र में उत्पन्न होने वालों के लिए वही सम्पूर्ण आलापक पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिक जीव का पर्याप्त बादरवनस्पति-कायिक के रूप में उपपात पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव लोक के पूर्वी चरमान्त में मरणसमुद्घात करके लोक के पूर्वी चरमान्त में

पुरत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुम पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा?"

उ. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. उज्जुआयता **जाव** ७. अद्धचक्कवाला।

१. उज्जुआयताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

२. एगओ वंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

३. दुहओ वंकाए सेढीए उववज्जमाणे जे भविए एगपयरंसि अणुसेढिं उववज्जित्तए से णं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

४. जे भविए विसेढिं उववज्जित्तए से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"एगसमइएण वा **जाव** चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।"

एवं अपज्जत्तओ सुहुमपुढविकाइओ लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहओ समोहणित्ता लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमंते,

१-२. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुम- पुढविकाइएसु,

३-४. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुम- आउकाइएसु,

५-६. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुम- तेउक्काइएसु,

७-८. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुम- वाउकाइएसु,

९-१०. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य बायर-वाउकाइएसु,

११-१२. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य सुहुम-वणस्सइकाइएसु,

अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य बारससु वि ठाणेसु एएणं चेव कमेणं भाणियव्वो।

सुहुमपुढविकाइओ पज्जत्तओ एवं चेव निरवसेसो बारससु वि ठाणेसु उववाएयव्वो।

एवं एएणं गमएणं जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव भाणियव्वो।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए समोहणित्ता जे भविए लोगस्स दाहिणिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइएसु उववज्जित्तए–

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा?

अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है, तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह एक समय, दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है?

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह एक समय, दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है?"

उ. गौतम ! मैंने सात श्रेणियाँ कही हैं, यथा–

१. ऋज्वायता यावत् ७. अर्द्धचक्रवाला।

१. ऋज्वायता श्रेणी से उत्पन्न होने पर एक समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

२. एकतोवक्रता श्रेणी से उत्पन्न होने पर दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

३. उभयतोवक्रता श्रेणी से उत्पन्न होने पर जो एक प्रतर में अनुश्रेणी (समश्रेणी) से उत्पन्न होने योग्य है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

४. विश्रेणी से उत्पन्न होने पर वह चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह एक समय की यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।"

इसी प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव का लोक के पूर्वी चरमान्त में (मरण) समुद्घात करके लोक के पूर्वी-चरमान्त में,

१-२. अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों में,

३-४. अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मअप्कायिक जीवों में,

५-६. अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मतेजस्कायिक जीवों में,

७-८. अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मवायुकायिक जीवों में,

९-१०. अपर्याप्त और पर्याप्त बादरवायुकायिक जीवों में,

११-१२. अपर्याप्त और पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवों में,

इसी प्रकार इन अपर्याप्त और पर्याप्त रूप बारह ही स्थानों में इसी क्रम से उपपात कहना चाहिए।

पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव के उपपात का कथन भी इसी प्रकार पूर्वोक्त बारह ही स्थानों में कहना चाहिए।

इसी प्रकार इसी आलापक से पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक पर्यन्त पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों में उपपात का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव लोक के पूर्वी-चरमान्त में मरण समुद्घात करके लोक के दक्षिणी-चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य है तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है?

उ. गोयमा ! दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा *विग्गहेणं उववज्जेज्जा।*

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?"

उ. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पन्नत्ताओ, तं जहा–

१. उज्जुआयता जाव ७. अद्धचक्कवाला।

१. एगओ वंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

२. दुहओ वंकाए सेढीए उववज्जमाणे जे भविए एगपयरंसि अणुसेढिं उववज्जित्तए से णं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

३. जे भविए विसेढिं उववज्जित्तए से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।"

एवं एएणं गमएणं पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए दाहिणिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव, सव्वेसिं दुसमइओ, तिसमइओ, चउसमइओ विग्गहो भाणियव्वो।

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा जाव चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"एगसमइएण वा, जाव चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?"

उ. गोयमा ! **एवं जहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहया पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमंते उववाइया तहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो सव्वे।**

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स उत्तरिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! **एवं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहओ दाहिणिल्ले चरिमंते उववाइओ तहा पुरत्थिमिल्ले समोहओ उत्तरिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो।**

उ. गौतम ! वह दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वह दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रह गति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! मैंने सात श्रेणियां कही हैं, यथा–

१. ऋज्वायता यावत् ७. अर्द्धचक्रवाला।

१. एकतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होने पर दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

२. उभयतोवक्रा श्रेणी से उत्पन्न होने पर जो एक प्रतर में अनुश्रेणी (समश्रेणी) से उत्पन्न होने योग्य है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

३. विश्रेणी से उत्पन्न होने पर चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वह दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से *उत्पन्न होता है।*"

इसी प्रकार इसी आलापक से पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके दक्षिणी-चरमान्त में पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों में यथायोग्य दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उपपात का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव लोक के पूर्वी-चरमान्त में मरण समुद्घात करके लोक के पश्चिमी-चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह एक समय की यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"एक समय की यावत् चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?"

उ. गौतम ! **जैसे पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके पूर्वी-चरमान्त में ही उपपात का कथन किया, वैसे ही पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके पश्चिमी-चरमान्त में सभी के उपपात का कथन करना चाहिए।**

प्र. भंते ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव लोक के पूर्वी चरमान्त में मरणसमुद्घात करके लोक के उत्तरी-चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! **जिस प्रकार पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके दक्षिणी-चरमान्त में उपपात का कथन किया उसी प्रकार पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके उत्तरी-चरमान्त में उपपात का कथन करना चाहिए।**

प. अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स दाहिणिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता जे भविए लोगस्स दाहिणिल्ले चेव चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए–

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एवं जहा पुरत्थिमिल्ले समोहओ पुरत्थिमिल्ले चेव उववाइओ तहा दाहिणिल्ले समोहओ दाहिणिल्ले चेव उववाएयव्वो।

तहेव निरवसेसं जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु चेव पज्जत्तएसु दाहिणिल्ले चरिमंते उववाइओ।

एवं दाहिणिल्ले समोहयओ पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो,

णवरं–दुसमइय तिसमइय-चउसमइय विग्गहो सेसं तहेव।

एवं दाहिणिल्ले समोहयओ उत्तरिल्ले उववाएयव्वो, जहेव सट्ठाणे तहेव एगसमइय-दुसमइय-तिसमइय-चउसमइय विग्गहो।

पुरत्थिमिल्ले जहा पच्चत्थिमिल्ले तहेव दुसमइय-तिसमइय-चउसमइय विग्गहो।

पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समोहयाणं पच्चत्थिमिल्ले चेव चरिमंते उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे।

उत्तरिल्ले उववज्जमाणाणं एगसमइओ विग्गहो नत्थि। सेसं तहेव।

पुरत्थिमिल्ले जहा सट्ठाणे।

दाहिणिल्ले एगसमइओ विग्गहो नत्थि,

सेसं तं चेव।

उत्तरिल्ले समोहयाणं उत्तरिल्ले चेव उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे।

उत्तरिल्ले समोहयाणं पुरत्थिमिल्ले उववज्जमाणाणं एवं चेव,

णवरं–एगसमइओ विग्गहो नत्थि,

उत्तरिल्ले समोहयाणं दाहिणिल्ले उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे।

उत्तरिल्ले समोहयाणं पच्चत्थिमिल्ले उववज्जमाणाणं एगसमइओ विग्गहो नत्थि,

सेसं तहेव जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव।

–विया. स. ३४/ए. १, उ. १, सु. १-६८

प्र. भंते ! जो अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव लोक के दक्षिणी चरमान्त में मरण समुद्घात करके दक्षिणी-चरमान्त में ही अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पूर्वी-चरमान्त में समुद्घात करके पूर्वी-चरमान्त में ही उपपात का कथन किया, उसी प्रकार दक्षिणी-चरमान्त में समुद्घात करके दक्षिणी-चरमान्त में ही उत्पन्न होने योग्य का उपपात कहना चाहिए।

इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिकों पर्यन्त दक्षिणी चरमान्त में उपपात कहना चाहिए।

इसी प्रकार दक्षिणी-चरमान्त में समुद्घात करके पश्चिमी-चरमान्त में उपपात का कथन करना चाहिए।

विशेष–इनमें से दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति होती है। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

जिस प्रकार स्वस्थान में उपपात का कथन किया, उसी प्रकार दक्षिणी-चरमान्त में समुद्घात करके उत्तरी चरमान्त में उपपात का और एक समय, दो समय, तीन समय या चार समय विग्रहगति का कथन करना चाहिए।

जिस प्रकार पश्चिमी-चरमान्त में उपपात का कथन किया उसी प्रकार पूर्वी-चरमान्त में दो समय, तीन समय या चार समय की विग्रहगति से उपपात का कथन करना चाहिए।

पश्चिमी-चरमान्त में समुद्घात करके पश्चिमी चरमान्त में ही उत्पन्न होने वाले का कथन स्वस्थान के अनुसार करना चाहिए।

उत्तरी-चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीव के एक समय की विग्रहगति नहीं होती। शेष सब कथन पूर्ववत् है।

पूर्वी-चरमान्त में उपपात का कथन स्वस्थान के अनुसार जानना चाहिए।

दक्षिणी चरमान्त के उपपात में एक समय की विग्रहगति नहीं होती है।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

उत्तरी-चरमान्त में समुद्घात करके उत्तरी-चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीव का कथन स्वस्थान में उपपात के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार उत्तरी-चरमान्त में समुद्घात करके पूर्वी-चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीवों के उपपात का कथन करना चाहिए।

विशेष–इनमें एक समय की विग्रहगति नहीं होती है।

उत्तरी-चरमान्त में समुद्घात करके दक्षिणी-चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीवों का कथन भी स्वस्थान के समान है।

उत्तरी-चरमान्त में समुद्घात करके पश्चिमी-चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीवों के एक समय की विग्रहगति नहीं होती है।

शेष कथन पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्मवनस्पतिकायिक जीवों पर्यन्त उपपात का कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

१७. अनंतरोववन्नग एगिंदिय जीवाणं विग्गहगइस्स समय परूवणं–

प. अणंतरोववन्नगएगिंदिया णं भंते ! कओ हिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहेव ओहिए उद्देसओ भणिओ।

–विया. स. ३४/ए. १, उ. २, सु. १

१८. परंपरोववन्नग एगिंदिय जीवाणं विग्गहगइस्स समय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! परंपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा एगिंदिया पन्नत्ता, तं जहा–

पुढविकाइया भेओ चउक्कओ जाव वणस्सइकाइय त्ति।

प. परंपरोववन्नगअपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! **एवं एएणं अभिलावेणं जहेव पढमो उद्देसओ जाव लोगचरिमंतो त्ति।** *–विया. स. ३४/ए. १, उ. ३, सु. १-२*

१९. अणंतरावगाढाइ एगिंदिय जीवाणं विग्गहगइस्स समय परूवणं–

एवं सेसा वि अट्ठ उद्देसगा जाव अचरिमो त्ति।

णवरं–अणंतरावगाढाइं अणंतरोववन्नग सरिसा,

परंपरावगाढाइं परंपरोववन्नग सरिसा,

चरिमा य अचरिमा य एवं चेव। *–विया. स. ३४/ए. १, उ. ४-११*

२०. कण्ह-नील-काउ-लेस्सी एगिंदिय जीवाणं विग्गहगइस्स समय परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा एगिंदिया पन्नत्ता,

भेओ चउक्कओ जहा कण्हलेस्स एगिंदियसए जाव वणस्सइकाइय त्ति।

प. कण्हलेस्स अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! कइ समइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! **एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिय उद्देसओ जाव लोगचरिमंते त्ति। सव्वत्थ कण्हलेस्सेसु चेव उववाएयव्वो।** *–विया. स. ३४/ए. २, उ. १-११, सु. ५-२*

१७. अनंतरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति के समय का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **यह औधिक (पूर्व) उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।**

१८. परंपरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों की विग्रहगति के समय का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! परम्परोपपन्नक एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

पृथ्वीकायिक इत्यादि के चार-चार भेद वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहने चाहिए।

प्र. भन्ते ! परम्परोपपन्नक अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभा पृथ्वी के पूर्वी चरमान्त में मरण समुद्घात करके रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् पश्चिमी चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो–

भंते ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! **औधिक (प्रथम) उद्देशक के अभिलाप के अनुसार लोक के चरमान्त पर्यन्त उत्पत्ति कहनी चाहिए।**

१९. अणंतरावगाढादि एकेन्द्रिय जीवों की विग्रहगति के समय का प्ररूपण–

इसी प्रकार शेष आठ उद्देशक अचरिम पर्यन्त कहने चाहिए।

विशेष–अनंतरावगाढादि अणंतरोपपन्नक के समान है।

परंपरावगाढादि परंपरोपपन्नक के समान है।

चरम-अचरम का कथन भी इसी प्रकार है।

२०. कृष्ण नील कापोत लेश्यी एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति के समय का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीव पांच प्रकार के कहे गए हैं, **उनके चार-चार भेद कृष्णलेश्यी एकेन्द्रियशतक के अनुसार वनस्पतिकायिक पर्यन्त जानने चाहिए।**

प्र. भन्ते ! कृष्णलेश्यी अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभापृथ्वी के पूर्वीचरमान्त में मरण समुद्घात करके रत्नप्रभा पृथ्वी के यावत् पश्चिमी चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने समय की विग्रह गति से उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! **औघिक उद्देशक के अभिलाप के अनुसार लोक के चरमान्त पर्यन्त सर्वत्र कृष्णलेश्या वालों में उपपात कहना चाहिए।**

नीललेस्से वि एवं चेव।

काउलेस्से वि एवं चेव। –विया. स. ३४, उ. ३-५, सु. २,३

२१. दीव-समुद्दाइसु परोप्परं जीवाणं जम्म-मरण परूवणं–

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता लवण-समुद्दे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

प. लवणे णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता जंबुद्दीवे दीवे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति। –जीवा. पडि. ३, सु. १४६

प. लवणे णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता धायइसंडे दीवे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

प. धायइसंडे णं भंते ! दीवे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता लवणे समुद्दे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति। –जीवा. पडि. ३, सु. १५८

प. धायइसंडे णं भंते ! दीवे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता कालोए समुद्दे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

प. कालोए णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता धायइसंडे दीवे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति। –जीवा. पडि. ३, सु. १७८

प. कालोए णं भंते ! समुद्दे जीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता पुक्खरवरदीवे पच्चायंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया पच्चायंति, अत्थेगइया नो पच्चायंति।

नीललेश्या का भी कथन इसी प्रकार है।

कापोतलेश्या का भी कथन इसी प्रकार है।

२१. द्वीप समुद्रों में परस्पर जीवों के जन्म मरण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जंबूद्वीप द्वीप में मरकर जीव क्या लवणसमुद्र में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! लवणसमुद्र में मरकर जीव क्या जम्बूद्वीप द्वीप में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! लवण समुद्र में मरकर जीव क्या धातकीखण्ड में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! धातकीखण्ड द्वीप में मरकर जीव क्या लवण समुद्र में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! धातकी खण्ड द्वीप में जीव मरकर क्या कालोद समुद्र में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! कालोद समुद्र में जीव मरकर क्या धातकी खण्ड द्वीप में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! कालोद समुद्र में जीव मरकर क्या पुष्करवरद्वीप में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कोई उत्पन्न होते हैं और कोई उत्पन्न नहीं होते हैं।

७. तब्भवमरणे, ८. बालमरणे,
९. पंडितमरणे, १०. बालपंडितमरणे,
११. छउमत्थमरणे, १२. केवलिमरणे,
१३. वेहाणसमरणे, १४. गिद्धपुट्ठमरणे,
१५. भत्तपच्चक्खाणमरणे, १६. इंगिणिमरणे,
१७. पाओवगमणमरणे। –सम. सम. १७, सु. १

प. कइविहे णं भंते ! मरणे पन्नत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे मरणे पन्नत्ते, तं जहा–
१. आवीचियमरणे, २. ओहिमरणे,
३. आइयंतियमरणे, ४. बालमरणे,
५. पंडियमरणे।

प. आवीचियमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दव्वावीचियमरणे, २. खेत्तावीचियमरणे,
३. कालावीचियमरणे, ४. भवावीचियमरणे,
५. भावावीचियमरणे।

प. दव्वावीचियमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. नेरइय-दव्वावीचियमरणे,
२. तिरिक्खजोणिय-दव्वावीचियमरणे,
३. मणुस्स-दव्वावीचियमरणे,
४. देव-दव्वावीचियमरणे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयदव्वावीचियमरणे, नेरइयदव्वावीचियमरणे ?"
उ. गोयमा ! जे णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं नेरइयाउयत्ताए गहियाइं बद्धाइं पुट्ठाइं कडाइं पट्ठवियाइं निविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं अभिसमन्नागयाइं भवंति ताइं दव्वाइं आवीचीअणुसमयं निरंतरं मरंतीति कट्टु,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"नेरइय-दव्वावीचियमरणे, नेरइयदव्वावीचियमरणे।"
एवं जाव देव-दव्वावीचियमरणे।

प. खेत्तावीचियमरणे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. नेरइय खेत्तावीचियमरणे जाव
४. देवखेत्तावीचियमरणे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"नेरइयखेत्तावीचियमरणे, नेरइयखेत्तावीचियमरणे ?"

७. तद्भव-मरण, ८. बाल-मरण,
९. पंडित-मरण, १०. बाल-पंडित-मरण,
११. छद्मस्थ-मरण, १२. केवलि-मरण,
१३. वेहाणस-मरण, १४. गृद्धस्पृष्ट-मरण,
१५. भक्तप्रत्याख्यान-मरण, १६. इंगिनी-मरण,
१७. पादोपगमन-मरण।

प्र. भंते ! मरण कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! पाँच प्रकार का मरण कहा गया है, यथा–
१. आवीचिक-मरण, २. अवधिमरण,
३. आत्यन्तिकमरण, ४. बालमरण,
५. पण्डित-मरण।

प्र. भंते ! आवीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. द्रव्यावीचिकमरण, २. क्षेत्रावीचिकमरण,
३. कालावीचिकमरण, ४. भवावीचिक मरण,
५. भावावीचिकमरण,

प्र. भंते ! द्रव्यावीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नैरयिक-द्रव्यावीचिकमरण,
२. तिर्यञ्चयोनिक-द्रव्यावीचिकमरण,
३. मनुष्य-द्रव्यावीचिकमरण,
४. देव-द्रव्यावीचिकमरण,

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक-द्रव्यावीचिकमरण-नैरयिक द्रव्यावीचिकमरण है ?"
उ. गौतम ! नारकद्रव्य (नारकजीव) रूप से विद्यमान जिस नैरयिक ने जिन द्रव्यों को नरकायु के रूप में ग्रहण किया है, बाँधा है, प्रदेशों में स्पृष्ट किया है, विशिष्ट अनुभाव (फलदान सामर्थ्य) से युक्त किया है, दीर्घ स्थिति से स्थापित किया है, जीव प्रदेशों में निविष्ट किया है, अभिनिविष्ट (अत्यन्त गाढ रूप से निविष्ट) किया है तथा जो द्रव्य अभिसमन्वागत (उदयावलिका में प्रविष्ट हो गये हैं), उन द्रव्यों को (भोग कर) वह प्रतिसमय निरन्तर छोड़ता (मरता) रहता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक द्रव्यावीचिकमरण-नैरयिक द्रव्यावीचिक मरण है।"
इसी प्रकार (तिर्यञ्चयोनिक-द्रव्यावीचिकमरण, मनुष्य-द्रव्यावीचिकमरण) देव-द्रव्यावीचिक मरण पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षेत्रावीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नैरयिक क्षेत्रावीचिकमरण यावत्
४. देव क्षेत्रावीचिकमरण।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"नैरयिक क्षेत्रावीचिकमरण-नैरयिक क्षेत्रावीचिकमरण है।"

उ. गोयमा ! जं णं नेरइया नेरइयखेत्ते वट्टमाणा जाइं दव्वाइं नेरइयाउयत्ताएगहियाइं,

एवं जहेव दव्वावीचियमरणे तहेव खेत्तावीचियमरणे वि।

एवं जाव भावावीचियमरणे।

प. ओहिमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वोहिमरणे, २. खेत्तोहिमरणे,
३. कालोहिमरणे, ४. भवोहिमरणे,
५. भावोहिमरणे।

प. दव्वोहिमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नेरइयदव्वोहिमरणे जाव
४. देवदव्वोहि मरणे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयदव्वोहिमरणे-नेरइयदव्वोहिमरणे ?"

उ. गोयमा ! जं णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपयं मरंति, तं णं नेरइया ताइं दव्वाइं अणागए काले पुणोऽवि मरिस्संति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयदव्वोहिमरणे-नेरइयदव्वोहिमरणे।"

एवं तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देव-दव्वोहिमरणे वि।

एवं एएणं गमएणं खेत्तोहिमरणे वि, कालोहिमरणे वि, भवोहिमरणे वि, भावोहिमरणे वि।

प. आइयंतियमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. दव्वाइयंतियमरणे, २. खेत्ताइयंतियमरणे,
३. कालाइयंतियमरणे, ४. भवाइयंतियमरणे,
५. भावाइयंतियमरणे।

प. दव्वाइयंतियमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नेरइयदव्वाइयंतियमरणे जाव
२. देवदव्वाइयंतियमरणे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइय दव्वाइयंतियमरणे, नेरइयदव्वाइयंतियमरणे ?"

उ. गोयमा ! जं णं नेरइया नेरइय दव्वे वट्टमाणा जाइं दव्वाइं संपयं मरंति, जे णं नेरइया ताइं दव्वाइं अणागए काले नो पुणोऽवि मरिस्संति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयदव्वाइयंतियमरणे-नेरइयदव्वाइयंतियमरणे।"

एवं तिरिक्ख-मणुस्स-देव-दव्वाइयंतियमरणे।

उ. गौतम ! नैरयिक क्षेत्र में रहे हुए जिन द्रव्यों को नरकायुरूप में नैरयिक जीव ने स्पर्श रूप से ग्रहण किया है।

इत्यादि जैसा कथन द्रव्यावीचिकमरण में किया है उसी प्रकार क्षेत्रावीचिक मरण में भी करना चाहिए।

इसी प्रकार (कालावीचिकमरण, भावावीचिकमरण) भावावीचिकमरण पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अवधिमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्यावधिमरण, २. क्षेत्रावधिमरण,
३. कालावधिमरण, ४. भवावधिमरण,
५. भावावधिमरण।

प्र. भंते ! द्रव्यावधिमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नैरयिक-द्रव्यावधिमरण यावत्
४. देव-द्रव्यावधिमरण।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक द्रव्यावधिमरण–नैरयिक द्रव्यावधिमरण है।"

उ. गौतम ! नैरयिक द्रव्य के रूप में रहे हुए नैरयिक जीव जिन द्रव्यों को इस (वर्तमान) समय में भोग कर मरते हैं, वे ही जीव पुनः नैरयिक होकर उन्हीं द्रव्यों को ग्रहण कर भविष्य काल में भोगकर मरेंगे।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिकद्रव्यावधिमरण–नैरयिक द्रव्यावधिमरण है।"

इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक मनुष्य और देव-द्रव्यावधिमरण भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार के आलापक द्वारा क्षेत्रावधिमरण, कालावधिमरण, भवावधिमरण और भावावधिमरण का भी कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! आत्यन्तिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. द्रव्यात्यन्तिकमरण, २. क्षेत्रात्यन्तिकमरण,
३. कालात्यन्तिक मरण, ४. भवात्यन्तिकमरण,
५. भावात्यन्तिकमरण।

प्र. भंते ! द्रव्यात्यन्तिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नैरयिक द्रव्यात्यन्तिकमरण यावत्
२. देव-द्रव्यात्यन्तिक मरण।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण–नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण है ?"

उ. गौतम ! नैरयिक द्रव्य रूप में रहे हुए नैरयिक जीव जिन द्रव्यों को वर्तमान में भोग कर मरते हैं वे ही नैरयिक पुनः उन द्रव्यों को भविष्यकाल में भोगकर नहीं मरेंगे।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण–नैरयिक-द्रव्यात्यन्तिकमरण है।"

इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक मनुष्य और देवद्रव्यात्यन्तिक-मरण के लिए भी कहना चाहिए।

एवं खेत्ताइयंतियमरणे वि जाव भावाइयंतियमरणे वि।

प. बालमरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. वलयमरणे, २. वसट्टमरणे,
३. अंतोसल्लमरणे, ४. तब्भवमरणे,
५. गिरिपडणे, ६. तरुपडणे,
७. जलप्पवेसे, ८. जलणप्पवेसे,
९. विसभक्खणे, १०. सत्थोवाडणे,
११. वेहाणसे, १२. गिद्धपट्ठे[1]।

प. पंडिय मरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पाओवगमणे य २. भत्तपच्चक्खाणे य।

प. पाओवगमणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. णीहारिमे य,
२. अणीहारिमे य नियमं अप्पडिकम्मे।

प. भत्तपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एवं तं चेव।

णवरं–सप्पडिकम्मे,[2] *–विया. स. १३, उ. ७, सु. २३-४४*

२३. मरणकाले जीवस्स पंच निज्जाणठाणा तन्निमित्तगे गई परूवण य–

पंचविहे जीवस्स निज्जाणमग्गे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पाएहिं, २. ऊरूहिं,
३. उरेणं, ४. सिरेणं,
५. सव्वंगेहिं।

१. पाएहिं निज्जायमाणे निरयगामी भवइ,
२. ऊरूहिं निज्जायमाणे तिरियगामी भवइ,
३. उरेणं निज्जायमाणे मणुयगामी भवइ,
४. सिरेणं निज्जायमाणे देवगामी भवइ,
५. सव्वंगेहिं निज्जायमाणे सिद्धिगइपज्जवसाणे पण्णत्ते।

–ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४६१

२४. अंतिम सरीरियाणं मरण पमाणं–

एगे मरणे अंतिमसारीरियाणं। *–ठाणं. अ. १, सु. २६*



इसी प्रकार क्षेत्रात्यन्तिकमरण से भावात्यन्तिकमरण पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! बालमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह बारह प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. वलय मरण, २. वसार्त मरण,
३. अन्तःशल्यमरण, ४. तद्भव मरण,
५. गिरिपतन, ६. तरुपतन,
७. जलप्रवेश, ८. जलण (अग्नि) प्रवेश,
९. विषभक्षण, १०. शस्त्रावपाटण,
११. वैहानस, १२. गृद्धपृष्ट मरण।

प्र. भंते ! पंडितमरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पादोपगमन, २. भक्त प्रत्याख्यान।

प्र. भंते ! पादोपगमन कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. निर्हारिम (आहार रहित),
२. अनिर्हारिम (आहार सहित) नियमतः अप्रतिकर्म सेवा शुश्रूषा रहित है।

प्र. भंते ! भक्तप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! यह पूर्ववत् जानना चाहिए।

विशेष–सप्रतिकर्म (सेवा शुश्रूषा सहित) है।

२३. मरण समय जीव के पाँच निर्याण स्थान और तन्निमित्तक गति का प्ररूपण–

जीव का निर्याण मार्ग (मृत्यु के समय शरीर से जीव प्रदेशों के निकलने का मार्ग) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पैर, २. ऊरू–(जांघ),
३. हृदय, ४. सिर,
५. सर्वांग।

१. पैरों से निर्याण करने वाला जीव नरकगामी होता है।
२. ऊरू (जंघा) से निर्याण करने वाला जीव तिर्यक्गामी होता है।
३. हृदय से निर्याण करने वाला जीव मनुष्यगामी होता है।
४. सिर से निर्याण करने वाला जीव देवगामी होता है।
५. सर्वांग से निर्याण करने वाला जीव अंतिम स्थान सिद्धगति प्राप्त करता है।

२४. अन्तिम शरीर वालों के मरण का प्रमाण–

अन्तिम शरीर वालों का मरण एक कहा गया है।



१. विया. स. २, उ. १, सु. २६
२. विया. स. २, उ. १, सु. २७-२९

युग्म अध्ययन : आमुख

'युग्म' जैन दर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। यह चार की संख्या का द्योतक है। चार की संख्या के आधार पर युग्म का विचार किया जाता है। प्रायः गणितशास्त्र में समसंख्या को युग्म एवं विषमसंख्या को ओज कहा गया है। इन युग्म एवं ओज संख्याओं का विचार जब युग्म चार की संख्या के आधार पर किया जाता है तो युग्म के चार भेद बनते हैं—१. कृतयुग्म, २. ओज, ३. द्वापरयुग्म और ४. कल्योज। इनमें से दो युग्म अर्थात् समराशियाँ हैं तथा दो ओज अर्थात् विषम राशियाँ हैं। इन सबका विचार चार की संख्या के आधार पर किए जाने से इन्हें युग्म राशियाँ कहा गया है। इनके स्वरूप का निरूपण प्रस्तुत अध्ययन में हुआ है। तदनुसार जिस राशि में चार-चार निकालने पर अन्त में चार शेष रहें वह 'कृतयुग्म' है, यथा—८, १२, १६, २०, २४ आदि संख्याएँ। जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में तीन शेष रहे उसे त्र्योज कहते हैं, यथा—७, ११, १५ आदि संख्याएँ। इसी प्रकार जिस राशि में से चार-चार घटाने पर अन्त में दो शेष रहे उसे द्वापर युग्म एवं जिसमें एक शेष रहे उसे कल्योज कहते हैं। यथा—६, १०, १४, १८ आदि संख्याएँ द्वापरयुग्म एवं ५, ९, १३, १७ आदि संख्याएँ कल्योज हैं।

इन कृतयुग्म आदि भेदों का २४ दण्डकों के जीवों एवं सिद्धों में निरूपण हुआ है। जिसके अनुसार वनस्पतिकाय को छोड़कर समस्त जीवों में चार प्रकार के युग्म पाए जाते हैं। वनस्पतिकाय एवं सिद्धों में कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वापरयुग्म एवं कदाचित् कल्योज युग्म कहा गया है। जघन्य, उत्कृष्ट एवं अजघन्योत्कृष्ट दृष्टि से भी इन युग्मों का विभिन्न जीवों में विचार किया गया है। स्त्रियों में पृथकृरूपेण विचार किया गया है। द्रव्यार्थ की दृष्टि से एक जीव कल्योज रूप होता है, कृतयुग्म, त्र्योज एवं द्वापरयुग्म रूप नहीं होता। यह नियम एक जीव की अपेक्षा समस्त चौबीस दण्डकों में लागु होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा ओघादेश से वे कृतयुग्म है, विधानादेश से वे कल्योज रूप हैं। प्रदेश की अपेक्षा जीव कृतयुग्म है तथा शरीरप्रदेशों की अपेक्षा वह कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज रूप है। कदाचित् एक जीव कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ है यावत् कदाचित् कल्योज प्रदेशावगाढ़ है। इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक दण्डक पर्यन्त विधान है।

स्थिति की अपेक्षा से एक जीव कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है। नैरयिक आदि एक जीव कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाला यावत् कदाचित् कल्योज समय की स्थिति वाला माना गया है।

प्रस्तुत अध्ययन विविध जानकारियों से सम्पन्न है। इसमें सामान्य जीव, चौबीस दण्डकों एवं सिद्धों में कृतयुग्मादि का निरूपण वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा, ज्ञान पर्यायों, अज्ञान पर्यायों एवं दर्शन पर्यायों की अपेक्षा से भी हुआ है। यही नहीं इसमें युग्म को क्षुद्रयुग्म एवं महायुग्म के रूप में भी निरुपित करते हुए विभिन्न द्वारों से उनका प्रतिपादन किया गया है।

यह वैशिष्ट्य है कि क्षुद्रयुग्म के अन्तर्गत मात्र नैरयिकों एवं महायुग्म के अन्तर्गत एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय एवं संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों का निरूपण किया गया है। क्षुद्रयुग्म से आशय है लघु संख्या वाली राशि तथा महायुग्म से आशय है बड़ी संख्या वाली राशि।

क्षुद्रयुग्म के भी वे ही चार भेद हैं—१. कृतयुग्म, २. त्र्योज, ३. द्वापर युग्म और ४. कल्योज। इनका भी वही लक्षण है जो युग्म के भेदों का है। क्षुद्रकृतयुग्मादिराशि में नैरयिकों के उपपात आदि का निरूपण है। नैरयिकों में भी कृष्णलेश्यी, नीललेश्यी, कापोतलेश्यी, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, कृष्णपाक्षिक एवं शुक्लपाक्षिक की अपेक्षा से विस्तृत निरूपण है। उपपात की भाँति उद्वर्तन का वर्णन है। इस सन्दर्भ में किया गया अधिकांश निरूपण व्युत्क्रान्ति (वुक्कंति) अध्ययन से मेल खाता है।

महायुग्म के १६ भेद कहे गये हैं—१. कृतयुग्म कृतयुग्म, २. कृतयुग्म त्र्योज, ३. कृतयुग्म द्वापरयुग्म, ४. कृतयुग्म कल्योज, ५. त्र्योज कृतयुग्म, ६. त्र्योजत्र्योज, ७. त्र्योज द्वापरयुग्म, ८. त्र्योज कल्योज, ९. द्वापरयुग्म कृतयुग्म, १०. द्वापरयुग्म त्र्योज, ११. द्वापरयुग्म द्वापरयुग्म, १२. द्वापरयुग्म कल्योज, १३. कल्योज कृतयुग्म, १४. कल्योज त्र्योज, १५. कल्योजद्वापरयुग्म और १६. कल्योज कल्योज। ये १६ भेद उन मूल चार भेदों के ही विभिन्न अंगों का परिणाम है। इन भेदों के स्वरूप का आधार भी पूर्ववत् चार की संख्या ही है। उदाहरण के लिये कृतयुग्मकृतयुग्म का अर्थ है किसी राशि में से चार-चार की संख्या का अपहार करने पर चार शेष रहें, किन्तु उस राशि के पुनः अपहार करने पर कृतयुग्म (चार) शेष रहे तो उसे कृतयुग्मकृतयुग्म कहा जाएगा।

महायुग्मों के अन्तर्गत एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय एवं संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का उत्पात आदि ३२ द्वारों से निरुपण हुआ है। वे ३२ द्वार हैं—१. उपपात, २. परिमाण, ३.अपहार, ४. अवगाहना, ५. बन्धक, ६. वेद, ७. उदय, ८. उदीरणा, ९. लेश्या, १०. दृष्टि, ११. ज्ञान, १२. योग, १३. अयोग, १४. वर्णरसादि, १५. उच्छ्वास, १६. आहारक, १७. विरति, १८. क्रिया, १९. बन्धक, २०. संज्ञा, २१. कषाय, २२. स्त्रीवेदादि, २३. बन्ध, २४, संज्ञी, २५. इन्द्रिय, २६. अनुबन्ध, २७. संवेध, २८. आहार, २९. स्थिति, ३०. समुद्घात, ३१. च्यवन और ३२. सभी जीवों का मूलादि में उपपात। यह वर्णन भी ११ उद्देशकों में हुआ है जिनमें औघिक, प्रथमसमयोत्पन्न एवं अप्रथमसमयोत्पन्न से चरमाचरमसमय तक के तीन विभाजन प्रमुख हैं। लेश्या, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक आदि के आधार पर भी इन जीवों को महायुग्म के अन्तर्गत निरुपित किया गया है। समस्त वर्णन उपपात आदि ३२ द्वारों में सिमटा हुआ है।

अन्त में राशियुग्म के कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म एवं कल्योज भेद करते हुए २४ दण्डकों में उपपात आदि का निरुपण किया गया है। इनका भी लेश्या, भवसिद्धि, अभवसिद्धि, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक आदि अपेक्षाओं से विस्तृत निरुपण उपलब्ध है।

इस प्रकार राशि के कृतयुग्म आदि भेदों को आधार बनाकर विविध दण्डकों में किया गया यह उपपात आदि द्वारों से वर्णन अत्यन्त उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक है। □□

४०. जुम्मऽज्झयणं

सूत्र

१. जुम्मस्स भेया तेसिं लक्खणाण य परूवणं–

प. कइ णं भंते ! जुम्मा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कडजुम्मे, २. तेयोए,

३. दावरजुम्मे, ४. कलियोए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'कडजुम्मे जाव कलियोए ?'

उ. गोयमा ! १. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए। से तं कडजुम्मे।

२. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए। से तं तेयोए।

३. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए। से तं दावरजुम्मे।

४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए। से तं कलियोए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"कडजुम्मे जाव कलियोए"।[1] *–विया. स. १८, उ. ४, सु. ४*

२. चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य जुम्म भेय परूवणं–

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! कइ जुम्मा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कडजुम्मे जाव ४. कलियोए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"नेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कडजुम्मे जाव ४. कलियोए।

उ. गोयमा ! अट्ठो तहेव।

दं. २-१५ एवं जाव वाउकाइयाणं।

प. दं. १६. वणस्सइकाइया णं भंते ! कइ जुम्मा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! वणस्सइकाइया सिय कडजुम्मा, सिय तेओया, सिय दावरजुम्मा, सिय कलिओया।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"वणस्सइकाइया सिय कडजुम्मा जाव कलिओया ?

उ. गोयमा ! उववायं पडुच्च।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"वणस्सइकाइया सिय कडजुम्मा जाव कलिओया ?"

दं. १७. बेइंदिया जहा नेरइयाणं।

४०. युग्म अध्ययन

सूत्र

१. युग्म के भेद और उनके लक्षणों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! युग्म कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! युग्म चार कहे गए हैं, यथा–

१. कृतयुग्म, २. त्र्योज,

३. द्वापरयुग्म, ४. कल्योज।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि–

'युग्म चार हैं– कृतयुग्म यावत् कल्योज।'

उ. गौतम ! १. जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में चार शेष रहें, वह राशि "कृतयुग्म" है।'

२. जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में तीन शेष रहें, वह राशि "त्र्योज" है।

३. जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में दो शेष रहें, वह राशि "द्वापरयुग्म" है।

४. जिस राशि में से चार-चार निकालने पर अन्त में एक शेष रहे, वह राशि "कल्योज" है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"युग्म चार हैं–कृतयुग्म यावत् कल्योज"।

२. चौबीस दण्डकों और सिद्धों में युग्म भेदों का प्ररूपण–

प्र. दं.१. भन्ते ! नैरयिकों में कितने युग्म कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनमें चार युग्म कहे गए हैं, यथा–

१. कृतयुग्म यावत् ४. कल्योज।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

नैरयिकों में चार युग्म होते हैं, यथा–

१. कृतयुग्म यावत् ४. कल्योज।"

उ. गौतम ! कारण पूर्ववत् जानना चाहिए।

दं. २-१५ इसी प्रकार वायुकायिक पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १६. भन्ते ! वनस्पतिकायिकों में कितने युग्म कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! वनस्पतिकायिक कदाचित् कृतयुग्म होते हैं, कदाचित् त्र्योज होते हैं, कदाचित् द्वापरयुग्म होते हैं और कदाचित् कल्योज होते हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वनस्पतिकायिक कदाचित् कृतयुग्म होते हैं यावत् कदाचित् कल्योज होते हैं ?"

उ. गौतम ! उपपात (जन्म) की अपेक्षा ऐसा कहा जाता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वनस्पतिकायिक कदाचित् कृतयुग्म होते हैं यावत् कदाचित् कल्योज होते हैं।

दं. १७. द्वीन्द्रिय जीवों का कथन नैरयिकों के समान है।

१. विया. स. २५, उ. ४, सु. १

दं. १८-२४ एवं जाव वेमाणियाणं[1]।

सिद्धाणं जहा वणस्सइकाइयाणं।

-विया. स. २५, उ. ४, सु. २-७

दं. १८-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

सिद्धों का कथन वनस्पतिकायिकों के समान है।

३. जहण्णाइ पयं पडुच्च चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कडजुम्माइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भन्ते ! किं १. कडजुम्मा, २. तेओया, ३. दावरजुम्मा, ४. कलिओया?

उ. गोयमा ! जहन्नपए कडजुम्मा,

उक्कोसपए तेओया,

अजहन्नमणुक्कोसपदे सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओया।

दं. २-११ एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भन्ते ! किं कडजुम्मा जाव कलिओया?

उ. गोयमा ! जहन्नपए कडजुम्मा,

उक्कोसपए दावरजुम्मा,

अजहन्नमणुक्कोसपए सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओया।

दं. १३-१५ एवं जाव वाउकाइया।

प. दं. १६. वणस्सइकाइया णं भन्ते ! किं कडजुम्मा जाव कलिओया?

उ. गोयमा ! १. जहन्नपए अपदा, २. उक्कोसपए अपदा,

३. अजहन्नमणुक्कोसपए सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओया।

दं. १७-१९ बेइंदिया जाव चउरिंदिया जहा पुढविकाइया।

दं. २०-२४ पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जाव वेमाणिया जहा नेरइया।

सिद्धा जहा वणस्सइकाइया।

-विया. स. १८, उ. ४, सु. ५-१२

३. जघन्यादि पद की अपेक्षा चौवीस दण्डकों में और सिद्धों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक क्या १. कृत युग्म हैं, २. त्र्योज हैं, ३. द्वापरयुग्म हैं या ४ कल्योज हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्यपद में कृतयुग्म हैं,

उत्कृष्ट पद में त्र्योज हैं,

तथा अजघन्योत्कृष्ट पद में कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

दं. २-११ इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १२. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव क्या कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्यपद में कृतयुग्म हैं,

उत्कृष्ट पद में द्वापरयुग्म हैं,

किन्तु अजघन्योत्कृष्ट पद में कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

दं. १३-१५ इसी प्रकार वायुकायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १६. भन्ते ! वनस्पतिकायिक जीव क्या कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्यपद में अपद हैं और उत्कृष्टपद में भी अपद हैं, किन्तु अजघन्योत्कृष्ट पद में कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

दं. १७-१९ द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त पृथ्वीकायिकों के समान हैं।

दं. २०-२४ पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों से वैमानिकों पर्यन्त का कथन नैरयिकों के समान करना चाहिए।

सिद्धों का कथन वनस्पतिकायिकों के समान जानना चाहिए।

४. जहण्णाइपयं पडुच्च इत्थीसु कडजुम्माइ परूवणं–

प. इत्थीओ णं भन्ते ! किं कडजुम्माओ जाव कलिओयाओ?

उ. गोयमा ! जहन्नपदे कडजुम्माओ, उक्कोसपदे वि कडजुम्माओ,

अजहन्नमणुक्कोसपदे सिय कडजुम्माओ जाव सिय कलिओयाओ।

एवं असुरकुमारित्थीओ वि जाव थणियकुमारित्थीओ।

एवं तिरिक्खजोणित्थीओ।

एवं मणुस्सित्थीओ।

४. जघन्यादि पद की अपेक्षा स्त्रियों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या स्त्रियाँ कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्यपद में कृतयुग्म हैं और उत्कृष्टपद में भी कृतयुग्म हैं,

किन्तु अजघन्योत्कृष्ट पद में कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

असुरकुमार स्त्रियों (देवियों) से स्तनितकुमार स्त्रियों पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिए।

तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियों का कथन भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

मनुष्य-स्त्रियों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

---

१. ठाणं. अ. ४, उ. ३, स. ३१६

एवं जाव वाणमंतर-जोइसिए-वेमाणियदेवित्थीओ।

–विया. स. १८, उ. ४, सु. १३-१७

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की देवियों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

५. दव्व-पएसं पडुच्च जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कडजुम्माइ भेय परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, कलियोए।

दं. १-२४ एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

एवं सिद्धे वि।

प. जीवा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओया?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मा, नो तेओया, नो दावरजुम्मा, नो कलिओया।

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेओया, नो दावरजुम्मा, कलिओया।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओया?

उ. गोयमा ! १. ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओया।

२. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेओया, नो दावरजुम्मा, कलिओया।

दं. २-२४ एवं जाव वेमाणिया।

एवं सिद्धा वि।

प. जीवे णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए?

उ. गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च कडजुम्मे, नो तेओये, नो दावरजुम्मे, नो कलिओए।

सरीरपएसे पडुच्च सिय कडजुम्मे जाव सिय कलिओए।

दं. १-२४ एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

प. सिद्धे णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोए?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलिओए।

प. जीवा णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओया?

उ. गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च ओघादेसेण वि, विहाणादेसेण वि कडजुम्मा,

नो तेओया, नो दावरजुम्मा, नो कलिओया।

सरीरपएसे पडुच्च ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओया,

५. द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा जीव-चौबीसदण्डकों और सिद्धों में युग्म-भेदों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! (एक) जीव द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म यावत् कल्योज-रूप है?

उ. गौतम ! कृतयुग्म, त्र्योज और द्वापरयुग्मरूप नहीं है किन्तु कल्योजरूप है।

दं. १-२४ इसी प्रकार (एक) नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार सिद्ध के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (अनेक) जीव द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म यावत् कल्योजरूप हैं?

उ. गौतम ! वे ओघादेश (सामान्य) से कृतयुग्म हैं, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योजरूप नहीं हैं।

विधानादेश (विशेष) से वे कृतयुग्म, त्र्योज तथा द्वापरयुग्म नहीं हैं, किन्तु कल्योजरूप हैं।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिक द्रव्यार्थरूप से कृतयुग्म यावत् कल्योज रूप हैं?

उ. गौतम ! वे १. ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्मरूप हैं यावत् कदाचित् कल्योजरूप हैं,

२. विधानादेश से वे कृतयुग्म, त्र्योज और द्वापरयुग्मरूप नहीं हैं, किन्तु कल्योजरूप हैं।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त (द्रव्यार्थ रूप से) जानना चाहिए।

इसी प्रकार सिद्धों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! (एक) जीव प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है?

उ. गौतम ! जीव प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्म है किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योजरूप नहीं है।

शरीरप्रदेशों की अपेक्षा जीव कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योजरूप है।

दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! सिद्ध प्रदेशार्थरूप से कृतयुग्म है यावत् कल्योज है?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योजरूप नहीं है।

प्र. भन्ते ! (अनेक) जीव प्रदेशों की अपेक्षा क्या कृतयुग्म हैं यावत् कल्योजरूप हैं?

उ. गौतम ! जीव प्रदेशों की अपेक्षा ओघादेश और विधानादेश से कृतयुग्म हैं,

किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योजरूप नहीं हैं।

शरीरप्रदेशों की अपेक्षा जीव ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज रूप हैं।

विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलिओया वि।
दं. १-२४ एवं नेरइया जाव वेमाणिया।

प. सिद्धा णं भन्ते ! किं कडजुम्मा जाव कलिओया?
उ. गोयमा ! ओघादेसेण वि, विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेओया, नो दावरजुम्मा, नो कलिओया।
—विया. स. २५, उ. ४, सु. ३८-४०

विधानादेश से वे कृतयुग्म भी हैं यावत् कल्योज भी हैं।
दं. १-२४ इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सिद्ध प्रदेशों की अपेक्षा कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं?
उ. गौतम ! वे ओघादेश से भी और विधानादेश से भी कृतयुग्म हैं, किन्तु त्र्योज, द्वापर युग्म या कल्योज नहीं हैं।

६. पएसोगाढं पडुच्च जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कडजुम्माइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! किं कडजुम्मपएसोगाढे जाव सिय कलियोगपएसोगाढे?
उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे जाव सिय कलियोगपएसोगाढे।
दं. १-२४ एवं नेरइए जाव वेमाणिए।

एवं जाव सिद्धे।

प. जीवा णं भंते ! किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलिओए पएसोगाढा?
उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा,
नो तेओयपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलिओएपएसोगाढा।
विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलिओएपएसोगाढा वि।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलिओएपएसोगाढा?
उ. गोयमा! १. ओघादेसेणं सिय कडजुम्मपएसोगाढा जाव सिय कलिओएपएसोगाढा।
२. विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलिओएपएसोगाढा वि।
दं. २-११, १७-२४ एवं एगिंदिय-सिद्धवज्जा जाव वेमाणिया।
दं. १२-१६ सिद्धा एगिंदिया य जहा जीवा।
—विया. स. २५, उ. ४, सु. ४१-४६

६. प्रदेशावगाढ की अपेक्षा जीव-चौबीसदंडकों और सिद्धों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या (एक) जीव कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ है?
उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ है यावत् कदाचित् कल्योज प्रदेशावगाढ है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार सिद्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (अनेक) जीव कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं?
उ. गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं,
किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ और कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं हैं।
विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ भी हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ भी हैं।

प्र. दं. १. भंते ! क्या (अनेक) नैरयिक कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं?
उ. गौतम ! १. वे ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं यावत् कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ हैं।
२. विधानादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ भी हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ भी हैं।
एकेन्द्रिय-जीवों और सिद्धों को छोड़कर शेष सभी दण्डक वैमानिक पर्यन्त पूर्ववत् (नैरयिकों के समान) जानने चाहिए।
सिद्धों और एकेन्द्रिय जीवों का कथन सामान्य जीवों के समान है।

७. ठिई पडुच्च जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कडजुम्माइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठिईए जाव कलिओगसमयट्ठिईए?
उ. गोयमा ! कडजुम्मसमयट्ठिईए,
नो तेयोगसमयट्ठिईए, नो दावरजुम्मसमयट्ठिईए, नो कलिओगसमयट्ठिईए।

प. दं. १. नेरइए णं भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठिईए जाव कलिओगसमयट्ठिईए?
उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मसमयट्ठिईए जाव सिय कलिओगसमयट्ठिईए।
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिए।

७. स्थिति की अपेक्षा जीव-चौबीसदंडकों और सिद्धों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या (एक) जीव कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है यावत् कल्योज समय की स्थिति वाला है?
उ. गौतम ! वह कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है,
किन्तु त्र्योज-समय, द्वापरयुग्म-समय या कल्योज-समय की स्थिति वाला नहीं है।

प्र. दं. १. भंते ! क्या (एक) नैरयिक कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है यावत् कल्योज समय की स्थिति वाला है?
उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है यावत् कदाचित् कल्योज समय की स्थिति वाला है।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

सिद्धे जहा जीवे।

प. जीवा णं भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठिईया जाव कलिओगसमयट्ठिईया?

उ. गोयमा ! ओघादेसेण वि, विहाणादेसेण वि कडजुम्मसमयट्ठिईया,
नो तेयोगसमयट्ठिईया, नो दावरजुम्मसमयट्ठिईया, नो कलिओगसमयट्ठिईया।

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठिईया जाव कलिओगसमयट्ठिईया?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मसमयट्ठिईया जाव सिय कलिओगसमयट्ठिईया,
विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयट्ठिईया वि जाव कलिओगसमयट्ठिईया वि।
दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।
सिद्धा जहा जीवा। –विया. स. २५, उ. ४, सु. ४७-५४

८. वण्णाइ पज्जवेहिं पडुच्च जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कडजुम्माइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! कालवण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मे जाव कलिओए?

उ. गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च नो कडजुम्मे जाव नो कलिओए।
सरीरपएसे पडुच्च सिय कडजुम्मे जाव सिय कलिओए।
दं. १-२४. एवं नेरइए जाव वेमाणिए।
सिद्धा ण चेव पुच्छिज्जंति।

प. जीवा णं भंते ! कालवण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मा जाव कलिओया?

उ. गोयमा ! जीवपएसे पडुच्च ओघादेसेण वि, विहाणादेसेण वि नो कडजुम्मा जाव नो कलिओया।
सरीरपएसे पडुच्च ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओया,
विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलिओया वि।
दं. १-२४. एवं नेरइया जाव वेमाणिया।
एवं नीलवण्णपज्जवेहि वि दंडओ भाणियव्वो एगत्त-पुहत्तेणं।
एवं जाव लुक्खफासपज्जवेहिं।
–विया. स. २५, उ. ४, सु. ५५-६१

९. नाणपज्जवेहिं पडुच्च जीव-चउवीसदंडएसु सिद्धेसु य कडजुम्माइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! आभिणिवोहिय-नाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे जाव कलिओए?

सिद्ध का कथन (औधिक) जीव के समान है।

प्र. भंते ! (अनेक) जीव कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं यावत् कल्योज समय की स्थिति वाले हैं?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से तथा विधानादेश से कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं,
किन्तु त्र्योज-समय, द्वापरयुग्म-समय या कल्योज समय की स्थिति वाले नहीं हैं।

प्र. दं. १. भंते ! (अनेक) नैरयिक कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं यावत् कल्योजसमय की स्थिति वाले हैं?

उ. गौतम ! ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाले हैं।
विधानादेश से वे कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले भी हैं यावत कल्योज-समय की स्थिति वाले भी हैं।
दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।
सिद्धों का कथन सामान्य जीवों के समान है।

८. वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा जीव-चौबीसदंडकों और सिद्धों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या (एक) कृष्णवर्ण वाला जीव पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म है यावत् कल्योज है?

उ. गौतम ! जीव प्रदेशों की अपेक्षा कृतयुग्म नहीं है यावत् कल्योज नहीं है,
किन्तु शरीरप्रदेशों की अपेक्षा कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।
(अरूपी होने से) यहाँ सिद्ध के विषय में प्रश्न नहीं करना चाहिए,

प्र. भंते ! क्या (अनेक) जीव कृष्णवर्ण पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं?

उ. गौतम ! जीव-प्रदेशों की अपेक्षा ओघादेश से और विधानादेश से कृतयुग्म यावत् कल्योज नहीं हैं।
शरीरप्रदेशों की अपेक्षा ओघादेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं,
विधानादेश से वे कृतयुग्म भी हैं यावत् कल्योज भी हैं।
दं. १-२४. इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।
इसी प्रकार एकवचन और बहुवचन से नीले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा भी कहना चाहिए।
इसी प्रकार रुक्ष स्पर्श पर्यायों पर्यन्त (शेष वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा) भी पूर्ववत् कहना चाहिए।

९. ज्ञान पर्यायों की अपेक्षा जीव-चौबीसदंडकों और सिद्धों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या (एक) जीव आभिनिवोधिकज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म है यावत् कल्योज है?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलिओए।
एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए।

प. जीवा णं भंते ! आभिणिबोहिय-नाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मा जाव कलिओगा ?

उ. गोयमा ! १. ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओगा,
२. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलिओया वि।
एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिया।

एवं सुयनाणपज्जवेहि वि।
ओहिनाणपज्जवेहि वि एवं चेव।

णवरं-विगलिंदियाणं नत्थि ओहिनाणं।
मणपज्जवनाणं पि एवं चेव।

णवरं-जीवाणं मणुस्साण य, सेसाणं नत्थि।

प. जीवे णं भंते ! केवलनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे जाव कलिओए ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, नो कलियोए।
एवं मणुस्से वि।
एवं सिद्धे वि।

प. जीवा णं भंते ! केवलनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मा जाव कलिओगा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेण वि, विहाणादेसेण वि कडजुम्मा।
नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलिओगा।
एवं मणुस्सा वि।
एवं सिद्धा वि। —विया. स. २५, उ. ४, सु. ६२-७४

१०. अन्नाणपज्जवेहिं पडुच्च जीव चउवीसदंडएसु कडजुम्माइ परूवणं—

प. जीवे णं भंते ! मइअन्नाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे जाव कलिओए ?

उ. गोयमा ! जहा आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तहेव दो दंडगा।
एवं सुयअन्नाणपज्जवेहिं वि।

एवं विभंगनाणपज्जवेहिं वि।
[illegible]

११. दंसणपज्जवेहिं पडुच्च जीव चउवीसदंडएसु कडजुम्माइ परूवणं—
चक्खुदंसण अचक्खुदंसण ओहिदंसण-पज्जवेहिं वि एवं चेव।

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।
इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (अनेक) जीव आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! १. ओघादेश से वे कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।
२. विधानादेश से कृतयुग्म भी हैं यावत् कल्योज भी हैं।
इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़कर वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा भी कहना चाहिए।
अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष-विकलेन्द्रियों में अवधिज्ञान नहीं होता।
मनःपर्यवज्ञान के पर्यायों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
विशेष-जीव और मनुष्यों में ही मनःपर्यवज्ञान होता है, शेष जीवों में नहीं पाया जाता।

प्र. भन्ते ! क्या (एक) जीव केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म है, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नहीं है।
इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी जानना चाहिए।
इसी प्रकार सिद्ध के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या (अनेक) जीव केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! ओघादेश से और विधानादेश से वे कृतयुग्म हैं, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं हैं।
इसी प्रकार मनुष्यों के लिए भी समझना चाहिए।
इसी प्रकार सिद्धों के लिए भी कहना चाहिए।

१०. अज्ञान पर्यायों की अपेक्षा से जीव-चौबीस दण्डकों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या (एक) जीव मतिअज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा कृतयुग्म है यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायों के समान यहाँ भी (एक वचन बहुवचन की अपेक्षा) दो दण्डक कहने चाहिए।
इसी प्रकार श्रुतअज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा भी कहना चाहिए।
इसी प्रकार विभंगज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा भी कहना चाहिए।

११. दर्शन पर्यायों की अपेक्षा जीव-चौबीस दण्डकों में कृतयुग्मादि का प्ररूपण—
चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायों के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

णवरं–जस्स जं अत्थि तं भाणियव्वं।

केवलदंसणपज्जवेहिं जहा केवलनाणपज्जवेहिं।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. ७८-७९

१२. खुड्डजुम्मस्स भेया तेसिं लक्खणाण य परूवणं–

प. कइ णं भंते ! खुड्डाजुम्मा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि खुड्डाजुम्मा[1] पण्णत्ता, तं जहा–

१. कडजुम्मे, २. तेयोए, ३. दावरजुम्मे, ४. कलियोए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

चत्तारि खुड्डा जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

"कडजुम्मे जाव कलियोए ?"

उ. गोयमा ! १. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए। से तं खुड्डागकडजुम्मे।

२. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए। से तं खुड्डागतेयोए।

३. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए। से तं खुड्डागदावरजुम्मे।

४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए। से तं खुड्डागकलियोए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"चत्तारि खुड्डाजुम्मा, तं जहा–

"कडजुम्मे जाव कलियोए।" –विया. स. ३१, उ. १, सु. २

१३. खुड्डागकडजुम्माइ नेरइयाणं उववायाईणं परूवणं–

प. खुड्डागकडजुम्म नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,

तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

नो देवेहिंतो उववज्जंति।

एवं नेरइयाणं उववाओ जहा वक्कंतीए तहा भाणियव्वो[2]।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

प. ते णं भंते ! जीवा कहं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! से जहानामए-पवए पवमाणे अज्झवसाणनिवत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं ठाणं विप्पजहित्ता पुरिमं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, एवामेव ते वि जीवा, पवओ विव पवमाणा अज्झवसाण निव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं भवं विप्पजहित्ता पुरिमं भवं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति[3]।

विशेष–जिसमें जो पाया जाता हो वह कहना चाहिए।

केवलदर्शन के पर्यायों का कथन केवलज्ञान के पर्यायों के समान जानना चाहिए।

१२. क्षुद्रयुग्मों के भेद और उनके लक्षणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्षुद्रयुग्म कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! क्षुद्रयुग्म चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कृतयुग्म, २. त्र्योज, ३. द्वापरयुग्म, ४. कल्योज।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

क्षुद्र युग्म चार कहे गए हैं, यथा–

'कृतयुग्म यावत् कल्योज ?'

उ. गौतम ! १. जिस राशि में से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त में शेष चार रहे वह 'क्षुद्र कृतयुग्म' है।

२. जिस राशि में से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त में तीन शेष रहे वह 'क्षुद्रत्र्योज' है।

३. जिस राशि में से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त में दो शेष रहे वह 'क्षुद्रद्वापरयुग्म' है।

४. जिस राशि में से चार-चार का अपहार करते हुए अन्त में एक ही शेष रहे वह 'क्षुद्रयुग्म कल्योज' है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"क्षुद्रयुग्म चार कहे गए हैं, यथा–

"कृतयुग्म यावत् कल्योज।"

१३. क्षुद्रकृतयुग्मादि नैरयिकों के उत्पाद आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्म-राशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! नैरयिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते,

तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

देवों में से आकर उत्पन्न नहीं होते।

जिस प्रकार व्युत्क्रान्ति पद में नैरयिकों का उत्पाद कहा है वही सब यहाँ भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे चार, आठ, बारह, सोलह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ अध्यवसाय निष्पन्न क्रियासाधन द्वारा उस स्थान को छोड़कर भविष्यत्काल में अगले स्थान को प्राप्त करता है, वैसे ही जीव भी कूदने वाले की तरह कूदते हुए अध्यवसाय-निर्वर्तित क्रियासाधन (कर्मों) द्वारा पूर्वभव को छोड़कर आगामी भव को प्राप्त कर उत्पन्न होते हैं।

---

१. लघु संख्या वाली राशि विशेष को "क्षुद्रयुग्म" कहते हैं।

२. पण्ण. प. ६, सु. ६३९, १-२६

३. इसी सन्दर्भ में (विया. स. २५, उ. ८, सु. ३) का विशेष वर्णन व्युत्क्रान्ति अध्ययन में देखें।

प. ते णं भंते ! जीवा किं आयपयोगेणं उववज्जंति, परप्पयोगेणं उववज्जंति?

उ. गोयमा ! आयपयोगेणं उववज्जंति, नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

प. रयणप्पभापुढवि-खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहा ओहियनेरइयाणं वत्तव्वया तहेव रयणप्पभाए वि भाणियव्वा जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए[1]।

एवं उववाओ जहा वक्कंतीए।

प. खुड्डागतेयोए नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति,
उववाओ जहा वक्कंतीए।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! तिन्नि वा, सत्त वा, एक्कारस वा, पन्नरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं जहा कडजुम्मस्स।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. खुड्डागदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे,

णवरं—परिमाणं , दो वा, छ वा, दस वा, चोद्दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं तं चेव जाव[2] अहेसत्तमाए।

प. खुड्डागकलिओए नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे,

णवरं—परिमाणं एक्को वा, पंच वा, नव वा, तेरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। सेसं तं चेव।

एवं जाव अहेसत्तमाए। *—विया. स. ३१, उ. १, सु. ३-१४*

१४. खुड्डाग कडजुम्माइं पडुच्च कण्हलेस्स नेरइयाणं उववायाइ परूवणं—

प. कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

प्र. भंते ! वे जीव आत्म प्रयोग से उत्पन्न होते हैं या परप्रयोग से उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे आत्म प्रयोग (आत्म व्यापार) से उत्पन्न होते हैं, परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्म राशि वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! नैरयिकों के लिए जो औधिक कथन किया है वही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के लिए परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

व्युत्क्रान्ति अध्ययन में कहे अनुसार उत्पात कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षुद्र त्र्योज नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या (वे) नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
वे तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों से आकर भी उत्पन्न नहीं होते हैं।
इनके उत्पात का विशेष वर्णन व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे एक समय में तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष सब कथन कृतयुग्म नैरयिक के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षुद्रद्वापरयुग्म-राशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि के अनुसार इनका उत्पाद जानना चाहिए।

विशेष—परिमाण में—दो, छह, दस, चौदह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं

शेष कथन पूर्ववत् अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षुद्रकल्योज-राशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि के अनुसार इनकी उत्पत्ति जानना चाहिए।

विशेष—परिमाण में—एक, पांच, नौ, तेरह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं ऐसा कहना चाहिए शेष पूर्ववत् है।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

१४. क्षुद्रकृतयुग्मादि की अपेक्षा कृष्णलेश्यी नैरयिकों के उत्पातादि का प्ररूपण—

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं,

१-२. पण्ण. प. ६, सु. ६४०-६४७

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा ओहियगमो जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति,

णवरं–उववाओ जहा वक्कंतीए धूमप्पभापुढविनेरइया णं,

सेसं तं चेव।

प. धूमप्पभापुढवि कण्हलेस्स खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव निरवसेसं।

एवं तमाए वि, अहेसत्तमाए वि,

णवरं–उववाओ सव्वत्थ जहा वक्कंतीए।

प. कण्हलेस्सखुड्डागतेयोगनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा ओहियगमो एवं चेव।

णवरं–तिण्णि वा, सत्त वा, एक्कारस वा, पण्णरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। सेसं तं चेव।

एवं जाव अहेसत्तमाए वि।

प. कण्हलेस्सखुड्डागदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा ओहियगमो।

णवरं–दो वा, छ वा, दस वा, चोद्दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। सेसं तं चेव।

एवं धूमप्पभाए वि जाव अहेसत्तमाए।

प. कण्हलेस्सखुड्डागकलिओएनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा ओहेयगमो।

णवरं–एक्को वा, पंच वा, नव वा, तेरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। सेसं तं चेव।

एवं धूमप्पभाए वि, तमाए वि, अहेसत्तमाए वि।

–विया. स. ३१, उ. २, सु. १-९

१५. खुड्डाग कडजुम्माइं पडुच्च नीललेस्स नेरइयाणं उववायाइ परूवणं–

प. नीललेस्स खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! पूर्वोक्त औधिकगमक के अनुसार परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं पर्यन्त यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों का उपपात व्युतक्रान्तिपद के अनुसार यहाँ कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! धूमप्रभापृथ्वी के क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनके लिए समग्र वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी प्रकार तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–उपपात सर्वत्र व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षुद्रत्र्योजराशि वाले कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! औधिकगमक के अनुसार सब कहना चाहिए।

विशेष–परिमाण में तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं ऐसा कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् है।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी क्षुद्रद्वापरयुग्मराशिवाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! औधिकगमक के अनुसार यहां भी जानना चाहिए।

विशेष–परिमाण में–दो, छह, दस या चौदह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं ऐसा कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् है।

इसी प्रकार धूमप्रभा से अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षुद्रकल्योजराशि वाले कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! औधिकगमक के अनुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

विशेष–परिमाण में–एक, पाँच, नौ, तेरह, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं ऐसा कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् है।

इसी प्रकार धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक के लिए कहना चाहिए।

१५. क्षुद्रकृतयुग्मादि की अपेक्षा नीललेश्यी नैरयिकों के उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्म राशि वाले नीललेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मा,**

णवरं–उववाओ जहा वालुयप्पभाए। **सेसं तं चेव।**

प. वालुयप्पभापुढवि-नीललेस्स-खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एवं चेव।**

एवं पंकप्पभाए वि, एवं धूमप्पभाए वि।

एवं चउसु वि जुम्मेसु,

णवरं–परिमाणं जहा कण्हलेस्सउद्देसए।

सेसं तं चेव। –*विया. स. ३१, उ. ३, सु. १-४*

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी क्षुद्रकृतयुग्म नैरयिकों के समान इनका भी कथन करना चाहिए।

विशेष–इसका उपपात वालुकाप्रभा पृथ्वी के समान है। शेष पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले नीललेश्यी वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उपपात पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार पंकप्रभा और धूमप्रभा के नैरयिकों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार चारों युग्मों के विषय में समझना चाहिए।

विशेष–जिस प्रकार कृष्णलेश्यी उद्देशक में परिमाण कहा है उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

१६. खुड्डागकडजुम्माइं पडुच्च काउलेस्स नेरइयाणं उववायाइ परूवणं–

प. काउलेस्स-खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्म तहेव भाणियव्वं।**

णवरं–उववाओ जे रयणप्पभाए।

सेसं तं चेव।

प. रयणप्पभापुढवि-काउलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **एवं चेव।**

एवं सक्करप्पभाए वि, एवं वालुयप्पभाए वि।

एवं चउसु वि जुम्मेसु,

णवरं–परिमाणं जहा कण्हलेसुद्देसए।

सेसं तं चेव। –*विया. स. ३१, उ. ४, सु. १-४*

१६. क्षुद्रकृतयुग्मादि की अपेक्षा कापोतलेश्यी नैरयिकों के उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले कापोतलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उपपात भी कृष्णलेश्यी क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

विशेष–इनका उपपात रत्नप्रभा पृथ्वी में होता है।

शेष कथन पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले कापोतलेश्यी रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा के नैरयिकों का कथन भी करना चाहिए।

चारों युग्मों में इसी प्रकार कहना चाहिए।

विशेष–कृष्णलेश्या उद्देशक के अनुसार परिमाण भिन्न-भिन्न जानना चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् है।

१७. खुड्डागकडजुम्माइ भवसिद्धिय अभवसिद्धिय नेरइयाणं उववायाइ परूवणं–

प. भवसिद्धियखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति **जाव** देवेहिंतो उववज्जंति?

१७. क्षुद्रकृतयुग्मादि भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक नैरयिकों के उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले भवसिद्धिक नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा ! एवं जहेव ओहिओ गमओ तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

प. रयणप्पभापुढवि-भवसिद्धिय-खुड्डागकडजुम्म-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव निरवसेसं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

एवं भवसिद्धिय-खुड्डागतेयोए नेरइया वि,

एवं जाव कलिओगा वि,

णवरं—परिमाणं पुव्वभणियं जहा पढमुद्देसए।

–विया. स. ३१, उ. ५, सु. १-४

उ. गौतम ! इनका सारा कथन औधिकगमक के समान परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी के क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले भवसिद्धिक नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार भवसिद्धिक क्षुद्रत्र्योजराशि वाले नैरयिक के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार कल्योज पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष—प्रथम उद्देशक में कहे गए परिमाण के अनुसार इनका पृथक्-पृथक् परिमाण जानना चाहिए।

प. कण्हलेस्स-भवसिद्धिय-खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव ओहिओ कण्हलेस्स उद्देसओ तहेव निरवसेसं चउसु वि जुम्मेसु भाणियव्वो जाव—

प. अहेसत्तमपुढविकण्हलेस्स-भवसिद्धिय-खुड्डाग-कलियोगनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! तहेव। –विया. स. ३१, उ. ६, सु. १-२

नीललेस्स-भवसिद्धिय-चउसु वि जुम्मेसु तहेव भाणियव्वा जहा ओहियनीललेस्सउद्देसए। –विया. स. ३१, उ. ७, सु. १

काउलेस्स-भवसिद्धिय चउसु वि जुम्मेसु तहेव उववाएयव्वा जहेव ओहिए काउलेस्सउद्देसए।

–विया. स. ३१, उ. ८, सु. १

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि उद्देसगा भणिया,

एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा जाव काउलेस्सउद्देसओ त्ति।

–विया. स. ३१, उ. ९-१२, सु. १

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्म वाले कृष्णलेश्यी नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी औधिक उद्देशक में कहे गए अनुसार चारों युग्मों पर्यन्त इनका सब कथन करना चाहिए यावत्—

प्र. भंते ! अधःसप्तमपृथ्वी के कृष्णलेश्यी क्षुद्रकल्योजराशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए।

नीललेश्यी भवसिद्धिक नैरयिकों के चारों (क्षुद्र) युग्मों के उत्पातादि का कथन औधिक नीललेश्यी उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।

कापोतलेश्यी-भवसिद्धिक नैरयिक के चारों ही युग्मों के उत्पातादि का कथन औधिक नीललेश्यी-उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।

जिस प्रकार भवसिद्धिक के चारों उद्देशक कहे

उसी प्रकार अभवसिद्धिक के भी कापोतलेश्यी पर्यन्त चारों उद्देशक कहने चाहिए।

१८. खुड्डाग कडजुम्माइ सम्मदि्दट्ठि-मिच्छदि्दट्ठि नेरइयाणं उववायाइ परूवणं—

एवं सम्मदि्दट्ठीहि वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा,

णवरं—सम्मदि्दट्ठी पढम-बिइएसु दोसु वि उद्देसएसु अहेसत्तमपुढवीए न उववाएयव्वो।

सेसं तं चेव। –विया. स. ३१, उ. १३-१६, सु. १

मिच्छदि्दट्ठीहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहा भवसिद्धियाणं। –विया. स. ३१, उ. १७-२०, सु. १

१८. क्षुद्रकृतयुग्मादि सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि नैरयिकों के उत्पातादि का प्ररूपण—

इसी प्रकार लेश्या सहित सम्यग्दृष्टि के चार उद्देशक कहने चाहिए।

विशेष—सम्यग्दृष्टि के प्रथम और द्वितीय इन दो उद्देशकों में सम्यग्दृष्टि का उपपात अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त नहीं कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

भवसिद्धिकों के समान मिथ्यादृष्टि के भी चार उद्देशक कहने चाहिए।

१९. खुड्डागकडजुम्माइ कण्हपक्खिय-सुक्कपक्खिय नेरइयाणं उववायाइ परूवणं—

एवं कण्हपक्खिएहि वि लेस्सा संजुत्ता चत्तारि उद्देसया कायव्वा जहेव भवसिद्धिएहिं।

–विया. स. ३१, उ. २१-२४, सु. १

सुक्कपक्खिएहिं एवं चेव चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा जाव—

१९. क्षुद्रकृतयुग्मादि कृष्णपाक्षिक शुक्लपाक्षिक नैरयिकों के उत्पातादि का प्ररूपण—

भवसिद्धिकों के चार उद्देशकों के समान लेश्याओं सहित कृष्णपाक्षिक के भी चार उद्देशक इसी प्रकार कहने चाहिए।

इसी प्रकार शुक्लपाक्षिक के भी लेश्या-सहित चार उद्देशक कहने चाहिए यावत्

प. वालुयप्पभपुढवि-काउलेस्स-सुक्कपक्खिय-खुड्डाग-कलियोगनेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव ओहिओ गमओ तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।

सव्वे वि एए अट्ठावीसं उद्देसगा।

–विया. स. ३१, उ. २५-२८, सु. १

प्र. भंते ! क्षुद्रकल्योज राशि वाले वालुकाप्रभापृथ्वी के कापोतलेश्यी शुक्लपाक्षिक नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका सारा कथन औधिक गमक के समान परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

ये सब मिलाकर अट्ठाईस उद्देशक हुए।

२०. खुड्डाग कडजुम्माइ पडुच्च नेरइयाणं उव्वट्टणाइ परूवणं–

प. खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति?

किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववट्टणा जहा वक्कंतीए।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उव्वट्टंति।

प. ते णं भंते ! जीवा कहं उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे अज्झवसाण निवत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं ठाणं विप्पजहित्ता पुरिमं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ,

एवामेव ते वि जीवा पवओविव पवमाणा अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं भवं विप्पजहित्ता पुरिमं भवं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति।

एवं सो चेव गमओ जाव आयप्पयोगेणं उव्वट्टंति, नो परप्पयोगेणं उव्वट्टंति।

प. रयणप्पभापुढवि खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! एगसमएणं केवइया उव्वट्टंति?

उ. गोयमा ! चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उव्वट्टंति।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

खुड्डागतेयोग-खुड्डाग दावरजुम्म-खुड्डाग कलियोगे वि एवं चेव।

णवरं–परिमाणं जाणियव्वं।

सेसं तं चेव। –विया. स. ३२, उ. १, सु. १-६

एवं एएणं कमेणं जहेव भगवइए उववायसए अट्ठावीसं उद्देसगा भणिया, तहेव उव्वट्टणासए वि अट्ठावीसं उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा।

णवरं–उव्वट्टंति त्ति अभिलावो भाणियव्वो।

सेसं तं चेव। –विया. स. ३२, उ. २-२८

२०. क्षुद्रकृतयुग्मादि की अपेक्षा नैरयिकों के उद्वर्तनादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्षुद्रकृतयुग्मराशि वाले नैरयिक कहाँ से उद्वर्तित होकर (मर कर) कहाँ जाते हैं और कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उद्वर्तन व्युत्क्रान्तिक पद के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उद्वर्तित होते (मरते) हैं?

उ. गौतम ! (वे एक समय में) चार, आठ, बारह, सोलह, संख्यात या असंख्यात उद्वर्तित होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव किस प्रकार उद्वर्तित होते हैं?

उ. गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ अध्यवसाय निष्पन्न क्रिया साधन द्वारा उस स्थान को छोड़कर भविष्यत्काल में अगले स्थान को प्राप्त करता है,

वैसे ही जीव भी कूदने वाले की तरह कूदते हुए अध्यवसाय निष्पन्न क्रियासाधन (कर्मों) द्वारा पूर्वभव को छोड़कर आगामी भव को प्राप्त कर उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार का आलापक वे आत्मप्रयोग से उद्वर्तित होते हैं परप्रयोग से नहीं होते पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्षुद्र कृतयुग्म-राशि वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक एक समय में कितने उद्वर्तित होते (मरते) हैं?

उ. गौतम ! (वे एक समय में) चार, आठ, बारह, सोलह, संख्यात या असंख्यात उद्वर्तित होते हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त उद्वर्तन जानना चाहिए।

क्षुद्रत्र्योज, क्षुद्रद्वापरयुग्म और क्षुद्रकल्योज के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

विशेष–इनका परिमाण पूर्ववत् पृथक्-पृथक् कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

इसी प्रकार इसी क्रम से पूर्वोक्त उपपातशतक के अट्ठाईस उद्देशकों के समान उद्वर्तनशतक के भी अट्ठाईस उद्देशक सम्पूर्ण जानने चाहिए।

विशेष–'उत्पन्न होते हैं' के स्थान पर 'उद्वर्तन करते हैं' यह कहना चाहिए।

शेष सब पूर्ववत् है।

२१. सोलस महाजुम्मा तेसिं लक्खणाणि य परूवणं–

प. कइ णं भंते ! महाजुम्मा[1] पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सोलस महाजुम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कडजुम्मकडजुम्मे, २. कडजुम्मतेओए,
३. कडजुम्मदावरजुम्मे, ४. कडजुम्मकलियोए,
५. तेओयकडजुम्मे, ६. तेओयतेओए,
७. तेओयदावरजुम्मे, ८. तेओयकलियोए,
९. दावरजुम्मकडजुम्मे, १०. दावरजुम्मतेओए,
११. दावरजुम्मदावरजुम्मे, १२. दावरजुम्मकलियोए,
१३. कलिओयकडजुम्मे, १४. कलिओयतेओए,
१५. कलिओयदावरजुम्मे, १६. कलिओयकलिओए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"सोलस महाजुम्मा पण्णत्ता", तं जहा–
१. कडजुम्मकडजुम्मे जाव १६. कलियोयकलियोए ?

उ. गोयमा ! १. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से तं कडजुम्मकडजुम्मे।

२. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से तं कडजुम्मतेओये।

३. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से तं कडजुम्मदावरजुम्मे।

४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, से तं कडजुम्म कलियोए।

५. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेओया, से तं तेओयकडजुम्मे।

६. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेओया, से तं तेओयतेयोए।

७. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेओया, से तं तेओयदावरजुम्मे।

८. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेओया, से तं तेओयकलियोए।

९. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से तं दावरजुम्म कडजुम्मे।

१०. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से तं दावरजुम्मतेओए।

२१. सोलह महायुग्म और उनके लक्षणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! महायुग्म कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! महायुग्म सोलह कहे गए हैं, यथा–

१. कृतयुग्मकृतयुग्म, २. कृतयुग्मत्र्योज,
३. कृतयुग्मद्वापरयुग्म, ४. कृतयुग्मकल्योज,
५. त्र्योजकृतयुग्म, ६. त्र्योजत्र्योज,
७. त्र्योजद्वापरयुग्म, ८. त्र्योजकल्योज,
९. द्वापरयुग्मकृतयुग्म, १०. द्वापरयुग्मत्र्योज,
११. द्वापरयुग्मद्वापरयुग्म, १२. द्वापरयुग्मकल्योज,
१३. कल्योजकृतयुग्म, १४. कल्योजत्र्योज,
१५. कल्योजद्वापरयुग्म, १६. कल्योजकल्योज।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
'महायुग्म सोलह हैं', यथा–
१. कृतयुग्मकृतयुग्म यावत् १६. कल्योजकल्योज ?

उ. गौतम ! १. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से चार शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहारसमय भी कृतयुग्म (चार) हों तो वह राशि 'कृतयुग्मकृतयुग्म' कहलाती है।

२. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से तीन शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहारसमय कृतयुग्म हों तो वह राशि 'कृतयुग्मत्र्योज' कहलाती है।

३. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से दो शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहारसमय कृतयुग्म हों तो वह राशि 'कृतयुग्म द्वापरयुग्म' कहलाती है।

४. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से एक शेष रहे किन्तु उस राशि के अपहारसमय कृतयुग्म हों तो वह राशि 'कृतयुग्मकल्योज' कहलाती है।

५. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से चार शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहारसमय त्र्योज (तीन) हों तो वह राशि 'त्र्योजकृतयुग्म' कहलाती है।

६. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से तीन शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहार समय त्र्योज (तीन) हों तो वह राशि 'त्र्योजत्र्योज' कहलाती है।

७. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से दो शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहारसमय त्र्योज हों तो वह राशि 'त्र्योजद्वापरयुग्म' कहलाती है।

८. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से एक शेष रहें और उस राशि के अपहारसमय त्र्योज (तीन) हों तो वह राशि 'त्र्योज कल्योज' कहलाती है।

९. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से चार शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहारसमय द्वापरयुग्म (दो) हों तो वह राशि 'द्वापरयुग्मकृतयुग्म' कहलाती है।

१०. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से तीन शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहार समय द्वापरयुग्म (दो) हों तो वह राशि 'द्वापरयुग्मत्र्योज' कहलाती है।

१. बड़ी संख्या वाली राशि को "महायुग्म" कहते हैं।

११. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से तं दावरजुम्म दावरजुम्मे।

१२. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, से तं दावरजुम्म- कलिओए।

१३. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलिओया, से तं कलिओय- कडजुम्मे।

१४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलिओया, से तं कलिओयतेयोए।

१५. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलिओया, से तं कलिओयदावरजुम्मे।

१६. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहार समया कलिओया, से तं कलिओयकलियोए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"सोलस महाजुम्मा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कडजुम्मकडजुम्मे जाव

१६. कलिओयकलिओए[1]।"

–विया. स. ३५, १/ए, उ. १ सु. १ (१-२)

११. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से दो शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहार समय द्वापर- युग्म (दो) हों तो वह राशि 'द्वापरयुग्म-द्वापरयुग्म' कहलाती है।

१२. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से एक शेष रहे किन्तु उस राशि के अपहार-समय द्वापरयुग्म (दो) हों तो वह राशि 'द्वापरयुग्म कल्योज' कहलाती है।

१३. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से चार शेष रहें, किन्तु उस राशि के अपहार-समय कल्योज (एक) हो तो वह राशि 'कल्योज कृतयुग्म' कहलाती है।

१४. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से तीन शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहार-समय कल्योज (एक) हो तो वह राशि 'कल्योज त्र्योज' कहलाती है।

१५. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से दो शेष रहें किन्तु उस राशि के अपहार समय कल्योज (एक) हो तो वह राशि 'कल्योज द्वापरयुग्म' कहलाती है।

१६. चार की संख्या से अपहार करते हुए जिस राशि में से एक शेष रहे किन्तु उस राशि का अपहार-समय कल्योज (एक) हो तो वह राशि 'कल्योज-कल्योज' कहलाती है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"सोलह महायुग्म कहे गये हैं, यथा–

१. कृतयुग्मकृतयुग्म यावत्

१६. कल्योजकल्योज।"

२२. सोलससु एगिंदियमहाजुम्मेसु उववायाइ बत्तीसं दाराणं[2] परूवणं–

प. १. कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

किं नेरइहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइहिंतो उववज्जंति,

तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

देवेहिंतो वि उववज्जंति।

२२. सोलह एकेन्द्रिय महायुग्मों में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! कृतयुग्म-कृतयुग्म वाले एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,

तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,

मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं,

देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

---

१. इन सोलह महायुग्मों की जघन्य संख्या इस प्रकार है :–

१. सोलह आदि, २. उन्नीस आदि, ३. अठारह आदि, ४. सत्रह आदि, ५. बारह आदि,
६. पन्द्रह आदि, ७. चौदह आदि, ८. तेरह आदि, ९. आठ आदि, १०. ग्यारह आदि,
११. दस आदि, १२. नौ आदि, १३. चार आदि, १४. सात आदि, १५. छह आदि,
१६. पांच आदि।

२. उपपातादि बत्तीस द्वार :–

१. उपपात, २. परिमाण, ३. अपहार, ४. अवगाहना (ऊँचाई), ५. बन्धक,
६. वेद, ७. उदय, ८. उदीरणा, ९. लेश्या, १०. दृष्टि,
११. ज्ञान, १२. योग, १३. उपयोग, १४. वर्ण-रसादि, १५. उच्छ्वास,
१६. आहार, १७. विरति, १८. क्रिया, १९. बन्धक, २०. संज्ञा,
२१. कषाय, २२. स्त्रीवेदादि, २३. वन्ध, २४. संज्ञी, २५. इन्द्रिय,
२६. अनुबन्ध, २७. संवेध, २८. आहार, २९. स्थिति, ३०. समुद्घात,
३१. च्यवन, ३२. सभी जीवों का मूलादि में उपपात।

–व्या. स. ११, उ. १, सु. १

प. २. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सोलस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

प. ३. ते णं भंते ! जीवा समए-समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा केवइ कालेणं अवहीरंति ?

उ. गोयमा ! ते णं अणंता समए-समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा अणंताहिं ओसप्पिणिउस्सप्पिणीहिं अवहीरंति, नो चेव णं अवहिया सिया।

प. ४. तेसि णं भंते ! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

प. ५. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं वंधगा, अवंधगा ?

उ. गोयमा ! वंधगा, नो अवंधगा।

एवं सव्वेसिं आउयवज्जाणं, आउयस्स वंधगा वा, अवंधगा वा।

प. ६. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं वेदगा वा, अवेदगा वा ?

उ. गोयमा ! वेदगा, नो अवेदगा।

एवं सव्वेसिं।

प. ते णं भंते ! जीवा किं सायावेयगा असायावेयगा ?

उ. गोयमा ! सायावेयगा वा, असायावेयगा वा।

प. ७. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जाइ कम्माणं किं उदई अणुदई ?

उ. गोयमा ! सव्वेसिं कम्माणं उदई, नो अणुदई।

प. ८. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जाइ कम्माणं किं उदीरगा अणुदीरगा ?

उ. गोयमा ! छण्हं कम्माणं उदीरगा, नो अणुदीरगा।

णवरं–वेयणिज्जाउयाणं उदीरगा वा, अणुदीरगा वा।

प. ९. ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा वा जाव तेउलेस्सा वा ?

उ. गोयमा ! कण्हलेस्सा वा, नीललेस्सा वा, काउलेस्सा वा, तेउलेस्सा वा।

१०. नो सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, नो सम्मामिच्छदिट्ठी।

११. नो नाणी, अन्नाणी, नियमं दुअन्नाणी, तं जहा–

१. मइअन्नाणी य, २. सुयअन्नाणी य।

१२. नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी।

प्र. २. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे (एक समय में) सोलह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

प्र. ३. भंते ! वे अनन्त जीव समय-समय में एक-एक अपहृत किये जाए तो कितने काल में अपहृत (रिक्त) होते हैं ?

उ. गौतम ! यदि वे अनन्त जीव समय-समय में अपहृत किये जाएँ और ऐसा करते हुए अनन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी बीत जाएँ तो भी वे अपहृत (रिक्त) नहीं होते हैं।

प्र. ४. भंते ! उन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी ऊँची कही गई है ?

उ. गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन की अवगाहना कही गई है।

प्र. ५. भंते ! वे एकेन्द्रिय जीव ज्ञानावरणीयकर्म के बंधक हैं या अबन्धक हैं ?

उ. गौतम ! वे जीव बन्धक हैं, अबन्धक नहीं हैं।

आयु कर्म को छोड़कर वे जीव शेष सभी कर्मों के बन्धक हैं किन्तु आयुकर्म के वे बन्धक भी हैं और अबन्धक भी हैं।

प्र. ६. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीयकर्म के वेदक हैं या अवेदक हैं ?

उ. गौतम ! वे वेदक हैं, अवेदक नहीं हैं।

इसी प्रकार सभी कर्मों के वेदन के विषय में जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वे जीव साता के वेदक हैं या असाता के वेदक हैं ?

उ. गौतम ! वे सातावेदक भी हैं और असातावेदक भी हैं।

प्र. ७. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के उदय वाले हैं या अनुदय वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे जीव सभी कर्मों के उदय वाले हैं, अनुदय वाले नहीं हैं।

प्र. ८. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय आदि सभी कर्मों के उदीरक हैं या अनुदीरक हैं ?

उ. गौतम ! वे छह कर्मों के उदीरक हैं, अनुदीरक नहीं हैं।

विशेष–वेदनीय और आयुकर्म के उदीरक भी हैं और अनुदीरक भी हैं।

प्र. ९. भंते ! वे एकेन्द्रिय जीव क्या कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे जीव कृष्णलेश्यी भी हैं, नीललेश्यी भी हैं, कापोतलेश्यी भी हैं और तेजोलेश्यी भी हैं।

१०. वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते किन्तु मिथ्यादृष्टि होते हैं।

११. वे ज्ञानी नहीं होते किन्तु अज्ञानी होते हैं। वे नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं, यथा–

१. मतिअज्ञान, २. श्रुतअज्ञान।

१२. वे मनोयोगी और वचनयोगी नहीं होते किन्तु काययोगी होते हैं।

१३. सागारोवउत्ता वा, अणागारोवउत्ता वा।

प. १४. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा कइवण्णा जाव कइ फासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच वण्णा, पंच रसा, दुगंधा, अट्ठफासा पण्णत्ता, ते पुण अप्पणा अवण्णा, अगंधा, अरसा अफासा पण्णत्ता,

१५. ऊसासगा वा, नीसासगा वा, नो ऊसासग-नीसासगा।

१६. आहारगा वा, अणाहारगा वा।

१७. नो विरया, अविरया, नो विरयाविरया।

१८. सकिरिया, नो अकिरिया।

१९. सत्तविहबंधगा वा, अट्ठविहबंधगा वा।

२०. आहारसन्नोवउत्तां वा जाव परिग्गहसन्नोवउत्ता वा।

२१. कोहकसाई वा जाव लोभकसाई वा।

२२. नो इत्थिवेयगा, नो पुरिसवेयगा, नपुंसगवेयगा।

२३. इत्थिवेदबंधगा वा, पुरिसवेदबंधगा वा, नपुंसगवेदबंधगा वा।

२४. नो सण्णी, असण्णी।

२५. सइंदिया, नो अणिंदिया।

प. २६. ते णं भंते ! "कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय" त्ति कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं-अणंतो वणस्सइकालो,

२७. संवेहो न भण्णइ।

प. २८. ते णं भंते ! जीवा किमाहारमाहारेंति ?

उ. गोयमा ! अणंतपदेसियाइं दव्वाइं,
खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं,
कालओ-अण्णयरं कालट्ठिईयाइं,
भावओ वण्णमंताइं, गंधमंताइं,
रसमंताइं, फासमंताइं।

एवं जहा आहारुद्देसए वणस्सइकाइयाणं आहारो तहेव जाव सव्वप्पणयाए आहारमाहारेंति,

णवरं-निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं। सेसं तहेव।

२९. ठिई जहण्णेणं एक्कं समयं अंतोमुहुत्तं,
उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

३०. समुग्घाया आइल्ला चत्तारि,
मारणंतियसमुग्घाए णं समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।

१३. वे साकारोपयोग युक्त भी होते हैं और अनाकारोपयोग युक्त भी होते हैं।

प्र. १४. भंते ! उन एकेन्द्रिय जीवों के शरीर कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके शरीर पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं और वे स्वयं वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित कहे गए हैं।

१५. वे उच्छ्वास वाले भी हैं, निःश्वास वाले भी हैं और नो-उच्छ्वास-निःश्वास वाले भी हैं।

१६. वे आहारक भी हैं और अनाहारक भी हैं।

१७. वे विरत (सर्वविरत) और विरताविरत (देशविरत) नहीं होते, किन्तु अविरत होते हैं।

१८. वे क्रियायुक्त होते हैं, क्रियारहित नहीं होते हैं।

१९. वे सात या आठ कर्म-प्रकृतियों के बन्धक होते हैं।

२०. वे आहारसंज्ञोपयोगयुक्त भी हैं यावत् परिग्रह-संज्ञोपयोगयुक्त भी हैं।

२१. वे क्रोधकषायी भी हैं यावत् लोभकषायी भी हैं।

२२. वे स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी नहीं होते किन्तु नपुंसकवेदी होते हैं।

२३. वे स्त्रीवेद-बन्धक, पुरुषवेद-बन्धक या नपुंसक-वेद-बंधक होते हैं।

२४. वे संज्ञी नहीं होते, असंज्ञी होते हैं।

२५. वे सइन्द्रिय होते हैं, अनिन्द्रिय नहीं होते हैं।

प्र. २६. भंते ! वे कृतयुग्म-कृतयुग्मराशिरूप एकेन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल- अनन्त (उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप) वनस्पतिकाल-पर्यन्त रहते हैं।

२७. यहाँ संवेध नहीं कहना चाहिए।

प्र. २८. भंते ! वे एकेन्द्रिय जीव क्या आहार करते हैं ?

उ. गौतम ! वे द्रव्यतः अनन्तप्रदेशी पदार्थों का आहार करते हैं,
क्षेत्रतः असंख्यात प्रदेशावगाढ पदार्थों का आहार करते हैं,
कालतः अन्यतर काल स्थिति वाले द्रव्यों का आहार करते हैं,
भावतः वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले पदार्थों का आहार करते हैं।

इसी प्रकार जैसे आहार उद्देशक में वनस्पतिकायिकों के आहार का वर्णन किया गया है उसी प्रकार वे सर्वप्रदेशों से आहार करते हैं।

विशेष-वे व्याघातरहित हों तो छहों दिशाओं से और व्याघात होने पर कदाचित् तीन, चार या पांच दिशाओं से आहार लेते हैं, शेष कथन पूर्ववत् है।

२९. इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की,
उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

३०. इनमें आदि के चार समुद्घात पाये जाते हैं।
वे मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

प. ३१. ते णं भंते ! जीवा अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति,
किं नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! नो नेरइएसु गच्छंति, उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएसु गच्छंति, उववज्जंति,
मणुस्सेसु गच्छंति, उववज्जंति,
नो देवेसु गच्छंति, उववज्जंति।
प. ३२. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता कडजुम्मकडजुम्म एगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?
उ. हंता, गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो।
प. १. कडजुम्मतेओयएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! उववाओ तहेव।
प. २. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! एक्कूणवीसा वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।
सेसं जहा कडजुम्मकडजुम्माणं जाव अणंतखुत्तो।
प. ३. कडजुम्मदावरजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! उववाओ तहेव।
प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! अट्ठारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।
सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।
प. ४. कडजुम्मकलिओयएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! उववाओ तहेव।
परिमाणं सत्तरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।
प. ५. तेओयकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! उववाओ तहेव।
परिमाणं बारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।
प. ६. तेओयतेयोयएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?
उ. गोयमा ! उववाओ तहेव।

प्र. ३१. भंते ! वे जीव उद्वर्तना करके कहां जाते हैं और कहां उत्पन्न होते हैं ?
क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! वे नैरयिकों में जाते भी नहीं और उत्पन्न भी नहीं होते हैं।
वे तिर्यञ्चयोनिकों में जाते भी हैं और उत्पन्न भी होते हैं।
वे मनुष्यों में जाते भी हैं और उत्पन्न भी होते हैं।
वे देवों में जाते भी नहीं और उत्पन्न भी नहीं होते हैं।
प्र. ३२. भंते ! समस्त प्राण यावत् सर्व सत्व क्या कृतयुग्म-कृतयुग्म-एकेन्द्रियरूप से पहले उत्पन्न हुए हैं ?
उ. हां, गौतम ! वे अनेक वार या अनन्त वार उत्पन्न हो चुके हैं।
प्र. १. भंते ! कृतयुग्म-त्र्योजराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! उनका उपपात पूर्ववत् कहना चाहिए।
प्र. २. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! वे एक समय में उन्नीस, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।
शेष पूर्ववत् कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रियों के समान अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।
प्र. ३. भंते ! कृतयुग्म-द्वापरयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! इनका उपपात पूर्ववत् जानना चाहिए।
प्र. भंते ! वे एकेन्द्रिय जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! वे एक समय में अठारह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।
शेष सब पूर्ववत् अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।
प्र. ४. भंते ! कृतयुग्म-कल्योजराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! इनका उपपात पूर्ववत् जानना चाहिए।
इनका परिमाण-सत्रह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त है।
शेष सब पूर्ववत् अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।
प्र. ५. भंते ! त्र्योज-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! इनका उपपात भी पूर्ववत् जानना चाहिए।
परिमाण–बारह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त हैं।
शेष सब पूर्ववत् अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।
प्र. ६. भंते ! त्र्योज-त्र्योजराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
उ. गौतम ! इनका उपपात भी पूर्ववत् जानना चाहिए।

परिमाणं-पन्नरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।

एवं एएसु सोलससु महाजुम्मेसु एक्को गमओ,

णवरं-परिमाणे णाणत्तं-

७. तेओयदावरजुम्मेसु चोद्दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

८. तेओयकलिओएसु तेरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

९. दावरजुम्मकडजुम्मेसु अट्ठ वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

१०. दावरजुम्मतेओयेसु एक्कारस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

११. दावरजुम्मदावरजुम्मेसु दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

१२. दावरजुम्मकलिओयेसु नव वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

१३. कलिओयकडजुम्मेसु चत्तारि वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

१४. कलिओयतेयोएसु सत्त वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

१५. कलिओयदावरजुम्मेसु छ वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

प. १६. कलिओयकलिओयएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ तहेव !
परिमाणं पंच वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।
सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो[1]।

-विया. स. ३५, १/ए, उ. १, सु. २-२३

परिमाण-पन्द्रह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त हैं।

शेष सब पूर्ववत् अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इस प्रकार इन सोलह महायुग्मों का एक ही आलापक (गमक) है।

विशेष : इनके परिमाण में भिन्नता है, यथा-

७. त्र्योज द्वापरयुग्म में चौदह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

८. त्र्योज कल्योज में तेरह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

९. द्वापरयुग्म कृतयुग्म में आठ, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

१०. द्वापरयुग्मत्र्योज में ग्यारह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

११. द्वापरयुग्मद्वापरयुग्म में दस, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

१२. द्वापरयुग्मकल्योज में नौ, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

१३. कल्योजकृतयुग्म में चार, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

१४. कल्योजत्र्योज में सात, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

१५. कल्योजद्वापरयुग्म में छह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।

प्र. १६. भंते ! कल्योज-कल्योजराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उपपात भी पूर्ववत् कहना चाहिए।
इनका परिमाण-पांच, संख्यात, असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं।
शेष सब पूर्ववत् अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

२३. पढमसमय सोलसमहाजुम्मएगिंदिएसु उववायाइ बत्तीसदाराइं परूवणं-

प. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! तहेव।
एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव सोलसखुत्तो विइयो वि भाणियव्वो तहेव सव्वं।

२३. प्रथम समयोत्पन्न सोलह महायुग्म वाले एकेन्द्रियों में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए।
इसी प्रकार जैसे प्रथम उद्देशक में सोलह महायुग्मों में उत्पाद आदि कहे हैं वैसे ही द्वितीय उद्देशक में भी कहने चाहिए। अन्य सब कथन पूर्ववत् है।

---

१. ग्यारह उद्देशक द्वार-
१. ओघिक, २. प्रथमसमय, ३. अप्रथमसमय, ४. चरिमसमय, ५. अचरिमसमय,
६. प्रथमप्रथमसमय, ७. प्रथमअप्रथमसमय, ८. प्रथमचरिमसमय, ९. प्रथमअचरिमसमय, १०. चरिम-चरिमसमय,
११. चरिमअचरिमसमय।

-व्या. श. ३५

णवरं–इमाणि दस नाणत्ताणि–

१. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।

२-३. आउयकम्मस्स नो वंधगा, अवंधगा।

४-५. आउयकम्मस्स नो उदीरगा, अणुदीरगा।

६-७-८. नो उस्सासगा, नो निस्सासगा, नो उस्सास–निस्सासगा।

९.१०. सत्तविहवंधगा, नो अट्ठविहवंधगा।

प. ते णं भंते ! "पढमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिय" त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! एक्कं समयं।

एवं ठिई वि।

समुग्घाया आइल्ला दोन्नि।

समोहया न पुच्छिज्जंति।

उव्वट्टणा न पुच्छिज्जइ।

सेसं तहेव सव्वं निरवसेसं सोलससु वि गमएसु जाव अणंतखुत्तो। –विया. स. ३५ १/ए, उ. २, सु. १-४

२४. अपढमसमयाइ चरिमाचरिमसमय पज्जत्तं महाजुम्म-एगिंदिएसु उववाइयाइ वत्तीसदाराणं परूवणं–

प. अपढमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एसो जहा पढमउद्देसओ सोलसहिं वि जुम्मेहिं तहेव नेयव्वो जाव कलियोगकलियोगत्ताए जाव अणंतखुत्तो। –विया. स. ३५ १/ए, उ. ३, सु. १

प. चरिमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव पढमसमय उद्देसओ,

णवरं–देवा न उववज्जंति, तेउलेस्सा न पुच्छिज्जंति,

सेसं तहेव। –विया. स. ३५ १/ए, उ. ४, सु. १

प. अचरिमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा अपढमसमयउद्देसओ तहेव भाणियव्वो निरवसेसं। –विया. स. ३५ १/ए, उ. ५, सु. १

प. पढमपढमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा पढमसमयउद्देसओ तहेव निरवसेसं। –विया. स. ३५ १/ए, उ. ६, सु. १

प. पढमअपढमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा पढमसमयउद्देसओ तहेव भाणियव्वो। –विया. स. ३५ १/ए, उ. ७, सु. १

विशेष–इन दस वातों में भिन्नता है, यथा–

१. अवगाहना–जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग है, उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है।

२-३. आयु कर्म के वन्धक नहीं, अवन्धक है।

४-५. आयु कर्म के ये जीव उदीरक नहीं, अनुदीरक हैं।

६-७-८. ये उच्छ्वास, निःश्वास तथा उच्छ्वास-निःश्वास से युक्त नहीं हैं।

९-१०. ये सात प्रकार के कर्मों के वन्धक हैं, आठ कर्मों के वन्धक नहीं हैं।

प्र. भंते ! वे प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि वाले एकेन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा कितने काल तक रहते हैं?

उ. गौतम ! वे एक समय तक रहते हैं।

उनकी स्थिति भी इसी प्रकार (एक समय की) है।

उनमें आदि के दो समुद्घात होते हैं।

वे समवहत नहीं होते हैं,

उनमें उद्वर्तना का प्रश्न नहीं करना चाहिए।

शेप सव कथन सोलह ही महायुग्मों में अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त प्रथम उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए।

२४. अप्रथमसमय से चरमाचरम पर्यन्त महायुग्म वाले एकेन्द्रियों में उत्पातादि वत्तीसद्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! अप्रथमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रथम उद्देशक में कल्योज-कल्योज पर्यन्त सोलह महायुग्मों का कथन किया है उसी प्रकार यहां भी अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! चरमसमयों के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रथमसमय उद्देशक कहा है (उसी प्रकार यह उद्देशक भी कहना चाहिए।)

विशेप–इनमें देव उत्पन्न नहीं होते तथा तेजोलेश्या के लिए प्रश्न नहीं करना चाहिए।

शेप सव कथन पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! अचरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इस उद्देशक का समग्र कथन अप्रथमसमय उद्देशक (तीन) के अनुसार कहना चाहिए।

प्र. भंते ! प्रथमप्रथमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! प्रथमसमय के उद्देशक के अनुसार समग्र कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! प्रथम-अप्रथमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसका समग्र कथन प्रथमसमय के उद्देशकानुसार कहना चाहिए।

प. पढमचरिमसमय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा चरिमउद्देसओ तहेव निरवसेसं।

-विया. स. ३५/१/ए, उ. ८, सु. १

प. पढमअचरिम समयकडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा बीओ उद्देसओ तहेव निरवसेसं।

-विया. स. ३५, १/ए, उ. ९, सु. १

प. चरिमचरिमसमय-कडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा चउत्थो उद्देसओ तहेव।

-विया. स. ३५, १/ए, उ. १०, सु. १

प. चरिमअचरिमसमय-कडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा पढमसमयउद्देसओ तहेव निरवसेसं।

एवं एए एक्कारस उद्देसगा।

पढमो तइयो पंचमओ य सरिसगमगा।

सेसा अट्ठ सरिसगमगा,

णवरं-चउत्थे अट्ठमे दसमे य देवा न उववज्जंति, तेउलेसा नत्थि। *-विया. स. ३५, १/ए, उ. ११, सु. १*

प्र. भंते ! प्रथम-चरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन चरमउद्देशक के अनुसार करना चाहिए।

प्र. भंते ! प्रथम-अचरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन दूसरे उद्देशक के अनुसार करना चाहिए।

प्र. भंते ! चरम-चरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन चौथे उद्देशक के अनुसार करना चाहिए।

प्र. भंते ! चरम-अचरमसमय के कृतयुग्म-कृतयुग्म राशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन प्रथमसमयोद्देशक के अनुसार करना चाहिए।

इस प्रकार ये ग्यारह उद्देशक हैं।

इनमें से पहले, तीसरे और पांचवें उद्देशक के पाठ एक समान हैं।

शेष आठ उद्देशक एक समान पाठ वाले हैं।

विशेष-चौथे, आठवें और दसवें उद्देशक में (चरम समय होने के कारण) देवों का उपपात तथा तेजोलेश्या का कथन नहीं करना चाहिए।

२५. लेस्सं पडुच्च महाजुम्म एगिंदिएसु उववायाइ बत्तीसदाराणं परूवणं-

प. कण्हलेस्स-कडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिया णं भन्ते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ तहेव एवं जहा ओहिय उद्देसए,

णवरं-इमं नाणत्तं-

प. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्सा।

प. ते णं भंते ! "कण्हलेस्स-कडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिए" त्ति कालओ केवचिरं होंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

एवं ठिई वि।

सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।

एवं सोलस वि जुम्मा भाणियव्वा।

-विया. स. ३५, २/ए, उ. १, सु. १-६

प. पढमसमय-कण्हलेस्स-कडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिया णं भन्ते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा पढमसमयउद्देसओ, णवरं-

२५. लेश्याओं की अपेक्षा महायुग्म वाले एकेन्द्रियों में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! कृष्णलेश्यी-कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उपपात पूर्वोक्त औधिक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष-इन बातों में भिन्नता है-

प्र. भन्ते ! क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं?

उ. हाँ गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले हैं।

प्र. भन्ते ! वे कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्म-राशि वाले एकेन्द्रिय जीव काल की अपेक्षा (उस रूप में) कितने काल तक रहते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं।

उनकी स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

शेष सब कथन अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं पर्यन्त पूर्ववत् कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार क्रमशः सोलह महायुग्मों का कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! प्रथमसमय-कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसका समग्र कथन प्रथमसमयोद्देशक के समान जानना चाहिए। विशेष यह है-

प. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्सा। सेसं तहेव।

एवं जहा ओहियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया तहा कण्हलेस्साए वि एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा।

पढमो, तइओ, पंचमो य सरिसगमा।

सेसा अट्ठ वि सरिसगमा,

णवरं–चउत्थ-अट्ठम-दसमेसु उववाओ नत्थि देवस्स।

–विया. स. ३५, २/ए, उ. २-११

एवं नीललेस्सेहि वि सयं कण्हलेस्ससयसरिसं, एक्कारस उद्देसगा तहेव। –विया. स. ३५, ३/ए, उ. १-११

एवं काउलेस्से वि सयं कण्हलेस्ससयसरिसं।

–विया. स. ३५, ४/ए, उ. १-११

प्र. भन्ते ! वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ?

उ. हाँ गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले हैं, शेष समग्र कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

जिस प्रकार औधिक शतक के ग्यारह उद्देशक कहे हैं उसी प्रकार एकेन्द्रिय कृष्णलेश्यी शतक के भी ग्यारह उद्देशक कहने चाहिए।

प्रथम, तृतीय और पंचम उद्देशक के पाठ एक समान हैं।

शेष आठ उद्देशकों के पाठ एक समान हैं।

विशेष–चौथे, आठवें और दसवें उद्देशक में देवों की उत्पत्ति का कथन नहीं करना चाहिए।

कृष्णलेश्यी शतक के अनुसार नीललेश्यी शतक के भी ग्यारह उद्देशक उसी प्रकार कहने चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी-शतक भी कृष्णलेश्यी शतक के समान जानना चाहिए।

२६. भवसिद्धिय अभवसिद्धिय महाजुम्म एगिंदिएसु उववायाइ वत्तीसदाराणं परूवणं–

प. भवसिद्धिय-कडजुम्म-कडजुम्म-एगिंदिया णं भन्ते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा ओहियसयं तहेव,

णवरं–एक्कारससु वि उद्देसएसु–

प. अह भन्ते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता भवसिद्धिय कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

सेसं तहेव। –विया. स. ३५, ५/ए, उ. १-११

प. कण्हलेस्स-भवसिद्धिय-कडजुम्मकडजुम्म-एगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं कण्हलेस्स-भवसिद्धिय-एगिंदिएहि वि सयं विइयसयकण्हलेस्ससरिसं भाणियव्वं।

–विया. स. ३५, ६/ए, उ. १-११

एवं नीललेस्स-भवसिद्धिय-एगिंदिएहि वि सयं।

–विया. स. ३५, ७/ए, उ. १-११

एवं काउलेस्स-भवसिद्धिय-एगिंदिएहि वि तहेव एक्कारस-उद्देसगसंजुत्तसयं।

एवं एयाणि चत्तारि भवसिद्धिएसु सयाणि चउसु वि सएसु–

प. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता भवसिद्धिया कडजुम्म-कडजुम्म एगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

–विया. स. ३५, ८/ए, उ. १-११

जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाइं भणियाइं एवं अभवसिद्धिएहिं वि चत्तारि सयाणि लेस्सासंजुत्ताणि भाणियव्वाणि। (चउसु वि सएसु)

२६. भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक महायुग्म वाले एकेन्द्रियों में उत्पातादि वत्तीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन औधिकशतक के समान जानना चाहिए।

विशेष–इनके ग्यारह उद्देशकों में यह भिन्नता है–

प्र. भन्ते ! सर्व प्राणी यावत् सर्व सत्व भवसिद्धिक कृतयुग्म एकेन्द्रिय के रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

शेष सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक कृतयुग्मराशि वाले एकेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के शतक का समग्र कथन कृष्णलेश्या सम्बन्धी द्वितीय शतक के समान कहना चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यी भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म-एकेन्द्रिय शतक का कथन भी नीललेश्या-सम्बन्धी तृतीय शतक के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रियों का कथन पूर्वोक्त (चतुर्थ शतक) के कापोतलेश्या के ग्यारह उद्देशकों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार ये (५, ६, ७, ८) चारों शतक भवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के हैं और इन चारों शतकों में

प्र. भंते ! क्या सर्व प्राण यावत् सर्व सत्व भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म एकेन्द्रिय के रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

जिस प्रकार भवसिद्धिक-सम्बन्धी चार शतक कहे, उसी प्रकार लेश्याओं सहित अभवसिद्धिक एकेन्द्रियों के भी चार शतक कहने चाहिए। (इन चारों शतकों में भी)

उ. गोयमा ! एवं जहा एगिंदियमहाजुम्माणं पढमसमयुद्देसए दस नाणत्ताइं ताइं चेव दस इह वि।

एक्कारसमं इमं नाणत्तं नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी।

सेसं जहा एगिंदियाणं चेव पढमुद्देसे।

एवं एए वि जहा एगिंदियमहाजुम्मेसु एक्कारस उद्देसगा तहेव भाणियव्वा,

णवरं–चउत्थ-अट्ठम-दसमेसु सम्मत्त-नाणाणि न भण्णंति।

जहेव एगिंदिएसु, पढमो तइयो पंचमो य एक्कगमा,

सेसा अट्ठ एक्कगमा। *–विया स. ३६, १/बे., उ. २-११*

उ. गौतम ! जिस प्रकार एकेन्द्रियमहायुग्मों का प्रथमसमय वाला उद्देशक कहा उसी प्रकार यहाँ भी जानना तथा वहाँ जिन दस बातों का अन्तर बताया है, यहाँ भी उन दसों का अन्तर समझना चाहिए।

ग्यारहवें में यह अन्तर है ये मनयोगी और वचनयोगी नहीं होते, किन्तु काययोगी होते हैं,

शेष सब कथन एकेन्द्रियमहायुग्मों के प्रथम उद्देशक के समान जानना चाहिए।

एकेन्द्रियमहायुग्म के ग्यारह उद्देशकों के समान यहाँ भी ग्यारह उद्देशक कहने चाहिए।

विशेष–चौथे, आठवें और दसवें उद्देशक में सम्यक्त्व और ज्ञान का कथन नहीं करना चाहिए।

एकेन्द्रिय के समान प्रथम, तृतीय और पंचम इन तीन उद्देशकों के एक समान पाठ हैं,

शेष आठ उद्देशक एक समान हैं।

२९. सलेस्स महाजुम्म वेइंदिएसु उववायाइ बत्तीसदाराणं परूवणं–

प. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मवेइंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव,

कण्हलेस्सेसु वि एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं सयं,

णवरं–लेसा, संचिट्ठणा जहा एगिंदियकण्हलेस्साणं। *–विया. स. ३६, २/बे. उ. १-११*

एवं नीललेस्सेहि वि सयं। *–विया. स. ३६, ३/बे. उ. १-११*

एवं काउलेस्सेहि वि सयं। *–विया. स. ३६, ४/बे., उ. १-११*

२९. सलेश्य महायुग्म द्वीन्द्रियों में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्म-राशि वाले द्वीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसका कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

कृष्णलेश्यी जीवों का ग्यारह उद्देशक-युक्त शतक भी इसी प्रकार है।

विशेष–इनकी लेश्या और संचिट्ठणा (कायस्थिति) कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के समान है।

इसी प्रकार नीललेश्यी द्वीन्द्रिय जीवों का ग्यारह उद्देशकयुक्त शतक कहना चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी द्वीन्द्रिय जीवों का ग्यारह उद्देशक युक्त शतक भी जानना चाहिए।

३०. भवसिद्धिय अभवसिद्धिय महाजुम्म वेइंदिएसु उववायाइ बत्तीसदाराणं परूवणं–

प. भवसिद्धिय-कडजुम्म कडजुम्मवेइंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,

तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

नो देवेहिंतो उववज्जंति।

भवसिद्धियसया वि चत्तारि तेणेव पुव्वगमएणं नेयव्वा,

णवरं–

प. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता भवसिद्धिय कडजुम्म कडजुम्म एगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे,

सेसं तहेव ओहियसयाणि चत्तारि।

–[illegible]

३०. भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक महायुग्मद्वीन्द्रियों में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! भवसिद्धिक-कृतयुग्मराशि वाले द्वीन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते,

तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,

मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं,

देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार पूर्वोक्त गमक के अनुसार भवसिद्धिक महायुग्मद्वीन्द्रिय जीवों के चारों शतक जानने चाहिए।

विशेष–

प्र. भंते ! सब प्राण यावत् सर्वसत्व भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेन्द्रिय के रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

शेष सब कथन चारों औधिकशतक के अनुसार जानना चाहिए।

संखेज्जवासाउय-असंखेज्जवासाउय-पज्जत्ता-अपज्जत्त-एसु य, न कओ वि पडिसेहो जाव अणुत्तरविमाणे त्ति।

२-४ परिमाणं अवहारो, ओगाहणा य जहा असन्नि-पंचेंदियाणं।

५. वेयणिज्जवज्जाणं सत्तण्हं पगडीणं बंधगा वा, अबंधगा वा,

वेयणिज्जस्स बंधगा, नो अबंधगा।

६. मोहणिज्जस्स वेयगा वा, अवेयगा वा।

सेसाणं सत्तण्ह वि वेयगा, नो अवेयगा।

सायावेयगा वा, असायावेयगा वा।

७. मोहणिज्जस्स उदई वा, अणुदई वा,

सेसाणं सत्तण्ह वि उदई, नो अणुदई।

८. नामस्स गोयस्स य उदीरगा, नो अणुदीरगा,

सेसाणं छण्ह वि उदीरगा वा, अणुदीरगा वा।

९. कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा।

१०. सम्मदिट्ठी वा, मिच्छादिट्ठी वा, सम्मामिच्छादिट्ठी वा।

११. णाणी वा, अण्णाणी वा।

१२. मणजोगी वा, वइजोगी वा, कायजोगी वा,

१३-१६. उवओगा, वण्णाइं, उस्सासगा, निस्सासगा आहारगा य जहा एगिंदियाणं।

१७. विरया वा, अविरया वा, विरयाविरया वा।

१८. सकिरिया, नो अकिरिया।

प. १९. ते णं भंते ! जीवा किं सत्तविहबंधगा, अट्ठविहबंधगा, छव्विहबंधगा, एगविहबंधगा?

उ. गोयमा ! सत्तविहबंधगा वा जाव एगविहबंधगा वा।

प. २०. ते णं भंते ! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता, नो सण्णोवउत्ता?

उ. गोयमा ! आहारसण्णोवउत्ता वा जाव नो सण्णोवउत्ता वा।

सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा।

२१. कोहकसाई वा जाव लोभकसाई वा, अकसाई वा,

२२. इत्थिवेयगा वा, पुरिसवेयगा वा, नपुंसगवेयगा वा, अवेयगा वा।

२३. इत्थिवेयबंधगा वा, पुरिसवेयबंधगा वा, नपुंसगवेयबंधगा वा, अबंधगा वा।

२४. [illegible]

२५. [illegible]

२६. [illegible]

[illegible]

वे संख्यातवर्षायु और असंख्यातवर्षायु वाले पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में से आकर उत्पन्न होते हैं। अनुत्तरविमान पर्यन्त किसी भी गति में आने जाने का निषेध नहीं है।

२-४ इनका परिमाण, अपहार और अवगाहना असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के समान है।

५. ये जीव वेदनीयकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियों के बन्धक या अबन्धक हैं और

वेदनीयकर्म के तो बन्धक ही हैं, अबन्धक नहीं हैं।

६. मोहनीयकर्म के वेदक या अवेदक हैं।

शेष सात कर्मप्रकृतियों के वेदक हैं, अवेदक नहीं हैं।

वे सातावेदक या असातावेदक हैं।

७. मोहनीयकर्म के उदयी या अनुदयी हैं।

शेष सात कर्मप्रकृतियों के उदयी हैं, अनुदयी नहीं है।

८. नाम और गोत्र कर्म के वे उदीरक हैं, अनुदीरक नहीं है।

शेष छह कर्मप्रकृतियों के उदीरक भी हैं और अनुदीरक भी हैं।

९. कृष्णलेश्या से शुक्ललेश्या पर्यन्त छहों लेश्याएं पाई जाती हैं।

१०. वे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं।

११. वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं।

१२. वे मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी हैं।

१३-१६. उनमें उपयोग, शरीर के वर्णादि चार, उच्छ्वास-निःश्वास और आहारक (अनाहारक) का कथन एकेन्द्रिय जीवों के समान है।

१७. वे विरत, अविरत या विरताविरत होते हैं।

१८. वे क्रियावान् हैं, अक्रियावान नहीं हैं।

प्र. १९. भंते ! वे जीव सप्तविध-कर्मबन्धक, अष्टविधकर्म-बन्धक, षड्विधकर्मबन्धक या एकविधकर्मबन्धक होते हैं?

उ. गौतम ! वे सप्तविधकर्मबन्धक भी होते हैं यावत् एकविध कर्मबन्धक भी होते हैं।

प्र. २०. भंते ! वे जीव क्या आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रह-संज्ञोपयुक्त या नो संज्ञोपयुक्त हैं?

उ. गौतम ! वे आहारसंज्ञोपयुक्त यावत् नो संज्ञोपयुक्त हैं।

इसी प्रकार सर्वत्र प्रश्नोत्तर करने चाहिए, यथा–

२१. वे क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी होते हैं और अकषायी भी होते हैं।

२२. वे स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक और अवेदक होते हैं।

२३. वे स्त्रीवेद बन्धक, पुरुषवेद बन्धक, नपुंसकवेद बन्धक या अबन्धक होते हैं।

२४. [illegible]

२५. [illegible]

२६. [illegible]

णवरं-बंधो, वेदो, उदई, उदीरणा, लेस्सा, बंधगा, सण्णा, कसाय, वेदबंधगा य एयाणि जहा बेइंदियाणं कण्हलेस्साणं।

वेदो तिविहो, अवेदगा नत्थि।

संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं,

उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

एवं ठिई वि।

णवरं-ठिईए अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं न भण्णति।

सेसं जहा एएसिं चेव पढमे उद्देसए जाव अणंतखुत्तो।

एवं सोलससु वि जुम्मेसु। *-विया. स. ४०, २/स. पं., उ. १*

प. पढमसमय-कण्हलेस्स-कडजुम्मकडजुम्म-सन्नि-पंचेंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा सन्नि-पंचेंदिय-पढमसमयुद्देसए तहेव निरवसेसं। णवरं-

प. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?

उ. हंता, गोयमा ! कण्हलेस्सा, सेसं तं चेव।

एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

एवं एए वि एक्कारस उद्देसगा कण्हलेस्सए।

पढम-तइय-पंचमा सरिसगमा।

सेसा अट्ठ वि सरिसगमा। *-विया. स. ४० २/स. पं., उ. २-११*

एवं नीललेस्सेसु वि सयं।

णवरं-संचिट्ठणा जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं,

एवं ठिई वि।

एवं तिसु उद्देसएसु।

विशेष-बन्ध, वेद, उदय, उदीरणा, लेश्या, बन्धक, संज्ञा, कषाय और वेदबंधक इन सभी का कथन कृष्णलेश्यी द्वीन्द्रिय जीवों के समान है।

इनमें तीनों वेद होते हैं, अवेदक नहीं होते।

उनकी संचिट्ठणा जघन्य एक समय,

उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की है।

उनकी स्थिति भी इसी प्रकार है।

विशेष-स्थिति में अन्तर्मुहूर्त अधिक नहीं कहना चाहिए।

शेष सब कथन इन्हीं के प्रथम उद्देशक के अनुसार अनन्त बार उत्पन्न होते हैं पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार सोलह युग्मों का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! प्रथमसमयोत्पन्न कृष्णलेश्यी कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! इनका समग्र कथन प्रथमसमयोत्पन्न संज्ञीपंचेन्द्रियों के उद्देशक के अनुसार करना चाहिए। विशेष-

प्र. भंते ! क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ?

उ. हां, गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले हैं। शेष कथन पूर्ववत् है।

इसी प्रकार सोलह ही युग्मों में कहना चाहिए।

इसी प्रकार कृष्णलेश्याशतक के ग्यारह उद्देशक जानने चाहिए।

प्रथम, तृतीय और पंचम ये तीनों उद्देशक एक समान हैं।

शेष आठ उद्देशक एक समान हैं।

नीललेश्या वाले संज्ञी पंचेन्द्रियों का शतक भी इसी प्रकार है।

विशेष-इनका संचिट्ठणाकाल जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम है।

स्थिति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

इसी प्रकार (पहले, तीसरे, पाँचवें) तीन उद्देशकों के विषय में जानना चाहिए।

एवं तिसु वि उद्देसएसु। सेसं तं चेव।

-विया. स. ४०, ५/स. पं., उ. १-११

जहा तेउलेस्सासयं तहा पम्हलेस्सासयं पि।

णवरं-संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं,

उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं,

एवं ठिई वि,

णवरं-अंतोमुहुत्तं न भण्णइ। सेसं तं चेव।

एवं एएसु पंचसु सएसु जहा कण्हलेस्सासए गमओ तहा नेयव्वो जाव अणंतखुत्तो।

-विया. स. ४०, ६/स. पं., उ. १-११

सुक्कलेस्ससयं जहा ओहियसयं,

णवरं-संचिट्ठणा ठिई य जहा कण्हलेस्सासए।

सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।

-विया. स. ४०, ७/स. पं., उ. १-११

३७. भवसिद्धियसन्निपंचेंदियमहाजुम्मसएसु उववायाइ बत्तीस-दाराणं परूवणं-

प. भवसिद्धिय-कडजुम्म-कडजुम्म-सन्नि-पंचेंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा पढमं सन्निसयं तहा नेयव्वं भवसिद्धियाभिलावेणं, णवरं-

प. भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता पुव्वोववन्ना ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

सेसं तं चेव। *-विया. स. ४०, ८/स. पं., उ. १-११*

प. कण्हलेस्स-भवसिद्धिय-कडजुम्म-कडजुम्म-सन्नि-पंचेंदिया-णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहियकण्हलेस्ससयं। *-विया. स. ४०, ९/स.पं., उ. १-११*

एवं नीललेस्स भवसिद्धिएहि वि सयं।

-विया. स. ४०, १०/स. पं., उ. १-११

एवं जहा ओहियाणि सन्नि-पंचेंदियाणं सत्तसयाणि भणियाणि एवं भवसिद्धिएहि वि सत्त सयाणि कायव्वाणि,

णवरं-सत्तसु वि सएसु

प. भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता पुव्वोववन्ना ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे। सेसं तं चेव।

-विया. स. ४०, ११-१४/स. पं., उ. १-११

३८. अभवसिद्धिय सन्निपंचेंदिय महाजुम्मसएसु उववायाइ बत्तीसदाराणं परूवणं-

प. अभवसिद्धिय-कडजुम्म-कडजुम्म-सन्नि-पंचेंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

इसी प्रकार तीनों उद्देशकों के विषय में समझना चाहिए। शेष कथन पूर्ववत् है।

जिस प्रकार तेजोलेश्याशतक का कथन किया उसी प्रकार पद्मलेश्या का कथन करना चाहिए।

विशेष-संचिट्ठणाकाल जघन्य एक समय,

उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है।

स्थिति भी इतनी ही है,

विशेष-इसमें अन्तर्मुहूर्त नहीं समझना चाहिए। शेष कथन पूर्ववत् है।

इस प्रकार इन पांचों शतकों में कृष्णलेश्या शतक के समान अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं पर्यन्त आलापक जानने चाहिए।

शुक्ललेश्याशतक भी औधिक शतक के समान है।

विशेष-इनका संचिट्ठणाकाल और स्थिति कृष्णलेश्या शतक के समान है।

शेष सब कथन पूर्ववत् पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त करना चाहिए।

३७. भवसिद्धिक संज्ञी पंचेन्द्रिय महायुग्म शतक में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! भवसिद्धिक आलापक के साथ प्रथम संज्ञीशतक के अनुसार यह शतक जानना चाहिए। विशेष-

प्र. भंते ! क्या सर्व प्राण यावत् सर्व सत्व यहाँ पहले उत्पन्न हुए हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी-भवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले संज्ञीपंचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! कृष्णलेश्यी औधिकशतक के अनुसार इसी अभिलाप से यह शतक कहना चाहिए।

नीललेश्यी भवसिद्धिकशतक भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

जिस प्रकार संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवों के सात औधिकशतक कहे हैं, उसी प्रकार भवसिद्धिक के भी सातों शतक कहने चाहिए।

विशेष-सातों शतकों में (यह प्रश्न करना चाहिए)

प्र. भंते ! सर्व प्राण यावत् सर्व सत्व यहाँ पूर्व में उत्पन्न हुए हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। शेष कथन पूर्ववत् है।

३८. अभवसिद्धिक संज्ञी पंचेन्द्रिय महायुग्म शतक में उत्पातादि बत्तीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! अभवसिद्धिक-कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! उववाओ तहेव अणुत्तरविमाणवज्जो।

परिमाणं, अवहारो, उच्चत्तं, बंधो, वेदो, वेदणं, उदयी, उदीरणा य जहा कण्हलेस्ससए।

कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा।

नो सम्मद्दिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

नो नाणी, अन्नाणी।

एवं जहा कण्हलेस्ससए,

णवरं–नो विरया, अविरया, नो विरयाविरया।

संचिट्ठणा, ठिई य जहा ओहियुद्देसए।

समुग्घाया आइल्लगा पंच।

उव्वट्टणा तहेव अणुत्तरविमाणवज्जं।

प. भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता पुव्वोववन्ना ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे,

सेसं जहा कण्हलेस्ससए जाव अणंतखुत्तो।

एवं सोलससु वि जुम्मेसु।

प. पढमसमय-अभवसिद्धिय कडजुम्म-कडजुम्म-सन्नि पंचेंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा सन्नीणं पढमसमयउद्देसए तहेव,

णवरं–सम्मत्तं, सम्मामिच्छत्तं, नाणं य सव्वत्थ नत्थि।

सेसं तहेव।

एवं एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा कायव्वा.

उ. गौतम ! अनुत्तरविमानों को छोड़कर शेष सभी स्थानों में पूर्ववत् उपपात जानना चाहिए।

इनका परिमाण, अपहार, ऊँचाई, बन्ध, वेद, वेदन, उदय और उदीरणा कृष्णलेश्या शतक के समान है।

वे कृष्णलेश्यी से शुक्ललेश्यी पर्यन्त छहों लेश्या वाले होते हैं।

वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते, केवल मिथ्यादृष्टि होते हैं।

वे ज्ञानी नहीं होते, अज्ञानी होते हैं।

इसी प्रकार सब कृष्णलेश्यी शतक के समान है।

विशेष–वे विरत और विरताविरत नहीं होते, किन्तु अविरत होते हैं।

इनका संचिट्ठणाकाल और स्थिति औधिक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

इनमें आदि के पाँच समुद्घात पाये जाते हैं।

अनुत्तरविमानों को छोड़कर पूर्ववत् उद्वर्तना जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्व पूर्व में उत्पन्न हुए हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

शेष कृष्णलेश्या शतक के समान अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार सोलह ही युग्मों के लिए जानना चाहिए।

प्र. भंते ! प्रथमसमयोत्पन्न अभवसिद्धिक कृतयुग्म-कृतयुग्मराशि वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! प्रथम समय के संज्ञी उद्देशक के अनुसार सर्व जानना चाहिए,

विशेष–सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और ज्ञान सर्वत्र नहीं होता।

शेष कथन पूर्ववत् है।

इसी प्रकार इस शतक में भी ग्यारह उद्देशक कहने चाहिए।

निरंतरं उववज्जमाणा जहण्णेणं दो समया, उक्कोसेणं असंखेज्जा समया अणुसमयं अविरहियं निरंतरं उववज्जंति।

प. ते णं भंते ! जीवा जं समयं कडजुम्मा तं समयं तेओया ?

जं समयं तेओया तं समयं कडजुम्मा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. जं समयं कडजुम्मा तं समयं दावरजुम्मा, जं समयं दावरजुम्मा तं समयं कडजुम्मा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. जं समयं कडजुम्मा तं समयं कलिओया, जं समयं कलिओया तं समयं कडजुम्मा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ते णं भंते ! जीवा कहं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे अज्झवसाण निव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं ठाणं विप्पजहित्ता पुरिमं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, एवामेव ते वि जीवा पवओविव पवमाणा अज्झवसाणं निव्वत्तिएणं करणोवाएणं सेयकाले तं भवं विप्पजहित्ता पुरिमं भवं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति ताव आयप्पओगेणं उववज्जंति, नो परप्पओगेणं उववज्जंति।

प. ते णं भंते ! जीवा किं आयजसेणं उववज्जंति, अजसेणं उववज्जंति ?

निरन्तर उत्पन्न होने पर जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असंख्यात समय तक निरन्तर प्रतिसमय अविरहितरूप में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव जिस समय कृतयुग्मराशि वाले होते हैं, क्या उसी समय त्र्योज राशि वाले होते हैं ?

जिस समय त्र्योज राशि वाले होते हैं, क्या उसी समय कृतयुग्मराशि वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! वे जिस समय कृतयुग्म वाले होते हैं, क्या उसी समय द्वापरयुग्म वाले होते हैं, जिस समय वे द्वापरयुग्म वाले होते हैं, क्या उसी समय कृतयुग्म वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! जिस समय वे कृतयुग्म वाले होते हैं, क्या उसी समय कल्योज होते हैं, जिस समय कल्योज वाले होते हैं, क्या उसी समय कृतयुग्मराशि वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! वे जीव (नैरयिक) कैसे उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला पुरुष कूदता हुआ अध्यवसाय निष्पन्न क्रिया साधन द्वारा अपने पूर्वस्थान को छोड़कर भविष्यत्काल में आगे के स्थान को प्राप्त करता है, वैसे ही ये जीव भी कूदने वाले की तरह कूदते हुए अध्यवसाय निष्पन्न क्रिया साधन (कर्मों) द्वारा पूर्वभव को छोड़कर आगामी भव को प्राप्त कर उत्पन्न होते हैं। वे आत्मप्रयोग से उत्पन्न होते हैं परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव आत्मयश (आत्म संयम) से उत्पन्न होते हैं या आत्मअयश (आत्म असंयम) से उत्पन्न होते हैं ?

दं. ३-२०. एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया,

णवरं-वणस्सइकाइया जाव असंखेज्जा वा, अणंता वा उववज्जंति।

सेसं तं चेव।

दं. २१. मणुस्सा वि एवं चेव जाव नो आयजसेणं उववज्जंति, आयअजसेणं उववज्जंति।

प. जइ आयअजसेणं उववज्जंति किं आयजसं उवजीवंति, आयअजसं उवजीवंति?

उ. गोयमा ! आयजसं पि उवजीवंति, आयअजसं पि उवजीवंति।

प. जइ आयजसं उवजीवंति किं सलेस्सा, अलेस्सा?

उ. गोयमा ! सलेस्सा वि, अलेस्सा वि।

प. जइ अलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया?

उ. गोयमा ! नो सकिरिया, अकिरिया।

प. जइ अकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति?

उ. हंता, गोयमा ! सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

प. जइ सलेस्सा किं सकिरिया, अकिरिया?

उ. गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया।

प. जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति, अत्थेगइया नो तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव नो सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

प. जइ आयअजसं उवजीवंति किं सलेस्सा, अलेस्सा?

उ. गोयमा ! सलेस्सा, नो अलेस्सा।

प. जइ सलेस्सा किं सकिरिया अकिरिया?

उ. गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया।

प. जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया। *-विया. स. ४१, उ. १, सु. २-११*

दं. ३-२०. इसी प्रकार पंचेंद्रियतिर्यञ्चयोनिक पर्यन्त सारा कथन करना चाहिए,

विशेष-वनस्पतिकायिक जीव यावत् असंख्यात या अनन्त उत्पन्न होते हैं,

शेष सब कथन पूर्व के समान है।

दं. २१. मनुष्यों का कथन भी इसी प्रकार वे आत्म-यश से उत्पन्न नहीं होते, किन्तु आत्म-अयश से उत्पन्न होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. यदि वे (मनुष्य) आत्म-अयश से उत्पन्न होते हैं तो क्या आत्म-यश से जीवन-निर्वाह करते हैं या आत्म-अयश से जीवन निर्वाह करते हैं?

उ. गौतम ! आत्म-यश से भी जीवन निर्वाह करते हैं और आत्म-अयश से भी जीवन निर्वाह करते हैं।

प्र. यदि वे आत्मयश से जीवन निर्वाह करते हैं तो सलेश्यी होते हैं या अलेश्यी होते हैं?

उ. गौतम ! वे सलेश्यी भी होते हैं और अलेश्यी भी होते हैं।

प्र. यदि वे अलेश्यी होते हैं तो सक्रिय होते हैं या अक्रिय होते हैं?

उ. गौतम ! वे सक्रिय नहीं होते, किन्तु अक्रिय होते हैं।

प्र. यदि वे अक्रिय होते हैं तो क्या उसी भव को ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं?

उ. हां, गौतम ! वे उसी भव में सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

प्र. यदि वे सलेश्यी हैं तो सक्रिय होते हैं या अक्रिय होते हैं?

उ. गौतम ! वे सक्रिय होते हैं, अक्रिय नहीं होते हैं।

प्र. यदि वे सक्रिय होते हैं तो क्या उसी भव को ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं?

उ. गौतम ! कितने ही (मनुष्य) उसी भव में सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं। कितने ही मनुष्य उसी भव में सिद्ध नहीं होते यावत् सर्व दुःखों का अन्त नहीं करते हैं।

प्र. यदि वे आत्म-अयश से जीवन निर्वाह करते हैं तो वे सलेश्यी होते हैं या अलेश्यी होते हैं?

उ. गौतम ! वे सलेश्यी होते हैं, अलेश्यी नहीं होते हैं।

प्र. यदि वे सलेश्यी होते हैं तो क्या सक्रिय होते हैं या अक्रिय होते हैं?

उ. गौतम ! वे सक्रिय होते हैं, अक्रिय नहीं होते हैं।

प्र. यदि वे सक्रिय होते हैं तो क्या उसी भव से सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन नैरयिकों के समान है।

४१. रासीजुम्मतेएसु चउवीसदंडएसु उववायाइ परूवणं-

प. दं. १. रासीजुम्मतेओय-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

४१. राशि युग्म-त्र्योजराशि वाले चौवीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण-

प्र. दं. १. भंते ! राशियुग्म-त्र्योजराशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ जहा वक्कंतिए।

णवरं–परिमाणं–तिण्णि वा, सत्त वा, एक्कारस वा, पन्नरस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति। संतरं तहेव।

प. ते णं भंते ! जीवा जं समयं तेओया तं समयं कडजुम्मा,

जं समयं कडजुम्मा तं समयं तेओया?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. ते णं भंते ! जीवा जं समयं तेओया तं समयं दावरजुम्मा,

जं समयं दावरजुम्मा तं समयं तेओया?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं कलिओएण वि समं।

दं. २-२४. सेसं तं चेव जाव वेमाणिया,

णवरं–उववाओ सव्वेसिं जहा वक्कंतिए।

–विया. स. ४१, उ. २, सु. १-३

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसका उपपात व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष–परिमाण तीन, सात, ग्यारह, पन्द्रह संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

सान्तर निरंतर का कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! वे जीव जिस समय त्र्योजराशि वाले होते हैं, क्या उस समय कृतयुग्मराशि वाले होते हैं।

जिस समय कृतयुग्म राशि वाले होते हैं, क्या उस समय त्र्योजराशि वाले होते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! जिस समय वे जीव त्र्योजराशि वाले होते हैं, क्या उस समय द्वापरयुग्मराशि वाले होते हैं,

जिस समय वे द्वापरयुग्मराशि वाले होते हैं, क्या उस समय वे त्र्योजराशि वाले होते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

कल्योजराशि के साथ कृतयुग्मादिराशि का कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

दं. २-२४. शेष सब कथन पूर्ववत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–सभी का उपपात व्युत्क्रान्तिपद के अनुसार जानना चाहिए।

४२. रासीजुम्मदावरजुम्मेसु चउवीसदंडएसु उववायाइ परूवणं–

प. दं. १. रासीजुम्म-दावरजुम्म-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ जहा वक्कंतिए।

णवरं–परिमाणं दो वा, छ वा, दस वा, संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

प. ते णं भंते ! जीवा जं समयं दावरजुम्मा तं समयं कडजुम्मा, जं समयं कडजुम्मा तं समयं दावरजुम्मा?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं तेयोएण वि समं।

एवं कलिओएण वि समं।

दं. २-२४. सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया।

–विया. स. ४१, उ. ३, सु. १-३

४२. राशियुग्म-द्वापरयुग्म वाले चौवीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! राशियुग्म द्वापरयुग्मराशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनका उपपात व्युत्क्रान्ति पद के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष–परिमाण दो, छह, दस, संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव जिस समय द्वापरयुग्म होते हैं, क्या उस समय कृतयुग्म वाले होते हैं? जिस समय कृतयुग्म वाले होते हैं, क्या उस समय द्वापरयुग्म वाले होते हैं?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार त्र्योजराशि वालों के साथ भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार कल्योजराशि वालों के साथ भी जानना चाहिए।

दं. २-२४. शेष सब कथन वैमानिकों पर्यन्त प्रथम उद्देशक के समान है।

४३. रासीजुम्मकलिओएसु चउवीसदंडएसु उववायाइ परूवणं–

प. दं. १. जइ रासीजुम्म-कलिओय-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

४३. राशियुग्म-कल्योज राशि वाले चौवीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! राशियुग्म-कल्योजराशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

सेसं तं चेव। –विया. स. ४१, उ. ९-१२, सु. १

काउलेस्से वि एवं चेव चत्तारि उद्देसगा कायव्वा,

णवरं–नेरइयाणं उववाओ जहा रयणप्पभाए।

सेसं तं चेव। –विया. स. ४१, उ. १३-१६, सु. १

प. तेउलेस्सरासीजुम्म-कडजुम्म-असुरकुमारा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

णवरं–जेसु तेउलेस्सा अत्थि तेसु भाणियव्वं।

एवं एए वि कण्हलेस्ससरिसा चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। –विया. स. ४१, उ. १७-२०, सु. १

एवं पम्हलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

पंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं, मणुस्साणं, वेमाणियाण य एएसिं पम्हलेस्सा, सेसाणं नत्थि। –विया. स. ४१, उ. २१-२४, सु. १

जहा पम्हलेस्साए एवं सुक्कलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा,

णवरं–मणुस्साणं गमओ जहा ओहिय उद्देसएसु, सेसं तं चेव।

एवं एए छसु लेस्सासु चउवीसं उद्देसगा भवंति।

ओहिया चत्तारि।

सव्वेए अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति। –विया. स. ४१, उ. २५-२८, सु. १-२

४५. भवसिद्धीय रासीजुम्म कडजुम्माइ चउवीसदंडएसु उववायाइ परूवणं–

प. भवसिद्धीय-रासीजुम्म-कडजुम्म-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा ओहिया पढमगा चत्तारि उद्देसगा तहेव निरवसेसं एए वि चत्तारि उद्देसगा।

प. कण्हलेस्स-भवसिद्धीय-रासीजुम्म-कडजुम्म-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा कण्हलेस्साए चत्तारि उद्देसगा तहा इमे वि भवसिद्धीय कण्हलेस्सेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

एवं नीललेस्सभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा।

एवं काउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।

तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा।

पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा।

सुक्कलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

इसी प्रकार कापोतलेश्या के भी चार उद्देशक कहने चाहिए।

विशेष–नैरयिकों का उपपात रत्नप्रभापृथ्वी के समान जानना चाहिए।

शेष कथन पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! तेजोलेश्या वाले राशियुग्म-कृतयुग्मरूप असुरकुमार कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसका कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

विशेष–जिनमें तेजोलेश्या हो, उन्हीं के लिए जानना चाहिए।

इस प्रकार इसके भी कृष्णलेश्या सदृश चार उद्देशक कहने चाहिए।

इसी प्रकार पद्मलेश्या के भी चार उद्देशक जानने चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और वैमानिकों में पद्मलेश्या होती है, शेष में नहीं होती है।

जिस प्रकार पद्मलेश्या के चार उद्देशक कहे उसी प्रकार शुक्ललेश्या के भी चार उद्देशक जानने चाहिए।

विशेष–मनुष्यों के लिए औधिक उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए। शेष सब कथन पूर्ववत् है।

इस प्रकार इन छहों लेश्याओं के चौबीस उद्देशक होते हैं।

चार औधिक उद्देशक हैं।

ये सभी मिलकर अट्ठाईस उद्देशक होते हैं।

४५. भवसिद्धिक राशियुग्म कृतयुग्मादि वाले चौबीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! भवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मराशि वाले नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार औधिक चार उद्देशक कहे उसी अनुसार इनके भी सम्पूर्ण चारों उद्देशक जानने चाहिए।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मराशि वाले नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार कृष्णलेश्या के चार उद्देशक कहे हैं, उसी प्रकार भवसिद्धिक कृष्णलेश्यी जीवों के भी चार उद्देशक कहने चाहिए।

इसी प्रकार नीललेश्यी भवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक कहने चाहिए।

इसी प्रकार कापोतलेश्यी भवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक कहने चाहिए।

तेजोलेश्यी भवसिद्धिक जीवों के भी औधिक के समान चार उद्देशक जानने चाहिए।

पद्मलेश्यी भवसिद्धिक जीवों के भी चार उद्देशक जानने चाहिए।

शुक्ललेश्यी भवसिद्धिक जीवों के भी औधिक के समान चार उद्देशक कहने चाहिए।

उ. गोयमा ! एवं एत्थ वि मिच्छद्दिट्ठिअभिलावेणं अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा।

-विया. स. ४१, उ. ११३-१४०, सु. १

४८. कण्हपक्खिए सुक्कपक्खिए रासीजुम्म कडजुम्माइ चउवीसदंडएसु उववायाइ परूवणं—

प. कण्हपक्खिय-रासीजुम्म-कडजुम्म-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं एत्थ वि अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा। *-विया. स. ४१, उ. १४१-१६८, सु. १*

प. सुक्कपक्खिय-रासीजुम्म-कडजुम्म-नेरइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,

उ. गोयमा ! एवं एत्थ वि भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति।

एवं एए सव्वे वि छण्णउयं उद्देसगं भवइ रासीजुम्मसय जाव सुक्कलेस्ससुक्कपक्खिय-रासीजुम्म-कडजुम्म-कलियोग वेमाणिया जाव जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति,

नो इणट्ठे समट्ठे। *-विया. स. ४१, उ. १६९-१९६, सु. १-२*

□

उ. गौतम ! मिथ्यादृष्टि के अभिलाप से यहां भी अभवसिद्धिक उद्देशकों के समान अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए।

४८. कृष्णपाक्षिक-शुक्लपाक्षिक राशियुग्म कृतयुग्मादि वाले चौवीस दंडकों में उत्पातादि का प्ररूपण—

प्र. भंते ! कृष्णपाक्षिक-राशियुग्म-कृतयुग्मराशि वाले नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! यहां भी अभवसिद्धिक-उद्देशकों के समान अट्ठाईस उद्देशक कहने चाहिए।

प्र. भंते ! शुक्लपाक्षिक-राशियुग्म-कृतयुग्मराशि-विशिष्ट नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! यहाँ भी भवसिद्धिक उद्देशकों के समान अट्ठाईस उद्देशक होते हैं।

इस प्रकार राशियुग्मशतक के शुक्ललेश्यी शुक्लपाक्षिक राशियुग्म-कृतयुग्म-कल्योजराशि वाले वैमानिक यदि सक्रिय हैं तो क्या उस भव को ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं,

यह अर्थ समर्थ नहीं है पर्यन्त एक सौ छिनवें (१९६) उद्देशक होते हैं।

□

गम्मा अध्ययन : आमुख

यह एक विशिष्ट अध्ययन है जिसमें २४ दण्डकों के जीवों के पारस्परिक गमनागमन (गति-आगति) के आधार पर उत्पाद आदि २० द्वारों का वर्णन है। यह अध्ययन मुख्यतः व्याख्या प्रज्ञप्ति के २४वें शतक पर आधारित है। इस अध्ययन को समझने में गति, व्युत्क्रान्ति, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, कषाय, इन्द्रिय, समुद्घात, वेद आदि अध्ययन सहायक हैं। अतः पाठक इस अध्ययन के विषय को समझने के लिए उपर्युक्त अध्ययनों की विषय-सामग्री का आलम्बन ले सकते हैं।

चौबीस दण्डक हैं–नैरयिकों का एक, दस भवनवासी देवों के १०, पाँच स्थावरों के ५, विकलेन्द्रियों के ३, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का एक, मनुष्य का एक, वाणव्यन्तर देवों का एक, ज्योतिष्क देवों का एक एवं वैमानिक देवों का एक। इन चौबीस दण्डकों में परस्पर गति-आगति अथवा व्युत्क्रान्ति के आधार पर क्रमशः निम्नाङ्कित २० द्वारों से निरूपण ही इस अध्ययन का प्रमुख प्रतिपाद्य है। २० द्वार हैं–१. उपपात, २. परिमाण (संख्या), ३. संहनन, ४. उच्चत्व (अवगाहना), ५. संस्थान, ६. लेश्या, ७. दृष्टि, ८. ज्ञान-अज्ञान, ९. योग, १०. उपयोग, ११. संज्ञा, १२. कषाय, १३. इन्द्रिय, १४. समुद्घात, १५. वेदना, १६. वेद, १७. आयुष्य, १८. अध्यवसाय, १९. अनुवन्ध और २०. कायसंवेध।

उपपात द्वार के अन्तर्गत यह विचार किया गया है कि अमुक दण्डक का जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होता है ? परिमाण द्वार में उनकी उत्पत्ति की संख्या के सन्दर्भ में विचार किया गया है। संहनन द्वार के अन्तर्गत अमुक दण्डक में उत्पन्न होने वाले (किन्तु अधुना यावत् अनुत्पन्न) जीव के संहननों की चर्चा है। उच्चत्व द्वार में वर्तमान भव की अवगाहना का वर्णन किया गया है। संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान-अज्ञान, योग, उपयोग, संज्ञा, कषाय, इन्द्रिय एवं समुद्घात द्वारों में भी उत्पद्यमान जीव में इनकी सम्बद्ध प्ररूपणा है। वेदना द्वार में साता एवं असाता वेदना का तथा वेद द्वार में स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसकवेद का विचार किया गया है। आयुष्य द्वार के अन्तर्गत 'स्थिति' की चर्चा है। अध्यवसाय दो प्रकार के होते हैं–प्रशस्त एवं अप्रशस्त। जो जीव जिस दण्डक में उत्पन्न होने वाला होता है उसके अनुसार ही उसके प्रशस्त (शुभ) या अप्रशस्त (अशुभ) अध्यवसाय (भाव) पाए जाते हैं। अनुबन्ध एवं कायसंवेध ये दो द्वार इस अध्ययन में सर्वथा विशिष्ट प्रतीत होते हैं। अनुवंध का तात्पर्य है विवक्षित पर्याय का अविच्छिन्न (निरन्तर) वने रहना तथा कायसंवेध का तात्पर्य है वर्ण्यमान काय से दूसरी काय में या तुल्यकाय में जाकर पुनः उसी काय में लौटना। कायसंवेध द्वार का विचार भवादेश एवं कालादेश की अपेक्षा दो प्रकार का है।

उपर्युक्त २० द्वारों के माध्यम से प्रत्येक दण्डक के विविध प्रकार के जीवों की जो जानकारी इस अध्ययन में संकल्पित है वह अत्यन्त सूक्ष्म एवं युक्तिसंगत है। इस अध्ययन का अनुशीलन करने से तत्त्वज्ञों की अनेक गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं। क्योंकि इसमें जो प्रतिपादन है वह विस्तृत होने के कारण सूक्ष्मता एवं गहराई तक ले जाता है।

प्रारम्भ में गति की अपेक्षा नैरयिकों के उपपात का वर्णन है जिससे यह स्पष्ट होता है कि नरक में तिर्यञ्च एवं मनुष्य गति के ही जीव आकर उत्पन्न होते हैं, नैरयिक एवं देवों के नहीं। तिर्यञ्च में भी पंचेन्द्रिय के असंज्ञी तथा संज्ञी के पर्याप्तक जीव ही नरक में उत्पन्न होते हैं। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा से तमःप्रभा पर्यन्त एवं अधःसप्तम नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी संख्यात वर्षायुष्क पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों का उपपात आदि २० द्वारों में विस्तृत निरूपण है। इसी प्रकार इन नरकों में पर्याप्त संज्ञी संख्यात वर्षायुष्क मनुष्यों का २० द्वारों से वर्णन है।

इसी प्रकार असुरकुमार, नागकुमार एवं अन्य भवनवासी देवों में उत्पद्यमान पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों, संख्यात एवं असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों, संख्यात एवं असंख्यात वर्षायुष्क मनुष्यों का भी २० द्वारों से निरूपण है। पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले २३ दण्डकों (नरक को छोड़कर) तथा अप्काय एवं वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने वाले २३ दण्डकों (नरक को छोड़कर) तथा अप्काय एवं वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने वाले २३ दण्डकों का भी २० द्वारों से निरूपण हुआ है। तेजस्काय एवं वायुकाय में उत्पद्यमान औदारिक के १० दण्डकों (५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य) का भी उपपात आदि द्वारों से निरूपण उपलब्ध है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय में भी औदारिक के १० दण्डकों के जीव ही उत्पन्न होते हैं। इनका भी इसी प्रकार बीस द्वारों से सूक्ष्म वर्णन हुआ है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में २४ ही दण्डक के जीव उत्पन्न होते हैं, किन्तु वैमानिकों में सहस्रार देवलोक (आठवें) तक के देव ही तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होते हैं। इन सबका भी उपपात आदि २० द्वारों से विचार हुआ है। मनुष्य के दण्डक में उत्पन्न होने वाले २२ दण्डकों (तेजस् एवं वायुकाय को छोड़कर) का उन्हीं २० द्वारों से निरूपण महत्त्वपूर्ण है। रत्नप्रभा से तमःप्रभा पृथ्वी पर्यन्त के नैरयिकों, तिर्यञ्चयोनिकों एवं मनुष्यों, कल्पोपन्नक वैमानिक पर्यन्त देवों एवं कल्पातीत वैमानिक देवों की मनुष्य में उत्पत्ति बतलायी गयी है। सातवीं नरक के नैरयिक मनुष्य के रूप में उत्पन्न नहीं होते हैं।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवों के दण्डकों में उत्पद्यमान तिर्यञ्च एवं मनुष्यों का भी उत्पाद आदि द्वारों के माध्यम से निरूपण हुआ है। वैमानिकों के अन्तर्गत सौधर्म देवों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों एवं मनुष्यों का पृथक्तया वर्णन है तथा ईशान से सहस्रार पर्यन्त उत्पद्यमान तिर्यञ्चयोनिकों एवं मनुष्यों का एक साथ वर्णन है। आनत से अच्युत तक तथा कल्पातीत देवों (नवग्रैवेयक एवं अनुत्तरविमान) में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का २० द्वारों से पृथक्रूपेण वर्णन है।

इस अध्ययन में निरूपित वर्णन विभिन्न दण्डकों के जीवों की विशेषताओं को अभिव्यक्त करने के साथ उनकी अन्यत्र होने वाली उत्पत्ति से सम्बद्ध विशेषताओं को भी प्रदर्शित करता है। इससे जीवों की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान होता है। २० द्वारों के निरूपण में यत्र-तत्र नौ गमकों का भी प्रयोग हुआ है। ये नौ गमक ओघ, जघन्य एवं मध्यम स्थितियों के कारण बने हैं।

जो तत्त्वजिज्ञासु इस अध्ययन में वर्णित विषय-सामग्री के सम्बन्ध में अधिक जानना चाहें वे भगवती सूत्र के चौबीसवें शतक की टीका या वृत्ति का अनुशीलन करें तो उपयुक्त रहेगा।

□□

४१. गम्माऽज्झयणं

सूत्र

१. चउवीसदंडएसु चउवीसुद्देसगेसु य उववायाइ वीस-दाराणं दार गाहाओ–

१. उववाय, २. परिमाणं, ३-४. संघयणुच्चत्तमेव,
५. संठाणं, ६. लेस्सा, ७. दिट्ठि
८. नाणे-अन्नाणे, ९. जोगे, १०. उवओगे ॥१॥
११. सण्णा, १२. कसाय, १३. इंदिय,
१४. समुग्घाए, १५. वेदणा य, १६. वेदे य,
१७. आउं, १८. अज्झवसाणा, १९. अणुबंधो,
२०. कायसंवेहो। ॥२॥

जीव पए जीव पए जीवाणं, दंडगम्मि उद्देसो।
चउवीसइमम्मि सए, चउवीसं होंति उद्देसा ॥ ३ ॥

–विया. स. २४, उ. १, गा. १-३

२. गइं पडुच्च नेरइए उववाय परूवणं–

प. नेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति?
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?
मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?
देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति,
तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति,
नो देवेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते! जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं–

१. एगिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
२. बेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
३. तेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
४. चउरिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
५. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! १. नो एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
२. नो बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
३. नो तेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
४. नो चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
५. पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. भंते! जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, किं–
सण्णिपचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?
असण्णिपचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

४१. गम्मा अध्ययन

सूत्र

१. चौवीस दण्डकों के चौवीस उद्देशकों में उपपातादि बीस द्वारों की द्वार गाथायें –

१. उपपात, २. परिमाण, ३. संहनन, ४. उच्चत्व,
५. संस्थान, ६. लेश्या, ७. दृष्टि,
८. ज्ञान-अज्ञान, ९. योग, १०. उपयोग,
११. संज्ञा, १२. कषाय, १३. इन्द्रिय,
१४. समुद्घात, १५. वेदना, १६. वेद,
१७. आयुष्य, १८. अध्यवसाय, १९. अनुबन्ध,
२०. कायसंवेध। (ये बीस द्वार हैं।)

प्रत्येक दंडक के जीवों का कथन करने वाला एक-एक उद्देशक है। इसलिए चौवीसवें शतक के ये चौवीस उद्देशक हैं।

२. गति की अपेक्षा नैरयिकों के उपपात का प्ररूपण–

प्र. भंते! नैरयिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?
क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं,
देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
मनुष्यों से आकर भी उत्पन्न होते हैं,
देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते! यदि (नैरयिक जीव) तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या–

१. वे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
२. द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
३. त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
४. चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
५. या पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! १. वे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
२. द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
३. त्रीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
४. चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं,
५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,

प्र. भंते! यदि वे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या–
संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या
असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा! सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति,
असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. भंते! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,
किं जलचरेहिंतो उववज्जंति?
थलचरेहिंतो उववज्जंति,
खहचरेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! जलचरेहिंतो वि उववज्जंति,
थलचरेहिंतो वि उववज्जंति,
खहचरेहिंतो वि उववज्जंति।

प. भंते! जइ जलचर-थलचर-खहचरेहिंतो उववज्जंति,
किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?
अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

–विया. स. २४, उ. १, सु. ३ (१–५)

३. नरय उववज्जंतेसु पज्जत्त असन्नि पंचेंदिय तिरिक्खजोणिएसु उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. १. पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! कतिसु पुढवीसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! एगाए रयणप्पभाए पुढवीए उववज्जेज्जा।

प. पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते! केवइकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. २. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

प. ३. तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरगा किं संघयणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! छेवट्ठसंघयणा पण्णत्ता।

प. ४. तेसि णं भंते! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स अंसखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

प. ५. तेसि णं भंते! जीवाणं सरीरगा किं संठिया पण्णत्ता?

उ. गोयमा! हुंडसंठाणसंठिया पण्णत्ता।

प. ६. तेसि णं भंते! जीवाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा! तिण्णि लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा, २. नीललेस्सा, ३. काउलेस्सा।

उ. गौतम! वे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं,
असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते! यदि वे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
तो क्या जलचरों से आकर उत्पन्न होते हैं?
स्थलचरों से आकर उत्पन्न होते हैं,
या खेचरों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे जलचरों से भी आकर उत्पन्न होते हैं,
स्थलचरों से भी आकर उत्पन्न होते हैं,
खेचरों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते! यदि वे जलचर, स्थलचर और खेचर जीवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं,
अपर्याप्तकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

३. नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. १. भंते! पर्याप्त-असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव जो नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितनी नरक-पृथ्वियों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह एक रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते! पर्याप्त-असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले (नैरयिकों) में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले (नैरयिकों) में उत्पन्न होता है।

प्र. २. भंते! वे (पर्याप्त-असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी में) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे (एक समय में) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

प्र. ३. भंते! उन जीवों के शरीर किस संहनन वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम! वे सेवार्तसंहनन वाले कहे गए हैं।

प्र. ४. भंते! उन जीवों के शरीरों की अवगाहना कितनी ऊँची कही गई है?

उ. गौतम! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक हजार योजन की कही गई है।

प्र. ५. भंते! उन जीवों के शरीरों का संस्थान कौनसा कहा गया है?

उ. गौतम! उनका हुण्डसंस्थान कहा गया है।

प्र. ६. भंते! उन जीवों के कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम! उनके तीन लेश्याएं कही गई हैं यथा–
१. कृष्ण लेश्या, २. नील लेश्या, ३. कापोत लेश्या।

प. १९. से णं भंते! पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

प. २०. से णं भंते! पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइए, पुणरवि पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए त्ति केवइयं कालं सेवेज्जा? केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइँ, कालादेसेणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडिमब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

प. १. पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए जहण्णकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. २. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

३-१९. एवं सच्चेवपढमगमगवत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा जाव अणुबंधो त्ति।

प. २०. से णं भंते! पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णकालट्ठिईयरयणप्पभापुढविनेरइए, पुणरवि पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए त्ति केवइय कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (२ बिइओ गमओ)

प. १. पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. २. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

प्र. १९. भंते! वे जीव पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक में कितने काल तक रहते हैं?

उ. गौतम! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट पूर्वकोटि तक (उस अवस्था में) रहते हैं।

प्र. २०. भंते! वह पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के रूप में उत्पन्न हो तो कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गति-आगति (गमनागमन) करता है?

उ. गौतम! वह भवादेश से दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन भी करता है। (यह प्रथम गमक है)

प्र. १. भंते! जो पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जघन्यकाल स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वे जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. २. भंते! वे रत्नप्रभापृथ्वी में (असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

३-१९. इसी प्रकार अनुबन्ध पर्यन्त समग्र कथन प्रथम गमक के समान कहना चाहिए।

प्र. २०. भंते! वह पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जघन्य काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के रूप में उत्पन्न हो तो कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गति-आगति (गमनागमन) करता है?

उ. गौतम! वे भवादेश से दो भव-ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन भी करता है (यह दूसरा गमक है)

प्र. १. भंते! जो पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. २. भंते! वे असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

३-१९. सेसं तं चेव जाव अणुबंधो त्ति भाणियव्वो।

प. २०. ते णं भंते! पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठिईयरयणप्पभापुढविनेरइए पुणरवि पज्जत्ता असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए त्ति केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडिमब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा॥ (३ तइओ गमओ)

प. १. जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भन्ते! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेजा।

प. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

अवसेसं तं चेव।

णवरं—इमाइं तिण्णि नाणत्ताइं—आउं, अज्झवसाणा, अणुबंधो य। ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. तेसि णं भंते! जीवाणं केवइया अज्झवसाणा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! असंखेज्जा अज्झवसाणा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते! किं पसत्था, अपसत्था?

उ. गोयमा! नो पसत्था, अपसत्था,

अणुबन्धो अंतोमुहुत्तं।

प. से णं भंते! जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णि पंचिंदियतिरिक्खजोणिए रयणप्पभापुढवि नेरइए पुणरवि पज्जत्ताअसण्णि-पंचिंदियतिरिखजोणिए त्ति जहन्नकालठिईए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (४) (चउत्थो गमओ)

प. जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए जहण्णकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भन्ते! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

३-१९. अनुबन्ध पर्यन्त शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. २०. भंते! वह पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक के रूप में उत्पन्न हो तो कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है?

उ. गौतम! भवादेश से दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन भी करता है। (यह तृतीय गमक है)

प्र. भंते! जघन्य काल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो, वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष कथन पूर्ववत् समझना चाहिए।

विशेष—आयु (स्थिति) अध्यवसाय और अनुबन्ध इन तीनों में अन्तर है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है।

प्र. भंते! उन जीवों के अध्यवसाय कितने कहे गए हैं?

उ. गौतम! उनके अध्यवसाय असंख्यात कहे गए हैं।

प्र. भंते! (उनके) वे (अध्यवसाय) प्रशस्त हैं या अप्रशस्त हैं?

उ. गौतम! वे प्रशस्त नहीं हैं किन्तु अप्रशस्त हैं।

उनका अनुबन्ध अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

प्र. भंते! वह जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः जघन्यकाल की स्थिति वाले पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रूप में उत्पन्न हो तो वह कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है?

उ. गौतम! वह भवादेश से दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम के असंख्यातवां भाग काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन भी करता है। (यह चौथा गमक है)

प्र. भंते! जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो जीव जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते! वह जीव कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं तं चेव जहा चउत्थे गमए।

प. से णं भंते ! जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्ता असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णकालट्ठिईए-रयणप्पभापुढविनेरइए, पुणरवि पज्जत्ता असण्णि पंचिंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नकालठिईए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा ?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण वि दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (५) पंचमो गमओ)

प. जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिए णं भंते! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग-ट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग-ट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं तं चेव जहा चउत्थे गमए।

प. से णं भंते! जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदि-यतिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठिईय रयणप्पभापुढवि-नेरइए पुणरवि पज्जत्ता असण्णि पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए जहण्णकालठिईए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा ?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं अंतोमुहुत्त-मब्भहियं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (६) छट्ठो गमओ)

प. उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

उ. गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम! वह जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष कथन चौथे गमक के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते! वह जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः जघन्य काल की स्थिति वाले पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रूप में उत्पन्न हो तो वह कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता रहता है ?

उ. गौतम! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह पांचवां गमक है)

प्र. भंते! जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम! वह जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम! वह जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष कथन चौथे गमक के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते! वह जघन्यकाल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः जघन्य काल की स्थिति वाले पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रूप में उत्पन्न हो तो वह कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है ?

उ. गौतम! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग तथा उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह छठा गमक है।)

प्र. भंते! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

अवसेसं जहेव ओहिय गमएणं तहेव अणुगंतव्वं,

णवरं–इमाइं दोण्णि नाणत्ताइं

१. ठिई जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

२. एवं अणुबंधो वि।

प. से णं भंते! उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए रयणप्पभापुढवि नेरइए पुणरवि पज्जत्ता असण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिए उक्कोस कालठिईए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडीए अब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (७ सत्तमो गमओ)

प. उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिए णं भंते! जे भविए जहण्णकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. **गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।**

प. ते णं भते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं तं चेव जहा सत्तम गमए जाव अणुबंधो त्ति।

प. से णं भंते! उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिए जहण्णकालट्ठिईयरयणप्पभापुढवि नेरइए पुणरवि पज्जत्ता असण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिय उक्कोसकालठिईए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (८ अट्ठमो गमओ)

प. उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिए णं भंते! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! के[illegible] उववज्जेज्जा?

प्र. भंते! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष सारा कथन औधिक (प्रथम) गमक के अनुसार कहना चाहिए।

विशेष–इन दो बोलों में अन्तर है।

१. स्थिति-जघन्य पूर्वकोटि वर्ष की और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष की है।

२. अनुबन्ध–इसी प्रकार (स्थिति के समान) है।

प्र. भंते! वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पर्याप्त असंज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक रूप में उत्पन्न हो तो वह वहां कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है?

उ. गौतम! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह सातवां गमक है)

प्र. भंते! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त-असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभा के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष सब कथन जैसा सप्तम गमक में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी अनुबन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जघन्यकाल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक होकर पुनः उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पर्याप्त असंज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक रूप में उत्पन्न हो तो वह वहां कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है?

उ. गौतम! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है तथा कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन भी करता है। (यह आठवां गमक है)

प्र. भंते! उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला पर्याप्त असंज्ञीपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभाग-ट्ठिईएसु उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइ-भागट्ठिईसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं जहा सत्तमगमए जाव अणुबंधो त्ति।

प. से णं भंते! उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्ताअसण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिए उक्कोसकालट्ठिईयरयणप्पभापुढवि-नेरइए पुणरवि पज्जत्ता असण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिय उक्कोसकालठिईए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा?

उ. गोयमा! भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडीए-अब्भहियं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडिएअब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।(९ नवमो गमओ)

एवं एए ओहिया तिण्णि गमगा, जहण्णकालट्ठिईएसु तिण्णि गमगा, उक्कोसकालट्ठिईएसु तिण्णि गमगा, सव्वे नव गमगा भवंति। *–विया. स. २४, उ. १, सु. ४-५०*

४. रयणप्पभानरयउववज्जंतेसु पज्जत्त सन्नि संखेज्जवासाउय-पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति,

नो असंखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए-हिंतो उववज्जंति।

प. भंते! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति–किं जलचरेहिंतो उववज्जंति, थलचरेहिंतो उववज्जंति, खहचरेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! जलचरेहिंतो वि उववज्जंति, थलचरेहिंतो वि उववज्जंति, खहचरेहिंतो वि उववज्जंति।

प. भंते! जइ जलचर-थलचर-खहचरेहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

उ. गौतम! वह जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

अनुबन्ध पर्यन्त सभी आलापक सप्तम गमक के अनुसार जानना चाहिए।

प्र. भंते! वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक रूप में उत्पन्न होकर पुनः उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पर्याप्त-असंज्ञीपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक रूप में उत्पन्न हो तो कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है?

उ. गौतम! भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है और कालादेश से जघन्य पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवां गमक है)

इस प्रकार ये तीन औधिक (सामान्य) गमक हैं, जघन्य काल की स्थिति की अपेक्षा तीन गमक हैं और उत्कृष्ट काल की स्थिति की अपेक्षा भी तीन गमक हैं। ये सब मिलाकर नौ गमक होते हैं।

४. रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी संख्यात वर्षायुष्क पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक में उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते! यदि नैरयिक संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं? या

असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय- तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं,

किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते! यदि नैरयिक संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचरों में से आकर उत्पन्न होते हैं, स्थलचरों में से आकर उत्पन्न होते हैं या खेचरों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम! वे जलचरों में से भी आकर उत्पन्न होते हैं, स्थलचरों में से भी आकर उत्पन्न होते हैं और खेचरों में से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते! यदि वे जलचर-स्थलचर और खेचर जीवों में से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचेंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! कइसु पुढवीसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! सत्तसु पुढवीसु उववज्जेज्जा, तं जहा–
१. रयणप्पभाए जाव ७. अहेसत्तमाए।

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किं संघयणी पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! छव्विहसंघयणी पण्णत्ता, तं जहा–

१. वइरोसभनारायसंघयणी, २. उसभनारायसंघयणी,
३. नारायसंघयणी, ४. अद्धनाराय संघयणी,
५. कीलिया संघयणी, ६. छेवट्टसंघयणी।

सरीरोगाहणा जहेव असण्णीणं।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किं संठिया पण्णत्ता?

उ. गोयमा! छव्विहसंठिया पण्णत्ता, तं जहा–
१. समचउरंसा, २. निग्गोह परिमंडला,
३. साई, ४. खुज्जा
५. वामणा ६. हुंडा।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

उ. गोयमा ! छल्लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।
सेसं जहा असन्निपंचिंदिय आलावओ तहा पुच्छा कायव्वा।

णवरं–दिट्ठी तिविहा वि।
तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए।
जोगो तिविहो वि।
पंच समुग्घाया आदिल्लगा।
वेदो तिविहो वि,

उ. गौतम! वे पर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न होते हैं, अपर्याप्तकों में से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते! पर्याप्त-संख्यातवर्षायुष्क-संज्ञीपंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव जो नरकपृथ्वियों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितनी पृथ्वियों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह सातों ही नरकपृथ्वियों में उत्पन्न होता है, यथा–
१. रत्नप्रभा यावत् ७. अधःसप्तम पृथ्वी।

प्र. भंते ! पर्याप्त संख्यात-वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जो रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे (संज्ञीतिर्यञ्चपंचेन्द्रिय) जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे (एक समय में) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! उन जीवों के शरीर किस संहनन वाले कहे गये हैं?

उ. गौतम ! उनके शरीर छहों प्रकार के संहनन वाले कहे गए हैं, यथा–
१. वज्रऋषभनाराचसंहनन, २. ऋषभनाराचसंहनन,
३. नाराच संहनन, ४. अर्ध नाराच संहनन,
५. कीलिका संहनन, ६. सेवार्तसंहनन।

उनकी शरीर अवगाहना पूर्वोक्त असंज्ञियों के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! उन जीवों के शरीर किस संस्थान वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वे छह प्रकार के संस्थान वाले कहे गए हैं, यथा–
१. समचतुरस्र २. न्यग्रोधपरिमण्डल,
३. स्वाती, ४. कुब्ज,
५. वामन, ६. हुण्डक।

प्र. भंते ! उन जीवों के कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उ. गौतम ! उनके छहों लेश्याएं कही गई हैं, यथा–
१. कृष्णलेश्या यावत् ६. शुक्ललेश्या।
शेष असंज्ञी तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय के आलापक के समान प्रश्न करना चाहिये।

विशेष–दृष्टियां तीनों ही होती हैं।
तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।
योग तीनों ही होते हैं।
आदि के पांच समुद्घात होते हैं।
वेद तीनों ही होते हैं।

प. से णं भंते ! पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिए रयणप्पभापुढवि नेरइए पुणरवि पज्जत्ता संखेज्जवासाउय सण्णि पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा ?

उ. गोयमा ! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं । कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ।)

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए जहण्णकालट्ठिईएसु रयणप्पभा-पुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइय-कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं सो चेव पढमो गमओ निरवसेसो भाणियव्वो,

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

(२ बिइओ गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं सागरोवमट्ठिईएसु उक्कोसेण वि सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

अवसेसो परिमाणादीओ भवादेसपज्जवसाणो सो चेव पढमगमो नेयव्वो।

कालादेसेणं जहण्णेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (३ तइओ गमओ)

प. जहण्णकालट्ठिईयपज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णि-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइ कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! अवसेसो भवादेसपज्जवसाणो सो चेव पढम गमओ,

णवरं इमाइं अट्ठ णाणत्ताइं, तं जहा-

प्र. भंते ! वह पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक होकर पुनः पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक के रूप में उत्पन्न हो तो कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है ?

उ. गौतम ! भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है, कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

प्र. भंते ! जो पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जघन्य काल की स्थिति वाले रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न हो तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वही प्रथम गमक का सम्पूर्ण वर्णन यहां कहना चाहिए,

विशेष–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चालीस हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह दूसरा गमक है)

वही उत्कृष्ट काल की स्थिति में उत्पन्न हो तो जघन्य एक सागरोपम की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

शेष परिमाण आदि भवादेश पर्यन्त का कथन पूर्वोक्त प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्व कोटि अधिक चार सागरोपम पर्यन्त काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है।)

प्र. भंते ! जघन्य काल की स्थिति वाला पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक, जो रत्नप्रभापृथ्वी में नैरयिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! शेष भवादेश पर्यन्त सब कथन प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।

विशेष- निम्नोक्त आठ बातों में अन्तर है, यथा-

१. सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुपुहत्तं।

२. लेस्साओ तिण्णि आदिल्लाओ,

३. नो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छदिट्ठी,

४. नो नाणी, दो अण्णाणा नियमं,

५. समुग्घाया आदिल्ला तिण्णि,

६-८. आउं, अज्झवसाणा, अणुबंधो य **जहेव असण्णीणं।**

कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (४ चउत्थो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **सो चेव चउत्थो गमओ भवादेसपज्जवसाणो भाणियव्वो।**

कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तालीसं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (५ पंचमो गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं सागरोवमट्ठिईसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेण वि सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **सो चेव चउत्थो गमओ भवादेसपज्जवसाणो।**

कालादेसेणं जहण्णेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (६ छट्ठो गमओ)

प. उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णि-पंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **अवसेसा परिमाणादीओ भवादेसपज्जवसाणो सो चेव पढमगमओ नेयव्वो,**

णवरं–इमाइं दो णाणत्ताइं–

१. इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व (अनेक धनुष) की होती है।

२. इनमें प्रथम तीन लेश्याएं होती हैं।

३. वे सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं होते, किन्तु मिथ्यादृष्टि होते हैं।

४. इनमें ज्ञान नहीं होते हैं किन्तु नियम से दो अज्ञान होते हैं।

५. इनमें आदि के तीन समुद्घात होते हैं।

६.७.८. इनके आयुष्य, अध्यवसाय और अनुवन्ध का कथन **असंज्ञी के नरक में उत्पन्न होने के समान समझना चाहिए।**

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार सागरोपम काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह चौथा गमक है)

वही जघन्य काल की स्थिति वाला, पूर्वोक्त (पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव रत्नप्रभापृथ्वी में) जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले तथा उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **सम्पूर्ण कथन पूर्वोक्त चतुर्थ गमक के समान भवादेश पर्यन्त कहना चाहिए।**

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चालीस हजार वर्ष काल व्यतीत करता है तथा इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह पांचवा गमक है)

वही जीव उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा नैरयिकों में उत्पन्न हो तो जघन्य सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है और उत्कृष्ट भी सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम! **सम्पूर्ण कथन भवादेश पर्यंत चतुर्थ गमक के समान है।**

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार सागरोपम काल व्यतीत करता है तथा इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह छट्ठा गमक है।)

प्र. भंते ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त-संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **शेष परिमाण आदि से भवादेश पर्यन्त का कथन उक्त प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।**

विशेष–इन दो स्थानों में विशेपता है–

ठिई जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (७ सत्तमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि दसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सो चेव सत्तमो गमओ निरवसेसो भवादेसं पज्जवसाणो भाणियव्वो।

कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।(८ अट्ठमो गमओ)

प. उक्कोसकालट्ठिईयपज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए उक्कोसकालट्ठिईएसु रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सो चेव सत्तमो गमओ निरवसेसो भवादेसं पज्जवसाणो भाणियव्वो।

कालादेसेणं जहण्णेणं सागरोवमं पुव्वकोडीए अब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।(९ नवमो गमओ)

एवं एए नव गमगा। उक्खेव-निक्खेवओ नवसु वि गमएसु जहेव असण्णीणं।

–विया.स. २४, उ. १, सु. ५१-८६

५. सक्करप्पभाइ तमापुढवि नरयउववज्जंतेसु पज्जत्त सण्णि संखेज्ज वासाउय पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएसु उववायाइ वीस दारं परूवणं–

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं सागरोवमट्ठिईएसु, उक्कोसेणं तिसागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

स्थिति जघन्य भी पूर्वकोटि वर्ष की है और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष की है।

इसी प्रकार अनुबन्ध भी स्थिति के समान है।

कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्व कोटि अधिक चार सागरोपम काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।(यह सातवां गमक है)

यदि वही जघन्य स्थिति वाले (रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों) में उत्पन्न हो तो जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! (परिमाण से) भवादेश पर्यन्त सम्पूर्ण सातवें गमक के अनुसार कहना चाहिए।

कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट चालीस हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।(यह आठवां गमक है)

प्र. भंते ! उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक सागरोपम की और उत्कृष्ट भी एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम! भवादेश पर्यन्त वही सप्तम गमक सम्पूर्ण कहना चाहिए।

कालादेश से जघन्य पूर्वकोटि अधिक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवां गमक है)

इस प्रकार ये नौ गमक हैं और इनके असंज्ञी जीवों के गमकों के समान प्रश्नोत्तर आदि कहने चाहिए।

५. शर्कराप्रभा से तमःप्रभापृथ्वी पर्यन्त नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी संख्यात वर्षायुष्क पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक में उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव जो शर्कराप्रभापृथ्वी में नैरयिक रूप में उत्पन्न होने योग्य है तो वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक सागरोपम की स्थिति वाले और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१ पढमो गमओ)

कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, सच्चेव पढम गमग वत्तव्वया भवादेसपज्जवसाणा भाणियव्वा।

वही संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च सप्तम नरक की जघन्य काल की स्थिति में उत्पन्न होने योग्य है, इत्यादि समग्र कथन भवादेश पर्यन्त प्रथम गमक के समान कहना चाहिए।

कालादेसेणं जहण्णेणं उक्कोसेण वि तहेव।

कालादेश से जघन्य और उत्कृष्ट काल भी प्रथम गमक जितना ही जानना चाहिए।

एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (२ बिइओ गमओ)

इतना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह दूसरा गमक है)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, सच्चेव लद्धी।

वह जीव उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो इत्यादि समग्र कथन प्रथम गमक के समान कहना चाहिए।

णवरं-भवादेसेणं जहण्णेणं तिण्णि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं पंच भवग्गहणाइं।

विशेष-भवादेश से जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट पांच भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (३ तइओ गमओ)

कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, सच्चेव रयणप्पभापुढविजहण्णकालट्ठिईयवत्तव्वया भवादेसं पज्जवसाणा भाणियव्वा।

वही (संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च) जीव जघन्य स्थिति वाला हो और सप्तम नरक पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो इत्यादि समस्त कथन रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होने योग्य जघन्य स्थिति वाले (संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च) के समान भवादेश पर्यन्त कहना चाहिए।

णवरं-पढमं संघयणं, नो इत्थिवेदगा।

विशेष-प्रथम संहननी (ही उत्पन्न) होता है, स्त्रीवेदी उत्पन्न नहीं होता है।

भवादेसेणं जहण्णेणं तिण्णि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं सत्त भवग्गहणाइं।

भवादेश से जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट सात भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (४ चउत्थो गमओ)

कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक छासठ सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह चौथा गमक है)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एस सो चेव चउत्थो गमओ निरवसेसो कालादेस पज्जवसाणो भाणियव्वो। (५ पंचमो गमओ)

वही जघन्य स्थिति (वाला संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव जघन्य स्थिति वाले सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिकों) में उत्पन्न होने योग्य हो इत्यादि समग्र कथन चतुर्थ गमक के समान कालादेश पर्यन्त कहना चाहिए। (यह पांचवां गमक है)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, सच्चेव लद्धी जहा चउत्थे गमए।

वही (जघन्य स्थिति वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) उत्कृष्ट स्थिति वाले सप्तम नरक पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हो इत्यादि (समग्र कथन) चौथे गमक के समान है।

णवरं-भवादेसेणं जहण्णेणं तिण्णि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं पंच भवग्गहणाइं।

विशेष-भवादेश से जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट पांच भव ग्रहण करता है।

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं–
पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?
अपज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति,
नो अपज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए नेरइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! कइसु पुढवीसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! सत्तसु पुढवीसु उववज्जेज्जा, तं जहा–
१. रयणप्पभाए जाव ७. अहेसत्तमाए।

–विया.स. २४, उ. १, सु. ९२-९५

उ. गौतम ! वह संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होता है असंख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! यदि वह संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होता है,
तो क्या वह पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होता है या अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होता है,
अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों में से आकर उत्पन्न नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! संख्यात वर्षायुष्क पर्याप्त मनुष्य जो नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितनी नरकपृथ्वियों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह सातों ही नरकपृथ्वियों में उत्पन्न होता है, यथा–
१. रत्न प्रभा में यावत् ७. अधःसप्तम नरक पृथ्वी।

८. रयणप्पभा नरय उववज्जंतेसु पज्जत्त सन्नि संखेज्जवासाउय मणुस्सेसु उववायाइ वीसं दारं परूवणं –

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति।
संघयणा छ, सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलपुहत्तं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं।

सेसं सच्चा वत्तव्वया जहा सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भवादेसं पज्जवसाणा भाणियव्वा।
णवरं–चत्तारि णाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए,

समुग्घाया केवलिवज्जा।
ठिई अणुबंधो य जहण्णेणं मासपुहत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी,
[illegible]

८. रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी संख्यात वर्षायुष्क मनुष्य में उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य जो रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे (संख्यात वर्षायुष्क पर्याप्त संज्ञी मनुष्य) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।
उनमें छहों संहनन होते हैं। उनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुलपृथक्त्व (अनेक अंगुल) की और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की होती है।

शेष सब कथन भवादेश पर्यन्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिकों के समान कहना चाहिए।

विशेष–इसमें चार ज्ञान, तीन अज्ञान विकल्प से (भजना से) होते हैं।
केवलिसमुद्घात को छोड़कर शेष छह समुद्घात होते हैं।
इसकी स्थिति और अनुबंध जघन्य मासपृथक्त्व और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है।
[illegible]

णवरं–सरीरोगाहणा जहण्णेणं पंचधणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंचधणुसयाइं।

ठिई जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (७ सत्तमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, सच्चेव सत्तमगमगवत्तव्वया,

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चत्तालीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (८ अट्ठमो गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, सच्चेव सत्तमगमगवत्तव्वया,

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं सागरोवमं पुव्वकोडीए अब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (९ नवमो गमओ)

—विया. स. २४, उ. १, सु. ९६-१०५

विशेष–उनके शरीर की अवगाहना जघन्य पांच सौ धनुष और उत्कृष्ट भी पांच सौ धनुष की है।

उनकी स्थिति जघन्य पूर्वकोटि और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष की है।

इतना ही अनुबन्ध का समय है।

कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह सातवां गमक है)

वही (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला) मनुष्य जघन्य काल की स्थिति (वाले रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों) में उत्पन्न होने योग्य हो तो उसका कथन सप्तम गमक के समान है।

विशेष–कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चालीस हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह आठवां गमक है)

वही (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला) मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति वाले (रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों) में उत्पन्न होने योग्य हो तो उसका कथन भी सप्तम गमक के समान है।

विशेष–कालादेश से जघन्य पूर्वकोटि अधिक एक सागरोपम और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवां गमक है)

९. सक्करप्पभाइ तमापुढवि नेरइय उववज्जंतेसु पज्जत्त सन्नि संखेज्जवासाउयमणुस्सेसु उववायाइ वीस दार परूवणं–

प. [illegible]

उ. [illegible]

प. [illegible]

उ. [illegible] सो चेव रयणप्पभापुढवि गमओ नेयव्वो,

[illegible]

९. शर्कराप्रभा से तमःप्रभा पृथ्वी पर्यन्त नारकों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी संख्यात वर्षायुष्क मनुष्य में उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

[illegible]

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१ पढमो गमओ)

कालादेश से जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक बाईस सागरोपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और उतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव पढम गमग वत्तव्वया,

वही मनुष्य जघन्य काल की स्थिति वाले सप्तमपृथ्वी-नारकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो इसका समग्र कथन प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।

णवरं—नेरइयट्ठिइं संवेहं च जाणेज्जा (२ बिइओ गमओ)

विशेष—नैरयिक की स्थिति और संवेध को उपयोग पूर्वक जान लेना चाहिए। (यह द्वितीय गमक है)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो एसा चेव वत्तव्वया,

वही मनुष्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले सप्तमपृथ्वी के नारकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो इसका भी सम्पूर्ण कथन प्रथम गमक के समान है।

णवरं—संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा (३ तइओ गमओ)

विशेष—इसका संवेध उपयोग लगाकर जान लेना चाहिए। (यह तृतीय गमक है)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु एसा चेव पढम गमग वत्तव्वया,

वही (पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी) मनुष्य स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और सप्तमपृथ्वी के नारकों में उत्पन्न होने योग्य हो तो तीनों गमकों में प्रथम गमक के समान कथन है।

णवरं— सरीरोगाहणा जहण्णेणं रयणिपुहत्तं, उक्कोसेण वि रयणिपुहत्तं।

विशेष—उसके शरीर की अवगाहना जघन्य रत्निपृथक्त्व और उत्कृष्ट भी रत्निपृथक्त्व है।

ठिई जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेण वि वासपुहत्तं।

उसकी स्थिति जघन्य वर्ष पृथक्त्व और उत्कृष्ट भी वर्ष पृथक्त्व ही है।

एवं अणुबंधो वि।

अनुबन्ध स्थिति के समान है।

संवेहो उवउंजिऊण भाणियव्वो। (४-६ चउत्थ-पंचम छट्ठ गमा)

संवेध (कालादेश) के विषय में उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। (यह चतुर्थ पंचम षष्ठ गमक है)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तिसु वि गमएसु एस चेव पढम गमग वत्तव्वया,

वही संज्ञी मनुष्य स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और सप्तम नरकपृथ्वी में उत्पन्न होने योग्य हो तो उसके भी इन उत्कृष्ट के तीनों गमकों में प्रथम गमक के समान कथन है।

णवरं—सरीरोगाहणा जहण्णेणं पंचधणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंचधणुसयाइं।

विशेष—शरीर की अवगाहना जघन्य पांच सौ धनुष और उत्कृष्ट भी पांच सौ धनुष की है।

ठिई जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

स्थिति जघन्य पूर्वकोटि वर्ष की और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष की है।

एवं अणुबंधो वि।

इसी प्रकार अनुबन्ध भी है।

नेरइयट्ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

नैरयिकों की स्थिति और संवेध का उपयोग पूर्वक स्वतः विचार करना चाहिए।

कालादेसेणं जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं [illegible]

कालादेश से जघन्य पूर्वकोटि अधिक [illegible] सागरोपम और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक [illegible] जितना काल [illegible] है।

११. [illegible] मनुष्य [illegible] का प्ररूपण

[illegible]

११. [illegible] की अपेक्षा [illegible] का प्ररूपण—

[illegible]

तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

मणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

नो देवेहिंतो उववज्जंति।

एवं जहेव नेरइयउद्देसए तहेव भाणियव्वो। पज्जत्तापज्जत्त पज्जवसाणो भाणियव्वो।

–विया. स. २४, उ. २, सु. २

१२. असुरकुमारोववज्जंतेसु पज्जत्त असन्नि पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियस्स उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. पज्जत्ताअसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एयस्स चेव रयणप्पभापुढवी गमग सरिसा नव वि गमा भाणियव्वा,

णवरं–जाहे अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ भवइ, ताहे अज्झवसाणा पसत्था, नो अप्पसत्था तिसु वि गमएसु। (१-९ गम्मा)

–विया.स. २४, उ. २, सु. ३-४

१३. असुरकुमारोववज्जंतेसु असंखेज्जवासाउय सन्निपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियस्स उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं–

संखेज्जवासाउय-सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

असंखेज्जवासाउय-सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय-सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति, असंखेज्जवासाउय-सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. असंखेज्जवासाउय-सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति।

सेसं तं चेव पण्होत्तराइं।

णवरं– वइरोसभनारायसंघयणी।

ओगाहणा-जहण्णेणं धणुपुहुत्तं, उक्कोसेणं छ गाउयाइं।

तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,

मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं,

देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

जिस प्रकार नैरयिक उद्देशक में प्रश्नोत्तर कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी पर्याप्त अपर्याप्त पर्यंत प्रश्नोत्तर करने चाहिए।

१२. असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के उत्पातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव जो असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इसके रत्नप्रभापृथ्वी में कहे गमकों के समान नौ ही गमक कहने चाहिए।

विशेष–जब वह स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो तीनों गमकों में अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते। (१-९)

१३. असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के उत्पातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि असुरकुमार संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या–

वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या

असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं और असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! असंख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष प्रश्नोत्तर पूर्ववत् है।

विशेष–वे वज्रऋषभनाराचसंहनन वाले होते हैं।

उनकी अवगाहना-जघन्य धनुषपृथक्त्व की और उत्कृष्ट छह गव्यूति (कोश) की होती है।

समचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता।
वे समचतुरस्रसंस्थान वाले कहे गए हैं।

चत्तारि लेस्साओ आदिल्लाओ।
उनमें आदि की चार लेश्याएं होती हैं।

णो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी णो सम्मामिच्छादिट्ठी।
वे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते, किन्तु मिथ्यादृष्टि होते हैं।

णो णाणी, अण्णाणी,
वे ज्ञानी नहीं होते किन्तु अज्ञानी होते हैं।

नियमं दुअण्णाणी–मइअण्णाणी-सुयअण्णाणी य।
उनमें नियमतः दो अज्ञान होते हैं–मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान।

जोगो तिविहो वि।
उनमें योग तीनों ही पाये जाते हैं।

उवओगो दुविहो वि।
उपयोग भी दोनों प्रकार के होते हैं।

चत्तारि सण्णाओ।
उनमें चार संज्ञा होती हैं।

चत्तारि कसाया।
चार कषाय पाये जाते हैं।

पंच इंदिया।
पाँचों इन्द्रियाँ हैं।

तिण्णि समुग्घाया आदिल्ला।
आदि के तीन समुद्घात हैं।

समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।
वे समुद्घात करके भी मरते हैं और समुद्घात किये बिना भी मरते हैं।

वेदणा दुविहा वि, १. सायावेदगा, २. असायावेदगा।
उनमें साता और असाता दोनों प्रकार की वेदनाएं होती हैं।

वेदो दुविहो वि–इत्थिवेदगा वि, पुरिसवेदगा वि, णो णपुंसगवेदगा।
वे स्त्री वेदी और पुरुष वेदी होते हैं नपुंसक वेदी नहीं होते हैं।

ठिई जहण्णेणं साइरेगं पुव्वकोडी, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।
उनकी स्थिति जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटि वर्ष की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

अज्झवसाणा पसत्था वि, अप्पसत्था वि।
उनके अध्यवसाय प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी होते हैं।

अणुबंधो जहेव ठिई,
इनका अनुबन्ध स्थिति के समान होता है,

कायसंवेहो भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं,
[illegible]

कालादेसेणं जहण्णेणं साइरेगा पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं छप्पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गइरागइं करेज्जा। (१ पढमो गमओ)
[illegible]

सो चेव जहण्णकालट्ठिइएसु उववण्णो एसा चेव वत्तव्वया [illegible]
[illegible]

[illegible]

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं साइरेगपुव्वकोडी आउएसु उववज्जेज्जा।

वही (असंख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारों में उत्पन्न हो तो वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट कुछ अधिक पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **सेसं तं चेव पढम गमग वत्तव्वया।**

णवरं–ओगाहणा जहण्णेणं धणुपुहत्तं, उक्कोसेणं सातिरेगं धणुसहस्सं।

ठिई-जहण्णेणं साइरेगा पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि साइरेगा पुव्वकोडी।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं साइरेगा पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं साइरेगाओ दो पुव्वकोडीओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (४ चउत्थो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव वत्तव्वया चउत्थ गमग सरिसा कायव्वा।

णवरं–असुरकुमारजहण्णट्ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (५ पंचमो गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, जहण्णेणं साइरेगपुव्वकोडिआउएसु, उक्कोसेण वि साइरेगपुव्वकोडी आउएसु उववज्जेज्जा,

सेसं तं चेव चउत्थ गमग वत्तव्वया।

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं साइरेगाओ दो पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वि साइरेगाओ दो पुव्वकोडीओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (६ छट्ठो गमओ)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, सो चेव पढमगमग सरिसा लद्धी भाणियव्वा,

णवरं–ठिई जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि पलिओवमाइं।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छ पलिओवमाइं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (७ सत्तमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव सत्तम गमग वत्तव्वया,

णवरं–असुरकुमारजहण्णट्ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा (८ अट्ठमो गमओ)

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **शेष सब कथन प्रथम गमक के समान है।**

विशेष–अवगाहना-जघन्य धनुषपृथक्त्व और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार धनुष की है।

स्थिति-जघन्य साधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट भी साधिक पूर्वकोटि की है।

अनुबन्ध भी इसी प्रकार स्थिति के समान है।

कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट सातिरेक दो पूर्वकोटि जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह चतुर्थ गमक है।)

वही जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो तो उसका कथन चतुर्थ गमक के समान जानना चाहिए।

विशेष–यहाँ असुरकुमारों की जघन्य स्थिति और संवेध के विषय में उपयोगपूर्वक जान लेना चाहिए। (यह पाँचवा गमक है)

वही उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो तो जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले और उत्कृष्ट भी कुछ अधिक पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है।

शेष सब कथन चतुर्थ गमक के समान जानना चाहिए।

विशेष–कालादेश से जघन्य कुछ अधिक दो पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट भी सातिरेक (कुछ अधिक) दो पूर्वकोटि वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह छट्ठा गमक है।)

वही जीव स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य हो तो वही प्रथम गमक के समान कथन (लब्धि) करना चाहिए।

विशेष–उसकी स्थिति जघन्य तीन पल्योपम है और उत्कृष्ट भी तीन पल्योपम है।

अनुबन्ध भी इसी प्रकार स्थिति के समान है।

कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट छह पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह सातवाँ गमक है)

वही (उत्कृष्ट स्थिति वाला संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो तो उसके लिए भी सातवें गमक के समान कथन करना चाहिए।

विशेष–असुरकुमारों की जघन्य स्थिति और संवेध का कथन उपयोगपूर्वक यहाँ जान लेना चाहिए। (यह आठवां गमक है)

गो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववज्जो जहण्णेणं तिपलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिपलिओवमाइं, सेसा तं चेव सत्तम गमग वत्तव्वया।

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं छप्पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि छप्पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (९ नवमो गमओ)

–विया. स. २४, उ. २, सु. ५-१६

स्थिति (उत्कृष्ट स्थिति वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो तो जघन्य तीन पल्योपम और उत्कृष्ट भी तीन पल्योपम की स्थिति में उत्पन्न होता है शेष कथन सप्तम गमक के समान है।

विशेष–कालादेश से जघन्य छः पल्योपम और उत्कृष्ट भी छह पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवाँ गमक है)

१४. असुरकुमारोववज्जंतेसु संखेज्जवासाउय सन्निपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलचरेहिंतो उववज्जंति इच्चेवं वत्तव्वया पढमुद्देसग सरिसा।

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं साइरेगसागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एएसिं रयणप्पभापुढविगमगसरिसा वि नव गमगा नेयव्वा,

णवरं–जाहे अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ भवइ ताहे तिसु वि गमएसु–चत्तारि लेस्साओ,

अज्झवसाणा पसत्था, नो अपसत्था।

संवेहो साइरेगेण सागरोवमेण कायव्वो (१-९)

–विया. स. २४, उ. २, सु. १७-१८

१४. असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उत्पातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि असुरकुमार संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं–तो क्या वे जलचरों से आकर उत्पन्न होते हैं? इत्यादि कथन प्रथम (नैरयिक) उद्देशक के समान है।

प्र. भंते ! पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जो असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट सातिरेक एक सागरोपम की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! इनके लिए भी रत्नप्रभापृथ्वी के समान ही नौ गमक जानने चाहिए।

विशेष–[illegible]

[illegible]

[illegible]

१५. असुरकुमारोववज्जंतेसु असंखेज्जवासाउय सन्निमणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो असण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति [illegible]

उ. [illegible]

प. [illegible]

१५. असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों के उत्पातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. [illegible]

प्र. [illegible]

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

एवं असंखेज्जवासाउयतिरिक्खजोणियसरिसा आदिल्ला तिण्णि गमगा नेयव्वा।

णवरं–सरीरोगाहणा पढमबिइएसु जहण्णेणं साइरेगाइं पंचधणुसयाइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं, तइयगमे ओगाहणा जहण्णेणं तिण्णि गाउयाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि गाउयाइं। (१-३) (पढम-बिइय-तइय गमा)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि जहण्णकालट्ठिईयतिरिक्खजोणियसरिसा तिण्णि गमगा भाणियव्वा।

णवरं–सरीरोगाहणा तिसु वि गमएसु जहण्णेणं साइरेगाइं पंचधणुसयाइं, उक्कोसेण वि साइरेगाइं पंचधणुसयाइं। (४-६ चउत्थ-पंचम-छट्ठ गमा)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि ते चेव पच्छिल्ला, तिण्णि गमगा तिरिक्खजोणिय सरिसा भाणियव्वा।

णवरं–सरीरोगाहणा तिसु वि गमएसु जहण्णेणं तिण्णि गाउयाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि गाउयाइं। (७-९ सप्तम, अट्ठम-नवम-गमा) *–विया. २४, उ. २, सु. १९-२४*

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले (असुरकुमारों) में उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार असंख्यातवर्ष की आयु वाले (असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले) तिर्यञ्चयोनिक जीवों के समान ही आदि के तीन गमक जानने चाहिए।

विशेष–प्रथम और द्वितीय गमक में शरीर की अवगाहना जघन्य कुछ अधिक पाँच सौ धनुष की और उत्कृष्ट तीन गाउ (कोश) की होती है। तृतीय गमक में शरीर की अवगाहना जघन्य तीन गाउ की और उत्कृष्ट भी तीन गाउ की है (यह प्रथम द्वितीय और तृतीय गमक है)

वही स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारों में उत्पन्न हो तो उसके भी तीनों गमक (असुरकुमार में उत्पन्न होने वाला) जघन्यकाल की स्थिति वाले तिर्यञ्चयोनिक के समान कहने चाहिए।

विशेष–तीनों ही गमकों में शरीर की अवगाहना जघन्य कुछ अधिक पाँच सौ धुनष की और उत्कृष्ट भी कुछ अधिक पाँच सौ धनुष की होती है (यह चतुर्थ पंचम और षष्ठ गमक है)

वही स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसके विषय में भी अन्तिम तीनों गमक तिर्यञ्चयोनिक के समान कहने चाहिए।

विशेष–तीनों गमकों में शरीर की अवगाहना जघन्य तीन गाउ (कोश) की और उत्कृष्ट भी तीन गाउ की होती है (यह सप्तम, अष्टम और नौवां गमक है))।

१६. असुरकुमारोववज्जंतेसु पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसन्निमणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति–किं पज्जत्तासंखेज्जवासाउयसण्णि-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तासंखेज्जवासाउय-सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्तासंखेज्जवासाउय सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

नो अपज्जत्तासंखेज्जवासाउय सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. पज्जत्तासंखेज्जवासाउय सण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं साइरेग सागरोवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहेव एएसिं रयणप्पभाए उववज्जमाणाणं नव गमगा तहेव इह वि नव गमगा भाणियव्वा,

णवरं–संवेहो साइरेगेणं सागरोवमेण कायव्वो। (१-९) *–विया. स. २४, उ. २, सु. २५-२७*

१५. असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों के उत्पातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि (असुरकुमार) संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।

अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्य जो असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. (गौतम) जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के नौ गमक कहे गए हैं उसी प्रकार यहाँ भी नौ गमक कहने चाहिए।

विशेष–इसका संवेध (कालादेश) कुछ अधिक सागरोपम कहना चाहिए। (१-९)

१७. गइं पडुच्च नागकुमारोववाय परूवणं–

प. नागकुमाराणं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति? किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति।

सेसा सव्वा वत्तव्वया असन्निस्स नो गमग पज्जत्ता असुरकुमारुद्देसग सरिसा भाणियव्वा। (१-९)

प. भंते ! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति–

किं संखेज्जवासाउय सण्णिपंचेंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति,

असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउयं वि असंखेज्जवासाउयं वि सण्णि पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

–विया. स. २४, उ. ३, सु. २-४

१७. गति की अपेक्षा नागकुमारों के उपपात का प्ररूपण–

प्र. भंते ! नागकुमार कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं, वे तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

शेष संपूर्ण कथन असंज्ञीतिर्यञ्च के नौ गमक पर्यन्त असुरकुमार के उद्देशक के समान कहना चाहिये। (१-९)

प्र. भंते ! यदि वे (नागकुमार) संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं–

तो क्या वे संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं या

असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यातवर्षायुष्क एवं असंख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं।

१८. नागकुमारोववज्जंतेसु असंखेज्जवासाउय सण्णिपंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं देसूणदुपलिओवमट्ठिइएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमए णं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **सेसं तं चेव असुरकुमारेसु उववज्जमाण वत्तव्वया भाणियव्वा,**

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं साईरेगा पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं देसूणाइं पंच पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (१ पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो एसा चेव पढम गमग वत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं–नागकुमारट्ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (२ विइओ गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, तस्स वि एसा चेव पढम गमग वत्तव्वया,

णवरं–ठिई-जहण्णेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

कालादेसेणं जहण्णेणं देसूणाइं चत्तारि पलिओवमाइं, उक्कोसेणं देसूणाइं पंच पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (३ तइओ गमओ)

१८. नागकुमारों में उत्पन्न होने वाले असंख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव जो नागकुमारों में उत्पन्न होता है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाला और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव (नागकुमार) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **शेष कथन इनके असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले गमकों के समान यहाँ भी कहना चाहिए।**

विशेष–कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटिवर्ष और उत्कृष्ट देशोन पाँच पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

वही जघन्यकाल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो तो उसका भी समग्र कथन प्रथम गमक के समान कहना चाहिए।

विशेष–यहाँ नागकुमारों की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए। (यह द्वितीय गमक है)

वही उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो तो उसके लिए भी यही प्रथम गमक के समान कथन है।

विशेष–स्थिति-जघन्य देशोन दो पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की होती है।

कालादेश से जघन्य देशोन चार पल्योपम उत्कृष्ट देशोन पाँच पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, तस्स तिसु वि गमएसु जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स एयस्स जहण्णकालट्ठिईयस्स वत्तव्वया भणिया तहेव निरवसेसं भाणियव्वा। (४-६) (चउत्थो, पंचम , छट्ठ गमा)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि तहेव तिण्णि गमगा भाणियव्वा जहा असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स, तिण्णि उक्कोस गमगा भणिया।

णवरं–नागकुमारट्ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (७-९) (सप्तम-अट्ठम-नवम गमा)

–विया. स. २४, उ. ३, सु. ५-१०

वही स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और नागकुमारों में उत्पन्न होने योग्य हो तो उसके भी तीनों (४-५-६) गमकों में असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य जघन्य काल की स्थिति वाले असंख्यातवर्षायुष्क संज्ञी तिर्यञ्च के तीनों गमकों के समान समग्र कथन करना चाहिए। (यह चौथा पांचवाँ छठा गमक है।)

वही स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले हो और नागकुमारों में उत्पन्न होने योग्य हो तो उसके भी तीनों (७-८-९) गमक असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्चयोनिक युगलिक के तीनों गमकों के समान कहने चाहिए।

विशेष–यहाँ नागकुमार की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए। (यह सातवां, आठवां नौवां गमक है)

१९. नागकुमारोववज्जंतेसु पज्जत्त संखेज्जवासाउयपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति–

किं पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंतिं, अपज्जत्तसंखेज्जवासाउय-सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पज्जत्तसंखेज्जवासाउय, नो अपज्जत्तसंखेज्ज-वासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं।

एवं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स वत्तव्वया भणिया तहेव इह वि नवसु गमएसु भाणियव्वा।

णवरं–नागकुमारट्ठिईं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९) *–विया. स. २४, उ. ३, सु. ११-१२*

१९. नागकुमारों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे (नागकुमार) संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो

क्या वे पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क या अपर्याप्त संख्यात-वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जो नागकुमारों में उत्पन्न होने योग्य हो तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न होता है,

इसी प्रकार जैसे असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च का कथन किया उसी प्रकार यहाँ भी नौ ही गमक कहने चाहिए।

विशेष–यहाँ नागकुमारों की स्थिति और संवेध उपयोग लगाकर जानना चाहिए।

२०. नागकुमारोववज्जंतेसु असंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति–किं सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो असण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति,

सेसं तं चेव जहा असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स।

प. असंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइय-कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

२०. नागकुमारों में उत्पन्न होने वाले असंख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे (नागकुमार) मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, असंज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं। इत्यादि असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य मनुष्यों के समान यहाँ भी समग्र कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यातवर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो नागकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न होता है?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं।

एवं जहेव असंखेज्जवासाउयाणं तिरिक्खजोणियाणं नागकुमारेसु आदिल्ला तिण्णि गमगा भणिया तहेव इमस्स वि भाणियव्वा,

णवरं–पढमबिइएसु गमएसु-सरीरोगाहणा जहण्णेणं साइरेगाइं पंचधणुसयाइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

तइय गमे-ओगाहणा जहण्णेणं देसूणाइं दो गाउयाइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं। (१-३) (पढम-बिइओ-तइओ गमा)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, तस्स तिसु वि गमएसु जहा तस्स चेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स वत्तव्वया भणिया तहेव निरवसेसं भाणियव्वा। (४-६) (चउत्थ-पंचम-छट्ठ गमा)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, तस्स तिसु वि गमएसु जहा तस्स चेव उक्कोसकालट्ठिईयस्स असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स वत्तव्वया भणिया तहेव निरवसेसं भाणियव्वा।

णवरं–नागकुमारट्ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (७-९) (सत्तम-अट्ठम-नवम गमगा)

–विया. स. २४, उ. ३, सु. १३-१६

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार असंख्यातवर्ष की आयु वाले तिर्यञ्चों के नागकुमारों में उत्पन्न होने सम्बन्धी प्रथम तीन गमक कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी तीनों गमक कहने चाहिए।

विशेष–पहले और दूसरे गमक में शरीरों की अवगाहना जघन्य कुछ अधिक पाँच सौ धनुष और उत्कृष्ट तीन गाउ होती है।

तीसरे गमक में अवगाहना जघन्य देशोन दो गाउ और उत्कृष्ट तीन गाउ होती है। (यह प्रथम द्वितीय तृतीय गमक है)

वही स्वयं (नागकुमार) जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो उसके भी तीनों गमकों में असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों के समान समग्र कथन करना चाहिए। (यह चौथा-पांचवाँ छट्ठा गमक है।)

वही (नागकुमार) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसके भी तीनों गमकों का कथन असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों का जैसा कहा है वैसा ही समग्र कथन करना चाहिए।।

विशेष–यहाँ नागकुमारों की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए। (यह सातवां, आठवां, नवमा गमक है।)

२१. नागकुमारोववज्जंतेसु पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णि मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति–किं पज्जत्तसंखेज्जवासाउय, अपज्जत्त-संखेज्जवासाउय सन्नि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्त संखेज्जवासाउय सन्नि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो अपज्जत्तसंखेज्जवासाउय सन्नि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. पज्जत्तसंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए नागकुमारेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं देसूणदोपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

एवं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स लद्धी भणिया सच्चेव निरवसेसा नवसु गमएसु इह वि भाणियव्वा।

णवरं–नागकुमारट्ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९)

–विया. स. २४, उ. ३, सु. १७-१८

२१. नागकुमारों में उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त या अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! पर्याप्त संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्य नागकुमारों में उत्पन्न हो तो भंते ! कितनी काल की स्थिति वाले (नागकुमारों में) उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न होते हैं,

इस प्रकार जैसे असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के नौ गमकों का कथन किया उसी प्रकार यहाँ भी नौ गमक कहने चाहिए।

विशेष–नागकुमारों की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए। (१-९)

२२. सुवण्णकुमाराई थणियकुमार पज्जत्तेसु उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

अवसेसा सुवण्णकुमाराई जाव थणियकुमार पज्जवसाणा अट्ठ वि उद्देसगा नागकुमाररुद्देसग सरिसा निरवसेसा भाणियव्वा।

–विया. स. २४, उ. ४-११, सु. १

२२. सुवर्णकुमार से स्तनितकुमार पर्यन्तों में उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

शेष सुवर्णकुमार से स्तनितकुमार पर्यन्त आठ भवनपति देवों के ये आठ उद्देशक भी नागकुमारों के उद्देशक के समान सम्पूर्ण रूप से कहने चाहिए।

२३. गइं पडुच्च पुढविकाइय उववाय परूवणं–

प. पुढविक्काइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति–
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिए-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिए-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहा वक्कंतीए उववाओ भणिओ तहा इहवि भाणियव्वो जाव

प. भंते ! जइ बायरपुढविक्काइयएगिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति–
किं पज्जत्त बायरपुढविक्काइय एगिंदियतिरिक्ख–जोणिएहिंतो उववज्जंति,
अपज्जत्त बायरपुढविक्काइय एगिंदियतिरिक्खजोणि–एहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहि वि उववज्जंति।

–विया. स. २४, उ. १२, सु. १

२३. गति की अपेक्षा पृथ्वीकायिकों के उपपात का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते है या तिर्यञ्चयोनिक मनुष्य और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के (छठे) व्युत्क्रान्ति पद में कहा गया है तदनुसार यहाँ भी उपपात कहना चाहिए। यावत्–

प्र. भंते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव) बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो–
क्या पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या
अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

२४. पुढविकाइए उववज्जंतेसु पुढविकाइयस्स उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. पुढविकाइए णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! अणुसमयं अविरहिया असंखेज्जा उववज्जंति।
सेसं तं चेव पण्होत्तराइं।
णवरं–छेवट्टसंघयणी।
सरीरोगाहणा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,
मसूरचंद संठिया।
चत्तारि लेस्साओ।
नो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।
नो नाणी, अण्णाणी, दो अण्णाणा नियमं।
नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी।
उवओगो दुविहो वि।

२४. पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य हो तो वह भंते ! कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे प्रतिसमय निरन्तर असंख्यात उत्पन्न होते हैं।
शेष प्रश्नोत्तर कथन पूर्ववत् है।
विशेष–वे सेवार्तसंहनन वाले होते हैं।
उनके शरीरों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है।
संस्थान (आकार) मसूर की दाल जैसा होता है।
चार लेश्याएँ होती हैं।
वे सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं, मिथ्यादृष्टि ही होती हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं होते।
वे ज्ञानी नहीं होते हैं, अज्ञानी ही होते हैं। उनमें दो अज्ञान (मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान) नियम से होते हैं।
वे मनोयोगी और वचनयोगी नहीं होते, काययोगी ही होते हैं।
उनके (साकार और अनाकार) दोनों उपयोग होते हैं।

चत्तारि सण्णाओ।

चारों संज्ञाएँ होती हैं।

चत्तारि कसाया।

चारों कषाय होते हैं।

एगे फासिंदिए पण्णत्ते।

एक मात्र स्पर्शेन्द्रिय कही गई है।

तिण्णि समुग्घाया।

(आदि के) तीन समुद्घात होते हैं,

वेदणा दुविहा।

(साता और असाता) दोनों वेदनाएं होती हैं।

नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा।

वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं होते किन्तु नपुंसकवेदी ही होते हैं।

ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की होती है।

अज्झवसाणा पसत्था वि, अप्पसत्था वि।

अध्यवसाय प्रशस्त और अप्रशस्त होते हैं।

अणुबंधो जहा ठिई।

अनुबन्ध स्थिति के अनुसार है।

प. से णं भंते ! पुढविक्काइए पुणरवि पुढविकाइए त्ति केवइयं कालं सेवेज्जा, केवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा ?

प्र. भंते ! वह पृथ्वीकायिक मरकर पुनः पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न हो तो कितना काल व्यतीत करता है और कितने काल तक गमनागमन करता है ?

उ. गोयमा ! भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं भवग्गहणाइं।

उ. गौतम ! भवादेश से वह जघन्य दो भव एवं उत्कृष्ट असंख्यात भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

कालादेश से वह जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह पहला गमक है।)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु उववज्जेजा।

यदि वह (पृथ्वीकायिक) जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक में उत्पन्न हो तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

सेसा वत्तव्वया निरवसेसा पढमगमगसरिसा भाणियव्वा। (२) विईओ गमओ।

शेष समग्र कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए। (यह द्वितीय गमक है)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं बावीसं वाससहस्सट्ठिईएसु उक्कोसेणं वि बावीसं वाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

यदि वह (पृथ्वीकायिक) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो जघन्य बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भी बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

सेसं तं चेव पढम गमग सरिसं।

शेष अनुबन्ध पर्यन्त सब कथन (प्रथम गमक के समान) जानना चाहिए।

णवरं-जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

विशेष-वह जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावत्तरं वाससहस्सुत्तरं सयसहस्सं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (३) तइओ गमओ)

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख छिहत्तर हजार (१,७६,०००) वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, सच्चेव पढम गमग वत्तव्वया भाणियव्वा।

वही (पृथ्वीकायिक) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिक में उत्पन्न हो तो समग्र कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए।

णवरं-लेस्साओ तिण्णि।

विशेष-उनमें लेश्याएँ तीन होती हैं।

ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की होती है।

अप्पसत्था अज्झवसाणा।

उसके अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं।

अणुबंधो जहा ठिई। (४ चउत्थो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, सच्चेव चउत्थगमगवत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं-उववाओ जहण्णेणं उक्कोसण वि अंतोमुहुत्तं। (५ पंचमो गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव वत्तव्वया चउत्थ गमग सरिसा।

णवरं-उववाओ जहण्णेण वि उक्कोसेण वि बावीसं वाससहस्साइं,

जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति, भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (६ छट्ठो गमओ)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, सच्चेव तइयगमगसरिसा वत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं-अप्पणा से ठिई जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं, उक्कोसेण वि बावीसं वाससहस्साइं। (७ सत्तमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, जहण्णेण अंतोमुहुत्तेसु उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तेसु उववज्जइ।

सेसं तं चेव सत्तम गमग सरिसा वत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं-कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (८ अट्ठमो गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं बावीसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि बावीसवाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जइ।

सेसं तं चेव सत्तमगमगवत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं-कालादेसेणं जहण्णेणं चोयालीसं वाससहस्साइं, उक्कोसेणं छावत्तरं वाससहस्सुत्तरं सयसहस्सं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (९ नवमो गमओ) *-विया. स. २४, उ. १२, सु. २-१२*

अनुबन्ध स्थिति के समान होता है। (यह चतुर्थ गमक है)

वही (जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक) जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो संपूर्ण कथन चतुर्थ गमक के समान करना चाहिए।

विशेष-जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति में उत्पन्न होता है। (यह पंचम गमक है)

यदि वह जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक उत्कृष्टकाल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक में उत्पन्न हो तो उसका कथन भी इसी प्रकार चौथे गमक के समान है।

विशेष-जघन्य-उत्कृष्ट बावीस हजार वर्ष की स्थिति में उत्पन्न होता है।

वह जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं, भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह छठा गमक है।)

वही (पृथ्वीकायिक) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो सम्पूर्ण कथन तृतीय गमक के समान करना चाहिए।

विशेष-उसकी स्वयं की स्थिति जघन्य बाईस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट भी बाईस हजार वर्ष की होती है। (यह सातवाँ गमक है।)

वही (अपनी उत्कृष्टकाल की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक) जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

शेष संपूर्ण कथन सातवें गमक के समान कहना चाहिए।

विशेष-कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह आठवाँ गमक है।)

वही (उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक जीव) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो जघन्य बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भी बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

शेष संपूर्ण कथन सप्तम गमक के समान कहना चाहिए।

विशेष-कालादेश से जघन्य चुम्मालीस (४४) हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख छिहत्तर हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवाँ गमक है।)

२५. पुढविकाइए उववज्जंतेसु आउकाइयस्स उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. भंते ! जइ आउक्काइयएगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-

२५. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले अप्कायिकों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! यदि (पृथ्वीकायिक जीव) अप्कायिक-एकेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं-

किं सुहुमआउक्काइयहिंतो उववज्जंति, बायर आउक्काइयहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. भंते ! जइ सुहुमआउक्काइयहिंतो उववज्जंति-किं पज्जत्तेहिंतो अपज्जतेहिंतो सुहुमआउकाइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. भंते ! जइ बायर आउक्काइएहिंतो उववज्जंति-किं पज्जत्तेहिंतो अपज्जत्तेहिंतो बायर आउक्काइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जंति।

प. आउक्काइए णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

एवं पुढविक्काइयगमगसरिसा नव गमगा भाणियव्वा,

णवरं–थिवुग बिंदुसंठिए।

ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तवाससहस्साइं।

एवं अणुबंधो वि।

भवादेसेणं पंच गमएसु जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं,

सेसेसु चउसु गमएसु जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं भवग्गहणाइं।

१. **तइय गमए**–कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं सोलसुत्तरं वाससयसहस्सं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

२. **छट्ठे गमए**–कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

३. **सत्तमे गमए**–कालादेसेणं जहण्णेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं सोलसुत्तरं वाससयसहस्सं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

४. **अट्ठमे गमए**–कालादेसेणं जहण्णेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

५. **नवमे गमए**–भवादेसेणं उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं, कालादेसेणं जहण्णेणं एकूणतीसं वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सोलसुत्तरं वाससयसहस्सं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

तो क्या सूक्ष्म अप्कायिक से आकर उत्पन्न होते हैं या बादर अप्कायिक से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! दोनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि सूक्ष्म अप्कायिकों से आकर उत्पन्न हो तो क्या पर्याप्त या अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिकों में से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! दोनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि बादर अप्कायिकों से उत्पन्न हो तो क्या पर्याप्त या अपर्याप्त बादर अप्कायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! दोनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! जो अप्कायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होता है।

इस प्रकार पृथ्वीकायिक के गमकों के समान अप्कायिक के भी नौ गमक जानने चाहिए।

विशेष–अप्कायिक का संस्थान स्तिवुक (बुलबुले) के आकार का है।

स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है और इतना ही अनुबन्ध काल है।

भवादेश से पाँच गमकों में जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण होते हैं,

शेष चार गमकों में जघन्य दो भव और उत्कृष्ट असंख्यात भव ग्रहण होते हैं।

१. **तीसरे गमक में**–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख सोलह हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल पर्यन्त गमनागमन करता है।

२. **छठे गमक में**–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

३. **सातवें गमक में**–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सात हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख सोलह हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

४. **आंठवें गमक में**–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक सात हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक अट्ठाईस हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

५. **नौवें गमक में**–भवादेश से उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है। कालादेश से जघन्य उनतीस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख सोलह हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

चउसु गमएसु-कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा ॥१-९॥

–विया. स. २४, उ. १२, सु. १३-१४

शेष चार गम्मों में-कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंख्यात वर्ष काल जितना समय व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (१-९)

२६. **पुढविकाइए उववज्जंतेसु तेउक्काइयाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-**

तेउक्काइयाण वि एसा चेव आउकाइय वत्तव्वया,

णवरं-नवसु वि गमएसु तिण्णि लेस्साओ।

सुईकलावसंठिया।

ठिई उक्कोसेणं तिण्णि अहोरत्ताइं।

तइय गमए-कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं बारसहिं राइंदिएहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं संवेहो नवसु गमएसु उवउंजिऊण भाणियव्वो (१-९)

–विया. स. २४, उ. १२, सु. १५

२६. **पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले तेजस्कायिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-**

तेजस्कायिकों का संपूर्ण कथन अप्कायिकों के समान है।

विशेष-नौ ही गमकों में तीन लेश्याएँ होती हैं।

तेजस्काय का संस्थान सूचीकलाप (सूइयों के ढेर) के समान होता है।

स्थिति उत्कृष्ट तीन अहोरात्र की है।

तीसरे गमक में-कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट बारह अहोरात्र अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

इसी प्रकार नौ ही गम्मों में संवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। (१-९)

२७. **पुढविकाइए उववज्जंतेसु वाउकाइयाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-**

वाउक्काइयाण वि एवं चेव नव गमगा जहेव तेउक्काइयाणं,

णवरं-पडाग संठाण संठिया पण्णत्ता।

ठिई-तिण्णि वाससहस्साइं,

तइय गमए-कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसंवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं एगं वाससयसहस्सं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं कायसंवेहो नवसु गमएसु उवउंजिऊण भाणियव्वो। (१-९)

–विया. स. २४, उ. १२, सु. १६

२७. **पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले वायुकायिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-**

वायुकायिकों के विषय में तेजस्कायिकों की तरह नौ ही गमक कहने चाहिए।

विशेष-वायुकाय का संस्थान पताका के आकार का कहा गया है।

स्थिति-उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की होती है।

तीसरे गमक में-काल की अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

इसी प्रकार नौ गम्मों में काय संवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। (१-९)

२८. **पुढविकाइए उववज्जंतेसु वणस्सइकाइयाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-**

आउकाइयगमगसरिसा वणस्सइकाइयाणं नव गमगा भाणियव्वा,

णवरं-नाणा संठाण संठिया।

सरीरोगाहणा पढमएसु पच्छिल्लएसु य तिसु-तिसु गमएसु जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं,

मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं,

ठिई-उक्कोसेणं दसवाससहस्साइं।

तइय गमए-कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसुत्तरं वाससयसहस्सं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं काय संवेहो उवउंजिऊण भाणियव्वो। (१-९)

–विया. स. २४, उ. १२, सु. १७

२८. **पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले वनस्पतिकायिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-**

अप्कायिकों के गमकों के समान वनस्पतिकायिकों के भी नौ गमक कहने चाहिए।

विशेष-संस्थान अनेक प्रकार का होता है।

शरीर की अवगाहना प्रथम तीन और अन्तिम तीन गमकों में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन की होती है।

मध्य के तीन गमकों में उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है।

स्थिति-उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की होती है।

तृतीय गमक में-कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक लाख अट्ठाईस हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

इसी प्रकार काय संवेध भी उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। (१-९)

२९. पुढविकाइए उववज्जंतेसु वेइंदियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ वेइंदिएहिंतो उववज्जंति-किं पज्जत्ता-वेइंदिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्ता-वेइंदिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पज्जत्ता-वेइंदिएहिंतो वि उववज्जंति, अपज्जत्ता- वेइंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

प. वेइंदिए णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु उववज्जेज्जा उक्कोसेणं वावीसं वाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

सेसं तं चेव पण्होत्तराणि जहा पुढविकाइयाणं,

णवरं–छेवट्ट संघयणी।

ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं वारस जोयणाइं।

हुंडसंठिया।

तिण्णि लेसाओ।

सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

दो नाणा, दो अण्णाणा नियमं।

नो मणजोगी, वइजोगी वि, कायजोगी वि।

उवओगो दुविहो वि।

चत्तारि सण्णाओ।

चत्तारि कसाया।

दो इंदिया पण्णत्ता, तं जहा–

जिब्भिंदिए य, फासिंदिए य।

तिण्णि समुग्घाया।

ठिई–जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वारस संवच्छराइं।

एवं अणुंवधो वि। सेसं तं चेव जहा पुढविकाइयाणं।

भवादेसेणं-जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं-जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं संखेज्ज कालं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१ पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव पढम गमग सरिसा सव्वा वत्तव्वया। (२ विइओ गमओ)

२९. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे द्वीन्द्रिय जीवों से आकर उत्पन्न हो तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे पर्याप्त द्वीन्द्रियों से भी उत्पन्न होते हैं और अपर्याप्त द्वीन्द्रियों से भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! जो द्वीन्द्रिय जीव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वे कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

शेष प्रश्नोत्तर पृथ्वीकाय के समान है।

विशेष–वे सेवार्तसंहनन वाले होते हैं।

अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट वारह योजन की है।

हुंडक संस्थान वाले होते हैं।

(आदि की) तीन लेश्याएँ होती हैं।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होते हैं, किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं।

दो ज्ञान और दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

मनोयोगी नहीं होते किन्तु वचनयोगी और काययोगी होते हैं।

दो उपयोग पाये जाते हैं।

चार संज्ञाए होती हैं।

चार कषाय होते हैं।

उनके दो इन्द्रियाँ कही गई हैं, यथा–

जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय।

उनमें (आदि के) तीन समुद्घात होते हैं।

स्थिति–जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट वारह वर्ष की होती है।

अनुवन्ध भी इसी प्रकार है। शेष सब कथन पृथ्वीकाय के समान है।

भवादेश से–वे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट संख्यात भव ग्रहण करते हैं।

कालादेश से वे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल जितना काल व्यतीत करते हैं और इतने ही काल तक गमनागमन करते हैं। (यह प्रथम गमक है।)

वही (द्वीन्द्रिय) जीव जघन्य काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो सभी कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए। (यह द्वितीय गमक है)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो एसा चेव पढम गमगसरिसा सव्वा वत्तव्वया।

णवरं—उववायं ठिई उवउंजिऊण भाणियव्वं।

भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठभवग्गहणाइं।

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं अडयालीसाए संवच्छरेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (तइओ गमओ)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, तस्स वि एस चेव पढम गमग वत्तव्वया तिसु वि गमएसु,

णवरं—इमाइं सत्त णाणत्ताइं—

१. सरीरोगाहणा-जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइ भागं,
२. नो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी,
३. दो अण्णाणा नियमं,
४. नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी,
५. ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं,
६. अज्झवसाणा अप्पसत्था,
७. **अणुबंधो जहा ठिई।**

तइय गमए—भवादेसो उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (४-६) (चउत्थ-पंचम छट्ठ गमा)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, एयस्स वि पढमगमगसरिसा तिण्णि गमगा भाणियव्वा,

णवरं—तिसु वि गमएसु ठिई जहण्णेण वि उक्कोसेण वि बारस संवच्छराइं।

एवं अणुबंधो वि।

भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं उवउंजिऊण भाणियव्वं,

नवमे गमए-जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं बारसहिं संवच्छरेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं अडयालीसाए संवच्छरेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (७-९) (सत्तम-अट्ठम-नवम गमा)

—विया. स. २४, उ. १२, सु. १८-२४

यदि वही (द्वीन्द्रिय) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो सभी कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए।

विशेष—उपपात स्थिति उपयोग पूर्वक कहनी चाहिए।

भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अड़तालीस वर्ष अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है।)

वही (द्वीन्द्रिय) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न हो तो उसके भी तीनों गमक (४-५-६) प्रथम गमक के समान कहने चाहिए।

विशेष—यहाँ सात बोलों में अन्तर है, यथा—

१. शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग होती है।
२. वह सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होता, किन्तु मिथ्यादृष्टि होता है।
३. इसमें दो अज्ञान नियमतः होते हैं।
४. मनोयोगी और वचनयोगी नहीं होता, किन्तु काययोगी होता है।
५. जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।
६. अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं।
७. **अनुबन्ध स्थिति के अनुसार है।**

तृतीय (छट्ठे) गमक में—भवादेश भी उसी प्रकार उत्कृष्ट आठ भव जानना चाहिए।

कालादेश से जघन्य अंतर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अंतर्मुहूर्त अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह चौथा, पाँचवाँ और छठा गमक है)

वही (द्वीन्द्रिय जीव) स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न हो तो उसके भी तीनों गमक (७-८-९) प्रथम गमक के समान कहने चाहिए।

विशेष—इन (अन्तिम) तीनों गमकों में स्थिति जघन्य बारह वर्ष और उत्कृष्ट भी बारह वर्ष की होती है।

अनुबन्ध भी इसी प्रकार होता है।

भवादेश से जघन्य—दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

कालादेश उपयोग लगा करके कहना चाहिए।

नौवें गमक में—जघन्य बारह वर्ष अधिक बावीस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अड़तालीस वर्ष अधिक अट्ठयासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

(यह सातवाँ, आठवाँ और नौवाँ गमक है)

३०. पुढविकाइए उववज्जंतेसु तेइंदियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

तेइंदियाण वि एवं चेव नव गमगा बेइंदिय सरिसा भाणियव्वा,

णवरं–सरीरोगाहणा उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

तिण्णि इंदियाइं।

ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणपन्नं राइंदियाइं।

तइय गमए-कालादेसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं छण्णउयराइंदियसयमब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

उववाओ ठिई, संवेहो य उवउंजिऊण भाणियव्वो (१-९)

–विया. सं. २४, उ. १२, सु. २५

३०. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले त्रीन्द्रिय जीवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

द्वीन्द्रिय के समान त्रीन्द्रिय जीवों के भी नौ गमक कहने चाहिए।

विशेष–शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट तीन गाउ (कोश) होती है।

इनके तीन इन्द्रियाँ होती हैं।

इनकी स्थिति–जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट गुणपचास (४९) अहोरात्र की होती है।

तृतीय गमक में–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सौ छिनवें (१९६) अहोरात्र अधिक अठ्यासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

उपपात स्थिति और कालादेश उपयोग लगाकर कहने चाहिए। (१-९)

३१. पुढविकाइए उववज्जंतेसु चउरिंदियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

चउरिंदियाण वि नव गमगा बेइंदिय सरिसा भाणियव्वा,

णवरं–सरीरोगाहणा-जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं,

ठिई जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण य छम्मासा।

एवं अणुबंधो वि।

चत्तारि इंदियाइं।

उववायं ठिई संवेहो य उवउंजिऊण भाणियव्वो।

नवम गमए–कालादेसेणं जहण्णेणं बावीसं वाससहस्साइं छहिं मासेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं अट्ठासीइं वाससहस्साइं चउवीसाए मासेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१-९)

–विया. स. २४, उ. १२, सु. २६

३१. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले चतुरिन्द्रिय जीवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

चतुरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी नौ गमक बेइन्द्रिय के समान कहने चाहिए।

विशेष–इनके शरीरों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट चार गाउ की होती है।

इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट छह मास की होती है।

अनुबंध भी स्थिति के समान होता है।

इनके चार इन्द्रियाँ होती है।

उपपात स्थिति संवेध उपयोग लगाकर कहना चाहिए।

नौवें गमक में–कालादेश से जघन्य छह मास अधिक बावीस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चौवीस मास अधिक अठ्यासी हजार वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (१-९)

३२. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए पडुच्च पुढविकाइय उववाय परूवणं–

प. भंते ! जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

प. भंते ! जइ असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं जलचरेहिंतो उववज्जंति, थलचरेहिंतो उववज्जंति, खहचरेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! तीहिं वि उववज्जंति,

प. भंते ! जइ जलचर-थलचर-खहचरेहिंतो उववज्जंति किं–पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

३२. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की अपेक्षा पृथ्वीकाय के उपपात का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचरों से आकर उत्पन्न होते हैं, स्थलचरों से आकर उत्पन्न होते हैं या खेचरों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे तीनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! यदि जलचर-स्थलचर और खेचरों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

-विया. स. २४, उ. १२, सु. २७-२८

उ. गौतम ! वे दोनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

३३. पुढविकाइए उववज्जंतेसु असन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं बावीस वाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **सच्चेव बेइंदियस्स गमगाणं लद्धी भाणियव्वा,**

णवरं-सरीरोगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।

पंच इंदिया।

ठिई-अणुबंधो य जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भवादेसेणं सव्वगमएसु जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

पढमगमए-कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ अट्ठासीईए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं नवसु वि गमएसु उववाय, ठिई, कायसंवेहो उवउंजिऊण भाणियव्वं।

सत्तम अट्ठम णवम गमए ठिई अणुबंधो य जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

नवमगमए-कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ अट्ठासीईए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१-९)

-विया. स. २४, उ. १२, सु. २९-३०

३३. पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव जो पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है, तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव (असंज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **द्वीन्द्रिय के नौ गमकों में जिस प्रकार कहा गया है उसी प्रकार यहाँ कहना चाहिए।**

विशेष-इनके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार योजन की है।

पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

स्थिति और अनुबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष का है।

भवादेश-सभी गम्मों में जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करते हैं।

प्रथम गमक में-कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अट्ठयासी हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

नौ ही गमकों में उपपात, स्थिति एवं कालादेश उपयोगपूर्वक कहना चाहिए।

सातवें आठवें नौवें गम्मे में स्थिति और अनुबंध जघन्य पूर्वकोटि वर्ष तथा उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष जानना चाहिए।

नौवें गमक में-कालादेश से जघन्य बावीस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट अट्ठयासी हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है (१-९)

३४. पुढविकाइए उववज्जंतेसु सन्नि पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. भंते ! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, असंखेज्जवासाउय सण्णि पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय सण्णि पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, णो असंखेज्जवासाउय सण्णि पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

३४. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो, क्या वे संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, असंख्यातवर्ष की आयु वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प. जइ संखेज्जवासाउय सन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं-जलचरेहिंतो उववज्जंति?

उ. इच्चेव सव्वा वत्तव्वया जहा असण्णीणं जाव उववाओ भाणियव्वो।

सेसं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स सण्णि पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स वत्तव्वया भणिया तहेव इह वि भाणियव्वा।

णवरं-पढम गमए-कालादेसेणं-जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ अट्ठासीईए वाससहस्सेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं काय संवेहो नवसु वि गमएसु जहा असण्णीणं भणिओ तहेव निरवसेसो भाणियव्वो।

मज्झिल्लएसु तिसु वि गमएसु इमाइं नव नाणत्ताइं, तं जहा-

१. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं।
२. तिण्णि लेसाओ।
३. मिच्छादिट्ठी।
४. दो अण्णाणा।
५. काययोगी।
६. तिण्णि समुग्घाया।
७. ठिई-जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।
८. अज्झवसाणा अप्पसत्था।
९. अणुबंधो जहा ठिई।

पच्छिल्लएसु तिसु वि गमएसु-ठिई अणुबंधो य जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

सेसं उववाय संवेहो य उवउंजिऊण भाणियव्वो।(१-९)

-विया. स. २४, उ. १२, सु. ३१-३३

प्र. यदि पृथ्वीकायिक संख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या जलचरों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. इत्यादि समग्र कथन पूर्वोक्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के समान उपपात पर्यन्त जानना चाहिए।

शेष कथन रत्नप्रभा में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के समान यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष-प्रथम गमक में-कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अट्ठयासी हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटि जितना काल व्यतीत करते हैं और इतने ही काल तक गमनागमन करते हैं।

इसी प्रकार नौ ही गमकों में असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों की तरह काय संवेध का समग्र कथन करना चाहिए।

मध्य के तीन (४-५-६) गमकों में नौ बोलों में भिन्नताएँ हैं, यथा-

१. शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट भी अंगुल का असंख्यातवां भाग है।
२. लेश्याएँ (आदि की) तीन होती हैं।
३. मिथ्यादृष्टि होते हैं।
४. दो अज्ञान होते हैं।
५. काययोगी होते हैं।
६. आदि के तीन समुद्घात होते हैं।
७. स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त होती है।
८. अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं।
९. अनुबंध भी स्थिति के अनुसार होता है।

अन्तिम तीन (७-८-९) गमकों में-स्थिति और अनुबंध जघन्य पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष का होता है।

शेष उपपात और संवेध उपयोग पूर्वक जानना चाहिए।(१-९)

३५. मणुस्से पडुच्च पुढविकाइय उववाय परूवणं-

प. भन्ते ! जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति-किं सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सण्णिमणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, असण्णिमणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति।

-विया. स. २४, उ. १२, सु. ३४

३५. मनुष्यों की अपेक्षा पृथ्वीकायिकों के उपपातादि का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संज्ञी मनुष्यों से आकर भी उत्पन्न होते हैं और असंज्ञी मनुष्यों से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

३६. पुढविकाइए उववज्जंतेसु असन्नि मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. असण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए पुढविकाइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

३६. पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! असंज्ञी मनुष्य जो पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है?

उ. गोयमा ! जहा असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स जहण्णकालट्ठिईयस्स तिण्णि गमगा भणिया तहा एयस्स वि ओहिया तिण्णि गमगा निरवसेसं भाणियव्वा (१-३) सेसा छ गमगा न भवंति। *–विया. स. २४, उ. १२, सु. ३५*

३७. पुढविक्काइए उववज्जंतेसु सन्नि मणुस्साणं उववायाइ बीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति-किं संखेज्जवासाउय सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असंखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तासंखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तासंखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

प. सण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयकालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **जहेव रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स मणूसस्स लद्धी भणिया तहेव तिसु वि गमएसु इह वि भाणियव्वा,**

णवरं–ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं।

ठिई-अणुबंधो जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

कायसंवेहो जहेव सण्णिपंचिंदियस्स पुढविक्काइए उववज्जमाणस्स तहेव भाणियव्वं। (१-३)

मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु लद्धी जहेव सण्णिपंचिंदियस्स मज्झिल्लेसु तिसु गमएसु। (४-६)

पच्छिल्ला तिण्णि गमगा जहा एयस्स चेव ओहिया गमगा,

णवरं–ओगाहणा जहण्णेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंचधणुसयाइं।

ठिई अणुबंधो य जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

काय संवेहो उवउंजिऊण भाणियव्वो। (७-९)

–विया. स. २४, उ. १२, सु. ३६-३९

३८. देवे पडुच्च पुढविकाइय उववाय परूवणं–

प. भंते ! जइ देवेहिंतो उववज्जंति-किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति, वाणमंतरदेवेहिंतो, जोइसियदेवेहिंतो, वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार जघन्य काल की स्थिति वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के विषय में तीन गमक कहे गए हैं, उसी प्रकार यहां भी औधिक तीन गमक (१-२-३) सम्पूर्ण कहने चाहिए। (१-३) शेष छ गमक नहीं होते हैं।

३७. पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले संज्ञी मनुष्यों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले या असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यातवर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! यदि वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! (संख्यातवर्षायुष्क पर्याप्त) संज्ञी मनुष्य जो पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **रत्नप्रभा में उत्पन्न होने वाले मनुष्य का जो कथन पूर्व में किया है वही यहाँ भी तीनों गमकों में कहना चाहिए।**

विशेष–उसके शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष की होती है,

स्थिति-अनुबंध जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की होती है।

कायसंवेध-जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च के पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने का कहा है, वैसे ही यहां कहना चाहिए (१-३)

मध्य के तीन गमकों (४-५-६) का संपूर्ण कथन संज्ञी पंचेन्द्रिय के मध्य के तीनों गमकों के समान कहना चाहिए।। (४-६)

पिछले तीनों गमकों (७-८-९) का कथन इसी के आदि के तीन औधिक गमकों के समान कहना चाहिए।

विशेष–शरीर की अवगाहना जघन्य पांच सौ धनुष की और उत्कृष्ट भी पांच सौ धनुष की है।

स्थिति और अनुबन्ध जघन्य पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष है।

कायसंवेध उपयोग पूर्वक कहना चाहिए। (७-९)

३८. देवों की अपेक्षा पृथ्वीकायिक में उपपात का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क या वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

–विया. स. २४, उ. १२, सु. ४०

३९. पुढविकाइए उववज्जंतेसु भवणवासिदेवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति-किं असुरकुमारभवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति जाव थणियकुमारभवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! असुरकुमारभवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव थणियकुमारभवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. असुरकुमारेणं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं बावीस वाससहस्सट्ठिईएसु।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किं संघयणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छण्हं संघयणाणं असंघयणी जाव परिणमंति।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं के महालिया सरीरोगाहणा ?

उ. गोयमा ! दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तर वेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्सअसंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किं संठिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते समचउरंस-संठाणसंठिया पण्णत्ता।

२. तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते नाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता।

लेस्साओ चत्तारि।

दिट्ठी तिविहा वि।

तिण्णि नाणा नियमं, तिण्णि अण्णाणा भयणाए।

जोगो तिविहो वि।

उवओगो दुविहो वि।

उ. गौतम ! वे भवनवासी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

३९. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले भवनवासी देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे असुरकुमार-भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे असुरकुमार-भवनवासी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! जो असुरकुमार पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! उन जीवों के शरीर किस प्रकार के संहनन वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके शरीर छहों प्रकार के संहननों से रहित होते हैं यावत् परिणत होते हैं।

प्र. भन्ते ! उन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है ?

उ. गौतम ! शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीय, २. उत्तरवैक्रिय।

१. उनमें जो भवधारणीय अवगाहना है, वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात रत्नि (हाथ) की है।

२. उनमें जो उत्तरवैक्रिय अवगाहना है, वह जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है।

प्र. भन्ते ! उन जीवों के शरीर का संस्थान कौन-सा कहा गया है ?

उ. गौतम ! (संस्थान) दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भवधारणीय, २. उत्तरवैक्रिय।

१. उनमें जो भवधारणीय शरीर हैं, वे समचतुरस्रसंस्थान वाले कहे गए हैं,

२. जो उत्तर वैक्रिय शरीर हैं, वे अनेक प्रकार के संस्थान वाले कहे गए हैं।

उनके चार लेश्याएं होती हैं।

उनमें तीन दृष्टियां होती हैं।

उनके तीन ज्ञान नियमतः होते हैं और तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से पाये जाते हैं।

योग तीनों ही पाये जाते हैं।

उपयोग दोनों ही होते हैं।

चत्तारि सण्णाओ। — चारों संज्ञाएं होती हैं।

चत्तारि कसाया। — चारों कषाएं होती हैं।

पंच इंदिया। — पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

पंच समुग्घाया। — पाँचों समुद्घात पाये जाते हैं।

वेयणा दुविहा वि। — वेदना दो प्रकार की होती हैं।

इत्थिवेदगा वि, पुरिसवेदगा वि, नो नपुंसगवेदगा। — वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी होते हैं किन्तु नपुंसकवेदी नहीं होते हैं।

ठिई जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं। — उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की होती है।

अज्झवसाणा असंखेज्जा पसत्था वि, अप्पसत्था वि। — उनके अध्यवसाय असंख्यात होते हैं। वे प्रशस्त और अप्रशस्त होते हैं।

अणुबंधो जहा ठिई। — अनुबंध स्थिति के अनुसार होता है।

भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं, — भवादेश से वह दो भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। — कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष कुछ अधिक सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

एवं नव वि गमगा णं लद्धी नेयव्वा। — इसी प्रकार नौ ही गमकों की लब्धि जाननी चाहिए।

ठिई कालादेसं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। — उपपात स्थिति कालादेश उपयोगपूर्वक जानना चाहिए।

नवम गमए—कालादेसेणं जहण्णेणं साइरेगं सागरोवमं बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, उक्कोसेण वि साइरेगं सागरोवमं बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१-९) — नौवें गमक में—कालादेश से जघन्य और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक साधिक सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है (१-९)

नागकुमाराणं एसा चेव वत्तव्वया जहा असुरकुमाराणं। — नागकुमारों के लिए भी असुरकुमारों के समान ही कथन करना चाहिए।

णवरं—ठिई-अणुबंधो जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं। — विशेष—स्थिति और अनुबंध जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम का होता है।

पढम गमए-कालादेसेणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियाइं। — प्रथम गमक में—कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक देशोन दो पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

एवं नव वि गमगाणं ठिई कालादेसं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९) — इसी प्रकार नौ ही गमकों में स्थिति कालादेश उपयोगपूर्वक जानना चाहिए। (१-९)

एवं जाव थणियकुमाराणं जहा नागकुमाराणं। — इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त नौ गमक नागकुमारों के समान जानना चाहिए।

—विया. स. २४, उ. १२, सु. ४१-४७

४०. पुढविकाइए उववज्जंतेसु वाणमंतरदेवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवण—

४०. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले वाणव्यन्तर देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण—

प. भंते ! जइ वाणमंतरेहिंतो उववज्जंति-किं पिसायवाणमंतरदेवेहिंतो उववज्जंति जाव गंधव्ववाणमंतरदेवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! पिसायवाणमंतरदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव गंधव्ववाणमंतरदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव) वाणव्यन्तर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे पिशाच वाणव्यन्तरों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गन्धर्व वाणव्यन्तरों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे पिशाच वाणव्यन्तर देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गंधर्व वाणव्यन्तरों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प. वाणमंतरदेवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! एएसिं पि असुरकुमारगमगसरिसा नव गमगाणं लद्धी भाणियव्वा।

णवरं–ठिई-जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमं उववाय-कायसंवेहं च उवउंजिऊण भाणियव्वं।(१-९) –विया. स. २४, उ. १२, सु. ४८-४९

४१. पुढविकाइए उववज्जंतेसु जोइसिय देवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति-किं चंदविमाण-जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाण-जोइसियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव ताराविमाण जोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जोइसियदेवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिइएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! सव्वा लद्धी जहा असुरकुमाराणं,

णवरं–एगा तेउलेस्सा पण्णत्ता।

तिण्णि नाणा, तिण्णि अण्णाणा नियमं।

ठिई जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं।

एवं अणुबंधो वि।

पढमगमए-कालादेसेणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्सेणं बावीसाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं सेसा वि अट्ठगमगा असुरकुमार सरिसा भाणियव्वा,

णवरं–ठिई, कालादेसं उववायं, णाणत्तं च उवउंजिऊण भाणियव्वा।(१-९) –विया. स. २४, उ. १२, सु. ५०-५१

४२. पुढविकाइए उववज्जंतेसु वेमाणिय देवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जति-किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति, कप्पातीय-वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जति ?

उ. गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति, नो कप्पातीयवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति।

प्र. भन्ते ! जो वाणव्यन्तर देव पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! इनके भी नौ गमकों का वर्णन असुरकुमारों के नौ गमकों के समान कहना चाहिए।

विशेष–इनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है। उपपात और काय संवेध उपयोग लगाकर जानना चाहिए। (१-९)

४१. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले ज्योतिष्क देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक) ज्योतिष्क देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे चन्द्रविमान-ज्योतिष्क देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान ज्योतिष्क देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे चन्द्रविमान-ज्योतिष्क देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान-ज्योतिष्क देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्क देव जो पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वे कितने काल की स्थिति वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! समग्र कथन असुरकुमारों के समान जानना चाहिए।

विशेष–इनके एक मात्र तेजोलेश्या कही गई है।

इनमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमतः होते हैं।

स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की होती है।

अनुबंध भी स्थिति के अनुसार जानना चाहिए।

प्रथम गमक में–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष अधिक एक लाख वर्ष सहित एक पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

इसी प्रकार शेष आठ गमक भी असुरकुमार के समान कहने चाहिए।

विशेष–स्थिति, कालादेश, उपपात एवं अन्तर उपयोग पूर्वक समझना चाहिए। (१-९)

४२. पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले वैमानिक देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे (पृथ्वीकायिक जीव) वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं या कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

४४. तेउक्काइए उववज्जंतेसु दस दंडगाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. तेउक्काइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति,
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पुढविक्काइयउद्देसग सरिसा दस दंडगाणं नव गमग वत्तव्वया सव्वा भाणियव्वा,
णवरं–उववाय ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

देवेहिंतो न उववज्जंति।
मणुस्सेहिंतो उववज्जमाणस्स भवादेसेणं दो भवग्गहणाइं।
–विया. स. २४, उ० १४, सु. १

४४. तेजस्कायिकों में उत्पन्न होने वाले दस दंडकों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! तेजस्कायिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ भी पृथ्वीकायिक उद्देशक के समान दस औदारिक दंडकों के नौ गमकों का संपूर्ण कथन करना चाहिए।
विशेष–इनका उपपात, स्थिति और संवेध उपयोग पूर्वक समझना चाहिये।
(तेजस्कायिक जीव) देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।
मनुष्यों से आकर उत्पन्न होने वाले तेजस्कायिक भवादेश से दो भव ही ग्रहण करते हैं

४५. वाउक्काइए उववज्जंतेसु दस दंडगाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. वाउक्काइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति–
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहेव तेउक्काइय उद्देसओ भणियो तहेव इह वि दस दंडगाणं नव गमग वत्तव्वया सव्वा भाणियव्वा।
णवरं–उववाय ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।
–विया. स. २४, उ. १५, सु. १,

४५. वायुकायिकों में उत्पन्न होने वाले दस दंडकों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वायुकायिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! तेजस्कायिक उद्देशक के समान दस दंडकों के नौ गमकों का समग्र कथन करना चाहिए।
विशेष–उपपात स्थिति और संवेध उपयोग पूर्वक जानना चाहिए।

४६. वणस्सइकाइए उववज्जंतेसु तेवीसदंडगाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. वणस्सइकाइया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति–
किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पुढविक्काइय उद्देसग सरिसा तेवीस दंडगाणं नव गमग वत्तव्वया सव्वा भाणियव्वा।
णवरं–जाहे वणस्सइकाइओ वणस्सइकाइएसु उववज्जंति ताहे पढम-बिइय-चउत्थ-पंचमेसु गमएसु–
परिमाणं-अणुसमयं अविरहियं अणंता उववज्जंति।
भवादेसेणं-जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अणंताइं भवग्गहणाइं।
कालादेसेणं-जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं अणंतं कालं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।
सेसा पंच गमा अट्ठभवग्गहणिया तहेव पुढवी सरिसा भाणियव्वा।
णवरं–उववाय ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।
–विया. स. २४, उ. १६, सु. १

४६. वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न होने वाले तेवीस दंडकों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वनस्पतिकायिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?
क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! यहाँ पृथ्वीकायिक उद्देशक के समान तेवीस दंडकों के नौ गमकों का संपूर्ण कथन करना चाहिए।
विशेष–जब वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिक जीवों में उत्पन्न होते हैं तब पहले दूसरे चौथे और पांचवे गमक में–
परिमाण–प्रतिसमय निरंतर अनंत उत्पन्न होते हैं।
भवादेश से–वे जघन्य दो भव और उत्कृष्ट अनन्त भव ग्रहण करते हैं।
कालादेश से–जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, इतना समय व्यतीत करते हैं और इतने ही काल तक गमनागमन करते हैं।
शेष पांच गमकों में आठ भव पृथ्वीकाय के समान कहने चाहिए।
विशेष–उपपात स्थिति और संवेध उपयोग पूर्वक जानना चाहिए।

४७. बेइंदिए उववज्जंतेसु दस दंडगाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. बेइंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहेव पुढवीकाइए उद्देसओ तहा जाणेज्जा।

४७. द्वीन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले दस दंडकों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकाय के समान उपपात जानना चाहिए।

णवरं-वेइंदिया दस दंडगाओ उववज्जंति।

प. पुढविक्काइए णं भंते ! जे भविए वेइंदिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तेसु उववज्जेज्जा, उक्कोसेणं दुवालसवासट्ठिइएसु उववज्जेजा।

सेसं पुढविकाइय सरिसा दस दण्डगाणं नव गमग वत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं-चउसु गमएसु उक्कोसेणं संखेज्जाइं भवग्गहणाइं, कालादेसेणं-उक्कोसेणं संखेज्जं कालं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

उववाय ठिई संवेहो सव्वत्थ उवउंजिऊण भाणियव्वो।

-विया. स. २४, उ. १७, सु. १-२

विशेष-वे वेइन्द्रिय दस दंडकों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीव जो द्वीन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वे कितने काल की स्थिति वाले द्वीन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जघन्य अंतर्मुहूर्त की स्थिति में उत्कृष्ट बारह वर्ष की स्थिति में उत्पन्न होते हैं ।

शेष समग्र कथन पृथ्वीकाय के समान दस दंडकों के नौ गमकों का यहाँ भी कथन करना चाहिए।

विशेष-चारों गमकों में उत्कृष्ट संख्यात भव ग्रहण करते हैं।

कालादेश से उत्कृष्ट संख्यात काल व्यतीत करते हैं और इतने ही काल तक गमनागमन करते हैं।

उपपात स्थिति और संवेध सभी गम्मों में उपयोग पूर्वक कहना चाहिए।

४८. तेइंदिए उववज्जंतेसु दस दंडएसु उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

तेइंदियाणं सव्वा लद्धी वेइंदिए उद्देसग सरिसा दस दंडगाणं नवसु वि गमएसु भाणियव्वा।

णवरं-उववाय ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा, तं जहा-

तेउक्काइएसु समं तइयगमे उक्कोसेणं अट्ठुत्तराइं बेराइंदियसयाइं,

वेइंदिएहिं समं तइयगमे उक्कोसेणं अडयालीसं संवच्छराइं छण्णउयराइंदियसयमब्भहियाइं,

तेइंदिएहिं समं तइयगमे उक्कोसेणं बाणउयाइं तिण्णि राइंदियसयाइं। *-विया. स. २४, उ. १८, सु. १*

४८. त्रीन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले दस दंडकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

द्वीन्द्रिय-उद्देशक के समान त्रीन्द्रियों के विषय में भी दस दंडकों के नौ-नौ गम्मों का संपूर्ण कथन करना चाहिए।

विशेष-उपपात स्थिति और संवेध उपयोग पूर्वक जानना चाहिए, यथा-

तेजस्कायिकों के साथ (त्रीन्द्रियों का संवेध) तीसरे गमक में उत्कृष्ट दो सो आठ रात्रि दिवस है।

द्वीन्द्रियों के साथ तीसरे गमक में उत्कृष्ट एक सौ छिनवें (१९६) रात्रि दिवस अधिक अड़तालीस वर्ष है।

त्रीन्द्रियों के साथ तीसरे गमक में उत्कृष्ट तीन सौ बराणवें (३९२) रात्रि दिवस है।

४९. चउरिंदिय उववज्जंतेसु दस दंडगाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

जहा तेइंदियाणं उद्देसओ तहेव चउरिंदिय उद्देसओ वि भाणियव्वो।

णवरं-उववाय ठिइ संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

-विया. स. २४, उ. १९, सु. १

४९. चतुरिन्द्रियों में उत्पन्न होने वाले दस दंडकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

जिस प्रकार त्रीन्द्रिय-उद्देशक कहा है उसी प्रकार चतुरिन्द्रिय उदेशक भी कहना चाहिए।

विशेष-उपपात, स्थिति और संवेध उपयोग पूर्वक जानना चाहिए।

५०. गइ पडुच्च पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय उववाय परूवणं-

प. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति-किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, देवेहिंतो वि उववज्जंति। *-विया. स. २४, उ. २०, सु. १*

५०. गति की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपात का प्ररूपण-

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों में से आकर, तिर्यञ्चयोनिकों में से आकर, मनुष्यों में से आकर उत्पन्न होते हैं या देवों में से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं, तिर्यञ्चयोनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न होते हैं तथा देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

५१. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंतेसु नेरइयाणं उववायाइ वीसं दार परूवणं-

प. [illegible]

५१. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले नैरयिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! यदि वे (पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो-

किं रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति जाव अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमपुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जंति।

प. रयणप्पभापुढविनेरइए णं भंते ! जे भविए पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! जहा असुरकुमाराणं पुढविकाइएसु उववज्ज-माणाणं वत्तव्वया भणिया सा चेव इह वि भाणियव्वा।

णवरं–संघयणे पोग्गला अणिट्ठा अकंता जाव अमणामा परिणमंति।

ओगाहणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्चंगुलाइं।

२. तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्ढाइज्जाओ रयणीओ।

प. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा किं संठिया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवधारणिज्जा य, २. उत्तरवेउव्विया य।

१. तत्थ णं जे ते भवधारणिज्जा ते हुंडसंठिया पण्णत्ता।

२. तत्थ णं जे ते उत्तरवेउव्विया ते वि हुंडसंठिया पण्णत्ता।

एगा काउलेस्सा पण्णत्ता।

समुग्घाया चत्तारि।

नो इत्थिवेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा।

ठिई जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं सागरोवमं।

एवं अणुबंधो वि,

भवादेसेणं–जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं–जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

क्या वे रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वे अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम-पृथ्वी के नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! रत्नप्रभा पृथ्वी का नैरयिक जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले (पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों) में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की ओर उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जैसे असुरकुमारों का पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने संबंधी कथन किया है वैसे ही यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–संहनन में–अनिष्ट अकान्त (अप्रिय) यावत् अमनाम पुद्गल परिणमित होते हैं।

उनकी अवगाहना दो प्रकार की कही गई है, यथा–

१. भवधारणीय २. उत्तरवैक्रिय।

१. उनमें से जो भवधारणीय अवगाहना है वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट सात धनुष, तीन रत्नी (हाथ) छह अंगुल की होती है।

२. उत्तरवैक्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष, ढाई रत्नि (हाथ) की होती है।

प्र. भंते ! उन जीवों के शरीर किस संस्थान वाले कहे गये हैं?

उ. गौतम ! उनके शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. भवधारणीय, २. उत्तरवैक्रिय।

१. उनमें भवधारणीय शरीर हुण्डक संस्थान वाले कहे गये हैं।

२. उनमें उत्तरवैक्रिय शरीर भी हुण्डक संस्थान वाला कहा गया है।

उनमें केवल कापोतलेश्या होती है।

(आदि के) चार समुद्घात होते हैं।

वे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं होते, किन्तु नपुंसकवेदी होते हैं।

उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की होती है।

अनुबन्ध भी इतना ही होता है।

भवादेश से–जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

कालादेश से–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि अधिक चार सागरोपम, इतने काल पर्यन्त सेवन करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है।)

तइय गमए–जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं।

चउत्थ गमए–जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं।

पंचम गमए–जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं तिहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं।

छट्ठ गमए–जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं।

सत्तम गमए–जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं।

अट्ठम गमए–जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं दोहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं।

नवम गमए–जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।(१-९)

–विया. स. २४, उ. २०, सु. २-१०,

५२. **पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए उववज्जंतेसु एगिंदिय-विगलिंदियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–**

प. भंते ! जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति–किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ जहा पुढविकाइयउद्देसए भणिओ तहा भाणियव्वो।

प. पुढविकाइए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा! जच्चेव अप्पणो सट्ठाणे उववज्जमाणस्स वत्तव्वया भणिया सच्चेव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वा,

णवरं–परिमाणे जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा उववज्जंति।

भवादेसेणं–जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

तीसरे गमक में–जघन्य पूर्वकोटि अधिक बाईस सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम,

चौथे गमक में–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम,

पांचवें गमक में–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक बाईस सागरोपम, उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक छासठ सागरोपम,

छठे गमक में–जघन्य पूर्वकोटि अधिक बाईस सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम,

सातवें गमक में–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम, उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम,

आठवें गमक में–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम, उत्कृष्ट दो अन्तर्मुहूर्त अधिक छासठ सागरोपम,

नौवें गमक में–जघन्य पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम, उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक छासठ सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।(१-९)

५२. **पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–**

प्र. भंते ! यदि वह (संज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होता है तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होता है यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम! पृथ्वीकायिक–उद्देशक में कहे अनुसार यहां उपपात समझना चाहिए।

प्र. भंते ! जो पृथ्वीकायिक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले (पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों) में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले (पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों) में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे पृथ्वीकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! अपने स्वस्थान में उत्पन्न होने का जो कथन किया है, वही पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले के लिए कहना चाहिए।

विशेष–परिमाण–जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं,

भवादेश से–जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करते हैं।

कालादेसो-उवउंजिऊण भाणियव्वो।(पढमो गमओ)

एवं णव वि गमगा पढम गमग सरिसा भाणियव्वा,
णवरं-उववाय ठिई संवेहो य उवउंजिऊण भाणियव्वो।(२-९)
एवं आउक्काइया जाव चउरिंदिया उववाएयव्वा।

णवरं-सव्वत्थ अप्पणो लद्धी भाणियव्वा।
उववाय ठिई संवेहाइ उवउंजिऊण भाणियव्वं।(१-९)
-विया. स. २४, उ. २०, स. ११-१५

कालादेश-उपयोग लगाकर कहना चाहिए। (यह प्रथम गमक है)

इसी प्रकार नौ ही गमक प्रथम गमक के सदृश कहने चाहिए।
विशेष-उपपात, स्थिति और संवेध उपयोग लगाकर कहने चाहिए।(२-९)
इसी प्रकार अप्काय से चतुरिन्द्रिय पर्यन्त उपपात आदि कहना चाहिए।
विशेष-सर्वत्र अपनी-अपनी लब्धि का कथन करना चाहिए।
उपपात स्थिति संवेध आदि उपयोग पूर्वक कहने चाहिए।(१-९)

५३. पंचिंदियतिरिक्खजोणिए उववज्जंतेसु असण्णि पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. भंते ! जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।
एवं जहेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स उववाओ भणिओ तहा भाणियव्वो।

प. असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **अवसेसं जहेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स असण्णिस्स वत्तव्वया तहेव निरवसेसं इह वि भाणियव्वा।**
णवरं-कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं पुव्वकोडीपुहत्तमब्भहियं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (पढमो गमओ)
बिइयगमए एस चेव लद्धी,
णवरं-उववाय ठिई अणुबंधो य उवउंजिऊण भाणियव्वो।
कालादेसेणं-जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा (बिइओ गमओ)
सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

५३. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! यदि वे पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।
इस प्रकार जैसे पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का उपपात कहा है तदनुसार यहां भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे (असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **शेष सम्पूर्ण कथन पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी के समान यहाँ भी कहना चाहिए।**
विशेष-कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)
द्वितीय गमक में भी यही कथन करना चाहिए।
विशेष-उपपात स्थिति अनुबन्ध उपयोग पूर्वक कहने चाहिए।

कालादेश से-जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है (यह द्वितीय गमक है)
वही (असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न हो तो वह जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले (संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च) में उत्पन्न होता है।

प. ते णं भन्ते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा! एवं जहा रयणप्पभाए उववज्जमाणस्स असण्णिस्स तहेव निरवसेसं भाणियव्वं,

णवरं–परिमाणे उक्कोसेणं संखेज्जा,

भवादेसेणं–जहण्णेणं उक्कोसेणं वि दो भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं–जहण्णेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो अंतोमुहुत्तमब्भहिओ उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागो पुव्वकोडी अब्भहिओ (तइओ गमओ)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा! अवसेसं जहा एयस्स पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु लद्धि भणिया तहा इह वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु भाणियव्वा।

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ (चउत्थो गमओ)

एवं पंचमो छट्ठओ गमओ वि भाणियव्वो।

णवरं–ठिइं संवेहं च उवउज्जिऊण जाणेज्जा (५-६)

सो चेव अप्पणा उक्कोस कालट्ठिईओ जाओ, सच्चेव पढमगमगवत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं–ठिई जहण्णेण पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च का कथन किया उसी प्रकार समग्र कथन करना चाहिए।

विशेष–परिमाण में उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

भवादेश से–जघन्य और उत्कृष्ट दो भव ग्रहण करता है।

कालादेश से–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग, इतना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तीसरा गमक है)

यदि वह स्वयं जघन्यकाल की स्थिति वाला हो तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले पंचेन्द्रियतिर्यञ्च में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति के असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के मध्यम के तीन गमकों (४-५-६) में जिस प्रकार कथन किया गया है उसी प्रकार यहां भी तीनों ही गमकों में कहना चाहिए।

विशेष–कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्व कोटि वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है (यह चतुर्थ गमक है)

इसी प्रकार पांचवां छट्ठा गमक भी कहना चाहिए।

विशेष–स्थिति संवेध आदि उपयोग लगाकर जानना चाहिये। (५-६)

वही (असंज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो प्रथम गमक के अनुसार उसका कथन जानना चाहिए।

विशेष–उसकी स्थिति जघन्य पूर्वकोटि वर्ष और उत्कृष्ट भी

५४. पंचेंदियतिरिक्खजोणिए उववज्जंतेसु सण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति कि–

संखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, असंखेज्जवासाउय सण्णि पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदिय तिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउय सण्णि पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं–

पज्जत्त-संखेज्जवासाउय उववज्जंति, अपज्जत्त-संखेज्जवासाउय उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

प. संखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **अवसेसं सव्वा वत्तव्वया जहा एयस्स चेव पुढवीकाए उववज्जमाणस्स पढमगमए भणिया।**

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडी पुहत्तमब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव पढम गमग सरिसा वत्तव्वया णेयव्वा,

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ। एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (बिइओ गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, जहण्णेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवम-ट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

एसा चेय पढम गमग सरिसा वत्तव्वया,

णवरं–परिमाणं जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उयवज्जंति।

५४. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या,

वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम! वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या–

वे पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्कों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त संख्यातवर्षायुष्कों से उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे दोनों (पर्याप्तक और अपर्याप्तक) से ही उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जो पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वालों में और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **शेष समग्र कथन पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकों के प्रथम गमक के समान करना चाहिए।**

विशेष–कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

वही (संज्ञी पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न हो तो उसका भी कथन प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।

विशेष–कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है (यह द्वितीय गमक है)

वही (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न हो तो जघन्य तीन पल्योपम की स्थिति वालों में और उत्कृष्ट भी तीन पल्योपम की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है।

उसका भी कथन प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।

विशेष–परिमाण में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

भवादेसेणं–दो भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं–जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (तइओ गमओ)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउएसु उववज्जेज्जा।

एसं जहा एयस्स चेव सण्णिपंचिंदियस्स पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिल्लएसु तिसु गमएसु वत्तव्वया, सच्चेव इह वि मज्झिमेसु तिसु गमएसु णेयव्वा।

णवरं–उववाय ठिई संवेहो य उवउजिऊण भाणियव्वो तिसु गमएसु। (चउत्थ-पंचम-छट्ठ गमा)

सो चेव अप्पणा उक्कोस कालट्ठिईओ जाओ सच्चेव पढमगमग वत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं–ठिई अणुबंधो जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तमब्भहिया, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडी-पुहत्तमब्भहियाइं। (सत्तमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव सत्तम गमग वत्तव्वया,

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्त-मब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाओ, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (अट्ठमो गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवम-ट्ठिईएसु उववज्जेज्जा। अवसेसं सत्तम गमग सरिस्सा वत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं- परिमाणं उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जेज्जा।

भवादेसेणं- दो भवग्गहणाइं,

कालादेसेणं–जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं, पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (नवमो गमओ)

[illegible]

५५. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणेसु असण्णि मणुस्साणं उववायाइ बीस दार परूवणं–

प. [illegible] मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असण्णिमणुस्सेहिंतो [illegible]

भवादेश से–दो भव ग्रहण करता है।

कालादेश से–जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है (यह तृतीय गमक है)

वही (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने योग्य हो तो वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है।

पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के मध्य के तीन (४-५-६) गमक के समान यहाँ भी मध्य के तीन गमक (४-५-६) जानने चाहिए।

विशेष–उपपात स्थिति और संवेध तीनों गमकों में उपयोग लगाकर कहना चाहिए। (यह चौथा पांचवा छट्ठा गमक है)

वही (संज्ञी) पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च (स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न हो तो उसका समग्र कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए।

विशेष–स्थिति और अनुबन्ध जघन्य पूर्वकोटि वर्ष, उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष कहना चाहिए।

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह सातवां गमक है)

वही (उत्कृष्ट स्थिति वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वालों में उत्पन्न हो तो उसका कथन भी इसी प्रकार सप्तम गमक के समान करना चाहिए।

विशेष–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह आठवां गमक है)

वही उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च उत्कृष्ट काल की स्थिति वालों में) उत्पन्न हो तो वह जघन्य तीन पल्योपम और उत्कृष्ट भी तीन पल्योपम की स्थिति में उत्पन्न होता है। शेष सब कथन सप्तम गमक के समान कहना चाहिए।

विशेष–परिमाण-उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

भवादेश से–दो भव ग्रहण करता है।

कालादेश से–जघन्य पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवां गमक है)

५५. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. [illegible] मनुष्यों से [illegible]

उ. गोयमा ! सण्णिमणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, असण्णिमणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति।

प. असण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडिआउएसु उववज्जेज्जा।

अवसेसा लद्धी एयस्स चेव तिसु वि गमएसु जहेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स भणिया तहा भाणियव्वा।

णवरं–उववाय ठिई संवेहो य उवउंजिऊण भाणियव्वो (पढम-बिइय-तइय गमगा) **अवसेसा छः गमगा नत्थि।**

–विया. स. २४, उ. २०, सु. २९-४०

उ. गौतम ! वे संज्ञी मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न होते हैं और असंज्ञी मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! असंज्ञी मनुष्य जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है।

शेष वर्णन पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी मनुष्यों के गमकों के अनुसार यहाँ भी (प्रथम) तीन गमक कहने चाहिए।

विशेष–उपपात स्थिति और संवेध उपयोग लगाकर कहना चाहिए (यह पहला-दूसरा-तीसरा गमक है) **शेष छः गमक नहीं होते हैं।**

५६. पंचिंदियतिरिक्खजोणिए उववज्जंतेसु सण्णि मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति–किं संखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो असंखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति–किं पज्जत्त संखेज्जवासाउयसण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्त संखेज्जवासाउय सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

प. सण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

उ. गोयमा ! लद्धी से जहा एयस्सेव सण्णिमणूस्सस्स पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स पढमगमए भणिया सा चेव भाणियव्वा।

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडिपुहत्तमब्भहियाइं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१ पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव पढम गमग वत्तव्वया.

५६. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भन्ते ! यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय) संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे पर्याप्तक संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्य जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! वे (संज्ञी मनुष्य) जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी मनुष्यों के प्रथम गमक के अनुसार यहाँ भी लब्धि का कथन करना चाहिए।

विशेष–कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व (सात करोड़ पूर्व) अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

वही (संज्ञी मनुष्य) जघन्य काल की स्थिति वालों में उत्पन्न हो तो उसका कथन भी इसी प्रकार प्रथम गमक के समान है।

णवरं-कालादेसेणं जहण्णेणं दो अंतोमुहुत्ता, उक्कोसेणं चत्तारि पुव्वकोडीओ चउहिं अंतोमुहुत्तेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

(२ बिइओ गमओ)

विशेष-कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

(यह दूसरा गमक है)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं तिपलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि तिपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

वही (संज्ञी मनुष्य) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न हो तो वह जघन्य तीन पल्योपम की स्थिति वालों में और उत्कृष्ट भी तीन पल्योपम की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है।

अवसेसा सच्चेव पढम गमग वत्तव्वया।

शेष कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए।

णवरं-ओगाहणा-जहण्णेणं अंगुलपुहत्तं, उक्कोसेणं पंच धणुसयाइं।

विशेष-अवगाहना-जघन्य अंगुल पृथक्त्व और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की होती है।

ठिई जहण्णेणं मासपुहत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

स्थिति-जघन्य मास पृथक्त्व (अनेक मास) और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की होती है।

एवं अणुबंधो वि।

इसी प्रकार अनुबन्ध भी स्थिति के समान होता है।

भवादेसेणं-दो भवग्गहणाइं,

भवादेश से-दो भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं-जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं मासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।(३ तइओ गमओ)

कालादेश से-जघन्य मासपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

(यह तृतीय गमक है)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, जहा एयस्स चेव पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स मज्झिमेसु तिसु गमएसु वत्तव्वया भणिया इह वि निरवसेसा भाणियव्वा।

वही (संज्ञी मनुष्य) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों में उत्पन्न हो तो जिस प्रकार पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के मध्य के तीन गमक (४-५-६) कहे गये हैं उसी प्रकार यहां भी मध्य के तीन गमक का सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

णवरं-इमाणं ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण भाणियव्वा।

(४-६ चउत्थ पंचम छट्ठ गमा)

विशेष-उनकी स्थिति और संवेध उपयोग पूर्वक कहना चाहिए। (यह चौथा पांचवां छट्ठा गमक है)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, सच्चेव पढमगमग वत्तव्वया,

वही (संज्ञी मनुष्य) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च में उत्पन्न हो तो उसके लिए प्रथम गमक के समान कथन करना चाहिए।

णवरं-ओगाहणा जहण्णेणं पंच धणुसयाइं,

विशेष-शरीर की अवगाहना जघन्य पांच सौ धनुष,

एसा चेव सत्तमगमग सरिसा वत्तव्वया।

णवरं-भवादेसेणं-दो भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं-जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (९ नवमो गमओ)

-विया. स. २४, उ. २०, सु. ४१-५०

इसका सप्तम गमक के समान सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

विशेष-भवादेश से-दो भव ग्रहण करता है।

कालादेश से-जघन्य पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक तीन पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह नौवां गमक है)

५७. पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए उववज्जंतेसु भवणवासि देवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. भंते ! जइ देवेहिंतो उववज्जंति-किं भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. भंते ! जइ भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति-किं असुरकुमार भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति जाव थणियकुमार भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! असुरकुमार जाव थणियकुमारभवणवासि देवेहिंतो उववज्जंति।

प. असुरकुमारे णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्ख जोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउएसु उववज्जेज्जा।

असुरकुमाराणं लद्धी नवसु वि गमएसु जहा एयस्स पुढविकाइएसु उववज्जमाणस्स भणिया।

णवरं-भवादेसेणं जहण्णेणं दोण्णि भवग्गहणाइं उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

उववाय ठिई संवेहं च सव्वत्थ उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९)

नागकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं एसा चेव वत्तव्वया,

णवरं-ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा (१-९)

-विया. स. २४, उ. २०, सु. ५१-५५

५७. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले भवनवासी देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! यदि देवों से आकर वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे भवनवासी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे असुरकुमार भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! असुरकुमार जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है।

उसके नौ ही गमकों में जैसा पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले असुरकुमारों के लिए कथन किया है वैसा ही समग्र कथन यहाँ भी करना चाहिए।

विशेष-भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव ग्रहण करता है।

उपपात स्थिति और संवेध सर्वत्र उपयोग पूर्वक समझना चाहिए (१-९)

नागकुमारों का यावत् स्तनितकुमारों का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।

विशेष-स्थिति और संवेध उपयोग लगाकर जानना चाहिए। (१-९)

५८. पंचिंदियतिरिक्खजोणिए उववज्जंतेसु वाणमंतर देवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. भंते ! जइ वाणमंतर देवेहिंतो उववज्जंति-किं पिसाय वाणमंतर देवेहिंतो उववज्जंति जाव गंधव्व वाणमंतर देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! पिसाय वाणमंतरदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव गंधव्व वाणमंतर देवेहिंतो वि उववज्जंति।

५८. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने वाले वाणव्यन्तर देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! यदि वे (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) वाणव्यन्तर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे पिशाच वाणव्यन्तर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गंधर्व वाणव्यन्तर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे पिशाच वाणव्यन्तर देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् गंधर्व वाणव्यन्तर देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प. वाणमंतरे णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! असुरकुमाराणं गमगा सव्वा वत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं–ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा (१-९)

–विया. स. २४, उ. २०, सु. ५६-५७

५९. पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंतेसु जोइसिय देवाण उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ जोइसिय देवेहिंतो उववज्जंति–किं चंदविमाण जोइसिय देवेहिंतो उववज्जंति जाव ताराविमाण जोइसिय देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! चंदविमाण जोइसिय देवेहिंतो वि उववज्जंति जाव ताराविमाण जोइसिय देवेहिंतो वि उववज्जंति।

प. जोइसिए णं भंते ! जे भविए पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइय कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहा एयस्स चेव पुढविक्काइएसु उववज्जमाणस्स वत्तव्वया भणिया तहा चेव सव्वा भाणियव्वा।

णवरं–भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं अट्ठ भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तमब्भहियं, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं चउहिं पुव्वकोडीहिं, चउहि य वाससयसहस्सेहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं नवसु वि गमएसु भाणियव्वा।

णवरं–ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा (१-९)

–विया. स. २४, उ. २०, [illegible]

६०. वेमाणिय देवे पडुच्च पंचिंदियतिरिक्खजोणिए उववाय परूवणं–

प. भंते ! जइ वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति, कप्पातीय वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति?

[illegible]

प्र. भन्ते ! वाणव्यन्तर देव जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! असुरकुमारों के समान समग्र कथन करना चाहिए।

विशेष–स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए।

५९. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले ज्योतिष्क देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) ज्योतिष्क देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या चन्द्रविमान ज्योतिष्क देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान ज्योतिष्क देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! चन्द्रविमान ज्योतिष्क देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् ताराविमान ज्योतिष्क देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भन्ते ! ज्योतिष्क देव जो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने वाले ज्योतिष्क देवों के कथन के अनुसार ही समग्र कथन करना चाहिए।

विशेष–भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव जानना चाहिए।

कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट चार पूर्वकोटि और चार लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम जितना काल यावत् गमनागमन करता है।

इसी प्रकार नौ ही गमकों के विषय में जानना चाहिए।

विशेष–स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए।

६०. वैमानिक देवों की अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपात का प्ररूपण–

[illegible]

अवसेसा वत्तव्वया जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जंतस्स रयणप्पभापुढवि णेरइयस्स तहेव जाणेज्जा।

शेष कथन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक में उत्पन्न होने वाले रत्नप्रभा के नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

णवरं–परिमाणे उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति। (पढमो गमो)

विशेष–परिमाण में ये जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। (यह प्रथम गमक है)

एवं णवसु वि गमएसु वत्तव्वया भाणियव्वा।

इसी प्रकार नौ ही गम्मों का कथन करना चाहिए।

णवरं–ठिई संवेहं च उवउजिऊण भाणियव्वा,

विशेष–स्थिति अनुवन्ध और संवेध उपयोग पूर्वक कहने चाहिए,

अंतोमुहुत्तट्ठाणे सव्वत्थ मासपुहुत्ता भाणियव्वा। (१-९)

अन्तर्मुहूर्त के स्थान पर सर्वत्र मास पृथक्त्व कहना चाहिए। (१-९)

जहा रयणप्पभाए तहा सक्करप्पभाए वि वत्तव्वया,

जैसे रत्नप्रभा का कथन किया गया वैसे ही शर्कराप्रभा का कहना चाहिए।

णवरं–जहण्णेणं वासपुहत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउएसु मणुस्सेसु उववज्जेज्जा।

विशेष–ये जघन्य वर्षपृथक्त्व की तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

ओगाहणा-लेस्सा-नाण-ट्ठिई-अणुबंध-संवेह-नाणत्तं च जाणेज्जा जहेव तिरिक्खजोणियउद्देसए।

अवगाहना, लेश्या, ज्ञान, स्थिति, अनुवन्ध और संवेध की विशेषताएँ तिर्यञ्चयोनिक उद्देशक में कहे अनुसार जाननी चाहिए।

एवं कमेण जाव तमापुढविनेरइए।

–विया. २४, उ. २१, सु. २-४

इसी प्रकार इसी क्रम से तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

६४. मणुस्सेसु उववज्जंतेसु तिरिक्खजोणिय मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

६४. मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों के उपपातादि वीस द्वारों का प्ररूपण–

प. भंते ! जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

प्र. भन्ते ! यदि वे (मनुष्य) तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो भेदो जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियउद्देसए।

उ. गौतम ! वे एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, इत्यादि भेदों का कथन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए।

णवरं–तेउ-वाऊ पडिसेहेयव्वा।

विशेष–यहाँ पर तेजस्काय और वायुकाय का ग्रहण नहीं करना चाहिए (क्योंकि ये दोनों मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते)

प. पुढविक्काइए णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

प्र. भन्ते ! जो पृथ्वीकायिक मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउएसु उववज्जेज्जा।

उ. गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

प्र. भन्ते ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गोयमा ! जहेव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जमाणस्स पुढविक्काइयस्स वत्तव्वया सा चेव इह वि उववज्जमाणस्स भाणियव्वं नवसु वि गमएसु,

उ. गौतम ! जैसा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक का कथन है वैसा ही यहाँ मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक का वर्णन भी नौ ही गमकों में करना चाहिए।

णवरं–तइय-छट्ठ-नवमेसु गमएसु परिमाणं जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा उववज्जंति।

विशेष–तीसरे छठे और नौवें गमक में परिमाण जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं ऐसा कहना चाहिए।

जाहे अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ भवइ ताहे पढमगमए (चउत्थ गमए) अज्झवसाणा पसत्था वि, अप्पसत्था वि।

जव वह अपनी जघन्यकाल की स्थिति में हो, तब (मध्य के तीन गमकों में से) प्रथम (चौथे) गमक में अध्यवसाय प्रशस्त भी होते हैं और अप्रशस्त भी होते हैं।

सणंकुमारे ठिई चउगुणिया अट्ठावीसं सागरोवमं भवइ,

माहिंदे ताणि चेव साइरेगाणि सागरोवमाणि,

बम्भलोए चत्तालीसं सागरोवमं, लंतए छप्पन्नं सागरोवमं।

महासुक्के अट्ठसट्ठिं, सहस्सारे बावत्तरिं सागरोवमाइं।

एसा उक्कोसा ठिई भणिया। जहण्णट्ठिइं पि चउगुणेज्जा।

प. आणयदेवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं वासपुहत्तट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पुव्वकोडीट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! जहेव सहस्सार देवाणं वत्तव्वया भणिया तहेव भाणियव्वा।

णवरं–ओगाहणा-ठिई अणुबंधे य उवउंजिऊण जाणेज्जा।

भवादेसेणं जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं छ भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं सत्तावन्नं सागरोवमाइं तिहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

एवं नव वि गमा,

णवरं–ठिई अणुबंधं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।(१-९)

एवं जाव अच्चुयदेवो,

णवरं–ठिई अणुबंधं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा, जहा–

पाणय देवस्स ठिई तिगुणिया सट्ठिं सागरोवमाइं,

आरणगस्स तेवट्ठिं सागरोवमाइं,

अच्चुयदेवस्स छावट्ठिं सागरोवमाइं।

–विया. स. २४, उ. २१, सु. १३-१९

सनत्कुमार देवलोक की उत्कृष्ट स्थिति को चार गुणा करने पर अट्ठाईस सागरोपम होती है।

माहेन्द्र देवलोक में चारगुणी स्थिति कुछ अधिक अट्ठाईस सागरोपम होती है।

इसी प्रकार स्वयं की उत्कृष्ट स्थिति को चार गुणा करने पर ब्रह्मलोक में चालीस सागरोपम, लान्तक में छप्पन सागरोपम।

महाशुक्र में अड़सठ सागरोपम तथा सहस्रार में बहत्तर सागरोपम होती है।

यह उत्कृष्ट स्थिति कही गई है। जघन्य स्थिति को भी चार गुणी करनी चाहिए।

प्र. भन्ते ! आनतदेव जो मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते! वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह (आनत देव) जघन्य वर्ष पृथक्त्व की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है।

प्र. भन्ते ! वे (मनुष्य) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार सहस्रार देवों का कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।

विशेष–इसकी अवगाहना, स्थिति और अनुबन्ध में उपयोग पूर्वक भिन्नता जाननी चाहिए।

भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट छह भव ग्रहण करते हैं।

कालादेश से जघन्य वर्ष पृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटि अधिक सत्तावन सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

इसी प्रकार नौ ही गमकों में जानना चाहिए।

विशेष–इनकी स्थिति अनुबन्ध और संवेध उपयोग पूर्वक भिन्न-भिन्न जानना चाहिए।(१-९)

इसी प्रकार अच्युतदेव पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–इसकी स्थिति, अनुबन्ध और संवेध उपयोग पूर्वक भिन्न-भिन्न जानना चाहिए, यथा–

प्राणतदेव की स्थिति को तीन गुणी करने पर साठ सागरोपम,

आरणदेव की स्थिति को तीन गुणी करने पर तिरेसठ सागरोपम,

अच्युतदेव की स्थिति को तीन गुणी करने पर छासठ सागरोपम की होती है।

६६. मणुस्सेसु उववज्जंतेसु कप्पातीय वेमाणिय देवाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ कप्पातीय वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति-किं गेवेज्जाकप्पातीय वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति अणुत्तरोववाइयकप्पातीय वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! गेवेज्जा कप्पातीया अणुत्तरोववाइय कप्पातीया।

६६. मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले कल्पातीत वैमानिक देवों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! यदि वे मनुष्य कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं या अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे (मनुष्य) ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक दोनों प्रकार के कल्पातीत देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

सम्मदिट्ठी, नो मिच्छदिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

नाणी, नो अण्णाणी, नियमं तिण्णाणी, तं जहा–

१. आभिणिबोहियनाणी, २. सुयनाणी,
३. ओहिनाणी।

ठिई जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

भवादेसेणं–जहण्णेणं दो भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं चत्तारि भवग्गहणाइं।

कालादेसेणं–जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

एवं सेसा वि अट्ठ गमगा भाणियव्वा,

णवरं–ठिई अणुबंधं संवेधं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९)

प. सव्वट्ठसिद्धगदेवे णं भंते ! जे भविए मणुस्सेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! सा चेव विजयादिदेव वत्तव्वया भाणियव्वा,

णवरं–ठिई अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

एवं अणुबंधो वि।

भवादेसेणं–दो भवग्गहणाइं,

कालादेसेणं–जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (१ पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव वत्तव्वया पढम गमग सरिसा भाणियव्वा,

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (२ विइओ गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, एसा चेव पढमगमग वत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं–कालादेसेणं जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडीए अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (तइओ गमओ)

एए चेव तिण्णि गमगा भवंति, सेसा छ गमगा न भवंति।

–विया. स. २४, उ. २१, सु. २०-२७

वे सम्यग्दृष्टि होते हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते हैं।

वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं होते, वे नियमतः तीन ज्ञान वाले होते हैं, यथा–

१. आभिनिबोधिक ज्ञान, २. श्रुतज्ञान,
३. अवधिज्ञान।

उनकी स्थिति जघन्य इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की होती है।

भवादेश से–जघन्य दो भव और उत्कृष्ट चार भव ग्रहण करते हैं।

कालादेश से–जघन्य वर्ष पृथक्त्व अधिक इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागरोपम जितना काल व्यतीत करते हैं और इतने ही काल तक गमनागमन करते हैं। (यह प्रथम गमक हुआ।)

इसी प्रकार शेष आठ गमक कहने चाहिए।

विशेष–इनके स्थिति, अनुबंध और संवेध उपयोगपूर्वक भिन्न-भिन्न जानने चाहिए। (१-९)

प्र. भंते ! सर्वार्थसिद्ध देव जो मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वे कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वही विजयादि देव सम्बन्धी समग्र कथन यहां भी कहना चाहिए।

विशेष–इनकी स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

अनुबंध भी इतना ही है।

भवादेश से–दो भव ग्रहण करता है।

कालादेश से–जघन्य वर्ष पृथक्त्व अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तेतीस सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

वही (सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव) जघन्य काल की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न हो तो उसके लिए भी यही प्रथम गमक के अनुसार कथन करना चाहिए।

विशेष–कालादेश से-जघन्य वर्ष पृथक्त्व अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट भी वर्ष पृथक्त्व अधिक तेतीस सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह द्वितीय गमक है)

वही (सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न हो तो उसके लिए भी यही प्रथम गमक के अनुसार कथन करना चाहिए।

विशेष–कालादेश से जघन्य पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है)

यहां पर ये ही तीन गमक होते हैं, शेष छह गमक नहीं होते हैं।

६७. वाणमंतरे उववज्जंतेसु असण्णि-सण्णि पंचेंदियतिरिक्ख-जोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं-

प. वाणमंतरा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति-किं नेरइएहिंतो उववज्जंति, किं तिरिक्ख-मणुस्स-देवेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! एवं जहेव नागकुमार उद्देसए असण्णि वत्तव्वया भणिया तहेव निरवसेसं भाणियव्वा।

णवरं-ठिई संवेहं च उवउंजिऊण भाणियव्वा।

प. भंते! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं संखेज्जवासाउयहिंतो उववज्जंति, असंखेज्जवासाउयहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

प. असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए वाणमंतरेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं दसवाससहस्सट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेजा।

सेसं जहा नागकुमार उद्देसए वत्तव्वया सा चेव भाणियव्वा।

णवरं-कालादेसेणं जहण्णेणं साइरेगा पुव्वकोडी दसहिं वाससहस्सेहिं अब्भहिया, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, जहेव नागकुमाराणं विइयगमे वत्तव्वया। (विइओ गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो जहण्णेणं पलिओवमट्ठिईएसु उक्कोसेण वि पलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

सेसं जहा पढम गमए वत्तव्वया,

णवरं-ठिई से जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

संवेहो-जहण्णेणं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (तइओ गमओ)

मज्झिमगमगा तिण्णि वि जहेव नागकुमारेसु (४-६)

पच्छिमेसु तिसु गमएसु वि जहा नागकुमारुद्देसए,

णवरं-ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (७-९)

संखेज्जवासाउय सण्णी पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएसु वि जहा नागकुमारुद्देसए।

६७. वाणव्यंतरों में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी-संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण-

प्र. भंते ! वाणव्यन्तर देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या तिर्यञ्चयोनिकों, मनुष्यों और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! जिस प्रकार नागकुमार उद्देशक में असंज्ञी (पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) का कथन किया गया है उसी प्रकार समग्र कथन करना चाहिए।

विशेष-स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे संख्यात वर्ष की आयु वालों से उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वालों से उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जो वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होने वाला है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वालों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक पल्योपम की स्थिति वाले वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होता है।

शेष सब कथन नागकुमार उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष-कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक सातिरेक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट चार पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

वही जघन्य काल की स्थिति वाले वाणव्यंतरों में उत्पन्न होता है तो नागकुमारों के दूसरे गमक के समान कथन करना चाहिए। (यह द्वितीय गमक है)

यदि वही उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले वाणव्यन्तरों में उत्पन्न हो तो जघन्य पल्योपम की स्थिति वाले और उत्कृष्ट भी पल्योपम की स्थिति वाले वाणव्यन्तरों में उत्पन्न होता है।

शेष कथन प्रथम गमक के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष-स्थिति जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की जाननी चाहिए।

संवेध-जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट चार पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तीसरा गमक है)

मध्य के तीनों गमक नागकुमार के उन्हीं गमकों के समान कहने चाहिए। (४-६)

अन्तिम तीन गमक भी नागकुमार उद्देशक के अनुसार कहने चाहिए।

विशेष-स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक भिन्न-भिन्न जानना चाहिए। (७-९)

संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों का कथन भी नागकुमार के उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

णवरं–ठिई अणुबंधो संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९) –*विया.* स. २४, उ. २२, सु. १-७

विशेष–स्थिति, अनुबंध और संवेध उपयोग लगाकर कहना चाहिए। (१-९)

६८. वाणमंतरेसु उववज्जंतेसु मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति असंखेज्जवासाउयाणं लद्धी जहेव नागकुमाराणं उद्देसए भणिया तहेव भाणियव्वा।

णवरं–तइयगमए ठिई जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

ओगाहणा जहण्णेणं गाउयं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

संवेहो से जहा एत्थ चेव उद्देसए असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियाणं भणिओ तहा भाणियव्वो।

संखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्सा जहेव नागकुमारुद्देसए,

णवरं–वाणमंतराणं ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९) –*विया.* स. २४, उ. २२, सु. ८-९

६८. वाणव्यंतरों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

यदि वे (वाणव्यंतर देव) मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं आदि नागकुमार उद्देशक में कहे अनुसार करना चाहिए।

विशेष–तीसरे गमक में स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

अवगाहना जघन्य एक गाउ की और उत्कृष्ट तीन गाउ की होती है।

इसका संवेध इसी उद्देशक में कहे गए असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के समान कहना चाहिए।

संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों का कथन नागकुमार उद्देशक के समान जानना चाहिए।

विशेष–वाणव्यंतर देवों की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक भिन्न-भिन्न जानना चाहिए। (१-९)

६९. जोइसिए उववज्जंतेसु सन्नि पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. जोइसिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति-किं नेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो देवेहिंतो उववज्जंति।

प. भंते ! जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, नो असण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ?

प. भंते ! जइ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं संखेज्जवासाउय असंखेज्जवासाउय उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! संखेज्जवासाउय वि, असंखेज्जवासाउय वि उववज्जंति।

प. असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिए णं भंते! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा ?

६९. ज्योतिष्कों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! ज्योतिष्क देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते, तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं,

असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वे (ज्योतिष्क देव) संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न होते हैं तो भन्ते ! क्या वे संख्यातवर्ष की आयु वालों से उत्पन्न होते हैं या असंख्यातवर्ष की आयु वालों से उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यातवर्ष की आयु वालों से आकर भी उत्पन्न होते हैं और असंख्यातवर्ष की आयु वालों से आकर भी उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जो ज्योतिष्कदेवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भंते ! वह कितने काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होता है ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेणं पलिओवमवाससयसहस्सट्ठिईएसु उववज्जेज्जा,

अवसेसं जहा असुरकुमारुद्देसए,

णवरं–ठिई जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं दो अट्ठभागपलिओवमाइं, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं वाससयसहस्स-मब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढमो गमओ)

सो चेव जहण्णकालट्ठिईएसु उववण्णो, जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि अट्ठभागपलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा। **सेसा वत्तव्वया पढम गमग सरिसा।** (बिइओ गमओ)

सो चेव उक्कोसकालट्ठिईएसु उववण्णो, जहण्णेण वि वाससयंसहस्समब्भहियं पलिओवमं ठिईएसु उववज्जेज्जा।

सेसा वत्तव्वया पढम गमग सरिसा।

णवरं–ठिई जहण्णेणं पलिओवमं वाससयसहस्स-मब्भहियं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं दो पलिओवमाइं दोहिं वाससयसहस्सेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेणं चत्तारि पलिओवमाइं वाससयसहस्समब्भहियाइं एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (तइओ गमओ)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमट्ठिईएसु उक्कोसेण वि अट्ठभागपलि-ओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

प. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! **सेसा वत्तव्वया पढम गमग सरिसा** भाणियव्वा,

णवरं–ओगाहणा-जहण्णेणं धणुपुहत्तं, उक्कोसेणं साइरेगाइं अट्ठारसधणुसयाइं।

ठिई-जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण वि अट्ठभागपलिओवमं।

एवं अणुबंधो वि।

कालादेसेणं जहण्णेणं दो अट्ठभागपलिओवमाइं, उक्कोसेण वि दो अट्ठभागपलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा।

जहण्णकालट्ठिईयस्स एस चेव एक्को गमो। (चउत्थो गमओ)

उ. गौतम ! वह जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की स्थिति वाले ज्योतिष्कों में उत्पन्न होता है।

शेष कथन असुरकुमार उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष–उसकी स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

अनुबंध भी स्थिति के समान है।

कालादेश से जघन्य पल्योपम के दो आठवें (२/८) भाग और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

यदि वही (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) जघन्य काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न हो तो जघन्य पल्योपम के आठवें भाग और उत्कृष्ट भी पल्योपम के आठवें भाग की स्थिति वाले ज्योतिष्कों में उत्पन्न होता है इसका भी **शेष कथन प्रथम गमक के अनुसार है।** (यह दूसरा गमक है)

यदि वह असंख्यात वर्षायुष्क (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न हो तो जघन्य और उत्कृष्ट एक पल्योपम तथा एक लाख वर्ष की स्थिति में उत्पन्न होता है।

शेष समग्र कथन प्रथम गमक के अनुसार है।

विशेष–स्थिति जघन्य एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

इसी प्रकार अनुबंध भी स्थिति के समान है।

कालादेश से जघन्य दो लाख वर्ष अधिक दो पल्योपम और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तृतीय गमक है)

वही (संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न हो तो जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट भी पल्योपम के आठवें भाग की स्थिति वाले ज्योतिष्कों में उत्पन्न होता है।

प्र. भंते ! वे जीव (असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! **शेष कथन प्रथम गमक के अनुसार जानना चाहिए।**

विशेष–उनकी अवगाहना जघन्य धनुष पृथक्त्व और उत्कृष्ट सातिरेक अठारह सौ धनुष की होती है।

स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग और उत्कृष्ट भी पल्योपम के आठवें भाग की होती है।

अनुबंध भी स्थिति के समान होता है।

कालादेश से जघन्य पल्योपम के दो आठवें भाग और उत्कृष्ट भी पल्योपम के दो आठवें (२/८) भाग जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है।

जघन्य काल की स्थिति वाले के लिए यह एक ही गमक होता है। (यह चतुर्थ गमक है)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, सा चेव पढम गमग वत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं–ठिई जहण्णेणं तिण्णि पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि पलिओवमाइं,

एवं अणुबंधो वि।

एवं एए उक्कोसठिईया पच्छिमा तिण्णि गमगा नेयव्वा,

णवरं–ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा (७-९) (एए सत्त गमगा।)

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-जोणिया उववज्जंति-किं पज्जत संखेज्ज वासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति? अपज्जत्त संखेज्ज वासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा! संखेज्जवासाउयाणं जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणाणं तहेव नव वि गमा भाणियव्वा।

णवरं–जोइसिय-ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (१-९) *–विया. स. २४, उ. २३, सु. १-९*

वही (असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और ज्योतिष्कों में उत्पन्न हो तो प्रथम गमक के समान कथन करना चाहिए।

विशेष–स्थिति जघन्य तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट भी तीन पल्योपम की है।

अनुबंध भी इतना ही होता है।

इसी प्रकार ये उत्कृष्ट स्थिति के अन्तिम तीन गमक (७-८-९) जानने चाहिए।

विशेष–स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक भिन्न-भिन्न जानने चाहिए। (ये कुल सात गमक हुए।)

प्र. यदि वह (ज्योतिष्क देव) संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च से आकर उत्पन्न होता हो तो क्या पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च से आकर उत्पन्न होता है या अपर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च से आकर उत्पन्न होता है ?

उ. गौतम ! यहां असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के समान नौ ही गमक जानने चाहिए।

विशेष–ज्योतिष्क की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक भिन्न-भिन्न जानना चाहिए। (१-९)

७०. जोइसिय उववज्जंतेसु मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

प. भंते ! जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति-किं सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, असण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, नो असण्णि-मणुस्सेहिंतो उवज्जंति।

प. भंते ! जइ सण्णिमणुस्सेहिंतो उववज्जंति-किं संखेज्जवासाउय-असंखेज्जवासाउय सण्णि मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! दोहिं वि उववज्जंति।

प. असंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए जोइसिएसु उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! एवं जहा असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियस्स तिरिक्खजोणियस्स जोइसिएसु चेव उववज्जमाणस्स सत्त गमगा भणिया तहेव मणुस्साण वि भाणियव्वा,

णवरं–ओगाहणाविसेसो-पढमेसु तिसु गमएसु, ओगाहणा जहण्णेणं साइरेगाइं नव धणुसयाइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

मज्झिमगमए (चउत्थ गमए) जहण्णेणं साइरेगाइं नव धणुसयाइं, उक्कोसेण वि साइरेगाइं नव धणुसयाइं। पच्छिमेसु तिसु गमएसु जहण्णेणं तिण्णि गाउयाइं, उक्कोसेण वि तिण्णि गाउयाइं।

ठिई संवेहं च उवउंजिऊण भाणियव्वं (१-९)

७०. ज्योतिष्कों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! यदि वे ज्योतिष्क देव मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! वे संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, असंज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र. भंते ! यदि संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो संख्यात वर्षायुष्क या असंख्यात वर्षायुष्क मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. भंते ! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! कितने काल की स्थिति वाले ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार ज्योतिष्कों में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के सात गमक कहे गये हैं, उसी प्रकार मनुष्य के भी सात गमक कहने चाहिए।

विशेष–अवगाहना में विशेषता है–आदि के तीन गमकों में अवगाहना जघन्य कुछ अधिक नौ सौ धनुष और उत्कृष्ट तीन गाउ है।

मध्य के (चौथे) गमक में जघन्य कुछ अधिक नौ सौ धनुष और उत्कृष्ट भी कुछ अधिक नौ सौ धनुष होती है।

अन्तिम तीन गमकों में जघन्य तीन गाउ और उत्कृष्ट भी तीन गाउ होती है।

स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए।

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ जहण्णेणं पलिओवमट्ठिईएसु, उक्कोसेण वि पलिओवमट्ठिईएसु उववज्जेज्जा।

सेसा वत्तव्वया पढम गमग सरिसा,

णवरं–ओगाहणा जहण्णेणं धणुपुहत्तं, उक्कोसेणं दो गाउयाइं।

ठिई जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेण वि पलिओवमं।

कालादेसेणं जहण्णेणं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेण वि दो पलिओवमाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (चउत्थ पंचम छट्ठ गमा)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, आइल्लगमगसरिसा तिण्णि गमगा नेयव्वा।

णवरं–ठिई कालादेसं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (सत्तम अट्ठम नवम गमा)

एवं एए सत्त गमा भवंति।

प. भंते ! जइ संखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति-किं पज्जत्त संखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्त संखेज्जवासाउय सण्णिपंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! **संखेज्जवासाउयस्स जहेव असुरकुमारेसु उववज्जमाणस्स तहेव नव वि गमा भाणियव्वा।**

णवरं–ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

जाहे य अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ भवइ ताहे तिसु वि गमएसु सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

दो नाणा, दो अण्णाणा नियमं। (१-९)

–विया. स. २४, उ. २४, सु. १-८

७२. सोहम्मगदेवेसु उववज्जंतेसु मणुस्साणं उववायाइ वीसं दारं परूवणं–

जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, इच्चेवं भेदो जहेव जोइसिएसु उववज्जमाणस्स तहा इह वि भाणियव्वा।

प. असंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! **एवं जहेव असंखेज्जवासाउयस्स सण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स सोहम्मे कप्पे उववज्जमाणस्स वत्तव्वया भणिया तहेव सत्त गमगाणं वत्तव्वया इह मणुस्से वि भाणियव्वा।**

वही स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और सौधर्म देवों में उत्पन्न हो तो जघन्य एक पल्योपम और उत्कृष्ट भी एक पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्म देवों में उत्पन्न होता है।

शेष कथन प्रथम गमक के अनुसार जानना चाहिए।

विशेष–अवगाहना जघन्य धनुष पृथक्त्व और उत्कृष्ट दो गाउ की होती है।

स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट भी पल्योपम की होती है।

कालादेश से जघन्य दो पल्योपम और उत्कृष्ट भी दो पल्योपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह चौथा, पांचवां, छट्ठा गमक है)

वही स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और सौधर्म देवों में उत्पन्न हो तो उसके इन अन्तिम तीन गमकों (७-८-९) का कथन प्रथम के तीन गमकों के समान जानना चाहिए।

विशेष–स्थिति और कालादेश उपयोगपूर्वक कहना चाहिए। (यह सातवाँ आठवाँ नौवाँ गमक है)

इस प्रकार ये सात गमक होते हैं।

प्र. भंते ! यदि वह सौधर्म देव संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों से आकर उत्पन्न हो तो क्या पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! **असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के समान ही इसके नौ गमक जानने चाहिए।**

विशेष–स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक समझना चाहिए।

जब वह स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो तीनों गमकों में सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि होता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होता है।

इसमें दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

७२. सौधर्मदेव में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण–

यदि वह (सौधर्मदेव) मनुष्यों से आकर उत्पन्न होता है इत्यादि भेदों का कथन ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के समान यहां भी करना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो सौधर्मकल्प में देवरूप से उत्पन्न होने योग्य है तो भंते! वह कितने काल की स्थिति वाले सौधर्मकल्प के देवों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! **सौधर्मकल्प में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्षायुष्क संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के समान सातों ही गमक यहाँ मनुष्य में भी कहने चाहिए।**

सेसा सव्वा वत्तव्वया जहा एयस्स चेव सोहम्म उववज्जमाणस्स भणिया तहा भाणियव्वा,

णवरं—सणंकुमारट्ठिइं संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

जाहे य अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ भवइ ताहे तिसु वि गमएसु पंच लेस्साओ आदिल्लाओ।

मणुस्सेहिंतो उववज्जमाणस्स सव्वा वत्तव्वया जहा मणुस्साणं सक्करप्पभाए उववज्जमाणाणं भणिया तहेव नव वि गमा इह वि भाणियव्वा।

णवरं—सणंकुमारट्ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

जहा सणंकुमारगदेवाणं वत्तव्वया तहा माहिंदगदेवाण वि सव्वा वत्तव्वया भाणियव्वा।

णवरं—माहिंदगदेवाणं ठिई जहण्णेणं साइरेगं दो सागरोवमं उक्कोसेणं साइरेगं सत्त सागरोवमं।

एवं बंभलोगदेवाण वि वत्तव्वया,

णवरं—बंभलोगट्ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

एवं जाव सहस्सारो,

णवरं—ठिई संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा।

लंतगादीणं जहण्णकालट्ठिईयस्स तिरिक्खजोणियस्स तिसु वि गमएसु छप्पि लेस्साओ भाणियव्वाओ।

संघयणाणि बंभलोग-लंतएसु उववज्जमाणाणं पंच आदिल्लगाणि, महासुक्क सहस्सारेसु उववज्जमाणाणं चत्तारि,

एवं मणुस्साण वि संघयणाइं जाणेज्जा।

—विया. स. २४, उ. २४, सु. १२-२०

सौधर्म देवलोक में इसी के उत्पन्न होने पर जो कथन है वही यहां पर भी कहना चाहिए।

विशेष—सनत्कुमार की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए।

जब वह स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला होता है तब तीनों ही गमकों में प्रारम्भ की पांच लेश्याएं होती है।

यदि सनत्कुमार देव मनुष्यों से आकर उत्पन्न हो तो शर्कराप्रभा में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के समान यहां भी नौ गमक का समग्र वर्णन कहना चाहिए।

विशेष—सनत्कुमार देवों की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए।

जिस प्रकार सनत्कुमार देवों का कथन किया उसी प्रकार माहेन्द्र देवों का भी समग्र कथन जानना चाहिए।

विशेष—माहेन्द्र देवों की स्थिति जघन्य साधिक दो सागरोपम उत्कृष्ट साधिक सात सागरोपम कहनी चाहिए।

इसी प्रकार ब्रह्मलोकदेवों का भी कथन करना चाहिए।

विशेष—ब्रह्मलोकदेव की स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक जानना चाहिए।

इसी प्रकार सहस्रारदेव पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष—स्थिति और संवेध उपयोगपूर्वक कहना चाहिए।

लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार देवों में उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक के तीनों ही गमकों में छहों लेश्याएं कहनी चाहिए।

ब्रह्मलोक और लान्तक देवों में उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्च में प्रथम के पांच संहनन होते हैं। महाशुक्र और सहस्रार में उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्च में आदि के चार संहनन होते हैं।

मनुष्यों के भी संहनन इसी प्रकार जानने चाहिए।

७४. आणयाइ अच्चुयपज्जंत देवे उववज्जंतेसु मणुस्सेसु उववायाइ वीसं दारं परूवणं—

प. आणयदेवा णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति?

उ. गोयमा ! उववाओ जहा सहस्सारदेवाणं,
णवरं—तिरिक्खजोणिया खोडेयव्वा।

प. पज्जत्तासंखेज्जवासाउयसण्णिमणुस्से णं भंते ! जे भविए आणयदेवेसु उववज्जित्तए से णं भंते ! केवइयं कालट्ठिईएसु उववज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारससागरोवमं ठिईएसु उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमं ठिईएसु उववज्जेजा।
सेसा वत्तव्वया जहेव सहस्सारेसु उववज्जमाणाणं भणिया तहा भाणियव्वा,
णवरं—तिण्णि संघयणाणि,
भवादेसेणं—जहण्णेणं तिण्णि भवग्गहणाइं, उक्कोसेणं सत्त भवग्गहणाइं।

७४. आनत आदि से अच्युत पर्यन्त देवों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के उपपातादि बीस द्वारों का प्ररूपण—

प्र. भंते ! आनतदेव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

उ. गौतम ! सहस्रारदेवों के समान यहां उपपात कहना चाहिए।
विशेष—यहां तिर्यञ्चयोनिक की उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

प्र. भंते ! संख्यात वर्ष की आयु वाला पर्याप्तक संज्ञी मनुष्य जो आनतदेवों में उत्पन्न होने योग्य है तो भन्ते ! वह कितने काल की स्थिति वाले आनतदेवों में उत्पन्न होता है?

उ. गौतम ! जघन्य अठारह सागरोपम, उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न होता है।
शेष कथन सहस्रारदेवों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के समान यहां भी कहना चाहिए।
विशेष—इसमें प्रथम के तीन संहनन होते हैं।
भवादेश से—जघन्य तीन भव और उत्कृष्ट सात भव ग्रहण करता है।

कालादेसेणं जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं वासपुहत्तेहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (पढम गमओ)

कालादेश से जघन्य दो वर्ष पृथक्त्व अधिक तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह प्रथम गमक है)

सो चेव अप्पणा जहण्णकालट्ठिईओ जाओ, एसा चेव पढम गमग सरिसा वत्तव्वया।

यदि वह (संज्ञी मनुष्य) स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और सर्वार्थसिद्धदेवों में उत्पन्न हो तो उसका भी कथन प्रथम गमक के समान करना चाहिए।

णवरं–ओगाहणा रयणिपुहत्तं ठिई-वासपुहत्तं।

विशेष–इनकी अवगाहना रत्नि पृथक्त्व (अनेक हाथ) है और स्थिति वर्ष पृथक्त्व (अनेक वर्ष) है।

संवेहं च उवउंजिऊण जाणेज्जा। (विइओ गमओ चउत्थो गमओ)

संवेध (इनका अपना) उपयोगपूर्वक जानना चाहिए। (यह द्वितीय गमक है अर्थात् चौथा गमक है।)

सो चेव अप्पणा उक्कोसकालट्ठिईओ जाओ, एसा चेव पढम गमग वत्तव्वया,

वही (संज्ञी मनुष्य) स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसका भी कथन प्रथम गमक के समान जानना चाहिए।

णवरं–ओगाहणा जहण्णेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेण वि पंच धणुसयाइं।

विशेष–इसकी अवगाहना जघन्य पांच सौ धनुष और उत्कृष्ट भी पांच सौ धनुष है।

ठिई अणुबंधो जहण्णेणं पुव्वकोडी, उक्कोसेण वि पुव्वकोडी।

इसकी स्थिति अनुबंध जघन्य पूर्वकोटि वर्ष है उत्कृष्ट भी पूर्वकोटि वर्ष है।

कालादेसेणं जहण्णेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, उक्कोसेण वि तेत्तीसं सागरोवमाइं दोहिं पुव्वकोडीहिं अब्भहियाइं, एवइयं कालं सेवेज्जा, एवइयं कालं गतिरागतिं करेज्जा। (तइओ गमओ सत्तमो गमओ)

कालादेश से जघन्य दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम और उत्कृष्ट भी दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम जितना काल व्यतीत करता है और इतने ही काल तक गमनागमन करता है। (यह तीसरा गमक है अर्थात् सातवाँ गमक है)

सव्वट्ठसिद्धगदेवे उववज्जमाणाणं मणुस्साणं एए तिण्णि पढम चउत्थ सत्तम गमगा भवंति।

सर्वार्थसिद्ध देवों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के ये तीन ही गमक होते हैं–पहला, चौथा और सातवाँ।

सेसा छ गमगा न भवंति।

–विया. स. २४, उ. २४, सु. २४-२९

शेष छः गमक नहीं होते हैं।





आत्मा अध्ययन : आमुख

आगम में आत्मा एवं जीव शब्द एकार्थक हैं। तथापि आत्मा शब्द जीव का विशिष्ट एवं सूक्ष्म विवेचन करता है। इस आत्मा को जीवात्मा भी कहा गया है। कुछ अन्यतीर्थिकों के अनुसार प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य नामक अठारह पापों में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा उससे भिन्न है किन्तु भगवान महावीर इस मान्यता को मिथ्या बतलाते हुए प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में प्रवर्तमान प्राणी को ही जीव तथा जीवात्मा निरूपित करते हैं। यही नहीं वे इन पापों से विरत प्राणी को भी जीव एवं जीवात्मा शब्द से पुकारते हैं। व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार इस अध्ययन में अन्यतीर्थिकों की अनेक शंकाएं या मान्यताएँ उठाकर उनका निराकरण करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञान, दर्शन, दृष्टि, अज्ञान, संज्ञा, शरीर, कर्म, योग, उपयोग, गति, बुद्धि आदि में प्रवर्तमान जीव एवं जीवात्मा या आत्मा भिन्न-भिन्न नहीं है। जो जीव या आत्मा संसार में प्रवृत्त हैं वे ही मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं। चैतन्य की दृष्टि से वे एक हैं।

'एगे आया' सूत्र का अर्थ यह नहीं है कि विश्व में संख्या की दृष्टि से आत्मा एक है। वेदान्त दर्शन ब्रह्म या तुरीय चैतन्य (आत्मा) को संख्या की दृष्टि से एक मानता है तथा संसारी जीवों में उसका ही चैतन्यांश स्वीकार करता है किन्तु जैन दर्शन में आत्मा एक नहीं अनन्त हैं। सभी आत्माएं अपने कृतकर्मों का फल पृथक् रूपेण भोगती हैं। 'एगे आया' सूत्र में आत्मा को जो एक बतलाया गया है वह चैतन्य की दृष्टि से सभी आत्माओं की एकता या समानता को प्रकट करता है।

आत्मा एवं ज्ञान-दर्शन में परस्पर क्या सम्बन्ध है, इस पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि आत्मा कदाचित् ज्ञानरूप है तथा कदाचित् अज्ञानरूप है किन्तु ज्ञान नियमतः आत्मा होता है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं है, अपितु मिथ्यादर्शन की उपस्थिति में जो ज्ञान होता है उसे ही अज्ञान कहा जाता है। दर्शन नियमतः आत्मा होता है तथा आत्मा नियमतः दर्शन होता है। इस प्रकार आत्मा ज्ञानदर्शनमय है। चौबीस दण्डकों में से एकेन्द्रिय जीवों के जो पाँच दण्डक हैं उनमें आत्मा अज्ञानरूप होता है, शेष सभी दण्डकों में वह कदाचित् ज्ञानरूप और कदाचित् अज्ञानरूप होता है। पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रियों का अज्ञान नियमतः आत्मरूप होता है तथा आत्मा नियमतः अज्ञानरूप होता है। दर्शन की दृष्टि से समस्त चौबीस दण्डकों में आत्मा दर्शनरूप एवं दर्शन आत्मरूप होता है इसमें कोई विकल्प नहीं है।

आत्मा के आठ प्रकार हैं—१. द्रव्यात्मा २. कषायात्मा ३. योग-आत्मा ४. उपयोग-आत्मा ५. ज्ञान-आत्मा ६. दर्शन-आत्मा ७. चारित्र-आत्मा और ८. वीर्यात्मा। आत्मा के ये आठ प्रकार उसका विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रतिपादन करते हैं। द्रव्यात्मा तो सभी जीवों में सदैव रहती है, कषाय आत्मा सकषायी जीवों में, योग-आत्मा सयोगी जीवों में, चारित्रात्मा चारित्रयुक्त जीवों में तथा वीर्यात्मा वीर्ययुक्त (पराक्रमी) जीवों में रहती है। उपयोग-आत्मा एवं दर्शन आत्मा सभी जीवों में रहती है। ज्ञान आत्मा कभी ज्ञान के रूप में तथा कभी अज्ञान के रूप में रहती है अतः वह विकल्प से रहती है। द्रव्यात्मा आदि आठ आत्माओं में परस्पर सहभाव का इस आधार पर चिन्तन करने से विदित होता है कि जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके कषायात्मा एवं योग-आत्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है, किन्तु जिसके कषायात्मा या योग-आत्मा होती है उसके द्रव्यात्मा निश्चित रूप से होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके उपयोग-आत्मा एवं दर्शन-आत्मा निश्चित रूप से होती है तथा जिसके उपयोग-आत्मा या दर्शन-आत्मा होती है उसके द्रव्यात्मा निश्चित रूप से होती है। ज्ञान-आत्मा, चारित्रात्मा एवं वीर्यात्मा के होने पर द्रव्यात्मा निश्चित रूप से होती है किन्तु द्रव्यात्मा के होने पर ये ज्ञान आदि आत्माएँ विकल्प से होती हैं।

जिसके कषाय आत्मा होती है उसके योग-आत्मा, उपयोग-आत्मा, दर्शनात्मा एवं वीर्यात्मा निश्चितरूप से होती है, किन्तु जिसके योग आत्मा, उपयोग आत्मा, दर्शनात्मा या वीर्यात्मा होती है उसके कषाय आत्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं। कषायात्मा के साथ ज्ञानात्मा एवं चारित्रात्मा का वैकल्पिक सम्बन्ध है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन में आठों आत्माओं के पारस्परिक सहभाव या असहभाव पर विचार संकलित हैं।

इन आठ प्रकार की आत्माओं में सबसे अल्प चारित्रात्मा है, उनसे ज्ञानात्माएँ अनन्तगुणी हैं। उनसे कषायात्माएँ अनन्त गुणी हैं। कषायात्माओं से योगात्माएँ विशेषाधिक हैं तथा उनसे वीर्यात्माएँ विशेषाधिक हैं। उनसे उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा एवं दर्शनात्मा तुल्य होकर विशेषाधिक हैं।

शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श का क्रमशः सुनने, देखने, सूँघने, आस्वाद लेने एवं प्रतिसंवेदन करने का कार्य आत्मा दो प्रकार से करता है—शरीर के एक भाग से अथवा समस्त शरीर से।

अवभास, प्रभास, विक्रिया, परिचारणा, भाषा, आहार, परिणमन, वेदन और निर्जरा आदि क्रियाएँ भी आत्मा उपर्युक्त दो प्रकारों से करता है।

प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपात विरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, औत्पातिकी यावत् पारिणामिकी बुद्धि, अवग्रह यावत् धारणा, उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम, नैरयिकत्व यावत् वैमानिकत्व, ज्ञानावरण यावत् अन्तरायकर्म, कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ललेश्या, तीनों दृष्टियाँ, चारों दर्शन, पाँचों ज्ञान एवं तीनों अज्ञान, आहारादि चारों संज्ञाएँ, पाँचों शरीर, तीनों योग, साकारोपयोग एवं अनाकारोपयोग तथा इनके जैसे और भी पदार्थ आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र परिणमन नहीं करते हैं। ये सब आत्मा में ही परिणमन करते हैं। □

४२. आया-अज्झयणं

सूत्र

१. दव्वट्ठयाए आया–

एगे आया। –ठाणं. अ. १, सु. २

२. जीव-चउवीसदंडएसु नाण दंसणं पडुच्च आय सरूव परूवणं–

प. आया भंते ! नाणे, अन्ने नाणे ?

उ. गोयमा ! आया सिय नाणे, सिय अन्नाणे, नाणे पुण नियमं आया।

प. दं. १. आया भंते ! नेरइयाणं नाणे, अन्ने नेरइयाणं नाणे ?

उ. गोयमा ! आया नेरइयाणं सिय नाणे, सिय अन्नाणे, नाणे पुण से नियमं आया।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. आया भंते ! पुढविकाइयाणं अन्नाणे, अन्ने पुढविकाइयाणं अन्नाणे ?

उ. गोयमा ! आया पुढविकाइयाणं नियमं अन्नाणे, अन्नाणे वि नियमं आया।

दं. १२-१६. एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

दं. १७-२४. बेइंदिय-तेइंदिय जाव वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं।

प. आया भंते ! दंसणे, अन्ने दंसणे ?

उ. गोयमा ! आया नियमं दंसणे, दंसणे वि नियमं आया।

प. दं. १. आया भंते ! नेरइयाणं दंसणे, अन्ने नेरइयाणं दंसणे ?

उ. गोयमा ! आया नेरइयाणं नियमं दंसणे, दंसणे वि से नियमं आया।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं निरंतरं दंडओ।

–विया. स. १२, उ. १०, सु. १०-१८

३. आयाणं अट्ठविहत्त परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! आया पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! अट्ठविहा आया पन्नत्ता, तं जहा–

१. दवियाया, २. कसायाया,
३. जोगाया, ४. उवयोगाया,
५. णाणाया, ६. दंसणाया,
७. चरित्ताया, ८. वीरियाया।

–विया. स. १२, उ. १०, सु. १

४२. आत्मा अध्ययन

सूत्र

१. द्रव्य की अपेक्षा आत्मा–

आत्मा एक है।

२. जीव-चौबीसदंडकों में ज्ञान दर्शन की अपेक्षा आत्म स्वरूप का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! आत्मा ज्ञानरूप है या ज्ञान अन्य रूप है ?

उ. गौतम ! आत्मा कदाचित् ज्ञानरूप है, कदाचित् अज्ञानरूप है किन्तु ज्ञान नियमतः आत्मारूप है।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की आत्मा ज्ञानरूप है या नैरयिकों का ज्ञान अन्य रूप है ?

उ. गौतम ! नैरयिकों की आत्मा कथंचित् ज्ञानरूप है, कथंचित् अज्ञानरूप है, किन्तु उनका ज्ञान नियमतः (अवश्य ही) आत्मरूप है।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! पृथ्वीकायिक जीवों की आत्मा अज्ञानरूप है या पृथ्वीकायिकों का अज्ञान अन्य रूप है ?

उ. गौतम ! पृथ्वीकायिकों की आत्मा नियमतः अज्ञान रूप है और उनका अज्ञान भी नियमतः आत्मरूप है।

दं. १२-१६. इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १७-२४. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से वैमानिकों पर्यन्त के जीवो का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! आत्मा दर्शनरूप है या दर्शन अन्य रूप है ?

उ. गौतम ! आत्मा नियमतः दर्शनरूप है और दर्शन भी नियमतः आत्मरूप है।

प्र. दं. १. भन्ते ! नैरयिकों की आत्मा दर्शनरूप है या नैरयिक जीवों का दर्शन अन्य रूप है ?

उ. गौतम ! नैरयिक जीवों की आत्मा नियमतः दर्शनरूप है और उनका दर्शन भी नियमतः आत्मरूप है।

दं. २-२४. इसी प्रकार निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त सभी दण्डकों के लिए कहना चाहिए।

३. आत्मा के आठ प्रकारों का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! आत्मा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! आत्मा आठ प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. द्रव्यात्मा, २. कषायात्मा,
३. योग-आत्मा, ४. उपयोग-आत्मा,
५. ज्ञान-आत्मा, ६. दर्शन-आत्मा,
७. चारित्र-आत्मा, ८. वीर्यात्मा।

४. आयाहिं सद्दाईणं अणुभूइठाण परूवणं–

दोहिं ठाणेहिं आया सद्दाइं सुणेइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया सद्दाइं सुणेइ,

२. सव्वेण वि आया सद्दाइं सुणेइ।

दोहिं ठाणेहिं आया रूवाइं पासइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया रूवाइं पासइ,

२. सव्वेण वि आया रूवाइं पासइ।

दोहिं ठाणेहिं आया गंधाइं अग्घाइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया गंधाइं अग्घाइ,

२. सव्वेण वि आया गंधाइं अग्घाइ।

दोहिं ठाणेहिं आया रसाइं आसादेइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया रसाइं आसादेइ,

२. सव्वेण वि आया रसाइं आसादेइ।

दोहिं ठाणेहिं आया फासाइं पडिसंवेदेइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया फासाइं पडिसंवेदेइ,

२. सव्वेण वि आया फासाइं पडिसंवेदेइ।

दोहिं ठाणेहिं आया ओभासइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया ओभासइ,

२. सव्वेण वि आया ओभासइ।

एवं पभासइ, विकुव्वइ, परियारेइ, भासं भासइ, आहारेइ, परिणामेइ, वेदेइ, णिज्जरेइ। –*ठाणं. अ. २, उ. २, सु. ७१*

५. पाणाइवायाईसु पवट्टमाण जीव-जीवायासु एगत्त परूवणं–

प. अन्नउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति **जाव** परूवेंति–

एवं खलु पाणाइवाए, मुसावाए **जाव** मिच्छादंसणसल्ले वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया पाणाइवाय-वेरमणे **जाव** परिग्गहवेरमणे, कोहविवेगे **जाव** मिच्छा-दंसणसल्लविवेगे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे अन्ने जीवाया।

उप्पत्तियाए **जाव** पारिणामियाए वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया।

उग्गहे, ईहा, अवाए, धारणाए वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया।

उट्ठाणे **जाव** परक्कमे वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया।

नेरइयत्ते, तिरिक्ख मणुस्सदेवत्ते वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया।

नाणावरणिज्जे **जाव** अंतराइए वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया।

एवं कण्हलेस्साए **जाव** सुक्कलेस्साए,

सम्मदिट्ठीए, मिच्छदिट्ठीए, सम्मामिच्छदिट्ठीए,

चक्खुदंसणे **जाव** केवलदंसणे,

आभिणिबोहियनाणे **जाव** केवलनाणे,

४. आत्मा द्वारा शब्दों के अनुभूति स्थान का प्ररूपण–

दो प्रकार से आत्मा शब्दों को सुनता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी आत्मा शब्दों को सुनता है।

२. समस्त शरीर से भी आत्मा शब्दों को सुनता है।

दो प्रकार से आत्मा रूपों को देखता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी आत्मा रूपों को देखता है।

२. समस्त शरीर से भी आत्मा रूपों को देखता है।

दो प्रकार से आत्मा गंधों को सूँघता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी आत्मा गंधों को सूँघता है।

२. समस्त शरीर से भी आत्मा गंधों को सूँघता है।

दो प्रकार से आत्मा रसों का आस्वाद लेता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है।

२. समस्त शरीर से भी आत्मा रसों का आस्वाद लेता है।

दो प्रकार से आत्मा स्पर्शों का अनुभव करता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी आत्मा स्पर्शों को अनुभव करता है।

२. समस्त शरीर से भी आत्मा स्पर्शों को अनुभव करता है।

दो प्रकार से आत्मा अवभास करता है, यथा–

१. शरीर के एक भाग से भी आत्मा अवभास करता है।

२. समस्त शरीर से भी आत्मा अवभास करता है।

इसी प्रकार प्रभास, विक्रिया, परिचारणा, भाषा बोलना, आहार, परिणमन, वेदन और निर्जरा करता है।

५. प्राणातिपातादि में प्रवर्तमान जीवों और जीवात्माओं में एकत्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं **यावत्** प्ररूपणा करते हैं कि–प्राणातिपात, मृषावाद **यावत्** मिथ्यादर्शनशल्य में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और उससे जीवात्मा पृथक् है। प्राणातिपातविरमण **यावत्** परिग्रहविरमण में, क्रोधविवेक **यावत्** मिथ्यादर्शनशल्य विवेक में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और उससे जीवात्मा पृथक् है।

औत्पत्तिकी बुद्धि **यावत्** पारिणामिकी बुद्धि में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और उससे जीवात्मा पृथक् है।

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और उससे जीवात्मा पृथक् है।

उत्थान **यावत्** पराक्रम में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और उससे जीवात्मा पृथक् है।

नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव रूप में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और उससे जीवात्मा पृथक् है।

ज्ञानावरणीय कर्म **यावत्** अन्तराय कर्म में प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा पृथक् है।

इसी प्रकार कृष्णलेश्या **यावत्** शुक्ललेश्या में,

सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि में,

चक्षुदर्शन **यावत्** केवलदर्शन में,

आभिनिबोधिक ज्ञान **यावत्** केवलज्ञान में,

मइअन्नाणे जाव विभंगनाणे,
आहारसन्नाए जाव मेहुणसन्नाए,
ओरालियसरीरे जाव कम्मग सरीरे,
एवं मणोजोए, वइजोए, कायजोए,
सागारोवयोगे अणागारोवयोगे,
वट्टमाणस्स अन्ने जीवे, अन्ने जीवाया।

प. से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! जं णं ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खंति जाव मिच्छंते एवमाहंसु।

अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि–

"एवं खलु पाणाइवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले वट्टमाणस्स से चेव जीवे, से चेव जीवाया जाव अणागारोवयोगे वट्टमाणस्स से चेव जीवे, से चेव जीवाया।" *–विया. स. १७, उ. २, सु. १७*

मति अज्ञान यावत् विभंगज्ञान में,
आहारसंज्ञा यावत् मैथुन संज्ञा में,
औदारिक शरीर यावत् कार्मण शरीर में,
भनोयोग, वचनयोग और काययोग में,
साकारोपयोग और अनाकारोपयोग में,
प्रवर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा पृथक् है।

प्र. वे इस प्रकार कैसे कहते हैं ?

उ. गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् वे मिथ्या कहते हैं।

(किन्तु) गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ–

"प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में प्रवर्तमान प्राणी ही जीव और वही जीवात्मा है यावत् अनाकारोपयोग में प्रवर्तमान प्राणी ही जीव है और वही जीवात्मा है।"

६. पाणाइवायाईणं आय परिणामित्त परूवणं–

प. अह भंते ! पाणाइवाए, मुसावाए जाव मिच्छादंसणसल्ले,
पाणाइवायवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे,
उप्पत्तिया जाव पारिणामिया,
उग्गहे जाव धारणा,
उट्ठाणे जाव पुरिसक्कारपरक्कमे,
नेरइयत्ते, असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते,
नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए,
कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा,
सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्ममिच्छदिट्ठी,
चक्खुदंसणे जाव केवलदंसणे,
आभिणिवोहियाणाणे जाव विभंगनाणे,
आहारसन्ना जाव मेहुणसन्ना,
ओरालियसरीरे जाव कम्मगसरीरे,
मणोजोए, वइजोए, कायजोए,
सागारोवयोगे, अणागारोवयोगे,
जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वे ते णऽन्नत्थ आयाए परिणमंति ?

उ. हंता, गोयमा ! पाणाइवाए जाव अणागारोवयोगे जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वे ते णऽन्नत्थ आयाए परिणमंति। *–विया. स. २०, उ. ३, सु. १*

६. प्राणातिपातादि के आत्म परिणामित्व का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य,
प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक,
औत्पत्तिकी यावत् पारिणामिकी बुद्धी,
अवग्रह यावत् धारणा,
उत्थान यावत् पुरुषाकार पराक्रम,
नैरयिकत्व, असुरकुमारत्व यावत् वैमानिकत्व,
ज्ञानावरणीय यावत् अन्तरायकर्म,
कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या,
सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि,
चक्षुदर्शन यावत् केवलदर्शन,
आभिनिवोधिकज्ञान यावत् विभंगज्ञान,
आहारसंज्ञा यावत् मैथुनसंज्ञा,
औदारिक शरीर यावत् कार्मण शरीर,
मनोयोग, वचनयोग, काययोग तथा
साकारोपयोग एवं अनाकारोपयोग
ये और इनके जैसे और क्या आत्मा के सिवाय अन्यत्र परिणमन नहीं करते ?

उ. हाँ, गौतम ! प्राणातिपात यावत् अनाकारोपयोग पर्यन्त ये सब और इसी प्रकार के अन्य भी आत्मा के सिवाय अन्यत्र परिणमन नहीं करते।

७. दवियाइ अट्ठ आयाणं परोप्परं सहभाव परूवणं–

प. जस्स णं भंते ! दवियाया तस्स कसायाया, जस्स कसायाया तस्स दवियाया ?

उ. गोयमा ! जस्स दवियाया तस्स कसायाया सिय अत्थि सिय नत्थि, जस्स पुण कसायाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

७. द्रव्यात्मादि आठ आत्माओं के परस्पर सहभाव का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! जिसके द्रव्यात्मा होती है क्या उसके कषायात्मा होती है और जिसके कषायात्मा होती है क्या उसके द्रव्यात्मा होती है ?

उ. गौतम ! जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके कषायात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है, किन्तु जिसके कषायात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा निश्चित होती है।

प. जस्स णं भंते ! दवियाया तस्स जोगाया, जस्स जोगाया तस्स दवियाया ?

उ. गोयमा ! एवं जहा दवियाया य, कसायाया य भणिया तहा दवियाया य, जोगाया य भाणियव्वा।

प. जस्स णं भंते ! दवियाया तस्स उवओगाया जस्स उवओगाया तस्स दवियाया ?

एवं सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा,

उ. गोयमा ! जस्स दवियाया तस्स उवयोगाया नियमं अत्थि, जस्स वि उवयोगाया तस्स वि दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स नाणाया भयणाए, जस्स पुण नाणाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि, जस्स वि दंसणाया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

जस्स दवियाया तस्स चरित्ताया भयणाए, जस्स पुण चरित्ताया तस्स दवियाया नियमं अत्थि।

एवं वीरियायाए वि समं।

प. जस्स णं भंते ! कसायाया तस्स जोगाया, जस्स जोगाया तस्स कसायाया ?

उ. गोयमा ! जस्स कसायाया तस्स जोगाया नियमं अत्थि, जस्स पुण जोगाया तस्स कसायाया सिय अत्थि, सिय नत्थि।

एवं उवयोगायाए वि समं कसायाया य नेयव्वा।

कसायाया य, नाणाया य परोप्परं दो वि भइयव्वाओ।

जहा कसायाया य, उवयोगाया य तहा कसायाया य, दंसणाया य।

कसायाया य, चरित्ताया य दो वि परोप्परं भइयव्वाओ।

जहा कसायाया य, जोगाया य तहा कसायाया य, वीरियाया य भाणियव्वा।

एवं जहा कसायायाए वत्तव्वया भणिया तहा जोगायाए वि उवरिमाहिं समं भाणियव्वा।

जहा दवियायाए वत्तव्वया भणिया तहा उवयोगायाए वि उवरिल्लेहिं समं भाणियव्वा।

प्र. भन्ते ! जिसके द्रव्यात्मा होती है क्या उसके योग आत्मा होती है और जिसके योग आत्मा होती है क्या उसके द्रव्यात्मा होती है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार द्रव्यात्मा और कषायात्मा के लिए कहा उसी प्रकार द्रव्यात्मा और योग आत्मा के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिसके द्रव्यात्मा होती है क्या उसके उपयोगात्मा होती है और जिसके उपयोगात्मा होती है क्या उसके द्रव्यात्मा होती है ?

इसी प्रकार शेष सभी आत्माओं के लिए द्रव्यात्मा से सम्बन्धित प्रश्न करने चाहिए।

उ. गौतम ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके उपयोगात्मा निश्चित होती है और जिसके उपयोगात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा निश्चितरूप से होती है।

जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके ज्ञानात्मा विकल्प से होती है और जिसके ज्ञानात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा निश्चितरूप से होती है।

जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके दर्शनात्मा निश्चित रूप से होती है तथा जिसके दर्शनात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा भी निश्चितरूप से होती है।

जिसके द्रव्यात्मा होती है उसके चारित्रात्मा विकल्प से होती है, किन्तु जिसके चारित्रात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा निश्चित होती है।

इसी प्रकार वीर्यात्मा के लिए भी समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिसके कषायात्मा होती है क्या उसके योगात्मा होती है और जिसके योगात्मा होती है क्या उसके कषायात्मा होती है ?

उ. गौतम ! जिसके कषायात्मा होती है, उसके योग आत्मा होती है, किन्तु जिसके योग आत्मा होती है उसके कषायात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।

इसी प्रकार उपयोगात्मा के साथ भी कषायात्मा का परस्पर सम्बन्ध समझ लेना चाहिए।

कषायात्मा और ज्ञानात्मा इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध विकल्प से कहना चाहिए।

कषायात्मा और उपयोगात्मा के समान ही कषायात्मा और दर्शनात्मा के लिए भी कथन करना चाहिए।

कषायात्मा और चारित्रात्मा का परस्पर सम्बन्ध विकल्प से कहना चाहिए।

कषायात्मा और योगात्मा के समान ही कषायात्मा और वीर्यात्मा के लिए भी कथन करना चाहिए।

जिस प्रकार कषायात्मा के साथ अन्य छह आत्माओं के सम्बन्ध का कथन किया उसी प्रकार योगात्मा के साथ भी आगे की पांच आत्माओं के सम्बन्ध का कथन करना चाहिए।

जिस प्रकार द्रव्यात्मा का कथन किया उसी प्रकार आगे की चार आत्माओं के साथ उपयोगात्मा का कथन करना चाहिए।

जस्स नाणाया तस्स दंसणाया नियमं अत्थि, जस्स पुण दंसणाया तस्स नाणाया भयणाए।

जस्स नाणाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि, सिय नत्थि, जस्स पुण चरित्ताया तस्स नाणाया नियमं अत्थि।

नाणाया य, वीरियाया य दो वि परोप्परं भयणाए।

जस्स दंसणाया तस्स उवरिमाओ दो वि भयणाए जस्स पुण ताओ तस्स दंसणाया नियमं अत्थि।

जस्स चरित्ताया तस्स वीरियाया नियमं अत्थि जस्स पुण वीरियाया तस्स चरित्ताया सिय अत्थि, सिय नित्थ।

–विया. स. १२, उ. १०, सु. २-८

८. **दव्वाइ आयाणं अप्पाबहुयं–**

प. एयासि णं भंते ! दवियायाणं कसायाणं जाव वीरियायाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवाओ चरित्तायाओ,

२. नाणायाओ अणंतगुणाओ,

३. कसायायाओ अणंतगुणाओ,

४. जोगायाओ विसेसाहियाओ,

५. वीरियायाओ विसेसाहियाओ,

६-८. उवयोगदविया दंसणायाओ तिण्णि वि तुल्लाओ विसेसाहियाओ। *–विया. स. १२, उ. १०, सु. ९*

९. **सरीरं चइत्ता अत्त निज्जाणस्स दुविहत्त परूवणं–**

दोहि ठाणेहिं आया सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाइ, तं जहा–

१. देसेण वि आया सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाइ,

२. सव्वेण वि आया सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाइ।

एवं फुरित्ताणं, एवं फुडित्ताणं, एवं संवट्टित्ताणं, एवं णिवट्टित्ताण वि। *–ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. १०८*



जिसके ज्ञानात्मा होती है उसके दर्शनात्मा निश्चित रूप से होती है और जिसके दर्शनात्मा होती है उसके ज्ञानात्मा विकल्प से होती है।

जिसके ज्ञानात्मा होती है उसके चारित्रात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है और जिसके चारित्रात्मा होती है उसके ज्ञानात्मा निश्चित रूप से होती है।

ज्ञानात्मा और वीर्यात्मा इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध विकल्प से कहना चाहिए।

जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा ये दोनों विकल्प से होती है, किन्तु जिसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा होती है उसके दर्शनात्मा निश्चितरूप से होती है।

जिसके चारित्रात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा निश्चितरूप से होती है, किन्तु जिसके वीर्यात्मा होती है उसके चारित्रात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती है।

८. **द्रव्यादि आत्माओं का अल्पबहुत्व–**

प्र. भन्ते ! द्रव्यात्मा से वीर्यात्मा पर्यन्त आत्माओं में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प चारित्रात्मा है,

२. (उनसे) ज्ञानात्माएँ अनन्तगुणी हैं,

३. (उनसे) कषायात्माएँ अनन्तगुणी हैं,

४. (उनसे) योगात्माएँ विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) वीर्यात्माएँ विशेषाधिक हैं,

६-८. (उनसे) उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा और दर्शनात्मा ये तीनों तुल्य हैं और पूर्व की अपेक्षा विशेषाधिक हैं।

९. **शरीर को छोड़कर आत्मनिर्याण के द्विविधत्व का प्ररूपण–**

दो प्रकार से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहर निकलता है, यथा–

१. एक देश से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहर निकलता है,

२. सब प्रदेशों से आत्मा शरीर का स्पर्श कर बाहर निकलता है।

इसी प्रकार स्फुरित, स्फुटित, संवर्तित और निवर्तित कर आत्मा शरीर से बाहर निकलता है।



समुद्घात अध्ययन : आमुख

सम् एवं उद् उपसर्ग पूर्वक हन् धातु से समुद्घात शब्द बना है। 'हन्' धातु यहाँ पर गमनार्थक है। विभिन्न कारणों से जब जीव के आत्म-प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं तो उसे समुद्घात कहा जाता है। वे आत्म प्रदेश पुद्गल युक्त होते हैं। इसलिए समुद्घातों का निरूपण करते समय आगम में पुद्गलों को भी शरीर से बाहर निकालने का वर्णन मिलता है। समुद्घात सात प्रकार के हैं– १. वेदना, २. कषाय, ३. मारणान्तिक, ४. वैक्रिय, ५. तैजस्, ६. आहारक और ७. केवली। ये समुद्घात स्वतः भी होते हैं और आवश्यकता होने पर किए भी जाते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन समुद्घात के सम्बन्ध में अनेकविध जानकारी प्रदान करता है। चौवीस दण्डकों में समुद्घातों का निरूपण है जिससे स्पष्ट होता है कि आहारक एवं केवली समुद्घात तो मात्र मनुष्यों में ही पाया जाता है। तैजस् समुद्घात मनुष्य के साथ देवों एवं तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय जीवों में भी होता है। वैक्रिय समुद्घात इन सबके अतिरिक्त वायुकाय एवं नैरयिक जीवों में भी होता है। वेदना, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात सभी जीवों में होते हैं। एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीवों में तो ये तीन समुद्घात ही मिलते हैं।

आत्मा को स्वदेह परिमाण स्वीकार करके भी जैनदर्शन में समुद्घात के माध्यम से आत्म-प्रदेशों का शरीर के बाहर निकलना प्रतिपादित किया गया है। वे पुद्गल युक्त आत्म-प्रदेश इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनके बाहर निकलने का अनुभव इन्द्रियों द्वारा नहीं किया जा सकता। केवली समुद्घात के समय आत्म-प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं किन्तु उसका अनुभव छद्मस्थ जीवों को नहीं होता। जैनदर्शन में विद्यमान समुद्घात की अवधारणा वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य का विषय है।

वेदना के असह्य होने पर उसे सहन करने अथवा निर्जरित करने के लिए जीव वेदना-समुद्घात करता है। इस प्रकार सभी समुद्घात विशेष परिस्थितियों में सप्रयोजन किए जाते हैं। वैक्रिय समुद्घात वैक्रिय लब्धि होने पर अथवा उत्तरवैक्रिय करने पर किया जाता है। तैजस् समुद्घात तेजोलेश्या का प्रयोग करते समय या अन्य प्रसंग में किया जाता है। मारणांतिक समुद्घात देह-त्याग के समय होता है। कषाय समुद्घात कषाय का आवेग बढ़ने पर होता है। आहारक समुद्घात तब किया जाता है जब कोई चौदह पूर्वधारी मुनि आहारक शरीर का पुतला जिनेन्द्र देव से विशिष्ट जानकारी हेतु बाहर भेजता है। केवली समुद्घात का प्रयोजन भिन्न है। जब केवली के आयुष्य कर्म की स्थिति कम हो तथा वेदनीय, गोत्र एवं नामकर्म की स्थिति अधिक हो तो उसे सम करने के लिए केवली समुद्घात किया जाता है। केवली समुद्घात के अलावा छह समुद्घात छद्मस्थों में पाए जाते हैं, अतः इन्हें छाद्मस्थिक समुद्घात कहा जाता है। छाद्मस्थिक समुद्घातों का काल असंख्यात समय है जबकि केवली समुद्घात का काल मात्र आठ समय है।

इस अध्ययन में सातों समुद्घातों का चौवीस दण्डकों में क्षेत्र, काल और क्रिया के आधार पर भी प्रतिपादन है जो समुद्घात को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अतीत एवं अनागत समुद्घातों का एकत्व एवं बहुत्व के द्वारा चौवीस दण्डकों में निरूपण उनकी वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करता है। केवली समुद्घात एक बार होता है और वह भी केवली बनने पर किसी-किसी केवली को होता है। आहारक समुद्घात मनुष्य पर्याय में एक जीव की अपेक्षा अतीत में उत्कृष्ट तीन हुए हैं तथा भविष्य में चार से अधिक नहीं होंगे। यह प्रत्येक मनुष्य के हो, यह आवश्यक नहीं है। वेदना, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय एवं तैजस् समुद्घात कदाचित् असंख्यात तथा कदाचित् अनन्त तक हो सकते हैं।

अल्प-बहुत्व का विचार करने पर ज्ञात होता है कि आहारक समुद्घात से समवहत जीव सबसे अल्प हैं। उनकी अपेक्षा केवली समुद्घात से समवहत जीव संख्यातगुणे हैं। तैजस् समुद्घात से समवहत जीव उनसे भी असंख्यातगुणे हैं। वैक्रिय समुद्घात से समवहत जीव उनसे अनन्तगुणे हैं। कषाय समुद्घात से समवहत जीव उनसे असंख्यातगुणा तथा वेदना समुद्घात से समवहत जीव उनसे विशेषाधिक हैं। असमवहत (समुद्घात रहित) जीव उनसे असंख्यातगुणे हैं। इस प्रकार समुद्घात रहित जीवों की संख्या सबसे अधिक है। इससे फलित होता है कि समुद्घात कभी-कभी ही किया जाता है एवं यह कोई अनिवार्य कार्य नहीं है। वेदना आदि निमित्तों को प्राप्त कर जीव यह क्रिया करता है। इस अध्ययन में प्रत्येक दण्डक के आधार पर समुद्घातों का अल्प-बहुत्व दिया गया है।

कषाय समुद्घात के चार भेद किए गए हैं–१. क्रोध समुद्घात, २. मान समुद्घात, ३. माया समुद्घात और ४. लोभ समुद्घात। नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवों में ये चारों समुद्घात कहे गए हैं। इनका भी अतीत अनागत द्वार से वर्णन किया गया है तथा प्रत्येक दण्डक में इनका अल्प बहुत्व निर्दिष्ट है। केवली समुद्घात पर इस अध्ययन में विशेष सामग्री संकलित है। उसके प्रयोजन, कार्य, निर्जीर्ण चरम पुद्गलों के सूक्ष्मत्व, समय, योग-प्रयोग, मोक्षगमन आदि का विशद निरूपण है।

□

४३. समुग्घाय–अज्झयणं

सूत्र

१. समुग्घाय भेय परूवणं–

प. कइ णं भंते ! समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए,
५. तेजस्समुग्घाए, ६. आहारगसमुग्घाए,
७. केवलिसमुग्घाए।[1] –पण्ण. प. ३६, सु. २०८६

२. ओहेण समुग्घायाणं सामित्तं–

गाहा–वेयणं कसाय मरणं, वेउव्विय तेयए य आहारे।
केवलिए चेव भवे, जीव-मणुस्साण सत्तेव॥ –पण्ण. प. ३६, सु. २०८५

३. ओहेण समुग्घाय काल परूवणं–

प. वेयणासमुग्घाए णं भंते ! कइ समइए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए पण्णत्ते।

एवं जाव आहारगसमुग्घाए।

प. केवलिसमुग्घाए णं भंते ! कइ समइए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अट्ठसमइए पण्णत्ते। –पण्ण. प. ३६, सु. २०८७-२०८८

४. चउवीसदंडएसु समुग्घाय परूवणं–

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए।[2]

प. दं. २-११. असुरकुमाराणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए,
५. तेजस्समुग्घाए।

एव जाव थणियकुमाराणं।[3]

प. दं. १२. पुढविक्काइयाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

४३. समुद्घात–अध्ययन

सूत्र

१. समुद्घात के भेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! समुद्घात कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! समुद्घात सात कहे गए हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात,
५. तैजस्समुद्घात, ६. आहारक समुद्घात,
७. केवलिसमुद्घात।

२. सामान्य से समुद्घातों का स्वामित्व–

गाथार्थ–१. वेदना, २. कषाय; ३. मारणान्तिक, ४. वैक्रिय, ५. तैजस्, ६. आहारक और ७. केवलिक ये सात समुद्घात जीवों और मनुष्यों के होते हैं।

३. औधिक समुद्घातों का ओघ से काल प्ररूपण–

प्र. भंते ! वेदनासमुद्घात कितने समय का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह असंख्यात समयों वाले अन्तर्मुहूर्त का कहा गया है।

इसी प्रकार आहारकसमुद्घात पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! केवलिसमुद्घात कितने समय का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह आठ समय का कहा गया है।

४. चौवीस दण्डकों में समुद्घातों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों के कितने समुद्घात कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! चार समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात।

प्र. दं. २-११. भंते ! असुरकुमारों के कितने समुद्घात कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! उनके पाँच समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात,
५. तैजस्समुद्घात।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने समुद्घात कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! तीन समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

---

१. (क) ठाणं. अ. ७, सु. ५८६
(ख) सम. सम. ७, सु. २
(ग) विया. स. २, उ. २, सु. १

२. (क) जीवा. पडि. १, सु. ३२
(ख) ठाणं अ. ४, सु. ३८०

३. (क) जीवा. पडि. १, सु. ४२
(ख) विया. स. २४, उ. १२, सु. ४६

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए।[1]

दं. १३-१९. एवं जाव चउरिंदियाणं[2]

णवरं– वाउक्काइयाणं चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए।[3]

प. दं. २०-२४. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियाणं जाव वेमाणियाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! पंचसमुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए,
५. तेजस्समुग्घाए।[4]

दं. २१. णवरं–मणूसाणं सत्तविहे समुग्घाए पण्णत्ते, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए,
५. तेजस्समुग्घाए, ६. आहारगसमुग्घाए,
७. केवलिसमुग्घाए।[5] *–पण्ण. प. ३६, सु. २०८९-२०९२,*

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात।

दं. १३-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–वायुकायिक जीवों के चार समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदना समुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रिय समुद्घात।

प्र. दं. २०-२४. भंते ! पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों से वैमानिकों पर्यन्त कितने समुद्घात कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! पाँच समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात,
५. तैजससमुद्घात।

दं. २१. विशेष–मनुष्यों के सात समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात,
५. तैजससमुद्घात, ६. आहारकसमुद्घात,
७. केवलिसमुद्घात।

५. रयणप्पभाईसु सत्तसु पुढवीसु नेरइयाणं समुग्घाय परूवणं–

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणा समुग्घाए, २. कसाय समुग्घाए,
३. मारणांतिय समुग्घाए, ४. वेउव्विय समुग्घाए,

एवं जाव अहेसत्तमाए। *–जीवा. पडि. ३, सु. ८८(२)*

५. रत्नप्रभादि सात पृथ्वियों में नैरयिकों के समुद्घातों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में कितने समुद्घात कहे गये हैं?

उ. गौतम ! चार समुद्घात कहे गये हैं, यथा–

१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणांतिक समुद्घात, ४. वैक्रिय समुद्घात।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त के समुद्घातों का कथन करना चाहिए।

६. सम्मुच्छिम-गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य समुग्घाय संखा परूवणं–

प. सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणा समुग्घाए, २. कसाय समुग्घाए,
३. मारणांतिय समुग्घाए।

सम्मुच्छिम थलयराणं-खहयराणं तओ समुग्घाया एवं चेव। *–जीवा. पडि. १, सु. ३५-३६*

प. गब्भवक्कंतियपंचेंदियतिरिक्खजोणिय जलयराणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता?

६. सम्मूर्च्छिम-गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों और मनुष्यों की समुद्घात संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों के कितने समुद्घात कहे गए हैं?

उ. गौतम ! तीन समुद्घात कहे गए हैं, यथा–

१. वेदना समुद्घात २. कषाय समुद्घात
३. मारणांतिक समुद्घात।

इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम स्थलचरों और खेचरों के तीन समुद्घात हैं।

प्र. भंते ! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जलचरों के कितने समुद्घात कहे गए हैं?

---

१. (क) जीवा. पडि. १, सु. १३(९)
(ख) विया. स. १७, उ. ६, सु. १(२)
(ग) विया. स. २४, उ. १२, सु. ३
(घ) विया, स. २४, उ. १२, सु. २०

२. जीवा. पडि. १, सु. १६-३०

३. (क) ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३८०
(ख) (सूक्ष्म वायुकाय के तीन समुद्घात हैं– १. वेयणा, २. कसाय, ३. मारणांतिय। *–जीवा. पडि. १, सु. २६*

४. (क) जीवा. पडि. ३, सु. ९७(१)
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ३८

५. (क) जीवा. पडि. १, सु. ४१
(ख) ठाणं. अ. ७, सु. ५८६

उ. गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणा समुग्घाए जाव ५. तेजस् समुग्घाए।
गब्भवक्कंतिय थलयराणं खहयराणं पंच समुग्घाया एवं चेव। –जीवा. पडि. १, सु. ३८-४०

प. सम्मुच्छिम मणुस्साणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणा समुग्घाए, २. कसाय समुग्घाए,
३. मारणांतिय समुग्घाए।
प. गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणा समुग्घाए जाव ७. केवलि समुग्घाए। –जीवा. पडि. १, सु. ४१

उ. गौतम ! पाँच समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात यावत् ५. तैजस्समुद्घात।
इसी प्रकार गर्भज स्थलचरों और खेचरों के भी पाँच समुद्घात हैं।
प्र. भंते ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! तीन समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणांतिक समुद्घात।
प्र. भंते ! गर्भज मनुष्यों के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! सातों समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात यावत् ७. केवलि समुद्घात।

७. ओहेण अणंतरोववन्नगाईसु एक्कारसठाणेसु एगिंदियाणं समुग्घाय परूवणं–
प. एगिंदियाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए। –विया. स. ३४, उ. १, सु. ७५
प. अणंतरोववन्नग एगिंदियाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दोण्णि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए य, २. कसायसमुग्घाए य। –विया. स. ३४, उ. २, सु. ६
प. परम्परोववन्नग एगिंदियाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए जाव ४. वेउव्वियसमुग्घाए। –विया. स. ३४, उ. ३, सु. १
एवं सेसा वि अट्ठ उद्देसगा जाव अचरिमो त्ति।
णवरं–अणंतरा चत्तारि अणंतर सरिसा।
परंपरा चत्तारि परंपर सरिसा।
चरिमा य, अचरिमा य एवं चेव। –विया. स. ३४, उ. ४-११

७. औधिक और अनन्तरोपपन्नकादि ग्यारह स्थानों में एकेन्द्रियों के समुद्घातों का प्ररूपण–
प्र. भंते ! एकेन्द्रिय जीवों के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! उनके चार समुद्घात कहे गये हैं, यथा–
१. वेदनासमुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणांतिक समुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात।
प्र. भंते ! अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के कितने समुद्घात कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! (उनके) दो समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदनासमुद्घात, २. कषाय समुद्घात।
प्र. भंते ! परंपरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! चार समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात यावत् ४. वैक्रिय समुद्घात।
इसी प्रकार शेष आठ उद्देशकों में अचरिम उद्देशक पर्यन्त समुद्घात जानने चाहिए।
विशेष–अनंतर विशेषण वाले चा उद्देशक अनन्तरोपपन्नक के समान हैं,
परम्पर विशेषण वाले चार उद्देशक परंपरोपपन्नक के समान हैं।
इसी प्रकार चरम और अचरम उद्देशक में भी समुद्घातों का कथन करना चाहिए।

८. सोहम्माईसु वेमाणिय देवेसु समुग्घाय परूवणं–
प. सोहम्मीसाणेसु णं भंते ! देवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–
१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए,
५. तेजस् समुग्घाए।

८. सौधर्मादि वैमानिकदेवों में समुद्घातों का प्ररूपण–
प्र. भंते ! सौधर्म-ईशान देवलोकों में देवों के कितने समुद्घात कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! पाँच समुद्घात कहे गए हैं, यथा–
१. वेदना समुद्घात, २. कषाय समुद्घात,
३. मारणांतिक समुद्घात, ४. वैक्रिय समुद्घात,
५. तैजस् समुद्घात।

एवं जाव अच्चुए।

गेवेज्जाणं आदिल्ला तिन्नि समुग्घाया पण्णत्ता।[1]

–जीवा. पडि. ३, सु. २०३

इसी प्रकार अच्युत देवलोक के देवों तक पाँच समुद्घात समझने चाहिए।

ग्रैवेयकों में आदि के तीन (वेदना, कषाय, मारणांतिक) समुद्घात कहे गए हैं।

९. चउवीसदंडएसु एगत्तपुहत्तेहिं अतीतानागयसमुग्घाय परूवणं–

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

दं. २-२४. एवं असुरकुमारस्स वि निरंतरं जाव वेमाणियस्स।

एवं जाव तेजससमुग्घाए।

एवं एए पंच चउवीसा दंडगा।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, उक्कोसेणं तिण्णि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

दं. २-२४. एवं निरंतरं जाव वेमाणियस्स।

णवरं–मणूसस्स अतीता वि, पुरेक्खडा वि जहा णेरइयस्स पुरेक्खडा।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि एक्को।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियस्स।

णवरं–दं. २१. मणूसस्स अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि। जस्सऽत्थि एक्को।

९. चौवीस दंडकों में एकत्व-बहुत्व द्वारा अतीत अनागत समुद्घातों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नारक के अतीत में कितने वेदनासमुद्घात हुए हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! वे भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे।

जिसके होंगे, उसके जघन्य एक, दो या तीन होंगे और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगे।

दं. २४. इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार तैजससमुद्घात पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार ये पाँचों समुद्घात चौवीस दण्डकों में जानने चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नारक के अतीत में कितने आहारकसमुद्घात हुए हैं ?

उ. गौतम ! किसी के हुए हैं और किसी के नहीं हुए हैं।

जिसके हुए हैं, उसके जघन्य एक या दो हुए हैं और उत्कृष्ट तीन हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे।

जिसके होंगे उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार समुद्घात होंगे।

दं. २-२४. इसी प्रकार निरन्तर वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–मनुष्य के अतीत और अनागत आहारक समुद्घात नारक के अनागत आहारक समुद्घात के समान जानना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नारक के कितने केवलिसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी (केवलि समुद्घात) व्यतीत नहीं हुआ है।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होगा और किसी के नहीं होगा जिसके होगा उसके एक ही होगा।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त कथन करना चाहिए।

विशेष–दं. २१. किसी मनुष्य के अतीत में केवलिसमुद्घात हुआ है किसी के नहीं हुआ है, जिसके हुआ है उसके एक ही हुआ है।

---

१. प. गेवेज्जाणं भंते ! देवाणं कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंच समुग्घाया पण्णत्ता– तं जहा १. वेयणासमुग्घाए जाव तेजससमुग्घाए।
णो चेव वेउव्वियसमुग्घाए वा, तेजससमुग्घाए वा, समोहणिंसु वा, समोहण्णंति वा, समोहणिस्संति वा। –जीवा. पडि. ३, सु. १११२-१११३ (तेरा.)

एवं पुरेक्खडा वि।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

एवं जाव तेजस्समुग्घाए।

एवं एए वि पंच चउवीसा दंडगा।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–१६ वणस्सइकाइयाणं, २१ मणूसाण य इमं णाणत्तं।

प. दं. १६. वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइया आहारग-समुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. दं. २१. मणुसाणं भंते ! केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा।

एवं पुरेक्खडा वि।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

णवरं–१६. वणस्सइकाइयाणं, २१. मणूसाणय इमं णाणत्तं।

प. दं. १६. वणस्सइकाइयाणं भंते ! केवइया केवलि-समुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. दं. २१. मणूसाणं भंते ! केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! सिय अत्थि, सिय णत्थि।

जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

इसी प्रकार अनागत में भी एक ही होगा।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के कितने वेदनासमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे भी अनन्त होंगे।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार तैजससमुद्घात पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार इन पाँचों समुद्घातों का कथन चौवीसों दण्डकों में करना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के आहारकसमुद्घात कितने व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! असंख्यात हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे भी असंख्यात होने वाले हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–१६. वनस्पतिकायिकों और २१. मनुष्यों में यह भिन्नता है।

प्र. दं. १६. भंते ! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने आहारकसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! (उनके) अनन्त व्यतीत हुए हैं।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्यों के अतीत में कितने आहारकसमुद्घात हुए हैं ?

उ. गौतम ! कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात हुए हैं।

इसी प्रकार भविष्य के (आहारकसमुद्घातों का भी कथन करना चाहिए।)

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के अतीत में केवलिसमुद्घात कितने हुए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी नहीं हुआ है।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे असंख्यात होने वाले हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–१६. वनस्पतिकायिकों और २१. मनुष्यों में यह अन्तर है–

प्र. दं. १६. भंते ! अतीत में वनस्पतिकायिकों के केवलिसमुद्घात कितने हुए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी नहीं हुआ है।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त होने वाले हैं।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्यों के अतीत में केवलिसमुद्घात कितने हुए हैं ?

उ. गौतम ! कदाचित् हुए हैं और कदाचित् नहीं हुए हैं।

यदि हुए हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व हुए हैं।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा।

—पण्ण. प. ३६, सु. २०९३-२१००

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! कदाचित् संख्यात होने वाले हैं और कदाचित् असंख्यात होने वाले हैं।

१०. चउवीसदंडयाणं चउवीसदंडएसु एगत्तपुहत्तेहिं अतीत-अणागय समुग्घाय परूवणं—

१. वेयणा समुग्घाए—

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
एवं असुरकुमारत्ते जाव वेमाणियत्ते।

प. दं. २. एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स णेरइयत्ते केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि तस्स सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

प. एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते केवइया वेयणासमुग्घाया अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा,
उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।
दं. ३-२४. एवं णागकुमारत्ते वि जाव वेमाणियत्ते।

एवं जहा वेयणासमुग्घाएणं असुरकुमारे णेरइयाइ-वेमाणिय-पज्जवसाणेसु भणिए तहा णागकुमारादिया अवसेसेसु सट्ठाण-परट्ठाणेसु भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

एवमेए चउव्वीसं चउव्वीसा दंडगा भवंति।

१०. चौबीस दंडकों का चौबीस दंडकों में एकत्व बहुत्व द्वारा अतीत-अनागत्व समुद्घातों का प्ररूपण—

१. वेदना समुद्घात—

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नैरयिक के नारक पर्यायों में रहते हुए कितने वेदनासमुद्घात व्यतीत हुए हैं।

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! वे किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं।

जिसके होने वाले हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन होने वाले हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होने वाले हैं।

इसी प्रकार नैरयिक के असुरकुमार पर्याय से वैमानिक पर्याय में रहते हुए (अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात) जानना चाहिए।

प्र. दं. २. भंते ! एक-एक असुरकुमार के नारक पर्याय में रहते हुए कितने वेदनासमुद्घात व्यतीत हुए हैं?

उ. गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं,

जिसके होने वाले हैं उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होने वाले हैं।

प्र. भंते ! एक-एक असुरकुमार के असुरकुमार पर्याय में रहते हुए कितने वेदनासमुद्घात व्यतीत हुए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं।

जिसके होने वाले हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन होने वाले हैं और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होने वाले हैं।

दं. ३-२४. इसी प्रकार नागकुमारपर्याय से वैमानिकपर्याय पर्यन्त में रहते हुए अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात समझने चाहिए।

जिस प्रकार असुरकुमार के नारकपर्याय से वैमानिक पर्याय पर्यन्त वेदनासमुद्घात कहे हैं, उसी प्रकार शेष नागकुमार आदि भी स्वस्थानों और पर स्थानों में वैमानिक पर्याय पर्यन्त कहने चाहिए यावत् वैमानिक भी वैमानिक पर्याय पर्यन्त जानने चाहिए।

इसी प्रकार ये चौबीस दण्डकों में प्रत्येक के चौबीस दण्डक होते हैं।

२. कसायसमुग्घाए–

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया कसायसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि एगुत्तरियाए जाव अणंता।

प. दं. २. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया कसायसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

दं. ३-११. एवं जाव णेरइयस्स थणियकुमारत्ते।

पुढविकाइयत्ते एगुत्तरियाए णेयव्वं,

एवं जाव मणूसत्ते।

वाणमंतरत्ते जहा असुरकुमारत्ते।

जोइसियत्ते अतीता अणंता,

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

एवं वेमाणियत्ते वि, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

असुरकुमारस्स णेरइयत्ते अतीता अणंता।

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

असुरकुमारस्स असुरकुमारत्ते अतीता अणंता।

पुरेक्खडा एगुत्तरिया जाव अणंता।

दं. २-२४. एवं नागकुमारत्ते निरंतरं जाव वेमाणियत्ते जहा णेरइयस्स भणियं तहेव भाणियव्वं।

एवं जाव थणियकुमारस्स वि जाव वेमाणियत्ते।

२. कषाय समुद्घात–

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नारक के नारक पर्याय में कितने कषायसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं।

जिसके होने वाले हैं, उसके एक से अनन्त पर्यन्त होने वाले हैं।

प्र. दं. २. भंते ! एक-एक नारक के असुरकुमारपर्याय में कितने कषायसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे किसी के होने वाले हैं, किसी के नहीं होने वाले हैं।

जिसके होने वाले हैं उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होने वाले हैं।

दं. ३-११. इसी प्रकार नारक का स्तनितकुमारपर्याय पर्यन्त में (अतीत-अनागत कषायसमुद्घात) समझना चाहिए।

नारक का पृथ्वीकायिकपर्याय में एक से लेकर अनन्त पर्याय जानना चाहिए।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याय पर्यन्त समझना चाहिए।

नारक के वाणव्यन्तर पर्याय में असुरकुमार पर्याय के समान जानना चाहिए।

ज्योतिष्क देव पर्याय में अतीत कषायसमुद्घात अनन्त हैं।

अनागत कषायसमुद्घात किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे।

जिसके होंगे, उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होंगे।

इसी प्रकार वैमानिकपर्याय में भी कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होंगे।

असुरकुमार के नैरयिकपर्याय में अतीत कपायसमुद्घात अनन्त होते हैं।

अनागत (कपायसमुद्घात) किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे,

जिसके होंगे उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होंगे।

असुरकुमार के असुरकुमारपर्याय में अतीत (कपाय-समुद्घात) अनन्त कहे हैं।

अनागत एक से लेकर अनन्त पर्यन्त कहने चाहिए।

दं. २-२४. इसी प्रकार नागकुमार पर्याय से लेकर वैमानिक पर्याय पर्यन्त जैसे नैरयिक के लिए कहा है वैसे ही कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्याय पर्यन्त भी यावत् वैमानिक पर्याय में पूर्ववत् कहना चाहिए।

णवरं-सव्वेसिं सट्ठाणे एगुत्तरिए परट्ठाणे जहेव असुरकुमारस्स।

विशेष-इन सबके स्वस्थान में अनागत (कषायसमुद्घात) एक से लगा कर उत्तरोत्तर अनन्त हैं और परस्थान में असुरकुमार के समान हैं।

पुढविक्काइयस्स णेरइयत्ते जाव थणियकुमारत्ते अतीता अणंता। पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

पृथ्वीकायिक जीव के नारकपर्याय से स्तनितकुमारपर्याय पर्यन्त अनन्त (कषायसमुद्घात) अतीत में हुए हैं और अनागत में किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं।

जस्सऽत्थि सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

जिसके होने वाले हैं, उसके कदाचित् संख्यात, कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होने वाले हैं।

पुढविकाइयस्स पुढविक्काइयत्ते जाव मणूसत्ते अतीता अणंता।
पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

पृथ्वीकायिक के पृथ्वीकायिक पर्याय से मनुष्य पर्याय तक में (कषायसमुद्घात) अतीत में अनन्त हुए हैं।
अनागत (कषाय समुद्घात) किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं।

जस्सऽत्थि एगुत्तरिया।

जिसके होने वाले हैं, उसके एक से लगा कर अनन्त होने वाले हैं।

वाणमंतरत्ते जहा णेरइयत्ते।
जोइसिय-वेमाणियत्ते अतीता अणंता,
पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।
जस्सऽत्थि, सिय असंखेज्जा, सिय अणंता।

वाणव्यन्तर-पर्याय में नारक पर्याय के समान जानना चाहिए।
ज्योतिष्क और वैमानिक पर्याय अतीत में अनन्त हुए हैं।
अनागत किसी के होने वाले हैं, किसी के नहीं होने वाले हैं।
जिसके होने वाले हैं, उसके कदाचित् असंख्यात और कदाचित् अनन्त होने वाले हैं।

एवं जाव मणूसेऽवि णेयव्वं।
वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारे।

इसी प्रकार मनुष्य के लिए भी जानना चाहिए।
वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का कथन असुरकुमार के समान करना चाहिए।

णवरं-सट्ठाणे एगुत्तरियाए भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।
एवं एए चउवीसं चउवीसा दंडगा।

विशेष-स्वस्थान में एकोत्तर की वृद्धि से वैमानिक के वैमानिक पर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।
इस प्रकार ये चौबीस दण्डक चौबीसों दण्डकों में होते हैं।

३. मारणांतियसमुग्घाए-
मारणांतियसमुग्घाओ सट्ठाणे वि, परट्ठाणे वि एगुत्तरियाए नेयव्वो जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

एवमेए चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

३. मारणांतिक समुद्घात-
मारणान्तिकसमुद्घात स्वस्थान में और परस्थान में भी एकोत्तर की वृद्धि से वैमानिक का वैमानिक पर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।
इस प्रकार ये चौबीस दण्डक चौबीसों दण्डकों में होते हैं।

४. वेउव्वियसमुग्घाए-
वेउव्वियसमुग्घाओ जहा कसायसमुग्घाओ तहा णिरवसेसो भाणियव्वो।
णवरं-जस्स णत्थि तस्स ण वुच्चइ-

एत्थ वि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

४. वैक्रियसमुद्घात-
वैक्रियसमुद्घात का सम्पूर्ण कथन कषायसमुद्घात के समान करना चाहिए।
विशेष-जिसके (वैक्रिय समुद्घात) नहीं होता, उसका कथन नहीं करना चाहिए।
यहाँ भी चौवीस दण्डक चौवीसों दण्डकों में होते हैं।

५. तेजस्समुग्घाए-
तेजस्समुग्घाओ जहा मारणांतियसमुग्घाओ।

णवरं-जस्स अत्थि।
एवं एए वि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

५. तेजस्समुद्घात-
तैजस् समुद्घात का कथन मारणान्तिकसमुद्घात के समान करना चाहिए।
विशेष-जिसके वह होता है, (उसी के कहना चाहिए।)
इस प्रकार ये भी चौवीस दण्डक चौवीसों दण्डकों में कहने चाहिए।

६. आहारगसमुग्घाए–

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया आहारगसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियत्ते।

णवरं–दं. २१ मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, उक्कोसेणं तिण्णि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

एवं सव्वजीवाणं मणूसेसु भाणियव्वं।

मणूसस्स मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

एवं पुरेक्खडा वि।

एवमेए वि चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

७. केवलिसमुग्घाए–

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया केवलिसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! णत्थि।

२-२४. एवं जाव वेमाणियत्ते।

णवरं–मणूसत्ते अतीता णत्थि,

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि,

जस्सऽत्थि एक्को।

मणूसस्स मणूसत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्सऽत्थि एक्को।

एवं पुरेक्खडा वि।

६. आहारक समुद्घात–

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नारक के नारक-पर्याय में कितने आहारकसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी व्यतीत नहीं हुआ है।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! एक भी नहीं होने वाला है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्याय पर्यन्त (अतीत और अनागत आहारकसमुद्घात का) कथन करना चाहिए।

विशेष–दं. २१ मनुष्यपर्याय में अतीत में (आहारकसमुद्घात) किसी के हुए हैं और किसी के नहीं हुए हैं।

जिसके हुए हैं, उसके जघन्य एक या दो और उत्कृष्ट तीन हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होने वाले हैं और किसी के नहीं होने वाले हैं।

जिसके होने वाले हैं उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार होने वाले हैं।

इसी प्रकार समस्त जीवों और मनुष्यों के (अतीत और अनागत आहारक समुद्घात) जानना चाहिए।

मनुष्य के मनुष्यपर्याय में अतीत में (आहारकसमुद्घात) किसी के हुए हैं और किसी के नहीं हुए हैं।

जिसके हुए हैं, उसके जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार हुए हैं।

इसी प्रकार अनागत (आहारकसमुद्घात) जानने चाहिए।

इस प्रकार ये चौवीस दण्डक चौवीसों दण्डकों में वैमानिक-पर्याय पर्यन्त (आहारकसमुद्घात) तक कहना चाहिए।

७. केवलि समुद्घात–

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नैरयिक के नारक पर्याय में कितने केवलिसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी नहीं हुआ है।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! भविष्य में भी नहीं होने वाले हैं।

२-२४. इसी प्रकार वैमानिकपर्याय पर्यन्त (केवलिसमुद्घात) कहना चाहिए।

विशेष–मनुष्यपर्याय में अतीत में (केवलिसमुद्घात) नहीं हुआ है।

अनागत में (केवलिसमुद्घात) किसी के होने वाले हैं, किसी के नहीं होने वाले हैं।

जिसके होने वाला है, उसके एक होने वाला है।

मनुष्य के मनुष्यपर्याय में अतीत में (केवलिसमुद्घात) किसी के हुआ है और किसी के नहीं हुआ है, जिसके हुआ है उसके एक हुआ है।

इसी प्रकार अनागत (केवलिसमुद्घात) के विषय में भी कहना चाहिए।)

एवमेए चउवीसं चउवीसा दंडगा भाणियव्वा।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया वेयणा-समुग्घाया अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! अणंता।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियत्ते।

एवं सव्वजीवाणं भाणियव्वं जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते।

एवं जाव तेजसूसमुग्घाओ।

णवरं-उवउंजिऊण णेयव्वं जस्सऽत्थि वेउव्विय-तेजसा।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया आहारग-समुग्घाया अतीता?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

२-२४. एवं जाव वेमाणियत्ते।

णवरं-मणूसत्ते अतीता असंखेज्जा, पुरेक्खडा असंखेज्जा।

एवं जाव वेमाणियाणं।

णवरं-वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीता अणंता, पुरेक्खडा अणंता।

मणूसाणं मणूसत्ते अतीता सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा।

एवं पुरेक्खडा वि।

सेसा सव्वे जहा णेरइया।

एवं एए चउव्वीसं चउव्वीसा दंडगा भाणियव्वा।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया केवलि-समुग्घाया अतीता?

उ. गोयमा ! णत्थि।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! णत्थि।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियत्ते।

णवरं-मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरेक्खडा असंखेज्जा।

एवं जाव वेमाणिया,

णवरं-वणस्सइकाइयाणं मणूसत्ते अतीता णत्थि, पुरेक्खडा अणंता।

मणूसाणं मणूसत्ते अतीता सिय अत्थि, सिय णत्थि।

इस प्रकार ये चौबीस दण्डक चौबीसों दण्डकों में जानना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! (बहुत-से) नारकों के नारकपर्याय में रहते हुए कितने वेदना समुद्घात व्यतीत हुए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! अनन्त होने वाले हैं।

इसी प्रकार वैमानिकपर्याय पर्यन्त होने वाले हैं।

इसी प्रकार सर्व जीवों के वैमानिकों के वैमानिकपर्याय पर्यन्त (अतीत और अनागत वेदनासमुद्घात) कहने चाहिए।

इसी प्रकार तैजससमुद्घात पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष-जिसके वैक्रिय और तैजससमुद्घात सम्भव हो उसी के उपयोग लगाकर कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के नारकपर्याय में रहते हुए कितने आहारक समुद्घात व्यतीत हुए हैं?

उ. गौतम ! एक भी नहीं है।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! एक भी नहीं होने वाला है।

२-२४. इसी प्रकार वैमानिकपर्याय पर्यन्त (अतीत अनागत आहारकसमुद्घात का) कथन करना चाहिए।

विशेष-मनुष्यपर्याय में अतीत और अनागत में असंख्यात (आहारकसमुद्घात) होते हैं।

इसी प्रकार वैमानिकों के पर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष-वनस्पतिकायिकों के मनुष्यपर्याय में अतीत और अनागत अनन्त होते हैं।

मनुष्यों के मनुष्यपर्याय में कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात अतीत में हुए हैं।

इसी प्रकार अनागत के लिए भी कहना चाहिए।

शेष सब कथन नारकों के समान करना चाहिए।

इस प्रकार इन चौबीस दण्डकों के चौबीस दण्डक होते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के नारक पर्याय में रहते हुए कितने केवलिसमुद्घात व्यतीत हुए हैं?

उ. गौतम ! एक भी नहीं हुआ।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं?

उ. गौतम ! एक भी नहीं होने वाला है।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकपर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष-मनुष्यपर्याय में अतीत में (केवलिसमुद्घात) नहीं हुए किन्तु अनागत में असंख्यात होंगे।

इसी प्रकार वैमानिकों के पर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष-वनस्पतिकायिकों के मनुष्यपर्याय में अतीत (केवलिसमुद्घात) नहीं हुए हैं किन्तु अनागत अनन्त होंगे।

मनुष्यों के मनुष्यपर्याय में अतीत (केवलिसमुद्घात) कदाचित् हुए हैं और कदाचित् नहीं हुए हैं।

जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! सिय संखेज्जा, सिय असंखेज्जा।

एवं एए चउव्वीसं चउव्वीसा दंडगा सव्वे पुच्छाए भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते।

–पण्ण. प. ३६, सु. २१०१-२१२४

यदि हुए हैं, तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे कदाचित् संख्यात होने वाले हैं और कदाचित् असंख्यात होने वाले हैं।

इस प्रकार इन चौवीस दण्डकों में चौवीस दण्डक पृच्छा घटित करके उसी के अनुसार वैमानिकों के वैमानिकपर्याय पर्यन्त कहने चाहिए।

११. समुग्घायाणं जीव-चउवीसदंडेसु खेत्तकाल किरिया परूवणं–

१. वेयणा समुग्घाए–

प. जीवे णं भंते ! वेयणासमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अफुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे ?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं, णियमा छद्दिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

प. से णं भंते ! खेत्ते केवइकालस्स अफुण्णे केवइकालस्स फुडे ?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, विग्गहेण वा एवइकालस्स अफुण्णे, एवइकालस्स फुडे।

प. ते णं भंते ! पोग्गला केवइकालस्स णिच्छुभइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तस्स।

प. ते णं भंते ! पोग्गला णिच्छूढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं जाव सत्ताइं अभिहणंति, वत्तेंति, लेसेंति, संघाएंति संघट्टेंति, परियावेंति, किलावेंति, उद्दवेंति, तेहिंतो णं भंते ! से जीवे कइकिरिए ?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प. *ते णं भंते ! जीवा ताओ जीवाओ कइकिरिया ?*

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिया, सिय चउकिरिया, सिय पंचकिरिया।

प. से णं भंते ! जीवे ते य जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघाएणं कइकिरिया ?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि।

प. दं. १. णेरइए णं भंते ! वेयणासमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ,

११. जीव-चौवीस दंडकों में समुद्घातों के क्षेत्र काल और क्रिया का प्ररूपण–

१. वेदना समुद्घात–

प्र. भंते ! वेदनासमुद्घात से समवहत हुआ जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है तो भंते ! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा शरीरप्रमाण क्षेत्र को नियमतः छहों दिशाओं में परिपूर्ण करता है और इतने ही क्षेत्र से स्पृष्ट होता है।

प्र. भंते ! वह क्षेत्र कितने काल में परिपूर्ण होता है और कितने काल में स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! एक समय, दो समय या तीन समय के विग्रह काल में परिपूर्ण होता है और इतने ही काल से स्पृष्ट होता है।

प्र. भंते ! (जीव) उन पुद्गलों को कितने काल में (आत्मप्रदेशों से) बाहर निकालता है ?

उ. गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त में (वह पुद्गलों को बाहर निकालता है।)

प्र. भंते ! वे बाहर निकाले गए पुद्गल वहाँ (स्थित) जिन प्राणों यावत् सत्वों का अभिघात करते हैं, घुमाते हैं, छूते हैं, एकत्रित करते हैं, संघट्टित करते हैं, परिताप पहुँचाते हैं, मूर्च्छित करते हैं और उपद्रवित करते हैं तब भंते ! वह जीव कितनी क्रियाओं वाला होता है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रिया वाला होता है।

प्र. भंते ! (अभिघात आदि करने वाले) वे जीव (अभिघात आदि किये जा रहे) उन जीवों के निमित्त से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! वे कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पाँच क्रिया वाले होते हैं।

प्र. भंते ! वह जीव और वे जीव, अन्य जीवों का परम्परा में घात करने से कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

उ. गौतम ! वे तीन क्रिया वाले भी होते हैं, चार क्रिया वाले भी होते हैं और पाँच क्रिया वाले भी होते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! वेदनासमुद्घात से समवहत हुआ नारक समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है,

तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अफुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे? जाव से णं भंते ! णेरइए ते य णेरइया अण्णेसिं णेरइयाणं परंपराघाएणं कइ किरिया?

उ. गोयमा ! एवं जहेव जीवे।

णवरं-णेरइयाभिलावो।

२-२४. एवं णिरवसेसं जाव वेमाणिए।

२. कसाय समुग्घाए-
एवं कसायसमुग्घाओ वि भाणियव्वो।

३. मारणंतिय समुग्घाए-

प. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अफुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते विक्खंभ बाहल्लेणं आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

प. से णं भंते ! खेत्ते केवइए कालस्स अफुण्णे केवइकालस्स फुडे?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइयण वा, चउसमइएण वा विग्गहेणं एवइकालस्स अफुण्णे, एवइकालस्स फुडे।
सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया।

दं. १. एवं णेरइए वि।

णवरं-आयामेणं जहण्णेणं साइरेगं जोयणसहस्सं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे विग्गहेणं एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा।

णवरं-चउसमइएण ण भण्णइ।
सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया वि।

दं. २. असुरकुमारस्स जहा जीवपए।

णवरं-विग्गहो तिसमइओ जहा णेरइयस्स।

सेसं तं चेव।
दं. ३-२४. जहा असुरकुमारे एवं जाव वेमाणिए।

भंते ! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है? यावत् भंते ! वह नारक और वे नारक अन्य नैरयिकों का परम्परा से घात करने पर कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उ. गौतम ! जैसा समुच्चय जीव के विषय में कहा, वैसा ही सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।
विशेष-यहाँ "जीव" के स्थान में "नारक" शब्द का प्रयोग करना चाहिए।
दं. २-२४. इस प्रकार वैमानिकों पर्यन्त सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

२. कषाय समुद्घात-
इसी प्रकार कषायसमुद्घात का भी समग्र वर्णन कहना चाहिए।

३. मारणांतिक समुद्घात-

प्र. भंते ! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत हुआ जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है, भंते ! उन पुदगलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा शरीरप्रमाण क्षेत्र को तथा लम्बाई में जघन्य एक दिशा में अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और उत्कृष्ट असंख्यात योजन तक के क्षेत्र को परिपूर्ण करता है और इतने ही क्षेत्र को स्पृष्ट करता है।

प्र. भंते ! वह क्षेत्र कितने काल में पुद्गलों से परिपूर्ण होता है तथा कितने काल में स्पृष्ट होता है?

उ. गौतम ! वह क्षेत्र एक समय, दो समय, तीन समय और चार समय जितने विग्रह काल में (उन पुद्गलों से) परिपूर्ण और स्पृष्ट हो जाता है।
शेष कथन पूर्ववत् कदाचित् पाँच क्रियाएँ लगती हैं पर्यन्त करना चाहिए।

दं. १. समुच्चय जीव के समान नैरयिक का भी कथन करना चाहिए।

विशेष-लम्बाई में जघन्य एक दिशा में कुछ अधिक हजार योजन, उत्कृष्ट असंख्यात योजन उक्त पुद्गलों से परिपूर्ण होता है और इतना ही क्षेत्र स्पृष्ट होता है तथा एक समय, दो समय या तीन समय के विग्रह से परिपूर्ण और स्पृष्ट कहना चाहिए।

विशेष-चार समय के विग्रह से स्पृष्ट नहीं कहना चाहिए।
शेष कथन पूर्ववत् कदाचित् पाँच क्रियाएँ लगती हैं पर्यन्त करना चाहिए।

दं. २. असुरकुमार का कथन जीवपद के (मारणान्तिक समुद्घात के) अनुसार करना चाहिए।

विशेष-असुरकुमार का विग्रह नारक के विग्रह के समान तीन समय का होता है।

शेष सब पूर्ववत् है।
दं. ३-२४. जिस प्रकार असुरकुमार के विषय में कहा उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिए।

णवरं–एगिंदिए जहा जीवे णिरवसेसं।

विशेष–एकेन्द्रिय का (मारणान्तिक समुद्घात सम्बन्धी) समग्र कथन जीव के समान करना चाहिए।

४. वेउव्विय समुग्घाए–

प. जीवे णं भंते ! वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अफुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे ?

उ. गोयमा ! सरीरप्पमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं जोयणाइं एगंदिसिं वा, विदिसिं वा एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

प. से णं भंते ! खेत्ते केवइकालस्स अफुण्णे, केवइकालस्स फुडे ?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा विग्गहेणं एवइ कालस्स अफुण्णे, एवइ कालस्स फुडे।

सेसं तं चेव जाव पंचकिरिया वि।

दं. १. एवं णेरइए वि।

णवरं–आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स संखेज्जइभागं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

प. से णं भंते ! खेत्तं केवइकालस्स अफुण्णे, केवइकालस्स फुडे ?

उ. गोयमा ! सेसं जहा जीवपए जाव पंचकिरिया वि।

दं. २. एवं जहा णेरइयस्स तहा असुरकुमारस्स।

णवरं–एगदिसिं विदिसिं वा।

दं.३-११. एवं जाव थणियकुमारस्स।

दं. १५. वाउक्काइयस्स जहा जीवपदे।

णवरं–एगिदिसिं।

दं. २०. पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स णिरवसेसं जहा णेरइयस्स।

दं. २१-२४. मणूस-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियस्स णिरवसेसं जहा असुरकुमारस्स।

४. वैक्रिय समुद्घात–

प्र. भंते ! वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुआ जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है तो भंते! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण होता है तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा शरीर प्रमाण क्षेत्र को लम्बाई में जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और उत्कृष्ट संख्यात योजन जितने क्षेत्र को एक दिशा या विदिशा में परिपूर्ण करता है और उतने ही क्षेत्र को स्पृष्ट करता है।

प्र. भंते ! वह क्षेत्र कितने काल में परिपूर्ण होता है और कितने काल में स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! एक समय, दो समय या तीन समय विग्रह जितने काल से (वह क्षेत्र) परिपूर्ण और स्पृष्ट हो जाता है।

शेष सब कथन पूर्ववत् पाँच क्रियाएँ लगती हैं पर्यन्त करना चाहिए।

दं. १. इसी प्रकार नैरयिकों का वैक्रियसमुद्घात सम्बन्धी कथन करना चाहिए।

विशेष–लम्बाई में जघन्य अँगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट संख्यात योजन जितने क्षेत्र को परिपूर्ण और स्पृष्ट करता है।

प्र. भंते ! वह क्षेत्र कितने काल में परिपूर्ण होता है और कितने काल में स्पृष्ट होता है ?

उ. गौतम ! जीव पद के समान पाँच क्रियाएँ लगती है पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २. जैसे नारक का वैक्रियसमुद्घात सम्बन्धी कथन किया गया है वैसे ही असुरकुमार का कहना चाहिए।

विशेष–एक दिशा या विदिशा में उतना क्षेत्र परिपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १५. वायुकायिक का (वैक्रियसमुद्घात सम्बन्धी) कथन जीवपद के समान समझना चाहिए।

विशेष–एक ही दिशा में क्षेत्र को परिपूर्ण एवं स्पृष्ट करता है।

दं. २०. नैरयिक के समान ही पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक का वैक्रिय समुद्घात सम्बन्धी संपूर्ण कथन करना चाहिए।

दं. २१-२४. मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक का (वैक्रिय समुद्घात सम्बन्धी) सम्पूर्ण कथन असुरकुमार के समान करना चाहिए।

५. तेजस्समुग्घाए–

प. जीवे णं भंते ! तेजस्समुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अफुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे ?

५. तेजस् समुद्घात–

प्र. भंते ! तेजस्समुद्घात से समवहत जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से बाहर) निकालता है तो भंते ! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण होता है और कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है ?

उ. गोयमा ! एवं जहेव वेउव्वियसमुग्घाए तहेव।

णवरं–आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं,

सेसं तं चेव।

दं. १-२४. एवं णेरइयस्स जाव वेमाणियस्स।

णवरं–पंचेंदिय-तिरिक्खजोणियस्स एगदिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

६. आहारगसमुग्घाए–

प. जीवे णं भंते ! आहारगसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे पोग्गले णिच्छुभइ तेहि णं भंते ! पोग्गलेहिं केवइए खेत्ते अफुण्णे, केवइए खेत्ते फुडे?

उ. गोयमा ! सरीरपमाणमेत्ते विक्खंभ-बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं जोयणाइं एगदिसिं एवइए खेत्ते अफुण्णे, एवइए खेत्ते फुडे।

प. से णं भंते ! खेत्ते केवइकालस्स अफुण्णे, केवइकालस्स फुडे?

उ. गोयमा ! एगसमइएण वा, दुसमइएण वा, तिसमइएण वा, विग्गहेणं एवइकालस्स अफुण्णे, एवइकालस्स फुडे।

प. ते णं भंते ! पोग्गला केवइकालस्स णिच्छुभइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेण वि, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तस्स।

प. ते णं भंते ! पोग्गला णिच्छुढा समाणा जाइं तत्थ पाणाइं जाव सत्ताइं अभिहणंति जाव उद्दवेंति तओ णं भंते ! जीवे कइकिरिए?

उ. गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

प. ते णं भंते ! जीवा ताओ जीवाओ कइकिरिया?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. से णं भंते ! जीवे तेय जीवा अण्णेसिं जीवाणं परंपराघाएणं कइकिरिया?

उ. गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंच किरिया वि।

एवं मणूसे वि। –पण्ण. प. ३६, सु. २१५३-२१६७

उ. गौतम ! जैसे वैक्रिय समुद्घात के विषय में कहा है उसी प्रकार तैजससमुद्घात के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–तैजससमुद्घात निर्गत पुद्गलों से लम्बाई में जघन्यतः अंगुल का असंख्यातवां भाग क्षेत्र परिपूर्ण एवं स्पृष्ट होता है।

शेष कथन (वैक्रिय समुद्घात) के समान है।

इसी प्रकार नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक एक ही दिशा में पूर्वोक्त क्षेत्र को परिपूर्ण एवं स्पृष्ट करता है।

६. आहारक समुद्घात–

प्र. भंते ! आहारकसमुद्घात से समवहत जीव समवहत होकर जिन पुद्गलों को (अपने शरीर से) बाहर निकालता है तो भंते! उन पुद्गलों से कितना क्षेत्र परिपूर्ण तथा कितना क्षेत्र स्पृष्ट होता है?

उ. गौतम ! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा शरीरप्रमाण क्षेत्र को तथा लम्बाई में जघन्य अँगुल के असंख्यातवें भाग क्षेत्र को और उत्कृष्ट संख्यात योजन जितने क्षेत्र को एक दिशा में परिपूर्ण और स्पृष्ट करता है।

प्र. भंते ! वह क्षेत्र कितने काल में परिपूर्ण होता है और कितने काल में स्पृष्ट होता है?

उ. गौतम ! एक समय, दो समय या तीन समय विग्रह जितने काल से वह क्षेत्र परिपूर्ण और स्पृष्ट हो जाता है।

प्र. भंते ! उन पुद्गलों को कितने समय में बाहर निकालता है?

उ. गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त में वह उन पुद्गलों को बाहर निकालता है।

प्र. भंते ! बाहर निकाले हुए वे पुद्गल वहाँ जिन प्राणों यावत् सत्वों का अभिघात करते हैं यावत् उपद्रवित करते हैं तब भंते! वह जीव कितनी क्रियाओं वाला होता है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पाँच क्रियाओं वाला होता है।

प्र. भंते ! वे आहारकसमुद्घात द्वारा बाहर निकाले पुद्गलों से स्पृष्ट हुए (जीव आहारक समुद्घात करने वाले) जीव के निमित्त से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् क्रियाएँ जाननी चाहिए।

प्र. भंते ! (आहारकसमुद्घातकर्ता) वह जीव तथा (आहारकसमुद्घातगत पुद्गलों से स्पृष्ट) वे जीव अन्य जीवों का परम्परा से घात करने से कितनी क्रियाओं वाले होते हैं?

उ. गौतम ! वे तीन क्रिया वाले भी होते हैं, चार क्रिया वाले भी होते हैं और पाँच क्रिया वाले भी होते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य का आहारकसमुद्घात संबंधी कथन करना चाहिए।

१२. मारणांतिय समुग्घाएण समोहएसु जीवेसु आहाराइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! मारणांतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे [illegible] इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए

१२. मारणांतिक समुद्घात से समवहत जीवों में आहारादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जो जीव मारणांतिक समुद्घात से समवहत हुआ और समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों

निरयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि निरयावासंसि नेरइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा। अत्थेगइए तओ पडिनियत्तइ इहमागच्छइ,

आगच्छित्ता दोच्चं पि मारणांतियसमुग्घाएणं समोहणइ,

समोहणित्ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि निरयावासंसि नेरइयत्ताए उववज्जित्ताओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा।

एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी।

प. जीवे णं भंते ! मारणांतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे भविए चउसट्ठीए असुरकुमारावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि असुरकुमारत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा?

उ. गोयमा ! **जहा नेरइया तहा भाणियव्वा** जाव **थणियकुमारा।**

प. जीवे णं भंते ! मारणांतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे भविए असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! मंदरस्सपव्वयस्स पुरत्थिमेणं केवइयं गच्छेज्जा, केवइयं पाउणेज्जा?

उ. गोयमा ! लोयंतं गच्छेज्जा, लोयंतं पाउणेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा, अत्थेगइए तओ पडिनियत्तइ, पडिनियत्तित्ता इहमागच्छइ, आगच्छित्ता दोच्चं पि मारणंतियसमुग्घाएणं समोहणइ,

समोहणित्ता मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागमेत्तं वा, संखेज्जइभागमेत्तं वा, वालग्गं वा, वालग्गपुहत्तं वा, एवं लिक्खं, जूयं, जवं, अंगुलं जाव जोयणकोडिं वा, जोयणकोडाकोडिं वा, असंखेज्जेसु वा जोयणसहस्सेसु, लोगंते वा एगपएसियं सेढिं मोत्तूण असंखेज्जेसु पुढविकाइयावाससयसहस्सेसु अन्नयरंसि पुढविकाइयावासंसि पुढविकाइयत्ताए उववज्जेत्ता, तओ पच्छा आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा।

जहा पुरत्थिमेणं मंदरस्स पव्वयस्स आलावगो भणिओ तहा दाहिणेणं, पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं, उड्ढे, अहे भाणियव्वं।

में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न होने के योग्य है तो भंते ! क्या वह वहाँ जाकर आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है?

उ. गौतम ! कोई जीव वहाँ जाकर आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है, कोई जीव वहाँ जाकर वापस लौटता है और वापस लौट कर यहाँ आता है,

यहाँ आकर वह फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होता है, समवहत होकर इस रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होता है, इसके पश्चात् आहार ग्रहण करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर असुरकुमारों के चौसठ लाख आवासों में से किसी एक आवास में उत्पन्न होने के योग्य है तो भंते ! क्या वह जीव वहाँ जाकर आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है?

उ. गौतम ! **जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कहा, उसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।**

प्र. भंते ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर असंख्यात लाख पृथ्वीकायिक आवासों में से किसी एक पृथ्वीकायिक आवास में पृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होने के योग्य है तो भंते ! वह जीव मंदर पर्वत से पूर्व में कितनी दूर जाता है और कितनी दूरी को प्राप्त करता है?

उ. गौतम ! वह लोकान्त तक जाता है और लोकान्त को प्राप्त करता है।

प्र. भंते ! क्या (उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीव) वहाँ जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है?

उ. गौतम ! कोई जीव वहाँ जाकर आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है, कोई जीव वहाँ जाकर वापस लौटता है, लौटकर यहाँ आता है और यहाँ आकर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होता है।

समवहत होकर मेरुपर्वत के पूर्व में अँगुल के असंख्यात भाग मात्र, संख्यात भाग मात्र, वालाग्र या वालाग्र-पृथक्त्व (दो से नौ वालाग्र तक) इसी प्रकार लिक्षा, यूका, यव, अँगुल यावत् करोड़ योजन, कोटा-कोटि योजन, संख्यात हजार योजन और असंख्यात हजार योजन में, एक प्रदेश श्रेणी को छोड़कर लोकान्त में पृथ्वीकाय के असंख्यात लाख पृथ्वीकायिक आवासों में से किसी आवास में पृथ्वीकायिक रूप में उत्पन्न होता है उसके पश्चात् आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है।

जिस प्रकार मेरु पर्वत की पूर्वदिशा के विषय में कहा उसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशा के सम्बन्ध में आलापक कहने चाहिए।

जहा पुढविकाइया तहा एगिंदियाणं सव्वेसिं एक्केक्कस्स छः छः आलावगा भाणियव्वा।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में कहा गया है उसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय जीवों के विषय में प्रत्येक के छह-छह आलापक कहने चाहिए।

प. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे भविए असंखेज्जेसु बेइंदियावास-सयसहस्सेसु अन्नयरंसि बेइंदियावासंसि बेइंदियत्ताए उववज्जित्तए से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा ?

उ. गोयमा ! जहा नेरइया एवं जाव अणुत्तरोववाइया।

प्र. भंते ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ है और समवहत होकर द्वीन्द्रिय जीवों के असंख्यात लाख आवासों में से किसी एक आवास में द्वीन्द्रिय रूप में उत्पन्न होने वाला है तो भंते ! क्या वह जीव वहां जाकर आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकों के लिए कहा गया है उसी प्रकार (द्वीन्द्रिय जीवों से) अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त कथन करना चाहिए।

प. जीवे णं भंते ! मारणंतियसमुग्घाएणं समोहए समोहणित्ता जे भविए एवं पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु अन्नयरंसि अणुत्तरविमाणंसि अणुत्तरोववाइयदेवत्ताए उववज्जित्तए, से णं भंते ! तत्थगए चेव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा।

उ. गोयमा ! तं चेव जाव आहारेज्ज वा, परिणामेज्ज वा, सरीरं वा बंधेज्जा भाणियव्वा।

–विया. स. ६, उ. ६, सु. ३-८

प्र. भंते ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत हुआ और समवहत होकर अतिविशाल महाविमान रूप पांच अनुत्तरविमानों में से किसी एक अनुत्तर विमान में अनुत्तरोपपातिक देवरूप में उत्पन्न होने वाला है तो भंते ! क्या वह जीव वहाँ जाकर आहार करता है परिणमाता है और शरीर बाँधता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है पर्यन्त कहना चाहिए।

१३. चउवीसदंडएसु मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया-असमोहया-मरण परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! किं मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया मरंति-असमोहया मरंति ?

उ. गोयमा ! समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणिया।

–जीवा. पडि. १, सु. ३२-४१

१३. चौबीस दंडकों में मारणांतिक समुद्घात से समवहत-असमवहत होकर मरण का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक जीव क्या मारणांतिक समुद्घात से समवहत होकर या असमवहत होकर मरते हैं ?

उ. गौतम ! समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी मरते हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

१४. जलयर-थलयर-खहयराणं मारणंतिय समुग्घाएणं समोहया-असमोहया मरण परूवणं–

प. [illegible] भंते ! (जलयर-थलयर-खहयरा) जीवा मारणंतिय समुग्घाएणं किं समोहया मरंति, असमोहया मरंति ?

उ. [illegible]

[illegible]

१४. जलचर स्थलचर खेचरों का मारणान्तिक समुद्घात से समवहत-असमवहत होकर मरण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (जलचर-स्थलचर-खेचर) जीव मारणान्तिक समुद्घात से समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर मरते हैं ?

उ. गौतम ! [illegible] भी मरते हैं।

१५. [illegible]

प. [illegible]

[illegible]

१५. समुद्घात समवहत-असमवहत जीव और चौबीस दंडकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! [illegible]

[illegible]

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा आहारगसमुग्घाएणं समोहया,
२. केवलिसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,
३. तेजसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,
४. वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,
५. मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया अणंतगुणा,
६. कसायसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,
७. वेयणासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया,
८. असमोहया असंखेज्जगुणा।

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आहारकसमुद्घात से समवहत जीव हैं,
२. (उनसे) केवलिसमुद्घात से समवहत जीव संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) तैजस्समुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत जीव अनन्तगुणे हैं,
६. (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत जीव असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत जीव विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) असमवहत जीव असंख्यातगुणे हैं।

प. दं. १. एएसि णं भंते ! णेरइयाणं
१. वेयणासमुग्घाएणं, २. कसायसमुग्घाएणं,
३. मारणंतियसमुग्घाएणं, ४. वेउव्वियसमुग्घाएणं, समोहयाणं, ५. असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

प्र. दं. १. भंते ! इन
१. वेदनासमुद्घात से, २. कषायसमुद्घात से,
३. मारणान्तिकसमुद्घात से, ४. वैक्रियसमुद्घात से समवहत और ५. असमवहत नैरयिकों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा णेरइया मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया,
२. वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,
३. कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,
४. वेयणासमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,
५. असमोहया संखेज्जगुणा।

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत नैरयिक हैं,
२. (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत नैरयिक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत नैरयिक संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत नैरयिक संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) असमवहत नैरयिक संख्यातगुणे हैं।

प. दं. २-११. एएसि णं भंते ! असुरकुमाराणं—
१. वेयणासमुग्घाएणं, २. कसायसमुग्घाएणं,
३. मारणंतियसमुग्घाएणं, ४. वेउव्वियसमुग्घाएणं,
५. तेजससमुग्घाएणं, समोहयाणं,
६. असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

प्र. २-११. भन्ते ! इन
१. वेदनासमुद्घात से, २. कषायसमुद्घात से,
३. मारणान्तिक समुद्घात से, ४. वैक्रियसमुद्घात से,
५. तैजस्समुद्घात से समवहत एवं
६. असमवहत असुरकुमारों में से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा असुरकुमारा तेजससमुग्घाएणं समोहया,
२. मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,
३. वेयणासमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,
४. कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,
५. वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प तैजस्समुद्घात से समवहत असुरकुमार हैं,
२ (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत असुरकुमार असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत असुरकुमार संख्यातगुणे हैं,

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया तेजस्समुग्घाएणं समोहया,

२. वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,

३. मारणांतियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,

४. वेयणासमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,

५. कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,

६. असमोहया संखेज्जगुणा।

प. दं. २१. मणुस्साणं भंते !

१. वेयणासमुग्घाएणं, २. कसायसमुग्घाएणं,
३. मारणांतियसमुग्घाएणं, ४. वेउव्वियसमुग्घाएणं,
५. तेजस्समुग्घाएणं, ६. आहारगसमुग्घाएणं,
७. केवलिसमुग्घाएणं समोहयाणं,
८. असमोहयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा मणूसा आहारगसमुग्घाएणं समोहया,

२. केवलिसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,

३. तेजस्समुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,

४. वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,

५. मारणांतियसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,

६. वेयणासमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा,

७. कसायसमुग्घाएणं समोहया संखेज्जगुणा,

८. असमोहया असंखेज्जगुणा।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा। —पण्ण. प. ३६, सु. २१२५-२१३२

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प तैजस्समुद्घात से समवहत पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च हैं,

२. (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत पंचेन्द्रियतिर्यञ्च असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत पंचेन्द्रियतिर्यञ्च असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत पंचेन्द्रियतिर्यञ्च संख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) असमवहत पंचेन्द्रियतिर्यञ्च संख्यातगुणे हैं।

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्यों के–

१. वेदनासमुद्घात से, २. कषायसमुद्घात से,
३. मारणान्तिकसमुद्घात से, ४. वैक्रियसमुद्घात से,
५. तैजस्समुद्घात से, ६. आहारकसमुद्घात से,
७. केवलीसमुद्घात से समवहत एवं
८. असमवहत मनुष्यों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आहारकसमुद्घात से समवहत मनुष्य हैं,

२. (उनसे) केवली समुद्घात से समवहत मनुष्य संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) तैजस्समुद्घात से समवहत मनुष्य संख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) वैक्रियसमुद्घात से समवहत मनुष्य संख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत मनुष्य असंख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) वेदनासमुद्घात से समवहत मनुष्य असंख्यातगुणे हैं,

७. (उनसे) कषायसमुद्घात से समवहत मनुष्य संख्यातगुणे हैं,

८. (उनसे) असमवहत मनुष्य असंख्यातगुणे हैं।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों का (समुद्घात संबंधी) अल्पबहुत्व असुरकुमारों के समान जानना चाहिए।

१६. छाउमत्थियसमुग्घायाणं वित्थरओ परूवणं–

प. कइ णं भंते ! छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! छाउमत्थिया छ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा–

१. वेयणासमुग्घाए, २. कसायसमुग्घाए,
३. मारणांतियसमुग्घाए, ४. वेउव्वियसमुग्घाए,
५. तेजस्समुग्घाए ६. आहारगसमुग्घाए।[1]

१६. छाद्मस्थिक समुद्घातों का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भंते ! छाद्मस्थिक समुद्घात कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! छाद्मस्थिक समुद्घात छह कहे गए हैं, यथा–

१. वेदनासमुद्घात, २. कषायसमुद्घात,
३. मारणान्तिकसमुद्घात, ४. वैक्रियसमुद्घात,
५. तैजस्समुद्घात, ६. आहारकसमुद्घात।

१. (क) विया. स. १३, उ. १०, सु. १ (ख) सम. सम. ६, सु. ५

प. दं. १. णेरइयाणं ! कइ कसायसमुग्घाया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चत्तारि कसायसमुग्घाया पण्णत्ता।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि।

जस्सऽत्थि जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा।

उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियस्स।

एवं जाव लोभसमुग्घाए।

एए चत्तारि दंडगा।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

एवं जाव लोभसमुग्घाए।

एए वि चत्तारि दंडगा।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

दं. २-२४. एवं जहा वेयणासमुग्घाओ भणिओ तहा कोहसमुग्घाओ वि भाणियव्वाओ णिरवसेसं जाव वेमाणियत्ते।

माणसमुग्घाओ मायासमुग्घाओ य णिरवसेसं जहा मारणांतियसमुग्घाओ।

लोभसमुग्घाओ जहा कसायसमुग्घाओ।

णवरं–सव्वजीवा असुराई णेरइएसु लाभकसाएणं एगुत्तरिया णेयव्वा।

प. दं. १. णेरइयाणं भंते ! णेरइयत्ते केवइया कोहसमुग्घाया अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. भंते ! केवइया पुरेक्खडा ?

उ. गोयमा ! अणंता।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियत्ते।

दं. १-२४. एवं सट्ठाणं-परट्ठाणेसु सव्वत्थ वि भाणियव्वा सव्वजीवाणं चत्तारि समुग्घाया जाव लोभसमुग्घाओ जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के कितने कषायसमुद्घात कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनमें चारों कषायसमुद्घात कहे गए हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त (चारों कषाय-समुद्घात) कहने चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नारक के कितने क्रोध समुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे।

जिसके होंगे, उसके जघन्य एक, दो या तीन,

उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगे।

दं. २-२४ इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त समझना चाहिए।

इसी प्रकार (चौवीस दंडकों में अतीत और अनागत) लोभ समुद्घात पर्यन्त का कथन करना चाहिए।

इस प्रकार ये चार दण्डक हुए।

प्र. दं. १. भंते ! (वहुत से) नैरयिकों के कितने क्रोधसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे भी अनन्त होने वाले हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार लोभसमुद्घात पर्यन्त कहना चाहिए।

इस प्रकार ये चार दण्डक हुए।

प्र. दं. १. भंते ! एक-एक नैरयिक के नारकपर्याय में कितने क्रोधसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

दं. २-२४. जिस प्रकार वेदनासमुद्घात का कथन किया है, उसी प्रकार क्रोधसमुद्घात का भी समग्र रूप से वैमानिक पर्याय पर्यन्त कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार मानसमुद्घात एवं मायासमुद्घात का समग्र कथन मारणान्तिकसमुद्घात के समान करना चाहिए।

लोभसमुद्घात का कथन कषायसमुद्घात के समान करना चाहिए।

विशेष–असुरकुमार आदि सभी जीवों का नारकपर्याय में लोभकषायसमुद्घात का कथन एकोत्तर वृद्धि से करना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! नारकों के नारकपर्याय में कितने क्रोधसमुद्घात व्यतीत हुए हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त हुए हैं।

प्र. भंते ! भविष्य में कितने होने वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे अनन्त होने वाले हैं।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकपर्याय पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. १-२४. इसी प्रकार स्वस्थान-परस्थानों में सर्वत्र सब जीवों के वैमानिकों के वैमानिकपर्याय पर्यन्त में रहते हुए लोभ समुद्घात पर्यन्त चारों समुद्घात कहने चाहिए।

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पुढविकाइया माणसमुग्घाएणं समोहया,

२. कोहसमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया,

३. मायासमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया,

४. लोभसमुग्घाएणं समोहया विसेसाहिया,

५. असमोहया संखेज्जगुणा।

दं. १३-२० एवं जाव पंचेंदिय-तिरिक्खजोणिया।

दं. २१. मणुस्सा जहा जीवा

णवरं–माणसमुग्घाएणं समोहया असंखेज्जगुणा।

–पण्ण. प. ३६, सु. २१३३-२१४६

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प मानसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक हैं,

२. (उनसे) क्रोधसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,

३. (उनसे) मायासमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) लोभसमुद्घात से समवहत पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं,

५. (उनसे) असमवहत पृथ्वीकायिक संख्यातगुणे हैं।

दं. १३-२०. इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक तक का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

दं. २१. मनुष्यों (के क्रोधादि समुद्घात) का अल्पबहुत्व समुच्चय जीवों के समान है।

विशेष–मानसमुद्घात से समवहत मनुष्य असंख्यातगुणे हैं।

१८. केवलि समुग्घायस्स पओजणं कज्ज य परूवणं–

प. कम्हा णं भंते ! केवलि समुग्घायं गच्छंति ?

उ. गोयमा ! केवलिस्स चत्तारि कम्मंसा अक्खीणा अवेइया अणिजिण्णा भवंति, तं जहा–

१. वेयणिज्जे, २. आउए ३. णामे, ४. गोए।

सव्वबहुप्पएसे से वेयणिज्जे कम्मे भवइ,

सव्वत्थोवे से आउए कम्मे भवइ।

गाहा–विसमं समं करेइ बंधणेहिं ठिईहि य।

विसमसमीकरणयाए बंधणेहिं ठिईहि य॥

एवं खलु केवलि समोहण्णइ,

एवं खलु समुग्घायं गच्छइ।

प. सव्वे वि णं भंते ! केवलि समोहण्णंति ?

सव्वेवि णं भंते ! केवलिसमुग्घायं गच्छंति ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे,

गाहाओ–जस्साऽऽउएण तुल्लाइं, बंधणेहिं ठिईहि य।

भवोवग्गहकम्माइं समुग्घायं से ण गच्छइ॥

अगंतूणं समुग्घायं, अणंता केवली जिणा।

जर-मरणविप्पमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया॥[1]

–पण्ण. प. ३६, सु. २१७०

१८. केवली समुद्घात के प्रयोजन और कार्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! किस कारण से केवली समुद्घात अवस्था को प्राप्त होते हैं ?

उ. गौतम ! केवली के ये चार कर्मांश क्षीण नहीं हुए हैं, वेदन नहीं हुए हैं, निर्जरा को प्राप्त नहीं हुए हैं, यथा–

१. वेदनीय, २. आयु, ३. नाम, ४. गोत्र।

उनका वेदनीयकर्म सबसे अधिक प्रदेशों वाला होता है।

उनका सबसे कम प्रदेशों वाला आयुकर्म होता है।

गाथार्थ–वे बन्धनों और स्थितियों से विषम (कर्म) को सम करते हैं।

(वस्तुतः) बन्धनों और स्थितियों से विषम कर्मों का समीकरण करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं।

इस प्रकार समुद्घात अवस्था को प्राप्त होते हैं।

प्र. भंते ! क्या सभी केवली समुद्घात करते हैं ?

क्या सभी केवली समुद्घात अवस्था को प्राप्त होते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

गाथार्थ–जिसके भवोपग्राही (भव के निमित्त) कर्म बन्धन एवं स्थिति से आयुष्यकर्म के तुल्य हैं, वह केवली समुद्घात नहीं करता।

समुद्घात किये बिना अनन्त केवलज्ञानी जिनेन्द्र भगवान् जरा और मरण से सर्वथा रहित हुए तथा श्रेष्ठ सिद्धगति को प्राप्त हुए हैं।

१९. केवलिसमुग्घाएण निज्जिण्ण चरिम पोग्गलाणं सुहुमाइ परूवणं–

प. अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वलोगं पि णं ते फुसित्ता णं चिट्ठति ?

१९. केवलीसमुद्घात से निर्जीर्ण चरम पुद्गलों के सूक्ष्मादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! केवलीसमुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम (अन्तिम) निर्जरा-पुद्गल हैं, हे आयुष्मन् श्रमण ! क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं और क्या वे समस्त लोक को स्पर्श करके रहते हैं ?

१. उव. सु. १४१-१४२

उ. हंता, गोयमा ! अणगारस्स भावियप्पणो केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स जे चरिमा णिज्जरापोग्गला सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वलोगं पि य णं ते फुसित्ता णं चिट्ठंति।[1]

प. छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं किंचि वण्णेण वण्णं, गंधेण गंधं, रसेणं रसं, फासेणं वा फासं जाणइ पासइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वि वण्णेणं वण्णं, गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं वा फासं जाणइ पासइ ?"

उ. गोयमा ! अयण्णं जंबूद्दीवे दीवे सव्वदीव-समुद्दाणं सव्वब्भंतराए, सव्वखुड्डाए वट्टे तेल्लापूयसंठाणसंठिए।

वट्टे रहचक्कवालसंठाण संठिए।

वट्टे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिए।

वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए।

एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खभेणं,

तिण्णि य जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

देवे णं महिड्ढीए जाव महासोक्खे एगं महं सविलेवणं गंधसमुग्गयं गहाय तं अवदालेइ तं महं एगं सविलेवणं गंधसमुग्घयं अवदालेत्ता इणामेव कट्टु केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं तिहिं अच्छराणिवाइहिं तिसत्तखुत्तो अणुपरियट्टित्ता णं हव्वमागच्छेज्जा,

से नूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?

हंता, फुडे।

छउमत्थे णं गोयमा ! मणूसे तेसिं घाणपोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं, गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं वा फासं जाणइ पासइ ?

भंते ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"छउमत्थे णं मणूसे तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं, गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं वा फासं जाणइ पासइ।"

ए सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो ! सव्वलोगं पि य णं फुसित्ता णं चिट्ठंति।[2]

–पण्ण. प. ३६, सु. २१६८-२१६९

उ. हाँ, गौतम ! केवलीसमुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम निर्जरा-पुद्गल होते हैं, हे आयुष्मन् श्रमण ! वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं और वे समस्त लोक को स्पर्श करके रहते हैं।

प्र. भंते ! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलों को चक्षु-इन्द्रिय से वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से गन्ध को, रसेन्द्रिय से रस को या स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श को जानता-देखता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलों को चक्षुइन्द्रिय से वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से गन्ध को, रसेन्द्रिय से रस को तथा स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श को किंचित् भी नहीं जानता-देखता है ?"

उ. गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप समस्त द्वीप-समुद्रों के बीच में है, सबसे छोटा है, तेल के पूए के आकार सा गोल है,

रथ के पहिये के आकार-सा गोल है,

कमल की कर्णिका के आकार-सा गोल है,

परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार-सा गोल है।

लम्बाई और चौड़ाई एक लाख योजन की है।

इसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक-सौ अट्ठाईस धनुष, साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक की कही गई है।

एक महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव विलेपन युक्त सुगन्ध की एक बड़ी डिबिया को (हाथ में लेकर) खोलता है फिर विलेपनयुक्त सुगन्धित उस बड़ी डिबिया को इस प्रकार हाथ में ले ले करके सम्पूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप को तीन चुटकियों में इक्कीस बार घूम-घूमकर वापस शीघ्र आ जाय तो–

हे गौतम ! क्या वास्तव में उन गन्ध के पुद्गलों से सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप स्पृष्ट हो जाता है ?

हाँ, (भंते !) स्पृष्ट हो जाता है।

हे गौतम ! क्या छद्मस्थ मनुष्य (समग्र जम्बूद्वीप में व्याप्त) चक्षुइन्द्रिय से उन गंध पुद्गलों के वर्ण को, घ्राणेन्द्रिय से गंध को, रसेन्द्रिय से रस को और स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श को किंचित् जानता–देखता है ?

भंते ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा-पुद्गलों के वर्ण को नेत्र से, गन्ध को नाक से, रस को जिह्वा से और स्पर्श को स्पर्शेन्द्रिय से किंचित् भी नहीं जानता–देखता है।"

इसीलिए हे आयुष्मन् श्रमण ! वे (निर्जरा) पुद्गल इतने सूक्ष्म कहे गए हैं तथा वे समग्र लोक को स्पर्श करके रहे हुए हैं।

---

१. प. अणगारेणं णं भंते ! भावियप्पा केवलिसमुग्घाएणं समोहणित्ता, केवलकप्पं लोयं फुसित्ता णं चिट्ठइ ?

उ. हंता, गोयमा ! चिट्ठइ।

प. से णूणं भंते ! केवलकप्पे लोए तेहिं निज्जरापोग्गलेहिं फुडे ?

उ. हंता, फुडे।

–उव. सु. १३१-१३२

२. उव. सु. १३३-१४०

२०. केवलिसमुग्घायस्स समय परूवणं–

प. कइसमइए णं भंते ! केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अट्ठसमइए पण्णत्ते, तं जहा–

१. पढमे समए दंडं करेइ,

२. विइए समए कवाडं करेइ,

३. तइए समए मंथं करेइ,

४. चउत्थे समए लोगं पूरेइ,

५. पंचमे समए लोगं पडिसाहरइ,

६. छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ,

७. सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ,

८. अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ,

दंडं पडिसाहरित्ता तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ।[1]

–पण्ण. प. ३६, सु. २१७२

२१. आउज्जीकरणस्स समय परूवणं–

प. कइसमइए णं भंते ! आउज्जीकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए आउज्जीकरणे पण्णत्ते।[2] –पण्ण. प. ३६, सु. २१७१

२२. केवलिसमुग्घाए जोग जुंजण परूवणं–

प. से णं भंते ! तहासमुग्घायगए किं मणजोगं जुंजइ, वइजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ ?

उ. गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ, णो वइजोगं जुंजइ, कायजोगं जुंजइ।

प. कायजोगं णं भंते ! जुंजमाणे–

किं ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ ?

ओरालियमीससरीरकायजोगं जुंजइ ?

किं वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ ?

वेउव्वियमीससरीरकायजोगं जुंजइ ?

किं आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ ?

आहारगमीससरीरकायजोगं जुंजइ ?

किं कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ ?

उ. गोयमा ! ओरालियसरीरकायजोगं पि जुंजइ,

ओरालियमीससरीरकायजोगं पि जुंजइ,

णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ,

णो वेउव्वियमीससरीरकायजोगं जुंजइ,

णो आहारगसरीरकायजोगं जुंजइ,

णो आहारगमीससरीरकायजोगं जुंजइ,

कम्मगसरीरकायजोगं पि जुंजइ,

पढमऽट्ठमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ,

२०. केवली समुद्घात के समय का प्ररूपण–

प्र. भंते ! केवलीसमुद्घात कितने समय का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह आठ समय का कहा गया है, यथा–

१. प्रथम समय में आत्म प्रदेशों को दण्डाकार रूप में करता है,

२. द्वितीय समय में कपाटाकार (किवाड़) रूप में करता है,

३. तृतीय समय में मन्थानि के आकार का करता है,

४. चौथे समय में लोक को व्याप्त करता है,

५. पंचम समय में लोक पूर्ण आत्मप्रदेशों को सिकोड़ता है,

६. *छठे समय में मन्थानकृत आत्मप्रदेशों को सिकोड़ता है,*

७. सातवें समय में कपाटकृत आत्मप्रदेशों को सिकोड़ता है,

८. आठवें समय में दण्डाकार आत्मप्रदेशों को सिकोड़ता है और दण्ड का संकोच करते ही पूर्ववत् शरीरस्थ हो जाता है।

२१. आवर्जीकरण के समय का प्ररूपण–

प्र. भंते ! आवर्जीकरण कितने समय का कहा गया है ?

उ. गौतम ! आवर्जीकरण असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त का कहा गया है।

२२. केवली समुद्घात में योग योजन का प्ररूपण–

प्र. भंते ! तथा रूप से समुद्घात प्राप्त केवली क्या मनोयोग का प्रयोग करता है, वचनयोग का प्रयोग करता है या काययोग का प्रयोग करता है ?

उ. गौतम ! वह मनोयोग का प्रयोग नहीं करता, वचनयोग का प्रयोग नहीं करता, किन्तु काययोग का प्रयोग करता है।

प्र. भंते ! काययोग का प्रयोग करता हुआ केवली–

क्या औदारिकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है ?

या औदारिकमिश्रशरीरकाययोग का प्रयोग करता है ?

क्या वैक्रिय शरीर काययोग का प्रयोग करता है,

या वैक्रियमिश्रशरीर काययोग का प्रयोग करता है ?

क्या आहारकशरीर काययोग का प्रयोग करता है ?

या आहारकमिश्रशरीर काययोग का प्रयोग करता है ?

क्या कार्मणशरीर काययोग का प्रयोग करता है ?

उ. गौतम ! (काययोग का प्रयोग करता हुआ केवली) औदारिकशरीरकाययोग का भी प्रयोग करता है,

औदारिकमिश्रशरीरकाययोग का भी प्रयोग करता है,

वह वैक्रियशरीर काययोग का प्रयोग नहीं करता है,

वैक्रियमिश्रशरीर काययोग का प्रयोग भी नहीं करता है,

आहारकशरीर काययोग का प्रयोग भी नहीं करता है,

आहारकमिश्रशरीर काययोग का प्रयोग भी नहीं करता है,

किन्तु कार्मणशरीर काययोग का प्रयोग करता है।

प्रथम और अष्टम समय में औदारिकशरीरकाययोग का प्रयोग करता है,

१. (क) ठाणं. अ. ८, सु. ६५२ (ख) सम. सम. ८, सु. ७ (ग) उव. सु. १४४

२. उव. सु. १४३

बिइय-छट्ठ-सत्तमेसु समएसु ओरालियमीसगसरीर-कायजोगं जुंजइ,

तइय-चउत्थ-पंचमेसु समएसु कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ।[1] *-पण्ण. प. ३६, सु. २१७३*

दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्र शरीरकाययोग का प्रयोग करता है।

तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मणशरीरकाययोग का प्रयोग करता है।

२३. केवलिसमुग्घायाणंतरं मनोयोगाइजुंजण परूवणं-

प. से णं भंते ! तहा समुग्घायगए सिज्झइ वुज्झइ मुच्चइ परिणिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे,

से णं तओ पडिनियत्तइ, तओ पडिनियत्तिया तओ पच्छा मणजोगं पि जुंजइ, वइजोगं पि जुंजइ, कायजोगं पि जुंजइ।

प. भंते ! मणजोगं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजइ, मोसमणजोगं जुंजइ, सच्चामोसमणजोगं जुंजइ, असच्चामोसमणजोगं जुंजइ ?

उ. गोयमा ! सच्चमणजोगं जुंजइ, णो मोसमणजोगं जुंजइ, णो सच्चामोसमणजोगं जुंजइ, असच्चामोसमणजोगं पि जुंजइ।

प. भंते ! वयजोगं जुंजमाणे-किं सच्चवइजोगं जुंजइ, मोसवइजोगं जुंजइ, सच्चामोसवइजोगं जुंजइ, असच्चामोसवइजोगं जुंजइ ?

उ. गोयमा ! सच्चवइजोगं जुंजइ, णो मोसवइजोगं जुंजइ, णो सच्चामोसवइजोगं जुंजइ, असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ।

कायजोगं जुंजमाणे-आगच्छेज्ज वा, गच्छेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, उल्लंघेज्ज वा, पलंघेज्ज वा, पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणेज्जा।[2] *-पण्ण. प. ३६, सु. २१७४*

२३. केवली समुद्घातानंतर मनोयोगादि के योजन का प्ररूपण-

प्र. भंते ! तथारूप समुद्घात को प्राप्त केवली क्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सभी दुःखों का अन्त करते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

पहले वे उस अवस्था से प्रतिनिवृत्त होते हैं और प्रतिनिवृत्त होकर मनोयोग का भी प्रयोग करते हैं, वचनयोग का भी प्रयोग करते हैं और काययोग का भी प्रयोग करते हैं।

प्र. भंते ! मनोयोग का प्रयोग करता हुआ केवली क्या सत्यमनोयोग का प्रयोग करता है, मृषामनोयोग का प्रयोग करता है, सत्यामृषामनोयोग का प्रयोग करता है या असत्यामृषामनोयोग का प्रयोग करता है ?

उ. गौतम ! वह सत्यमनोयोग का प्रयोग करता है और असत्या-मृषामनोयोग का भी प्रयोग करता है, किन्तु मृषामनोयोग का और सत्यामृषामनोयोग का प्रयोग नहीं करता है।

प्र. भंते ! वचनयोग का प्रयोग करता हुआ केवली क्या सत्यवचनयोग का प्रयोग करता है, मृषावचनयोग का प्रयोग करता है, सत्यामृषावचनयोग का प्रयोग करता है या असत्यामृषावचनयोग का प्रयोग करता है ?

उ. गौतम ! वह सत्यवचनयोग का प्रयोग करता है और असत्या-मृषावचनयोग का भी प्रयोग करता है किन्तु मृषावचनयोग का और सत्यामृषावचनयोग का प्रयोग नहीं करता है।

(केवलिसमुद्घातकर्ता केवली) काययोग का प्रयोग करते हुए आता है, जाता है, ठहरता है, बैठता है, करवट बदलता है (लेटता है), लांघता है, छलांग मारता है और प्रातिहारिक (वापस लौटाये जाने वाले) पीठ (चौकी), पट्टा, शय्या (वसति-स्थान) तथा संस्तारक आदि वापस लौटाता है।

२४. केवलिसमुग्घायाणंतरं मोक्खगमण परूवणं-

प. से णं भंते ! तहासजोगी सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचेंदियस्स पज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ,

तओ अणंतरं च णं बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं दोच्चं वइजोगं णिरुंभइ,

तओ अणंतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तयस्स जहण्णजोगिस्स हेट्ठा असंखेज्जगुण-परिहीणं तच्चं कायजोगं णिरुंभइ।

२४. केवली समुद्घातानंतर और मोक्षगमन का प्ररूपण-

प्र. भंते ! वह तथारूप सयोगी (केवलिसमुद्घातप्रवृत्त केवली) सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं ?

उ. गौतम ! वह वैसा करने में समर्थ नहीं है।

वह सर्वप्रथम जघन्य (मनोयोगी) संज्ञी पंचेन्द्रिय-पर्याप्त के नीचे असंख्यातगुणहीन मनोयोग का पूर्व निरोध करते हैं,

तदनन्तर जघन्य (वचन) योग वाले द्वीन्द्रिय पर्याप्त के नीचे असंख्यातगुणहीन वचनयोग का निरोध करते हैं।

तत्पश्चात् जघन्य (काय) योग वाले सूक्ष्मपनक जीव के नीचे असंख्यातगुणहीन तृतीय काययोग का निरोध करते हैं।

---

१. उव. सु. १४५-१४६

२. उव. सु. १४७-१५०

सेणं एएणं उवाएणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ

इस उपाय-से वह (केवली) सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं,

मणजोगं णिरुंभित्ता वइजोगं णिरुंभइ,
वइजोगं णिरुंभित्ता कायजोगं णिरुंभइ,
कायजोगं णिरुंभित्ता जोगणिरोहं करेइ,
जोगणिरोहं करेत्ता अजोगत्तं पाउणइ,

मनोयोग को रोक कर वचनयोग का निरोध करते हैं,
वचनयोग का निरोध करके काययोग का निरोध करते हैं,
काययोग का निरोध करके वे योग का निरोध करते हैं।
योग का निरोध करके वे अयोगत्व को प्राप्त कर लेते हैं।

अजोगत्तं पाउणित्ता ईसीहस्सपंचक्खरुच्चारणद्धाए असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं पडिवज्जइ,

अयोग को प्राप्त करके संक्षिप्त पाँच ह्रस्व अक्षरों (अ इ उ ऋ ऌ) के उच्चारण जितने काल में असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त तक शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

पुव्वरइयगुणसेढीयं[1] च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्धाए असंखेज्जाहिं गुणसेढीहिं असंखेज्जे कम्मखंधे खवयइ,

पूर्वरचित गुणश्रेणियों वाले कर्म को उस शैलेशीकाल में असंख्यात गुणश्रेणियों द्वारा असंख्यात कर्मस्कन्धों को क्षय करते हैं।

खवइत्ता वेयणिज्जाऽऽउय-णाम-गोत्ते इच्चेए चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ,

क्षय करके वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चार कर्मों का एक साथ क्षय करते हैं।

जुगवं खवेत्ता ओरालिय-तेया-कम्मगाइं सव्वाहिं विप्पजहण्णाहिं विप्पजहइ,

इन चार कर्मों का एक साथ क्षय करके औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर का पूर्णतया सदा के लिए त्याग कर देते हैं।

विप्पजहित्ता उजुसेढिपडिवण्णे अफुसमाणगईए एगसमएणं अविग्गहेणं उड्ढं गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेइ।

इन शरीरत्रय का पूर्णतः त्याग करके ऋजुश्रेणी को प्राप्त होकर एक समय की अविग्रह (विना मोड़) वाली अस्पृशत् गति से ऊर्ध्वगमन कर साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) से उपयुक्त होकर वे सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

ते णं तत्थ सिद्धा भवंति, असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति।

वे वहाँ सिद्ध हो जाते हैं और अशरीरी, सघनआत्मप्रदेशों वाले, दर्शन ज्ञानोपयोगयुक्त निष्ठितार्थ (कृतकृत्य) नीरज (कर्मरज से रहित) निष्कम्प, अज्ञानरूपी अन्धकार से रहित और विशुद्ध होकर शाश्वत अनागत अनन्तकाल तक स्थित रहते हैं।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्ठा णीरया णिरेयणा वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति ?"

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"वे सिद्ध वहाँ अशरीरी सघनआत्मप्रदेशयुक्त, कृतार्थ, दर्शनज्ञानोपयुक्त, नीरज, निष्कम्प, वितिमिर एवं विशुद्ध होकर शाश्वत अनागत अनन्त काल तक स्थित रहते हैं ?"

उ. गोयमा ! से जहाणामए बीयाणं अग्गिदड्ढाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती न हवइ एवमेव सिद्धाण वि कम्मबीएसु दड्ढेसु पुणरवि जम्मुप्पत्ती न हवइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"ते णं तत्थ सिद्धा भवंति असरीरा जीवघणा दंसण णाणोउवत्ता निट्ठियट्ठा णीरया वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति त्ति।"

णित्थिण्णसव्वदुक्खा, जाइ-जरा-मरण- बंधणविमुक्का।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥[2]

–पण्ण. प. ३६, सु. २१७५-२१७६

उ. गौतम ! जैसे अग्नि में जले हुए बीजों से फिर अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती, इसी प्रकार सिद्धों के भी कर्मबीजों के जल जाने से पुनः जन्म की उत्पत्ति नहीं होती।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"वे सिद्ध वहाँ अशरीरी सघन आत्म प्रदेशयुक्त, कृतार्थ, दर्शनज्ञानोपयोग युक्त, नीरज निष्कम्प वितिमिर एवं विशुद्ध होकर शाश्वत अनागत काल तक स्थित रहते हैं।"

सिद्ध भगवान् सब दुःखों से पार हो चुके हैं, वे जन्म जरा, मृत्यु और बन्धन से विमुक्त हो चुके हैं और शाश्वत अव्याबाध सुख को प्राप्त कर सदैव सुखी रहते हैं।

१. गुण श्रेणी की रचना का रूप इस प्रकार का जानना चाहिए–



२. उव. सु. १५१-१५५

चरमाचरम अध्ययन : आमुख

जैन आगमों में जीवादि द्रव्यों की विविध प्रकार से प्ररूपणा की गई है। इससे इन द्रव्यों की विविध विशेपताएँ प्रकट हुई हैं। प्रस्तुत अध्ययन में चरम एवं अचरम की दृष्टि से निरूपण है। चरम का अर्थ होता है अन्तिम एवं अचरम का अर्थ होता है जो अन्तिम न हो। जीव एवं अजीव द्रव्य जिस अवस्था-विशेष अथवा भाव-विशेष को पुनः प्राप्त नहीं करेंगे, उस अवस्था एवं भाव-विशेप की अपेक्षा वे चरम एवं जिसे पुनः प्राप्त करेंगे उसकी अपेक्षा अचरम कहे जाते हैं।

षड्द्रव्यों में से जीव एवं पुद्गल में ही चरम एवं अचरम की दृष्टि से विचार किया गया है, शेप चार द्रव्यों—धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल में चरम एवं अचरम की दृष्टि से आगम में कोई विचार नहीं हुआ है।

जीव-सामान्य एवं २४ दण्डकों में चरमाचरमत्व का निरूपण ११ द्वारों से किया गया है। वे ११ द्वार हैं—१. गति, २. स्थिति, ३. भव, ४. भापा, ५. आनपान, ६. आहार, ७. भाव, ८. वर्ण, ९. गंध, १०. रस एवं ११. स्पर्श द्वार। जीव-सामान्य का विचार मात्र गति द्वार से किया गया है और उस दृष्टि से जीव कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है। किन्तु अन्य द्वारों की दृष्टि से विचार किया जाय तो भी उसे कथंचित् चरम एवं कथंचित् अचरम कहा जा सकता है। चौवीस दण्डकों में से नैरयिक आदि एक-एक जीव भी वैमानिक पर्यन्त इन ग्यारह ही द्वारों की अपेक्षा कथंचित् चरम एवं कथंचित् अचरम कहे गए हैं। बहुत से जीवों की विवक्षा से कहा गया है कि वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं। यह कथन २४ ही दण्डकों के जीवों का ग्यारहों द्वारों में समान है। भाषा द्वार एकेन्द्रिय के पाँच दण्डकों में लागू नहीं होता है, क्योंकि उनमें भापा नहीं होती। यह चरम एवं अचरम का निरूपण अनेकान्तवाद को पुष्ट करता है। दृष्टिभेद से ही एक जीव को चरम एवं अचरम कहा जा सकता है। यह कथन उन विभिन्न द्वारों में विद्यमान जीव के इस भव एवं पर-भव की अपेक्षा या संसार से मुक्त होने आदि की अपेक्षा से किया गया है। यह आपेक्षिक कथन 'सिय' शब्द से किया गया है, जिससे आगे चलकर स्याद्वाद पुष्ट हुआ है।

एकत्व एवं बहुत्व की विवक्षा से जीव के चौवीस दण्डकों एवं सिद्धों का व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार १४ द्वारों से भी इस अध्ययन में चरमाचरमत्व की दृष्टि से विचार हुआ है। वे १४ द्वार हैं—१. जीव, २. आहारक, ३. भवसिद्धिक, ४. संज्ञी, ५. लेश्या, ६. दृष्टि, ७. संयत, ८. कपाय, ९. ज्ञान, १०. योग, ११. उपयोग, १२. वेद, १३. शरीर एवं १४. पर्याप्तक द्वार। जीव जीव-भाव की अपेक्षा से अचरम है, क्योंकि उसका जीव-भाव कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु नैरयिक जीव नैरयिक भाव की अपेक्षा से कथंचित् चरम एवं कथंचित् अचरम है, क्योंकि नैरयिक भाव पुनः प्राप्त नहीं होने की अपेक्षा से वह चरम तथा पुनः प्राप्त नहीं होने की अपेक्षा अचरम है। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त अन्य दण्डकों के एक-एक जीव भी कथंचित् चरम एवं कथंचित् अचरम होते हैं। बहुत से नैरयिक आदि जीव सभी दण्डकों में जीव-भाव की अपेक्षा से चरम एवं अचरम दोनों कहे गए हैं। सिद्ध जीव भी जीव-सामान्य के समान अचरम होते हैं। आहार करने वाले आहारक जीव एक की अपेक्षा से स्यात् चरम एवं स्यात् अचरम होते हैं तथा बहुत्व की अपेक्षा से चरम एवं अचरम दोनों होते हैं। अनाहारक एवं सिद्ध जीव अचरम होते हैं, चरम नहीं। नैरयिक आदि दण्डकों में एकवचन एवं बहुवचन की अपेक्षा अनाहारक जीव आहारक जीव की भाँति चरम एवं अचरम होते हैं। ये जीव विग्रह गति के समय अनाहारक होते हैं, अन्यथा सदैव आहारक होते हैं। भवसिद्धिक जीव चरम होते हैं तथा अभवसिद्धिक जीव अचरम होते हैं। नोभवसिद्धिक, नोअभवसिद्धिक जीव एवं सिद्ध अभवसिद्धिक के समान अचरम होते हैं। संज्ञी, सलेश्यी, मिथ्यादृष्टि, संयती, सकषायी, सयोगी, सवेदक, सशरीरी एवं पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवों का कथन आहारक द्वार की भाँति है। सम्यग्दृष्टि एवं साकार-अनाकारोपयोगी जीवों का कथन अनाहारक जीवों के समान है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी, नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत, अकषायी, केवलज्ञानी, अयोगी, अवेदक एवं अशरीरी जीव अचरम होते हैं।

अल्पबहुत्व की अपेक्षा अचरम जीव अल्प हैं तथा चरम जीव उनसे अनन्तगुने हैं।

अजीव द्रव्यों में से पुद्गल का ही चरमाचरमत्व वर्णित है। पुद्गल के पाँच संस्थान (आकार) होते हैं—१. परिमंडल, २. वृत्त, ३. त्रिकोण, ४. चतुष्कोण और ५. आयत। यह विभाजन उपलक्षण से है। पंचकोण षट्कोण आदि भी चतुष्कोण में गृहीत हो जाएँगे। ये विभिन्न संस्थान जब संख्यात प्रदेशी होते हैं तो संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होते हैं, जब असंख्यात प्रदेशी एवं अनन्त प्रदेशी होते हैं तो कदाचित् संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होते हैं तथा कदाचित् असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होते हैं किन्तु अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ नहीं होते। ये सभी संस्थान नियम से एक की अपेक्षा अचरम, बहुवचन की अपेक्षा चरम तथा चरमान्त प्रदेश एवं अचरमान्त प्रदेश हैं। इनका द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा एवं द्रव्य प्रदेशों की अपेक्षा अल्पबहुत्व भी प्रस्तुत अध्ययन में निर्दिष्ट हुआ है।

परमाणु पुद्गल के चरमाचरमत्व के प्रसंग में द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव से विचार किया जाय तो द्रव्यादेश से परमाणु पुद्गल चरम नहीं अचरम है, क्षेत्रादेश, कालादेश एवं भावादेश से वह कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है।

प्रज्ञापना सूत्र के दसवें पद के अनुसार यहाँ परमाणु पुद्गल एवं विभिन्न स्कन्धों के चरमाचरमत्व का भी निरूपण किया गया है। गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से परमाणु पुद्गल के सम्बन्ध में २६ भंगों में प्रश्न किया है, जिसका उत्तर भगवान महावीर ने संक्षेप में देते हुए कहा कि इन छब्बीस में से परमाणु में मात्र तृतीय भंग 'अवक्तव्य' पाया जाता है शेष चरम, अचरम आदि २५ भंगों का निषेध है। इसी प्रकार द्विप्रदेशिक स्कन्ध, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध, पंचप्रदेशिक स्कन्ध, षट्प्रदेशिक स्कन्ध, सप्तप्रदेशिक स्कन्ध, अष्टप्रदेशिक स्कन्ध तथा संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी स्कन्धों में २६ भंगों में से पाए जाने वाले भंगों का निरूपण किया गया है।

आठ पृथ्वियों एवं लोकालोक के चरमाचरमत्व का भी इस अध्ययन में प्रतिपादन है। आठ प्रकार की पृथ्वियों में सात तो नरक की पृथ्वियाँ हैं तथा आठवीं ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी है। ये सभी पृथ्वियाँ एकवचन की अपेक्षा अचरम एवं बहुवचन की अपेक्षा चरम, चरमान्त प्रदेशों वाली एवं अचरमान्त प्रदेशों वाली हैं। लोक एवं अलोक के लिये भी यही कथन है।

कायस्थिति की दृष्टि से चरम जीव चरम अवस्था में अनादि सपर्यवसित काल तक रहता है तथा अचरम जीव अचरम अवस्था में अनादि अपर्यवसित एवं सादि अपर्यवसित काल तक रहता है।

इस प्रकार यह अध्ययन चरमाचरमत्व के विशेष निरूपण से सम्पन्न है। □

४४. चरिमाचरिमज्झयणं

सूत्र

(जीवाणं चरिमाचरिमत्तं)

१. चरिमाचरिमलक्खणं–

गाहा–जो जं पाविहिइ पुणो, भावं सो तेण अचरिमो होइ।
अच्चंतवियोगो जस्स, जेण भावेण सो चरिमो ॥

–विया. स. १८, उ. १, सु. १०३

२. एगत्त-पुहत्त विवक्खया जीव-चउवीसदंडएसु गइआइ एक्कारस्सदारेहिं चरिमा-चरिमत्त परूवणं–

१. गई २. ठिई, ३. भवे य, ४. भासा, ५. आणापाणु चरिमे य बोधव्वे।

६. आहार, ७. भाव-चरिमे, ८. वण्ण, ९. रसे, १०. गंध, ११. फासे य ॥

–पण्ण. प. १०, सु. ८२९, गा. १

(१) गई दारं–

प. १. (क) जीवेणं भंते ! गइ चरिमेणं किं चरिमे, अचिरमे ?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे,

प. दं. १ (ख) नेरइए णं भंते ! गइचरिमेणं किं चरिमे, अचिरमे ?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे,

दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिए,

प. दं. १ (ग) नेरइया णं भंते ! गइचरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ?

उ. गोयमा ! चरिमा वि, अचरिमा वि।

दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया,

(२) ठिई दारं–

प. दं. १ णेरइए णं भंते ! ठिई चरिमेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे सिय, अचरिमे।

दं. २-२४ एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

प. दं. १ णेरइया णं भंते ! ठिई चरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ?

उ. गोयमा ! चरिमा वि, अचरिमा वि।

दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया।

(३) भव दारं–

प. दं. १ नेरइए णं भंते ! भवचरिमेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

४४. चरमाचरम अध्ययन

सूत्र

(जीवों का चरमाचरमत्व)

१. चरमाचरम का लक्षण–

गाथार्थ–जो जीव जिस भाव को पुनः प्राप्त करेगा, वह उस भाव की अपेक्षा से अचरम होता है, जिस जीव का जिस भाव के साथ सर्वथा वियोग हो जाता है, वह उस भाव की अपेक्षा चरम होता है

२. एकत्व बहुत्व की विवक्षा से जीव-चौवीस दंडकों में गति आदि ग्यारह द्वारों से चरमाचरमत्व का प्ररूपण–

१. गति, २. स्थिति, ३. भव, ४. भाषा, ५. आनपान (श्वासोच्छ्वास)

६. आहार, ७. भाव चरम, ८. वर्ण, ९. रस, १०. गन्ध और ११. स्पर्श,

(इन ग्यारह द्वारों की अपेक्षा चरम-अचरम की प्ररूपणा करनी चाहिए।)

(१) गति द्वार

प्र. १ (क) भंते ! जीव (गतिचरम की अपेक्षा से) चरम है या अचरम है?

उ. गोतम ! कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।

प्र. दं. १. (ख) भंते ! (एक) नैरयिक (गतिचरम की अपेक्षा से) चरम है या अचरम है?

उ. गौतम ! कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।

दं. २-२४. इसी प्रकार निरन्तर वैमानिक देव पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. दं. १. (ग) भंते ! (अनेक) नैरयिक (गतिचरम की अपेक्षा से) चरम हैं या अचरम हैं?

उ. गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर (अनेक) वैमानिक देवों पर्यन्त कहना चाहिए।

(२) स्थिति द्वार–

प्र. दं. १. भंते ! (एक) नैरयिक स्थिति चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है?

उ. गौतम ! वह कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।

दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर वैमानिक देव पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं.१. भंते ! (अनेक) नैरयिक स्थिति चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है?

उ. गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर वैमानिक देवों पर्यन्त कहना चाहिए।

(३) भव द्वार–

प्र. दं.१. भंते ! (एक) नैरयिक भव चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिए।

प. दं. १ नेरइया णं भंते ! भावचरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ?

उ. गोयमा ! चरिमा वि, अचरिमा वि,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया।

(८) वण्ण दारं–

प. दं. १ नेरइए णं भंते ! वण्णचरिमेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिए।

प. दं. १ नेरइया णं भंते ! वण्णचरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ?

उ. गोयमा ! चरिमा वि, अचरिमा वि,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया।

(९) गंध दारं–

प. दं. १ नेरइए णं भंते ! गंधचरिमेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिए।

प. दं. १ नेरइया णं भंते ! गंधचरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ?

उ. गोयमा ! चरिमा वि, अचरिमा वि,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया।

(१०) रस दारं–

प. दं. १ नेरइए णं भंते ! रसचरिमेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

उ. गोयमा ! सिय चरिमे, सिय अचरिमे,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिए।

प. दं. १ नेरइया णं भंते ! रसचरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ?

उ. गोयमा ! चरिमा वि, अचरिमा वि,
दं. २-२४ एवं निरंतरं जाव वेमाणिया।

(११) फास दारं–

प. दं. १ नेरइए णं भंते ! फासचरिमेणं किं चरिमे, अचरिमे ?

उ. गौतम ! वह कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर (एक) वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते ! (अनेक) नैरयिक भावचरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं ?

उ. गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

(८) वर्ण द्वार–

प्र. दं. १. भन्ते ! (एक) नैरयिक वर्णचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

उ. गौतम ! वह कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर (एक) वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते ! (अनेक) नैरयिक वर्ण चरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं ?

उ. गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

(९) गंध द्वार–

प्र. दं. १. भन्ते ! (एक) नैरयिक गन्धचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

उ. गौतम ! वह कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर (एक) वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते ! गन्धचरम की अपेक्षा से (अनेक) नैरयिक चरम हैं या अचरम हैं ?

उ. गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

(१०) रस द्वार–

प्र. दं. १. भन्ते ! (एक) नैरयिक रसचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

उ. गौतम ! वह कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर (एक) वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १. भन्ते ! (अनेक) नैरयिक रसचरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं ?

उ. गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।
दं. २-२४ इसी प्रकार निरन्तर वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

(११) स्पर्श द्वार–

प्र. दं. १. भन्ते ! (एक) नैरयिक स्पर्शचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है ?

(४) सण्णी दारं–
सण्णी जहा आहारओ।
एवं असण्णी वि।
नो सन्नी-नो असन्नी जीवपदे सिद्धपदे य अचरिमो,
मणुस्सपदे चरिमो एगत्तपुहत्तेणं।

(४) संज्ञी द्वार–
संज्ञी जीव आहारक जीव के समान है।
इसी प्रकार असंज्ञी भी (आहारक के समान हैं।)
नो संज्ञी-नो असंज्ञी जीवपद और सिद्धपद में अचरम है,
मनुष्यपद में एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा चरम है।

(५) सलेस्सा दारं–
सलेस्सो जाव सुक्कलेस्सो जहा आहारओ,
नवरं–जस्स जा अत्थि।
अलेस्सो जहा नो सण्णी-नो असण्णी।

(५) लेश्या द्वार–
सलेश्यी यावत् शुक्ललेश्यी का कथन आहारकजीव के समान है।
विशेष–जिसके जो लेश्या हो वही कहनी चाहिए।
अलेश्यी जीव नो संज्ञी - नो असंज्ञी के समान है।

(६) दिट्ठी दारं–
सम्मद्दिट्ठी जहा अणाहारओ।
मिच्छादिट्ठी जहा आहारओ।
सम्मामिच्छद्दिट्ठी एगिंदिय-विगलिंदियवज्जं सिय चरिमे, सिय अचरिमे।
पुहत्तेणं चरिमा वि, अचरिमा वि।

(६) दृष्टि द्वार–
सम्यग्दृष्टि अनाहारक जीव के समान हैं।
मिथ्यादृष्टि आहारक जीव के समान हैं।
सम्यग्मिथ्यादृष्टि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़कर (एकवचन) से कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है।
बहुवचन से वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

(७) संजयदारं–
संजओ जीवो मणुस्सो य जहा आहारओ।
असंजओ वि तहेव।
संजयासंजओ वि तहेव।
णवरं–जस्स जं अत्थि।
नोसंजय-नोअसंजय-नोसंजयासंजओ जहा नोभव-सिद्धीय-नो अभवसिद्धीओ।

(७) संयत द्वार–
संयत जीव और मनुष्य आहारक जीव के समान है।
असंयत भी उसी प्रकार हैं।
संयतासंयत भी उसी प्रकार हैं।
विशेष–जिसके जो भाव हो वह कहना चाहिए।
नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत का कथन नो भवसिद्धिक-नो अभवसिद्धिक के समान कहना चाहिए।

(८) कसाय दारं–
सकसायी जाव लोभकसायी सव्वट्ठाणेसु जहा आहारओ।
अकसायी जीवपए सिद्धे य नो चरिमो, अचरिमो।
मणुस्सपदे सिय चरिमो, सिय अचरिमो।

(८) कषाय द्वार–
सकषायी से लोभकषायी पर्यन्त सभी स्थान आहारक जीव के समान हैं।
अकषायी जीवपद और सिद्धपद में चरम नहीं है, अचरम है।
मनुष्यपद में कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है।

(९) णाण दारं–
णाणी जहा सम्मद्दिट्ठी सव्वत्थ।
आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी जहा आहारओ।
णवरं–जस्स जं अत्थि।
केवलनाणी जहा नो सण्णी-नो असण्णी।
अण्णाणी जाव विभंगनाणी जहा आहारओ।

(९) ज्ञान द्वार–
ज्ञानी सर्वत्र सम्यग्दृष्टि जीव के समान है।
आभिनिबोधिक ज्ञानी से मनःपर्यवज्ञानी पर्यन्त आहारक जीव के समान है।
विशेष–जिसके जो ज्ञान हो वह कहना चाहिए।
केवलज्ञानी का कथन नो संज्ञी-नो असंज्ञी के समान है।
अज्ञानी से विभंगज्ञानी पर्यन्त का कथन आहारक के समान है।

(१०) जोग दारं–
सजोगी जाव कायजोगी जहा आहारओ।
णवरं–जस्स जो जोगो अत्थि।
अजोगी जहा नो सण्णी-नोअसण्णी।

(१०) योगद्वार–
सयोगी से काययोगी पर्यन्त का कथन आहारक के समान है।
विशेष–जिसके जो योग हो वह कहना चाहिए।
अयोगी का कथन नो संज्ञी-नो असंज्ञी के समान है।

(११) उवओग दारं–
सागारोवउत्तो अणागारोवउत्तो य जहा अणाहारओ।

(११) उपयोग द्वार–
साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी का कथन अनाहारक के समान है।

चरिमाइं, अचरिमाइं,

चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा?

उ. गोयमा ! परिमंडले णं संठाणे असंखेज्जपएसिए संखेज्जपएसोगाढे नो चरिमे, नो अचरिमे, एवं जहा संखेज्जपएसिए,

एवं जाव आयए,

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे अणंतपएसिए संखेज्जपएसोगाढे किं चरिमे जाव अचरिमंतपएसा?

उ. गोयमा ! परिमंडले णं संठाणे अणंतपएसिए संखेज्जपएसोगाढे जहा संखेज्जपएसिए,

एवं जाव आयए,

अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे जहा संखेज्जपएसोगाढे।

एवं जाव आयए। —पण्ण. प. १०, सु. ७९७-८०१

(बहुवचन से) चरम हैं या अचरम हैं,

चरमान्तप्रदेश हैं या अचरमान्तप्रदेश हैं?

उ. गौतम ! असंख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान के लिए संख्यातप्रदेशी स्कन्ध के समान चरम नहीं है, अचरम नहीं है इत्यादि समझना चाहिए।

इसी प्रकार आयतसंस्थान पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! अनन्तप्रदेशी और संख्यातप्रदेशों में अवगाढ परिमण्डलसंस्थान क्या–

चरम है यावत् अचरमान्त प्रदेश है?

उ. गौतम ! अनन्तप्रदेशी और संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान के सम्बन्ध में संख्यातप्रदेशावगाढ के समान समझना चाहिए।

इसी प्रकार आयतसंस्थान पर्यन्त कहना चाहिए।

अनन्तप्रदेशी असंख्यातप्रदेशावगाढ (परिमण्डल संस्थान का) कथन संख्यातप्रदेशी के समान करना चाहिए।

इसी प्रकार आयतसंस्थान पर्यन्त कहना चाहिए।

७. परिमंडलाइसंठाणाणं दव्वट्ठयाइ पडुच्च चरिमाचरिमत्तस्स अप्पबहुत्तं–

प. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स संखेज्जपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स, अचरिमस्स य, चरिमाण य, चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स संखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,

२. चरिमाइं संखेज्जगुणाइं,

३. अचरिमं चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा परिमंडलस्स संठाणस्स संखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स चरिमंतपएसा,

२. अचरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

३. चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–

१. [illegible] अचरिमे,

२. [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible]

५. [illegible]

७. परिमंडलादि संस्थानों का द्रव्यादि की अपेक्षा चरमाचरमत्व आदि का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! संख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान के (एक वचन से) अचरम, (बहुवचन से) चरम, चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा और द्रव्यप्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा–

१. संख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का (एक वचन वाला) अचरम सबसे थोड़ा है,

२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम संख्यातगुणा है,

३. (उनसे) (एक वचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाले) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–

१. संख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान के चरमान्तप्रदेश सबसे कम हैं,

२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश संख्यातगुण हैं,

३. (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा–

१. [illegible] सबसे अल्प है,

२. [illegible]

३. [illegible]

४. [illegible]

५. [illegible]

६. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं,

प. परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स-संखेज्जपएसोगाढस्स,

अचरिमस्स य, चरिमाण य,

चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,

दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे।

२. चरिमाइं संखेज्जगुणाइं,

३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स चरिमंतपएसा,

२. अचरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

३. चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,

२. चरिमाइं संखेज्जगुणाइं,

३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं चरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

४. चरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

५. अचरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

६. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं।

प. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स,

अचरिमस्स य, चरिमाण य,

चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,

दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,

६. (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वृत्त, त्र्यंस, चतुरंस और आयत संस्थान के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल संस्थान के–

(एकवचन वाला) अचरम, (बहुवचन वाला) चरम,

चरमान्तप्रदेशों और अचरमान्त प्रदेशों में से

द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का (एकवचन वाला) अचरम सबसे अल्प है,

२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल संस्थान के चरमान्तप्रदेश सबसे कम हैं,

२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश संख्यातगुणें हैं,

३. (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान का (एकवचन वाला) अचरम सबसे कम है,

२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) चरमान्तप्रदेश संख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश संख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वृत्त, त्र्यंस, चतुरंस और आयत संस्थान के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का

(एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम,

चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से

द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमंडल संस्थान का (एकवचन वाला) अचरम सबसे अल्प है।

२. चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवा परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स चरिमंतपएसा,
२. अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
३. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,
२. चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए
१. पएसट्ठयाए चरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
२. अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
३. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं।

प. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स अणंतपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स,
अचरिमस्स य, चरिमाण य,
चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,
दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?
उ. गोयमा ! जहा संखेज्जपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स परिमंडलस्स वत्तव्वया तहा भाणियव्वा।

२. (उनसे) (बहुवचन वाला) चरम असंख्यातगुणा है।
३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–
१. असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमंडल-संस्थान के चरमान्तप्रदेश सबसे अल्प हैं।
२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं।
३. (उनसे) चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा–
१. असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यात प्रदेशावगाढ परिमंडल संस्थान का (एकवचन वाला) अचरम द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प है।
२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम असंख्यातगुणे हैं।
३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–
१. चरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणे हैं।
२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं।
३. (उनसे) चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वृत्त, त्र्यंस, चतुरस्र और आयत संस्थान के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अनन्तप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का,
(एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम,
चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से
द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा एवं द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?
उ. गौतम ! जैसे संख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान के (अचरमादि के अल्पबहुत्व के) लिए कहा गया है (अनन्तप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ का अल्पबहुत्व) कहना चाहिए।
विशेष—संक्रम में अनन्तगुणा कहना चाहिए।
इसी प्रकार पाँच संस्थान पर्यन्त कहना चाहिए।

६. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं,

प. परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स-संखेज्जपएसोगाढस्स,

अचरिमस्स य, चरिमाण य,

चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,

दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे।

२. चरिमाइं संखेज्जगुणाइं,

३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स चरिमंतपएसा,

२. अचरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

३. चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,

२. चरिमाइं संखेज्जगुणाइं,

३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं चरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

४. चरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

५. अचरिमंतपएसा संखेज्जगुणा,

६. *चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि* विसेसाहिया,

एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं।

प. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स,

अचरिमस्स य, चरिमाण य,

चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,

दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्ज-पएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,

६. (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वृत्त, त्र्यंस, चतुरंस और आयत संस्थान के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान के–

(एकवचन वाला) अचरम, (बहुवचन वाला) चरम,

चरमान्तप्रदेशों और अचरमान्त प्रदेशों में से

द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी एवं संख्यात्प्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का (एकवचन वाला) अचरम सबसे अल्प है,

२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल संस्थान के चरमान्तप्रदेश सबसे कम हैं,

२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश संख्यातगुणें हैं,

३. (उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा–

१. असंख्यातप्रदेशी संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान का (एकवचन वाला) अचरम सबसे कम है,

२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं,

४. (उनसे) चरमान्तप्रदेश संख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश संख्यातगुणे हैं,

६. *(उनसे) चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त* प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वृत्त, त्र्यंस, चतुरंस और आयत संस्थान के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का

(एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम,

चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से

द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा–

१. *असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ* परिमंडल संस्थान का (एकवचन वाला) अचरम सबसे अल्प है।

२. चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवा परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स चरिमंतपएसा,
२. अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
३. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे,
२. चरिमाइं असंखेज्जगुणाइं,
३. अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं,

पएसट्ठयाए
१. पएसट्ठयाए चरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
२. अचरिमंतपएसा असंखेज्जगुणा,
३. चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया,

एवं वट्ट-तंस-चउरंस-आयएसु वि जोएअव्वं।

प. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स अणंतपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स,
अचरिमस्स य, चरिमाण य,
चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,
दव्वट्ठयाए, पएसट्ठाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! जहा संखेज्जपएसियस्स संखेज्जपएसोगाढस्स परिमंडलस्स वत्तव्वया तहा भाणियव्वं।

णवरं–संकमे अणंतगुणा,
एवं जाव आयए।

प. परिमंडलस्स णं भंते ! संठाणस्स अणंतपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स,
अचरिमस्स य, चरिमाण य,
चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य,
दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए, दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! जहा असंखेज्जपएसियस्स असंखेज्जपएसोगाढस्स, परिमंडलस्स वत्तव्वया तहा भाणियव्वं।

२. (उनसे) (बहुवचन वाला) चरम असंख्यातगुणा है।
३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–
१. असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमंडल-संस्थान के चरमान्तप्रदेश सबसे अल्प हैं।
२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं।
३. (उनसे) चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा–
१. असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यात प्रदेशावगाढ परिमंडल संस्थान का (एकवचन वाला) अचरम द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प है।
२. (उनसे) (बहुवचन वाले) चरम असंख्यातगुणे हैं।
३. (उनसे) (एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–
१. चरमान्त प्रदेश असंख्यातगुणे हैं।
२. (उनसे) अचरमान्तप्रदेश असंख्यातगुणे हैं।
३. (उनसे) चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार वृत्त, त्र्यंस, चतुरंस और आयत संस्थान के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अनन्तप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल-संस्थान का,
(एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम,
चरमान्तप्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से
द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा एवं द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जैसे संख्यातप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डलसंस्थान के (अचरमादि के अल्पबहुत्व के) लिए कहा वैसे ही (अनन्तप्रदेशी एवं संख्यातप्रदेशावगाढ का अल्प बहुत्व) कहना चाहिए।
विशेष–संक्रम में अनन्तगुणा कहना चाहिए।
इसी प्रकार आयतसंस्थान पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अनन्तप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल संस्थान का–
(एकवचन वाला) अचरम और (बहुवचन वाला) चरम,
चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश में से,
द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जैसे असंख्यातप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ परिमण्डल संस्थान का अल्पबहुत्व कहा उसी प्रकार (अनन्तप्रदेशी एवं असंख्यातप्रदेशावगाढ का अल्पबहुत्व) कहना चाहिए।

णवरं-संकमे अणंतगुणा,

एवं जाव आयए। –पण्ण. प. १०, सु. ८०२-८०६

८. दव्वाइं पडुच्च परमाणुपोग्गलस्स चरिमाचरिमत्त परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं चरिमे, अचरिमे?

उ. गोयमा ! दव्वादेसेणं नो चरिमे, अचरिमे,
खेत्तादेसेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे,
कालादेसेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे,
भावादेसेणं सिय चरिमे, सिय अचरिमे।
–विया. स. १४, उ. ४, सु. ९

९. परमाणुपोग्गल खंधेसु य चरिमाचरिम परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! १. किं चरिमे, २. अचरिमे,
३. अवत्तव्वए, ४. चरिमाइं, ५. अचरिमाइं,
६. अवत्तव्वयाइं, ७. उदाहु चरिमे य अचरिमे य,
८. उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च,
९. उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य,
१०. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च? **पढमा चउभंगी,**
११. उदाहु चरिमे य अवत्तव्वए य,
१२. उदाहु चरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
१३. उदाहु चरिमाइं च अवत्तव्वए य,
१४. उदाहु चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च? **बिइय चउभंगी,**
१५. उदाहु अचरिमे य अवत्तव्वए य,
१६. उदाहु अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
१७. उदाहु अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
१८. उदाहु अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च? **तइया चउभंगी,**
१९. उदाहु चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य,
२०. उदाहु चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
२१. उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
२२. उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च? **चउत्था चउभंगी,**
२३. उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य,
२४. उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं,

विशेष-संक्रम में अनन्तगुणा कहना चाहिए।

इसी प्रकार आयतसंस्थान पर्यन्त अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

८. द्रव्यादि की अपेक्षा परमाणु पुद्गल के चरमाचरमत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु पुद्गल क्या चरम है या अचरम है?

उ. गौतम ! द्रव्यादेश से चरम नहीं है, अचरम है।
क्षेत्रादेश से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है।
कालादेश से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है।
भावादेश से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है।

९. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों में चरमाचरम का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणुपुद्गल क्या (एकवचन से) १. चरम है, २. अचरम है, ३. अवक्तव्य है? (बहुवचन से) ४. चरम है, ५. अचरम है, ६. अवक्तव्य है? ७. अथवा (एकवचन से) चरम और अचरम है? ८. अथवा (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम है? ९. अथवा (बहुवचन से) चरम और (एकवचन से) अचरम है,
१०. अथवा (बहुवचन से) चरम और अचरम हैं? **यह प्रथम चतुर्भंगी है।**
११. अथवा (एकवचन से) चरम और अवक्तव्य है?
१२. अथवा (एकवचन से) चरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य हैं?
१३. अथवा (बहुवचन से) चरम और (एकवचन से) अवक्तव्य है?
१४. अथवा (बहुवचन से) चरम और अवक्तव्य है? **यह द्वितीय चतुर्भंगी है।**
१५. अथवा (एकवचन से) अचरम और अवक्तव्य है?
१६. अथवा (एकवचन से) अचरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य हैं?
१७. अथवा (बहुवचन से) अचरम और (एक वचन से) अवक्तव्य है?
१८. अथवा (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य हैं? **यह तृतीय चतुर्भंगी है।**
१९. अथवा (एक वचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है?
२०. अथवा (एकवचन से) चरम, अचरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य हैं?
२१. अथवा (एकवचन से) चरम, (बहुवचन से) अचरम और (एकवचन से) अवक्तव्य है?
२२. अथवा (एकवचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम तथा अवक्तव्य हैं? **यह चौथी चतुर्भंगी है।**
२३. अथवा (बहुवचन से) चरम और (एकवचन से) अचरम तथा अवक्तव्य है?
२४. अथवा (बहुवचन से) चरम, (एकवचन से) अचरम तथा (बहुवचन से) अवक्तव्य है?

२५. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,

२६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च?
पंचमा चउभंगी,
एवं एए छव्वीसं भंगा,

उ. गोयमा ! परमाणुपोग्गले–
१. नो चरिमे २. नो अचरिमे
३. नियमा अवत्तव्वए
४-२६ सेसा २३. भंगा पडिसेहेयव्वा।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे किं–
१. चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं?

उ. गोयमा ! दुपएसिए खंधे–
१. सिय चरिमे २. नो अचरिमे,
३. सिय अवत्तव्वए
४-२६ सेसा २३. भंगा पडिसेहेयव्वा।

प. तिपएसिए णं भंते ! खंधे किं–
१. चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं य अवत्तव्वयाइं?

उ. गोयमा ! तिपएसिए खंधे–
१. सिय चरिमे,
२. नो अचरिमे,
३. सिय अवत्तव्वए,
४. नो चरिमाइं,
५. नो अचरिमाइं,
६. नो अवत्तव्वयाइं,
७. नो चरिमे य अचरिमे य,
८. नो चरिमे य अचरिमाइं च,
९. सिय चरिमाइं च अचरिमे य,
१०. नो चरिमाइं च अचरिमाइं च,
११. सिय चरिमे य अवत्तव्वए य,
१२-२६. सेसा १५ भंगा पडिसेहेयव्वा।

प. चउपएसिए णं भंते! खंधे किं–
१. चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च?

उ. गोयमा ! चउपएसिए णं खंधे–
१. सिय चरिमे,
२. नोअचरिमे,
३. सिय अवत्तव्वए,
४. नो चरिमाइं,

२५. अथवा (बहुवचन से) चरम और अचरम तथा (एकवचन से) अवक्तव्य है?
२६. अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य हैं?
यह पाँचवीं चतुर्भंगी है।
इस प्रकार ये छब्बीस भंग हुए।

उ. गौतम ! परमाणुपुद्गल (उपर्युक्त छब्बीस भंगों में) (एकवचन से) १. चरम नहीं, २. अचरम नहीं (किन्तु) नियमतः ३. अवक्तव्य है।
४-२६ शेष तेईस भंगों का भी निषेध करना चाहिए।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध क्या–
(एकवचन से) १. चरम है यावत् २६. अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य हैं?

उ. गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध–
१. कथंचित् चरम है, २. अचरम नहीं है,
३. कथंचित् अवक्तव्य है।
४-२६. शेष तेईस भंगों का भी निषेध करना चाहिए।

प्र. भंते ! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध क्या–
(एकवचन से) १. चरम है यावत् २६. अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य हैं?

उ. गौतम ! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध–
१. कथंचित् चरम है,
२. अचरम नहीं है,
३. कथंचित् अवक्तव्य है,
४. (बहुवचन से) चरम नहीं है,
५. (बहुवचन से) अचरम नहीं है,
६. (बहुवचन से) अवक्तव्य नहीं है,
७. (एकवचन) चरम और अचरम नहीं है,
८. (एकवचन से) चरम नहीं है और (बहुवचन से) अचरम है,
९. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एकवचन से) अचरम है,
१०. वह (बहुवचन से) चरम और अचरम नहीं है,
११. कथंचित् (एकवचन से) चरम और अवक्तव्य है।
१२-२६. शेष पन्द्रह भंगों का निषेध करना चाहिए।

प्र. भंते ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध क्या–
(एकवचन से) १. चरम है यावत् २६ अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है?

उ. गौतम ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध–
१. कथंचित् (एकवचन से) चरम है,
२. अचरम नहीं है,
३. कथंचित् अवक्तव्य है।
४. (बहुवचन से) चरम नहीं है।

५. नो अचरिमाइं,
६. नो अवत्तव्वयाइं,
७. नो चरिमे य अचरिमे य,
८. नो चरिमे य अचरिमाइं च,
९. सिय चरिमाइं च अचरिमे य,
१०. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च,
११. सिय चरिमे य अवत्तव्वए य,
१२. सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
१३. नो चरिमाइं च अवत्तव्वए य,
१४. नो चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,
१५. नो अचरिमे य अवत्तव्वए य,
१६. नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
१७. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
१८. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,
१९. नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य।
२०. नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च।
२१. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
२२. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,
२३. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य।

२४-२६. सेसा (३) भंगा पडिसेहेयव्वा।

प. पंचपएसिए णं भंते ! खंधे–
किं १. चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च?

उ. गोयमा ! पंचपएसिए णं खंधे–
१. सिय चरिमे,
२. नो अचरिमे,
३. सिय अवत्तव्वए,
४. नो चरिमाइं,
५. नो अचरिमाइं,
६. नो अवत्तव्वयाइं,
७. सिय चरिमे य अचरिमे य,

५. (वहुवचन से) अचरम नहीं हैं,
६. (वहुवचन से) अवक्तव्य नहीं हैं,
७. (एकवचन से) (वह) चरम और अचरम नहीं है,
८. वह (एकवचन से) चरम नहीं है, वहुवचन से अचरम है,
९. कथंचित् (वहुवचन से) चरम और (एकवचन से) अचरम है,
१०. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम हैं,
११. कथंचित् (एकवचन से) चरम और अवक्तव्य है,
१२. कथंचित् (एकवचन से) चरम और (वहुवचन से) अवक्तव्य है,
१३. वह (वहुवचन से) चरम नहीं हैं और (एकवचन से) अवक्तव्य है,
१४. वह (बहुवचन से) चरम और अवक्तव्य नहीं हैं,
१५. वह (एक वचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
१६. वह (एक वचन से) अचरम नहीं है और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,
१७. वह (बहुवचन से) अचरम नहीं हैं और (एक वचन से) अवक्तव्य है,
१८. वह (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
१९. वह (एक वचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
२०. वह (एक वचन से) चरम और अचरम नहीं है (बहुवचन से) अवक्तव्य हैं,
२१. वह (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम नहीं हैं तथा (एक वचन से) अवक्तव्य है,
२२. वह (एक वचन से) चरम नहीं है और (बहुवचन से) अचरम तथा अवक्तव्य हैं,
२३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एक वचन से) अचरम तथा अवक्तव्य है,

२४-२६. शेष (तीन) भंगों का निषेध करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! पंचप्रदेशिक स्कन्ध क्या–
(एक वचन से) चरम है यावत् २६ अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य हैं?

उ. गौतम ! पंचप्रदेशिक स्कन्ध–
१. कथंचित् (एक वचन से) चरम है,
२. अचरम नहीं है,
३. कथंचित् अवक्तव्य है,
४. वह (बहुवचन से) चरम नहीं है,
५. अचरम नहीं है,
६. अवक्तव्य नहीं है,
७. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अचरम है,

८. नो चरिमे य अचरिमाइं च,
९. सिय चरिमाइं च अचरिमे य,
१०. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च
११. सिय चरिमे य अवत्तव्वए य,
१२. सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
१३. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य,
१४. नो चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,
१५. नो अचरिमे य अवत्तव्वए य,
१६. नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
१७. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
१८. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,
१९. नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य,
२०. नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
२१. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
२२. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,
२३. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य,
२४. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,
२५. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,
२६. नो चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च।

प. छप्पएसिए णं भंते ! खंधे किं–
१. चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च ?

उ. गोयमा ! छप्पएसिए णं खंधे–
१. सिय चरिमे,
२. नो अचरिमे,
३. सिय अवत्तव्वए,
४. नो चरिमाइं,
५. नो अचरिमाइं,
६. नो अवत्तव्वयाइं,

८. (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) चरम नहीं है,
९. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है और (एक वचन) अचरम है,
१०. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है,
११. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अवक्तव्य है,
१२. कथंचित् (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,
१३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एक वचन से) अवक्तव्य है,
१४. वह (बहुवचन से) चरम और अवक्तव्य नहीं है,
१५. वह (एक वचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
१६. वह (एक वचन से) अचरम नहीं है और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,
१७. वह (बहुवचन से) अचरम नहीं है और (एक वचन से) अवक्तव्य है,
१८. वह (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
१९. वह (एक वचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
२०. वह (एक वचन से) चरम और अचरम नहीं है, (बहुवचन से) अवक्तव्य है,
२१. वह (एक वचन से) चरम नहीं है, (बहुवचन से) अचरम तथा (एक वचन से) अवक्तव्य है।
२२. वह (एक वचन से) चरम नहीं है, (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य है,
२३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है तथा (एक वचन से) अचरम और अवक्तव्य है,
२४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है, (एक वचन से) अचरम है और (बहुवचन से) अक्तव्य है,
२५. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है तथा (एक वचन से) अवक्तव्य है,
२६. (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य नहीं है।

प्र. भन्ते ! षट्प्रदेशिक स्कन्ध क्या–
१. (एक वचन से) चरम है यावत् २६ अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है ?

उ. गौतम ! षट्प्रदेशिक स्कन्ध–
१. (एक वचन से) कथंचित् चरम है,
२. अचरम नहीं है,
३. कथंचित् अवक्तव्य है,
४. वह (बहुवचन से) चरम नहीं है,
५. अचरम नहीं है,
६. अवक्तव्य नहीं है,

७. सिय चरिमे य अचरिमे य,

८. सिय चरिमे य अचरिमाइं च,

९. सिय चरिमाइं च अचरिमे य,

१०. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च,

११. सिय चरिमे य अवत्तव्वए य,

१२. सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च,

१३. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य,

१४. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,

१५. नो अचरिमे य अवत्तव्वए य,

१६. नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,

१७. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,

१८. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,

१९. सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य,

२०. नो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,

२१. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,

२२. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,

२३. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य,

२४. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,

२५. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,

२६. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च।

प. सत्तपएसिए णं भंते ! खंधे किं-

१. चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च?

उ. गोयमा ! १. सत्तपएसिए णं खंधे-

७. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अचरम है,

८. कथंचित् (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम है,

९. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एक वचन से) अचरम है,

१०. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है,

११. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अवक्तव्य है,

१२. कथंचित् (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

१३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एक वचन से) अवक्तव्य है,

१४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अवक्तव्य है,

१५. वह (एक वचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,

१६. वह (एक वचन से) अचरम नहीं है और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

१७. वह (बहुवचन से) अचरम नहीं है और (एक वचन से) अवक्तव्य है,

१८. वह (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,

१९. कथंचित् (एक वचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है,

२०. वह (एक वचन से) चरम और अचरम नहीं है (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

२१. वह (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम नहीं है, किन्तु (एक वचन से) अवक्तव्य है,

२२. वह (एक वचन से) चरम नहीं है, (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य है,

२३. कथंचित् (बहुवचन से) अचरम है तथा (एक वचन से) अचरम और अवक्तव्य है,

२४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है और (एक वचन से) अचरम है तथा (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

२५. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है तथा (एक वचन से) अवक्तव्य है,

२६. कथंचित् (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है।

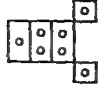
प्र. भन्ते ! सप्तप्रदेशिक स्कन्ध क्या-

१. (एक वचन से) चरम है यावत् २६. अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है?

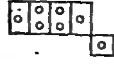
उ. गौतम ! सप्तप्रदेशिक स्कन्ध-

१. सिय चरिमे,	१. (एकवचन से) कथंचित् चरम है,
२. नो अचरिमे,	२. अचरम नहीं है,
३. सिय अवत्तव्वए,	३. कथंचित् अवक्तव्य है,
४. नो चरिमाइं,	४. वह (बहुवचन से) चरम नहीं है,
५. नो अचरिमाइं,	५. अचरम नहीं है,
६. नो अवत्तव्वयाइं,	६. अवक्तव्य नहीं है,
७. सिय चरिमे य अचरिमे य,	७. कथंचित् (एकवचन से) चरम और अचरम है,
८. सिय चरिमे य अचरिमाइं च,	८. कथंचित् (एकवचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम है,
९. सिय चरिमाइं च अचरिमे य,	९. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है और (एकवचन से) अचरम है,
१०. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च,	१०. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है,
११. सिय चरिमे य अवत्तव्वए य,	११. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अवक्तव्य है,
१२. सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च,	१२. कथंचित् (एक वचन से) चरम है और (बहुवचन सें) अवक्तव्य है,
१३. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य,	१३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है और (एक वचन से) अवक्तव्य है,
१४. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,	१४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अवक्तव्य है,
१५. नो अचरिमे य अवत्तव्वए य,	१५. वह (एकवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
१६. नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,	१६. वह (एकवचन से) अचरम नहीं है और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,
१७. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,	१७. वह (बहुवचन से) अचरम नहीं है और (एक वचन से) अवक्तव्य है,
१८. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,	१८. वह (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
१९. सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य,	१९. कथंचित् (एकवचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है,
२०. सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,	२०. कथंचित् (एकवचन से) चरम और अचरम है तथा (बहुवचन से) अवक्तव्य है,
२१. सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,	२१. कथंचित् (एकवचन से) चरम और (बहुवचन से) अचरम तथा (एकवचन से) अवक्तव्य है,
२२. नो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,	२२. (एकवचन से) चरम, (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,
२३. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य,	२३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम (एकवचन से) अचरम और अवक्तव्य है,

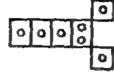
२४. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,



२५. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,



२६. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च।



प. अट्ठपएसिए णं भंते ! खंधे–

१. किं चरिमे जाव २६. उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च?

उ. गोयमा ! अट्ठपएसिए खंधे–

१. सिय चरिमे,

२. नो अचरिमे,

३. सिय अवत्तव्वए,

४. नो चरिमाइं,

५. नो अचरिमाइं,

६. नो अवत्तव्वयाइं,

७. सिय चरिमे य अचरिमे य,

८. सिय चरिमे य अचरिमाइं च,

९. सिय चरिमाइं च अचरिमे य,

१०. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च,

११. सिय चरिमे य अवत्तव्वए य,

१२. सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च,

१३. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य,

१४. सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,

१५. नो अचरिमे य अवत्तव्वए य,

१६. नो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,

१७. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,

१८. नो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,

१९. सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य,

२४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम, (एकवचन से) अचरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

२५. कथंचित् बहुवचन से चरम और अचरम है तथा (एकवचन से) अवक्तव्य है,

२६. कथंचित् बहुवचन से चरम, अचरम और अवक्तव्य है,

प्र. भन्ते ! अष्टप्रदेशिक स्कन्ध क्या–

१. (एक वचन से) चरम है **यावत्** २६. अथवा (बहुवचन से) चरम, अचरम, अवक्तव्य है?

उ. गौतम ! अष्टप्रदेशिक स्कन्ध–

१. (एक वचन से) कथंचित् चरम है,

२. अचरम नहीं है,

३. कथंचित् अवक्तव्य है,

४. (वह बहुवचन से) चरम नहीं है,

५. अचरम नहीं है,

६. अवक्तव्य नहीं है,

७. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अचरम है,

८. कथंचित् (एक वचन से) चरम है और (बहुवचन से) अचरम है,

९. कथंचित् (बहुवचन से) चरम है और (एक वचन से) अचरम है,

१०. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है,

११. कथंचित् (एक वचन से) चरम और अवक्तव्य है,

१२. कथंचित् (एक वचन से) चरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

१३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एक वचन से) अवक्तव्य है,

१४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अवक्तव्य है,

१५. वह (एक वचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,

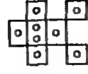
१६. वह (एक वचन से) अचरम और (बहुवचन से) अवक्तव्य नहीं है.

१७. वह (बहुवचन से) अचरम नहीं है और (एक वचन से) अवक्तव्य है,

१८. वह (बहुवचन से) अचरम और अवक्तव्य नहीं है,

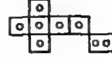
१९. कथंचित् (एक वचन से) चरम, अचरम और अवक्तव्य है,

२०. सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,



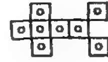
२०. कथंचित् (एक वचन से) चरम, अचरम और (बहु से) अवक्तव्य है,

२१. सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,



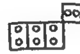
२१. कथंचित् (एक वचन से) चरम (बहुवचन से) अ और (एक वचन से) अवक्तव्य है,

२२. सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च,



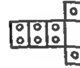
२२. कथंचित् (एक वचन से) चरम (बहुवचन से) अ और अवक्तव्य है,

२३. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य,



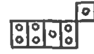
२३. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और (एक वचन अचरम तथा अवक्तव्य है,

२४. सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च,



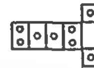
२४. कथंचित् (बहुवचन से) चरम (एक वचन से) अ और (बहुवचन से) अवक्तव्य है,

२५. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य,



२५. कथंचित् (बहुवचन से) चरम और अचरम है तथा वचन से) अवक्तव्य है,

२६. सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च।



२६. कथंचित् (बहुवचन से) चरम, अचरम अवक्तव्य है।

संखेज्जपएसिए असंखेज्जपएसिए अणंतपएसिए खंधे जहेव अट्ठपएसिए तहेव पत्तेयं भाणियव्वं।

संगहणी गाहाओ–

परमाणुम्मि य तइओ, पढमो तइओ य होइ दुपएसे।
पढमो तइओ नवमो एक्कारसमो य तिपएसे ॥१॥

पढमो तइओ नवमो दसमो एक्कारसो य बारसमो।
भंगा चउप्पएसे तेवीसइमो य बोद्धव्वो ॥२॥

पढमो तइओ सत्तम नव दस एक्कार बार तेरसमो।
तेईस चउव्वीसो पणवीसइमो य पंचमए ॥३॥

बि चउत्थ पंच छट्ठ पणरस सोलं च सत्तरट्ठारं।
वीसेक्कवीस बावीसगं च वज्जेज्ज छट्ठम्मि ॥४॥

बि चउत्थ पंच छट्ठ पण्णरस सोलं च सत्तरट्ठारं।
बावीसइमविहूणा सत्तपएसम्मि खंधम्मि ॥५॥

बि चउत्थ पंच छट्ठं पण्णरससोलं च सत्तरट्ठारं।
एए वज्जिए भंगा सेसा सेसेसु खंधेसु ॥६॥

–पण्ण. प. १०, सु. ७८१-७९०

संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी प्र स्कन्ध के लिए अष्टप्रदेशी स्कन्ध के समान कहना चाहिए

संग्रहणी गाथाओं का अर्थ–

परमाणुपुद्गल में तृतीय भंग होता है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध में प्रथम और तृतीय भंग होता है।

त्रिप्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, नौवां और ग्यारहवां होता है ॥१॥

चतुःप्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, नौवां, दसवाँ, ग्यारह बारहवां और तेईसवां भंग समझना चाहिए। ॥२॥

पंच प्रदेशी स्कन्ध में प्रथम, तृतीय, सप्तम, नवम, दश एकादश, द्वादश , त्रयोदश, तेईसवां, चौवीसवां पच्चीसवां भंग जानना चाहिए ॥३॥

षट्प्रदेशी स्कन्ध में दूसरा, चौथा, पांचवा, छठा, पन्द्रह सोलहवां, सत्रहवां, अठारहवां, बीसवां, इक्कीसवां बाईसवां भंग छोड़कर शेष भंग कहने चाहिए ॥४॥

सप्तप्रदेशी स्कन्ध में दूसरे, चौथे, पांचवें, छठे, पन्द्रह सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें और बाईसवें भंग के सिवाय भंग होते हैं ॥५॥

शेष सब स्कन्धों (अष्टप्रदेशी से लेकर संख्यातप्रदे असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों) में दूसरे, चौ पांचवे, छठे, पन्द्रहवें, सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें भंग छोड़कर शेष भंग होते हैं ॥६॥

१०. अट्ठ पुढवीणं लोगालोगस्स य चरिमा चरिमत्त परूवणं–

प. कति णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

१०. आठ पृथ्वीयों और लोकालोक के चरमाचरमत्व प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! पृथ्वीयां कितनी कही गई हैं ?

उ. गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–
१. रयणप्पभा, २. सक्करप्पभा,
३. वालुयप्पभा, ४. पंकप्पभा,
५. धूमप्पभा, ६. तमप्पभा,
७. तमतमप्पभा, ८. ईसीपब्भारा।

प. इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं चरिमा, अचरिमा, चरिमाइं, अचरिमाइं, चरिमंतपदेसा, अचरिमंतपदेसा?

उ. गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी–
नो चरिमा, नो अचरिमा,
नो चरिमाइं, नो अचरिमाइं,
नो चरिमंतपदेसा, नो अचरिमंतपदेसा,
णियमा अचरिमं च चरिमाणि य, चरिमंतपएसा य, अचरिमंतपएसा य।

एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी,
सोहम्माई जाव अणुत्तरविमाणा एवं चेव।
ईसीपब्भारा वि एवं चेव।
लोगे वि एवं चेव। एवं अलोगे वि।[1]

–पण्ण. प. १०, सु. ७७४-७७६

उ. गौतम ! आठ पृथ्वियां कही गई हैं, यथा–
१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा,
३. वालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा,
५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा,
७. तमस्तमः प्रभा, ८. ईषत्प्राग्भारा।

प्र. भन्ते ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी (एक वचन की अपेक्षा) चरम है या अचरम है, (बहुवचन की अपेक्षा) चरम है या अचरम है तथा चरमान्त प्रदेशों वाली है या अचरमान्त प्रदेशों वाली है?

उ. गौतम ! वह रत्नप्रभापृथ्वी–
(एक वचन की अपेक्षा) न चरम है और न अचरम है,
(बहुवचन की अपेक्षा) न चरम है और न अचरम है।
न चरमान्त प्रदेशों वाली है और न अचरमान्त प्रदेशों वाली है,
नियमतः (एक वचन की अपेक्षा) अचरम है और (बहुवचन की अपेक्षा) चरम है तथा चरमान्त प्रदेशों वाली है और अचरमान्त प्रदेशों वाली है।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।
सौधर्मादि से अनुत्तर विमान पर्यन्त भी इसी प्रकार है।
ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।
लोक और अलोक के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

११. चरिमाचरिमाणं कायट्ठिई परूवणं–

प. चरिमे णं भंते ! चरिमे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अणाईए सपज्जवसिए।

प. अचरिमे णं भंते ! अचरिमे त्ति कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अचरिमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणाईए वा अपज्जवसिए,
२. साईए वा अपज्जवसिए।[2]

–पण्ण. प. १८, सु. १३९७-१३९८

११. चरमाचरम की कायस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! चरमजीव कितने काल तक चरम अवस्था में रहता है?

उ. गौतम (वह) अनादि-सपर्यवसित काल तक रहता है।

प्र. भन्ते ! अचरमजीव कितने काल तक अचरम अवस्था में रहता है?

उ. गौतम ! अचरम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अनादि-अपर्यवसित,
२. सादि-अपर्यवसित।

---

१. (क) पृथ्वियों के चरमाचरम का अल्पवहुत्व गणि. पृ. ६ पर देखें।
(ख) अलोक आदि के चरमाचरम का अल्पवहुत्व गणि. पृ. ७४३-७४५ पर देखें।

२. जीवा. पडि. ९, सु. २३६

अजीव-द्रव्य अध्ययन : आमुख

संसार में मुख्यतः दो ही द्रव्य हैं–१. जीव द्रव्य और २. अजीव द्रव्य। षड्द्रव्यों में से जीव को छोड़कर शेष पाँच द्रव्यों–धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल की गणना अजीव द्रव्य में की जाती है। जीव द्रव्य चेतनायुक्त होता है, उसमें ज्ञान एवं दर्शन गुण रहते हैं, जबकि अजीव द्रव्य चेतनाशून्य होता है तथा वह ज्ञान-दर्शन गुणों से रहित होता है। जीव द्रव्य उपयोगमय होता है, जबकि अजीव द्रव्य में उपयोग नहीं पाया जाता। जीव एवं अजीव की भेदक रेखाएँ अनेक हैं, किन्तु मुख्यतः ज्ञान, दर्शन, उपयोग एवं चैतन्य के आधार पर इन्हें विभक्त या पृथक् किया जाता है।

अजीव द्रव्य भी दो प्रकार के होते हैं–१. रूपी अजीव द्रव्य और २. अरूपी अजीव द्रव्य। जो द्रव्य वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान (आकृति) से युक्त होते हैं वे रूपी अजीव द्रव्य कहलाते हैं तथा जो अजीव द्रव्य वर्णादि से रहित होते हैं वे अरूपी अजीव द्रव्य कहे जाते हैं। अरूपी अजीव द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल द्रव्य की गणना होती है तथा रूपी अजीव द्रव्य की कोटि में मात्र पुद्गल द्रव्य का समावेश होता है। पुद्गल द्रव्य में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान पाया जाता है इसलिए यह रूपी कहलाता है तथा शेष धर्म आदि चार अजीव द्रव्यों में वर्णादि नहीं पाए जाते इसलिए वे अरूपी कहे जाते हैं।

अरूपी अजीव द्रव्य के किसी अपेक्षा से १० भेद भी होते हैं, यथा–१. धर्मास्तिकाय, २. उसका देश, ३. उसका प्रदेश, ४. अधर्मास्तिकाय, ५. उसका देश, ६. उसका प्रदेश, ७. आकाशास्तिकाय, ८. उसका देश, ९. उसका प्रदेश और १०. अद्धा काल। धर्मास्तिकाय आदि तीन द्रव्यों के यद्यपि पुद्गल की भाँति खण्ड नहीं किये जा सकते, ये अखण्ड रूप में रहते हैं तथापि अनेकान्त दृष्टि से इनका भेद समझा जाता है। धर्म, अधर्म एवं आकाश द्रव्य अखण्ड हैं तथापि विभिन्न अपेक्षाओं से इनके देश एवं प्रदेशों की चर्चा की जाती है। काल एक ऐसा द्रव्य है जो देश, प्रदेश आदि के खण्डों में भी विभक्त नहीं होता। समय, आवलिका, अन्तर्मुहूर्त, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, पल्योपम आदि के रूप में काल का जो विभाजन किया जाता है वह व्यवहार की अपेक्षा से है। इसी प्रकार भूतकाल, वर्तमानकाल एवं भविष्यत्काल के रूप में जो काल-भेद है वह भी व्यवहार काल की अपेक्षा से है, परमार्थतः नहीं।

रूपी अजीव द्रव्य 'पुद्गल' चार प्रकार का होता है–१. स्कन्ध, २. स्कन्ध देश, ३. स्कन्ध प्रदेश और ४. परमाणु। अनेक परमाणुओं का संघात स्कन्ध कहलाता है। पुद्गल द्रव्य का वह प्रत्येक खण्ड जो स्वतन्त्र सत्तावान् है वह स्कन्ध है। इस प्रकार दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुएँ, यथा–कुर्सी, ईंट, पत्थर, पेन आदि स्कन्ध के ही रूप हैं। एक से अधिक स्कन्ध मिलकर भी एक नया स्कन्ध बन सकता है। स्कन्ध का जब विभाजन होता है तो वह अनेक परमाणुओं के रूप में बिखर सकता है, किन्तु जब तक परमाणु की अवस्था नहीं आती तब तक वह स्कन्धों में ही विभक्त होता है। इस प्रकार स्वतन्त्र सत्ता की दृष्टि से स्कन्ध एवं परमाणु भेद ही उपलब्ध होते हैं। देश एवं प्रदेश बुद्धि परिकल्पित भेद हैं, वास्तविक नहीं। जब स्कन्ध का कोई खण्ड बुद्धि से कल्पित किया जाता है तो उसे देश कहते हैं, यथा पृथ्वी स्कन्ध का बुद्धिकल्पित देश 'भारत' है। कोई टेबल एक स्कन्ध है, किन्तु उसका कुछ हिस्सा जो उससे अलग नहीं हुआ है वह उसका देश कहलाता है। स्कन्ध से अविभक्त परमाणु को प्रदेश कहते हैं। वही जब स्कन्ध से पृथक् हो जाता है तो 'परमाणु' कहा जाता है। यह पुद्गल का पुनः अविभाज्य अंश होता है।

यद्यपि पुद्गल के सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ के 'पुद्गल द्रव्य' अध्ययन में विस्तार से निरूपण हुआ है, तथापि इस अध्ययन से सम्बद्ध कुछ बातें यहाँ जानने योग्य हैं–

१. पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान में परिणमित होने की दृष्टि से पाँच प्रकार का होता है, वर्ण परिणत, गन्ध परिणत आदि। किन्तु प्रत्येक पुद्गल द्रव्य में ये पाँचों गुण रहते हैं। कोई भी पुद्गल ऐसा नहीं है जो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान (आकार) से रहित हो।

२. वर्ण पाँच प्रकार के हैं–१. काला, २. नीला, ३. लाल, ४. पीला और ५. श्वेत। गन्ध दो प्रकार के हैं–१. सुरभि गन्ध और २. दुरभि गन्ध। रस पाँच प्रकार के हैं–१. तिक्त, २. कटु, ३. कषाय, ४. अम्ल और ५. मधुर। स्पर्श आठ प्रकार के हैं–१. कर्कश, २. मृदु, ३. गुरु, ४. लघु, ५. शीत, ६. उष्ण, ७. स्निग्ध और ८. रूक्ष। संस्थान पाँच प्रकार का होता है–१. परिमण्डल, २. वृत्त, ३. त्रिकोण, ४. चतुष्कोण और ५. आयत।

३. जब कोई पुद्गल काले वर्ण से परिणत होता है तो उसमें अन्य वर्णों को छोड़कर गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान के सारे प्रकार पाए जा सकते हैं। इसी प्रकार नीले वर्ण से परिणत होने पर शेष वर्णों के अतिरिक्त गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान के सारे भेद पाए जाते हैं। कहने का आशय यह है कि एक वर्ण के उसी वर्ण में परिणत होने पर गन्धादि के सारे भेदों के भंग बनते हैं। यही स्थिति गन्ध, रस एवं संस्थान के परिणमन में भी होती है। दुरभि गन्ध में परिणत होने वाले पुद्गल में वर्णादि के समस्त भेदों के भंग बनते हैं। पाँचों रसों एवं पाँचों संस्थानों में भी यही विधि लागु होती है। भंगों का संक्षेप में उल्लेख इस प्रकार है–

१. वर्ण परिणत के १०० भेद–काले वर्ण के साथ २ गन्ध, ५ रस, ८ स्पर्श एवं ५ संस्थान के कुल २० भेद होंगे। इसी प्रकार नीले, लाल, पीले एवं सफेद के भी २०-२० भेद होंगे।

अतः ५ वर्ण × (२ गन्ध + ५ रस + ८ स्पर्श + ५ संस्थान = २०) = १०० भेद

२. गन्ध परिणत के ४६ भेद—सुरभि गन्ध के २३ तथा दुरभि गन्ध के २३ भेद होंगे।

२ गन्ध × (५ वर्ण + ५ रस + ८ स्पर्श + ५ संस्थान = २३) = ४६ भेद

३. रस परिणत के १०० भेद—प्रत्येक रस के २०-२० भेद होंगे।

५ रस × (५ वर्ण + २ गन्ध + ८ स्पर्श + ५ संस्थान = २०) = १०० भेद

४. स्पर्श परिणत के १८४ भेद—स्पर्श में यह विशेषता है कि एक साथ दो विरोधी स्पर्श नहीं पाए जाते हैं, किन्तु शेष स्पर्श उसमें एक साथ रह सकते हैं। विरोधी स्पर्शों के युगल इस प्रकार हैं—कर्कश-मृदु, गुरु-लघु, शीत-उष्ण, स्निग्ध-रुक्ष। जहाँ कर्कश परिणमन होता है वहाँ मृदु परिणमन नहीं होता। इसी प्रकार अन्य विरोधी युगलों में समझना चाहिए। इसके भंग इस प्रकार बनेंगे—

१ स्पर्श × (५ वर्ण + २ गन्ध + ५ रस + ६ स्पर्श + ५ संस्थान = २३) = २३ भेद

१ स्पर्श के २३ भेद अतः ८ स्पर्श के ८ × २३ = १८४ भेद होंगे।

५. संस्थान परिणत के १०० भेद—प्रत्येक संस्थान के २०-२० भेद होंगे।

५ संस्थान × (५ वर्ण + २ गंध + ५ रस + ८ स्पर्श = २०) = १०० भेद

इस प्रकार वर्णादि परिणमन की दृष्टि से १०० + ४६ + १०० + १८४ + १०० = ५३० भेद या भंग सम्पन्न होते हैं।

संख्या की दृष्टि से रूपी अजीव द्रव्य अर्थात् पुद्गल अनन्त हैं। परमाणु पुद्गल भी अनन्त हैं तथा द्विप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध भी अनन्त हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल नामक अरूपी अजीव द्रव्यों के सम्बन्ध में विशेष सामग्री नहीं है, तथापि इनके सम्बन्ध में कुछ बातें ज्ञातव्य हैं, यथा—

१. धर्म, अधर्म एवं आकाश द्रव्य अस्तिकाय हैं। इनके अतिरिक्त जीव एवं पुद्गल भी अस्तिकाय हैं किन्तु काल अप्रदेशी होने के कारण अस्तिकाय नहीं होता। जो संघात बनाकर रह सकते हैं वे अस्तिकाय कहलाते हैं। काल द्रव्य ऐसा नहीं है।

२. धर्म द्रव्य गति में सहायक निमित्त होता है, अधर्म द्रव्य स्थिति में सहायक निमित्त होता है, आकाश अवगाहन देने में सहायक निमित्त होता है, काल पर्याय-परिणमन में सहायक होता है।

३. आकाश लोक एवं अलोक दोनों में व्याप्त है। धर्म एवं अधर्म द्रव्य लोकव्यापी हैं। काल में व्यवहार काल अढ़ाई द्वीप तक विद्यमान है, आगे निश्चय काल है, व्यवहार काल नहीं।

४. संख्या की दृष्टि से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय एक-एक द्रव्य हैं। काल को निश्चय की अपेक्षा विभक्त नहीं किया जा सकता।

५. समस्त अरूपी अजीव द्रव्यों में वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श गुण नहीं पाए जाते, क्योंकि ये रूपी के परिचायक हैं।

६. काल की दृष्टि से इनमें सभी द्रव्य आदि एवं अन्त रहित हैं।

७. आकाश में धर्म, अधर्म आदि का अवगाहन एक साथ होने पर भी इनकी पृथकता इनके गुणों से सिद्ध होती रहती है।

□

४५. अजीव दव्वऽज्झयणं

सूत्र

१. दुविहा अजीवदव्वा–

प. अजीवदव्वा णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रूविअजीवदव्वा य, २. अरूविअजीवदव्वा य।[1]

–विया. स. २५, उ. २, सु. २

२. दसविहा अरूविअजीवा पण्णवणा–

प. से किं तं अरूविअजीवपण्णवणा?

उ. अरूविअजीवपण्णवणा दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. धम्मत्थिकाए,
२. धम्मत्थिकायस्स देसे,
३. धम्मत्थिकायस्स पदेसा,
४. अधम्मत्थिकाए,
५. अधम्मत्थिकायस्स देसे,
६. अधम्मत्थिकायस्स पदेसा,
७. आगासत्थिकाए,
८. आगासत्थिकायस्स देसे,
९. आगासत्थिकायस्स पदेसा,
१०. अद्धासमए।[2]

से त्तं अरूवि अजीव पण्णवणा। –पण्ण. प. १, सु. ५

३. चउव्विहा रूविअजीव पण्णवणा–

प. से किं तं रूविअजीवपण्णवणा?

उ. रूविअजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

४५. अजीव द्रव्य अध्ययन

सूत्र

१. दो प्रकार के अजीव द्रव्य–

प्र. भन्ते ! अजीव द्रव्य कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! अजीव द्रव्य दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. रूपी अजीवद्रव्य, २. अरूपी अजीवद्रव्य।

२. दस प्रकार की अरूपी अजीव प्रज्ञापना–

प्र. अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है?

उ. अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना दस प्रकार की कही गई है, यथा–

१. धर्मास्तिकाय,
२. धर्मास्तिकाय का देश,
३. धर्मास्तिकाय के प्रदेश,
४. अधर्मास्तिकाय,
५. अधर्मास्तिकाय का देश,
६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश,
७. आकाशास्तिकाय,
८. आकाशास्तिकाय का देश,
९. आकाशास्तिकाय के प्रदेश,
१०. अद्धाकाल।

यह अरूपी अजीव प्रज्ञापना है।

३. चार प्रकार की रूपी अजीव प्रज्ञापना–

प्र. रूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है?

उ. रूपी-अजीव-प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है, यथा–

---

१. प. (क) से किं तं अजीवपण्णवणा?
उ. अजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूविअजीवपण्णवणा य, २. अरूविअजीवपण्णवणा य।
–पण्ण. प. १, सु. ४
प. (ख) से किं तं अजीवाभिगमे?
उ. अजीवाभिगमे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. रूविअजीवाभिगमे य, २. अरूविअजीवाभिगमे य।
–जीवा. पडि. १, सु. ३
(ग) जे अजीवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूवी य, २. अरूवी य।
–विया. स. २, उ. १०, सु. ११
(घ) अजीवरासी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. रूविअजीवरासी य, २. अरूविअजीवरासी य।
–सम., सु. १४९
(ङ) अणु. सु. ४००

२. प. (क) से किं तं अरूविअजीवाभिगमे?
उ. अरूविअजीवाभिगमे दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. धम्मत्थिकाए जाव १०. अद्धासमए। –जीवा. पडि. १, सु. ४
प. (ख) से किं तं अरूविअजीवरासी?
उ. अरूविअजीवरासी दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. धम्मत्थिकाए जाव १०. अद्धासमए[1]।
–सम. सु. १४९
(ग) धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए।
अधम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए॥
आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे॥
–उत्त. अ. ३६, गा. ५-६
(घ) अणु. सु. ४०१,
(ङ) विया. स. २५, उ. २, सु. २

---

१. अद्धेति कालस्याख्या, अद्धायाः समयो निर्विभागी भागोऽद्धासमयः अयं चेक एवं वर्तमानः परमार्थः सन् नातीतानागता तेषां यथाक्रमं विनष्टानुत्पन्नत्वात्।

१. खंधा, २. खंधदेसा,
३. खंधप्पएसा, ४. परमाणुपोग्गला[१]।
–पण्ण. प. १, सु. ६

१. स्कन्ध, २. स्कन्धदेश,
३. स्कन्धप्रदेश, ४. परमाणुपुद्गल।

४. रूविअजीवाणं भेयप्पभेया–
ते समासओ पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. वण्णपरिणया, २. गंधपरिणया,
३. रसपरिणया, ४. फासपरिणया,
५. संठाणपरिणया[२]।
जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कालवण्णपरिणया,
२. नीलवण्णपरिणया,
३. लोहियवण्णपरिणया,
४. हालिद्दवण्णपरिणया,
५. सुक्किल्लवण्णपरिणया[३]।
जे गंधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुब्भिगंधपरिणया य,
२. दुब्भिगंधपरिणया य[४]।

४. रूपी अजीव के भेद-प्रभेद–
वे (चारों) संक्षेप से पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. वर्णपरिणत, २. गन्धपरिणत,
३. रसपरिणत, ४. स्पर्शपरिणत,
५. संस्थानपरिणत।
जो वर्णपरिणत हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. काले वर्ण के रूप में परिणत,
२. नीले वर्ण के रूप में परिणत,
३. लाल वर्ण के रूप में परिणत,
४. पीले वर्ण के रूप में परिणत,
५. शुक्ल (श्वेत) वर्ण के रूप में परिणत।
जो गन्धपरिणत हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सुगन्ध के रूप में परिणत,
२. दुर्गन्ध के रूप में परिणत।

---

१. (क) खंधा य खंधदेसा य, तप्पएसा तहेव य।
परमाणुणो य बोधव्वा, रूविणो य चउव्विहा[१]॥
–उत्त. अ. ३६, गा. १०
(ख) जीवा पडि. १, सु. ५
(ग) विया. स. २, उ. १०, सु. ११
(घ) विया. स. २५, उ. २, सु. २
(ङ) अणु. सु. ४०२

२. प. (क) से किं तं गुणणामे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. वण्णणामे, २. गंधणामे, ३. रसणामे, ४. फासणामे, ५. संठाणणामे।
–अणु. कालदारे सु. २१९
प. (ख) से किं तं अजीवगुणप्पमाणे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. वण्णगुणप्पमाणे, २. गंधगुणप्पमाणे, ३. रसगुणप्पमाणे, ४. फासगुणप्पमाणे, ५. संठाणगुणप्पमाणे। –अणु. कालदारे सु. ४२९
(ग) वण्णओ गंधओ चेव, रसओ फासओ तहा।
संठाणओ य विन्नेओ, परिणामो तेसि पंचहा॥
–उत्त. अ. ३६, गा. १५
(घ) विया. स. ८, उ. १, सु. ४८
(ङ) विया. स. ८, उ. १, सु. ७४
(च) जीवा. पडि. १, सु. ५

३. प. (क) से किं तं वण्णनामे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कालवण्णनामे जाव ५. सुक्किल्लवण्णनामे। से तं वण्णणामे।
प. (ख) से किं तं वण्णगुणप्पमाणे? –अणु. सु. २२०
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कालवण्णगुणप्पमाणे जाव ५. सुक्किल्लवण्णगुणप्पमाणे।
से तं वण्णगुणप्पमाणे। –अणु. सु. ४३०
(ग) पंच वण्णा पण्णत्ता, तं जहा–
१. किण्हा, २. नीला, ३. लोहिया,
४. हालिद्दा, ५. सुक्किला। ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९०/१
(घ) वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
किण्हा[१] नीला[२] लोहिया[३] हालिद्दा[४] सुक्किला[५] तहा॥
(ङ) जीवा. पडि. १, सु. ५ –उत्त. अ. ३६, गा. १६
(च) विया. स. ८, उ. १, सु. ४८
(छ) विया. स. ८, उ. १, सु. ७५

४. प. (क) से किं तं गंधनामे?
उ. दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सुरभिगंधनामे य, २. दुरभिगंधनामे य। से तं गंधनामे।
–अणु. कालदारे सु. २२१
प. (ख) से किं तं गंधगुणप्पमाणे?
उ. दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सुरभिगंधगुणप्पमाणे, २. दुरभिगंधगुणप्पमाणे य।
से तं गंधगुणप्पमाणे। –अणु. कालदारे सु. ४३१
(ग) गंधओ परिणया जे उ दुविहा ते वियाहिया।
१. सुब्भिगंधपरिणया, २. दुब्भिगंधा तहेव य॥
–उत्त. अ. ३६, गा. १७
(घ) जीवा. पडि. १, सु. ५
(ङ) विया. स. ८, उ. १, सु. ४८
(च) विया. स. ८, उ. १, सु. ७६

---

१. (क) इह "स्कन्धा" इत्यत्र बहुवचनं पुद्गलस्कन्धानामनन्तत्वख्यापनार्थम् तथा चोक्तम्–"दव्वओ णं पुग्गलत्थिकाए णं अणंते" इत्यादि,
(ख) "स्कन्ध-देशाः" स्कन्धानामेव स्कन्धत्वपरिणाममजहतां बुद्धिपरिकल्पिता द्रव्यादिप्रदेशात्मका विभागाः,
अत्रापि बहुवचनमनन्तप्रदेशिकेषु स्कन्धेषु स्कन्धदेशानन्तत्वसंभावनार्थम्
(ग) "स्कन्ध-प्रदेशाः" स्कन्धानां स्कन्धत्वपरिणाममजहतां प्रकृष्टा देशाः निर्विभागा भागाः परमाणव इत्यर्थः,
(घ) "परमाणु-पुद्गलाः स्कन्धत्वपरिणामरहिताः केवलाः परमाणवः"

जे रसपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. तित्तरसपरिणया,
२. कडुयरसपरिणया,
३. कसायरसपरिणया,
४. अंबिलरसपरिणया,
५. महुररसपरिणया[1]।

जे फासपरिणया ते अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कक्खडफासपरिणया,
२. मउयफासपरिणया,
३. गरुयफासपरिणया,
४. लहुयफासपरिणया,
५. सीयफासपरिणया,
६. उसिणफासपरिणया,
७. निद्धफासपरिणया,
८. लुक्खफासपरिणया[2]।

जे संठाणपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. परिमंडलसंठाणपरिणया,
२. वट्टसंठाणपरिणया,
३. तंससंठाणपरिणया,
४. चउरंससंठाणपरिणया,
५. आयतसंठाणपरिणया[3]। –पण्ण. प. १, सु. ७-८

जो रसपरिणत हैं, वे पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. तिक्तरस के रूप में परिणत,
२. कटुरस के रूप में परिणत,
३. कषायरस के रूप में परिणत,
४. अम्लरस के रूप में परिणत,
५. मधुररस के रूप में परिणत।

जो स्पर्शपरिणत हैं, वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कर्कशस्पर्श के रूप में परिणत,
२. मृदुस्पर्श के रूप में परिणत,
३. गुरुस्पर्श के रूप में परिणत,
४. लघुस्पर्श के रूप में परिणत,
५. शीतस्पर्श के रूप में परिणत,
६. उष्णस्पर्श के रूप में परिणत,
७. स्निग्धस्पर्श के रूप में परिणत,
८. रूक्षस्पर्श के रूप में परिणत।

जो संस्थानपरिणत हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. परिमण्डल संस्थान के रूप में परिणत,
२. वृत्त (वृत्ती) के संस्थान के रूप में परिणत,
३. त्रिकोण संस्थान के रूप में परिणत,
४. चतुष्कोण संस्थान के रूप में परिणत,
५. आयतसंस्थान के रूप में परिणत।

---

१ प. (क) से किं तं रसनामे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. तित्तरसनामे जाव ५. महुररसनामे। से तं रसनामे।
–अणु. कालदारे, सु. २२२
प. (ख) से किं तं रसगुणप्पमाणे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. तित्तरसगुणप्पमाणे जाव ५. महुररसगुणप्पमाणे।
से तं रसगुणप्पमाणे। –अणु. कालदारे, सु. ४३२
(ग) पंच रसा पण्णत्ता, तं जहा–
१. तित्ता जाव ५. महुरा। –ठाणं अ. ५, उ. १, सु. ३९०/२
(घ) रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
१. तित्त, २. कडुय, ३. कसाया, ४. अंबिला, ५. महुरा तहा॥
–उत्त. अ. ३६, गा. १८
(ङ) जीवा. पडि. १, सु. ५
(च) विया. स. ८, उ. १, सु. ४८
(छ) विया. स. ८, उ. १, सु. ७७

२. प. (क) से किं तं फासनामे?
उ. अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कक्खडफासनामे जाव ८. लुक्खफासनामे। से तं फासनामे।
–अणु. कालदारे, सु. २२३
प. (ख) से किं तं फासगुणप्पमाणे?
उ. अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. कक्खडफासगुणप्पमाणे जाव ८. लुक्खफासगुणप्पमाणे।
से तं फासगुणप्पमाणे। –अणु. कालदारे, सु. ४३३
(ग) फासओ परिणया जे उ अट्ठहा ते पकित्तिया।
१. कक्खडा, २. मउया चेव, ३. गरुया, ४. लहुया तहा॥
५. सीया, ५. उण्हा य, ६. निद्धा य, तहा ७. लुक्खा य आहिया।
इइ फासपरिणया एए, पुग्गला समुदाहिया॥
–उत्त. अ. ३६, गा. १९-२०
(घ) जीवा. पडि. १, सु. ५
(ङ) विया. स. ८, उ. १, सु. ४८
(च) विया. स. ८, उ. १, सु. ७८

३. प. (क) से किं तं संठाणनामे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. परिमंडलसंठाणनामे जाव ५. आयतसंठाणनामे।
से तं संठाणनामे। –अणु. कालदारे, सु. २२४
प. (ख) से किं तं संठाणगुणप्पमाणे?
उ. पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. परिमंडलसंठाणगुणप्पमाणे जाव ५. आयतसंठाणगुणप्पमाणे।
से तं संठाणगुणप्पमाणे। से तं अजीवगुणप्पमाणे।
–अणु. कालदारे, सु. ४३४
(ग) संठाणपरिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।
१. परिमंडला य २. वट्टा, ३. तंसा, ४-५. चउरंसमायया॥
–उत्त. अ. ३६, गा. २१
(घ) जीवा. पडि. १, सु. ५
(ङ) विया. स. ८, उ. १, सु. ४८
(च) विया. स. ८, उ. १, सु. ७९

५. वण्ण परिणयाणं सय भेया—

१. जे वण्णओ कालवण्णपरिणया—

ते गंधओ— १. सुब्भिगंधपरिणया वि,

२. दुब्भिगंधपरिणया वि।

रसओ— १. तित्तरसपरिणया वि,

२. कडुयरसपरिणया वि,

३. कसायरसपरिणया वि,

४. अंबिलरसपरिणया वि,

५. महुररसपरिणया वि।

फासओ— १. कक्खडफासपरिणया वि,

२. मउयफासपरिणया वि,

३. गरुयफासपरिणया वि,

४. लहुयफासपरिणया वि,

५. सीयफासपरिणया वि,

६. उसिणफासपरिणया वि,

७. निद्धफासपरिणया वि,

८. लुक्खफासपरिणया वि।

संठाणओ— १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,

२. वट्टसंठाणपरिणया वि,

३. तंससंठाणपरिणया वि,

४. चउरंससंठाणपरिणया वि,

५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

२. जे वण्णओ नीलवण्णपरिणया—

ते गंधओ— १. सुब्भिगंधपरिणया वि,

२. दुब्भिगंधपरिणया वि।

रसओ— १. तित्तरसपरिणया वि,

२. कडुयरसपरिणया वि,

३. कसायरसपरिणया वि,

४. अंबिलरसपरिणया वि,

५. महुररसपरिणया वि।

फासओ— १. कक्खडफासपरिणया वि,

२. मउयफासपरिणया वि,

३. गरुयफासपरिणया वि,

४. लहुयफासपरिणया वि,

५. सीयफासपरिणया वि,

६. उसिणफासपरिणया वि,

७. निद्धफासपरिणया वि,

८. लुक्खफासपरिणया वि।

संठाणओ— १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,

२. वट्टसंठाणपरिणया वि,

५. वर्ण परिणतादि के सौ भेद—

१. जो वर्ण से काले वर्ण के रूप में परिणत हैं—

वे गन्ध से—१. सुरभिगन्ध-परिणत भी हैं,

२. दुरभिगन्ध-परिणत भी हैं।

वे रस से—१. तिक्तरस-परिणत भी हैं,

२. कटुरस-परिणत भी हैं,

३. कषायरस-परिणत भी हैं,

४. अम्लरस-परिणत भी हैं,

५. मधुररस-परिणत भी हैं।

वे स्पर्श से—१. कर्कश स्पर्श-परिणत भी हैं,

२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,

३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,

४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,

५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,

६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,

७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,

८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

वे संस्थान से— १. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,

२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,

३. त्रिकोण संस्थान-परिणत भी हैं,

४. चतुष्कोण संस्थान-परिणत भी हैं,

५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

२. जो वर्ण से नीले वर्ण में परिणत होते हैं,

वे गन्ध से— १. सुगन्ध-परिणत भी हैं

२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।

वे रस से—१. तिक्तरस-परिणत भी हैं,

२. कटुरस-परिणत भी हैं,

३. कषायरस-परिणत भी हैं,

४. अम्लरस-परिणत भी हैं,

५. मधुररस-परिणत भी हैं।

वे स्पर्श से—१. कर्कश स्पर्श-परिणत भी हैं,

२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,

३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,

४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,

५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,

६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,

७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,

८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

वे संस्थान से—१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,

२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,

---

१. वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ —उत्त. अ. ३६, गा. २२

३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।
३. जे वण्णओ लोहियवण्णपरिणया–
ते गंधओ–१. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ–१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[2]।
४. जे वण्णओ हालिद्दवण्णपरिणया–
ते गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।

३. त्र्यस्र (त्रिकोण) संस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्र (चतुष्कोण) संस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।
३. जो वर्ण से रक्तवर्ण-परिणत हैं–
वे गन्ध से–१. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से–१. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से–१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।
४. जो वर्ण से हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत हैं,
वे गन्ध से–१. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से–१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

१. वण्णओ जे भवे नीले, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. २३

२. वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. २४

संठाणओ-१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

५. जे वण्णओ सुक्किलवण्णपरिणया-
ते गंधओ- १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ- १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ- १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ-१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[2]। *-पण्ण. प. १, सु. १ (१-५)*

६. गंध परिणयाणं छियालीसं भेया-
१. जे गंधओ सुब्भिगंधपरिणया-
ते वण्णओ-१. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
रसओ-१. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ-१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,

वे संस्थान से-१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

५. जो वर्ण से शुक्लवर्ण- परिणत हैं,
वे गन्ध से-१. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से-१. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से- १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से- १. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

६. गंध परिणतादि के छियालीस भेद-
१. जो गन्ध से सुगन्ध परिणत हैं,
वे वर्ण से-१. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे रस से-१. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से-१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,

---

१. वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ *-उत्त. अ. ३६, गा. २५*

२. वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गंधओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ *-उत्त. अ. ३६, गा. २६*

३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ–१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।
२. जे गंधओ दुब्भिगंधपरिणया–
ते वण्णओ–१. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
रसओ–१. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ–१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ–१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[2]। *–पण्ण. प. १, सु. १० (१-२)*

७. रस परिणयाणं सय भेया–
१. जे रसओ तित्तरसपरिणया–
ते वण्णओ–१. कालवण्णपरिणया वि,
२. णीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,

३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।
२. जो गन्ध से दुर्गन्धपरिणत होते हैं,
वे वर्ण से–१. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं,
वे रस से–१. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से–१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डल संस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

७. रस परिणतादि के सौ भेद–
१. जो रस से तिक्तरस-परिणत होते हैं,
वे वर्ण से–१. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,

---

१. गंधओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ *–उत्त. अ. ३६, गा. २७*

२. गंधओ जे भवे दुब्भी, भइए से उ वण्णओ।
रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ *–उत्त. अ. ३६, गा. २८*

४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ–१. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
फासओ–१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ–१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।
२. जे रसओ कडुयरसपरिणया–
ते वण्णओ–१. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ–१. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
फासओ–१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ–१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[2]।
३. रसओ कसायरसपरिणया–
ते वण्णओ–१. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,

४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से–१. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से–१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।
२. जो रस से कटुरस-परिणत हैं–
वे वर्ण से–१. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से–१. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से–१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रुक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।
३. जो रस से कषायरस-परिणत हैं–
वे वर्ण से–१. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,

१. रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. २९

२. रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३०

३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ-१. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
फासओ-१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ-१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं,
वे गन्ध से-१. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से-१. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से-१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

४. जे रसओ अंबिलरसपरिणया-
ते वण्णओ- १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ- १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि,
फासओ- १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि,
संठाणओ-१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[2]।

४. जो रस से अम्लरस-परिणत हैं-
वे वर्ण से- १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से- १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से- १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से-१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

---

१. रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ -उत्त. अ. ३६, गा. ३१

२. रसओ अंबिले जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ *-उत्त. अ. ३६, गा. ३२*

५. जे रसओ महुररसपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]। *–पण्ण. प. १, सु. ११ (१-५)*

५. जो रस से मधुररस-परिणत हैं–
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं।
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से– १. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

८. फास परिणयाणं एक्कसय चउरासीइ भेया–

१. जे फासओ कक्खडफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. गरुयफासपरिणया वि,
२. लहुयफासपरिणया वि,
३. सीयफासपरिणया वि,
४. उसिणफासपरिणया वि,
५. निद्धफासपरिणया वि,
६. लुक्खफासपरिणया वि।

८. स्पर्श परिणतादि एक सौ चौरासी भेद–

१. जो स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

---

१. रसओ महुरए जे उ, अइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३३

संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

२. जे फासओ मउयफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. गरुयफासपरिणया वि,
२. लहुयफासपरिणया वि,
३. सीयफासपरिणया वि,
४. उसिणफासपरिणया वि,
५. निद्धफासपरिणया वि,
६. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयत संठाणपरिणया वि[2]।

३. जे फासओ गरुयफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,

वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

२. जो स्पर्श से मृदुस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

३. जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,

---

१. फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३४

२. फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३५

५. जे रसओ महुररसपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]। –पण्ण. प. १, सु. ११ (१-५)

५. जो रस से मधुररस-परिणत हैं–
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं।
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

८. फास परिणयाणं एक्कसय चउरासीइ भेया–

१. जे फासओ कक्खडफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. गरुयफासपरिणया वि,
२. लहुयफासपरिणया वि,
३. सीयफासपरिणया वि,
४. उसिणफासपरिणया वि,
५. निद्धफासपरिणया वि,
६. लुक्खफासपरिणया वि।

८. स्पर्श परिणतादि एक सौ चौरासी भेद–

१. जो स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

---

१. रसओ महुरए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३३

संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

२. **जे फासओ मउयफासपरिणया–**
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. गरुयफासपरिणया वि,
२. लहुयफासपरिणया वि,
३. सीयफासपरिणया वि,
४. उसिणफासपरिणया वि,
५. निद्धफासपरिणया वि,
६. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयत संठाणपरिणया वि[2]।

२. **जो स्पर्श से मृदुस्पर्श-परिणत हैं,**
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

३. **जे फासओ गरुयफासपरिणया–**
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,

३. **जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत हैं,**
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,

१. फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३४

२. फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३५

५. जे रसओ महुररसपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]। –पण्ण. प. १, सु. ११ (१-५)

५. जो रस से मधुररस-परिणत हैं–
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं।
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

८. फास परिणयाणं एक्कसय चउरासीइ भेया–

१. जे फासओ कक्खडफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. गरुयफासपरिणया वि,
२. लहुयफासपरिणया वि,
३. सीयफासपरिणया वि,
४. उसिणफासपरिणया वि,
५. निद्धफासपरिणया वि,
६. लुक्खफासपरिणया वि।

८. स्पर्श परिणतादि एक सौ चौरासी भेद–

१. जो स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

---

१. रसओ महुरए जे उ, अइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३३

संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

२. जे फासओ मउयफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. गरुयफासपरिणया वि,
२. लहुयफासपरिणया वि,
३. सीयफासपरिणया वि,
४. उसिणफासपरिणया वि,
५. निद्धफासपरिणया वि,
६. लुक्खफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयत संठाणपरिणया वि[2]।

३. जे फासओ गरुयफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,

वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

२. जो स्पर्श से मृदुस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

३. जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,

१. फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३४

२. फासओ मउए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ३५

संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]।

७. जे फासओ निद्धफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि।
संठाणओ– १. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[2]।

८. जे फासओ लुक्खफासपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,

वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

७. जो स्पर्श से स्निग्धस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से–१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

८. जो स्पर्श से रूक्षस्पर्श-परिणत हैं,
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कपायरस-परिणत भी हैं,

---
१. फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
२. फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ-१. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
संठाणओ-१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आयतसंठाणपरिणया वि[1]। -पण्ण. प. १, सु. १२ (१-८)

४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से- १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं।
वे संस्थान से-१. परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी हैं,
२. वृत्तसंस्थान-परिणत भी हैं,
३. त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
४. चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी हैं,
५. आयतसंस्थान-परिणत भी हैं।

९. संठाण परिणयाणं सय भेया-

१. जे संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणया-
ते वण्णओ-१. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ- १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ- १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ- १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि[2]।

२. जे संठाणओ वट्टसंठाणपरिणया-
ते वण्णओ- १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।

९. संस्थान परिणतादि के सौ भेद-

१. जो संस्थान से-परिमण्डलसंस्थान-परिणत हैं,
वे वर्ण से- १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से- १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से- १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से- १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

२. जो संस्थान से वृत्तसंस्थान-परिणत हैं,
वे वर्ण से- १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।

---

१. फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य॥ -उत्त. अ. ३६, गा. ४१

२. परिमंडलसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥ -उत्त. अ. ३६, गा. ४२

गंधओ–१. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि[1]।

३. **जे संठाणओ तंससंठाणपरिणया–**
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि[2]।

४. **जे संठाणओ चउरंससंठाणपरिणया–**
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,

वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

३. **जो संस्थान से त्र्यस्रसंस्थान-परिणत हैं,**
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

४. **जो संस्थान से चतुरस्रसंस्थान-परिणत हैं,**
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,

---

१. संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ।

२. संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ।

४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि[1]।

५. जे संठाणओ आयतसंठाणपरिणया–
ते वण्णओ– १. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किलवण्णपरिणया वि।
गंधओ– १. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि।
रसओ– १. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि।
फासओ– १. कक्खडफासपरिणया वि,
२. मउयफासपरिणया वि,
३. गरुयफासपरिणया वि,
४. लहुयफासपरिणया वि,
५. सीयफासपरिणया वि,
६. उसिणफासपरिणया वि,
७. निद्धफासपरिणया वि,
८. लुक्खफासपरिणया वि[2]।

४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

५. **जो संस्थान से आयतसंस्थान-परिणत हैं,**
वे वर्ण से– १. कृष्णवर्ण-परिणत भी हैं,
२. नीलवर्ण-परिणत भी हैं,
३. रक्तवर्ण-परिणत भी हैं,
४. पीतवर्ण-परिणत भी हैं,
५. शुक्लवर्ण-परिणत भी हैं।
वे गन्ध से– १. सुगन्ध-परिणत भी हैं,
२. दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।
वे रस से– १. तिक्तरस-परिणत भी हैं,
२. कटुरस-परिणत भी हैं,
३. कषायरस-परिणत भी हैं,
४. अम्लरस-परिणत भी हैं,
५. मधुररस-परिणत भी हैं।
वे स्पर्श से– १. कर्कशस्पर्श-परिणत भी हैं,
२. मृदुस्पर्श-परिणत भी हैं,
३. गुरुस्पर्श-परिणत भी हैं,
४. लघुस्पर्श-परिणत भी हैं,
५. शीतस्पर्श-परिणत भी हैं,
६. उष्णस्पर्श-परिणत भी हैं,
७. स्निग्धस्पर्श-परिणत भी हैं,
८. रूक्षस्पर्श-परिणत भी हैं।

---

१. संठाणओ य चउरंसे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ४५

२. (क) जे आयतसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।
गंधओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य॥ –उत्त. अ. ३६, गा. ४६
(ख) जीवा. पडि. १, सु. ५

से तं रूवि अजीवपण्णवणा।

से तं अजीवपण्णवणा। —पण्ण. प. १, सु. १३(१-५)

0. रूवि-अजीव-दव्वाणं-अणंतत्त परूवणं—

प. ते णं भन्ते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

प. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ—
'नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ?'

उ. गोयमा ! अणंता परमाणु पोग्गला,
अणंता दुपदेसिया खंधा जाव अणंता दसपदेसिया खंधा,

अणंता संखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता असंखेज्जपदेसिया खंधा, अणंता अणंतपदेसिया खंधा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—
'ते णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता[1]।'

—अणु. सु. ४०३



यह रूपी अजीव प्रज्ञापना हुई।

यह अजीव प्रज्ञापना हुई।

१०. रूपी-अजीव-द्रव्यों के अनंतत्व का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या वे (रूपी अजीव द्रव्य) संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि—
'वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं ?'

उ. गौतम ! परमाणु पुद्‌गल अनन्त हैं,

द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं।

संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं और अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—
'वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।'



१. विया. स. २५ उ. ३ सु. २

पुद्गल अध्ययन : आमुख

जो वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्शयुक्त है वह पुद्गल है। एक परमाणु से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध में ये वर्णादि गुण पाए जाते हैं। जिस द्रव्य में वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श नहीं पाया जाता वह पुद्गल से भिन्न द्रव्य होता है। ऐसे द्रव्य पाँच हैं–धर्म, अधर्म, आकाश, काल एवं जीव। ये पाँचों द्रव्य इन्द्रियगोचर नहीं होते क्योंकि ये वर्णादि से रहित होते हैं। जो इन्द्रियगोचर होता है वह पुद्गल ही होता है किन्तु पुद्गल के परमाणु, द्विप्रदेशी स्कन्ध आदि ऐसे सूक्ष्म अंश भी हैं जिन्हें इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। ये अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान अथवा केवलज्ञान के विषय होते हैं। पुद्गल का एक निरुक्तिपरक अर्थ यह किया जाता है कि जो पूरण एवं गलन अवस्था को प्राप्त हों वे पुद्गल हैं। संघात से ये पूरण अवस्था को तथा भेद से गलन अवस्था को प्राप्त होते हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार पुरुष अर्थात् जीव जिन्हें शरीर, आहार, विषय और इन्द्रिय उपकरण आदि के रूप में ग्रहण करता है वे पुद्गल हैं।

समस्त जगत् में पुद्गल ही एक ऐसा द्रव्य है जो मूर्त है, रूपी है अर्थात् रूप (वर्ण), रस, गंध एवं स्पर्श से युक्त है। इनके अतिरिक्त पुद्गल में संस्थान अर्थात् आकार का भी वैशिष्ट्य होता है। यह संस्थान छह प्रकार का होता है–१. परिमण्डल, २. वृत्त, ३. त्रिकोण, ४. चतुष्कोण, ५. आयत (लम्बा) और ६. अनियत। संस्थान के ये छह भेद व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के अनुसार हैं। स्थानांगसूत्र में इसके सात भेद भी हैं–१. दीर्घ, २. ह्रस्व, ३. वृत्त, ४. त्रिकोण, ५. चतुष्कोण, ६. पृथुल और ७. परिमण्डल। वर्ण के पाँच भेद प्रसिद्ध हैं–१. काला, २. नीला, ३. लाल, ४. पीला और ५. श्वेत। गंध के १. सुरभिगंध और २. दुरभिगंध ये दो भेद हैं। रस के १. तिक्त, २. कटु, ३. कषैला, ४. खट्टा और ५. मीठा ये पाँच प्रकार हैं। स्पर्श के ८ प्रकार हैं–१. कर्कश, २. मृदु, ३. गुरु, ४. लघु, ५. शीत, ६. उष्ण, ७. रुक्ष और ८. स्निग्ध।

मुख्यतया परमाणु और स्कन्ध (नो परमाणु पुद्गल) के रूप में विभक्त पुद्गल को विभिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न प्रकार के भेदों में बाँटा जाता है, यथा–स्कन्ध की अपेक्षा उसे भिदुर स्वभाव वाला तथा परमाणु के अविभाज्य होने के कारण उसे अभिदुर स्वभाव वाला कहा गया है। स्कन्ध का भेद (खण्डन) होने के कारण उसे भिन्न तथा परमाणुओं का संघात होने के कारण उसे अभिन्न कहा गया है। इन्द्रिय ग्राह्य पुद्गल बादर तथा शेष सूक्ष्म हैं। जिन पुद्गलों को जीव ग्रहण करता है वे आत्त तथा जिन्हें ग्रहण नहीं करता वे अनात्त कहलाते हैं। इसी प्रकार मन को अभीप्सित मनोज्ञ तथा अनभीप्सित अमनोज्ञ भेद बनते हैं।

जैनदर्शन की गणित में एक से लेकर दस तक की संख्या के पश्चात् संख्यात, असंख्यात और अनन्त शब्दों का प्रयोग होता है। इसीलिए परमाणु के पश्चात् द्विप्रदेशी पुद्गल, त्रिप्रदेशी पुद्गल, चारप्रदेशी, पाँचप्रदेशी यावत् दस प्रदेशी पुद्गलों का वर्णन करने के अनन्तर संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी पुद्गलों का वर्णन हुआ है। परमाणु को अप्रदेशी माना गया है। एक परमाणु पुद्गल एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श वाला कहा गया है। द्विप्रदेशी स्कन्ध कदाचित् एक वर्ण वाला, कदाचित् दो वर्ण वाला, कदाचित् एक गंध वाला, कदाचित् दो गंध वाला, कदाचित् एक रस वाला, कदाचित् दो रस वाला, कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला और कदाचित् चार स्पर्श वाला कहा गया है। इस प्रकार त्रिप्रदेशी आदि स्कन्धों में रस एवं वर्ण की संख्या कदाचित् बढ़ती जाती है। इससे द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी वर्णादि की अपेक्षा अनेक भङ्ग बन जाते हैं। इस गणित से परमाणु में वर्णादि के कुल १६ भंग, द्विप्रदेशी स्कन्ध में ४२ भंग, त्रिप्रदेशी स्कन्ध में १२० भंग, चतुष्प्रदेशी स्कन्ध में २२२ भंग, पंचप्रदेशी स्कन्ध में ३२४ भंग, षट्प्रदेशी स्कन्ध में ४१४ भंग, सप्तप्रदेशी स्कन्ध में ४७४ भंग, अष्टप्रदेशी स्कन्ध में ५०४ भंग, नवप्रदेशी स्कन्ध में ५१४ भंग और दसप्रदेशी स्कन्ध में ५१६ भंग होते हैं। संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और सूक्ष्म परिणत अनन्त प्रदेशी पुद्गलों में भी इसी प्रकार ५१६ भंग होते हैं। बादर परिणाम वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के १२९६ भंग होते हैं। इसमें स्पर्श के कदाचित् चार भेद यावत् कदाचित् आठ भेद पाए जाते हैं।

संसारी जीव आठ कर्मों से युक्त होने के कारण पुद्गल से पूर्णतया सम्बद्ध हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन आदि जो जीव को मिले हैं वे भी इस कारण पौद्गलिक हैं। जीव को परभाव में ले जाने वाले जो प्राणातिपात आदि अठारह पाप हैं वे भी इस दृष्टि से पौद्गलिक हैं तथा वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से युक्त हैं। यद्यपि ये पाप बिना जीव के होना संभव नहीं है तथापि ये जीव के स्वभाव नहीं है अपितु जीव को परभाव में ले जाते हैं इसलिए आगम में इन्हें पौद्गलिक माना है। यही कारण है कि राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया एवं लोभ में भी वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श माने गए हैं। दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द भी समयसार में इसी प्रकार का निरूपण करते हैं। जीव को जो स्वभाव में लाते हैं ऐसे गुणों में वर्णादि की सत्ता स्वीकार नहीं की गयी है, यथा प्राणातिपात-विरमण आदि में तथा क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक में वर्णादि की सत्ता नहीं है। ये वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श से रहित होते हैं। ज्ञान एवं दर्शन भी वर्णादि से रहित होते हैं, इसलिए १. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय एवं ४. धारणा तथा औत्पत्तिकी आदि चार प्रकार की बुद्धियों को भी वर्णादि से रहित प्रतिपादित किया गया है। चारित्र भी वर्णादि से रहित होता है अतः उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम को भी वर्णादि से रहित माना गया है। किन्तु अष्टविध कर्मों को पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और चार स्पर्शयुक्त निरूपित किया गया है।

द्रव्य-लेश्या वर्ण, गंध, रस एवं स्पर्श युक्त है जबकि भाव-लेश्या इनसे रहित है। ज्ञान एवं दर्शन के साथ दृष्टि, अज्ञान एवं आहार आदि चार संज्ञाओं को वर्णादि से रहित माना गया है। आहार आदि संज्ञाएँ वर्णादि से रहित हैं क्योंकि ये स्वाभाविक हैं, परन्तु केवली, कवलाहार के अतिरिक्त भय, मैथुन एवं परिग्रह संज्ञाओं से ग्रस्त नहीं होता अतः इन्हें वर्णादि से रहित मानने पर प्रश्न चिह्न खड़ा होता है। औदारिक, वैक्रिय, आहारक एवं तैजस् शरीर पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस एवं आठ स्पर्श वाले हैं जबकि कार्मणशरीर चतुःस्पर्शी है। इन शरीरों के कारण नैरयिक, देव, तिर्यञ्च एवं मनुष्य गति के जीव वर्णादि से युक्त माने जाते हैं। कार्मण शरीर की अपेक्षा ये चतुःस्पर्शी तथा अन्य शरीरों की अपेक्षा अष्ट स्पर्शी होते हैं। मनोयोग एवं वचनयोग चतुःस्पर्शी हैं तथा काययोग अष्ट स्पर्शी हैं।

विभिन्न पृथ्वियों के मध्य अवकाशान्तर वर्णादि से रहित हैं किन्तु सप्तम पृथ्वी से प्रथम पृथ्वी तक, तनुवात, घनवात, घनोदधि तथा जम्बूद्वीप से स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त, सौधर्मकल्प से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त, नैरयिकावास से वैमानिकावास पर्यन्त सब वर्णादि सहित हैं तथा आठ स्पर्श युक्त हैं। इनमें कुछ द्रव्य वर्णादि रहित हैं तथा कुछ वर्णादि सहित हैं किन्तु ये अन्योन्य स्पृष्ट एवं अन्योन्य सम्बद्ध रहते हैं।

पुद्गल के भेद एवं संघात का व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में विस्तार से विवेचन है। पुद्गलों का संघात एवं भेद कभी अपने स्वभाव से होता है और कभी दूसरे के निमित्त से होता है। परमाणु पुद्गलों के मिलने से स्कन्ध का निर्माण होता है तथा पुद्गल का अधिकतम विभाजन परमाणु पुद्गल के रूप में होता है। श्रमण भगवान् महावीर से गौतम स्वामी के इस सन्दर्भ में बड़े रोचक प्रश्नोत्तर हुए हैं। दो परमाणुओं के मिलने से द्विप्रदेशिक स्कन्ध बनता है तथा उसका विभाजन होने पर दो परमाणु पुद्गल निकलते हैं। इसी प्रकार तीन परमाणु पुद्गलों के मिलने से त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दस परमाणु पुद्गलों के मिलने से दशप्रदेशिक स्कन्ध बनते हैं। इनका विभाजन होने में अनेक विकल्प हो सकते हैं। यथा--त्रिप्रदेशिक स्कन्ध का विभाजन होने पर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध और एक परमाणु भी रह सकता है तथा तीन विभाग होने पर तीन परमाणु पुद्गल भी हो सकते हैं। इस प्रकार के विकल्पों की संख्या दशप्रदेशिक स्कन्ध में और बढ़ जाती है। संख्यात परमाणु-पुद्गलों के मिलने पर संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, असंख्यात परमाणु-पुद्गलों के मिलने पर असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध तथा अनन्त परमाणु पुद्गलों के मिलने पर अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध बनता है। इन सबका भेदन होने पर अनेक विकल्प बनते हैं जिनमें एक विकल्प यह भी है कि संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध का भेदन होने पर संख्यात परमाणु पुद्गल, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध का भेदन होने पर असंख्यात परमाणु पुद्गल तथा अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध का भेदन होने पर अनन्त परमाणु पुद्गल रहते हैं।

एक परमाणु गति करने पर एक समय में लोक के अन्त भाग तक पहुँच सकता है। परमाणु की इस प्रकार की गति का वर्णन अन्य किसी भारतीय दर्शन में नहीं है तथा यह वैज्ञानिकों के लिए भी शोध की प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस समय सर्वाधिक गतिशील वस्तु प्रकाश है जो एक सेकण्ड में लगभग ३ लाख किलोमीटर की दूरी तय करता है। जैन दर्शन के अनुसार प्रकाश भी पुद्गल का ही एक प्रकार है। पुद्गल की गति इससे भी तीव्र हो सकती है। एक परमाणु एक समय में सम्पूर्ण लोक तक पहुँच सकता है। पुद्गल की इस गति का वर्णन आश्चर्यकारी है। भगवतीसूत्र में वर्णित अस्पृशद् गति से भी इसका समर्थन होता है। स्थानांग सूत्र में तीन कारणों से पुद्गल का प्रतिघात बतलाया गया है--१. एक परमाणु-पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से टकराकर प्रतिहत होता है, २. रुक्ष स्पर्श से प्रतिहत होता है तथा ३. लोकान्त में जाकर प्रतिहत होता है।

पुद्गल में पर्याय की अपेक्षा निरन्तर परिवर्तन हो रहा है तथापि उसके परिणमन को तीन भागों में विभक्त किया जाता है--१. प्रयोग परिणत पुद्गल, २. विस्रसा परिणत पुद्गल और ३. मिश्र परिणत पुद्गल। जीव द्वारा गृहीत पुद्गलों को प्रयोग परिणत पुद्गल, स्वभावतः परिणत पुद्गलों को विस्रसा परिणत पुद्गल तथा प्रयोग और स्वभाव दोनों के द्वारा परिणत पुद्गलों को मिश्र परिणत पुद्गल कहते हैं। संसारी जीवों को जाति के आधार पर पाँच भागों में विभक्त किया गया है--एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इन जीवों के आधार पर प्रयोग परिणत पुद्गल के पाँच भेद निरूपित हैं--एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत् पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल। एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल भी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के आधार पर पाँच प्रकार का होता है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल अनेक प्रकार के होते हैं तथा पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों को नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के आधार पर चार प्रकार का कहा गया है। फिर इनके भी भेदोपभेदों के प्रयोग परिणत पुद्गलों का इस अध्ययन में वर्णन हुआ है।

प्रयोग परिणत पुद्गलों एवं मिश्र परिणत पुद्गलों का नौ दण्डकों अथवा द्वारों से इस अध्ययन में विस्तृत एवं सूक्ष्म निरूपण हुआ है। प्रथम दण्डक में तो जीव के एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के भेदोपभेदों के प्रयोग परिणत एवं मिश्र परिणत पुद्गलों का निरूपण है। द्वितीय दण्डक में सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नैरयिक, मनुष्य, तिर्यञ्च एवं देवों के पर्याप्त एवं अपर्याप्त अवस्था में परिणत पुद्गलों की चर्चा है। तीसरे दण्डक में शरीर तथा चौथे दण्डक में इन्द्रियों के आधार पर प्रयोग परिणत एवं मिश्र परिणत पुद्गलों का विचार हुआ है। पाँचवें दण्डक में कौन-सा शरीरधारी किन इन्द्रियों से प्रयोग परिणत एवं मिश्र परिणत है इसका निरूपण है। छठे दण्डक में यह उल्लेख है कि अपर्याप्त एकेन्द्रिय से लेकर पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श एवं पाँच संस्थान परिणत हैं। पाँच संस्थान हैं--परिमण्डल, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र और आयत। सातवें दण्डक में इन जीवों को शरीरादि के साथ जोड़कर वर्णादि का निरूपण हुआ है। आठवें दण्डक में इन्हें इन्द्रियादि के साथ जोड़कर तथा नवें दण्डक में शरीर एवं इन्द्रिय दोनों से जोड़कर कृष्णवर्ण यावत् अष्टस्पर्श का कथन है।

विस्रसा अर्थात् स्वभाव से अपने आप परिणत पुद्गल पाँच प्रकार के होते हैं--१. वर्ण परिणत, २. गंध परिणत, ३. रस परिणत, ४. स्पर्श परिणत और ५. संस्थान परिणत। वर्ण परिणत के पुनः कृष्ण आदि पाँच, गंध के सुरभि आदि दो, रस के तिक्त आदि पाँच, स्पर्श के कर्कश आदि आठ तथा संस्थान के परिमण्डल आदि पाँच भेद होते हैं।

भगवान् से प्रश्न किया गया कि क्या एक पुद्गल द्रव्य प्रयोग परिणत होता है, मिश्रपरिणत होता है या विस्रसा परिणत होता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् ने कहा--गौतम! एक पुद्गल द्रव्य प्रयोग परिणत भी होता है, मिश्र परिणत भी होता है और विस्रसा परिणत भी होता है। जब वह द्रव्य प्रयोग परिणत होता है तब वह मन, वचन एवं काय प्रयोग परिणत भी होता है। मन, वचन एवं काय के भेदों में भी परिणत होता है किन्तु यह परिणमन जिन जीवों में जितना शक्य है, उतना होता है। जैसे एक द्रव्य वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है किन्तु वायुकाय के अतिरिक्त एकेन्द्रिय वैक्रियशरीरकाय प्रयोग परिणत नहीं होता है, पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीर कायप्रयोग परिणत हो जाता है। आहारक शरीर एवं आहारकमिश्र शरीर काय प्रयोग का परिणमन आहारक लब्धि युक्त प्रमत्त संयत मनुष्य में होता है, अन्य में नहीं।

वही द्रव्य जब मिश्र परिणत होता है तो मनोमिश्र परिणत भी होता है, वचनमिश्र परिणत भी होता है और कायमिश्र परिणत भी होता है। मन के सत्य, मृषा, सत्यमृषा एवं असत्य-अमृषा भेदों में तथा वचन के सत्य, मृषा, सत्यमृषा एवं असत्य-अमृषा भेदों में भी परिणत होता है। काय के औदारिक ., औदारिक मिश्र शरीर, वैक्रियशरीर, वैक्रियमिश्रशरीर, आहारक, आहारकमिश्र तथा कार्मण शरीरकाय भेदों में भी यथाशक्य प्रयोग परिणमन है।

विस्रसा परिणमन में एक द्रव्य वर्ण, गंध, रस, स्पर्श एवं संस्थान परिणत होता है वह इनके भेदोपभेदों में भी परिणत होता है। दो पुद्‌गल द्रव्यों, तीन पुद्‌गल द्रव्यों, चार, पाँच, छह यावत् दस पुद्‌गल द्रव्यों, संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त पुद्‌गल द्रव्यों में प्रयोग-परिणमन, मिश्र परिणमन और विस्रसा परिणमन के द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी आदि अनेक भंग बनते हैं।

अल्प-बहुत्व की दृष्टि से विचार किए जाने पर ज्ञात होता है कि सबसे अल्प पुद्‌गल प्रयोग परिणत है, उनसे मिश्र परिणत पुद्‌गल अनन्तगुणे हैं तथा उनसे विस्रसा परिणत पुद्‌गल अनन्तगुणे हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पुद्‌गलों का स्वाभाविक परिणमन अधिक होता है। पर्याय की दृष्टि से तो सभी द्रव्यों की पर्यायों का निरन्तर परिणमन हो रहा है।

पुद्‌गल अनन्त हैं। एक परमाणु पुद्‌गल अनन्त हैं, एक प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल अनन्त हैं, एक समय की स्थिति वाले पुद्‌गल अनन्त हैं, एक गुण कृष्ण वर्ण वाले यावत् एक गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्‌गल भी अनन्त हैं। द्विप्रदेशी स्कन्ध, द्विप्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल, दो समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, दो गुण कृष्ण वर्ण वाले यावत् दो गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्‌गल भी अनन्त हैं। इसी प्रकार तीनप्रदेशी, चारप्रदेशी, पाँचप्रदेशी यावत् दसप्रदेशी पुद्‌गल उतने क्षेत्र, काल एवं भाव वाले होकर भी अनन्त हैं। यह वर्णन स्थानांग सूत्र के अनुसार है। वहाँ पर दस स्थान तक वर्णन है अतः दसप्रदेशी पुद्‌गलों तक का वर्णन वहाँ प्राप्त है, संख्यात, असंख्यात एवं अनन्तप्रदेशी का नहीं। आगम-परम्परा के अनुसार संख्यातप्रदेशी आदि पुद्‌गल भी अनन्त ही हैं।

लोक के एक आकाशप्रदेश में व्यवधान न हो तो छहों दिशाओं से पुद्‌गल आकर एकत्रित होते हैं और व्यवधान होने पर कदाचित् तीन, कदाचित् चार और कदाचित् पाँच दिशाओं से पुद्‌गल आकर एकत्रित होते हैं। इसी प्रकार एक आकाश में स्थित पुद्‌गल विभिन्न दिशाओं की ओर पृथक् होते हैं।

क्या शुभ पुद्‌गल अशुभ पुद्‌गलों के रूप में तथा अशुभ पुद्‌गल शुभ पुद्‌गलों के रूप में बदलते हैं ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। आगम के अनुसार इसका उत्तर हाँ में जाता है। शुभ शब्द पुद्‌गल अशुभ शब्द के रूप में तथा अशुभ शब्द पुद्‌गल शुभ शब्द के रूप में परिणत होते हैं। इसी प्रकार शुभ रूप वाले पुद्‌गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप वाले पुद्‌गल शुभ रूप में परिणत होते हैं। गंध, रस एवं स्पर्श के सन्दर्भ में भी यही कथन है अर्थात् उनमें भी शुभ-अशुभ का पारस्परिक परिणमन होता रहता है।

व्यवहारनय में जिस गुड़ को हम मधुर समझते हैं वह निश्चयनय में पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस एवं आठ स्पर्श युक्त है। इसी प्रकार जिस भ्रमर को हम काला समझते हैं वह वास्तव में पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस एवं आठ स्पर्श से युक्त है। इस प्रकार के कथनों की चर्चा इस अध्ययन में व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र से हुई है।

जैनागमों में परमाणु के चार प्रकार प्रतिपादित हैं–१. द्रव्य परमाणु, २. क्षेत्र परमाणु, ३. काल परमाणु और ४. भाव परमाणु। द्रव्य परमाणु के अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य ये चार भेद किए गए हैं। क्षेत्र परमाणु के अनर्द्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाज्य ये चार भेद प्रतिपादित हैं। काल परमाणु के अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श ये चार भेद हैं तथा भाव परमाणु के वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान् ये चार प्रकार किए गए हैं।

परमाणु में जो सामर्थ्य निरूपित किया गया है वह अद्‌भुत है तथा वैज्ञानिकों के लिए अन्वेषण का विषय है। आगम के अनुसार एक परमाणु पुद्‌गल लोक के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त तक, पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक, दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक, उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक, ऊपरी चरमान्त से नीचे के चरमान्त तक तथा नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्त तक एक समय में जाता है। वैज्ञानिकों के द्वारा ऐसा परमाणु आविष्कृत नहीं हुआ है। ये परमाणु पुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत हैं तथा वर्णादि पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत हैं।

परमाणु पुद्‌गलों के संघात और भेद से अनन्तानन्त पुद्‌गल परिवर्त होते हैं। ये पुद्‌गल परिवर्त सात प्रकार के कहे गए हैं–१. औदारिक पुद्‌गल परिवर्त, २. वैक्रिय, ३. तैजस्, ४. कार्मण, ५. मन, ६. वचन और ७. आनप्राण पुद्‌गल परिवर्त। नैरयिक से लेकर वैमानिकों तक ये सातों पुद्‌गल परिवर्त कहे गए हैं तथा इन पुद्‌गल परिवर्तों को जाना जा सकता है। इन पुद्‌गल परिवर्तों पर अतीतकाल एवं भविष्यकाल की अपेक्षा चौबीस दण्डकों में भी इस अध्ययन में विचार हुआ है। वर्तमान भव की अपेक्षा भी इन दण्डकों में विचार किया गया है। अल्प-बहुत्व की दृष्टि से सबसे अल्प वैक्रिय पुद्‌गल परिवर्त हैं तथा सबसे अधिक कार्मण पुद्‌गल परिवर्त हैं। इन पुद्‌गल परिवर्तों की पूर्णता (निष्पन्नता) अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में होती है। इनमें सबसे कम कार्मण पुद्‌गल परिवर्त की निर्वर्तना (निष्पत्ति) का काल है तथा सबसे अधिक वैक्रिय पुद्‌गल परिवर्त की निर्वर्तना का काल है।

परमाणुओं की गति अनुश्रेणि होती है। अनुश्रेणि गति आकाश प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार (बिना मोड़ के) होती है। परमाणु-पुद्‌गलों की भाँति द्विप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों की गति भी अनुश्रेणि ही प्रतिपादित की गई है। नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक की गति भी अनुश्रेणि ही स्वीकृत है।

नारदपुत्र एवं निर्ग्रन्थीपुत्र में संवाद हुआ कि क्या सब पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं ? नारदपुत्र ने निर्ग्रन्थ पुत्र से कहा कि मेरे मत में सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं। निर्ग्रन्थीपुत्र ने इस पर प्रश्न किया कि क्या द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं ? इस पर नारदपुत्र ने स्वीकृतिपरक उत्तर दिया। इस पर निर्ग्रन्थीपुत्र ने पुनः प्रश्न किया–सभी पुद्‌गलों में परमाणु पुद्‌गल भी समाहित हैं, क्या वे भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं ? क्षेत्र की अपेक्षा एक प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल, काल की अपेक्षा एक समय की स्थिति वाला पुद्‌गल और भाव की अपेक्षा एक गुण काला पुद्‌गल भी क्या सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होगा ? वस्तुतः यह कथन उचित नहीं है। मेरी धारणानुसार द्रव्य की अपेक्षा पुद्‌गल सप्रदेश भी हैं, अप्रदेश भी हैं और अनन्त भी हैं। इसी प्रकार क्षेत्र, काल एवं भावादेश से भी जानना चाहिए। भगवान् महावीर एवं गौतम में भी पुद्‌गल के सार्द्ध, समध्य एवं सप्रदेश के सम्बन्ध में विस्तार से शंका समाधान हुए हैं। जिसके अनुसार परमाणु पुद्‌गल अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं।

द्विप्रदेशिक, चतु:प्रदेशिक आदि सम संख्या वाले स्कन्ध सार्द्ध, अमध्य और सप्रदेश हैं जबकि त्रिप्रदेशिक, पञ्चप्रदेशिक आदि विषम संख्या वाले स्कन्ध अनर्ध, समध्य और सप्रदेश हैं। संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कदाचित् सार्ध अमध्य और सप्रदेश हैं तो कदाचित् अनर्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं। जिसके दो बराबर भाग हो जाएँ एवं मध्य में कुछ न बचे वह सार्ध एवं अमध्य कहलाता है तथा जिसके दो बराबर भाग न हों अपितु भाग करने पर मध्य में कुछ बच जाए उसे अनर्द्ध एवं समध्य कहते हैं।

एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता हुआ सर्व से सर्व को स्पर्श करता है अर्थात् सम्पूर्ण रूप से स्पर्श करता है। द्विप्रदेशिक स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल सर्व से एक देश का तथा सर्व से सर्व का स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणु सर्व से एक देश को स्पर्श करता है, सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है अथवा सर्व से सर्व को स्पर्श करता है। द्विप्रदेशिक आदि स्कन्ध जब परमाणु को स्पर्श करते हैं तो इनके भिन्न-भिन्न विकल्प बनते हैं। इसी प्रकार ये परस्पर द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों को किस प्रकार स्पर्श करते हैं इसके अनेक विकल्प बनते हैं। वायुकाय से इनके स्पर्श का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि परमाणु पुद्गल से लेकर असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट हैं किन्तु वायुकाय इनसे स्पृष्ट नहीं है। अनन्तप्रदेशी स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट हैं और वायुकाय अनन्तप्रदेशी स्कन्धों से कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं है।

पुद्गल के सकम्प एवं निष्कम्प रहने की चर्चा भी इस अध्ययन में उभरी है। परमाणु पुद्गल कदाचित् सकम्प होता है और कदाचित् निष्कम्प होता है। जब वह सकम्प होता है तब सर्वसकम्प होता है देश (अंशत:) सकम्प नहीं होता। द्विप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध कदाचित् देशकम्पक होते हैं, कदाचित् सर्वकम्पक होते हैं और कदाचित् निष्कम्पक होते हैं। सकम्पकता में कांपना, चलना, फड़कना, मिलना, क्षुभित होना, उदीरित होना या उस भाव में परिणत होना सम्मिलित है। परमाणु पुद्गल यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अपने स्वभाव में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है। एक प्रदेशावगाढ़ यावत् असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल स्वस्थान में या अन्य स्थान में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक रहता है। एक प्रदेशावगाढ़ यावत् असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल काल की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक निष्कम्प रहता है। एक गुण काला पुद्गल यावत् अनन्तगुण काला पुद्गल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है। शब्द परिणत पुद्गल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यात भाग तक शब्द परिणत रहता है। परमाणु पुद्गल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक सकम्प रहता है। वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक निष्कम्प रहता है। द्विप्रदेशिक से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक देशकम्पक या सर्वकम्पक रहता है, उसकी निष्कम्पकता परमाणु की भाँति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहती है। सर्वकम्पकता, देशकम्पकता एवं निष्कम्पकता के आधार पर जघन्य एवं उत्कृष्ट अन्तरकाल का भी इस प्रसंग में निरूपण हुआ है।

अल्प-बहुत्व की दृष्टि से सर्वकम्पक परमाणु पुद्गल सबसे अल्प हैं, उनसे निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल असंख्यातगुणे हैं। द्विप्रदेशिक स्कन्धों से असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों तक सर्वकम्पक सबसे अल्प, उनसे देशकम्पक असंख्यातगुणे तथा निष्कम्पक असंख्यातगुणे हैं। अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों में सर्वकम्पक सबसे अल्प हैं, निष्कम्पक उनसे अनन्तगुणे हैं तथा देशकम्पक उनसे अनन्तगुणे हैं। परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों में तुलना करने पर सर्वकम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं तथा निष्कम्पक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध सबसे अधिक हैं।

सबसे अल्प अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं, उनसे परमाणु पुद्गल अनन्तगुणे हैं, उनसे संख्यातप्रदेशी स्कन्ध संख्यातगुणे हैं और उनसे असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं। क्षेत्र की अपेक्षा एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल सबसे अल्प हैं उनसे संख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल संख्यातगुणे हैं, उनसे असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल असंख्यातगुणे हैं। काल की अपेक्षा भी अल्प-बहुत्व का वही कथन है जो अवगाहना का है।

वस्तु स्वरूप की अपेक्षा सत् एवं पररूप की अपेक्षा असत् होती है। यह सिद्धान्त परमाणु पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों तक लागू होता है। सत् एवं असत् के आधार पर अनेक भंग बन जाते हैं। सप्तभंगी नय का भी यही आधार है।

अन्यतीर्थिकों के मत में दो परमाणु पुद्गल एक साथ नहीं चिपकते हैं जबकि जैनागम के अनुसार दो परमाणु पुद्गल एक साथ चिपक जाते हैं क्योंकि उनमें चिकनापन (स्निग्धता) होती है। तीन परमाणु पुद्गल आदि भी इसी प्रकार चिपकते हैं। ये चिपक कर स्कन्ध बन जाते हैं। स्कन्ध के चार प्रकार कहे गए हैं—१. नाम स्कन्ध, २. स्थापना स्कन्ध, ३. द्रव्य स्कन्ध और ४. भाव स्कन्ध। द्रव्य स्कन्ध के दो भेद होते हैं—१. आगम से द्रव्य स्कन्ध और २. नो आगम से द्रव्य स्कन्ध। भाव स्कन्ध भी दो प्रकार का होता है—१. आगम भाव स्कन्ध और २. नो आगम भाव स्कन्ध।

उत्तराध्ययन सूत्र में शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श को पुद्गल के लक्षण कहा गया है। एकत्व, पृथक्त्व, भिन्नत्व, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग को पुद्गल की पर्यायों का लक्षण कहा है। शब्द की उत्पत्ति दो कारणों से होती है—१. पुद्गलों का संघात एकत्रित होने पर तथा २. पुद्गलों का भेद होने पर।

प्रस्तुत अध्ययन में परमाणु-पुद्गलों से लेकर अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से विविध प्रकार से विचार हुआ है जिनमें कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज की दृष्टि से किया गया विचार भी मुख्य है। परिमण्डल आदि संस्थानों (आकारों) का भी इस अध्ययन में विस्तार से विचार हुआ है, जो कई दृष्टियों से महत्त्व का है। संस्थानों में भी कृतयुग्मादि का विचार किया गया है। शब्द के पुद्गल होने के विषय में भी ऊहापोह हुआ है।

इस प्रकार जैनदर्शन में पुद्गल का क्या स्वरूप है तथा परमाणु का क्या स्वरूप है इसे समझने के लिए यह अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। □

४६. पोग्गलऽज्झयणं

सूत्र

१. पोग्गलाणं विविहपयारेण दुविहत्तं–

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. भिन्ना चेव, २. अभिन्ना चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. भिउरधम्मा चेव,

२. नो भिउरधम्मा चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. परमाणु पोग्गला चेव, २. नो परमाणुपोग्गला चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुहुमा चेव, २. वायरा चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. वद्धपासपुट्ठा चेव,

२. नो वद्धपासपुट्ठा चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. परियादितच्चेव,

२. अपरियादितच्चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. अत्ता चेव,

२. अणत्ता चेव।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–

१. इट्ठा चेव, २. अणिट्ठा चेव।

एवं १. कंता २. अकंता,

१. पिया, २. अप्पिया,

१. मणुन्ना, २. अमणुन्ना,

१. मणामा, २. अमणामा चेव।

–ठाणं अ. २, उ. ३., सु. ७५

२. पोग्गलाणं वग्गणा भेय परूवणं–

एगा परमाणुपोग्गलाणं वग्गणा,

एवं एगा दुपएसियाणं खंधाणं वग्गणा जाव एगा अणंतपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।

एगा एगपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा,

एवं एगा दुपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जपएसोगाढाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एगा एगसमयठिइयाणं पोग्गलाणं वग्गणा,

एवं एगा दुसमयठिइयाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्जसमयठिइयाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एगा एगगुणकालयाणं पोग्गलाणं वग्गणा,

एवं दुगुणकालयाणं पोग्गलाणं वग्गणा जाव एगा असंखेज्ज गुणकालयाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

४६. पुद्गल अध्ययन

सूत्र

१. पुद्गलों की विविध प्रकार से द्विविधता–

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. भिन्न, २. अभिन्न।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. भिदुर धर्म (नश्वर स्वभाव वाले),

२. नो भिदुर धर्म (अनश्वर स्वभाव वाले)

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. परमाणुपुद्गल, २. नो परमाणुपुद्गल।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. सूक्ष्म, २. वादर।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. वद्धपार्श्वस्पृष्ट (स्पर्श रस और घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्राह्य),

२. नो वद्धपार्श्वस्पृष्ट (चक्षुइन्द्रिय द्वारा ग्राह्य)।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्यादंत (विवक्षित अवस्था को पार कर चुके)

२. अपर्यादंत (विवक्षित अवस्था में विद्यमान)।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. आत्त (जीव के द्वारा गृहीत),

२. अनात्त-(जीव के द्वारा अगृहीत)।

पुद्गल दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. इष्ट, २. अनिष्ट,

इसी प्रकार–१. कान्त, २. अकान्त,

१. प्रिय, २. अप्रिय,

१. मनोज्ञ, २. अमनोज्ञ,

१. मन के लिए प्रिय, २. मन के लिए अप्रिय

ये दो-दो प्रकार कहने चाहिए।

२. पुद्गलों की वर्गणाओं के भेदों का प्ररूपण–

परमाणु-पुद्गलों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार एक द्विप्रदेशी स्कन्ध की वर्गणा से अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त की वर्गणा एक-एक है।

एक प्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार एक द्विप्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा से असंख्यातप्रदेशावगाढ पर्यन्त पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार दो समय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा यावत् असंख्यातसमय की स्थिति वाले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

एक गुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार दो गुण काले पुद्गलों की वर्गणा यावत् असंख्यातगुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक है।

एगा अणंतगुणकालयाणं पोग्गलाणं वग्गणा,

एवं वण्ण, गंध, रस, फासा भाणियव्वा जाव एगा अणंतगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा।

एगा जहन्नपएसियाणं खंधाणं वग्गणा,

एगा उक्कोसपएसियाणं खंधाणं वग्गणा,

एगा अजहन्नुक्कोसपएसियाणं खंधाणं वग्गणा।

एवं जहन्नोगाहणगाणं, उक्कोसोगाहणगाणं, अजहन्नुक्कोसोगाहणगाणं,

एवं जहन्नठिइयाणं, उक्कोसठिइयाणं, अजहन्नुक्कोसठिइयाणं,

एवं जहन्नगुणकालगाणं, उक्कोसगुणकालगाणं, अजहन्नुक्कोसगुणकालगाणं,

एव वण्ण-गंध-रस-फासाणं वग्गणा भाणियव्वा जाव एगा अजहन्नुक्कोसगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं (खंधाणं) वग्गणा।

–ठाणं अ. १, सु. ४३

अनन्तगुण काले पुद्गलों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार सभी वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के एक गुण काले यावत् अनन्तगुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गलों की वर्गणा एक-एक कहनी चाहिए।

जघन्य-प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है।

उत्कृष्ट-प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार जघन्य अवगाहना वाले स्कन्धों की, उत्कृष्ट अवगाहना वाले स्कन्धों की और मध्यम अवगाहना वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार जघन्य स्थिति वाले स्कन्धों की, उत्कृष्ट स्थिति वाले स्कन्धों की और मध्यम स्थिति वाले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार जघन्यगुण काले स्कन्धों की, उत्कृष्ट गुण काले स्कन्धों की और मध्यम गुण काले स्कन्धों की वर्गणा एक है।

इसी प्रकार शेष सभी वर्ण-गन्ध-रस और स्पर्शों के जघन्यगुण, उत्कृष्टगुण और मध्यमगुण वाले पुद्गलों (स्कन्धों) की वर्गणा एक-एक कहनी चाहिए।

३. पोग्गलकरणाणं भेयप्पभेय परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! पोग्गलकरणे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पोग्गलकरणे पन्नत्ते, तं जहा–

१. वण्णकरणे, २. गंधकरणे, ३. रसकरणे,

४. फासकरणे, ५. संठाणकरणे।

प. वण्णकरणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा–

१. कालवण्णकरणे जाव ५. सुक्किलवण्णकरणे।

एवमेय–गंधकरणे दुविहे, रसकरणे पंचविहे, फासकरणे अट्ठविहे।

प. संठाणकरणे णं भंते ! कइविहे पन्नत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा–

१. परिमण्डल संठाणकरणे जाव

५. आयतसंठाणकरणे। *–विया. स. १९, उ. १, सु. ११-१४*

३. पुद्गल करण के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! पुद्गल-करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! पुद्गल-करण पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. वर्णकरण, २. गन्धकरण, ३. रसकरण,

४. स्पर्शकरण, ५. संस्थानकरण।

प्र. भंते ! वर्णकरण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वर्णकरण पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. कृष्णवर्णकरण यावत् ५. शुक्लवर्णकरण।

इसी प्रकार गंधकरण दो प्रकार का, रसकरण पाँच प्रकार का एवं स्पर्शकरण आठ प्रकार का कहा गया है।

प्र. भंते ! संस्थान-करण कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. परिमण्डल-संस्थानकरण यावत्

५. आयत-संस्थानकरण।

४. पोग्गल-परिणामस्स चउव्विहत्तं–

चउव्विहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा–

१. वण्णपरिणामे, २. गंधपरिणामे,

३. रसपरिणामे, ४. फासपरिणामे। *–ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६५*

४. पुद्गलों के परिणाम का चतुर्विधत्व–

पुद्गल परिणाम चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. वर्ण-परिणाम, २. गंध-परिणाम,

३. रस-परिणाम, ४. स्पर्श-परिणाम।

५. पंच पोग्गल परिणामाणं भेयप्पभेया–

प. कइविहे णं भंते ! पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा–

१. वण्णपरिणामे, २. गंधपरिणामे,

३. रसपरिणामे, ४. फासपरिणामे,

५. संठाणपरिणामे।

प. वण्णपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

५. पुद्गल परिणाम के पाँच भेद-प्रभेद–

प्र. भंते ! पुद्गल-परिणाम कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! पुद्गल-परिणाम पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. वर्ण-परिणाम, २. गंध-परिणाम,

३. रस-परिणाम, ४. स्पर्श-परिणाम,

५. संस्थान-परिणाम।

प्र. भंते ! वर्ण-परिणाम कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कालवन्नपरिणामे जाव ५. सुक्किल्लवन्नपरिणामे,[1]
एवं एएणं अभिलावेणं गंधपरिणामे दुविहे,
रसपरिणामे पंचविहे,[2]
फासपरिणामे अट्ठविहे,[3]

प. संठाणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. परिमंडलसंठाणपरिणामे जाव
५. आययसंठाणपरिणामे।

–विया. स. ८, उ. १, सु. १९-२२

१. कृष्ण वर्ण-परिणाम यावत् ५. शुक्लवर्ण-परिणाम।
इसी प्रकार के अभिलाप से दो प्रकार के गंध-परिणाम,
पाँच प्रकार के रस-परिणाम और
आठ-प्रकार के स्पर्श-परिणाम कहने चाहिए।

प्र. भंते ! संस्थान-परिणाम कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! संस्थान-परिणाम पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. परिमण्डल संस्थान-परिणाम यावत्
५. आयत-संस्थान परिणाम।

६. दव्वाइ विवक्खया रूवी अजीव (पोग्गल) दव्वस्स परूवणं–

एगत्तेणं पुहत्तेणं, खंधा य परमाणुओ।
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ॥

संतइं पप्प ते ऽणाइं, अपज्जवसिया वि य।
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥
असंखकालमुक्कोसं, एगं समयं जहन्निया।
अजीवाण य रूवीणं, ठिई एसा वियाहिया॥
अणन्तकालमुक्कोसं, एगं समयं जहन्नयं।
अजीवाण य रूवीणं, अंतरेयं वियाहियं॥

–उत्त. अ. ३६, गा. ११-१४

६. द्रव्यादि की अपेक्षा रूपी अजीव (पुद्गल) द्रव्य का प्ररूपण–

परमाणु के एक रूप होने से स्कन्ध और उनके पृथक्-पृथक् होने से परमाणु बनते हैं (यह द्रव्य की अपेक्षा से) क्षेत्र की अपेक्षा से वे (स्कन्ध) लोक के एक देश में तथा सम्पूर्ण लोक में भाज्य हैं अर्थात् असंख्य विकल्प वाले हैं।

सन्तति (काल) प्रवाह की अपेक्षा से वे (स्कन्ध आदि) अनादि और अनन्त हैं तथा स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं।

रूपी अजीवों (पुद्गलों) की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट असंख्यात काल की कही गई है।

रूपी अजीवों का अन्तर (स्व स्थान से च्युत होकर पुनः उसी स्थान पर आने का काल) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है।

७. पोग्गल परिणामाणं बावीसं भेया–

बावीसविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कालवण्णपरिणामे,	२. नीलवण्णपरिणामे,
३. लोहियवण्णपरिणामे,	४. हालिद्दवण्णपरिणामे,
५. सुक्किल्लवण्णपरिणामे,	६. सुब्भिगंधपरिणामे,
७. दुब्भिगंधपरिणामे,	८. तित्तरसपरिणामे,
९. कडुयरसपरिणामे,	१०. कसायरसपरिणामे,
११. अंबिलरसपरिणामे,	१२. महुररसपरिणामे,
१३. कक्खडफासपरिणामे,	१४. मउयफासपरिणामे,
१५. गुरुफासपरिणामे,	१६. लहुफासपरिणामे,
१७. सीयफासपरिणामे,	१८. उसिणफासपरिणामे,
१९. णिद्धफासपरिणामे,	२०. लुक्खफासपरिणामे,
२१. अगुरुलहुफासपरिणामे,	२२. गुरुलहुफासपरिणामे,

–सम. २२, सु. ६

७. पुद्गल परिणामों के बावीस भेद–

पुद्गल-परिणाम बावीस प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कृष्ण वर्ण-परिणाम,	२. नीलवर्ण-परिणाम,
३. रक्तवर्ण-परिणाम,	४. पीतवर्ण-परिणाम,
५. शुक्लवर्ण-परिणाम,	६. सुगन्ध-परिणाम,
७. दुर्गन्ध परिणाम,	८. तिक्तरस-परिणाम,
९. कटुकरस-परिणाम,	१०. कषायरस-परिणाम,
११. अम्लरस-परिणाम,	१२. मधुररस-परिणाम,
१३. कर्कशस्पर्श-परिणाम,	१४. मृदुस्पर्श-परिणाम,
१५. गुरुस्पर्श-परिणाम,	१६. लघुस्पर्श-परिणाम,
१७. शीतस्पर्श-परिणाम,	१८. उष्णस्पर्श-परिणाम,
१९. स्निग्धस्पर्श-परिणाम,	२०. रूक्षस्पर्श-परिणाम,
२१. अगुरुलघुस्पर्श-परिणाम,	२२. गुरुलघुस्पर्श-परिणाम,

८. तिकालवत्तीपरमाणुपोग्गलाणं खंधाण य वण्णाइ परिणाम परूवणं–

प. एस णं भंते ! पोग्गले,

८. त्रिकालवर्ती परमाणु पुद्गलों और स्कन्धों के वर्णादि परिणाम का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या यह पुद्गल (परमाणु)

---

१. पंच वण्णा पण्णत्ता, तं जहा–
१. किण्हा, २. नीला, ३. लोहिया, ४. हालिद्दा, ५. सुक्किल्ला।

२. पंच रसा पण्णत्ता, तं जहा–
१. तित्ता, २. कडुया, ३. कसाया, ४. अंबिला, ५. महुरा।
–ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९०

३. अट्ठ फासा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कक्खडे, २. मउए, ३. गरुए, ४. लहुए, ५. सीए, ६. उसिणे, ७. णिद्धे, ८. लुक्खे।
–ठाणं. ८, सु. ५९६

अतीतमणंतं सासयं समयं लुक्खी,
समयं अलुक्खी,
समयं लुक्खी वा, अलुक्खी वा ?
पुव्विं च णं करणेणं अणेगवण्णं अणेगरूवं परिणामं परिणमइ ?
अह से परिणामे निज्जिणे भवइ, तओ पच्छा एग वण्णे, एगरूवे सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! एस णं पोग्गले जाव एगवण्णे एगरूवे सिया,

प. एस णं भंते ! पोग्गले पडुप्पन्नं सासयं समयं लुक्खी जाव एग वण्णे एगरूवे सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! एस णं पोग्गले जाव एगवण्णे एगरूवे सिया,
एवं अणागयमणंतं पि,

प. एस णं भंते ! खंधेऽतीतमणंतं सासयं समयं लुक्खी जाव एगवण्णे एगरूवे सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! **एवं चेव खंधे वि जहा पोग्गले,**

एवं पडुप्पन्नं, अणागयमणंतं पि जहा पोग्गले।

–विया. स. १४, उ. ४, सु. १–४

अनन्त शाश्वत अतीतकाल में एक समय रूक्ष स्पर्श वाला था,
एक समय अरूक्ष (स्निग्ध) स्पर्शवाला था,
एक समय रूक्ष-अरूक्ष स्पर्श वाला हुआ था ?
क्या पहले प्रयोगकरण या विश्रसाकरण से अनेक वर्ण और अनेक रूप परिणाम परिणत हुए ?
तथा अनेक वर्णादि परिणामों के क्षीण होने पर यह पुद्गल एक वर्ण वाला और एक रूप वाला हुआ था ?

उ. हाँ, गौतम ! यह पुद्गल (अनन्त शाश्वत अतीतकाल में) यावत् एक वर्ण और एक रूप वाला हुआ था।

प्र. भंते ! यह पुद्गल शाश्वत वर्तमान काल में एक समय रूक्ष स्पर्शवाला यावत् एक वर्ण और एक रूप वाला होता है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह पुद्गल यावत् एक वर्ण और एक रूप वाला होता है।
इसी प्रकार अनन्त अनागत (भविष्य) के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! यह स्कन्ध अनन्त शाश्वत अतीत काल में एक समय रूक्ष-स्पर्श वाला यावत् एक वर्ण और एक रूप वाला हुआ था ?

उ. हाँ गौतम ! **पूर्वोक्त पुद्गल के समान अतीत कालवर्ती स्कन्ध के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।**
इसी प्रकार वर्तमान और अनागत कालवर्ती स्कन्ध के सम्बन्ध में भी पुद्गल के समान कहना चाहिए।

९. परमाणु पोग्गलेसु खंधेसु य वण्णाइ परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! कइवन्ने जाव कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एगवन्ने, एगगन्धे, एगरसे, दुफासे पण्णत्ते।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे कइवन्ने जाव कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सिय एगवन्ने, सिय दुवन्ने,
सिय एगगंधे सिय दुगंधे,
सिय एगरसे सिय दुरसे,
सिय दुफासे सिय तिफासे सिय चउफासे पण्णत्ते।

एवं तिपएसिए वि,
णवरं–सिय एगवन्ने, सिय दुवन्ने, सिय तिवन्ने।

एवं रसेसु वि,

सेसं जहा–दुपएसियस्स।
एवं चउप्पएसिए वि,
णवरं–सिय एगवन्ने **जाव** सिय चउवन्ने,

एवं रसेसु वि,

९. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों के वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! कदाचित् एक वर्ण वाला, कदाचित् दो वर्ण वाला,
कदाचित् एक गंध वाला, कदाचित् दो गंध वाला,
कदाचित् एक रसवाला, कदाचित् दो रसवाला,
कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला और कदाचित् चार स्पर्शवाला कहा गया है।

इसी प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में कहना चाहिए।
विशेष–कदाचित् एक वर्ण वाला, कदाचित् दो वर्ण वाला और कदाचित् तीन वर्णवाला होता है।

इसी प्रकार (त्रिप्रदेशी स्कन्धों के) रसों के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

शेष वर्णन द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान है।
इसी प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।
विशेष–कदाचित् एक वर्ण वाला यावत् कदाचित् चार वर्ण वाला होता है।

इसी प्रकार (चतुष्प्रदेशी स्कन्धों के) रसों के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

सेसं तं चेव।
एवं पंचपएसिए वि,
णवरं–सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने,

एवं रसेसु वि गंधफासा तहेव।

जहा पंचपएसिओ, एवं जाव असंखेज्जपएसिओ।

प. सुहुमपरिणए णं भंते ! अणंतपएसिए खंधे कइवन्ने जाव कइफासे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! जहा पंचपएसिए तहेव निरवसेसं।

प. बायरपरिणए णं भंते ! अणंतपएसिए खंधे कइवन्ने जाव कइफासे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! सिय एगवन्ने जाव सिय पंचवन्ने,

सिय एगगंधे, सिय दुगंधे,
सिय एगरसे जाव सिय पंचरसे,
सिय चउफासे जाव सिय अट्ठफासे पण्णत्ते।

–विया. स. १८, उ. ६, सु ६-१३

शेष वर्णन पूर्ववत् है।
इसी प्रकार पाँच प्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।
विशेष–कदाचित् एक वर्ण वाला यावत् कदाचित् पाँच वर्ण वाला होता है।
इसी प्रकार (पाँच प्रदेशी स्कन्धों के) रसों के सम्बन्ध में तथा गंध और स्पर्श के सम्बन्ध में पहले के समान कहना चाहिए।
जिस प्रकार पंचप्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सूक्ष्मपरिणाम वाला अनन्त प्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाला कहा गया है?
उ. गौतम ! जैसा पंच प्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार सम्पूर्ण वर्णन कहना चाहिए।

प्र. भंते ! बादर-स्थूल परिणाम वाला अनन्त प्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण वाला यावत् कितने स्पर्श वाला कहा गया है?
उ. गौतम ! कदाचित् एक वर्ण वाला यावत् कदाचित् पाँच वर्ण वाला,
कदाचित् एक गंध वाला और कदाचित् दो गंध वाला,
कदाचित् एक रसवाला यावत् कदाचित् पाँच रस वाला,
कदाचित् चार स्पर्श वाला यावत् कदाचित् आठ स्पर्श वाला कहा गया है।

१०. परमाणु पोग्गले खंधेसु य वित्थरओ वण्णाइ भंग परूवणं–

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! कइवन्ने, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! एगवन्ने, एगगंधे, एगरसे, दुफासे पण्णत्ते।[1]
जइ एगवन्ने–
१. सिय कालए, २. सिय नीलए,
३. सिय लोहिए, ४. सिय हालिद्दए,
५. सिय सुक्किल्लए।
जइ एगगन्धे–
१. सिय सुब्भिगंधे,
२. सिय दुब्भिगंधे।
जइ एगरसे–
१. सिय तित्ते, २. सिय कडुए,
३. सिय कसाए, ४. सिय अंबिले,
५. सिय महुरे।
जइ दुफासे–
१. सिय सीए य निद्धे य,
२. सिय सीए य लुक्खे य,
३. सिय उसिणे य निद्धे य,
४. सिय उसिणे य लुक्खे य,

१०. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों में विस्तार से वर्णादि के भंगों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है?
उ. गौतम ! (वह) एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श वाला कहा गया है, यदि एक वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला, २. कदाचित् नीला,
३. कदाचित् लाल, ४. कदाचित् पीला,
५. कदाचित् श्वेत वर्ण वाला होता है।
यदि एक गन्ध वाला हो तो–
१. कदाचित् सुरभिगन्ध,
२. कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है।
यदि एक रस वाला हो तो–
१. कदाचित् तीखा, २. कदाचित् कटुक,
३. कदाचित् कसैला, ४. कदाचित् खट्टा,
५. कदाचित् मीठा (मधुर) रस वाला होता है।
यदि दो स्पर्श वाला हो तो–
१. कदाचित् शीत और स्निग्ध,
२. कदाचित् शीत और रूक्ष,
३. कदाचित् उष्ण और स्निग्ध,
४. कदाचित् उष्ण और रूक्ष स्पर्श वाला होता है।
(इस प्रकार परमाणु पुद्गल में वर्ण के पाँच, गन्ध के दो, रस के पाँच और स्पर्श के चार यों कुल मिला कर सोलह भंग पाए जाते हैं।)

१. विया. स. १८, उ. ६, सु. ६

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे कइवन्ने, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सिय एगवण्णे, सिय दुवण्णे,
सिय एगगंधे, सिय दुगंधे,
सिय एगरसे, सिय दुरसे,
सिय दुफासे, सिय तिफासे,
सिय चउफासे पण्णत्ते,[1]

जइ एगवन्ने–
सिय कालए जाव सिय सुक्किल्लए,

जइ दुवन्ने–
१. सिय कालए य नीलए य,
२. सिय कालए य लोहियए य,
३. सिय कालए य हालिद्दए य,
४. सिय कालए य सुक्किल्लए य,
५. सिय नीलए य लोहियए य,
६. सिय नीलए य हालिद्दए य,
७. सिय नीलए य सुक्किल्लए य,
८. सिय लोहियए य हालिद्दए य,
९. सिय लोहियए य सुक्किल्लए य,
१०. सिय हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

एवं एए दुयासंजोगे दस भंगा।

जइ एगगंधे–
१. सिय सुब्भिगंधे,
२. सिय दुब्भिगंधे।

जइ दुगंधे–
सुब्भिगंधे य, दुब्भिगंधे य।

रसेसु जहा वन्नेसु।(१५)

जइ दुफासे–
१-४ सिय सीए य निद्धे य,
एवं जहेव परमाणुपोग्गले।

जइ तिफासे–
१. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,
२. सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,
३. सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे,
४. सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे,

जइ चउफासे–
१. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! कदाचित् एक वर्णवाला, कदाचित् दो वर्ण वाला,
कदाचित् एक गंध वाला, कदाचित् दो गंध वाला,
कदाचित् एक रस वाला, कदाचित् दो रस वाला,
कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला,
कदाचित् चार स्पर्श वाला कहा गया है।

यदि एक वर्ण वाला हो तो–
कदाचित् काला यावत् कदाचित् श्वेत वर्ण वाला होता है।

यदि दो वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला और नीला,
२. कदाचित् काला और लाल,
३. कदाचित् काला और पीला,
४. कदाचित् काला और श्वेत,
५. कदाचित् नीला और लाल,
६. कदाचित् नीला और पीला,
७. कदाचित् नीला और श्वेत,
८. कदाचित् लाल और पीला,
९. कदाचित् लाल और श्वेत,
१०. कदाचित् पीला और श्वेत,

इस प्रकार ये द्विकसंयोगी दस भंग होते हैं।

यदि एक गन्ध वाला हो तो–
१. कदाचित् सुरभिगन्ध,
२. कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है।

यदि दो गन्ध वाला हो तो–
सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध वाला होता है।

रसों के भंग वर्णों के समान कहने चाहिए। (१५ भंग)

यदि दो स्पर्श वाला हो तो–
१-४. कदाचित् शीत और स्निग्ध इत्यादि परमाणु पुद्गल के समान चार भंग कहने चाहिए।

यदि वह तीन स्पर्श वाला हो तो–
१. सर्वशीत होता है, उसका एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।
२. सर्व उष्ण होता है, उसका एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।
३. सर्व स्निग्ध होता है, उसका एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है।
४. सर्वरुक्ष होता है, उसका एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है।

यदि यह चार स्पर्श वाला हो तो–
१. उसका एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

1. स.१८, उ.६, सु.७

एए नव भंगा फासेसु।

इस प्रकार स्पर्श के नौ भंग होते हैं।

(इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध में वर्ण के १५, गंध के ३, रस के १५ और स्पर्श के ९ यों सब मिलाकर ४२ भंग हुए)

प. तिपएसिए णं भंते ! खंधे कइवन्ने, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते ?

प्र. भंते ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गोयमा ! १. सिय एगवण्णे, सिय दुवण्णे, सिय तिवण्णे,

उ. गौतम ! १. कदाचित् एक वर्ण वाला, कदाचित् दो वर्ण वाला और कदाचित् तीन वर्णवाला होता है।

२. सिय एगगंधे, सिय दुगंधे,

२. कदाचित् एक गंध वाला और कदाचित् दो गंध वाला होता है।

३. सिय एगरसे, सिय दुरसे, सिय तिरसे,

३. कदाचित् एक रस वाला, कदाचित् दो रस वाला और कदाचित् तीन रस वाला होता है।

४. सिय दुफासे, सिय तिफासे, सिय चउफासे पण्णत्ते,[1]

४. कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला और कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है।

जइ एगवन्ने–

१. सिय कालए जाव ५. सुक्किल्लए।

यदि एक वर्ण वाला हो तो–

१-५. कदाचित् काला होता है यावत् कदाचित् श्वेत होता है।

जइ दुवन्ने–

१. सिय कालए य, नीलए य,
२. सिय कालए य, नीलगा य,
३. सिय कालगा य, नीलए य,
१. सिय कालए य, लोहियए य,
२. सिय कालए य, लोहियगा य,
३. सिय कालगा य, लोहियए य।

यदि दो वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला और नीला होता है,
२. कदाचित् एक अंश काला और दो अंश नीले होते हैं,
३. कदाचित् दो अंश काले और एक अंश नीला होता है,
१. कदाचित् काला और लाल होता है,
२. कदाचित् एक अंश काला और दो अंश लाल होते हैं,
३. कदाचित् दो अंश काले और एक अंश लाल होता है।

१-३. एवं हालिद्दएण वि समं भंगा ३

१-३. इसी प्रकार काले वर्ण के, पीले वर्ण के साथ तीन भंग (पूर्ववत्) जानने चाहिए।

१-३. एवं सुक्किल्लएण वि समं भंगा ३

१-३. इसी प्रकार काले वर्ण के साथ श्वेत वर्ण के भी तीन भंग जानने चाहिए।

१-३. सिय नीलए य लोहियए य, एत्थ वि भंगा ३

१-३. कदाचित् नीला और लाल वर्ण के साथ पूर्ववत् तीन भंग कहने चाहिए।

१-३. एवं हालिद्दएण वि समं भंगा ३

१-३. इसी प्रकार नीले वर्ण के, पीले वर्ण के साथ तीन भंग कहने चाहिए।

१-३. एवं सुक्किल्लएण वि समं भंगा ३

१-३. इसी प्रकार नीले वर्ण के, श्वेत वर्ण के साथ तीन भंग जानने चाहिए।

१-३. सिय लोहियए य, हालिद्दएण य भंगा ३

१-३. कदाचित् लाल और पीले वर्ण के साथ भी तीन भंग कहने चाहिए।

१-३. एवं सुक्किल्लएण वि समं भंगा ३

१-३. इसी प्रकार लाल वर्ण के, श्वेत वर्ण के साथ तीन भंग जानने चाहिए।

१-३. सिय हालिद्दए य, सुक्किल्लए य भंगा ३,
एवं सव्वेए दस दुयासंजोगा भंगा तीसं भवंति।

१-३. कदाचित् पीला और श्वेत ये तीन भंग जानने चाहिए।
यह सब दस द्विकसंयोगी मिल कर तीस भंग होते हैं।

जइ तिवन्ने–

१. सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य,
२. सिय कालए य, नीलए य, हालिद्दए य,
३. सिय कालए य, नीलए य, सुक्किल्लए य,
४. सिय कालए य, लोहियए य, हालिद्दए य,

यदि (त्रिप्रदेशी स्कन्ध) तीन वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला और लाल होता है,
२. कदाचित् काला, नीला और पीला होता है,
३. कदाचित् काला, नीला और श्वेत होता है,
४. कदाचित् काला, लाल और पीला होता है,

१. विया. स. १८, उ. ६, सु. ८

५. सिय कालए य, लोहियए य, सुक्किल्लए य,
६. सिय कालए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,
७. सिय नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य,
८. सिय नीलए य, लोहियए य, सुक्किल्लए य,
९. सिय नीलए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,
१०. सिय लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,
एवं एए दस तियासंजोगे भंगा।

५. कदाचित् काला, लाल और श्वेत होता है,
६. कदाचित् काला, पीला और श्वेत होता है,
७. कदाचित् नीला, लाल और पीला होता है,
८. कदाचित् नीला, लाल और श्वेत होता है,
९. कदाचित् नीला, पीला और श्वेत होता है,
१०. कदाचित् लाल, पीला और श्वेत होता है,
इस प्रकार ये दस त्रिकसंयोगी भंग होते हैं।

जइ एगगंधे–
सिय सुब्भिगंधे, सिय दुब्भिगंधे।

यदि एक गन्ध वाला हो तो–
१. कदाचित् सुरभिगन्ध वाला होता है और कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है।

जइ दुगंधे–
सिय सुब्भिगंधे य, दुब्भिगंधे य, भंगा ३

२. यदि दो गन्ध वाला हो तो–
सुरभिगंध और दुरभिगन्ध वाला होता है।
इस प्रकार ये तीन भंग होते हैं।

रसा जहा–वन्ना।

जिस प्रकार वर्ण के (४५ भंग) होते हैं, उसी प्रकार रस के भी (४५ भंग) कहने चाहिए।

जइ दुफासे–
सिय सीए य, निद्धे य।
एवं जहेव–दुपएसियस्स तहेव चत्तारि भंगा।

(त्रिप्रदेशी स्कन्ध) यदि दो स्पर्श वाला हो तो–
कदाचित् शीत और स्निग्ध होता है।
जिस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध के चार भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी (४ भंग) कहने चाहिए।

जइ तिफासे–
१. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,
२. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,
३. सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

यदि वह तीन स्पर्श वाला हो तो–
१. सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है,
२. सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं,
३. सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है,

४-६. सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एत्थवि भंगा तिन्नि,

४-६. सर्वउष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, यहाँ भी पूर्ववत् तीन भंग कहने चाहिए।

७-९. सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे, भंगा तिन्नि,

७-९. सर्व स्निग्ध, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है, यहाँ भी पूर्ववत् तीन भंग कहने चाहिए।

१०-१२. सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे, भंगा तिन्नि एवं १२,

१०-१२. सर्वरुक्ष, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है यहाँ भी पूर्ववत् तीन भंग कहने चाहिए। ये कुल बारह भंग होते हैं।

जइ चउफासे–
१. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,
२. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,
३. देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,
४. देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,
५. देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,
६. देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

यदि (त्रिप्रदेशी स्कन्ध) चार स्पर्श वाला हो तो–
१. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।
२. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।
३. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होते हैं।
४. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।
५. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।
६. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

७. देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

७. अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

८. देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

८. अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

९. देसा सीया, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

९. अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

एवं एए तिपएसिए फासेसु पणवीसं भंगा।

इस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध में स्पर्श के कुल (४ + ४ + ४ + १२ = २५) पच्चीस भंग होते हैं। (इस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध में वर्ण के ४५, गंध के ५, रस के ४५ और स्पर्श के २५ ये सब मिलाकर १२० भंग होते हैं।)

प. चउप्पएसिए णं भंते ! खंधे, कइवन्ने, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते?

प्र. भंते ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है?

उ. गोयमा ! सिय एगवण्णे जाव सिय चउवण्णे,

सिय एगगंधे, सिय दुगंधे,

सिय एगरसे जाव सिय चउरसे,

सिय दुफासे, सिय तिफासे, सिय चउफासे पण्णत्ते।[1]

उ. गौतम ! कदाचित् एक वर्ण वाला यावत् कदाचित् चार वर्ण वाला होता है,

कदाचित् एक गंध वाला होता है और कदाचित् दो गंध वाला होता है,

कदाचित् एक रस वाला यावत् कदाचित् चार रस वाला होता है,

कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला और कदाचित् चार स्पर्श वाला कहा गया है।

जइ एगवन्ने–
सिय कालए य जाव सुक्किल्लए य,

यदि एक वर्ण वाला हो तो–
कदाचित् काला यावत् श्वेत होता है।

जइ दुवन्ने–
१. सिय कालए य नीलए य,
२. सिय कालए य नीलगा य,
३. सिय कालगा य नीलए य,
४. सिय कालगा य नीलगा य,
एवं
५-८. सिय कालए य लोहियए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
९-१२. सिय कालए य हालिद्दए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
१३-१६. सिय कालए य सुक्किल्लए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
१७-२०. सिय नीलए य लोहियए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
२१-२४. सिय नीलए य हालिद्दए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
२५-२८. सिय नीलए य सुक्किल्लए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
२९-३२. सिय लोहियए य हालिद्दए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
३३-३६. सिय लोहियए य सुक्किल्लए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,

यदि दो वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला और नीला होता है,
२. कदाचित् एक अंश काला और अनेक अंश नीले होते हैं,
३. कदाचित् अनेक अंश काले और एक अंश नीला होता है,
४. कदाचित् अनेक अंश काले और अनेक अंश नीले होते हैं,
इसी प्रकार–
५-८. कदाचित् काला और लाल होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
९-१२. कदाचित् काला और पीला होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
१३-१६. कदाचित् काला और श्वेत होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
१७-२०. कदाचित् नीला और लाल होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
२१-२४. कदाचित् नीला और पीला होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
२५-२८. कदाचित् नीला और श्वेत होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
२९-३२. कदाचित् लाल और पीला होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
३३-३६. कदाचित् लाल और श्वेत होता है यहाँ भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।

---

१. [illegible]

३७-४०. सिय हालिद्दए य सुक्किल्लए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,

एवं एए दस दुयासंजोगा भंगा पुण चत्तालीसं,

जइ तिवन्ने–

१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य,

२. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य,

३. सिय कालए य नीलगा य लोहियए य,

४. सिय कालगा य नीलए य लोहियए य,

एए चत्तारि भंगा,

५-८. एवं काल-नील-हालिद्दएहिं भंगा ४,

९-१२. काल-नील-सुक्किल्लएहिं भंगा ४,

१३-१६. काल-लोहिय-हालिद्दएहिं भंगा ४,

१७-२०. काल-लोहिय-सुक्किल्लएहिं भंगा ४,

२१-२४. काल-हालिद्द-सुक्किल्लएहिं भंगा ४,

२५-२८. नील-लोहिए-हालिद्दगाणं भंगा ४,

२९-३२. नील-लोहिय-सुक्किल्लगाणं भंगा ४,

३३-३६. नील-हालिद्द-सुक्किल्लगाणं भंगा ४,

३७-४०. लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्लगाणं भंगा ४,

एवं एए दसतियगसंजोगा,

एक्केक्के संजोए चत्तारि भंगा, सव्वे ते चत्तालीसं भंगा ४०,

जइ चउवन्ने–

१. सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य,

२. सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, सुक्किल्लए य,

३. सिय कालए य, नीलए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,

४. सिय कालए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,

५. सिय नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,

एवमेए चउक्कसंजोए पंच भंगा,

एए सव्वे नउइभंगा।

जइ एगगंधे–

१. सिय सुब्भिगंधे, २. सिय दुब्भिगंधे,

जइ दुगंधे–

१. सिय सुब्भिगंधे य,

२. सिय दुब्भिगंधे य।[1]

रसा जहा-वन्ना,

३७-४०. कदाचित् पीला और श्वेत होता है यहां भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।

इस प्रकार दस द्विकसंयोगी के चालीस भंग होते हैं।

यदि तीन वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला और लाल होता है।

२. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला और अनेक अंश लाल होते हैं,

३. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले और एक अंश लाल होता है।

४. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला और एक अंश लाल होता है।

इस प्रकार प्रथम त्रिकसंयोगी के चार भंग होते हैं।

५-८. इसी प्रकार काले, नीले और पीले वर्ण के चार भंग,

९-१२. काले, नीले और श्वेत वर्ण के चार भंग,

१३-१६. काले, लाल और पीले वर्ण के चार भंगं,

१७-२०. काले, लाल और श्वेत वर्ण के चार भंग,

२१-२४. काले, पीले और श्वेत वर्ण के चार भंग,

२५-२८. नीले, लाल और पीले वर्ण के चार भंग,

२९-३२. नीले, लाल और श्वेत वर्ण के चार भंग,

३३-३६. नीले, पीले और श्वेत वर्ण के चार भंग,

३७-४०. लाल, पीले और श्वेत वर्ण के चार भंग होते हैं।

इस प्रकार ये त्रिकसंयोगी के दस भंग होते हैं।

जो प्रत्येक के साथ संयोग करने पर चार भँग वाले होते हैं ये सब मिलकर ४० भंग हुए।

यदि चार वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला, लाल और पीला होता है,

२. कदाचित् काला, नीला, लाल और श्वेत होता है,

३. कदाचित् काला, नीला, पीला और श्वेत होता है,

४. कदाचित् काला, लाल, पीला और श्वेत होता है,

५. कदाचित् नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है।

इस प्रकार चतुःसंयोगी के कुल पाँच भंग होते हैं।

(इस प्रकार चतुःप्रदेशी स्कन्ध के एक वर्ण के असंयोगी ५, दो वर्ण के द्विकसंयोगी ४०, तीन वर्ण के त्रिकसंयोगी ४० और चार वर्ण के चतुःसंयोगी ५ भंग हुए।) कुल मिलाकर वर्ण सम्बन्धी नब्बे (९०) भंग हुए।

यदि एक गन्ध वाला हो तो–

१. कदाचित् सुरभिगन्ध वाला होता है और कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है।

यदि दो गन्ध वाला हो तो

१. कदाचित् सुरभिगन्ध और

२. कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है,

जिस प्रकार वर्ण सम्बन्धी ९० भंग कहे हैं उसी प्रकार रस सम्बन्धी ९० भंग कहने चाहिए।

के दो और दो गंध के चार इस प्रकार कुल छः भंग होते हैं।

जइ दुफासे–

जहेव परमाणु पोग्गले ४,

जइ तिफासे–

१. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

२. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

३. सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

४. सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसा लुक्खा,

५-८. सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एवं भंगा ४

९-१२. सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे, एवं भंगा ४,

१३-१६. सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे, एवं भंगा ४,

एए तिफासे सोलस भंगा।

जइ चउफासे–

१. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

२. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

३. देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

४. देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसा लुक्खा,

५. देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

६. देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

७. देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

८. देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा,

९. देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे।

एवं एए चउफासे सोलस भंगा भाणियव्वा जाव देसा सीया, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा।

[illegible]

यदि दो स्पर्श वाला हो तो–

उसके परमाणु पुद्गल के समान चार भंग कहने चाहिए।

यदि तीन स्पर्श वाला हो तो–

१. सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है,

२. सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं,

३. सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है,

४. सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं,

५-८. इसी प्रकार सर्व उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है ये चार भंग होते हैं।

९-१२. सर्व स्निग्ध, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है ये चार भंग होते हैं,

१३-१६. सर्वरूक्ष, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है ये चार भंग होते हैं।

इस प्रकार तीन स्पर्श के त्रिकसंयोगी १६ भंग होते हैं।

यदि चार स्पर्श वाला हो तो–

१. उसका एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है।

२. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं।

३. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं।

४. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं।

५. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है।

६. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं।

७. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है।

८. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं।

९. अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रूक्ष होता है।

इस प्रकार चार स्पर्श के सोलह भंग अनेक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रूक्ष होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इस प्रकार के स्पर्श के ३६ भंग होते हैं। [illegible]

१. [illegible]

२. [illegible]

१. [illegible]

२. [illegible]

३७-४०. सिय हालिद्दए य सुक्किल्लए य, एत्थ वि चत्तारि भंगा,
एवं एए दस दुयासंजोगा भंगा पुण चत्तालीसं,
जइ तिवन्ने–
१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य,
२. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य,
३. सिय कालए य नीलगा य लोहियए य,
४. सिय कालगा य नीलए य लोहियए य,
एए चत्तारि भंगा,
५-८. एवं काल-नील-हालिद्दएहिं भंगा ४,
९-१२. काल-नील-सुक्किल्लएहिं भंगा ४,
१३-१६. काल-लोहिय-हालिद्दएहिं भंगा ४,
१७-२०. काल-लोहिय-सुक्किल्लएहिं भंगा ४,
२१-२४. काल-हालिद्द-सुक्किल्लएहिं भंगा ४,
२५-२८. नील-लोहिए-हालिद्दगाणं भंगा ४,
२९-३२. नील-लोहिय-सुक्किल्लगाणं भंगा ४,
३३-३६. नील-हालिद्द-सुक्किल्लगाणं भंगा ४,
३७-४०. लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्लगाणं भंगा ४,
एवं एए दसतियगसंजोगा,
एक्केक्के संजोए चत्तारि भंगा, सव्वे ते चत्तालीसं भंगा ४०,
जइ चउवन्ने–
१. सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य,
२. सिय कालए य, नीलए य, लोहियए य, सुक्किल्लए य,
३. सिय कालए य, नीलए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,
४. सिय कालए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,
५. सिय नीलए य, लोहियए य, हालिद्दए य, सुक्किल्लए य,
एवमेए चउक्कसंजोए पंच भंगा,
एए सव्वे नउइभंगा।

जइ एगगंधे–
१. सिय सुब्भिगंधे, २. सिय दुब्भिगंधे,

जइ दुगंधे–
१. सिय सुब्भिगंधे य,
२. सिय दुब्भिगंधे य।[1]
रसा जहा-वन्ना,

३७-४०. कदाचित् पीला और श्वेत होता है यहां भी पूर्ववत् चार भंग कहने चाहिए।
इस प्रकार दस द्विकसंयोगी के चालीस भंग होते हैं।
यदि तीन वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला, नीला और लाल होता है।
२. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला और अनेक अंश लाल होते हैं,
३. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले और एक अंश लाल होता है।
४. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला और एक अंश लाल होता है।
इस प्रकार प्रथम त्रिकसंयोगी के चार भंग होते हैं।
५-८. इसी प्रकार काले, नीले और पीले वर्ण के चार भंग,
९-१२. काले, नीले और श्वेत वर्ण के चार भंग,
१३-१६. काले, लाल और पीले वर्ण के चार भंगं,
१७-२०. काले, लाल और श्वेत वर्ण के चार भंग,
२१-२४. काले, पीले और श्वेत वर्ण के चार भंग,
२५-२८. नीले, लाल और पीले वर्ण के चार भंग,
२९-३२. नीले, लाल और श्वेत वर्ण के चार भंग,
३३-३६. नीले, पीले और श्वेत वर्ण के चार भंग,
३७-४०. लाल, पीले और श्वेत वर्ण के चार भंग होते हैं।
इस प्रकार ये त्रिकसंयोगी के दस भंग होते हैं।
जो प्रत्येक के साथ संयोग करने पर चार भंग वाले होते हैं ये सब मिलकर ४० भंग हुए।
यदि चार वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला, नीला, लाल और पीला होता है,
२. कदाचित् काला, नीला, लाल और श्वेत होता है,
३. कदाचित् काला, नीला, पीला और श्वेत होता है,
४. कदाचित् काला, लाल, पीला और श्वेत होता है,
५. कदाचित् नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है।
इस प्रकार चतुःसंयोगी के कुल पाँच भंग होते हैं।
(इस प्रकार चतुःप्रदेशी स्कन्ध के एक वर्ण के असंयोगी ५, दो वर्ण के द्विकसंयोगी ४०, तीन वर्ण के त्रिकसंयोगी ४० और चार वर्ण के चतुःसंयोगी ५ भंग हुए।) कुल मिलाकर वर्ण सम्वन्धी नव्वे (९०) भंग हुए।
यदि एक गन्ध वाला हो तो–
१. कदाचित् सुरभिगन्ध वाला होता है और कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है।
यदि दो गन्ध वाला हो तो
१. कदाचित् सुरभिगन्ध और
२. कदाचित् दुरभिगन्ध वाला होता है,
जिस प्रकार वर्ण सम्वन्धी ९० भंग कहे हैं उसी प्रकार रस सम्वन्धी ९० भंग कहने चाहिए।

[1] गंध के दो और दो गंध के चार इस प्रकार कुल छः भंग होते हैं।

जइ दुफासे–

जहेव परमाणु पोग्गले ४,

जइ तिफासे–

१. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

२. सव्वे सीए, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

३. सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

४. सव्वे सीए, देसा निद्धा, देसा लुक्खा,

५-८. सव्वे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे, एवं भंगा ४

९-१२. सव्वे निद्धे, देसे सीए, देसे उसिणे, एवं भंगा ४,

१३-१६. सव्वे लुक्खे, देसे सीए, देसे उसिणे, एवं भंगा ४,

एए तिफासे सोलस भंगा।

जइ चउफासे–

१. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

२. देसे सीए, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

३. देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

४. देसे सीए, देसे उसिणे, देसा निद्धा, देसा लुक्खा,

५. देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसे लुक्खे,

६. देसे सीए, देसा उसिणा, देसे निद्धे, देसा लुक्खा,

७. देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसे लुक्खे,

८. देसे सीए, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा,

९. देसा सीया, देसे उसिणे, देसे निद्धे, देसे लुक्खे।

एवं एए चउफासे सोलस भंगा भाणियव्वा जाव **देसा सीया, देसा उसिणा, देसा निद्धा, देसा लुक्खा।**

सव्वे एए फासेसु छत्तीसं भंगा।

प. पंचपएसिए णं भंते ! खंधे कइवन्ने, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! सिय एगवण्णे जाव सिय पंचवण्णे,

यदि दो स्पर्श वाला हो तो–

उसके परमाणु पुद्गल के समान चार भंग कहने चाहिए।

यदि तीन स्पर्श वाला हो तो–

१. सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है,

२. सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं,

३. सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है,

४. सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं,

५-८. इसी प्रकार सर्व उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है ये चार भंग होते हैं।

९-१२. सर्व स्निग्ध, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है ये चार भंग होते हैं,

१३-१६. सर्वरुक्ष, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है ये चार भंग होते हैं।

इस प्रकार तीन स्पर्श के त्रिकसंयोगी १६ भंग होते हैं।

यदि चार स्पर्श वाला हो तो–

१. उसका एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

२. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

३. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

४. एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

५. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

६. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

७. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

८. एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

९. अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

इस प्रकार चार स्पर्श के सोलह भंग अनेक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं पर्यन्त कहना चाहिए।

इस प्रकार ये स्पर्श के ३६ भंग होते हैं। (इस प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध में वर्ण के ९०, गंध के ६, रस के ९० और स्पर्श के ३६ ये सब मिलाकर २२२ भंग होते हैं।)

प्र. भंते ! पंचप्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है?

उ. गौतम ! कदाचित् एक वर्ण वाला यावत् कदाचित् पांच वर्ण वाला,

सिय एगगंधे, सिय दुगंधे,
सिय एगरसे जाव सिय पंचरसे,
सिय दुफासे, सिय तिफासे, सिय चउफासे[1] पण्णत्ते।

कदाचित् एक गंध वाला और कदाचित् दो गंध वाला,
कदाचित् एक रस वाला यावत् कदाचित् पाँच रस वाला,
कदाचित् दो स्पर्श वाला, कदाचित् तीन स्पर्श वाला और कदाचित् चार स्पर्श वाला कहा गया है।

जइ एगवन्ने–
एगवन्नदुवन्ना जहेव चउप्पएसिए।

यदि एक वर्ण वाला हो तो–
एक वर्ण दो वर्ण वाले का कथन चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान करना चाहिए।

जइ तिवन्ने–
१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य,
२. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य,
३. सिय कालए य नीलगा य लोहियए य,
४. सिय कालए य नीलगा य लोहियगा य,
५. सिय कालगा य नीलए य लोहियए य,
६. सिय कालगा य नीलए य लोहियगा य,
७. सिय कालगा य नीलगा य लोहियए य,
८-१४. सिय कालए य नीलए य हालिद्दए य,
एत्थवि सत्त भंगा
एवं–
१५-२१. कालग-नीलग-सुक्किल्लएसु सत्त भंगा,
२२-२८. कालग-लोहिय-हालिद्देसु, सत्त भंगा,
२९-३५. कालग-लोहिय-सुक्किल्लेसु, सत्त भंगा,
३६-४२. कालग-हालिद्द-सुक्किल्लेसु, सत्त भंगा,
४३-४९. नीलग-लोहिय-हालिद्देसु, सत्त भंगा,
५०-५६. नीलग-लोहिय-सुक्किल्लेसु, सत्त भंगा,
५७-६३. नीलग-हालिद्द-सुक्किल्लेसु, सत्त भंगा,
६४-७०. लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्लेसु वि, सत्त भंगा,
एवमेए तियासंजोएणं सत्तरि भंगा।

यदि तीन वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला, नीला और लाल होता है,
२. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला और अनेक अंश लाल होते हैं,
३. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले और एक अंश लाल होता है,
४. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले और अनेक अंश लाल होते हैं,
५. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला और एक अंश लाल होता है,
६. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला और अनेक अंश लाल होते हैं।
७. कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले और एक अंश लाल होता है।
८.-१४. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला और एक अंश पीला होता है। इस प्रकार सात भंग होते हैं।
इसी प्रकार–
१५-२१. काले, नीले और श्वेत के भी सात भंग होते हैं।
२२-२९. काले, लाल और पीले के भी सात भंग होते हैं।
२९-३५. काले, लाल और श्वेत के भी सात भंग होते हैं।
३६-४२. काले, पीले और श्वेत के भी सात भंग होते हैं।
४३-४९. नीले, लाल और पीले के भी सात भंग होते हैं।
५०-५६. नीले, लाल और श्वेत के भी सात भंग होते हैं।
५७-६३. नीले, पीले और श्वेत के भी सात भंग होते हैं।
६४-७०. लाल, पीले और श्वेत के भी सात भंग होते हैं।
इस प्रकार त्रिकसंयोगी के (प्रत्येक के सात-सात भंग होने से) ७० भंग होते हैं।

जइ चउवन्ने–
१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य,
२. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य,
३. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दगे य,
४. सिय कालए य नीलगा य लोहियगे य हालिद्दगे य,
५. सिय कालगा य नीलए य लोहियगे य हालिद्दगे य,

यदि चार वर्ण वाला हो तो–
१. कदाचित् काला, नीला, लाल और पीला होता है।
२. कदाचित् एक अंश काला, नीला और लाल होता है और अनेक-अंश पीले होते हैं।
३. कदाचित् एक अंश काला और नीला होता है, अनेक अंश लाल और एक अंश पीला होता है।
४. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल और एक अंश पीला होता है।
५. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, एक अंश लाल और एक अंश पीला होता है।

1. विया. स. १८, उ. ६, सु. १०

एए पंच भंगा,

६-१०. सिय कालए य नीलए य लोहियए य सुक्किल्लए य एत्थवि पंच भंगा,

११-१५. एवं कालग-नीलग-हालिद्द-सुक्किल्लएसु वि पंच भंगा,

१६-२०. कालग-लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्लएसु वि पंच भंगा,

२१-२५. नीलग-लोहिय-हालिद्द-सुक्किल्लएसु वि पंच भंगा,

एवमेए चउक्कसंजोएणं पणवीसं भंगा।

जइ पंचवन्ने–

कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लए य।

सव्वमेए एक्कग दुयग तियग चउक्क पंचग संजोगेणं ईयालं भंगसयं भवइ।

गंधा जहा–चउप्पएसियस्स।

रसा जहा–वन्ना।

फासा-जहा-चउप्पएसियस्स।

इस प्रकार चतुःसंयोगी के ये पाँच भंग होते हैं।

६-१०. कदाचित् काले, नीले, लाल और श्वेत के भी पाँच भंग होते हैं।

११-१५. इसी प्रकार–काले, नीले, पीले और श्वेत के भी पाँच भंग होते हैं।

१६-२०. काले, लाल, पीले और श्वेत के भी पाँच भंग होते हैं।

२१-२५. नीले, लाल, पीले और श्वेत के भी पाँच भंग होते हैं।

इस प्रकार चतुःसंयोगी के पच्चीस भंग होते हैं।

यदि वह पाँच वर्ण वाला हो तो–

काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है।

इस प्रकार असंयोगी ५. द्विकसंयोगी ४०, त्रिकसंयोगी ७०, चतुःसंयोगी २५ और पंचसंयोगी का एक ये सब मिलकर वर्ण के १४१ भंग होते हैं।

गन्ध के चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान ६ भंग होते हैं।

वर्ण के समान रस के भी १४१ भंग होते हैं।

स्पर्श के ३६ भंग चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान होते हैं।

(इस प्रकार पंचप्रदेशी स्कन्ध में वर्ण के १४१, गंध के ६, रस के १४१ और स्पर्श के ३६ से सब कुल ३२४ भंग होते हैं।)

प. छप्पएसिए णं भंते ! खंधे कइवन्ने, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! जहा पंचपएसिए जाव सिय चउफासे पण्णत्ते।

एगवन्ना दुवन्ना जहा-पंचपएसियस्स।

जइ तिवन्ने

सिय कालए य नीलए य लोहियए य,

एवं जहेव पंचपएसियस्स सत्त भंगा जाव–

सिय कालगा य नीलगा य लोहियए य ७,

सिय कालगा य नीलगा य लोहियगा य ८,

एए अट्ठ भंगा,

एवमेए दस तियासंजोगा, एक्केक्कए संजोगे अट्ठ भंगा,

एवं सव्वे वि तियगसंजोगे असीइ भंगा।

जइ चउवन्ने–

१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य,

२. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य,

३. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दए य,

४. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दगा य,

प्र. भंते ! षट्-प्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पंचप्रदेशी स्कन्ध के लिए कहा उसी प्रकार यावत् कदाचित् चार स्पर्श वाला भी जानना चाहिए।

यदि एक वर्ण और दो वर्ण वाला हो तो (एक वर्ण के ५ और दो वर्ण के ४ भंग) पंच-प्रदेशी स्कन्ध के समान होते हैं।

यदि तीन वर्ण वाला हो तो–

१-७. कदाचित् काला, नीला और लाल होता है।

यावत् कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले और एक अंश लाल होता है, ये पंच-प्रदेशिक स्कन्ध के समान सात भंग कहने चाहिए।

८. कदाचित् अनेक अंश काले, नीले और लाल होते हैं यह आठवाँ भंग है।

इस प्रकार त्रिकसंयोगी के दस भंग होते हैं, प्रत्येक संयोग आठ-आठ भंग वाला होता है।

इस प्रकार सभी त्रिकसंयोगी के कुल अस्सी भंग होते हैं।

यदि चार वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला, लाल और पीला होता है,

२. कदाचित् एक अंश काला, नीला और लाल होता है तथा अनेक अंश पीले होते हैं,

३. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल और एक अंश पीला होता है,

४. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल और अनेक अंश पीले होते हैं,

उ. गोयमा ! जहा पंचपएसिए जाव सिय चउफासे पण्णत्ते।

एवं एगवन्न-दुवण्ण-तिवन्ना जहा–छप्पएसियस्स।

जइ चउवन्ने–

१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य,

२. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य,

३. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दए य,

एवमेव चउक्कगसंजोगेणं पन्नरस भंगा भाणियव्वा जाव सिय कालगा य नीलगा य लोहियगा य हालिद्दए य १५,

एवमेए पंच चउक्कसंजोगा नेयव्वा,
एक्केक्के संजोए पन्नरस भंगा,
सव्वमेए पंचसत्तरि भंगा भवंति।

जइ पंचवन्ने–

१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

२. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

३. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य सुक्किल्लए य,

४. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य सुक्किल्लगा य,

५. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

६. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

७. सिय कालए य नीलए य लोहियगा य हालिद्दगा य सुक्किल्लए य,

८. सिय कालए य नीलगा य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

९. सिय कालए य नीलगा य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

१०. सिय कालए य नीलगा य लोहियए य हालिद्दगा य सुक्किल्लगे य,

११. सिय कालए य नीलगा य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

१२. सिय कालगा य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

१३. सिय कालगा य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

१४. सिय कालगा य नीलए य लोहियए य हालिद्दगा य सुक्किल्लए य,

उ. गौतम ! पंच प्रदेशिक स्कन्ध के समान कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है पर्यन्त कहना चाहिए।

एक वर्ण, दो वर्ण और तीन वर्ण वाले भंगों का कथन षट्प्रदेशी स्कन्ध के समान जानना चाहिए।

यदि चार वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला, लाल और पीला होता है।

२. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, एक अंश लाल और अनेक अंश पीले होते हैं।

३. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल और एक अंश पीला होता है।

इस प्रकार चतुष्क-संयोगी के पन्द्रह भंग कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले, अनेक अंश लाल और एक अंश पीला होता है पर्यन्त कहना चाहिए।

इस प्रकार चतुःसंयोगी पाँच-पाँच जानने चाहिए।
एक-एक संयोग में पन्द्रह-पन्द्रह भंग होते हैं।
सब मिलकर ये पचहत्तर (७५) भंग होते हैं।

यदि पाँच वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है।

२. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, एक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

३. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, एक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

४. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, एक अंश लाल, अनेक अंश पीले और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

५. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

६. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

७. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

८. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

९. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

१०. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

११. कदाचित् एक अंश काला, अनेक अंश नीले, अनेक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

१२. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, एक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

१३. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, एक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

१४. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, एक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

१९. सिय कालगा य नीलगे य लोहियगे य हालिद्दगा य सुक्किल्लगा य,

२०. सिय कालगा य नीलगे य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

२१. सिय कालगा य नीलगे य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

२२. सिय कालगा य नीलगे य लोहियगा य हालिद्दगा य सुक्किल्लगे य,

२३. सिय कालगा य नीलगा य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लगे य,

२४. सिय कालगा य नीलगा य लोहियगे य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

२५. सिय कालगा य नीलगा य लोहियगे य हालिद्दगा य सुक्किल्लए य,

२६. सिय कालगा य नीलगा य लोहियगा य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

एए पंचगसंजोएणं छव्वीसं भंगा भवंति,

एवामेव सपुव्वावरेणं एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पंचगसंजोगेहिं दो एक्कतीसं भंगसया भवंति।

गंधा जहा–सत्तपएसियस्स।

रसा जहा–एयस्स चेव वन्ना।

फासा जहा–चउप्पएसियस्स।

१९. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, एक अंश लाल, अनेक अंश पीले और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

२०. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

२१. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

२२. कदाचित् अनेक अंश काले, एक अंश नीला, अनेक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

२३. कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

२४. कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

२५. कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले, एक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

२६. कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले, अनेक अंश लाल, एक अंश पीला और एक अंश श्वेत होता है।

इस प्रकार पंचसंयोगी के छव्वीस भंग होते हैं।

इसी प्रकार वर्ण के क्रमशः असंयोगी ५, द्विकसंयोगी ४०, त्रिकसंयोगी ८०, चतुःसंयोगी ८० और पंच संयोगी २६ यों कुल मिलाकर २३१ भंग होते हैं।

गन्ध के ६ भंग सप्तप्रदेशी स्कन्ध के समान होते हैं।

रस के २३१ भंग भी इसी के वर्ण के समान कहने चाहिए।

स्पर्श के ३६ भंग चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान कहने चाहिए।

(इस प्रकार अष्ट प्रदेशी स्कन्ध में वर्ण के २३१, गंध के ६, रस के २३१ और स्पर्श के ३६, कुल मिलाकर ५०४ भंग होते हैं।)

प. नवपएसिए णं भंते ! खंधे कइवण्णे, कइगंधे, कइरसे कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सिय एगवन्ने जहा–अट्ठपएसिए जाव सिय चउफासे पण्णत्ते।

एगवन्न दुवन्न तिवन्न चउवन्ना जहेव अट्ठपएसियस्स।

जइ पंचवन्ने–

१. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लए य,

२. सिय कालए य नीलए य लोहियए य हालिद्दए य सुक्किल्लगा य,

एवं परिवाडीए एक्कतीसं भंगा भाणियव्वा जाव–

३१. सिय कालगा य नीलगा य लोहियगा य हालिद्दगा य सुक्किल्लए य,

एए एक्कतीसं भंगा।

एवं एक्कग-दुयग-तियग-चउक्कग-पंचग-संजोगेहिं दो छत्तीसा भंगसया भवंति।

प्र. भंते ! नव-प्रदेशी स्कन्ध कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! अष्टप्रदेशी स्कन्ध के समान, कदाचित् एक वर्ण यावत् कदाचित् चार स्पर्श वाला होता है।

एक वर्ण, दो वर्ण, तीन वर्ण और चार वर्ण के भंगों का कथन अष्टप्रदेशी स्कन्ध के समान है।

यदि पाँच वर्ण वाला हो तो–

१. कदाचित् काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत होता है।

२. कदाचित् एक अंश काला, एक अंश नीला, एक अंश लाल, एक अंश पीला और अनेक अंश श्वेत होते हैं।

इस प्रकार इसी क्रम से (एक-अनेक की अपेक्षा)

३१. कदाचित् अनेक अंश काले, अनेक अंश नीले, अनेक अंश लाल, अनेक अंश पीले और एक अंश श्वेत होता है।

पर्यन्त इकतीसवाँ भंग कहना चाहिए।

इस प्रकार वर्ण के क्रमशः असंयोगी ५, द्विक-संयोगी ४०, त्रिकसंयोगी ८०, चतुःसंयोगी ८० और पंच-संयोगी ३१ ये सब मिलाकर वर्ण सम्बन्धी २३६ भंग होते हैं।

२. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे सीए सव्वे लुक्खे,

२. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत और सर्वरुक्ष होता है,

३. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे उसिणे सव्वे निद्धे,

३. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है,

४. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे उसिणे सव्वे लुक्खे,

४. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वरुक्ष होता है।

५. सव्वे कक्खडे सव्वे लहुए सव्वे सीए सव्वे निद्धे,

५. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है।

६. सव्वे कक्खडे सव्वे लहुए सव्वे सीए सव्वे लुक्खे,

६. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वशीत और सर्वरुक्ष होता है।

७. सव्वे कक्खडे सव्वे लहुए सव्वे उसिणे सव्वे निद्धे,

७. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है।

८. सव्वे कक्खडे सव्वे लहुए सव्वे उसिणे सव्वे लुक्खे,

८. कदाचित् सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वरुक्ष होता है।

९. सव्वे मउए सव्वे गरुए सव्वे सीए सव्वे निद्धे,

९. कदाचित् सर्वमृदु (कोमल), सर्वगुरु, सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है।

१०. सव्वे मउए सव्वे गरुए सव्वे सीए सव्वे लुक्खे,

१०. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, सर्वशीत और सर्वरुक्ष होता है।

११. सव्वे मउए सव्वे गरुए सव्वे उसिणे सव्वे निद्धे,

११. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है।

१२. सव्वे मउए सव्वे गरुए सव्वे उसिणे सव्वे लुक्खे,

१२. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वगुरु, सर्वउष्ण और सर्वरुक्ष होता है।

१३. सव्वे मउए सव्वे लहुए सव्वे सीए सव्वे निद्धे,

१३. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वशीत और सर्वस्निग्ध होता है।

१४. सव्वे मउए सव्वे लहुए सव्वे सीए सव्वे लुक्खे,

१४. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वशीत और सर्वरुक्ष होता है।

१५. सव्वे मउए सव्वे लहुए सव्वे उसिणे सव्वे निद्धे,

१५. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वस्निग्ध होता है।

१६. सव्वे मउए सव्वे लहुए सव्वे उसिणे सव्वे लुक्खे,

१६. कदाचित् सर्वमृदु, सर्वलघु, सर्वउष्ण और सर्वरुक्ष होता है।

एए सोलस भंगा।

इस प्रकार ये सोलह भंग होते हैं।

जइ पंचफासे–

यदि पाँच स्पर्श वाला हो तो–

१. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे सीए देसे निद्धे देसे लुक्खे,

१. सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

२. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे सीए देसे निद्धे देसा लुक्खा,

२. सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

३. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे सीए देसा निद्धा देसे लुक्खे,

३. सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

४. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे सीए देसा निद्धा देसा लुक्खा,

४. सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वशीत, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

५-८. सव्वे कक्खडे सव्वे गरुए सव्वे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे ४.

५-८. सर्वकर्कश, सर्वगुरु, सर्वउष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, इनके चार भंग होते हैं।

९-१२. सव्वे कक्खडे सव्वे लहुए सव्वे सीए देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

९-१२. सर्वकर्कश, सर्वलघु, सर्वशीत, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, इनके भी चार भंग होते हैं।

देसे लहुए देसे सीए देसे उसिणे जाव–

सव्वे मउए सव्वे लुक्खे देसा गरुया
देसा लहुया देसा सीया देसा उसिणा १६,

एए चउसट्ठिं भंगा,

एक अंश लघु, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है यावत्–

सर्वमृदु, सर्वरुक्ष, अनेक अंश गुरु,
अनेक अंश लघु, अनेक अंश शीत और अनेक अंश उष्ण होते हैं।

यहाँ भी चौसठ भंग होते हैं।

१९३-२५६. सव्वे गरुए सव्वे सीए देसे कक्खडे
देसे मउए देसे निद्धे देसे लुक्खे,
एवं जाव–
सव्वे लहुए सव्वे उसिणे देसा कक्खडा
देसा निद्धा देसा मउया देसा लुक्खा,

एए चउसट्ठिं भंगा,

१९३-२५६. सर्वगुरु, सर्वशीत, एक अंश कर्कश,
एक अंश मृदु, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है,
इस प्रकार यावत्–
सर्वलघु, सर्वउष्ण, अनेक अंश कर्कश,
अनेक अंश स्निग्ध, अनेक अंश मृदु और अनेक अंश रुक्ष होते हैं,

यहाँ भी चौसठ भंग होते हैं।

२५७-३२०. सव्वे गरुए सव्वे निद्धे देसे कक्खडे
देसे मउए देसे सीए देसे उसिणे जाव–

सव्वे लहुए सव्वे लुक्खे देसा कक्खडा
देसा मउया देसा सीया देसा उसिणा,

एए चउसट्ठिं भंगा,

२५७-३२०. सर्वगुरु, सर्वस्निग्ध, एक अंश कर्कश,
एक अंश मृदु, एक अंश शीत और एक अंश उष्ण होता है यावत्–

सर्वलघु, सर्व रुक्ष, अनेक अंश कर्कश,
अनेक अंश मृदु, अनेक अंश शीत और अनेक अंश उष्ण होते हैं,

यहाँ भी चौसठ भंग होते हैं।

३२१-३८४. सव्वे सीए सव्वे निद्धे देसे कक्खडे
देसे मउए देसे गरुए देसे लहुए जाव सव्वे उसिणे सव्वे लुक्खे देसा कक्खडा देसा मउया देसा गरुया देसा लहुया,

एव चउसट्ठिं भंगा,
सव्वे ते छप्फासे तिन्निचउरासीया भंगसया भवंति ३८४

३२१-३८४. सर्वशीत, सर्वस्निग्ध, एक अंश कर्कश,
एक अंश मृदु, एक अंश गुरु और एक अंश लघु होता है यावत् सर्वउष्ण, सर्वरुक्ष, अनेक अंश कर्कश, अनेक अंश मृदु, अनेक अंश गुरु और अनेक अंश लघु होते हैं।

इस प्रकार यहाँ भी चौसठ भंग होते हैं।
इस प्रकार सब मिलाकर ये षट्-स्पर्श सम्बन्धी तीन सौ चौरासी (६४ × ६ = ३८४) भंग होते हैं।

जइ सत्तफासे–
१. सव्वे कक्खडे देसे गरुए देसे लहुए
देसे सीए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे,

यदि वह सात स्पर्श वाला हो तो–
१. सर्वकर्कश, एक अंश गुरु, एक अंश लघु,
एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

२-४. सव्वे कक्खडे देसे गरुए देसे लहुए
देसे सीए देसे उसिणे देसे निद्धे देसा लुक्खा ४,

२-४. सर्वकर्कश, एक अंश गुरु, एक अंश लघु, एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं, ये भी चार भंग होते हैं।

५-८. सव्वे कक्खडे देसे गरुए देसे लहुए
देसे सीए देसा उसिणा देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

५-८. सर्वकर्कश, एक अंश गुरु, एक अंश लघु,
एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, ये भी चार भंग होते हैं।

९-१२. सव्वे कक्खडे देसे गरुए देसे लहुए
देसा सीया देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

९-१२. सर्वकर्कश, एक अंश गुरु, एक अंश लघु,
अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक एक अंश रुक्ष होता है। ये भी चार भंग होते हैं।

१३-१६. सव्वे कक्खडे देसे गरुए देसे लहुए
देसा सीया देसा उसिणा देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

१३-१६. सर्वकर्कश, एक अंश गुरु, एक अंश लघु,
अनेक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है। ये भी चार भंग होते हैं।

सव्वेए सोलस भंगा भाणियव्वा.

ये सब मिलाकर १६ भंग होते हैं।

एवं लुक्खेण वि समं चउसट्ठिं भंगा कायव्वा जाव–
सव्वे लुक्खे देसा कक्खडा देसा मउया
देसा गरुया देसा लहुया देसा सीया देसा उसिणा,

इस प्रकार रुक्ष के साथ भी ६४ भंग कहने चाहिए यावत्–
सर्वरुक्ष, अनेक अंश कर्कश, अनेक अंश मृदु, अनेक अंश गुरु, अनेक अंश लघु, अनेक अंश शीत और अनेक अंश उष्ण होते हैं।

एवं सत्तफासे पंचबारसुत्तरा भंगसया भवंति।

इस प्रकार ये सब मिलकर सप्तस्पर्शी (वादरपरिणाम अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) के पांच सौ बारह (८ × ६४ = ५१२) भंग होते हैं।

जइ अट्ठफासे–
१-४. देसे कक्खडे देसे मउए देसे गरुए देसे लहुए
देसे सीए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

यदि आठ स्पर्श वाला हो तो–
१-४. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, एक अंश गुरु, एक अंश लघु, एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, यहाँ चार भंग कहने चाहिए।

५-८. देसे कक्खडे देसे मउए देसे गरुए देसे लहुए
देसे सीए देसा उसिणा देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

५-८. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, एक अंश गुरु, एक अंश लघु, एक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, यहाँ भी चार भंग कहने चाहिए।

९-१२. देसे कक्खडे देसे मउए देसे गरुए देसे लहुए
देसा सीया देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

९-१२. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, एक अंश गुरु, एक अंश लघु, अनेक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, यहाँ भी चार भंग कहने चाहिए।

१३-१६. देसे कक्खडे देसे मउए देसे गरुए देसे लहुए
देसा सीया देसा उसिणा देसे निद्धे देसे लुक्खे ४,

१३-१६. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, एक अंश गुरु, एक अंश लघु, अनेक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है, यहाँ भी चार भंग कहने चाहिए।

एए चत्तारि चउक्का सोलस भंगा

इस प्रकार इन चार चतुष्कों के १६ भंग होते हैं।

१७-३२. देसे कक्खडे देसे मउए देसे गरुए देसा लहुया
देसे सीए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे,

१७-३२. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, एक अंश गुरु, अनेक अंश लघु, एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

एवं एए गरुएणं एगत्तएणं लहुएणं पुहत्तएणं सोलस भंगा कायव्वा।

इस प्रकार गुरुपद को एक वचन में और लघु पद को बहुवचन में रखकर पूर्ववत् १६ भंग कहने चाहिए।

३३-४८. देसे कक्खडे देसे मउए देसा गरुया देसे लहुए
देसे सीए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे,

३३-४८. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, अनेक अंश गुरु, एक अंश लघु, एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

एए वि सोलस भंगा कायव्वा।

इसके भी १६ भंग (पूर्ववत्) कहने चाहिए।

४९-६४. देसे कक्खडे देसे मउए देसा गरुया देसा लहुया
देसे सीए देसे उसिणे देसे निद्धे देसे लुक्खे,

४९-६४. एक अंश कर्कश, एक अंश मृदु, अनेक अंश गुरु, अनेक अंश लघु, एक अंश शीत, एक अंश उष्ण, एक अंश स्निग्ध और एक अंश रुक्ष होता है।

एए वि सोलस भंगा कायव्वा।

इसके भी पूर्ववत् १६ भंग कहने चाहिए।

सव्वे वि ते चउसट्ठिं भंगा कक्खडमउएहिं एगत्तएहिं

कर्कश और मृदु को एक वचन में रखने से ये सब मिलाकर (१६ × ४ = ६४) भंग होते हैं।

६५-१२८. ताहे कक्खडेणं एगत्तएणं मउएणं पुहत्तएणं एए चेव चउसट्ठिं भंगा कायव्वा.

६५-१२८. तत्पश्चात् कर्कश को एक वचन में और मृदु को बहुवचन में रखकर ६४ भंग कहने चाहिए।

१२९-१९२. ताहे कक्खडेणं पुहत्तएणं मउएणं एगत्तएणं चउसट्ठिं भंगा कायव्वा.

१२९-१९२. तत्पश्चात् कर्कश को बहुवचन में और मृदु को एकवचन में रखकर पूर्ववत् ६४ भंग कहने चाहिए।

१९३-२५६. ताहे एएहिं चेव दोहिंवि पुहत्तएहिं चउसट्ठिं भंगा कायव्वा जाव–
देसा कक्खडा देसा मउया देसा गरुया देसा लहुया
देसा सीया देसा उसिणा देसा निद्धा देसा लुक्खा,

१९३-२५६. तत्पश्चात् कर्कश और मृदु दोनों को बहुवचन में रखकर ६४ भंग कहने चाहिए यावत्–
अनेक अंश कर्कश, अनेक अंश मृदु, अनेक अंश गुरु, अनेक अंश लघु, अनेक अंश शीत, अनेक अंश उष्ण, अनेक अंश स्निग्ध और अनेक अंश रुक्ष होते हैं।

कोहविवेगे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पन्नत्ते ?

उ. गोयमा ! अवण्णे, अगंधे, अरसे, अफासे पण्णत्ते।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. ८

१३. उप्पत्तियाई चउबुद्धीसु उग्गहाईसु उट्ठाणाईसु य वण्णाइ अभाव परूवणं–

प. अह भंते ! उप्पत्तिया वेणइया कम्मया पारिणामिया एस णं कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता।

प. अह भंते ! उग्गहे ईहा अवाय धारणा एस णं कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अवण्णा जाव अफासा पन्नता।

प. अह भंते ! उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे एस णं कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. ९-११

१४. ओवासन्तरेसु तणुवायाईएसु पुढवीसु य वण्णाइ परूवणं–

प. सत्तमे णं भंते ! ओवासंतरे कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अवण्णे जाव अफासे पन्नत्ते।

प. सत्तमे णं भंते ! तणुवाए कतिवण्णे जाव कतिफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! जहा पाणाइवाए।

णवरं–अट्ठफासे पन्नत्ते।

एवं जहा सत्तमे तणुवाए तहा सत्तमे घणवाए, घणोदही पुढवी।

छट्ठे ओवासंतरे अवण्णे जाव अफासे पण्णत्ते।

छट्ठे तणुवाए, घणवाए, घणोदही, पुढवी एयाइं अट्ठ फासाइं।

एवं जहा सत्तमाए पुढवीए वत्तव्वया भणिया तहा जाव पढमाए पुढवीए भाणियव्वं।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. १२-१५

१५. रयणप्पभाइ पुढवीसु पोग्गलदव्वाणं वण्णाइ परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहेदव्वाइं वण्णओ काल-नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलाइं, गंधओ सुब्भिगंध-दुब्भिगंधाइं, रसओ तित्त-कडु-कसाय-अंबिल-महुराइं, फासओ कक्खड-मउय-गरुय-लहुय-सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खाइं, अन्नमन्नबद्धाइं अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

क्रोधविवेक यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक ये सब कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! (वे सभी) वर्णरहित, गन्ध रहित, रसरहित और स्पर्श रहित कहे गए हैं।

१३. औत्पातिकी आदि चार बुद्धियों अवग्रहादि और उत्थानादि में वर्णादि के अभाव का प्ररूपण–

प्र. भंते ! औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धि कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाली कही गई हैं ?

उ. गौतम ! ये वर्ण यावत् स्पर्श रहित कही गई हैं।

प्र. भंते ! अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! ये वर्ण यावत् स्पर्श से रहित कहे गए हैं।

प्र. भंते ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम ये कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! ये वर्ण यावत् स्पर्श से रहित कहे गये हैं।

१४. अवकाशांतरों तनुवातादि और पृथ्वियों में वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सप्तम अवकाशान्तर कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह वर्ण यावत् स्पर्श से रहित कहा गया है।

प्र. भंते ! सप्तम तनुवात कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! प्राणातिपात के समान इसके वर्णादि का कथन करना चाहिए।

विशेष–आठ स्पर्श वाला कहना चाहिए।

जिस प्रकार सप्तम तनुवात के विषय में कहा है उसी प्रकार सप्तम घनवात, घनोदधि और सातवीं पृथ्वी के विषय में भी कहना चाहिए।

छठा अवकाशान्तर वर्ण यावत् स्पर्श रहित है।

छठा तनुवात, घनवात, घनोदधि और छठी पृथ्वी ये सब आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं।

जिस प्रकार सातवीं पृथ्वी सम्बन्धी वर्णन किया उसी प्रकार प्रथम पृथ्वी पर्यन्त कथन करना चाहिए।

१५. रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में पुद्गल द्रव्यों के वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे जो द्रव्य हैं वे वर्ण से कृष्ण नील, रक्त, पीत और शुक्ल हैं, गन्ध से सुगन्धित और दुर्गन्धित हैं, रस से तीखा, कडुवा, कसैला, अम्ल और मधुर हैं, स्पर्श से कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष हैं ? अन्योन्यबद्ध हैं, अन्योन्यस्पृष्ट हैं यावत् अन्योन्य (परस्पर) मिले हुए हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प. दं. २१. मणुस्सा णं भंते ! कतिवण्णा जाव कतिफासा पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता,

कम्मगं जीवं च पडुच्च जहा नेरइयाणं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. १९-२५*

१९. धम्मत्थिकायाई छसु दव्वेसु वण्णाइ परूवणं–

धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए अद्धासमए एए सव्वे अवण्णा जाव अफासा पण्णत्ता।

पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे पन्नत्ते। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. २६*

२०. कम्मेसु लेस्सासु य वण्णाइ परूवणं–

नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए एयाणि पंच वण्णा, दुगंधा, पंच रसा चउफासा पण्णत्ता।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! कइवण्णा जाव कइफासा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दव्वलेसं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता।

भावलेसं पडुच्च अवण्णा अरसा अगंधा अफासा पण्णत्ता।

एवं जाव सुक्कलेस्सा। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. २७-२९*

२१. दिट्ठि-दंसण-नाण-अन्नाण सन्नासु वण्णाइ अभाव परूवणं–

सम्मद्दिट्ठि मिच्छद्दिट्ठि सम्मामिच्छद्दिट्ठी,

चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे,

आभिनिबोहियनाणे जाव विभंगनाणे,

आहारसण्णा जाव परिग्गहसण्णा,

एयाणि अवण्णाणि, अरसाणि, अगंधाणि, अफासाणि। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३०*

२२. पंचसु सरीरेसु तिसु य जोगेसु वण्णाइ परूवणं–

ओरालियसरीरे जाव तेयगसरीरे एयाणि पंचवण्णाणि जाव अट्ठफासाणि, कम्मगसरीरे चउफासे।

मणजोगे वइजोगे य चउफासे, कायजोगे अट्ठफासे। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३१*

२३. उवओगेसु वण्णाइ अभाव परूवणं–

सागारोवओगे य अणागारोवओगे य अवण्णा जाव अफासा। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३२*

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् पुद्गलों की अपेक्षा (मनुष्य) पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं।

कार्मण शरीर और जीव की अपेक्षा नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के लिए भी नैरयिकों के समान कथन करना चाहिए।

१९. धर्मास्तिकायादि षड्द्रव्यों में वर्णादि का प्ररूपण–

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और अद्धासमय ये सब वर्ण रहित यावत् स्पर्श रहित हैं।

पुद्गलास्तिकाय में पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श कहे गए हैं।

२०. कर्म और लेश्याओं में वर्णादि का प्ररूपण–

ज्ञानावरणीय से अन्तराय कर्म पर्यन्त आठों कर्म पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और चार स्पर्श वाले कहे गए हैं।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाली कही गई है?

उ. गौतम ! द्रव्यलेश्या की अपेक्षा पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाली कही गई है,

भावलेश्या की अपेक्षा वह वर्ण, रस, गंध और स्पर्श रहित कही गई है।

इसी प्रकार शुक्ललेश्या पर्यन्त जानना चाहिए।

२१. दृष्टि-दर्शन-ज्ञान-अज्ञान और संज्ञाओं में वर्णादि के अभाव का प्ररूपण–

सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि,

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन,

आभिनिबोधिक ज्ञान से (श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और) विभंगज्ञान पर्यन्त एवं

आहारसंज्ञा (भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा) से परिग्रहसंज्ञा पर्यन्त,

ये सब वर्ण रहित, रस रहित, गन्ध रहित और स्पर्श रहित हैं।

२२. पाँच शरीर और तीन योगों में वर्णादि का प्ररूपण–

औदारिक शरीर (वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर) से तैजसशरीर पर्यन्त ये सब पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले हैं किन्तु कार्मण शरीर चार स्पर्श वाला है।

मनोयोग और वचनयोग ये चार स्पर्श वाले हैं किन्तु काययोग आठ स्पर्श वाला है।

२३. उपयोगों में वर्णादि के अभाव का प्ररूपण–

साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों वर्ण यावत् स्पर्श रहित हैं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. अत्थि णं भंते ! सोहम्मस्स कप्पस्स अहेदव्वाइं वण्णओ काल-नील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किलाइं जाव फासओ कक्खड-मउय-गरुय-लहुय-सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खाइं, अन्नमन्नबद्धाइं अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव ईसिपब्भाराए पुढवीए।

–विया. स. १८, उ. १०, सु. ९-१२

१६. जंबुद्दीवाईसु सोहम्मकप्पाईसु नेरइयावासेसु य वण्णाइ परूवणं–

जंबुद्दीवे जाव सयंभुरमणे समुद्दे,

सोहम्मे कप्पे जाव ईसिपब्भारापुढवी,

नेरइयावासा जाव वेमाणियावासा एयाणि सव्वाणि अट्ठफासाणि।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. १८

१७. गब्भं वक्कममाणे जीवस्स वण्णाइ परूवणं–

प. जीवे णं भंते ! गब्भं वक्कममाणे कतिवण्णं कतिगंधं कतिरसं कतिफासं परिणामं परिणमइ?

उ. गोयमा ! पंचवण्णं दुगंधं पंचरसं अट्ठफासं परिणामं परिणमइ।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३६

१८. चउवीसदंडएसु वण्णाइ परूवणं–

प. दं. १. नेरइया णं भंते ! कतिवण्णा जाव कतिफासा पन्नत्ता?

उ. गोयमा ! वेउव्विय-तेयाइं पडुच्च पंचवण्णा दुगंधा पंचरसा अट्ठफासा पन्नत्ता।

कम्मगं पडुच्च पंचवण्णा दुगंधा पंचरसा चउफासा पन्नत्ता।

जीवं पडुच्च अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारा।

प. दं. १२. पुढविकाइया णं भंते ! कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! ओरालिय-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता,

कम्मगं पडुच्च जहा नेरइयाणं जीवं पडुच्च तहेव।

दं. १३-१९. एवं जाव चउरिन्दिया,

णवरं–वाउकाइया ओरालिय-वेउव्विय तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता।

सेसं जहा नेरइयाणं।

दं. २०. पंचेन्दियतिरिक्खजोणिया जहा वाउकाइया।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सौधर्म कल्प के नीचे वर्ण से कृष्ण, नीले, रक्त, पीत और शुक्ल हैं यावत् स्पर्श से कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष हैं, अन्योन्यबद्ध हैं, अन्योन्यस्पृष्ट हैं यावत् अन्योन्य (परस्पर) मिले हुए हैं?

उ. गौतम ! उसी प्रकार पूर्ववत् हैं।

इसी प्रकार ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

१६. जम्बूद्वीपादि-सौधर्मकल्पादि और नैरयिकावास आदि में वर्णादि का प्ररूपण–

जम्बूद्वीप से स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त,

सौधर्म कल्प से ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त,

नैरयिकावास से वैमानिकावास पर्यन्त सब आठ स्पर्श वाले जानने चाहिए।

१७. गर्भ में उत्पन्न होते हुए जीव के वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! गर्भ से उत्पन्न होता हुआ जीव कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श परिणाम से परिणमित होता है?

उ. गौतम ! वह जीव पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाले परिणाम से परिणमित होता है।

१८. चौवीसदण्डकों में वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों में कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श कहे गए हैं?

उ. गौतम ! वैक्रिय और तैजस् पुद्गलों की अपेक्षा उनमें पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श कहे गए हैं।

कार्मण पुद्गलों की अपेक्षा पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और चार स्पर्श कहे गए हैं।

जीव की अपेक्षा वर्णरहित यावत् स्पर्श रहित कहे गए हैं।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त वर्णादि कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीव कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं?

उ. गौतम ! औदारिक और तैजस् पुद्गलों की अपेक्षा पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं।

कार्मण शरीर और जीव की अपेक्षा पूर्ववत् नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

दं. १३-१९. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त वर्णादि का कथन करना चाहिए।

विशेष–वायुकायिक, औदारिक, वैक्रिय और तैजस् पुद्गलों की अपेक्षा पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं।

शेष कथन नैरयिकों के समान हैं।

दं. २०. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों का कथन भी वायुकायिकों के समान जानना चाहिए।

प. दं. २१. मणुस्सा णं भंते ! कतिवण्णा जाव कतिफासा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेयगाइं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पण्णत्ता,

कम्मगं जीवं च पडुच्च जहा नेरइयाणं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. १९-२५*

प्र. दं. २१. भंते ! मनुष्य कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् पुद्गलों की अपेक्षा (मनुष्य) पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाले कहे गए हैं।

कार्मण शरीर और जीव की अपेक्षा नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के लिए भी नैरयिकों के समान कथन करना चाहिए।

१९. धम्मत्थिकायाई छसु दव्वेसु वण्णाइ परूवणं–

धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए अद्धासमए एए सव्वे अवण्णा जाव अफासा पण्णत्ता।

पोग्गलत्थिकाए पंचवण्णे पंचरसे दुगंधे अट्ठफासे पन्नत्ते। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. २६*

१९. धर्मास्तिकायादि षड्द्रव्यों में वर्णादि का प्ररूपण–

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और अद्धासमय ये सब वर्ण रहित यावत् स्पर्श रहित हैं।

पुद्गलास्तिकाय में पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श कहे गए हैं।

२०. कम्मेसु लेस्सासु य वण्णाइ परूवणं–

नाणावरणिज्जे जाव अंतराइए एयाणि पंच वण्णा, दुगंधा, पंच रसा चउफासा पण्णत्ता।

प. कण्हलेस्सा णं भंते ! कइवण्णा जाव कइफासा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दव्वलेसं पडुच्च पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता।

भावलेसं पडुच्च अवण्णा अरसा अगंधा अफासा पण्णत्ता।

एवं जाव सुक्कलेस्सा। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. २७-२९*

२०. कर्म और लेश्याओं में वर्णादि का प्ररूपण–

ज्ञानावरणीय से अन्तराय कर्म पर्यन्त आठों कर्म पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और चार स्पर्श वाले कहे गए हैं।

प्र. भंते ! कृष्णलेश्या कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! द्रव्यलेश्या की अपेक्षा पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाली कही गई है,

भावलेश्या की अपेक्षा वह वर्ण, रस, गंध और स्पर्श रहित कही गई है।

इसी प्रकार शुक्ललेश्या पर्यन्त जानना चाहिए।

२१. दिट्ठि-दंसण-नाण-अन्नाण सन्नासु वण्णाइ अभाव परूवणं–

सम्मद्दिट्ठि मिच्छद्दिट्ठि सम्मामिच्छद्दिट्ठी,

चक्खुदंसणे, अचक्खुदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे,

आभिनिबोहियनाणे जाव विभंगनाणे,

आहारसण्णा जाव परिग्गहसण्णा,

एयाणि अवण्णाणि, अरसाणि, अगंधाणि, अफासाणि। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. [illegible]*

२१. दृष्टि-दर्शन-ज्ञान-अज्ञान और संज्ञाओं में वर्णादि के अभाव का प्ररूपण–

सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि,

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन,

आभिनिबोधिक ज्ञान से (श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और) विभंगज्ञान पर्यन्त [illegible]

आहारसंज्ञा (भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा) से परिग्रहसंज्ञा पर्यन्त,

ये सब वर्ण रहित, रस रहित, गन्ध रहित और स्पर्श रहित हैं।

२२. पंचसु सरीरेसु तिसु य जोगेसु वण्णाइ परूवणं–

ओरालियसरीरे जाव [illegible]

[illegible]

२२. पाँच शरीर और तीन योगों में वर्णादि का प्ररूपण–

औदारिक शरीर [illegible]

[illegible]

२३. उव[illegible]

[illegible]

२३. उप[illegible]

[illegible]

२४. सव्वदव्वेसु पएसेसु पज्जवेसु य वण्णाइ भावाभाव परूवणं–

प. सव्वदव्वा णं भंते ! कतिवण्णा जाव कतिफासा पण्णत्तां ?

उ. गोयमा ! अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव अट्ठफासा पन्नत्ता।

अत्थेगइया सव्वदव्वा पंचवण्णा जाव चउफासा पन्नत्ता।

अत्थेगइया सव्वदव्वा एगवण्णा, एगगंधा, एगरसा, दुफासा पन्नत्ता।

अत्थेगइया सव्वदव्वा अवण्णा अगन्धा अरसा अफासा पन्नत्ता।

एवं सव्वपएसा वि, सव्वपज्जवा वि।

–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३३-३४

२५. तीय-अणागय-सव्वद्धासु वण्णाइ अभाव परूवणं–

तीयद्धा अवण्णा जाव अफासा पन्नत्ता।

एवं अणागयद्धा वि।

एवं सव्वद्धा वि। *–विया. स. १२, उ. ५, सु. ३५*

२६. जम्बुद्दीवाइ-दीव समुद्देसु सवण्णा वण्णाई दव्वाणं अन्नमन्न बद्ध परूवणं–

प. अत्थि णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे दव्वाइं सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अन्नमन्नबद्धाइं, अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. अत्थि णं भंते ! लवणसमुद्दे दव्वाइं सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अन्नमन्नबद्धाइं अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव अन्नमन्न घडत्ताए चिट्ठंति ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. अत्थि णं भंते ! धायइसंडे दीवे दव्वाइं सवण्णाइं पि अवण्णाइं पि, सगंधाइं पि अगंधाइं पि, सरसाइं पि अरसाइं पि, सफासाइं पि अफासाइं पि, अन्नमन्नबद्धाइं, अन्नमन्नपुट्ठाइं जाव अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठन्ति ?

उ. [illegible], [illegible] ! अत्थि।

[illegible] सयंभुरमणसमुद्दे।

–[illegible]

[illegible] [illegible] संठाण भेयाणं वित्थरओ परूवणं–

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

२४. सर्वद्रव्यों, प्रदेशों और पर्यायों में वर्णादि के भावाभाव प्ररूपण–

प्र. भंते ! सभी द्रव्य कितने वर्ण यावत् कितने स्पर्श वाले गए हैं ?

उ. गौतम ! कितने ही सर्वद्रव्य पाँच वर्ण यावत् आठ स्पर्श कहे गए हैं।

कितने ही सर्वद्रव्य पाँच वर्ण यावत् चार स्पर्श वाले गए हैं।

कितने ही सर्वद्रव्य एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो वाले कहे गए हैं।

कितने ही सर्वद्रव्य वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित गए हैं।

इसी प्रकार (सर्वद्रव्य के समान) सभी प्रदेश और स पर्यायों के विषय में भी कथन करना चाहिए।

२५. अतीत-अनागत और सर्वकाल में वर्णादि के अभाव प्ररूपण–

अतीत काल (भूतकाल) वर्ण रहित यावत् स्पर्शरहित कहा गय

इसी प्रकार अनागत (भविष्य) काल और सर्व अद्धाकाल वर्णादि-रहित हैं।

२६. जम्बूद्वीप आदि द्वीप समुद्रों में सवर्ण-अवर्ण द्रव्यों का अन्य बद्धत्वादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या जम्बूद्वीप नामक द्वीप में वर्णसहित और वर्णर गन्ध सहित और गन्धरहित, रसयुक्त और रसरहित, युक्त और स्पर्शरहित द्रव्य अन्योन्यबद्ध अन्योन्यस यावत् अन्योन्यसम्बद्ध हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! क्या लवणसमुद्र में वर्णसहित और वर्णरहित, सहित और गन्धरहित, रसयुक्त और रसरहित तथा स्पर्श और स्पर्शरहित द्रव्य अन्योन्यबद्ध, अन्योन्यसृष्ट, य अन्योन्यसम्बद्ध हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! क्या धातकीखण्ड द्वीप में वर्णसहित और वर्णर गन्ध सहित और गन्ध रहित, रसयुक्त और रसरहित स्पर्शयुक्त और स्पर्श रहित द्रव्य अन्योन्यबद्ध, अन्योन्य यावत् अन्योन्यसम्बद्ध हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

इसी प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त जानना चाहिए।

२७. पुद्गलों के संस्थान भेदों का विस्तृत प्ररूपण–

संस्थान सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. दीर्घ,

२. ह्रस्व,

३. वृत्त (थाली की भाँति गोल)

४. त्रिकोण,

५. चउरंसे,
६. पिहुले,
७. परिमंडले। –ठाणं. अ. ७, सु. ५४८

प. कइ णं भंते ! संठाणा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! छ संठाणा पण्णत्ता, तं जहा–
१. परिमंडले, २. वट्टे,
३. तंसे, ४. चउरंसे,
५. आयते,[1] ६. अणित्थंथे।
–विया. स. २५, उ. ३, सु. १

५. चतुष्कोण,
६. पृथुल (विस्तीर्ण)
७. परिमण्डल (चूड़ी के भाँति गोल)

प्र. भंते ! संस्थान कितने कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! संस्थान छह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. परिमण्डल, २. वृत्त,
३. त्रिकोण, ४. चतुष्कोण,
५. आयत (लंबा) ६. अनियत।

२८. छण्हं संठाणाणं दव्वट्ठयाहिं अणंतत्त परूवणं–

प. परिमंडलाणं भंते ! संठाणा दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?
उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।
प. वट्टा णं भंते ! संठाणा दव्वट्ठयाए किं संखेज्जा असंखेज्जा अणंता ?
उ. गोयमा ! एवं चेव।
एवं जाव अणित्थंथा।
एवं पएसट्ठयाए वि।
एवं दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए वि।
–विया. स. २५ उ. ३, सु. २-५

२८. छह संस्थानों का द्रव्यादि की अपेक्षा अनन्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परिमण्डल संस्थान द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?
उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनन्त हैं।
प्र. भंते ! वृत्त संस्थान द्रव्य की अपेक्षा क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?
उ. गौतम ! पूर्ववत् (अनन्त) हैं।
इसी प्रकार अनियत संस्थान-पर्यन्त जानना चाहिए।
इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा और द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा भी अनन्त जानना चाहिए।

२९. छण्हं संठाणाणं दव्वट्ठयाईहिं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! परिमंडल-वट्ट-तंस-चतुरंस-आयत-अणित्थंथाणं संठाणाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?
उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा परिमंडला दव्वट्ठयाए,
२. वट्टा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
३. चउरंसा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
४. तंसा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
५. आयता संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
६. अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।
पएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा पएसट्ठयाए,
२. वट्टा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
३. चउरंसा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
४. तंसा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
५. आयता संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
६. अणित्थंथा संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।
दव्वट्ठपएसट्ठयाए–
१. सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा दव्वट्ठयाए,

२९. छह संस्थानों का द्रव्यादि की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन १. परिमण्डल, २. वृत्त, ३. त्रिकोण, ४. चतुष्कोण, ५. आयत और ६. अनियत संस्थानों में द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा कौन-किन संस्थानों से अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?
उ. गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा परिमण्डल संस्थान सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) वृत्त-संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) चतुरस्र-संस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रिकोण संस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) आयत-संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अनियत संस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।
प्रदेश की अपेक्षा–
१. परिमण्डल-संस्थान प्रदेश की अपेक्षा सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) वृत्त संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) चतुरस्र संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) त्रिकोण संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) आयत संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) अनियत संस्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा–
१. द्रव्य की अपेक्षा परिमण्डल संस्थान सबसे अल्प हैं,

१. [illegible]

२. वट्टा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

३. चउरंसा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

४. तंसा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

५. आयता संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

६. अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

अणित्थंथेहिंतो संठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए परिमंडला संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

वट्टा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,

सो चेव पएसट्ठयाए गमओ भाणियव्वओ जाव–

अणित्थंथा संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

–विया. स. २५, उ.३, सु. ६

३०. परिमंडलाइं पंचसंठाणभेयाणं संखेज्जाइ परूवणं–

प. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

एवं जाव आयता,[1]

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे किं संखेज्जपएसिए असंखेज्जपएसिए, अणंतपएसिए ?

उ. गोयमा ! सिय संखेज्जपएसिए, सिय असंखेज्जपएसिए, सिय अणंतपएसिए,

एवं जाव आयते,

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे संखेज्जपएसिए किं संखेज्जपएसोगाढे असंखेज्जपएसोगाढे, अणंतपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! संखेज्जपएसोगाढे, नो असंखेज्जपएसोगाढे, नो अणंतपएसोगाढे,

एवं जाव आयते,

२. (उनसे) वृत्त संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) चतुरस्र संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) त्रिकोण संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) आयत संस्थान द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

६. (उनसे) अनियत संस्थान द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

द्रव्य की अपेक्षा अनियत संस्थानों से प्रदेश की अपेक्षा परिमण्डल संस्थान असंख्यातगुणे हैं।

(उनसे) वृत्त-संस्थान प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।

इत्यादि पूर्वोक्त प्रदेश की अपेक्षा का अभिलाप 'अनियत संस्थान प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं', पर्यन्त कहना चाहिए।

३०. परिमण्डलादि पांच संस्थान भेदों के संख्यातादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

इसी प्रकार आयत संस्थानों पर्यन्त (अनन्त) जानना चाहिए।

प्र. भंते ! परिमण्डल संस्थान क्या संख्यातप्रदेशी हैं, असंख्यातप्रदेशी हैं या अनन्तप्रदेशी हैं ?

उ. गौतम ! कदाचित् संख्यातप्रदेशी हैं, कदाचित् असंख्यातप्रदेशी हैं और कदाचित् अनन्तप्रदेशी हैं।

इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त अनन्त प्रदेशी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! संख्यातप्रदेशी परिमण्डल संस्थान क्या संख्यातप्रदेशों में अवगाढ़ होता है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है या अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है ?

उ. गौतम ! संख्यातप्रदेशों में अवगाढ होता है, किन्तु असंख्यात प्रदेशों में और अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ नहीं होता है।

इसी प्रकार संख्यातप्रदेशी आयतसंस्थान पर्यन्त के प्रदेशावगाढ़ के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! असंख्यातप्रदेशी परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है या अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् संख्यात प्रदेशों में अवगाढ होता है और कदाचित् असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, किन्तु अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ नहीं होता है।

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी आयत संस्थान पर्यन्त प्रदेशावगाढ़ के विषय में कहना चाहिए।

प्र. भंते ! अनन्तप्रदेशी परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है या अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है ?

उ. गौतम ! कदाचित् संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है और कदाचित् असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, (किन्तु) अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ नहीं होता है।

एवं जाव आयते। —पण्ण. प. १०, सु. ७९२-७९६

३१. सत्तसु नरयपुढवीसु सोहम्माइकप्पेसु ईसिपब्भाराए य पुढवीए परिमंडलाइ संठाणाणं अणंतत्तं—

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

प. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव आयता।

प. सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए परिमंडला जाव आयता संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे परिमंडला जाव आयता संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव अच्चुए।

प. गेविज्जविमाणाणं भंते ! परिमंडला जाव आयता संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं अणुत्तरविमाणेसु।

एवं ईसिपब्भाराए वि। —विया. स. २५, उ. ३, सु. ११-२१

३२. पंचसु परिमंडलाईसु जवमज्झेसु संठाणेसु परोप्परं अणंतत्तं—

प. जत्थ णं भंते ! एगे परिमंडले संठाणे जवमज्झे तत्थ परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी आयतसंस्थान पर्यन्त प्रदेशावगाढ के विषय में कहना चाहिए।

३१. सात नरक पृथ्वियों सौधर्मादि कल्पों और ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी में परिमण्डलादि संस्थानों का अनन्तत्व—

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

प्र. भंते ! (रत्नप्रभापृथ्वी में) वृत्त संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् अनन्त हैं।

इसी प्रकार (रत्नप्रभापृथ्वी में) आयत संस्थानों पर्यन्त समझना चाहिए।

प्र. भंते ! शर्कराप्रभापृथ्वी में परिमण्डल यावत् आयत संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् अनन्त हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यन्त संस्थान अनन्त समझने चाहिए।

प्र. भंते ! सौधर्मकल्प में परिमण्डल यावत् आयत संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् अनन्त हैं।

इसी प्रकार अच्युतकल्प पर्यन्त अनन्त कहने चाहिए।

प्र. भंते ! ग्रैवेयक विमानों में परिमण्डल यावत् आयत संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं।

उ. गौतम ! पूर्ववत् (अनन्त) हैं।

इसी प्रकार अनुत्तरविमानों के विषय में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार ईषत्प्राग्भारापृथ्वी के विषय में भी कहना चाहिए।

३२. यवाकार परिमण्डलादि पांच संस्थानों का परस्पर अनन्तत्व—

प्र. भंते ! जहाँ एक यवाकार (जौ के आकार का) परिमण्डल संस्थान है, वहाँ क्या अन्य परिमण्डल संस्थान संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

एवं एक्केक्केणं संठाणेणं पंच वि चारेयव्वा।

—*विया. स. २५ उ. ३, सु. २२-२७*

इसी प्रकार एक-एक संस्थान के साथ पांचों संस्थानों के सम्बन्ध का कथन करना चाहिए।

३३. सत्तसु नरयपुढवीसु सोहम्माइकप्पेसु ईसीपब्भाराए पुढवीए पंचसु जवमज्झेसु संठाणेसु अणंतत्तं—

प. जत्थ णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे परिमंडले संठाणे जवमज्झे तत्थ परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता।

प. जत्थ णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे परिमंडले संठाणे जवमज्झे तत्थ वट्टा संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव आयता।

प. जत्थ णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे वट्टे संठाणे जवमज्झे तत्थ णं परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

प. जत्थ णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे वट्टे संठाणे जवमज्झे तत्थ णं वट्टा संठाणा किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव,

एवं जाव आयता।

एवं पुणरवि एक्केक्केणं संठाणेणं पंच वि चारेयव्वा जहेव हेट्ठिल्ला जाव आयतेणं।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

एवं कप्पेसु वि जाव ईसीपब्भाराए पुढवीए।

—*विया. स. २५, उ. ३, सु. २८-३६*

३३. सात नरकपृथ्वियों, सौधर्मादि कल्पों और ईषत्प्राग्भारापृथ्वी में पांच यव मध्य संस्थानों का अनन्तत्व—

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में जहाँ एक यवाकार परिमण्डल संस्थान है, वहाँ क्या अन्य परिमण्डलसंस्थान संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं, किन्तु अनन्त हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में जहाँ एक यवाकार परिमण्डल संस्थान है वहाँ क्या अन्य वृत्त संस्थान संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् अनन्त हैं।

इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में जहाँ एक यवाकार वृत्तसंस्थान है, वहाँ क्या अन्य परिमण्डल संस्थान संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात या असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

प्र. भंते ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में जहाँ एक यवाकार वृत्तसंस्थान है, वहाँ क्या अन्य वृत्त संस्थान संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् अनन्त हैं।

इसी प्रकार आयत संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

इसी प्रकार प्रत्येक संस्थान के साथ पांचों संस्थानों का आयत संस्थान पर्यंत कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी पर्यंत कहना चाहिए।

इसी प्रकार (वैमानिक) कल्पों से ईषत्प्राग्भारापृथ्वी पर्यन्त के विषय में जानना चाहिए।

पगारान्तरेणं ओवणिहिय खेत्ताणुपुव्वी सरूव परूवणं—

अहवा—ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी एगपएसोगाढे दुपएसोगाढे जाव दसपएसोगाढे जाव असंखेज्ज पएसोगाढे। से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी असंखेज्ज पएसोगाढे जाव एगपएसोगाढे। से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

उ. अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए असंखेज्जगच्छायाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो। से तं अणाणुपुव्वी। से तं ओवणिहिया खेत्ताणुपुव्वी। से तं खेत्ताणुपुव्वी।

—*अणु. सु. १७८-१७९*

प्रकारान्तर से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी के स्वरूप का प्ररूपण—

अथवा—औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा—

१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी की पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. एक प्रदेशावगाढ, द्विप्रदेशावगाढ यावत् दसप्रदेशावगाढ यावत् असंख्यातप्रदेशावगाढ के क्रम से क्षेत्र के कथन को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं।

प्र. पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. असंख्यातप्रदेशावगाढ यावत् एक प्रदेशावगाढ रूप में व्युत्क्रम से क्षेत्र के कथन को पश्चानुपूर्वी कहते हैं।

प्र. अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. एक से प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि असंख्यात प्रदेशों पर्यन्त की स्थापित श्रेणी को परस्पर गुणा करने से निष्पन्न राशि में से आदि और अंतिम इन दो रूपों को कम करने पर क्षेत्रविषयक अनानुपूर्वी बनती है। यह औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी है। यह क्षेत्रानुपूर्वी है।

३४. पंचसु संठाणेसु पएसु पएसोगाढत्त य परूवणं–

प. १. वट्टे णं भंते ! संठाणे कइपएसिए, कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! वट्टे संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. घणवट्टे य, २. पयरवट्टे य।

तत्थ णं जे से पयरवट्टे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।

१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं पंचपएसिए पंचपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं बारसपएसिए बारसपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

तत्थ णं जे से घणवट्टे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।

१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं सत्तपएसिए सत्तपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं बत्तीसपएसिए, बत्तीसपएसोगाढे पण्णत्ते,

उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

प. २. तंसे णं भंते ! संठाणे कइपएसिए कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तंसे णं संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. घणतंसे य, २. पयरतंसे य।

१. तत्थ णं जे से पयरतंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।

१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं तिपएसिए तिपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं [illegible] पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से घणतंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

[illegible]

[illegible]

३४. पांच संस्थानों के प्रदेशों का और प्रदेशावगाढत्व का प्ररूपण–

प्र. १. भंते ! वृत्तसंस्थान कितने प्रदेश वाला और कितने आकाश प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है ?

उ. गौतम ! वृत्तसंस्थान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. घनवृत्त, २. प्रतरवृत्त।

उनमें से जो प्रतरवृत्त है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ओज (विषम) प्रदेशिक, २. युग्म-(सम) प्रदेशिक।

१. उनमें जो ओज-प्रदेशिक प्रतरवृत्त है वह जघन्य पांच-प्रदेश वाला है और पांच आकाश-प्रदेशों में अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला होता है और असंख्यात आकाश-प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है।

२. उनमें से जो युग्मप्रदेशिक घनत्रिकोण है वह जघन्य बारह प्रदेशों वाला है और बारह आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है तथा उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाशप्रदेशों में अवगाढ होता है।

उनमें से जो घनवृत्तसंस्थान है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ओज-प्रदेशिक, २. युग्म-प्रदेशिक।

१. उनमें से जो ओज-प्रदेशिक है वह जघन्य सात प्रदेश वाला है और सात आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है। उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है।

२. उनमें से जो युग्मप्रदेशिक प्रतरवृत्त है, वह जघन्य बत्तीस प्रदेश वाला है और बत्तीस आकाश-प्रदेशों में अवगाढ होता है उत्कृष्ट अनन्तप्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है।

प्र. २. भंते ! त्रिकोण संस्थान कितने प्रदेश वाला है और कितने आकाश-प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है ?

उ. गौतम ! त्रिकोण संस्थान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. घन त्रिकोण, २. प्रतर त्रिकोण।

उनमें से जो प्रतरत्रिकोण है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ओज प्रदेशिक, २. युग्म प्रदेशिक।

१. उनमें से जो ओज प्रदेशिक है वह जघन्य तीन प्रदेश वाला है और तीन आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है उत्कृष्ट अनन्तप्रदेशी वाला है और असंख्यात आकाश-प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है।

२. उनमें से जो युग्म प्रदेशिक प्रतर त्रिकोण है वह जघन्य [illegible] प्रदेश वाला है और [illegible] आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है। उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ कहा गया है।

[illegible]

[illegible]

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं चउप्पएसिए चउप्पएसोगाढे पण्णत्ते।
उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

प. ३. चउरंसे णं भंते ! संठाणे कइपएसिए कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! चउरंसे संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. घण चउरंसे य, २. पयर चउरंसे य।
१. तत्थ णं जे से पयर चउरंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।
१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं नवपएसिए नवपएसोगाढे पण्णत्ते,
उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं चउपएसिए चउपएसोगाढे पण्णत्ते,
उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

३. तत्थ णं जे से घणचउरंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।
१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं सत्तावीसइपएसिए सत्तावीसइपएसोगाढे पण्णत्ते।
उक्कोसेणं अणंतपएसिए असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं अट्ठपएसिए अट्ठपएसोगाढे पण्णत्ते।
उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

प. ४. आयते णं भंते ! संठाणे कइपएसिए कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! आयते णं संठाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सेढिआयते, २. पयरायते, ३. घणायते।
१. तत्थ णं जे से सेढिआयते से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।
१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं तिपएसोगाढे पण्णत्ते।
उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं दुपएसोगाढे पण्णत्ते।
उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. उनमें से जो युग्मप्रदेशिक प्रतरवृत्त है, वह जघन्य चार प्रदेश वाला है और चार आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है उत्कृष्ट अनन्तप्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ कहा गया है।

प्र. ३. भंते ! चतुरस्रसंस्थान कितने प्रदेश वाला है और कितने आकाश-प्रदेशों में अवगाढ़ कहा गया है ?

उ. गौतम ! चतुरस्रसंस्थान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. घन-चतुरस्र, २. प्रतर-चतुरस्र।
१. उनमें से जो प्रतर-चतुरस्र है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. ओज-प्रदेशिक, २. युग्म-प्रदेशिक।
१. उनमें से जो ओज-प्रदेशिक है वह जघन्य नौ प्रदेश वाला है और नौ आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
२. उनमें से जो युग्म-प्रदेशिक है वह जघन्य चार प्रदेश वाला है और चार आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
३. उनमें से जो घन-चतुरस्र है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. ओज-प्रदेशिक, २. युग्म-प्रदेशिक।
१. उनमें से जो ओज-प्रदेशिक है वह जघन्य सत्ताईस प्रदेशों वाला है और सत्ताईस आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
२. उनमें से जो युग्म प्रदेशिक है वह जघन्य आठ प्रदेशों वाला है और आठ आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।

प्र. ४. भंते ! आयतसंस्थान कितने प्रदेश वाला है और कितने आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ कहा गया है ?

उ. गौतम ! आयतसंस्थान तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. श्रेणी-आयत, २. प्रतर-आयत, ३. घन-आयत।
१. उनमें से जो श्रेणी आयत है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. ओज-प्रदेशिक, २. युग्म-प्रदेशिक।
१. उनमें से जो ओज-प्रदेशिक है वह जघन्य तीन प्रदेश वाला है और तीन आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
२. उनमें से जो युग्म-प्रदेशिक है, वह जघन्य दो प्रदेश वाला है और दो आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ होता है।
उत्कृष्ट अनन्तप्रदेश वाला है और असंख्यात-प्रदेशावगाढ़ होता है।

तत्थ णं जे से पयरायते से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।

१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं पन्नरसपएसिए, पन्नरसपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंत पएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं छप्पएसिए छप्पएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंत पएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

३. तत्थ णं जे से घणायते से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. ओयपएसिए य, २. जुम्मपएसिए य।

१. तत्थ णं जे से ओयपएसिए से जहन्नेणं पणयालीसपएसिए, पणयालीसपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से जुम्मपएसिए से जहन्नेणं बारसपएसिए, बारसपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

प. ५. परिमंडले णं भंते ! संठाणे कइपएसिए कइपएसोगाढे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! परिमंडले णं संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. घणपरिमंडले य, २. पयरपरिमंडले य।

१. तत्थ णं जे से पयरपरिमंडले से जहन्नेणं वीसइपएसिए, वीसइपएसोगाढे पण्णत्ते।

उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

२. तत्थ णं जे से घणपरिमंडले से जहन्नेणं चत्तालीसइपएसिए, चत्तालीसइपएसोगाढे पण्णत्ते,

उक्कोसेणं अणंतपएसिए, असंखेज्जपएसोगाढे पण्णत्ते।

– विया. स. २५, उ. ३, सु. ३५-४५

३५. पंचसु संठाणेसु एगत्त-पुहत्तेहिं दव्वट्ठ पएसट्ठयाए पडुच्च चरमाचरम परूवणं –

उनमें से जो प्रतरआयत है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ओज-प्रदेशिक, २. युग्म-प्रदेशिक।

१. उनमें से जो ओजप्रदेशिक है वह जघन्य पन्द्रह प्रदेशों वाला है और पन्द्रह आकाश-प्रदेशों में अवगाढ होता है।

उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

२. उनमें से जो युग्म-प्रदेशिक है वह जघन्य छह प्रदेश वाला है और छह आकाश-प्रदेशों में अवगाढ होता है।

उत्कृष्ट अनन्त-प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश-प्रदेशों में अवगाढ होता है।

३. उनमें से जो घनआयत है वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ओजप्रदेशिक, २. युग्म प्रदेशिक।

१. उनमें से जो ओजप्रदेशिक है वह जघन्य पैंतालीस प्रदेशों वाला है और पैंतालीस आकाश-प्रदेशों में अवगाढ होता है।

उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

२. उनमें से जो युग्म-प्रदेशिक है वह जघन्य बारह प्रदेशों वाला है और बारह आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यातप्रदेशों में अवगाढ होता है।

प्र. ५. भंते ! परिमण्डल-संस्थान कितने प्रदेश वाला है और कितने आकाशप्रदेशों में अवगाढ कहा गया है ?

उ. गौतम ! परिमण्डल-संस्थान दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. घन-परिमण्डल, २. प्रतर-परिमण्डल।

१. उनमें से जो प्रतर-परिमण्डल है वह जघन्य बीस प्रदेश वाला है और बीस आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

२. उनमें से जो घन परिमण्डल है वह जघन्य चालीस प्रदेशों वाला है और चालीस आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

उत्कृष्ट अनन्त प्रदेश वाला है और असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ होता है।

३५. पांच संस्थानों का एकत्व बहुत्व से द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा चरमाचरमत्व का प्ररूपण–

उ. गौतम ! ओघादेश (सामान्य) से कदाचित् कृतयुग्म है, कदाचित् त्र्योज हैं, कदाचित् द्वापरयुग्म हैं और कदाचित् कल्योज हैं।

विधानादेश से प्रत्येक की अपेक्षा कृतयुग्म नहीं हैं त्र्योज नहीं है, द्वापरयुग्म नहीं है किन्तु कल्योज हैं।

इसी प्रकार आयत-संस्थानों पर्यंत जानना चाहिए।

प्र. भंते ! परिमण्डल-संस्थान क्या प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है या कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है, कदाचित् त्र्योज है, कदाचित् द्वापरयुग्म है और कदाचित् कल्योज है।

इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान क्या प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्म हैं, त्र्योज हैं, द्वापर युग्म हैं या कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! ओघादेश से-वे कदाचित् कृतयुग्म हैं, यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

विधानादेश से वे कृतयुग्म भी हैं, त्र्योज भी हैं, द्वापरयुग्म भी हैं और कल्योज भी हैं।

इसी प्रकार आयत-संस्थानों पर्यन्त जानना चाहिए।

३६. एकत्व-बहुत्व से पांच संस्थानों में यथायोग्य कृतयुग्मादि प्रदेशावगाढत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परिमण्डल-संस्थान क्या–

१. कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, २. त्र्योज प्रदेशावगाढ़ है,

३. द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ है, ४. कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ और कल्योज-प्रदेशावगाढ़ नहीं है।

प्र. भंते ! वृत्त-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ़ है और कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है किन्तु द्वापर युग्म-प्रदेशावगाढ़ नहीं है।

प्र. भंते ! त्रिकोण संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ है, कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ़ है और कदाचित् द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ है, किन्तु कल्योज प्रदेशावगाढ़ नहीं है।

प्र. भंते ! चतुरस्र संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार वृत्त संस्थान के विषय में कहा है उसी प्रकार चतुरस्र-संस्थान के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! आयत-संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ है यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ है यावत् कदाचित् कल्योज प्रदेशावगाढ़ है।

प्र. भंते ! (अनेक) परिमण्डल संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ़ हैं ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्म-पएसोगाढा,

नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा।

प. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा,

नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा,

विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि, तेयोगपएसोगाढा वि,

नो दावरजुम्मपएसोगाढा, कलियोगपएसोगाढा वि।

प. तंसा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा,

नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा,

विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि, तेयोगपएसोगाढा वि, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, कलियोगपएसोगाढा वि।

चउरंसा जहा वट्टा।

प. आयता णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा,

नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा,

विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव

कलियोगपएसोगाढा वि। - विया. स. २५, उ. ३, सु. ५९-६८

३७. एगत्त-पुहत्तेहिं पंचसु संठाणेसु कडजुम्माइ समयट्ठिई परूवणं–

उ. गौतम ! वे ओघादेश से तथा विधानादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं,

किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ और कल्योज-प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

प्र. भंते ! (अनेक) वृत्त-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ हैं?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं,

किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ और कल्योज-प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ भी हैं, त्र्योज-प्रदेशावगाढ भी हैं,

कदाचित् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं, किन्तु द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ नहीं हैं,

प्र. भंते ! (अनेक) त्रिकोण-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं

किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ और कल्योज-प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ भी हैं, त्र्योज प्रदेशावगाढ भी हैं, कल्योज प्रदेशावगाढ भी हैं किन्तु द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

चतुरस्र-संस्थानों के विषय में वृत्त-संस्थानों के समान जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) आयत संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ हैं?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं।

किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ और कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

विधानादेश से वे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ भी हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ भी हैं।

३७. एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा पांच संस्थानों की कृतयुग्मादि समयस्थिति का प्ररूपण–

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा, सिय तेयोगा, सिय दावरजुम्मा, सिय कलियोगा।

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलिओगा।

एवं जाव आयता।

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे, तेयोगे, दावरजुम्मे, कलिओगे ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे, सिय तेयोगे, सिय दावरजुम्मे, सिय कलियोगे।

एवं जाव आयते।

प. परिमंडला णं भंते ! संठाणा पएसट्ठयाए किं कडजुम्मा, तेयोगा, दावरजुम्मा कलिओगा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा **जाव** सिय कलियोगा।

विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि, तेयोगा वि, दावरजुम्मा वि, कलियोगा वि।

एवं जाव आयता। *–विया. स. २५, उ. ३, सु. ४२-५०*

३६. एगत्त-पुहत्तेहिं पंचसु संठाणेसु जहाजोगं कडजुम्माइ पएसोगाढत्त परूवणं–

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे किं–

१. कडजुम्मपएसोगाढे, २. तेयोगपएसोगाढे,
३. दावरजुम्मपएसोगाढे, ४. कलियोगपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मपएसोगाढे, नो तेयोगपएसोगाढे, नो दावरजुम्मपएसोगाढे, नो कलियोगपएसोगाढे।

प. वट्टे णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपएसोगाढे **जाव** कलियोगपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे, सिय तेयोग-पएसोगाढे, नो दावरजुम्मपदेसोगाढे, सिय कलियोग-पएसोगाढे।

प. तंसे णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपएसोगाढे **जाव** कलियोगपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे, सियं तेयोग-पएसोगाढे, सिय दावरजुम्मपएसोगाढे, नो कलियोगपएसोगाढे।

प. चउरंसे णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपएसोगाढे जाव कलियोगपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! जहा वट्टे तहा चउरंसे वि।

प. आयते णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपएसोगाढे जाव कलियोगपएसोगाढे ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मपएसोगाढे **जाव** सिय कलियोगपएसोगाढे।

प. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा ?

उ. गौतम ! ओघादेश (सामान्य) से कदाचित् कृतयुग्म हैं, कदाचित् त्र्योज हैं, कदाचित् द्वापरयुग्म हैं और कदाचित् कल्योज हैं।

विधानादेश से प्रत्येक की अपेक्षा कृतयुग्म नहीं हैं त्र्योज नहीं है, द्वापरयुग्म नहीं है किन्तु कल्योज हैं।

इसी प्रकार आयत-संस्थानों पर्यंत जानना चाहिए।

प्र. भंते ! परिमण्डल-संस्थान क्या प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है या कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है, कदाचित् त्र्योज है, कदाचित् द्वापरयुग्म है और कदाचित् कल्योज है।

इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान क्या प्रदेश की अपेक्षा कृतयुग्म हैं, त्र्योज हैं, द्वापर युग्म हैं या कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! ओघादेश से–वे कदाचित् कृतयुग्म हैं, **यावत्** कदाचित् कल्योज हैं।

विधानादेश से वे कृतयुग्म भी हैं, त्र्योज भी हैं, द्वापरयुग्म भी हैं और कल्योज भी हैं।

इसी प्रकार आयत-संस्थानों पर्यन्त जानना चाहिए।

३६. एकत्व-बहुत्व से पांच संस्थानों में यथायोग्य कृतयुग्मादि प्रदेशावगाढत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परिमण्डल-संस्थान क्या–

१. कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, २. त्र्योज प्रदेशावगाढ़ है,
३. द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ है, ४. कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ और कल्योज-प्रदेशावगाढ़ नहीं है।

प्र. भंते ! वृत्त-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है **यावत्** कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ़ है और कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है किन्तु द्वापर युग्म-प्रदेशावगाढ़ नहीं है।

प्र. भंते ! त्रिकोण संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है **यावत्** कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, कदाचित् त्र्योज-प्रदेशावगाढ़ है और कदाचित् द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है, किन्तु कल्योज प्रदेशावगाढ़ नहीं है।

प्र. भंते ! चतुष्कोण संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार वृत्त-संस्थान के विषय में कहा है उसी प्रकार चतुरस्र-संस्थान के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! आयत-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है **यावत्** कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ है **यावत्** कदाचित् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ है।

प्र. भंते ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ हैं ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्म-पएसोगाढा,
नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपसोगाढा।

प. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा,
नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा,
विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि, तेयोगपएसोगाढा वि,
नो दावरजुम्मपएसोगाढा, कलियोगपएसोगाढा वि।

प. तंसा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा,
नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलियोगपएसोगाढा,
विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि, तेयोगपएसोगाढा वि, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, कलियोगपएसोगाढा वि।

चउरंसा जहा वट्टा।

प. आयता णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलियोगपएसोगाढा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं-कडजुम्मपएसोगाढा,
नो तेयोगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलिओगपएसोगाढा,
विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलियोगपएसोगाढा वि। *–विया. स. २५, उ. ३, सु. ५१-६०*

उ. गौतम ! वे ओघादेश से तथा विधानादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ हैं,
किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ़, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ और कल्योज-प्रदेशावगाढ़ नहीं हैं।

प्र. भंते ! (अनेक) वृत्त-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ हैं ?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ हैं,
किन्तु त्र्योज-प्रदेशावगाढ़, द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ और कल्योज-प्रदेशावगाढ़ नहीं हैं।
विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ भी हैं, त्र्योज-प्रदेशावगाढ़ भी हैं,
कदाचित् कल्योज प्रदेशावगाढ़ हैं, किन्तु द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ़ नहीं हैं,

प्र. भंते ! (अनेक) त्रिकोण-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ़ हैं ?

उ. गौतम ! वे ओघादेश के कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं
किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ़, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ और कल्योज-प्रदेशावगाढ़ नहीं हैं।
विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ भी हैं, त्र्योज प्रदेशावगाढ़ भी हैं, कल्योज प्रदेशावगाढ़ भी हैं किन्तु द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ नहीं हैं।
चतुरस्र-संस्थानों के विषय में वृत्त-संस्थानों के समान कहना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) आयत-संस्थान क्या कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ हैं ?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ हैं।
किन्तु त्र्योज प्रदेशावगाढ़, द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ़ और कल्योज-प्रदेशावगाढ़ नहीं हैं।
विधानादेश से वे कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ़ भी हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ़ भी हैं।

३७. एगत्त-पुहत्तेहिं पंचसु संठाणेसु कडजुम्माइ समयट्ठिई परूवणं–

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मसमयट्ठिईए तेयोगसमयट्ठिईए, दावरजुम्मसमयट्ठिईए, कलियोगसमयट्ठिईए ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मसमयट्ठिईए जाव सिय कलियोगसमयट्ठिईए।
एवं जाव आयते।

प. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मसमयट्ठिईया, तेयोगसमयट्ठिईया, दावरजुम्मसमयट्ठिईया, कलियोगसमयट्ठिईया ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मसमयट्ठिईया जाव सिय कलियोगसमयट्ठिईया।
विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयट्ठिईया वि जाव कलियोगसमयट्ठिईया वि।
एवं जाव आयता। *–विया. स. २५, उ. ३, सु. ६१-६४*

३७. एकत्व-बहुत्व की अपेक्षा पांच संस्थानों की कृतयुग्मादि समयस्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परिमण्डल-संस्थान क्या कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है, त्र्योज समय की स्थिति वाला है, द्वापरयुग्म-समय की स्थिति वाला है या कल्योज-समय की स्थिति वाला है ?

उ. गौतम ! कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाला है यावत् कल्योज समय की स्थिति वाला है।
इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) परिमण्डल-संस्थान क्या कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं, त्र्योज समय की स्थिति वाले हैं, द्वापरयुग्म समय की स्थिति वाले हैं या कल्योज समय की स्थिति वाले हैं ?

उ. गौतम ! वे ओघादेश से–कदाचित् कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले हैं यावत् कदाचित् कल्योज-समय की स्थिति वाले हैं।
विधानादेश से–कृतयुग्म-समय की स्थिति वाले भी हैं यावत् कल्योज-समय की स्थिति वाले भी हैं।
इसी प्रकार आयत-संस्थान पर्यन्त जानना चाहिए।

३८. पंचसु संठाणेसु वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं कडजुम्माइ परूवणं–

प. परिमंडले णं भंते ! संठाणे कालवण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलिओगे।

एवं नीलवण्णपज्जवेहि वि।

एवं पंचहिं वण्णेहिं, दोहिं गंधेहिं, पंचहिं रसेहिं, अट्ठहिं फासेहिं जाव लुक्खफासपज्जवेहिं।

–विया. स. २५, उ. ३, सु. ६५-६७

३८. पांच-संस्थानों का वर्ण-गन्ध-रस और स्पर्श पर्यायों के कृतयुग्मादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परिमण्डल-संस्थान कृष्ण वर्ण के पर्यायों से क्या कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।

इसी प्रकार नील वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और रुक्ष स्पर्श पर्याय पर्यन्त आठ स्पर्शों के लिए कहना चाहिए।

३९. पोग्गलाणं संघायाइ कारण परूवणं–

दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहन्नंति, तं जहा–

१. सयं वा पोग्गला साहन्नंति,

२. परेण वा पोग्गला साहन्नंति,

दोहिं ठाणेहिं पोग्गला भिज्जंति, तं जहा–

१. सयं वा पोग्गला भिज्जंति,

२. परेण वा पोग्गला भिज्जंति,

दोहिं ठाणेहिं पोग्गला परिपडंति, तं जहा–

१. सयं वा पोग्गला परिपडंति,

२. परेण वा पोग्गला परिपडंति,

एवं परिसडंति, विद्धंसंति। –ठाणं अ. ३, उ. ३, सु. ७४

३९. पुद्‌गलों के संघात आदि के कारणों का प्ररूपण–

दो स्थानों से पुद्‌गल एकत्रित होते हैं, यथा–

१. अपने स्वभाव से पुद्‌गल एकत्रित होते हैं।

२. दूसरे के निमित्त से पुद्‌गल एकत्रित होते हैं।

दो स्थानों से पुद्‌गलों का भेदन होता है, यथा–

१. अपने स्वभाव से पुद्‌गलों का भेदन होता है।

२. दूसरे के निमित्त से पुद्‌गलों का भेदन होता है।

दो स्थानों से पुद्‌गल नीचे गिरते हैं, यथा–

१. अपने स्वभाव से पुद्‌गल नीचे गिरते हैं।

२. दूसरे के निमित्त से पुद्‌गल नीचे गिरते हैं।

इसी प्रकार दो-दो कारणों से पुद्‌गल परिसटित होते हैं और विध्वंस (नष्ट) होते हैं।

४०. परमाणु पोग्गलाणं संघायस्स भेयस्स य कज्ज परूवणं–

रायगिहे जाव एवं वयासी–

प. दो भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ ?

उ. गोयमा ! दुप्पएसिए खंधे भवइ,

से भिज्जमाणे दुहा कज्जइ–

१. एगयओ परमाणुपोग्गले,

२. एगयओ परमाणुपोग्गले भवइ।

प. तिन्नि भंते ! परमाणु पोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयो साहण्णित्ता किं भवइ ?

उ. गोयमा ! तिपएसिए खंधे भवइ,

से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि कज्जइ,

दुहा कज्जमाणे–

एगयओ परमाणु पोग्गले,

एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ,

तिहा कज्जमाणे–

तिण्णि परमाणुपोग्गला भवंति।

प. चत्तारि भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ ?

उ. गोयमा ! चउपसिए खंधे भवइ,

से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि, चउहा वि कज्जइ,

कज्जमाणे–

४०. परमाणु-पुद्‌गलों के संघात और भेदों के कार्यों का प्ररूपण–

राजगृह नगर में (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ) यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! दो परमाणु पुद्‌गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है ?

उ. गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध बनता है।

उसका भेदन होने पर दो विभाग होते हैं–

१. एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,

२. दूसरी ओर एक परमाणु पुद्‌गल होता है।

प्र. भंते ! तीन परमाणु पुद्‌गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है ?

उ. गौतम ! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध बनता है।

उसका भेदन होने पर दो या तीन विभाग होते हैं।

दो विभाग किये जाने पर–

एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

तीन विभाग किये जाने पर–

तीन परमाणु पुद्‌गल होते हैं।

प्र. भंते ! चार परमाणु पुद्‌गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है ?

उ. गौतम ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध बनता है,

उसका भेदन होने पर दो, तीन या चार विभाग होते हैं।

दो विभाग किये जाने पर–

१. एगयओ परमाणुपोग्गले,
२. एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–दो दुपएसिया खंधा भवंति,
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुप्पएसिए खंधे भवइ,
चउहा कज्जमाणे–
चत्तारि परमाणुपोग्गला भवंति।

प. पंच भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! पंचपएसिए खंधे भवइ,
से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि, चउहा वि पंचहा वि कज्जइ,
दुहा कज्जमाणे–
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।
चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुप्पएसिए खंधे भवइ,
पंचहा कज्जमाणे
पंच परमाणुपोग्गला भवंति।

प. छब्भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! छप्पएसिए खंधे भवइ,
से भिज्जमाणे दुहा वि, तिहा वि, चउहा वि, पंचहा वि, छव्विहा वि, कज्जइ।
दुहा कज्जमाणे–
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दुप्पएसिए खंधे,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–दो तिपएसिया खंधा भवंति।
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,

एक ओर (एक) परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है,
अथवा–दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
चार विभाग किये जाने पर–
चार परमाणु पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! पाँच परमाणु पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! पंचप्रदेशिक स्कन्ध बनता है।
उसका भेदन होने पर दो, तीन, चार या पाँच विभाग होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर–
एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है,
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
पाँच विभाग किये जाने पर–
पाँच परमाणु पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! छह परमाणु पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! षट्प्रदेशिक स्कन्ध बनता है।
उसका भेदन होने पर दो, तीन, चार, पाँच और छह विभाग होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर–
एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर पंचप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अहवा– तिन्नि दुप्पएसिया खंधा भवंति।

चउहा कज्जमाणे–

एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,

एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,

अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,

एगयओ दो दुप्पएसिया खंधा भवंति।

पंचहा कज्जमाणे–

एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,

एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ,

छहा कज्जमाणे–

छ परमाणु पोग्गला भवंति।

प. सत्त भंते ! परमाणु पोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! सत्तपएसिए खंधे भवइ,

से भिज्जमाणे दुहा वि **जाव** सत्तहा वि कज्जइ।

दुहा कज्जमाणे–

एगयओ परमाणुपोग्गले,

एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,

अहवा–एगयओ दुप्पएसिए खंधे,

एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,

अहवा–एगयओ तिपएसिए खंधे,

एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ।

तिहा कज्जमाणे–

एगयओ दो परमाणु पोग्गला,

एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,

अहवा– एगयओ परमाणुपोग्गले,

एगयओ दुपएसिए खंधे,

एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,

अहवा–एगयओ परमाणु पोग्गले,

एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति,

अहवा–एगयओ दो दुपएसिया खंधा,

एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ।

चउहा कज्जमाणे–

एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,

एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,

अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,

एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ,

एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,

अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,

एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा भवंति।

पंचहा कज्जमाणे–

एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,

...ओ तिपएसिए खंधे भवइ,

अथवा–तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

चार विभाग किये जाने पर–

एक ओर तीन परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

पाँच विभाग किये जाने पर–

एक ओर चार परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है,

छह विभाग किये जाने पर–

छह परमाणु पुद्‌गल होते हैं।

प्र. भंते ! सात परमाणु पुद्‌गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! सप्त-प्रदेशिक स्कन्ध होता है।

उसका भेदन किये जाने पर दो **यावत्** सात विभाग होते हैं।

दो विभाग किये जाने पर–

एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,

दूसरी ओर एक षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

एक ओर पाँच प्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है,

एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।

तीन विभाग किये जाने पर–

एक ओर दो परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर पंचप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध,

एक ओर चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर दो त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

अथवा–एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं,

एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

चार विभाग किये जाने पर–

एक ओर तीन परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध,

एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

पाँच विभाग किये जाने पर

एक ओर चार परमाणु पुद्‌गल,

एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।
छहा कज्जमाणे–
एगयओ पंच परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।
सत्तहा कज्जमाणे–
सत्त परमाणुपोग्गला भवंति।

प. अट्ठ भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! अट्ठपएसिए खंधे भवइ,
से भिज्जमाणे दुहा वि जाव अट्ठहा वि कज्जंति,
दुहा कज्जमाणे–
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–दो चउप्पएसिया खंधा भवंति।
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुप्पएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति,
चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दोन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–चत्तारि दुपएसिया खंधा भवंति।

अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
छह विभाग किये जाने पर–
एक ओर पाँच परमाणु पुद्गल,
एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
सात विभाग किये जाने पर–
सात परमाणु पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! आठ परमाणु पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! अष्टप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
उसका भेदन किये जाने पर दो यावत् आठ विभाग होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर–
एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक सप्तप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर पंच प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–चार द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

पंचहा कज्जमाणे–
एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा भवंति।
छहा कज्जमाणे–
एगयओ पंच परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।
सत्तहा कज्जमाणे–
एगयओ छ परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।
अट्ठहा कज्जमाणे–
अट्ठ परमाणुपोग्गला भवंति।

प. नव भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! नव पएसिए खंधे भवइ,
से भिज्जमाणे दुहा वि जाव नवविहा कज्जंति,
दुहा कज्जमाणे–
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ अट्ठपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ चउप्पएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ।
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो चउप्पएसिया खंधा भवंति,
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे,

पाँच विभाग किये जाने पर–
एक ओर चार परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
छह विभाग किये जाने पर–
एक ओर पांच परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर चार परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
सात विभाग किये जाने पर–
एक ओर छह परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।
आठ विभाग किये जाने पर–
आठ परमाणु पुद्‌गल होते हैं।

प्र. भंते ! नौ परमाणु पुद्‌गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! नवप्रदेशी स्कन्ध होता है।
उसका भेदन किये जाने पर दो यावत् नौ विभाग होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर–
एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर सप्तप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर षट्‌प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक षट्‌प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्‌गल,
एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,

एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–तिन्नि तिपएसिया खंधा भवंति।
चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति,
अहवा–एगयओ तिन्नि दुप्पएसिया खंधा,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ।
पंचहा कज्जमाणे–
एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ चत्तारि दुपएसिया खंधा भवंति।
छहा कज्जमाणे–
एगयओ पंच परमाणुपोग्गला,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुप्पएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिन्नि दुप्पएसिया खंधा भवंति।
सत्तहा कज्जमाणे–
एगयओ छ परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिप्पएसिए खंधे भवइ,

एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–तीन त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
पाँच विभाग किये जाने पर–
एक ओर चार परमाणु पुद्गल,
एक ओर पंचप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
छह विभाग किये जाने पर–
एक ओर पाँच परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर चार परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर तीन द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
सात विभाग किये जाने पर–
एक ओर छह परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

अहवा-एगयओ पंच परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।

अट्ठहा कज्जमाणे-
एगयओ सत्त परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।

नवहा कज्जमाणे-
नव परमाणुपोग्गला भवंति।

प. दस भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति, एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! दस पएसिए खंधे भवइ,
से भिज्जमाणे दुहा वि **जाव** दसविहा वि कज्जंति,

दुहा कज्जमाणे-
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ नवपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ अट्ठपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ चउप्पएसिए खंधे,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा-दो पंचपएसिया खंधा भवंति।

तिहा कज्जमाणे-
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ अट्ठपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो चउप्पएसिया खंधा भवंति,
अहवा-एगयओ दो तिपएसिया खंधा,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ।

अथवा-एक ओर पाँच परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।

आठ विभाग किये जाने पर-
एक ओर सात परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध होता है।

नव विभाग किये जाने पर-
नौ परमाणु पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! दस परमाणु पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! दस प्रदेशी स्कन्ध होता है।
उसके विभाग किये जाने पर दो **यावत्** दस विभाग होते हैं।

दो विभाग किये जानें पर-
एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक नव प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा-एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा- एक ओर एक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक सप्तप्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा-दो पंचप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

तीन विभाग किये जाने पर-
एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर दो द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा-एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।

चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ सत्तपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिप्पएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो चउप्पएसिया खंधा भवंति,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिन्नि तिपएसिया खंधा भवंति,
अहवा–एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति।
पंचहा कज्जमाणे–
एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ छप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति,
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा–पंच दुपएसिया खंधा भवंति।
छहा कज्जमाणे–
एगयओ पंच परमाणुपोग्गला,
एगयओ पंचपएसिए खंधे भवइ,

चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक षट्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर तीन त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
पाँच विभाग किये जाने पर–
एक ओर चार परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक षट्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–पाँच द्विप्रदेशिक स्कन्ध होते हैं।
छह विभाग किये जाने पर–
एक ओर पाँच परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है।

अहवा-एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ चउपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो तिपएसिया खंधा भवंति,
अहवा-एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ चत्तारि दुपएसिया खंधा भवंति।
सत्तहा कज्जमाणे-
एगयओ छ परमाणुपोग्गला,
एगयओ चउप्पएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ पंच परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ चत्तारि परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिन्नि दुपएसिया खंधा भवंति।
अट्ठहा कज्जमाणे-
एगयओ सत्त परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ छ परमाणुपोग्गला,
एगयओ दो दुपएसिया खंधा भवंति।
नवहा कज्जमाणे-
एगयओ अट्ठ परमाणुपोग्ला,
एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ,
दसहा कज्जमाणे-
दस परमाणुपोग्गला भवंति।

प. संखेज्जा भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहन्नंति एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ ?

उ. गोयमा ! संखेज्जपएसिए खंधे भवइ,
से भिज्जमाणे दुहा वि जाव दसहा वि, संखेज्जहा वि कज्जइ।
दुहा कज्जमाणे-
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ,
अहवा-एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ,
एवं जाव-
अहवा-एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ,

अथवा-एक ओर चार परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर चार परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा-एक ओर तीन परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर दो परमाणु पुद्गल,
एक ओर चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
सात विभाग किये जाने पर-
एक ओर छह परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर पाँच परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर चार परमाणु पुद्गल,
एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
आठ विभाग किये जाने पर-
एक ओर सात परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर छह परमाणु पुद्गल,
एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
नौ विभाग किये जाने पर-
एक ओर आठ परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।
दस विभाग किये जाने पर-
दस परमाणु पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! संख्यात परमाणु पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है ?

उ. गौतम ! संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
उसके विभाग किये जाने पर दो यावत् दस और संख्यात विभाग होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर-
एक ओर एक परमाणु पुद्गल,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा-एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्-
अथवा- एक ओर दस प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।

अहवा–दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले।
एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–तिण्णि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ तिप्पएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ दो परमाणुपोग्गला
एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,

अथवा–दो संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक दसप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर दो संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर एक दसप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–तीन संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक दसप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर दो संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,

एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ दो संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा—एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ तिन्नि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा—एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ तिन्नि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
एवं जाव—
अहवा—एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ तिन्नि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा—चत्तारि संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
एवं एएणं कमेणं पंचगसंजोगो वि भाणियव्वो जाव नवगं संजोगो,
दसहा कज्जमाणे—
एगयओ नव परमाणुपोग्गला,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा—एगयओ अट्ठ परमाणुपोग्गला,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं एएणं कमेणं एक्केक्को पूरेयव्वो जाव—
अहवा—एगयओ दसपसिए खंधे,
एगयओ नव संखेज्जपएसिया खंधा भवंति,
अहवा—दस संखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
संखेज्जहा कज्जमाणे—
संखेज्जा परमाणुपोग्गला भवंति।

प. असंखेज्जा भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ?

उ. गोयमा ! असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
से भिज्जमाणे दुहा वि **जाव** दसहा वि संखेज्जहा वि असंखेज्जहा वि कज्जइ,
दुहा कज्जमाणे—
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव—
अहवा—एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा—एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा— दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
तिहा कज्जमाणे—
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा—एगयओ परमाणुपोग्गले,

एक ओर एक दसप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा—एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर तीन संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा—एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर तीन संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
इसी प्रकार यावत्—
अथवा—एक ओर दस प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर तीन संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा—चार संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
इसी प्रकार इसी क्रम से पंचसंयोगी से नव-संयोगी पर्यन्त के विकल्प कहने चाहिए।
दस विभाग किये जाने पर—
एक ओर नौ परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा—एक ओर आठ परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार इसी क्रम से एक-एक की संख्या उत्तरोत्तर वढ़ाते जाना चाहिए यावत्—
अथवा—एक ओर दस प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर नौ संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा—दस संख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
संख्यात विभाग किये जाने पर—
संख्यात परमाणु-पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! असंख्यात परमाणु-पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है?

उ. गौतम ! असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
उसके विभाग किये जाने पर दो **यावत्** दस, संख्यात और असंख्यात विभाग होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर—
एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्—
अथवा—एक ओर एक दसप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा—एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा—दो असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
तीन विभाग किये जाने पर—
एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा—एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,

एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे,
एगयओ दो असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–तिन्नि असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं चउक्कगसंजोगो जाव दसगसंजोगो एए जहेव संखेज्जपएसियस्स।
णवरं–असंखेज्जगं एगं अहिगं भाणियव्वं जाव
अहवा–दस असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
संखेज्जहा कज्जमाणे–
एगयओ संखेज्जा परमाणुपोग्गला,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ संखेज्जा दुपएसिया खंधा,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ संखेज्जा दसपएसिया खंधा,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ संखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–संखेज्जा असंखेज्जपएसिया खंधा भवंति।
असंखेज्जहा कज्जमाणे–
असंखेज्जा परमाणुपोग्गला भवंति।

प. अणंता णं भंते ! परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति एगयओ साहण्णित्ता किं भवइ ?

उ. गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे भवइ।
से भिज्जमाणे दुहा वि तिहा वि जाव दसहा वि संखेज्जहा, असंखेज्जहा, अणंतहा वि कज्जइ।

एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा– एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर दस-प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर दो असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर एक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–तीन असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार चतुःसंयोगी से दस संयोगी पर्यन्त के विकल्प संख्यात-प्रदेशी के समान कहना चाहिए।
विशेष–असंख्यात शब्द अधिक कहना चाहिए यावत्–
अथवा–दस असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
संख्यात विभाग किये जाने पर–
एक ओर संख्यात परमाणु-पुद्गल,
एक ओर असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर संख्यात द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर संख्यात दस प्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर संख्यात-संख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–संख्यात-असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
असंख्यात विभाग किये जाने पर–
असंख्यात परमाणु-पुद्गल होते हैं।

प्र. भंते ! अनन्त परमाणु-पुद्गल एक साथ मिलते हैं और एक साथ मिलने पर क्या होता है ?

उ. गौतम ! अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
उसके विभाग किये जाने पर दो तीन यावत् दस, संख्यात, असंख्यात और अनन्त विभाग होते हैं।

दुहा कज्जमाणे–
एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।
तिहा कज्जमाणे–
एगयओ दो परमाणुपोग्गला,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ परमाणुपोग्गले,
एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ दुपएसिए खंधे,
एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ दसपएसिए खंधे,
एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ संखेज्जपएसिए खंधे,
एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–एगयओ असंखेज्जपएसिए खंधे,
एगयओ दो अणंतपएसिया खंधा भवंति।
अहवा–तिन्नि अणंतपएसिया खंधा भवंति।
चउहा कज्जमाणे–
एगयओ तिन्नि परमाणुपोग्गला,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
एवं चउक्कगसंजोगो जाव असंखेज्जगसंजोगो,

एए सव्वे जहेव असंखेज्जाणं भणिया तहेव अणंताण वि भाणियव्वा,
णवरं–एक्कं अणंतगं अब्भहियं भाणियव्वं।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ संखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ संखेज्जा असंखेज्जपएसिया खंधा,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–संखेज्जा अणंतपएसिया खंधा भवंति।
असंखेज्जहा कज्जमाणे–
एगयओ असंखेज्जा परमाणुपोग्गला,

दो विभाग किये जाने पर–
एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
तीन विभाग किये जाने पर–
एक ओर दो परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर एक परमाणु-पुद्गल,
एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर एक दसप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक संख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–एक ओर एक असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर दो अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अथवा–तीन अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
चार विभाग किये जाने पर–
एक ओर तीन परमाणु-पुद्गल,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
इसी प्रकार चतुष्कसंयोगी से असंख्यात-संयोगी पर्यन्त के विकल्प कहने चाहिए।
जिस प्रकार असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध के भंग कहे गए हैं उसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के भंग कहने चाहिए।
विशेष–एक "अनन्त" शब्द अधिक कहना चाहिए।
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर संख्यात-संख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर संख्यात-असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–संख्यात अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
असंख्यात विभाग किये जाने पर–
एक ओर असंख्यात परमाणु-पुद्गल,

एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ असंखेज्जा दुपएसिया खंधा,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
एवं जाव–
अहवा–एगयओ असंखेज्जा संखेज्जपएसिया खंधा,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–एगयओ असंखेज्जा असंखेज्जपएसिया खंधा,
एगयओ अणंतपएसिए खंधे भवइ।
अहवा–असंखेज्जा अणंतपएसिया खंधा भवंति।
अणंतहा कज्जमाणे–
अणंता परमाणुपोग्गला भवंति।

–विया. स. १२, उ. ४, सु. १-१३

एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर असंख्यात द्विप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है,
इसी प्रकार यावत्–
अथवा–एक ओर असंख्यात संख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–एक ओर असंख्यात असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध,
एक ओर एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होता है।
अथवा–असंख्यात अनन्तप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।
अनन्त विभाग किये जाने पर–
अनन्त परमाणु- पुद्गल होते हैं।

४१. पोग्गलाणं पडिघाओ–

तिविहे पोग्गलपडिघाए पण्णत्ते, तं जहा–

१. परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गले पप्प पडिहम्मेज्जा,
२. लुक्खत्ताताए वा पडिहम्मेज्जा,
३. लोगंते वा पडिहम्मेज्जा। *–ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २११*

४१. पुद्गलों का प्रतिघात–

तीन कारणों से पुद्गलों का प्रतिघात कहा गया है, यथा–

१. एक परमाणु-पुद्गल दूसरे परमाणु-पुद्गल से टकरा कर प्रतिहत होता है।
२. रूक्ष स्पर्श से प्रतिहत होता है।
३. लोकान्त में जाकर प्रतिहत होता है।

४२. पोग्गलाणं पओगपरिणयाइ भेयतिगं–

प. कइविहा णं भंते ! पोग्गला पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा–
१. पओगपरिणया,
२. मीससापरिणया,
३. वीससापरिणया,[1] *–विया, स. ८, उ. १, सु. ३*

४२. पुद्गलों के प्रयोग परिणतादि भेदत्रिक–

प्र. भंते ! पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! पुद्गल तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. प्रयोग-परिणत-जीव द्वारा गृहीत पुद्गल।
२. मिश्र-परिणत-प्रयोग और स्वभाव द्वारा परिणत पुद्गल।
३. विस्रसा-परिणत-स्वभाव से परिणत पुद्गल।

४३. णव दंडगेहिं पओगपरिणयपोग्गलाणं परूवणं–

पढमो दण्डओ–

प. पओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. एगिंदियपओगपरिणया जाव–
५. पंचिंदियपओगपरिणया।
प. एगिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुढविक्काइय एगिंदियपओगपरिणया जाव–
५. वणस्सइकाइय एगिंदिय पओगपरिणया।
प. पुढविक्काइयएगिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपओगपरिणया य,
२. बायरपुढविक्काइयएगिंदियपओगपरिणया य।

४३. नव दण्डकों द्वारा प्रयोग परिणत पुद्गल का प्ररूपण–

प्रथम दण्डक–

प्र. भंते ! प्रयोग-परिणत-पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत यावत्–
५. पंचेन्द्रिय-प्रयोग- परिणत।
प्र. भंते ! एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत यावत्–
५. वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत।
प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?
उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
२. बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

१. ठाणं अ. ३, उ. ३, सु. १६२

आउक्काइय एगिंदिया पओगपरिणया एवं चेव।

एवं दुयओ भेओ जाव वणस्सइकाइया य-एगिंदियपओगपरिणया।

प. बेइंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता।

एवं तेइंदिय चउरिंदिय पओगपरिणया वि।

प. पंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. नेरइयपंचिंदियपओगपरिणया,
२. तिरिक्खजोणिय पंचिंदियपओगपरिणया,
३. मणुस्सपंचिंदियपओगपरिणया,
४. देवपंचिंदियपओगपरिणया।

प. नेरइयपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियपओगपरिणया वि जाव–

७. अहेसत्तमपुढविनेरइयपंचिंदियपओगपरिणया वि।

प. तिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जलयर तिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणया य,
२. थलयर तिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणया य,
३. खहयर तिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणया य।

प. जलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य,
२. गब्भवक्कंतिय जलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य,

प. थलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. चउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य,
२. परिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य।

इसी प्रकार अप्कायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल भी दो प्रकार के हैं।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक पर्यंत एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल के भी दो-दो प्रकार कहने चाहिए।

प्र. भंते ! बेइन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! अनेक प्रकार के कहे गए हैं।

इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. नारक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत,
२. तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत,
३. मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत,
४. देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत।

प्र. भंते ! नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे सात प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–

७. अधःसप्तमपृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिकपंचेन्द्रियप्रयोग परिणत-पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
२. स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
३. खेचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. संमूर्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
२. गर्भज जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
२. परिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प. चउप्पयथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया य,

२. गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया य।

प. परिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य,

२. भुयपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य।

प. उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओग-परिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर तिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया य,

२. गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणिय पंचिंदियपओगपरिणया य।

एवं भुयपरिसप्पथलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओग-परिणया वि,

एवं खहयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणया वि,

प. मणुस्सपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदियपओगपरिणया य,

२. गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियपओगपरिणया य।

प. देवपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. भवणवासिदेवपंचिंदियपओगपरिणया जाव–

४. वेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया।

प. भवणवासिदेवपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. असुरकुमारभवणवासिदेवपंचिंदियपओगपरिणया जाव–

१०. थणियकुमारभवणवासिदेवपंचिंदिय-पओगपरिणया।

प. वाणमंतरदेवपंचिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

प्र. भंते ! चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. संमूर्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. गर्भज चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! परिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

इसी प्रकार दो भेद भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों के लिये कहना चाहिए।

इसी प्रकार दो भेद खेचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. संमूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. भवनवासीदेव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–

४. वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! भवनवासीदेव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! दस प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–

१०. स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! वाणव्यन्तर देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गोयमा ! अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पिसायदेवपंचिंदियपओगपरिणया जाव–
८. गंधव्वदेवपंचिंदियपओगपरिणया।

प. जोइसियदेवपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. चंदविमाणजोइसियदेवपंचिंदियपओगपरिणया जाव–
५. ताराविमाणजोइसियदेवपंचिंदियपओगपरिणया।

प. वेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. कप्पोवगवेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया य,
२. कप्पाईयगवेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया य।

प. कप्पोवगवेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. सोहम्मकप्पोवगवेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया जाव–
१२. अच्चुयकप्पोवगवेमाणियदेवपंचिंदियपओग-परिणया।

प. कप्पाईयगवेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. गेवेज्जगकप्पातीयवेमाणियदेवपंचिंदियपओग-परिणया य,
२. अणुत्तरोववाइयकप्पाईयवेमाणियदेवपंचिंदिय-पओगपरिणया य,

प. गेवेज्जगकप्पाईयगवेमाणिय देवपंचिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! नवविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पातीयगवेमाणिय देवपंचिंदियपओगपरिणया जाव–
९. उवरिमउवरिमगेवेज्जगकप्पातीयगवेमाणिय देवपंचिंदियपओगपरिणया य।

प. अणुत्तरोववाइयकप्पाईयगवेमाणियदेवपंचिंदियपओ-गपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. विजय-अणुत्तरोववाइयकप्पाईयग वेमाणियदेव पंचिंदिय- पओगपरिणया जाव–

उ. गौतम ! आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. पिशाच वाणव्यन्तर देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–
२. गन्धर्व वाणव्यन्तर देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. चन्द्र विमान ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–
५. तारा विमान ज्योतिष्क देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कल्पोपपन्न वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
२. कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! कल्पोपपन्न वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! बारह प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. सौधर्म कल्पोपपन्नक वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–
१२. अच्युतकल्पोपपन्नक वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,
२. अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! नौ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–
९. उपरितन उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–
१. विजय अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल यावत्–

५. सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पाईयग-वेमाणियदेव-पंचिंदियपओगपरिणया।

विइओ दण्डओ–

प. सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तग-सुहुमपुढविकाइय-एगिंदियपओग-परिणया य,

२. अपज्जत्तगसुहुमपुढविकाइय-एगिंदियपओग-परिणया य,[1]

वायरपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया वि एवं चेव,

एवं जाव वणस्सइकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

एक्केक्का दुविहा-सुहुमा य, वायरा य, पज्जत्तगा य, अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

प. वेइंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तग-वेइंदियपओगपरिणया य,

२. अपज्जत्तग-वेइंदियपओगपरिणया य।

एवं तेइंदियपओगपरिणया वि,

एवं चउरिंदियपओगपरिणया वि,

प. रयणप्पभापुढविनेरइयपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगरयणप्पभापुढविपओगपरिणया य,

२. अपज्जत्तगरयणप्पभापुढविपओगपरिणया य,

एवं जाव अहेसत्तमपुढविनेरइयपओगपरिणया।

प. सम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पज्जत्तगसम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया य,

२. अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया य।

एवं गब्भवक्कंतियजलयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया वि,

सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरतिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय-पओगपरिणया वि एवं चेव,

५. सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल।

द्वितीय दंडक–

प्र. भंते ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल,

२. अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल।

इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गलों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल पर्यन्त के लिए भी कहना चाहिए।

इनके प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर दो-दो भेद कहने चाहिए। तथा इन दो के भी पर्याप्त और अपर्याप्त भेद कहने चाहिए।

प्र. भंते ! द्वीन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्तक द्वीन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल,

२. अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय प्रयोग परिणत-पुद्‌गल।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक प्रयोग परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्त रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक प्रयोग परिणत पुद्‌गल,

२. अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग परिणत पुद्‌गल।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यंत नैरयिक प्रयोग परिणत पुद्‌गलों के लिए जानना चाहिए।

प्र. भंते ! संमूर्छिम-जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. पर्याप्त सम्मूर्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत-पुद्‌गल,

२. अपर्याप्त सम्मूर्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गल।

इसी प्रकार गर्भज जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गलों के लिए जानना चाहिए।

इसी प्रकार सम्मूर्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्‌गलों के लिए भी जानना चाहिए।

१. [illegible]

एवं गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया वि,

एवं जाव-सम्मुच्छिमखहयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया वि,

गब्भवक्कंतियखहयरतिरिक्खजोणियपंचिंदिय-पओगपरिणया य,

एक्केक्के पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

प. सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एगविहा पण्णत्ता, तं जहा-

अपज्जत्तगसम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदियपओगपरिणया चेव।

प. गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. पज्जत्तग-गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय-पओगपरिणया य,

२. अपज्जत्तग-गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय-पओगपरिणया य,

प. असुरकुमारभवणवासिदेवपंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. पज्जत्तग-असुरकुमारभवणवासिदेव-पंचिंदिय-पओगपरिणया य,

२. अपज्जत्तग-असुरकुमारभवणवासिदेव-पंचिंदिय-पओगपरिणया य,

एवं जाव-पज्जत्तग-थणियकुमारभवणवासिदेव-पंचिंदियपओगपरिणया य,

अपज्जत्तगथणियकुमारभवणवासिदेव-पंचिंदियपओग-परिणया य।

एवं एएणं अभिलावेणं दुपएणं भेएणं,

पिसाया जाव गंधव्वा,

चंदा जाव ताराविमाणा,

सोहम्मकप्पोवगा जाव अच्चुओ,

हिट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जकप्पाईय जाव उवरिमउवरिम-गेविज्जकप्पाईय-

विजयअणुत्तरोववाइय-कप्पाईयवेमाणियदेव-पंचिंदिय-पओगपरिणया जाव अपराजियअणुत्तरोववाइय कप्पाईय वेमाणियदेव-पंचिंदियपओगपरिणया।

प. सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पाईय वेमाणियदेव-पंचिंदियपओगपरिणयाणं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-

१. पज्जत्तग-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईय-वेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया य,

इसी प्रकार गर्भज चतुष्पद स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों का भी कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् सम्मूर्च्छिम खेचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत और

गर्भज खेचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों का कथन भी करना चाहिए।

इनके अपर्याप्त और पर्याप्त दो-दो भेद भी कहने चाहिए।

प्र. भंते ! सम्मूर्छिम-मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! वह (पुद्गल) एक प्रकार का कहा गया है, यथा-

अपर्याप्त सम्मूर्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! गर्भजमनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत-पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-

१. पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

प्र. भंते ! असुरकुमार भवनवासीदेव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-

१. पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासीदेव पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

इसी प्रकार यावत् पर्याप्त स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल और

अपर्याप्त स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों के लिए जानना चाहिए।

इसी प्रकार (पर्याप्त-अपर्याप्त) इन दो भेदों के अभिलाप से,

पिशाचों से गंधर्वों पर्यन्त वाणव्यन्तरों के,

चन्द्रों से तारा विमानों पर्यन्त ज्योतिष्क देवों के,

सौधर्म कल्पोपपन्नकों से अच्युत कल्पोपपन्नकों पर्यन्त,

अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक से उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक कल्पातीतों पर्यन्त,

विजय अनुत्तरोपपातिक से अपराजित अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवों पर्यन्त प्रयोग परिणत पुद्गलों के लिए जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-

१. पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल,

२. अपज्जत्तग-सव्वट्ठ-सिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईय-वेमाणियदेवपंचिंदिय पओग परिणया य।

२. अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल।

तइओ दंडओ–

तृतीय दण्डक–

जे अप्पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते ओरालियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया,

वे औदारिक तैजस् और कार्मणशरीर प्रयोग परिणत हैं।

जे पज्जत्ता सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते ओरालियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया,

वे औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं।

एवं जाव चउरिंदिया पज्जत्ता–

इसी प्रकार पर्याप्त चतुरिन्द्रियों पर्यन्त जानना चाहिए।

णवरं–जे पज्जत्तवायरवाउकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

विशेष–जो पुद्गल पर्याप्त वादर वायुकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते ओरालियवेउव्वियतेयाकम्मासरीरपओगपरिणया,

वे औदारिक वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं,

सेसं तं चेव।

शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदिय-पओगपरिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नारक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते वेउव्वियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया,

वे वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं।

एवं पज्जत्तया वि।

इसी प्रकार पर्याप्त नारकों के संबंध में भी जानना चाहिए।

एवं जाव–अहेसत्तमपुढविनेरइयपंचिंदिय-पओगपरिणया।

इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गलों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

जे अपज्जत्तगसम्मुच्छिमजलयरतिरिक्खजोणिय-पंचिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त सम्मूर्छिम जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते ओरालियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया।

वे औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं।

एवं पज्जत्तगा वि।

इसी प्रकार पर्याप्त पुद्गलों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

गब्भवक्कंतिया अपज्जत्तया एवं चेव,

गर्भज अपर्याप्त जलचरों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

पज्जत्तया णं एवं चेव,

पर्याप्तकों का कथन भी इसी प्रकार है।

णवरं–सरीरगाणि चत्तारि जहा बायरवाउक्काइयाणं पज्जत्तगाणं।

विशेष–पर्याप्त बादर वायुकाय के समान उनके चार शरीर होते हैं।

जहा जलयरेसु चत्तारि आलावगा भणिया,

जिस प्रकार जलचरों के चार आलापक कहे गये हैं

तहा चउप्पय-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्प-खहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा।

उसी प्रकार (स्थलचर के) चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरि-सर्प और खेचर के भी चार-चार आलापक कहने चाहिए।

जे सम्मुच्छिममणुस्सपंचिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल सम्मूर्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते ओरालियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया,

वे औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं।

एवं गब्भवक्कंतिया अपज्जत्तगा वि।

इसी प्रकार अपर्याप्त गर्भज मनुष्यों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

पज्जत्तगा वि एवं चेव,

पर्याप्तकों का कथन भी इसी प्रकार है।

णवरं–सरीरगाणि पंच भाणियव्वाणि,

विशेष–उनके पांच शरीर कहने चाहिए।

जे अपज्जत्तगा-असुरकुमारभवणवासि जहा नेरइया तहेव।

जिस प्रकार अपर्याप्तक नैरयिकों के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देवों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

एवं पज्जत्तगा वि,

इसी प्रकार पर्याप्तकों का कथन है।

एवं दुपएणं भेएणं जाव थणियकुमारा,

इसी प्रकार दो-दो भेदों के क्रम से स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

एवं पिसाया जाव गंधव्वा,

इसी प्रकार पिशाच यावत् गंधर्व,

चंदा जाव ताराविमाणा,

चंद्र यावत् ताराविमान,

सोहम्मोकप्पो जाव अच्चुओ।

सौधर्मकल्प यावत् अच्युतकल्प,

हेट्ठिम-हेट्ठिम गेवेज्जकप्पातीय जाव उवरिम उवरिम गवेज्ज कप्पातीय,

अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीत यावत् उपरिम उपरिम ग्रैवेयक कल्पातीत,

विजयअणुत्तरोववाइयकप्पाईयग जाव सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयकप्पाईयग एक्केक्केण दुयओ भेओ भाणियव्वो जाव–

विजय अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत यावत् सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत प्रत्येक (पर्याप्त-अपर्याप्त) के दो-दो भेद कहने चाहिए यावत्–

जे पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईयग-वेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते वेउव्वियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया,

वे पुद्गल वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं।

चउत्थो दण्डओ–

चतुर्थ दण्डक–

जे अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते फासिंदियपओगपरिणया।

वे स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

जे पज्जत्ता सुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते फासिंदियपओगपरिणया,

वे भी स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

जे अपज्जत्ता बायरपुढविक्काइयएगिंदियपओग-परिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते फासिंदियपओगपरिणया,

वे भी स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

एवं पज्जत्तगा वि,

इसी प्रकार पर्याप्त (बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय के पुद्गलों) के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

एवं चउक्कएणं भेएणं जाव वणस्सइकाइयएगिंदियप-ओगपरिणया।

इसी प्रकार चार-चार भेदों से वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियों तक के प्रयोग परिणत पुद्गलों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

जे अपज्जत्ता बेइंदियपओगपरिणया, ते जिब्भिंदिय-फासिंदियपओगपरिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त द्वीन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

जे पज्जत्ता बेइंदियपओगपरिणया, ते जिब्भिंदिय-फासिंदियपओगपरिणया।

जो पुद्गल पर्याप्त द्वीन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे भी रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

एवं जाव चउरिंदिया,

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जानना चाहिए।

णवरं–एक्केक्कं इंदियं वड्ढेयव्वं।

विशेष–एक एक इन्द्रिय बढ़ानी चाहिए।

जे अपज्जत्तारयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदिय-पओग-परिणया,

जो पुद्गल अपर्याप्त रत्नप्रभापृथ्वी नारक पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं,

ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय- फासिंदिय-पओगपरिणया,

वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

एवं पज्जत्तगा वि,

इसी प्रकार पर्याप्त (रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक के प्रयोग परिणत पुद्गलों) के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

एवं सव्वे भाणियव्वा, तिरिक्ख जोणिय, मणुस्स, देवा जाव जे पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय कप्पाईयग-वेमाणियदेवपंचिंदियपओगपरिणया, ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदयपओग परिणया,

इसी प्रकार (सभी नैरयिक) तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य और देवों के यावत् जो पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

पंचमो दंडओ–

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालियतेया-कम्मासरीरप्पओगपरिणया, ते फासिंदियपओगपरिणया,

जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय एगिंदियओरालिय-तेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया, ते फासिंदिय-पओगपरिणया,

अपज्जत्तबायरपुढविकाइयएगिंदियओरालियतेया-कम्मासरीरप्पओगपरिणया, ते फासिंदियपओगपरिणया,

एवं पज्जत्तगा वि।

एवं एएणं अभिलावेणं जस्स जइ इंदियाणि सरीराणि य तस्स ताणि भाणियव्वाणि जाव–

जे य पज्जत्ता सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदिय-वेउव्वियतेयाकम्मा सरीरप्पओग परिणया,

ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियपओगपरिणया,

छट्ठो दंडओ–

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया,

ते वण्णओ–

१. कालवण्णपरिणया वि,
२. नीलवण्णपरिणया वि,
३. लोहियवण्णपरिणया वि,
४. हालिद्दवण्णपरिणया वि,
५. सुक्किल्लवण्णपरिणया वि,

गंधओ–

१. सुब्भिगंधपरिणया वि,
२. दुब्भिगंधपरिणया वि,

रसओ–

१. तित्तरसपरिणया वि,
२. कडुयरसपरिणया वि,
३. कसायरसपरिणया वि,
४. अंबिलरसपरिणया वि,
५. महुररसपरिणया वि,

फासओ–

१. कक्खडफासपरिणया वि जाव–
८. लुक्खफासपरिणया वि,

संठाणओ–

१. परिमंडलसंठाणपरिणया वि,
२. वट्टसंठाणपरिणया वि,
३. तंससंठाणपरिणया वि,
४. चउरंससंठाणपरिणया वि,
५. आययसंठाणपरिणया वि,

पाँचवाँ दण्डक–

जो पुद्‌गल अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं वे स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

जो पुद्‌गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं वे भी स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

जो पुद्‌गल अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं वे स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार इस अभिलाप से जिसके जितनी इन्द्रियाँ और शरीर हैं उसके वे कहना चाहिए यावत्–

जो पुद्‌गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं,

वे. श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

छट्ठा दण्डक–

जो पुद्‌गल अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं।

वे वर्ण से–

१. कृष्णवर्ण परिणत भी हैं,
२. नील वर्ण परिणत भी हैं,
३. लोहित वर्ण परिणत भी हैं,
४. पीत वर्ण परिणत भी हैं,
५. शुक्ल वर्ण परिणत भी हैं।

वे गंध से–

१. सुरभिगन्ध परिणत भी हैं।
२. दुरभिगन्ध परिणत भी हैं।

वे रस से–

१. तिक्त रस परिणत भी हैं,
२. कटुक रस परिणत भी हैं,
३. कषाय रस परिणत भी हैं,
४. अम्ल रस परिणत भी हैं,
५. मधुर रस परिणत भी हैं।

वे स्पर्श से–

१. कर्कश स्पर्श परिणत भी हैं यावत्
८. रूक्ष स्पर्श परिणत भी हैं।

संस्थान से–

१. परिमण्डल संस्थान परिणत भी हैं।
२. वृत्त संस्थान परिणत भी हैं,
३. त्र्यंस संस्थान परिणत भी हैं,
४. चतुरस्र संस्थान परिणत भी हैं,
५. आयत संस्थान परिणत भी हैं।

जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियपओगपरिणया एवं चेव,

एवं जहाणुपुव्वीए नेयव्वं जाव–

जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेवा पंचेंदिय-पओगपरिणया, ते वन्नओ कालवन्नपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि,

सत्तमो दंडओ–

जे अपज्जत्ता सुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालियतेया-कम्मासरीरप्पओगपरिणया,

ते वन्नओ कालवन्नपरिणया वि जाव आययसंठाण-परिणया वि,

जे पज्जत्ता-सुहुमपुढविकाइय एवं चेव,

एवं जहाऽऽणुपुव्वीए नेयव्वं जस्स जइ सरीराणि जाव–

जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईयगवेमा-णियदेवपंचिंदियवेउव्वियतेयाकम्मासरीरप्पओगपरिणया,

ते वन्नओ कालवण्णपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि,

अट्ठमो दंडओ–

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियफासिंदियप-ओगपरिणया, ते वन्नओ कालवण्णपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि,

जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय एवं चेव।

एवं जहा आणुपुव्वीए जस्स जइ इंदियाणि तस्स तइ भाणियव्वाणि जाव–

जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईयग-वेमाणियदेवपंचिंदियसोइंदिय जाव फासिंदियप-ओगपरिणया, ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि,

नवमो दण्डओ–

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालियतेया-कम्मासरीरफासिंदियपओगपरिणया,

ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि,

जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय एवं चेव।

एवं जहा आणुपुव्वीए जस्स जइ सरीराणि इंदियाणि य तस्स तइ भाणियव्वाणि जाव–

जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पाईयग वेमाणिय देव पंचिंदिय-वेउव्वियतेयाकम्मासरीरसोइंदिय जाव फासिंदियपओगपरिणया, ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि।

एवं एए नव दंडगा भणिया। *–विया. स. ८, उ. १, सु. ४-४५*

जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे भी इसी प्रकार हैं।

इसी प्रकार सभी क्रमपूर्वक जानना चाहिए यावत्–

जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

सातवाँ दण्डक–

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं

वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

इसी प्रकार यथानुक्रम से जिनके जितने शरीर हैं उनके उतने ही कहने चाहिए यावत्–

जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं।

वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

आठवाँ दण्डक–

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

इसी प्रकार यथानुक्रम से जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों उसके उतनी इन्द्रियाँ कहनी चाहिए यावत्–

जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयतसंस्थान परिणत भी हैं।

नवमा दण्डक–

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर तथा स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं

वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के लिए भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

इसी प्रकार यथानुक्रम से सब जानने चाहिए। जिसके जितने शरीर और इन्द्रियाँ हों उसके वे ही कहने चाहिए यावत्–

जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

इस प्रकार ये नौ दंडक कहे गये हैं।

४४. णव दंडगेहिं मीसापरिणयपोग्गलाणं परूवणं–

प. मीसापरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. एगिंदियमीसापरिणया जाव

५. पंचिंदियमीसापरिणया।

प. एगिंदियमीसापरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! एवं जहा पओगपरिणएहिं नव दंडगा भणिया एवं मीसापरिणएहि वि नव दंडगा भाणियव्वा, तहेव सव्वं निरवसेसं।

णवरं–अभिलावो मीसापरिणया भाणियव्वाओ,

सेसं तं चेव जाव–

जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईय-वेमाणियदेव-पंचेंदिय-वेउव्विय तेयाकम्मासरीर-सोइंदिय जाव फासिंदिय पओगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि जाव आययसंठाणपरिणया वि।

–विया. स. ८, उ. १, सु. ४६-४७

४६. नव दण्डकों द्वारा मिश्र परिणत पुद्गलों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! मिश्र परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. एकेन्द्रिय मिश्र परिणत यावत्

५. पंचेन्द्रिय मिश्र परिणत।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय मिश्र परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग परिणत पुद्गलों के नौ दंडक कहे हैं उसी प्रकार मिश्र परिणत पुद्गलों के भी नौ दंडक कहने चाहिए। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।

विशेष–(प्रयोग परिणत के स्थान में) "मिश्र परिणत" ऐसा पाठ कहना चाहिए।

शेष सब उसी प्रकार जानना चाहिए यावत्–

जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय प्रयोग परिणत है वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् आयत संस्थान परिणत भी हैं।

४५. वीससापरिणयपोग्गलाणं भेय-प्पभेया–

प. वीससापरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. वण्णपरिणया, २. गंधपरिणया, ३. रसपरिणया,

४. फासपरिणया, ५. संठाणपरिणया।

जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कालवण्णपरिणया जाव ५. सुक्किल्लवण्णपरिणया।

जे गंधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सुब्भिगंधपरिणया वि, २. दुब्भिगंधपरिणया वि।

जे रसपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. तित्तरसपरिणया जाव ५. महुररसपरिणया।

जे फासपरिणया ते अट्ठविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. कक्खडफासपरिणया जाव ८. लुक्खफासपरिणया,

जे संठाणपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. परिमंडलसंठाणपरिणया जाव आययसंठाणपरिणया,

एवं जहा पण्णवणाए[1] तहेव निरवसेसं जाव–

जे संठाणओ आयय संठाण परिणया

ते वण्णओ कालवण्ण परिणया वि जाव लुक्खफासपरिणया वि।

–विया. स. ८, उ. १, सु. ४८

४५. विश्रसा परिणत पुद्गलों के भेद-प्रभेद–

प्र. भंते ! विश्रसा परिणत (स्वभाव से परिणत) पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. वर्ण परिणत, २. गंध परिणत, ३. रस परिणत,

४. स्पर्श परिणत, ५. संस्थान परिणत।

जो वर्ण परिणत पुद्गल हैं–वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. कृष्ण वर्ण रूप परिणत यावत् ५. शुक्लवर्ण रूप परिणत।

जो गंध परिणत हैं–वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. सुगंध परिणत, २. दुर्गन्ध परिणत।

जो रस परिणत पुद्गल हैं वे पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. तिक्त रस परिणत यावत् ५. मधुर रस परिणत।

जो स्पर्श परिणत पुद्गल हैं वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कर्कश स्पर्श परिणत यावत् ८. रूक्ष स्पर्श परिणत।

जो संस्थान परिणत पुद्गल हैं वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. परिमण्डल संस्थान परिणत यावत् ५. आयत संस्थान परिणत।

इसी प्रकार जैसे प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में जो वर्णन किया गया है वही सब जानना चाहिए यावत्–

जो पुद्गल संस्थान से आयत संस्थान परिणत हैं,

वे वर्ण से कृष्ण वर्ण परिणत भी हैं यावत् स्पर्श से रुक्ष स्पर्श परिणत भी हैं पर्यन्त जानना चाहिए।

---

१. (क) वर्ण गंध आदि परिणत पुद्गलों का विस्तृत वर्णन अजीव अध्ययन में देखें– (ख) पण्ण. प. १, सु. ६, (ग) जीवा. पडि. १, सु. ५

४६. एगदव्वस्स पयोगपरिणयाइ परूवणं–

प. एगे भंते ! दव्वे किं पओगपरिणए, मीसापरिणए, वीससापरिणए?

उ. गोयमा ! पओगपरिणए वा, मीसापरिणए वा, वीससापरिणए वा।

प. भंते ! इ पओगपरिणए किं मणप्पओगपरिणए, वइप्पओगपरिणए, कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! मणप्पओगपरिणए वा, वइप्पओगपरिणए वा, कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते! जइ मणप्पओगपरिणए किं सच्चमणप्पओगपरिणए, मोसमणप्पओगपरिणए, सच्चामोसमणप्पओगपरिणए, असच्चामोसमणप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! १. सच्चमणप्पओगपरिणए वा,
२. मोसमणप्पओगपरिणए वा,
३. सच्चामोसमणप्पओगपरिणए वा,
४. असच्चामोसमणप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ सच्चमणप्पओगपरिणए किं–
१. आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए,
२. अणारंभसच्चमणप्पओगपरिणए,
३. सारंभसच्चमणप्पओगपरिणए,
४. असारंभसच्चमणप्पओगपरिणए,
५. समारंभसच्चमणप्पओगपरिणए,
६. असमारंभसच्चमणप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए वा जाव असमारंभसच्चमणप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ मोसमणप्पओगपरिणए किं–
१. आरंभमोसमणप्पओगपरिणए जाव
६. असमारंभमोसमणप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एवं जहा सच्चेणं तहा मोसेण वि,

एवं सच्चामोसमणप्पओगपरिणए वि,

एवं असच्चामोसमणप्पओगपरिणए वि।

प. भंते ! जइ वइप्पओगपरिणए,
किं सच्चवइप्पओगपरिणए जाव असच्चामोसवइप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एवं जहा मणप्पओगपरिणए तहा वइप्पओगपरिणए वि जाव असमारंभ असच्चामोसवइप्पओगपरिणए वा।

४६. एक द्रव्य के प्रयोग परिणतादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! एक पुद्गल द्रव्य क्या प्रयोग परिणत होता है, मिश्रपरिणत होता है या विश्रसा परिणत होता है?

उ. गौतम ! एक द्रव्य प्रयोग परिणत भी होता है, मिश्रपरिणत भी होता है और विश्रसा परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है तो क्या मन:प्रयोग परिणत, वाक्प्रयोग परिणत, काय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! वह मनः प्रयोग परिणत भी होता है, वाक् प्रयोग परिणत भी होता है और काय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह द्रव्य मन:प्रयोग परिणत होता है तो क्या सत्यमन:प्रयोग परिणत, मृपामन:प्रयोग परिणत, सत्या-मृपामन:प्रयोग परिणत या असत्यामृपामन:प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! १. वह सत्यमनः प्रयोग परिणत,
२. मृपामन:प्रयोग परिणत,
३. सत्या-मृपामनः प्रयोग परिणत,
४. असत्यामृपामनः प्रयोग परिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य सत्यमन:प्रयोग परिणत होता है तो क्या वह–
१. आरम्भ सत्यमनः प्रयोग परिणत,
२. अनारम्भ सत्यमन:प्रयोग परिणत,
३. सारम्भ सत्यमनः प्रयोग परिणत,
४. असारंभ सत्य मनः प्रयोग परिणत,
५. समारंभ सत्य मनः प्रयोग परिणत,
६. असमारंभ सत्यमनः प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! वह आरम्भ सत्यमनः प्रयोग परिणत भी होता है यावत् असमारंभ सत्यमनः प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य मृषामनः प्रयोग परिणत होता है तो क्या–
१. आरम्भ मृषामनः प्रयोग परिणत होता है यावत्
६. असमारम्भ मृषामन:प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार सत्यमनः प्रयोग परिणत के संबंध में कहा है उसी प्रकार मृषामन:प्रयोग परिणत के संबंध में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार सत्यामृषामन:प्रयोग परिणत पुद्गलों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार असत्यामृषामन:प्रयोग परिणत पुद्गलों के सम्बन्ध में जानना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य वाक्प्रयोग परिणत होता है तो क्या सत्यवाक्प्रयोग परिणत होता है यावत् असत्या-मृषावाक्प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार मन:प्रयोग परिणत के सम्बन्ध में कहा है उसी प्रकार वचन प्रयोग परिणत के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए यावत् असमारम्भ असत्यामृषा वचन प्रयोग परिणत पर्यन्त कहना चाहिए।

प. भंते ! जइ कायप्पओगपरिणए किं–
१. ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए,
२. ओरालियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,
३. वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए,
४. वेउव्वियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,
५. आहारगसरीर-कायप्पओगपरिणए,
६. आहारगमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,
७. कम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए ?

उ. गोयमा ! ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा जाव कम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए, किं एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए जाव पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओग परिणए ?

उ. गोयमा ! एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा जाव पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए, किं–
पुढविक्काइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए जाव–
वणस्सइकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए ?

उ. गोयमा ! पुढविक्काइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा जाव–
वणस्सइकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ पुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए किं–
सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए,
बायरपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए ?

उ. गोयमा ! सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा,
बायरपुढविक्काइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए, किं–
पज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए,
अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए ?

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य काय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–
१. औदारिक शरीर काय प्रयोग परिणत,
२. औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग परिणत,
३. वैक्रिय शरीर काय प्रयोग परिणत,
४. वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग परिणत,
५. आहारक शरीर काय प्रयोग परिणत,
६. आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोग परिणत,
७. कार्मण शरीर काय प्रयोग परिणत होता है ?

उ. गौतम ! वह एक द्रव्य औदारिक शरीर काय प्रयोग परिणत भी होता है यावत् कार्मण शरीर काय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत होता है तो क्या एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत होता है ?

उ. गौतम ! वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय औदारिक शरीर काय प्रयोग परिणत भी होता है यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर काय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत होता है तो क्या वह–
पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत होता है यावत्–
वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत होता है ?

उ. गौतम ! वह एक द्रव्य पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत भी होता है यावत्–
वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–
सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या
बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है ?

उ. गौतम ! वह एक द्रव्य सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है,
बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–
पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या
अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है ?

उ. गोयमा ! पज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय- ओरालिय-सरीर-कायप्पओगपरिणए वा

अपज्जत्त-सुहुमपुढविकाइय-एगिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

एवं बायरा वि।

एवं जाव वणस्सइकाइयाणं चउक्कओ भेओ।

एवं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दुयओ भेओ पज्जत्तगा य, अपज्जत्तगा य।

प. भंते ! जइ पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्प-ओगपरिणए, मणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा, मणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए, किं–

जलयर-तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए,

थलयर-खहयर-तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! **एवं चउक्कओ भेओ जाव खहयराणं।**

प. भंते ! जइ मणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्प-ओगपरिणए, किं–

सम्मुच्छिममणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्प-ओगपरिणए,

गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! दोसु वि।

प. भंते ! जइ गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए, किं–

पज्जत्त-गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदिय- ओरालिय-सरीर-कायप्पओगपरिणए,

अपज्जत्त-गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदिय-ओरालिय-सरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! पज्जत्त-गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा,

अपज्जत्त-गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदिय-ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

उ. गौतम ! वह एक द्रव्य पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है,

अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है।

इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक का भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय के चार-चार भेद (सूक्ष्म बादर पर्याप्त और अपर्याप्त) के विषय में कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार बेइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों के दो-दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त के विषय में भी जानने चाहिए।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो,

क्या तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! वह एक द्रव्य तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है, मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–

जलचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या

स्थलचर और खेचर तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! **पूर्व के समान यावत् खेचरों के (सम्मूर्छिम, गर्भज, पर्याप्त और अपर्याप्त) चार-चार भेदों के विषय में जानना चाहिए।**

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–

सम्मूर्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या

गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! वह दोनों (सम्मूर्छिम और गर्भज) मनुष्यों में पंचेन्द्रिय काय प्रयोग परिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–

पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या

अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है और

अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! जइ ओरालियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं–एगिंदिय-ओरालियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए जाव–

पंचिंदिय-ओरालियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एवं जहा ओरालियसरीर-कायप्पओगपरिणएण आलावगो भणिओ तहा ओरालियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो,

णवरं–बायरवाउक्काइय-गब्भवक्कंतिय-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साण य,

एएसि णं पज्जत्तापज्जत्तगाणं, सेसाणं अपज्जत्तगाणं।

प्र. भंते ! जइ वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं–एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए जाव पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा जाव–

पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प्र. भंते ! जइ एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए,

अवाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! वाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए,

नो अवाउक्काइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए।

एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे[1] वेउव्वियसरीरं भणियं तहा इह वि भाणियव्वं जाव–

पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-कप्पाईय-वेमाणियदेव-पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा,

अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-कप्पाईय-वेमाणियदेव-पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प्र. भंते ! जइ वेउव्वियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं एगिंदिय-वेउव्वियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए-जाव–

पंचिंदिय-वेउव्वियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एवं जहा वेउव्वियं तहा वेउव्वियमीसगं पि,

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य औदारिक मिश्रशरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो,

क्या एकेन्द्रिय औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है यावत्–

पंचेन्द्रिय औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार औदारिक शरीरकाय प्रयोग परिणत का आलापक कहा उसी प्रकार औदारिक मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत का आलापक भी कहना चाहिए।

विशेष–बादरवायुकायिक, गर्भजपंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, गर्भज मनुष्यों के पर्याप्त-अपर्याप्त भेदों और शेष के अपर्याप्त जीवों के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है यावत् पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! वह द्रव्य एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है यावत्–

पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो

क्या वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या

वायुकाय से अतिरिक्त एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! वह द्रव्य वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है।

किन्तु वायुकाय से अतिरिक्त एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत नहीं होता है।

इस प्रकार इस अभिलाप से जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के अवगाहना संस्थान पद में वैक्रिय शरीर के संबंध में कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत्–

पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है,

अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत भी होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो–

क्या एकेन्द्रिय वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है यावत्–

पंचेन्द्रिय वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार वैक्रिय शरीरकाय प्रयोग परिणत के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत के विषय में भी कहना चाहिए।

1. पण्ण. पद २१, सु. १५१४-१५२०/५१

णवरं–देव-नेरइयाणं अपज्जत्तगाणं, सेसाणं पज्जत्तगाणं तहेव जाव नो पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-देवपंचिंदिय-वेउव्वियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,

अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइयदेव-पंचिंदिय-वेउव्वियमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए।

प. भंते ! जइ आहारगसरीर-कायप्पओगपरिणए, किं–

मणुस्साहारगसरीर-कायप्पओगपरिणए,

अमणुस्साहारगसरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एवं जहा ओगाहणसंठाण[1] आहारगसरीर भणियं तहा इह वि भाणियव्वं जाव इड्ढिपत्त-पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तग-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारगसरीर- कायप्पओग-परिणए,

नो अणिड्ढिपत्त-पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्त- संखेज्ज-वासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्स- आहारग-सरीर- कायप्पओगपरिणए।

प. भंते ! जइ आहारगमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं मणुस्साहारगमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए,

अमणुस्साहारगमीसासरीर-कायप्पओगपरिणए?

उ. गोयमा ! एवं जहा आहारगं तहेव मीसगं पि निरवसेसं भाणियव्वं।

प. भंते ! जइ कम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए,

किं एगिंदियकम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए जाव–

पंचिंदियकम्मासरीर-कायप्पओग परिणए?

उ. गोयमा ! एगिंदिय-कम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए,

एवं जहा ओगाहणा संठाणे कम्मगस्स भेओ तहेव इहा वि जाव–

पज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तरोववाइयकप्पातीयवेमाणिय-देवपंचिंदियकम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए वा,

अपज्जत्त सव्वट्ठसिद्ध अणुत्तरोववाइयकप्पातीय-वेमाणियदेवपंचिंदियकम्मासरीर-कायप्पओगपरिणए वा।

प. भंते ! जइ मीसापरिणए किं मणमीसापरिणए, वइमीसापरिणए, कायमीसापरिणए?

उ. गोयमा ! मणमीसापरिणए वा, वइमीसापरिणए वा, कायमीसापरिणए वा।

विशेष–अपर्याप्त देव नारकों और शेष सब के पर्याप्तकों को वैक्रिय मिश्रशरीरकाय प्रयोग परिणत होता है उसी प्रकार यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत नहीं होता है,

किन्तु अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि एक द्रव्य आहारक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो क्या–

मनुष्य आहारक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या

अमनुष्य आहारक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र अवगाहना संस्थान पद में आहारक शरीर के लिए कहा उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत् आहारक लब्धियुक्त प्रमत्त संयत सम्यक् दृष्टि पर्याप्त संख्यातवर्ष की आयु वाला कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य आहारक शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है,

किन्तु ऋद्धि (आहारकलब्धि) अप्राप्त प्रमत्त संयत सम्यक् दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाला कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य आहारक शरीरकाय प्रयोग परिणत नहीं होता है।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य आहारकमिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो

क्या मनुष्य आहारक मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है या

अमनुष्य आहारक मिश्र शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार आहारक शरीर के संबंध में कहा उसी प्रकार आहारक मिश्र शरीर के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य कार्मण शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है तो

क्या–एकेन्द्रिय कार्मण शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है यावत्–

पंचेन्द्रिय कार्मणशरीरकाय प्रयोग परिणत होता है?

उ. गौतम ! एक द्रव्य एकेन्द्रिय कार्मण शरीरकाय प्रयोग परिणत होता है।

जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के अवगाहना संस्थान पद में कार्मण शरीर के भेद कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत्–

पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय कार्मणशरीरकाय प्रयोग परिणत होता है,

अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक पंचेन्द्रिय कार्मण शरीरकाय प्रयोग होता है।

प्र. भंते ! यदि एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है तो क्या मनोमिश्रपरिणत होता है, वचनमिश्र परिणत होता है, कायमिश्रपरिणत होता है?

उ. गौतम ! वह मनोमिश्र परिणत भी होता है, वचनमिश्रपरिणत भी होता है और कायमिश्र परिणत भी होता है।

भंते! जइ मणमीसापरिणए किं
१. सच्चमणमीसापरिणए वा,
२. मोसमणमीसापरिणए वा,
३. सच्चामोसमणमीसापरिणए वा,
४. असच्चामोसमणमीसापरिणए वा?

प्र. भंते! यदि वह एक द्रव्य मनोमिश्र परिणत होता है तो क्या–
१. सत्यमनोमिश्र परिणत होता है,
२. मृषा मनोमिश्र परिणत होता है,
३. सत्यामृषामनोमिश्र परिणत होता है,
४. असत्यामृषामनोमिश्र परिणत होता है?

गोयमा ! जहा पओगपरिणए तहा मीसापरिणए वि भाणियव्वं निरवसेसं जाव–

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग परिणत पुद्गल के सम्वन्ध में कहा उसी प्रकार मिश्र परिणत के सम्वन्ध में भी सब कहना चाहिए। यावत्–

पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-कप्पाईय-वेमाणियदेव-पंचिंदिय-कम्मासरीर-मीसापरिणए वा,
अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-कप्पाईय-वेमाणियदेव-पंचिंदिय-कम्मासरीर-मीसापरिणए वा।

पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय कार्मण शरीर मिश्र परिणत भी होता है,
अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय कार्मण शरीर मिश्र परिणत भी होता है।

भंते ! जइ वीससापरिणए किं वण्णपरिणए, गंधपरिणए, रसपरिणए, फासपरिणए, संठाणपरिणए?

प्र. भंते ! यदि एक द्रव्य विश्रसापरिणत (स्वभावपरिणत) होता है तो क्या वह वर्णपरिणत होता है, गंध परिणत होता है, रसपरिणत होता है, स्पर्श परिणत होता है या संस्थान परिणत होता है?

गोयमा ! वण्णपरिणए वा, गंधपरिणए वा, रसपरिणए वा, फासपरिणए वा, संठाणपरिणए वा।

उ. गौतम ! वह द्रव्य वर्ण परिणत होता है, गन्ध परिणत होता है, रसपरिणत होता है, स्पर्श परिणत होता है और संस्थान परिणत भी होता है।

भंते ! जइ वण्णपरिणए किं–
कालवन्नपरिणए जाव सुक्किल्लवण्णपरिणए?

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य वर्ण परिणत होता है तो क्या–
वह कृष्णवर्णपरिणत होता है यावत् शुक्लवर्ण परिणत होता है?

गोयमा ! कालवण्णपरिणए वा जाव सुक्किल्लवण्णपरिणए वा।

उ. गौतम ! वह द्रव्य कृष्णवर्ण परिणत भी होता है यावत् शुक्लवर्णपरिणत भी होता है।

भंते ! जइ गंधपरिणए किं सुब्भिगंधपरिणए, दुब्भिगंधपरिणए?

प्र. भंते ! यदि वह एक द्रव्य गंध परिणत होता है तो क्या सुरभिगंध परिणत होता है या दुरभिगंध परिणत होता है?

गोयमा ! सुब्भिगंधपरिणए वा, दुब्भिगंधपरिणए वा।

उ. गौतम ! वह सुरभिगंधपरिणत भी होता है और दुरभिगंध परिणत भी होता है।

भंते ! जइ रसपरिणए किं तित्तरसपरिणए जाव महुररसपरिणए?

प्र. भंते ! यदि एक द्रव्य रसपरिणत होता है तो क्या तिक्तरसपरिणत होता है यावत् मधुररस परिणत होता है?

गोयमा ! तित्तरसपरिणए वा जाव महुररसपरिणए वा।

उ. गौतम ! वह तिक्तरसपरिणत भी होता है यावत् मधुररस-परिणत भी होता है।

भंते ! जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए जाव लुक्खफासपरिणए?

प्र. भंते ! यदि एक द्रव्य स्पर्शपरिणत होता है तो क्या कर्कशस्पर्श परिणत होता है यावत् रुक्षस्पर्श परिणत होता है?

गोयमा ! कक्खडफासपरिणए वा जाव लुक्खफास-परिणए वा।

उ. गौतम ! वह कर्कशस्पर्श परिणत भी होता है यावत् रुक्षस्पर्श परिणत भी होता है।

भंते ! जइ संठाणपरिणए किं परिमंडलसंठाणपरिणए जाव आययसंठाणपरिणए?

प्र. भंते ! यदि एक द्रव्य संस्थान परिणत होता है तो क्या वह परिमण्डल संस्थान परिणत होता है यावत् आयतसंस्थान परिणत होता है?

. गोयमा ! परिमंडलसंठाणपरिणए वा जाव आययसंठाणपरिणए वा। *–विया. स. ८, उ. १, सु. ४९-७९*

उ. गौतम ! वह परिमण्डल संस्थान परिणत भी होता है यावत् आयत संस्थान परिणत भी होता है।

ाण्हं दव्वाणं पयोगपरिणयाइ परूवणं–

४६. दो द्रव्यों के प्रयोग परिणतादि का प्ररूपण–

. दो भंते ! दव्वा किं पओगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया?

प्र. भंते ! दो (पुद्गल) द्रव्य क्या प्रयोग परिणत होते हैं, मिश्र परिणत होते हैं या विश्रसा परिणत होते हैं?

. गोयमा ! १. पओगपरिणया वा,

उ. गौतम ! वे १. प्रयोग परिणत होते हैं,

२. मीसापरिणया वा,
३. वीससापरिणया वा,
४. अहवा एगे पओगपरिणए, एगे मीसापरिणए,
५. अहवा एगे पओगपरिणए, एगे वीससापरिणए,
६. अहवा एगे मीसापरिणए, एगे वीससापरिणए।

प. भंते ! जइ पओगपरिणया किं मणप्पओगपरिणया, वइप्पओगपरिणया, कायप्पओगपरिणया?

उ. गोयमा ! १. मणप्पओगपरिणया,
२. वइप्पओगपरिणया,
३. कायप्पओगपरिणया,
४. अहवेगे मणप्पओगपरिणए, एगे वइप्पओगपरिणए,
५. अहवेगे मणप्पओगपरिणए, एगे कायप्पओगपरिणए,
६. अहवेगे वइप्पओगपरिणए, एगे कायप्पओगपरिणए।

प. भंते ! जइ मणप्पओगपरिणया किं
१. सच्चमणप्पओगपरिणया,
२. असच्चमणप्पओगपरिणया,
३. सच्चामोसमणप्पओगपरिणया,
४. असच्चामोसमणप्पओगपरिणया?

उ. गोयमा ! १. सच्चमणप्पओगपरिणया वा जाव

२. मिश्र परिणत होते हैं,
३. विश्रसा परिणत होते हैं,
४. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है और एक मिश्रपरिणत होता है।
५. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है और एक विश्रसापरिणत होता है।
६. अथवा एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है और एक विश्रसापरिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि वे दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं तो क्या वे मन:प्रयोग परिणत, वचन प्रयोग परिणत या कायप्रयोग परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! वे १. मन:प्रयोगपरिणत भी होते हैं,
२. वचन प्रयोग परिणत भी होते हैं,
३. काय प्रयोग परिणत भी होते हैं,
४. अथवा एक द्रव्य मन:प्रयोग परिणत होता है और दूसरा वचन प्रयोग परिणत होता है,
५. अथवा एक द्रव्य मन:प्रयोग परिणत होता है और दूसरा काय प्रयोग परिणत होता है।
६. अथवा एक द्रव्य वचन प्रयोग परिणत होता है और दूसरा काय प्रयोग परिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि वे दो द्रव्य मन:प्रयोग परिणत होते हैं तो क्या वे-
१. सत्यमन: प्रयोग परिणत होते हैं,
२. असत्यमन:प्रयोग परिणत होते हैं,
३. सत्यामृषामन:प्रयोग परिणत होते हैं,
४. असत्यामृषामन:प्रयोग परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! सत्यमन:प्रयोग परिणत भी होता है यावत्

अहवा एगे आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए, एगे अणारंभसच्चमणप्पओगपरिणए।

एवं एएणं गमएणं दुयसंजोएणं नेयव्वं,

सव्वे संजोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा जाव सव्वट्ठसिद्धगत्ति।

जहा पओग परिणया तहा मीसापरिणया वि भाणियव्वा।

एवं वीससापरिणया वि जाव–

अहवा एगें चउरंससंठाणपरिणए एगे आययसंठाणपरिणए वा। *–विया. स. ८, उ. १, सु. ८०-८५*

अथवा एक द्रव्य आरम्भसत्यमनःप्रयोग परिणत होता है और एक द्रव्य अनारम्भ सत्यमनःप्रयोग परिणत होता है।

इसी प्रकार इस आलापक से द्विसंयोगी भंग कहने चाहिए।

जहाँ जितने द्विकसंयोगी होते हैं वहाँ वे सब द्विकसंयोगी भंग यावत् सर्वार्थसिद्ध वैमानिक देव पर्यन्त कहना चाहिए।

जैसे प्रयोग परिणत के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार मिश्रपरिणत के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

इसी प्रकार विश्रसा परिणत के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए यावत्–

अथवा एक द्रव्य चतुरस्रसंस्थानपरिणत भी होता है और एक आयतसंस्थान परिणत भी होता है।

४७. तिण्हं दव्वाणं पयोगपरिणयाइ परूवणं–

प. तिन्नि भंते ! दव्वा किं पओगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया?

उ. गोयमा ! पओगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा।

१. अहवा एगे पओगपरिणए दो मीसापरिणया,

२. अहवा एगे पओगपरिणए दो वीससापरिणया,

३. अहवा दो पओगपरिणया एगे मीसापरिणए,

४. अहवा दो पओगपरिणया एगे वीससापरिणए,

५. अहवा एगे मीसापरिणए दो वीससापरिणया,

६. अहवा दो मीसापरिणया एगे वीससापरिणए,

७. अहवा एगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए एगे वीससापरिणए।

प. भंते ! जइ पओगपरिणया किं मणप्पओगपरिणया, वइप्पओगपरिणया, कायप्पओगपरिणया?

उ. गोयमा ! मणप्पओगपरिणया वा,

एवं एक्कगसंजोगो, दुयासंजोगो, तियासंजोगो भाणियव्वो।

प. भंते ! जइ मणप्पओगपरिणया किं–

१. सच्चमणप्पओगपरिणया,
२. असच्चमणप्पओगपरिणया,
३. सच्चामोसमणप्पओगपरिणया,
४. असच्चामोसमणप्पओगपरिणया?

उ. गोयमा ! सच्चमणप्पओगपरिणया वा जाव– असच्चामोसमणप्पओगपरिणया वा,

४७. तीन द्रव्यों के प्रयोग परिणतादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या तीन द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं, मिश्र परिणत होते हैं या विश्रसा परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! वे तीन द्रव्य प्रयोग परिणत भी होते हैं, मिश्रपरिणत भी होते हैं और विश्रसापरिणत भी होते हैं।

१. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है और दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं।

२. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है और दो द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

३. अथवा दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है।

४. अथवा दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

५. अथवा एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है और दो द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

६. अथवा दो द्रव्य मिश्र परिणत होते हैं और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

७. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि वे तीन द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं तो क्या वे मनःप्रयोग परिणत होते हैं, वचन प्रयोग परिणत होते हैं या काय प्रयोग परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! वे (तीन द्रव्य) मनःप्रयोग परिणत भी होते हैं आदि इस प्रकार एक संयोगी, द्विकसंयोगी और त्रिकसंयोगी भंग कहने चाहिए।

प्र. यदि वे तीन द्रव्य मनःप्रयोग परिणत होते हैं तो क्या–

१. वे सत्यमनःप्रयोग परिणत होते हैं,
२. असत्यमनःप्रयोग परिणत होते हैं,
३. सत्यामृषामनःप्रयोग परिणत होते हैं,
४. असत्यामृषामनःप्रयोग परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! वे तीन द्रव्य सत्यमनःप्रयोग परिणत भी होते हैं यावत् असत्यामृषामनःप्रयोग परिणत भी होते हैं।

अहवा एगे सच्चमणप्पओगपरिणए, दो मोसमणप्पओगपरिणया।

एवं दुयासंजोगो तियासंजोगो भाणियव्वो,

एत्थ वि तहेव जाव

अहवा एगे तंससंठाणपरिणए वा, एगे चउरंससंठाणपरिणए वा, एगे आययसंठाणपरिणए वा।

–विया. स. ८, उ. १, सु. ८६-८८

अथवा एक द्रव्य सत्य मन:प्रयोग परिणत होता है और दो द्रव्य मृषामन:प्रयोग परिणत होते हैं।

इस प्रकार यहाँ पर भी द्विक संयोगी और त्रिक संयोगी भंग कहने चाहिए।

यहाँ भी पूर्व की तरह (संस्थान के लिए)

अथवा एक द्रव्य त्र्यस्र (त्रिकोण) संस्थान परिणत होता है, एक द्रव्य समचतुरस्र संस्थान परिणत होता है, एक आयत संस्थान परिणत होता है पर्यन्त कहना चाहिए।

४८. चउप्पभिइ अणंतदव्वाणं पयोगपरिणयाइ परूवणं–

प. चत्तारि भंते ! दव्वा किं पओगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया?

उ. गोयमा ! पओगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा,

१. अहवा एगे पओगपरिणए तिन्नि मीसापरिणया,

२. अहवा एगे पओगपरिणए तिन्नि वीससापरिणया,

३. अहवा दो पओगपरिणया दो मीसापरिणया,

४. अहवा दो पओगपरिणया दो वीससापरिणया,

५. अहवा तिन्नि पओगपरिणया एगे मीससापरिणए,

६. अहवा तिन्नि पओगपरिणया एगे वीससापरिणए,

७. अहवा एगे मीसापरिणए तिन्नि वीससापरिणया,

८. अहवा दो मीसापरिणया दो वीससापरिणया,

९. अहवा तिन्नि मीसापरिणया एगे वीससापरिणए,

१. अहवा एगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए, दो [illegible]

२. [illegible]

३. [illegible]

प. [illegible]

उ. [illegible]

४८. चार आदि अनन्त द्रव्यों के प्रयोग परिणतादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! चार द्रव्य क्या प्रयोग परिणत होते हैं, मिश्रपरिणत होते हैं या विश्रसा परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! वे चार द्रव्य प्रयोग परिणत भी होते हैं, मिश्रपरिणत भी होते हैं और विश्रसा परिणत भी होते हैं।

१. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है और तीन द्रव्य मिश्र परिणत होते हैं।

२. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है और तीन द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

३. अथवा दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं और दो द्रव्य मिश्रपरिणत होते हैं।

४. अथवा दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं और दो द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

५. अथवा तीन द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है।

६. अथवा तीन द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

७. अथवा एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है और तीन द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

८. अथवा दो द्रव्य मिश्र परिणत होते हैं और दो द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

९. अथवा तीन द्रव्य मिश्र परिणत होते हैं और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

१. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है और दो द्रव्य विश्रसा परिणत होते हैं।

२. अथवा एक द्रव्य प्रयोग परिणत होता है, दो द्रव्य मिश्र परिणत होते हैं और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

३. अथवा दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं, एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है और एक द्रव्य विश्रसा परिणत होता है।

प्र. भंते ! यदि वे चार द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं तो–

क्या वे मन प्रयोग परिणत होते हैं, वचन प्रयोग परिणत होते हैं या काय प्रयोग परिणत होते हैं?

उ. गौतम ! पूर्ववत् इसी क्रम से पाँच, छह, सात यावत् दस, संख्यात, असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के लिए भी कहना चाहिए।

दुयासंजोएणं तियासंजोएणं जाव दससंजोएणं बारससंजोएणं उवउंजिऊण जत्थ जत्तिया संजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणि[illegible] [illegible]ए पुण जहा नवमसए पवेसणए भणिया[1] [illegible] भाणियव्वा जाव असंखेज्जा,

अणंता ए[illegible]

णवरं–एगं[illegible]

अहवा अणंते[illegible] [illegible]णया जाव अणंता आययसंठाणपो[illegible] [illegible]८, उ. १, सु. ८९-९०

द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी यावत् दस संयोगी. बारह संयोगी से जहाँ जितने संयोग होते हैं वहाँ उतने भंग उपयोगपूर्वक सब कहने चाहिए। ये सभी संयोगी नवम शतक के प्रवेशनक में जिस प्रकार कहे गये हैं उसी प्रकार यहाँ उपयोगपूर्वक असंख्यात पर्यन्त कहना चाहिए।

अनन्तद्रव्यों के परिणाम भी इसी प्रकार हैं।

विशेष–एक पद अधिक कहना चाहिए यावत्–

अथवा अनन्त द्रव्य परिमण्डल संस्थान रूप में परिणत होते हैं यावत् अनन्त द्रव्य आयत संस्थान रूप में परिणत होते हैं।

४९. पयोगपरिणयाइपोग्गले.

प. एएसि णं भंते ! [illegible] पओगपरिणयाणं मीसापरिणयाणं वीससापरिण[illegible]ण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा पोग्गला पओगपरिणया,

२. मीसापरिणया अणंतगुणा,

३. वीससापरिणया अणंतगुणा। *–विया. स. ८, उ. १, सु. ११*

४९. प्रयोग परिणतादि पुद्गलों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! प्रयोग परिणत, मिश्र परिणत और विश्रसा परिणत इन पुद्गलों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प पुद्गल प्रयोग परिणत हैं,

२. (उनसे) मिश्र परिणत अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) विश्रसा परिणत अनन्तगुणे हैं।

५०. अच्छिन्न पोग्गलाणं चलण परूवणं–

तिहिं ठाणेहिं अच्छिन्ने पोग्गले चलेज्जा, तं जहा–

१. आहारिज्जमाणे वा पोग्गले चलेज्जा,
२. विउव्वमाणे वा पोग्गले चलेज्जा,
३. ठाणाओ ठाणं संकामेज्जमाणे वा पोग्गले चलेज्जा। *–ठाणं, अ. ३, उ. १, सु. १४६*

दसहिं ठाणेहिं अच्छिन्ने पोग्गले चलेज्जा, तं जहा–

१. आहारिज्जमाणे वा चलेज्जा,
२. परिणामेज्जमाणे वा चलेज्जा,
३. उससिज्जमाणे वा चलेज्जा,
४. निस्ससिज्जमाणे वा चलेज्जा,
५. वेदेज्जमाणे वा चलेज्जा,
६. णिज्जरिज्जमाणे वा चलेज्जा,
७. विउव्विज्जमाणे वा चलेज्जा,
८. परियारिज्जमाणे वा चलेज्जा,
९. जक्खाइट्ठे वा चलेज्जा,
१०. वायपरिग्गहे वा चलेज्जा, *–ठाणं अ. १०, सु. ७०७*

५०. अच्छिन्न पुद्गलों के चलन का प्ररूपण–

अच्छिन्न (स्कन्ध) पुद्गल (संलग्न) तीन कारणों से चलित होता है, यथा–

१. जीवों द्वारा आकृष्ट किये जाने पर पुद्गल चलित होता है,
२. विकुर्वणा किये जाने पर पुद्गल चलित होता है,
३. एक स्थान से दूसरे स्थान पर संक्रमित किए जाने पर पुद्गल चलित होता है।

दस स्थानों से अच्छिन्न पुद्गल चलित होता है, यथा–

१. आहार के रूप में लिया जा रहा पुद्गल चलित होता है।
२. आहार के रूप में परिणत किया जा रहा पुद्गल चलित होता है।
३. उच्छ्वास के रूप में लिया जा रहा पुद्गल चलित होता है।
४. निश्वास के रूप में छोड़ा जा रहा पुद्गल चलित होता है।
५. वेदन किया जा रहा पुद्गल चलित होता है।
६. निर्जरित किया जा रहा पुद्गल चलित होता है।
७. वैक्रिय शरीर के रूप में परिणत किया जा रहा पुद्गल चलित होता है।
८. परिचारणा (संभोग) करते समय पुद्गल चलित होता है।
९. शरीर में यक्ष के प्रविष्ट होने पर पुद्गल चलित होता है।
१०. वायु प्रेरित पुद्गल चलित होता है।

५१. विविहपगाराणं पोग्गलाणं खंधाण य अणंतत्त परूवणं–

एगपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

एवमेगसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

एगगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव एगगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। *–ठाणं अ. १, सु. ४८,*

५१. विविध प्रकार के पुद्गलों और स्कन्धों के अनंतत्व का प्ररूपण–

एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

एक समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

एक गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं यावत् एक गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

---

१. गांगेय अणगार के प्रश्नोत्तर (स. ९, उ. ३२) में देखें। (वक्कंति अध्ययन)

दुप्पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता,

दुपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

दुसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

दुगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। *—ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. १२६,*

तिपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता,

तिपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

तिसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

तिगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव तिगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। *—ठाणं अ. ३, उ. ८, सु. २३४*

चउप्पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता,

चउप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

चउसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

चउगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव चउगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। *—ठाणं. ४, उ. ४, सु. ३८८*

पंचपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता,

पंचपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

पंचसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

पंचगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता जाव पंच गुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। *—ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४७४*

छप्पएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता,

छप्पएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

छसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

छगुणकालगा पोग्गला जाव छगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। *—ठाणं. अ. ६, सु. ५४०*

सत्तपएसिया खंधा अणंता पण्णत्ता,

सत्तपएसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

सत्तसमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

द्वि-प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं।

द्वि-प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

दो समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

दो गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं यावत् दो गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

त्रिप्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं।

त्रिप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

तीन समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

तीन गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं यावत् तीन गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

चतुःप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं,

चतुः प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

चार समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

चार गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं यावत् चार गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

पंच-प्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं।

पंच-प्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

पांच समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

पांच गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं यावत् पांच गुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

छःप्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं,

छःप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं,

छः समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं,

छःगुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं यावत् छःगुण रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

सप्तप्रदेशी स्कन्ध अनन्त कहे गए हैं,

सप्तप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गए हैं,

सात समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं,

दससमयठिईया पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

दसगुणकालगा पोग्गला अणंता पण्णत्ता,

एवं वण्णेहिं गंधेहिं रसेहिं फासेहिं जाव दसगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता। —*ठाणं. अ. १० सु. ७८३*

५२. एगम्मि आगासपएसे ठिय पोग्गलाणं चिज्जाइ परूवणं—

प. लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे कतिदिसिं पोग्गला चिज्जंति ?

उ. गोयमा ! निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं पोग्गला चिज्जंति।

प. लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपएसे कतिदिसिं पोग्गला भिज्जंति ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं उवचिज्जंति, एवं अवचिज्जंति। —*विया. स. २५, उ. २, सु. ८-१०*

५३. दव्वाइआदेसेहिं सव्व पोग्गलाणं सिय सअड्ढ सपएसाइ परूवणं—

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी नारयपुत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए जाव विहरइ,

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी नियंठिपुत्ते णामं अणगारे पगइभद्दए जाव विहरइ,

तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे जेणामेव नारयपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता नारयपुत्तं णामं अणगारे एवं वयासी—

"सव्वपोग्गला ते अज्जो ! किं सअड्ढा, समज्झा, सपएसा, उदाहु अणड्ढा अमज्झा अपएसा ?"

'अज्जो'! त्ति नारयपुत्ते अणगारं नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

"सव्वपोग्गला मे अज्जो ! सअड्ढा समज्झा सपदेसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपदेसा,"

तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

"जइ णं ते अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपदेसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपदेसा।

किं दव्वादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपदेसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपदेसा ?

खेत्तादेसेणं अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपदेसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपदेसा ?

कालादेसेण वि भावादेसेण वि तं चेव।"

तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी—

दस समय की स्थिति वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

दस गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

इसी प्रकार शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के दस गुण रुक्ष स्पर्श पर्यन्त पुद्गल अनन्त कहे गए हैं।

५२. एक आकाशप्रदेश में स्थित पुद्गलों के चयादि का प्ररूपण—

प्र. भंते ! लोक के एक आकाशप्रदेश में कितनी दिशाओं से आकर पुद्गल एकत्रित होते हैं ?

उ. गौतम ! निर्व्याघात से (व्यवधान न हो तो) छहों दिशाओं से तथा व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से आकर पुद्गल एकत्रित होते हैं।

प्र. भंते ! लोक के एक आकाशप्रदेश में स्थित पुद्गल कितनी दिशाओं से पृथक् होते हैं ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्कन्धों के उपचय (मिलना) और अपचय (बिछुड़ना) के लिए जानना चाहिए।

५३. द्रव्यादि आदेशों द्वारा सर्वपुद्गलों के सार्द्ध सप्रदेशादि का प्ररूपण—

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी प्रकृतिभद्र आदि गुणयुक्त नारदपुत्र नाम के अनगार यावत् विचरण करते थे।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी प्रकृतिभद्र आदि गुणयुक्त निर्ग्रन्थीपुत्र नामक अणगार यावत् विचरण करते थे।

एक बार निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार जहाँ नारदपुत्र नामक अणगार थे वहां आए और उनके पास आकर उन्होंने नारदपुत्र अणगार से इस प्रकार पूछा—

"हे आर्य ! तुम्हारे मतानुसार सब पुद्गल क्या सार्द्ध समध्य और सप्रदेश हैं अथवा अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश हैं ?"

"हे आर्य !" इस प्रकार सम्बोधित कर नारदपुत्र अणगार ने निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार से इस प्रकार कहा—

"हे आर्य ! मेरे मतानुसार सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं।"

तब निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार ने नारदपुत्र अणगार से इस प्रकार कहा—

"हे आर्य ! यदि तुम्हारे मतानुसार सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं तो—

हे आर्य ! क्या द्रव्य की अपेक्षा सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ?

हे आर्य ! क्या क्षेत्र की अपेक्षा सभी पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ?

काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा भी क्या सभी पुद्गल उसी प्रकार हैं ?"

तब नारदपुत्र अणगार ने निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार से इस प्रकार कहा—

"दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा।"

खेत्तादेसेण वि सव्वपोग्गला एवं चेव,

कालादेसेण वि भावादेसेण वि एवं चेव।"

"हे आर्य ! मेरे मतानुसार द्रव्य की अपेक्षा सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं।

क्षेत्र की अपेक्षा भी सभी पुद्‌गल उसी प्रकार हैं।

काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा भी उसी प्रकार हैं।"

तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी–

तब निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार ने नारदपुत्र अणगार से इस प्रकार कहा–

"जइ णं अज्जो ! दव्वादेसेणं-सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा,

"हे आर्य ! यदि द्रव्य की अपेक्षा सभी पुद्‌गल सार्द्ध समध्य और सप्रदेश हैं किन्तु अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं तो–

एवं ते परमाणुपोग्गले वि सअड्ढे समज्झे सपएसे, णो अणड्ढे अमज्झे अपएसे ?

क्या परमाणु पुद्‌गल भी इसी प्रकार सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ?

जइ णं अज्जो ! खेत्तादेसेण वि सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, णो अणड्ढा अमज्झा अपएसा–

हे आर्य ! यदि क्षेत्र की अपेक्षा भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं किन्तु अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं तो–

एवं ते एगपएसोगाढे वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे ?

एक प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य एवं सप्रदेश होगा ?

जइ णं अज्जो ! कालादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, एवं ते एगसमयठिईए वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे तं चेव ?

हे आर्य ! यदि काल की अपेक्षा भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं तो एक समय की स्थिति वाला पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य एवं सप्रदेश होगा ?

जइ णं अज्जो ! भावादेसेणं सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, एवं ते एगगुणकालए वि पोग्गले सअड्ढे समज्झे सपएसे तं चेव ?

हे आर्य ! इसी प्रकार भावादेश से भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं तो एक गुण काला पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होगा ?

अह ते एवं न भवइ तो जं वयसि दव्वादेसेण वि सव्वपोग्गला सअड्ढा समज्झा सपएसा, नो अणड्ढा अमज्झा अपएसा,

यदि ऐसा नहीं है तो फिर आपने जो यह कहा कि द्रव्य की अपेक्षा भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, अनर्द्ध अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं।

एवं खेत्तादेसेण वि, कालादेसेण वि, भावादेसेण वि 'तं ण मिच्छा'।"

क्षेत्रादेश से भी उसी तरह हैं, कालादेश से और भावादेश से भी उसी तरह हैं तो 'यह कथन मिथ्या है।'"

तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं एवं वयासी–

तब नारदपुत्र अणगार से निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार ने इस प्रकार कहा–

"नो खलु एवं देवाणुप्पिआ ! एयमट्ठं जाणामो पासामो,

"हे देवानुप्रिय ! निश्चय ही हम इस अर्थ को नहीं जानते देखते ?

जइ णं देवाणुप्पिआ ! नो गिलायंति परिकहित्तए तं इच्छामि णं देवाणुप्पिआणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जाणित्तए,"

हे देवानुप्रिय ! यदि आपको इसका अर्थ स्पष्ट करने में संकोच न हो तो मैं आप देवानुप्रिय से इस अर्थ को सुनकर, अवधारणपूर्वक जानना चाहता हूँ।"

तए णं से नियंठिपुत्ते अणगारे नारयपुत्तं अणगारं एवं वयासी–

इस पर निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार ने नारदपुत्र अणगार से इस प्रकार कहा–

'दव्वादेसेण वि मे अज्जो ! सव्वपोग्गला सपदेसा वि अपदेसा वि अणंता,

'हे आर्य ! मेरी धारणानुसार द्रव्य की अपेक्षा पुद्‌गल सप्रदेश भी हैं, अप्रदेश भी हैं और अनन्त भी हैं।

खेत्तादेसेण वि एवं चेव, कालादेसेण वि, भावादेसेण वि एव चेव।

क्षेत्रादेश से भी इसी तरह हैं, कालादेश से तथा भावादेश से भी इसी तरह हैं।

जे दव्वओ अपदेसे से खेत्तओ नियमा अपदेसे,

जो पुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा अप्रदेश हैं, वे क्षेत्र की अपेक्षा भी निश्चितरूप से अप्रदेश हैं।

कालओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे,

काल की अपेक्षा कदाचित् सप्रदेश और अप्रदेश हैं।

भावओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे।

भाव की अपेक्षा कदाचित् सप्रदेश और अप्रदेश हैं।

जे खेत्तओ अपदेसे से दव्वओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे।

जो पुद्‌गल क्षेत्र की अपेक्षा अप्रदेश हैं, उसमें कदाचित् द्रव्य की अपेक्षा सप्रदेश और अप्रदेश हैं।

कालओ भयणाए, भावओ भयणाए।

काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा से भी इसी प्रकार की भजना जाननी चाहिए।

जहा - खेत्तओ एवं कालओ भावओ।

जे दव्वओ सपदेसे से खेत्तओ सिय सपदेसे सिय अपदेसे,

एवं कालओ भावओ वि।

जे खेत्तओ सपदेसे से दव्वओ नियमा सपदेसे,
कालओ भयणाए, भावओ भयणाए,
जहा दव्वओ तहा कालओ भावओ वि।

प. एएसि णं भंते ! पोग्गलाणं दव्वादेसेणं खेत्तादेसेणं कालादेसेणं भावादेसेणं सपदेसाण य, अपदेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. नारयपुत्ता ! १. सव्वत्थोवा पोग्गला भावादेसेणं अपदेसा,
२. कालादेसेणं अपदेसा असंखेज्जगुणा,
३. दव्वादेसेणं अपदेसा असंखेज्जगुणा,
४. खेत्तादेसेणं अपदेसा असंखेज्जगुणा,
५. खेत्तादेसेणं चेव सपदेसा असंखेज्जगुणा,
६. दव्वादेसेणं सपदेसा विसेसाहिया,
७. कालादेसेणं सपदेसा विसेसाहिया,
८. भावादेसेणं सपदेसा विसेसाहिया।

तए णं से नारयपुत्ते अणगारे नियंठिपुत्तं अणगारं वंदइ नमंसइ, नियंठिपुत्तं अणगारं वंदित्ता णमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेइ,
खामित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

–विया. स. ५, उ. ८, सु. १-९

जिस प्रकार क्षेत्र कहा, उसी प्रकार काल से और भाव से भी भजना कहनी चाहिए।

जो पुद्गल द्रव्य से सप्रदेश हैं, वह क्षेत्र से कदाचित् सप्रदेश और अप्रदेश हैं,

इसी प्रकार काल से और भाव से भी (सप्रदेश और अप्रदेश) जान लेना चाहिए।

जो पुद्गल क्षेत्र से सप्रदेश हैं, वे द्रव्य से नियमतः सप्रदेश हैं,
किन्तु काल से और भाव से भजना जाननी चाहिए।

जैसा द्रव्य की अपेक्षा कहा, वैसा ही काल की अपेक्षा और भाव की अपेक्षा भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! (निर्ग्रन्थी पुत्र!) द्रव्यादेश से, क्षेत्रादेश से, कालादेश से और भावादेश से सप्रदेश और अप्रदेश पुद्गलों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. नारदपुत्र ! १. भावादेश से अप्रदेश पुद्गल सबसे थोड़े हैं।
२. (उनसे) कालादेश से अप्रदेश पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) द्रव्यादेश से अप्रदेश पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
४. (उनसे) क्षेत्रादेश से अप्रदेश पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
५. (उनसे) क्षेत्रादेश से सप्रदेश पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) द्रव्यादेश से सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं,
७. (उनसे) कालादेश से सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं,
८. (उनसे) भावादेश से सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं।

यह सुनकर नारदपुत्र अणगार ने निर्ग्रन्थीपुत्र अणगार को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके उनसे सविनय बार-बार क्षमायाचना की।

इसी प्रकार क्षमायाचना करके वे नारदपुत्र अणगार संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे।

५४. चउवीसदंडएसु अत्ताणत्ताइ पोग्गलाणं परूवणं–

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! किं अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला ?

उ. गोयमा ! नो अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला।

प. दं. २. असुरकुमाराणं भंते ! किं अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला ?

उ. गोयमा ! अत्ता पोग्गला, णो अणत्ता पोग्गला।

दं. ३-११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. दं. १२. पुढविकाइयाणं भंते ! किं अत्ता पोग्गला, अणत्ता पोग्गला ?

उ. गोयमा ! अत्ता वि पोग्गला, अणत्ता वि पोग्गला।

दं. १३-२१. एवं जाव मणुस्साणं।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं-जहा असुरकुमाराणं।

५४. चौबीस दण्डकों में आत्त-अनात्त आदि पुद्गलों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिकों के आत्त (सुखकारी) पुद्गल होते हैं या अनात्त (दुःखकारी) पुद्गल होते हैं ?

उ. गौतम ! उनके आत्त पुद्गल नहीं होते, किन्तु अनात्त पुद्गल होते हैं।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमारों के आत्त पुद्गल होते हैं या अनात्त पुद्गल होते हैं ?

उ. गौतम ! उनके आत्त पुद्गल होते हैं, अनात्त पुद्गल नहीं होते हैं।

दं. ३-११. इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक जीवों के आत्त पुद्गल होते हैं या अनात्त पुद्गल होते हैं ?

उ. गौतम ! उनके आत्त पुद्गल भी होते हैं और अनात्त पुद्गल भी होते हैं।

दं. १३-२१. इसी प्रकार (अप्कायिक जीवों से) मनुष्यों पर्यन्त जानना चाहिए।

दं. २२-२४. वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों के पुद्गलों के लिए असुरकुमारों के समान कहना चाहिए।

जहा अत्ता भणिया तहा इट्ठा वि भाणियव्वा।

एवं कंता वि, पिया वि, मणुन्ना वि, मणामा वि भाणियव्वा।

एए पंच दंडगा। *—विया. स. १४, उ. ९, सु. ४-११*

जिस प्रकार आत्त पुद्गलों के लिए कहा उसी प्रकार इष्ट पुद्गलों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार कान्त, प्रिय मनोज्ञ तथा मनाम पुद्गलों के विषय में भी आलापक कहने चाहिए।

ये पांच दण्डक हैं।

५५. इंदियविसयरूव पोग्गलाणं परोप्परं परिणमन परूवणं—

प. कइविहे णं भंते ! इंदियविसए पोग्गल परिणामे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे इंदियविसए पोग्गल परिणामे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सोइंदियविसए जाव ५. फासिंदियविसए।

प. सोइंदियसिए णं भंते ! पोग्गल परिणामे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सुब्भिसद्दपरिणामे य, २. दुब्भिसद्दपरिणामे य।

प. चक्खिंदियविसए णं भंते ! पोग्गल परिणामे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सुरूवपरिणामे य, २. दुरूवपरिणामे य।

प. घाणिंदियविसए णं भंते ! पोग्गल परिणामे कइविहे पण्णत्ते, ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सुब्भिगंध परिणामे य, २. दुब्भिगंध परिणामे य।

प. रसिंदियविसए णं भंते ! पोग्गल परिणामे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सुरस परिणामे य, २. दुरस परिणामे य।

प. फासिंदियविसए णं भंते ! पोग्गल परिणामे कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सुफास परिणामे य, २. दुफास परिणामे य।

प. से नूणं भंते ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु, उच्चावएसु रूवपरिणामेसु एवं गंधपरिणामेसु, रसपरिणामेसु, फासपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया?

उ. हंता, गोयमा ! उच्चावएसु सद्दपरिणामेसु परिणममाणा पोग्गला परिणमंतीति वत्तव्वं सिया।

प. से नूणं भंते ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति?

उ. हंता, गोयमा ! सुब्भिसद्दा पोग्गला दुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति, दुब्भिसद्दा पोग्गला सुब्भिसद्दत्ताए परिणमंति।

५५. इन्द्रिय विषय रूप पुद्गलों का परस्पर परिणमन का प्ररूपण—

प्र. भंते ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! इन्द्रियों का विषयभूत पुद्गलपरिणाम पांच प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. श्रोत्रेन्द्रिय विषय यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय विषय।

प्र. भंते ! श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गलपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. शुभ शब्द परिणाम, २. अशुभ शब्द परिणाम।

प्र. भंते ! चक्षुइन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. सुरूप परिणाम, २. दुरूप परिणाम।

प्र. भंते ! घ्राणिन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. सुरभिगंध परिणाम, २. दुरभिगंध परिणाम।

प्र. भंते ! रसेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. सुरस परिणाम, २. दुरस परिणाम,

प्र. भंते ! स्पर्शेन्द्रिय का विषयभूत पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. सुस्पर्श परिणाम, २. दुःस्पर्श परिणाम।

प्र. भंते ! उत्तम अधम शब्द परिणामों में, उत्तम-अधम रूपपरिणामों में इसी प्रकार गंधपरिणामों में, रसपरिणामों में और स्पर्शपरिणामों में परिणत होते हुए पुद्गल परिणमित होते (बदलते) हैं—ऐसा कहा जा सकता है क्या?

उ. हाँ, गौतम ! उत्तम-अधम रूप में बदलने वाले शब्दादि परिणामों में परिणमित पुद्गलों का बदलना कहा जा सकता है।

प्र. भंते ! शुभ शब्द पुद्गल अशुभ शब्द के रूप में और अशुभ शब्द पुद्गल शुभ शब्द के रूप में में बदलते हैं क्या?

उ. हाँ, गौतम ! शुभ शब्द पुद्गल अशुभ शब्द के रूप में और अशुभ शब्द पुद्गल शुभ शब्द के रूप में बदलते हैं।

प. से नूणं भंते ! सुरूवा पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति ?

उ. हंता, गोयमा ! सुरूवा पोग्गला दुरूवत्ताए परिणमंति, दुरूवा पोग्गला सुरूवत्ताए परिणमंति।

एवं सुब्भिगंधा पोग्गला दुब्भिगंधत्ताए परिणमंति दुब्भिगंधा पोग्गला सुब्भिगंधत्ताए परिणमंति।

एवं सुरसा पोग्गला दुरसत्ताए, दुरसा पोग्गला सुरसत्ताए परिणमंति।

एवं सुफासा पोग्गला दुफासत्ताए, दुफासा पोग्गला सुफासत्ताए परिणमंति। —जीवा. पडि. ३, सु. १८९

प्र. भंते ! शुभ रूप वाले पुद्गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप के पुद्गल शुभ रूप में बदलते हैं क्या ?

उ. हाँ, गौतम ! शुभ रूप वाले पुद्गल अशुभ रूप में और अशुभ रूप के पुद्गल शुभ रूप में बदलते हैं।

इसी प्रकार सुरभिगन्ध के पुद्गल दुरभिगन्ध के रूप में और दुरभिगन्ध के पुद्गल सुरभिगन्ध के रूप में बदलते हैं।

इसी प्रकार शुभरस के पुद्गल अशुभरस के रूप में और अशुभरस के पुद्गल शुभरस के रूप में बदलते हैं।

इसी प्रकार शुभस्पर्श के पुद्गल अशुभस्पर्श के रूप में और अशुभस्पर्श के पुद्गल शुभस्पर्श के रूप में बदलते हैं।

५६. फाणियगुलाई दिट्ठंतेहिं रूवीदव्वेसु ववहार-निच्छयनयेण वण्णाइ परूवणं–

प. फाणियगुले णं भंते ! कइवण्णे, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एत्थ णं दो नया भवंति, तं जहा–

१. नेच्छइयनए य, २. वावहारियनए य।

१. वावहारियनयस्स–गोड्डे फाणियगुले,

२. नेच्छइयनयस्स–पंचवन्ने, दुगंधे, पंचरसे, अट्ठफासे पण्णत्ते।

प. भमरे णं भंते ! कइवण्णे, कइगंधे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एत्थ णं दो नया भवंति, तं जहा–

१. नेच्छइयनए य, २. वावहारियनए य।

१. वावहारियनयस्स–कालए भमरे,

२. नेच्छइयनयस्स–पंचवन्ने जाव अट्ठफासे पण्णत्ते।

प. सुयपिच्छे णं भंते ! कइवण्णे, कइगन्धे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एत्थ णं दो नया भवंति, तं जहा–

१. नेच्छइयनए य, २. वावहारिय नए य,

१. वावहारियनयस्स–नीलए सुयपिच्छे,

२. नेच्छइयनयस्स पंचवण्णे जाव अट्ठफासे पण्णत्ते।

एवं एएणं अभिलावेणं

लोहिया मंजिट्ठी,

पीतिया हलिद्दा,

सुक्किल्लए संखे,

सुब्भिगंधे कोट्ठे, दुब्भिगंधे मयगसरीरे,

तित्ते निंबे,

कडुया सुंठी,

कसाए कविट्ठे,

अंबा अंबिलिया,

महुरे खंडे,

५६. फाणित गुड़ आदि दृष्टान्तों द्वारा रूपी द्रव्यों में व्यवहार नय और निश्चयनय से वर्णादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! फाणित (प्रवाही) गुड़ कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! यहाँ दो नय कहे गए हैं, यथा–

१. निश्चय नय, २. व्यवहार नय।

१. व्यवहार नय की अपेक्षा फाणित गुड मधुर रस वाला है,

२. निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! भ्रमर कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाला कहा गया है ?

उ. गौतम ! यहां दो नय कहे गए हैं, यथा–

१. निश्चयनय, २. व्यवहार नय।

१. व्यवहारनय की अपेक्षा भ्रमर कृष्ण वर्ण वाला है।

२. निश्चय नय की अपेक्षा भ्रमर पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाला कहा गया है।

प्र. भंते ! शुक की पांख कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाली कही गई है ?

उ. गौतम ! यहां दो नय कहे गए हैं, यथा–

१. निश्चय नय, २. व्यवहार नय।

१. व्यवहार नय की अपेक्षा शुक की पांख नीली है।

२. निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श वाली कही गई है।

इसी प्रकार के अभिलाप से

मजीठ लाल है।

हल्दी पीली है।

शंख शुक्ल है।

कुष्ठ पटवास सुगंधित है, मृत कलेवर दुर्गन्धयुक्त है।

नीम कडुवा है।

सूंठ तीखा है।

कच्चा कपित्थ कसैला है।

[illegible] खट्टा है।

खांड मधुर है,

कक्खडे वइरे,
मउए नवणीए,
गरुए अए,
लहुए उलुयपत्ते,
सीए हिमे,
उसिणे अगणिकाए,
णिद्धे तेल्ले।

प. छारिया णं भंते ! कइवण्णे, कइगन्धे, कइरसे, कइफासे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! एत्थ णं दो नया भवंति, तं जहा–
१. नेच्छइयनए य, २. वावहारियनए य।
१. वावहारियनयस्स–लुक्खा छारिया,
२. नेच्छइयनयस्स पंचवन्ना जाव अट्ठफासा पण्णत्ता।
–विया. स. १८, उ. ६, सु. १-५

वज्र कर्कश है।
मक्खन कोमल है।
लोहा भारी है।
लघु-उलूकपत्र (उल्लू की पांख) हल्की है।
हिम (वर्फ) शीत है।
अग्नि ऊष्ण है,
तैल स्निग्ध है इत्यादि इन के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए

प्र. भंते ! राख कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाली गई है?
उ. गौतम ! यहां दो नय कहे गए हैं, यथा–
१. निश्चयनय, २. व्यवहारनय,
१. व्यवहार नय की अपेक्षा राख रुक्षस्पर्श वाली हैं।
२. निश्चयनय की अपेक्षा पांच वर्ण यावत् आठ स्पर्श व कही गई है।

५७. वण्ण-गंध-रस-फासनिव्वत्तिभेया चउवीसदंडएसु य परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! वण्णनिव्वत्ती पण्णत्ता?
उ. गोयमा ! पंचविहा वण्णनिव्वत्ती पण्णत्ता, तं जहा–
१. कालवण्णनिव्वत्ती जाव ५. सुक्किलवण्णनिव्वत्ती।
एवं निरवसेसं जाव वेमाणियाणं।

एवं गंधनिव्वत्ती दुविहा जाव वेमाणियाणं।

रसनिव्वत्ती पंचविहा जाव वेमाणियाणं।
फासनिव्वत्ती अट्ठविहा जाव वेमाणियाणं।
–विया. स. १९, उ. ८, सु. २१-२५

५७. वर्ण-गंध-रस और स्पर्श निर्वृत्ति के भेद तथा चौवीस दंड में प्ररूपण–

प्र. भंते ! वर्णनिर्वृत्ति कितने प्रकार की कही गई है?
उ. गौतम ! वर्णनिर्वृत्ति पांच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. कृष्णवर्णनिर्वृत्ति यावत् ५. शुक्लवर्णनिर्वृत्ति।
इसी प्रकार नैरयिकों से वैमानिकों पर्यन्त समग्र वर्णनि कहनी चाहिए।
इसी प्रकार दो प्रकार की गन्धनिर्वृत्ति वैमानिकों पर्यन्त कह चाहिए।
पांच प्रकार की रस निर्वृत्ति वैमानिकों पर्यन्त कहनी चाहि
आठ प्रकार की स्पर्श निर्वृत्ति वैमानिकों पर्यन्त कहनी चाहि

५८. खेत्तदिसाणुवाएणं पोग्गलाणं अप्पाबहुयं–

खेत्ताणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा पोग्गला तेलोक्के,
२. उड्ढलोयतिरियलोए अणंतगुणा,
३. अहेलोएतिरियलोए विसेसाहिया,
४. तिरियलोए असंखेज्जगुणा,
५. उड्ढलोए असंखेज्जगुणा,
६. अहेलोए विसेसाहिया।

दिसाणुवाएणं–
१. सव्वत्थोवा पोग्गला उड्ढदिसाए,
२. अहेदिसाए विसेसाहिया,
३. उत्तरपुरत्थिमेणं दाहिण्णपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला असंखेज्जगुणा,
४. दाहिणपुरत्थिमेणं उत्तरपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला विसेसाहिया,
५. पुरत्थिमेणं असंखेज्जगुणा,
६. पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया,

५८. क्षेत्र दिशानुसार पुद्गलों का अल्पबहुत्व–

क्षेत्र के अनुसार–
१. सबसे कम पुद्गल त्रिलोक में हैं,
२. (उससे) ऊर्ध्वलोक तिर्यग्लोक में अनन्तगुणे हैं,
३. (उससे) अधोलोक-तिर्यक्लोक में विशेषाधिक हैं,
४. (उससे) तिर्यक्लोक में असंख्यातगुणे हैं,
५. (उससे) ऊर्ध्वलोक में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उससे) अधोलोक में विशेषाधिक हैं।

दिशाओं के अनुसार–
१. सवसे कम पुद्गल ऊर्ध्वदिशा में हैं,
२. (उससे) अधोदिशा में विशेषाधिक हैं,
३. (उससे) उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम दोनों में तुल्य और असंख्यातगुणे हैं।
४. (उससे) दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनों में तुल्य और विशेषाधिक हैं,
५. (उससे) पूर्व दिशा में असंख्यातगुणे हैं,
६. (उससे) पश्चिम दिशा में विशेषाधिक हैं,

७. दाहिणेणं विसेसाहिया,

८. उत्तरेणं विसेसाहिया। —पण्ण. प. ३, सु. ३२६-३२७

७. (उससे) दक्षिण दिशा में विशेषाधिक हैं,

८. (उससे) उत्तर दिशा में विशेषाधिक हैं।

५९. एगसमयाइठिईयाणं पोग्गलाणं दव्वट्ठयाइ अप्पाबहुयं—

प. एएसि णं भंते ! १. एगसमयठिईयाणं,

२. संखेज्जसमयठिईयाणं,

३. असंखेज्जसमयठिईयाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा एगसमयठिईया पोग्गला दव्वट्ठयाए,

२. संखेज्जसमयठिईया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

३. असंखेज्जसमयठिईया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

पदेसट्ठयाए—

१. सव्वत्थोवा एगसमयठिईया पोग्गला पएसट्ठयाए,

२. संखेज्जसमयठिईया पोग्गला पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,

३. असंखेज्जसमयठिईया पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए—

१. सव्वत्थोवा एगसमयठिईया पोग्गला दव्वट्ठपएसट्ठयाए,

२. संखेज्जसमयठिईया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,

३. असंखेज्जसमयठिईया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा। —पण्ण. प. ३, सु. ३३२

५९. एक समयादि की स्थिति वाले पुद्गलों का द्रव्यादि की अपेक्षा अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इन १. एक समय की स्थिति वाले,

२. संख्यात समय की स्थिति वाले और

३. असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा एवं द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प एक समय की स्थिति वाले पुद्गल हैं,

२. (उनसे) संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा—

१. एक समय की स्थिति वाले पुद्गल प्रदेशों की अपेक्षा सबसे अल्प हैं,

२. (उनसे) संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा—

१. द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा सबसे कम पुद्गल एक समय की स्थिति वाले हैं,

२. (उनसे) संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

६०. पोग्गलस्स दव्वट्ठाणाइ आउणं अप्पाबहुयं—

प. एयस्स (पोग्गलस्स) णं भंते ! दव्वट्ठाणाउयस्स खेत्तट्ठाणाउयस्स ओगाहणट्ठाणाउयस्स भावट्ठाणाउयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे खेत्तट्ठाणाउए,

२. ओगाहणट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे,

३. दव्वट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे,

४. भावट्ठाणाउए असंखेज्जगुणे।

गाहा— खेत्तोगाहणदव्वे भावट्ठाणाउयं च अप्पबहुं।
खेत्ते सव्वत्थोवे सेसा ठाणा असंखेज्जगुणा॥
—विया. स. ५, उ. ७, सु. [illegible]

६०. पुद्गल के द्रव्यस्थान आदि आयुष्यों का अल्पबहुत्व—

प्र. भंते ! इस (पुद्गल) के द्रव्यस्थानायु, क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु और भावस्थानायु, इन सबमें कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे कम क्षेत्रस्थानायु है,

२. (उनसे) अवगाहनास्थानायु असंख्यातगुणा है,

३. (उनसे) द्रव्यस्थानायु असंख्यातगुणा है,

४. (उनसे) भावस्थानायु असंख्यातगुणा है।

गाथार्थ—क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु, द्रव्यस्थानायु और भावस्थानायु इनका अल्पबहुत्व क्रमशः इस प्रकार है कि क्षेत्रस्थानायु सबसे अल्प है, शेष तीन स्थानायु उत्तरोत्तर असंख्यातगुण हैं।

६१. वण्णाइ विवक्खया पोग्गलाणं दव्वट्ठयाइ अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! १. एगगुणकालयाणं,
२. संखेज्जगुणकालयाणं,
३. असंखेज्जगुणकालयाणं,
४. अणंतगुणकालयाण य
पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपए-सट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! जहा परमाणुपोग्गला तहा भाणियव्वा।

एवं सेसा वि वण्ण गंध रसा भाणियव्वा।

फासाणं कक्खड- मउय- गरुय- लहुयाणं जहा एगपएसोगाढाणं भणियं तहा भाणियव्वं।
अवसेसा फासा जहा वण्णा भणिया तहा भाणियव्वा।

–पण्ण. प. ३, सु. ३३३

६१. वर्णादि की अपेक्षा पुद्गलों का द्रव्यादि की विवक्षा से अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन १. एक गुण काले,
२. संख्यातगुण काले,
३. असंख्यातगुण काले और
४. अनन्तगुण काले
पुद्गलों में द्रव्य की अपेक्षा प्रदेशों की अपेक्षा और द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार पूर्व में परमाणु पुद्गलों के विषय में कहा गया है उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए।
इसी प्रकार शेष वर्ण गन्ध और रस सम्बन्धी पुद्गलों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।
कर्कश, मृदु, गुरु और लघु स्पर्श वाले पुद्गलों का अल्पबहुत्व एक प्रदेशावगाढादि के समान यहाँ भी कहना चाहिए।
अवशेष चार स्पर्शों वाले पुद्गलों का अल्पबहुत्व वर्ण के समान कहना चाहिए।

६२. परमाणुणो भेयप्पभेया–

एगे परमाणु। *–ठाणं. अ. १, सु. ३६,*

प. कइविहे णं भंते ! परमाणु पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे परमाणु पण्णत्ते, तं जहा–
१. दव्वपरमाणु, २. खेत्तपरमाणु,
३. कालपरमाणु, ४. भावपरमाणु।
प. दव्वपरमाणु णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अच्छेज्जे, २. अभेज्जे,
३. अडज्झे, ४. अगेज्झे।
प. खेत्तपरमाणु णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अणड्ढे, २. अमज्झे,
३. अपएसे, ४. अविभाइमे,
प. कालपरमाणु णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. अवन्ने, २. अगंधे,
३. अरसे, ४. अफासे।
प. भावपरमाणु णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
उ. गोयमा ! चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. वण्णमंते, २. गंधमंते,
३. रसमंते, ४. फासमंते।

–विया. स. २०, उ. ५, सु. १५-१९

६२. परमाणुओं के भेद-प्रभेद–

परमाणु एक है।

प्र. भंते ! परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! परमाणु चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. द्रव्यपरमाणु, २. क्षेत्रपरमाणु,
३. कालपरमाणु, ४. भावपरमाणु।
प्र. भंते ! द्रव्यपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अच्छेद्य, २. अभेद्य,
३. अदाह्य, ४. अग्राह्य।
प्र. भंते ! क्षेत्रपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. अनर्द्ध, २. अमध्य,
३. अप्रदेश, ४. अविभाज्य।
प्र. भंते ! कालपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है; यथा–
१. अवर्ण, २. अगन्ध,
३. अरस, ४. अस्पर्श।
प्र. भंते ! भावपरमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?
उ. गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. वर्णवान्, २. गन्धवान्,
३. रसवान्, ४. स्पर्शवान्।

६३. परमाणुपोग्गलस्स एगसमए गई सामत्थ परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

६३. एक समय में परमाणु पुद्गल की गति सामर्थ्य का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल लोक के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है ?

पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ उत्तरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ दाहिणिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ?

उ. हंता, गोयमा ! परमाणु पोग्गले णं लोगस्स–

पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ जाव–

हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्ले चरिमंते एगसमएणं गच्छइ। –*विया. स. १६, उ. ८, सु. १३*

पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है?

दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है?

उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है?

ऊपरी चरमान्त से नीचे के चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है,

नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्त में क्या एक समय में जाता है?

उ. हाँ, गौतम ! परमाणु-पुद्गल लोक के–

पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त तक एक समय में जाता है यावत्–

नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्त तक एक समय में जाता है।

६४. परमाणुपोग्गलाणं सासयासासयत्तं–

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! किं सासए, असासए?

उ. गोयमा ! सिय सासए, सिय असासए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"परमाणु पोग्गले सिय सासए, सिय असासए?"

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए,

वण्णपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासए,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"परमाणु पोग्गले सिय सासए, सिय असासए।" –*विया. स. १४, उ. ४, सु. ८*

६४. परमाणु पुद्गलों का शाश्वतत्व-अशाश्वतत्व–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल क्या शाश्वत है या अशाश्वत है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

परमाणु पुद्गल कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है,

वर्ण पर्यायों की अपेक्षा यावत् स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"परमाणु पुद्गल कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है।"

६५. विविहपगाराणं परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य अणंतत्त परूवणं–

प. परमाणु पोग्गला णं भंते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

एवं जाव अणंतपएसिया खंधा।

प. एगपएसोगाढा णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढा।

प. एगसमयठिईया णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव असंखेज्जसमयठिईया।

६५. विविध प्रकारों के परमाणु पुद्गल और स्कन्धों के अनन्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या परमाणु-पुद्गल संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त अनन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक प्रदेशावगाढ पुद्गल क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! पूर्व के समान (अनन्त) कहना चाहिए।

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल पर्यन्त (अनन्त) कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक समय की स्थिति वाले पुद्गल क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. गौतम ! पूर्व के समान (अनन्त) कहना चाहिए।

इसी प्रकार असंख्यात समयों की स्थिति वाले पुद्गल पर्यन्त कहना चाहिए।

पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ उत्तरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ दाहिणिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ,

हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ ?

उ. हंता, गोयमा ! परमाणु पोग्गले णं लोगस्स–

पुरित्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छइ जाव–

हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्ले चरिमंते एगसमएणं गच्छइ। *–विया. स. १६, उ. ८, सु. १३*

पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है ?

दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है ?

उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है ?

ऊपरी चरमान्त से नीचे के चरमान्त तक क्या एक समय में जाता है,

नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्त में क्या एक समय में जाता है ?

उ. हाँ, गौतम ! परमाणु-पुद्‌गल लोक के–

पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त तक एक समय में जाता है यावत्–

नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्त तक एक समय में जाता है।

६४. परमाणुपोग्गलाणं सासयासासयत्तं–

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! किं सासए, असासए ?

उ. गोयमा ! सिय सासए, सिय असासए।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"परमाणु पोग्गले सिय सासए, सिय असासए ?"

उ. गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासए,

वण्णपज्जवेहिं जाव फासपज्जवेहिं असासए,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"परमाणु पोग्गले सिय सासए, सिय असासए।" *–विया. स. १४, उ. ४, सु. ८*

६४. परमाणु पुद्‌गलों का शाश्वतत्व-अशाश्वतत्व–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्‌गल क्या शाश्वत है या अशाश्वत है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

परमाणु पुद्‌गल कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है ?

उ. गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत है,

वर्ण पर्यायों की अपेक्षा यावत् स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"परमाणु पुद्‌गल कदाचित् शाश्वत है और कदाचित् अशाश्वत है।"

६५. विविहपगाराणं परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य अणंतत्त परूवणं–

प. परमाणु पोग्गला णं भंते ! किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।

एवं जाव अणंतपएसिया खंधा।

प. एगपएसोगाढा णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढा।

प. एगसमयट्ठिईया णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा, असंखेज्जा, अणंता ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव असंखेज्जसमयट्ठिईया।

६५. विविध प्रकारों के परमाणु पुद्‌गल और स्कन्धों के अनन्तत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या परमाणु-पुद्‌गल संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! वे संख्यात और असंख्यात नहीं हैं किन्तु अनन्त हैं।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त अनन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! पूर्व के समान (अनन्त) कहना चाहिए।

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल पर्यन्त (अनन्त) कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक समय की स्थिति वाले पुद्‌गल क्या संख्यात हैं असंख्यात हैं या अनन्त हैं ?

उ. गौतम ! पूर्व के समान (अनन्त) कहना चाहिए।

इसी प्रकार असंख्यात समयों की स्थिति वाले पुद्‌गल पर्यन्त कहना चाहिए।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. कस्सइ अत्थि, कस्सइ नत्थि।

जस्सऽत्थि. जहण्णेणं एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा उक्कोसेणं संखेज्जा वा, असंखेज्जा वा, अणंता वा।

प. दं. २. एगमेगस्स णं भंते ! असुरकुमारस्स केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता पुरेक्खडा य?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

दं. ३-२४. एवं जाव वेमाणियस्स।

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स केवइया वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा अतीता पुरेक्खडा य?

उ. गोयमा ! एवं जहेव ओरालियपोग्गलपरियट्टा तहेव वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा वि भाणियव्वा।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियस्स आणापाणुपोग्गलपरियट्टा।

एए एगत्तिया सत्त दंडगा भवंति।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. गोयमा ! अणंता।

दं. २-२४. एवं जाव वेमाणियाणं।

एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा वि।

एवं जाव आणापाणुपोग्गलपरियट्टा वेमाणियाणं।

एवं एए पोहत्तिया सत्त चउवीसइदंडगा भवंति।

–विया. स. १२, उ. ४, सु. १८-२७

प्र. दं. १. भंते ! प्रत्येक नैरयिक के अतीत काल में कितने औदारिक पुद्गल परिवर्त हुए हैं?

उ. गौतम ! (वे) अनन्त हुए हैं।

प्र. प्रत्येक नैरयिक के (भविष्यकालीन) पुद्गल परिवर्त कितने होंगे?

उ. किसी (नैरयिक) के होंगे, किसी के नहीं होंगे।

जिस (नैरयिक) के होंगे, उसके जघन्य एक दो या तीन होंगे और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगे।

प्र. दं. २. भंते ! प्रत्येक असुरकुमार के अतीतकाल में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त हुए हैं और भविष्यकाल में कितने होंगे?

उ. गौतम ! इसी प्रकार पूर्ववत् जानना चाहिए।

दं. ३-२४. इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त पुद्गल परिवर्त का कथन करना चाहिए।

प्र. दं. १. भंते ! प्रत्येक नारक के अतीतकाल में कितने वैक्रिय पुद्गल परिवर्त हुए हैं और भविष्यकाल में कितने होंगे?

उ. गौतम ! जिस प्रकार औदारिक पुद्गल-परिवर्त के विषय में कहा, उसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल परिवर्त के विषय में भी कहना चाहिए।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यंत आन-प्राण पुद्गल परिवर्त तक कहना चाहिए।

इसी प्रकार एक नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त प्रत्येक जीव की अपेक्षा सात दण्डक होते हैं।

प्र. दं. १. भंते ! अतीतकाल में नैरयिकों के कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त हुए हैं?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भविष्यकाल में कितने पुद्गल परिवर्त होंगे?

उ. गौतम ! (वे भी) अनन्त होंगे।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार वैक्रियपुद्गल परिवर्तों के विषय में कहना चाहिए।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त आनप्राण-पुद्गल परिवर्त कहना चाहिए।

इस प्रकार ये बहुवचन की अपेक्षा चौवीस दंडकों के सात आलापक कहने चाहिए।

६९. चउवीसदंडयाणं चउवीसदंडएसु पोग्गल परियट्टाणं परूवणं–

प. दं. १. एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स नेरइयत्ते केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता?

उ. गोयमा ! नत्थि एक्को वि।

प. केवइया पुरेक्खडा?

उ. नत्थि एक्को वि।

प. दं. २. एगमेगस्स णं भंते ! नेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता पुरेक्खडा य?

६९. चौवीस दंडकों का चौवीस दंडकों में पुद्गल परिवर्तों का प्ररूपण–

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक अवस्था में प्रत्येक नैरयिक जीव के अतीतकाल में कितने औदारिक पुद्गल परिवर्त हुए हैं?

उ. गौतम ! एक भी नहीं हुआ है।

प्र. भविष्यकाल में कितने (औदारिक पुद्गल-परिवर्त) होंगे?

उ. एक भी नहीं होगा।

प्र. दं. २. भंते ! असुरकुमार अवस्था में प्रत्येक नैरयिक जीव के अतीतकाल में कितने औदारिक पुद्गल-परिवर्त हुए हैं और भविष्य में कितने होंगे?

मणपोग्गलपरियट्टा सव्वेसु पंचिंदिएसु एगुत्तरिया।

मनःपुद्गल परिवर्त समस्त पंचेन्द्रिय जीवों में एक से लेकर उत्तरोत्तर अनन्त पर्यन्त कहने चाहिए।

विगलिंदिएसु नत्थि।

किन्तु विकलेन्द्रियों में मनःपुद्गलपरिवर्त नहीं होता है।

वइपोग्गलपरियट्टा एवं चेव,

इसी प्रकार (मनःपुद्गलपरिवर्त के समान) वचन-पुद्गल-परिवर्त के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

णवरं–एगिंदिएसु नत्थि भाणियव्वा,

विशेष–वह (वचन पुद्गल-परिवर्त) एकेन्द्रिय जीवों में नहीं कहना चाहिए।

आणापाणुपोग्गलपरियट्टा सव्वत्थ एगुत्तरिया जाव वेमाणियस्स वेमाणियत्ते।

आन-प्राण (श्वासोच्छ्वास) पुद्गल-परिवर्त सर्वत्र वैमानिक के वैमानिक भव पर्यन्त एक से लेकर अनन्त पर्यन्त जानना चाहिए।

प. दं. १. नेरइयाणं भंते ! नेरइयत्ते केवइया ओरालियपोग्गलपरियट्टा अतीता ?

उ. गोयमा ! नत्थि एक्को वि।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. नत्थि एक्को वि।

दं. २-११. एवं जाव थणियकुमारत्ते।

प्र. दं. १. भंते ! नैरयिक भव में अनेक नैरयिक जीवों के अतीतकाल में कितने औदारिक पुद्गल परिवर्त हुए हैं ?

उ. गौतम ! एक भी नहीं हुआ है।

प्र. भविष्य में कितने होंगे ?

उ. एक भी नहीं होगा।

दं. २-११. इसी प्रकार स्तनितकुमार भव पर्यन्त कहना चाहिए।

प. दं. १२. नेरइयाणं भंते ! पुढविकाइयत्ते केवइया ओरालिय पोग्गलपरियट्टा अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. अणंता।

दं. १३-२१. एवं जाव मणुस्सत्ते।

दं. २२-२४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियत्ते जहा नेरइयत्ते।

प्र. दं. १२. भंते ! पृथ्वीकायिक भव में अनेक नैरयिक जीवों के अतीतकाल में कितने औदारिक पुद्गल परिवर्त हुए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भविष्य में कितने होंगे ?

उ. अनन्त होंगे।

दं. १३-२१. इसी प्रकार मनुष्य भव पर्यन्त कहना चाहिए।

दं. २२-२४. अनेक नैरयिकों के नैरयिक भव के समान वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक भव के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

एवं जाव वेमाणियाणं वेमाणियत्ते।

इसी प्रकार अनेक वैमानिकों के वैमानिक भव पर्यन्त का कथन करना चाहिए।

एवं सत्त वि पोग्गलपरियट्टा भाणियव्वा।

इसी प्रकार सातों पुद्गल परिवर्तों का कथन करना चाहिए।

जत्थ अत्थि तत्थ अतीता वि पुरेक्खडा वि अणंता भाणियव्वा।

जिसके जो पुद्गल परिवर्त हो उसके अतीत और भविष्यकाल के अनन्त कहने चाहिए।

जत्थ नत्थि तत्थ दो वि नत्थि भाणियव्वा जाव–

जिसके नहीं हों वहाँ अतीत और अनागत दोनों नहीं कहने चाहिए यावत्–

प. वेमाणिया णं भंते ! वेमाणियत्ते केवइया आणापाणु पोग्गलपरियट्टा अतीता ?

उ. गोयमा ! अणंता।

प. केवइया पुरेक्खडा ?

उ. अणंता। *–विया. स. १२, उ. ४, सु. २८-४६*

प्र. भंते ! वैमानिक भव में अनेक वैमानिकों के अतीतकाल में कितने आन-प्राण पुद्गल परिवर्त हुए हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त हुए हैं।

प्र. भविष्य में कितने होंगे ?

उ. अनन्त होंगे।

७०. ओरालिय पोग्गलपरियट्टाणं नामकरणस्सकारण परूवणं–

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'ओरालियपोग्गलपरियट्टे, ओरालियपोग्गलपरियट्टे ?

उ. गोयमा ! जं णं जीवेणं ओरालियसरीरे वट्टमाणेणं ओरालियसरीरपायोग्गाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए

७०. औदारिकादि पुद्गल परिवर्तों के नामकरण के कारणों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! किस कारण से औदारिक पुद्गल-परिवर्त, औदारिक पुद्गल-परिवर्त कहा जाता है ?

उ. गौतम ! औदारिक शरीर में रहते हुए जीव ने औदारिक शरीर योग्य द्रव्यों को औदारिक शरीर के रूप में ग्रहण किये,

गहियाइं, बद्धाइं, पुट्ठाइं, कडाइं, पट्ठवियाइं, निविट्ठाइं अभिनिविट्ठाइं, अभिसमन्नागयाइं, परियाइयाइं, परिणामियाइं, निज्जिण्णाइं, निसिरियाइं, निसिट्ठाइं भवंति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"ओरालिय पोग्गलपरियट्टे, ओरालिय पोग्गलपरियट्टे।"

एवं वेउव्वियपोग्गल परियट्टे वि,

णवरं–वेउव्वियसरीरे वट्टमाणेणं वेउव्वियसरीरपायोग्गाइं दव्वाइं वेउव्विय सरीरत्ताए गहियाइं **जाव** निसिट्ठाइं भवंति।

सेसं तं चेव।

एवं जाव **आणापाणुपोग्गलपरियट्टे।**

णवरं–आणापाणुपायोग्गाइं सव्वदव्वाइं आणापाणुत्ताए सव्वं गहियाइं **जाव** निसिट्ठाइं भवंति।

सेसं तं चेव। *–विया. स. १२, उ. ४, सु. ४७-४९*

वद्ध (एकमेक) किये, स्पृष्ट किये, कृत (रचित) किये, प्रस्थापित (स्थिर) किये, निविष्ट (स्थापित) किये, अभिनिविष्ट (सर्वथा संलग्न) किये, अभिसमन्वागत किये, पर्याप्त कर लिये, परिणामिक किये, निर्जीर्ण किये, पृथक् किये और निःस्पृष्ट (परित्यक्त) किये हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"औदारिक पुद्गल परिवर्त, औदारिक पुद्गल परिवर्त है।"

इसी प्रकार वैक्रियपुद्गल-परिवर्त के विषय में भी कहना चाहिए।

विशेष–जीव ने वैक्रिय शरीर में रहते हुए वैक्रिय शरीर योग्य द्रव्यों को वैक्रिय शरीर के रूप में ग्रहण किये हैं **यावत्** निःसृष्ट किये हैं।

शेष सब कथन पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी प्रकार आन-प्राण पुद्गल-परिवर्त पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष–आन-प्राण योग्य समस्त द्रव्यों को आन-प्राण रूप में ग्रहण किये हैं **यावत्** निःसृष्ट किये हैं।

शेष सब कथन भी पूर्ववत् जानना चाहिए।

७१. ओरालियाईसत्तण्हं पोग्गलपरियट्टाणं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! ओरालियपोग्गलपरियट्टाणं **जाव** आणापाणुपोग्गलपरियट्टाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा वेउव्वियपोग्गलपरियट्टा,
२. वइ पोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा,
३. मणपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा,
४. आणपाणुपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा,
५. ओरालियपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा,
६. तेयापोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा,
७. कम्मगपोग्गलपरियट्टा अणंतगुणा।

–विया. स. १२, उ. ४, सु. ५४

७१. औदारिकादि सात पुद्गल परिवर्तों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन औदारिक पुद्गल परिवर्तों **यावत्** आन-प्राण पुद्गल परिवर्तों में कौन किससे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे थोड़े वैक्रिय-पुद्गल परिवर्त हैं।
२. (उनसे) वचन-पुद्गल परिवर्त अनन्तगुणे हैं।
३. (उनसे) मनःपुद्गल परिवर्त अनन्तगुणे हैं।
४. (उनसे) आनप्राण-पुद्गल परिवर्त अनन्तगुणे हैं।
५. (उनसे) औदारिक-पुद्गल परिवर्त अनन्तगुणे हैं।
६. (उनसे) तैजस् पुद्गल परिवर्त अनन्तगुणे हैं।
७. (उनसे) कार्मण पुद्गल परिवर्त अनन्तगुणे हैं।

७२. ओरालियाइ सत्तण्हं पोग्गलपरियट्टाणं निव्वत्तणाकाल परूवणं–

प. ओरालियपोग्गलपरियट्टेणं भंते ! केवइकालस्स निवत्तिज्जइ ?

उ. गोयमा ! अणंताहिं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं एवइकालस्स निव्वत्तिज्जइ।

एवं वेउव्वियपोग्गलपरियट्टे वि।

एवं जाव **आणापाणुपोग्गलपरियट्टे।**

–विया. स. १२, उ. ४, सु. ५०-५२

७२. औदारिकादि सात पुद्गल परावर्तों के निर्वर्तना काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! औदारिक-पुद्गल परिवर्त कितने काल में निर्वर्तित (निष्पन्न पूर्ण) होता है ?

उ. गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीकाल में निष्पन्न होता है।

इसी प्रकार वैक्रिय-पुद्गल परिवर्त का निष्पत्ति काल जानना चाहिए।

इसी प्रकार आन-प्राण पुद्गल परिवर्त पर्यन्त का निष्पत्ति काल जानना चाहिए।

७३. ओरालियाइपोग्गलपरियट्टसत्तगनिव्वत्तणाकालस्स अप्पाबहुयं–

प. एयस्स णं भंते !
१. ओरालियपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स,

७३. औदारिकादि पुद्गल परिवर्त सप्तक के निर्वर्तना काल का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन
१. औदारिक पुद्गल-परिवर्त निर्वर्तना (निष्पत्ति) काल,

२. वेउव्वियपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स,
३. तेयापोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स,
४. कम्मापोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स,
५. मणपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स,
६. वइपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स,
७. आणापाणुपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !
१. सव्वत्थोवे कम्मगपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले,
२. तेयापोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले अणंतगुणे,
३. ओरालियपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले अणंतगुणे,
४. आणापाणुपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले अणंतगुणे,
५. मणपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले अणंतगुणे,
६. वइपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले अणंतगुणे,
७. वेउव्वियपोग्गलपरियट्ट निव्वत्तणाकाले अणंतगुणे।

—*विया. स. १२, उ. ४, सु. ५३*

२. वैक्रिय पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल,
३. तैजस् पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल,
४. कार्मण पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल,
५. मनःपुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल,
६. वचन पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल,
७. आन-प्राण पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !
१. सबसे थोड़ा कार्मण-पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना (निष्पत्ति) काल है,
२. (उससे) तैजस् पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल अनन्तगुणा है,
३. (उससे) औदारिक पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल अनन्तगुणा है,
४. (उससे) आन-प्राण पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल अनन्तगुणा है,
५. (उससे) मनःपुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल अनन्तगुणा है,
६. (उससे) वचन-पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल अनन्तगुणा है,
७. (उससे) वैक्रिय पुद्गल परिवर्त निर्वर्तना काल अनन्तगुणा है।

७४. परमाणु खंधाणं तिकालवत्तित्त परूवणं—

प. एस णं भंते ! पोग्गले, तीतमणंतं सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! (दव्वट्ठयाए) एस णं पोग्गले तीतमणंतं सासयं समयं भुवीति वत्तव्वं सिया।

प. एस णं भंते ! पोग्गले पडुप्पन्नं सासयं समयं भवतीति वत्तव्वं सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! एस णं पोग्गले पडुप्पन्नं सासयं समयं भवतीति वत्तव्वं सिया।

प. एस णं भंते ! पोग्गले अणागयमणंतं सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया ?

उ. हंता, गोयमा ! एस णं पोग्गले अणागयमणंतं सासयं समयं भविस्सतीति वत्तव्वं सिया।

एवं खंधेण वि तिन्नि आलावगा भाणियव्वा।

—*विया. स. १, उ. ४, सु. ७-१०*

७४. परमाणु और स्कन्धों के त्रिकालवर्तित्व का प्ररूपण—

प्र. भंते ! क्या वह पुद्गल (परमाणु) अतीत, अनन्त शाश्वत काल में था—ऐसा कहा जा सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! (द्रव्य की अपेक्षा) यह पुद्गल अतीत अनन्त शाश्वतकाल में था, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या यह पुद्गल वर्तमान शाश्वत काल में है, ऐसा कहा जा सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह पुद्गल वर्तमान शाश्वत काल में है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र. भंते ! क्या यह पुद्गल अनन्त शाश्वत भविष्यकाल में रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! यह पुद्गल अनन्त शाश्वत भविष्यकाल में रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है।

इसी प्रकार "स्कन्ध" के साथ भी त्रिकाल सम्बन्धी तीन आलापक कहने चाहिए।

७५. परमाणुपोग्गलेसु खंधेसु चउवीसदंडएसु य अणुसेढिगई परूवणं—

प. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! किं अणुसेढिं गई पवत्तइ, विसेढिं गई पवत्तइ ?

उ. गोयमा ! अणुसेढिं गई पवत्तइ, नो विसेढिं गई पवत्तइ।

प. दुपएसियाणं भंते ! खंधाणं किं अणुसेढिं गई पवत्तइ, विसेढिं गई पवत्तइ ?

७५. परमाणु पुद्गलों स्कन्धों और चौवीसदंडकों में अनुश्रेणीगति का प्ररूपण—

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गलों की अनुश्रेणी (आकाश-प्रदेशों की श्रेणी के अनुसार) गति होती है या विश्रेणी (उनसे विपरीत) गति होती है ?

उ. गौतम ! परमाणु-पुद्गलों की अनुश्रेणी गति होती है, विश्रेणी गति नहीं होती है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशिक स्कन्धों की अनुश्रेणी गति होती है या विश्रेणी गति होती है ?

सत्तपएसिए जहा तिपएसिए,
अट्ठपएसिए जहा दुपएसिए,
नवपएसिए जहा तिपएसिए,
दसपएसिए जहा दुपएसिए,

प. संखेज्जपएसिए णं भंते ! खंधे किं सड्ढे, अणड्ढे ?

उ. गोयमा ! सिय सड्ढे, सिय अणड्ढे,
एवं असंखेज्जपएसिए वि,

एवं अणंतपएसिए वि।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं सड्ढा अणड्ढा ?

उ. गोयमा ! सड्ढा वा, अणड्ढा वा,
एवं जाव अणंतपएसिया।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १७४-१८८

सप्तप्रदेशी स्कन्ध का कथन त्रिप्रदेशी स्कन्ध के समान है।
अष्टप्रदेशी स्कन्ध का कथन द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान है।
नवप्रदेशी स्कन्ध का कथन त्रिप्रदेशी स्कन्ध के समान है।
दसप्रदेशी स्कन्ध का कथन द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान है।

प्र. भंते ! संख्यातप्रदेशी स्कन्ध सार्द्ध हैं या अनर्द्ध हैं ?

उ. गौतम ! वे कदाचित् सार्द्ध हैं और कदाचित् अनर्द्ध हैं।
इसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में जानना चाहिए।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का कथन करना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) परमाणु-पुद्गल सार्द्ध हैं या अनर्द्ध हैं ?

उ. गौतम ! वे सार्द्ध भी हैं और अनर्द्ध भी हैं।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यंत जानना चाहिए।

७८. परमाणुपोग्गलाइसु खंधेसु सिय आयाइ रूव परूवणं–

प. आया भंते ! परमाणुपोग्गले, अन्ने परमाणु पोग्गले ?

उ. १. परमाणु पोग्गले सिय आया,
२. सिय नो आया,
३. सिय अवत्तव्वं आयाइ य, नो आयाइ य,

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
"परमाणु पोग्गले सिय आया, सिय नो आया
सिय अवत्तव्वं आयाइ य, नो आयाइ य ?"

उ. गोयमा ! १. अप्पणो आइट्ठे आया,
२. परस्स आइट्ठे नो आया,
३. तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं आयाइ य, नो आयाइ य,
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
"परमाणु पोग्गले सिय आया, सिय नो आया सिय अवत्तव्वं आयाइ य, नो आयाइ य,"

प. आया भंते ! दुपएसिए खंधे अन्ने दुपएसिए खंधे ?

उ. गोयमा ! दुपएसिए खंधे–
१. सिय आया,
२. सिय नो आया,
३. सिय अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य,
४. सिय आया य, नो आया इ य,
५. सिय आया य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य,
६. सिय नो आया य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य,

प. से केणट्ठेणं भंते ! वुच्चइ–
"दुपएसिए खंधे १. सिय आया जाव ६. सिय नो आया य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य ?"

७८. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों में कथंचित् आत्मादि रूप का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल आत्मरूप (सद्रूप) है या अन्य (असद्रूप) है ?

उ. गौतम ! १. परमाणु पुद्गल कथंचित् सद्रूप है,
२. कथंचित् असद्रूप है,
३. कथंचित् सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"परमाणु पुद्गल कथंचित् सद्रूप है, कथंचित् असद्रूप है और कथंचित् सद्-असद् रूप होने से अवक्तव्य है ?"

उ. गौतम ! १. अपने स्वरूप की अपेक्षा सद्रूप है,
२. पररूप की अपेक्षा असद्रूप है,
३. उभय (स्व-पर) की अपेक्षा सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।
इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–
"परमाणु पुद्गल कथंचित् सद्रूप है, कथंचित् असद्रूप है और कथंचित् सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।"

प्र. भंते ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध सद्रूप है या असद्रूप है ?

उ. गौतम ! द्विप्रदेशी स्कन्ध–
१. कथंचित् सद्रूप है,
२. कथंचित् असद्रूप है,
३. कथंचित् सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है,
४. कथंचित् सद्रूप और कथंचित् असद्रूप है,
५. कथंचित् सद्रूप होते हुए भी सद्-असद् (उभयरूप) होने से अवक्तव्य है।
६. कथंचित् असद्रूप होते हुए भी सद्-असद् (उभय रूप) होने से अवक्तव्य है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"द्विप्रदेशी स्कन्ध १. कथंचित् सद्रूप है यावत् ६. कथंचित् असद्रूप होते हुए भी सद्-असद् (उभयरूप) होने से अवक्तव्य है ?"

उ. गोयमा ! तिपएसिए खंधे–

१. अप्पणो आइट्ठे आया,

२. परस्स आइट्ठे नो आया,

३. तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं-आया इ य, नो आया इ य,

४. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, तिपएसिए खंधे आया य, नो आया य,

५. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसा आइट्ठा असब्भावपज्जवा, तिपएसिए खंधे आया य, नो आयाओ य,

६. देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवा, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, तिपएसिए खंधे आयाओ य, नो आयाओ य,

७. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, अवत्तव्वं आयाइ य, नो आयाइ य, तिपएसिए खंधे आया य, आयाओ य,

८. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसा आइट्ठा तदुभयपज्जवा, तिपएसिए खंधे आया य, अवत्तव्वाइं आयाओ य, नो आयाओ य,

९. देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवा, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, तिपएसिए खंधे आयाओ य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य, **एए तिन्नि भंगा,**

१०. देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, तिपएसिए खंधे नो आया य अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य,

११. देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, देसा आइट्ठा तदुभयपज्जवा, तिपएसिए खंधे नो आया य, अवत्तव्वाइं-आयाओ य नो आयाओ य,

१२. देसा आइट्ठा असब्भावपज्जवा, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, तिपएसिए खंधे नो आयाओ य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य, **एए तिन्नि भंगा,**

१३. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, तिपएसिए खंधे आया य, नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"तिपएसिए खंधे १. सिय आया जाव १३. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वं आया इ य नो आया इ य।

प. आया भन्ते ! चउप्पएसिए खंधे, अन्ने चउप्पएसिए खंधे ?

उ. गोयमा ! चउप्पएसिए खंधे–

उ. गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध–

१. अपने स्वरूप की अपेक्षा सद्‌रूप है,

२. पर रूप की अपेक्षा असद्‌रूप है,

३. उभय रूप की अपेक्षा सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है।

४. सद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और असद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्-असद्‌रूप है।

५. सद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और असद्‌भाव पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप है और असद्‌रूप नहीं है।

६. सद्‌भाव पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा और असद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप है और असद्‌रूप नहीं है।

७. सद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और उभय (सद्‌भाव और असद्‌भाव) पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है।

८. सद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और उभयपर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है।

९. सद्‌भाव-पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा और उभयपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप हैं और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य हैं। ये (अस्ति अवक्तव्य के) **तीन भंग जानने चाहिए।**

१०. असद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और उभयपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध असद्‌रूप है और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है।

११. असद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और तदुभय-पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध असद्‌रूप है और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है।

१२. असद्‌भाव पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा और तदुभय पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध असद्‌रूप हैं और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है। ये (नास्ति अवक्तव्य के) **तीन भंग जानने चाहिए।**

१३. सद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा, असद्‌भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और तदुभय पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप है, असद्‌रूप है और सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"त्रिप्रदेशी स्कन्ध १. कथंचित् सद्‌रूप है यावत् १३. कथंचित् सद्‌रूप, असद्‌रूप और सद्-असद् रूप होने से अवक्तव्य है ?

प्र. भंते ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध सद्‌रूप है या असद्‌रूप है ?

उ. गौतम ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध–

१. सिय आया,
२. सिय नो आया,
३. सिय अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य,
४-७. सिय आया य, नो आया य, **चउभंगो**,

८-११. सिय आया य, अवत्तव्वं, **चउभंगो**,

१२-१५. सिय नो आया य, अवत्तव्वं, **चउभंगो**,

१६. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य, नो आया इ य,
१७. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वाइं-आयाओ य, नो आयाओ य,
१८. सिय आया य, नो आयाओ य, अवत्तव्वं-आया इ य, नो आया इ य,
१९. सिय आयाओ य, नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य, नो आया इ य,

प. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–
"चउप्पएसिए खंधे, १. सिय आया य **जाव** १९. सिय आयाओ य, नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य?"

उ. गोयमा ! चउप्पएसिए खंधे–
१. अप्पणो आइट्ठे आया,
२. परस्स आइट्ठे नो आया,
३. तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं-आया इ य, नो आया इ य,
४-७. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे **चउभंगो**,

८-११ सब्भावपज्जवेणं तदुभएण य, **चउभंगो**,

१२-१५. असब्भावपज्जवेणं तदुभएण य, **चउभंगो**,

१६. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, चउप्पएसिए खंधे आया य, नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य,
१७. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, देसा आइट्ठा तदुभयपज्जवा, चउप्पएसिए खंधे, आया य, नो आया य, अवत्तव्वाइं-आयाओ य नो आयाओ य,
१८. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसा आइट्ठा असब्भावपज्जवा, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, चउप्पएसिए खंधे आया य, नो आयाओ य, अवत्तव्वं आया इ य नो आया इ य,

१. कथंचित् सदरूप है,
२. कथंचित् असद्रूप है,
३. कथंचित् सद्रूप असद्रूप होने से अवक्तव्य है,
४-७. कथंचित् सद्रूप और असद्रूप है यहाँ (एक वचन और वहुवचन की अपेक्षा) **चार भंग होते हैं।**
८-११. कथंचित् सद्रूप और अवक्तव्य है (यहाँ एकवचन और वहुवचन की अपेक्षा) **चार भंग होते हैं।**
१२-१५. कथंचित् असद्रूप और अवक्तव्य है (यहाँ भी एक वचन और वहुवचन की अपेक्षा) **चार भंग होते हैं।**
१६. कथंचित् सद्रूप-असद्रूप और सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य हैं,
१७. कथंचित् एक सद्रूप है, अनेक असद्रूप हैं और अनेक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य हैं,
१८. कथंचित् एक सद्रूप है, अनेक असद्रूप हैं और एक सद्-सद्रूप होने से अवक्तव्य है,
१९. कथंचित् अनेक सद्रूप हैं, एक असद्रूप है और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–
"चतुष्प्रदेशी स्कन्ध १. कथंचित् सद्रूप है **यावत्** १९. कथंचित् अनेक सद्रूप हैं, एक असद्रूप है और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है?"

उ. गौतम ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध–
१. अपने स्वरूप की अपेक्षा सद्रूप है,
२. पर रूप की अपेक्षा असद्रूप है,
३. उभय रूप की अपेक्षा सद्-असद् रूप होने से अवक्तव्य है,
४-७. सद्भाव-पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और असद्भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा (एक वचन और बहुवचन के क्रम से) **चार भंग होते हैं,**
८.११. सद्भाव पर्याय वाले और तदुभय पर्याय वाले की अपेक्षा (एक वचन-बहुवचन के क्रम से) **चार भंग होते हैं।**
१२-१५. असद्भावपर्याय वाले और तदुभय पर्याय वाले की अपेक्षा (एकवचन-बहुवचन के क्रम से) **चार भंग होते हैं।**
१६. सद्भावपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा, असद्भावपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और तदुभय पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा चतुष्प्रदेशी स्कन्ध सद्रूप-असद्रूप और सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है,
१७. सद्भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा, असद्भावपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा और तदुभय पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा चतुष्प्रदेशी स्कन्ध सद्रूप-असद्रूप है और अनेक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य हैं,
१८. सद्भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा असद्भाव पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा और तदुभयपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा चतुष्प्रदेशी स्कन्ध सद्रूप है असद्रूप है और सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है,

१९. देसा आइट्ठा सब्भावपज्जवा, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे तदुभयपज्जवे, चउप्पएसिए खंधे आयाओ य नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"चउप्पएसिए खंधे, १. सिय आया जाव १९. सिय आयाओ य, नो आया य, अवत्तव्वं-आया इ य नो आया इ य,

प. आया भन्ते ! पंचपएसिए खंधे, अन्ने पंचपएसिए खंधे ?

उ. गोयमा ! पंचपएसिए खंधे–

१. सिय आया,

२. सिय नो आया,

३. सिय अवत्तव्वं-आया इ य, नो आया इ य,

४-७. सिय आया य, नो आया य, **चउभंगो**

८-११. सिय आया य अवत्तव्वं, **चउभंगो**

१२-१५. सिय नो आया य अवत्तव्वेण य, **चउभंगो**

१६. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य।

१७. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वाइं आयाओ य, नो आयाओ य।

१८. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य।

१९. सिय आया य, नो आया य, अवत्तव्वं आयाओ य, नो आयाओ य।

२०. सिय आयाओ य, नो आया य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य।

२१. सिय आयाओ य, नो आया य, अवत्तव्वं आयाओ य, नो आयाओ य।

२२. सिय आयाओ य, नो आयाओ य, अवत्तव्वं आया इ य, नो आया इ य।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

"पंचपएसिए खंधे १. सिय आया जाव २२. सिय आयाओ य नो आयाओ य, अवत्तव्वं, आया इ य, नो आया इ य?"

उ. गोयमा !

१. अप्पणो आइट्ठे आया,

२. परस्स आइट्ठे नो आया,

३. तदुभयस्स आइट्ठे अवत्तव्वं,

४-१५. देसे आइट्ठे सब्भावपज्जवे, देसे आइट्ठे असब्भावपज्जवे,

एवं दुयगसंजोगे सव्वे पडंति. (दुवालस भंगा)–

१९. सद्भाव-पर्याय वाले अनेक देशों की अपेक्षा, असद्भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा तथा तदुभयपर्याय वाले एक देश की अपेक्षा चतुष्प्रदेशी स्कन्ध सद्रूप है, असद्रूप है और सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"चतुष्प्रदेशी स्कन्ध १. कथंचित् सद्रूप है **यावत्** १९. कथंचित् अनेक सद्रूप हैं, एक असद्रूप है और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

प्र. भंते ! पंचप्रदेशी स्कन्ध सद्रूप है या असद्रूप है ?

उ. गौतम ! पंचप्रदेशी स्कन्ध–

१. कथंचित् सद्रूप है,

२. कथंचित् असद्रूप है,

३. कथंचित् सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है,

४-७. कथंचित् सद्रूप और असद्रूप है (यहाँ भी एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा) **चार भंग होते हैं।**

८.११. कथंचित् सद्रूप और अवक्तव्य है (यहाँ भी एक वचन और बहुवचन की अपेक्षा) **चार भंग होते हैं।**

१२-१५. कथंचित् असद्रूप और अवक्तव्य है। (यहाँ भी एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा) **चार भंग होते हैं।**

१६. कथंचित् सद्रूप-असद्रूप और सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

१७. कथंचित् एक सद्रूप और एक असद्रूप है और अनेक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य हैं।

१८. कथंचित् एक सद्रूप है, अनेक असद्रूप हैं और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

१९. कथंचित् एक सद्रूप है, अनेक असद्रूप होने से अवक्तव्य हैं और सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

२०. कथंचित् अनेक सद्रूप हैं, एक असद्रूप और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

२१. कथंचित् अनेक सद्रूप हैं, एक असद्रूप है और अनेक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य हैं।

२२. कथंचित् अनेक सद्रूप हैं और अनेक असद्रूप हैं और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।

प्र. भंते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

"पंचप्रदेशी स्कन्ध–१. कथंचित् सद्रूप है **यावत्** २२. कथंचित् अनेक सद्रूप और अनेक असद्रूप हैं और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है ?"

उ. गौतम ! पंचप्रदेशी स्कन्ध–

१. अपने स्वरूप की अपेक्षा सद्रूप है,

२. पर रूप की अपेक्षा असद्रूप है,

३. उभयरूप की अपेक्षा सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है,

४-१५. सद्भाव-पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा असद्भाव पर्याय वाले एक देश की अपेक्षा तथा

इसी प्रकार द्विकसंयोगी में सभी (बारह) भंग बनते हैं।

१६-२२. तियगसंजोगे एक्को ण पडइ। (सत्त भंगा)

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

"पंचपएसिए खंधे १. सिय आया जाव २२. सिय आयाओ य नो आयाओ य अवत्तव्वं आया इ य नो आया इ य।"

छप्पएसियस्स सव्वे पडंति,

छप्पएसिए एवं जाव अणंतपएसिए।

–विया. स. १२, उ. १०, सु. २७-३३

१६-२२. त्रिकसंयोगी आठ भंगों में से अंतिम भंग घटित न होने से सात भंग होते हैं।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

"पंच प्रदेशी स्कन्ध–१. कथंचित् सद्रूप है यावत् २२. कथंचित् अनेक सद्रूप और अनेक असद्रूप हैं और एक सद्-असद्रूप होने से अवक्तव्य है।"

षट्प्रदेशी स्कन्ध में सभी २३ भंग होते हैं। (अर्थात् त्रिकसंयोगी आठवाँ भंग भी बनता है।)

षट्प्रदेशी स्कन्ध की तरह अनन्त प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त भंग जानने चाहिए।

७९. परमाणुपोग्गल-खंधाणं परोप्परं फुसणा परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! परमाणुपोग्गलं फुसमाणे किं–

१. देसेणं देसं फुसइ,
२. देसेणं देसे फुसइ,
३. देसेणं सव्वं फुसइ,
४. देसेहिं देसं फुसइ,
५. देसेहिं देसे फुसइ,
६. देसेहिं सव्वं फुसइ,
७. सव्वेणं देसं फुसइ,
८. सव्वेणं देसे फुसइ,
९. सव्वेणं सव्वं फुसइ ?

उ. गोयमा !

१. णो देसेणं देसं फुसइ,
२. णो देसेणं देसे फुसइ,
३. णो देसेणं सव्वं फुसइ,
४. णो देसेहिं देसं फुसइ,
५. णो देसेहिं देसे फुसइ,
६. णो देसेहिं सव्वं फुसइ,
७. णो सव्वेणं देसं फुसइ,
८. णो सव्वेणं देसे फुसइ,
९. सव्वेणं सव्वं फुसइ।

एवं परमाणु पोग्गले दुपदेसियं फुसमाणे सत्तम-णवमेहिं-फुसइ।

परमाणुपोग्गले तिपएसियं फुसमाणे पच्छिमएहिं तिहिं फुसइ।

जहा परमाणु पोग्गले तिपएसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो-जाव-अणंतपएसिओ।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे परमाणु पोग्गलं फुसमाणे किं–

१. देसेणं देसं फुसइ जाव
९. सव्वेणं सव्वं फुसइ ?

७९. परमाणु पुद्गल स्कन्धों का परस्पर स्पर्शना का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु पुद्गल-परमाणुपुद्गल को स्पर्श करता हुआ–

१. क्या एक देश से एक देश को स्पर्श करता है ?
२. एक देश से बहुत देशों को स्पर्श करता है ?
३. एक देश से सर्व को स्पर्श करता है ?
४. बहुत देशों से एक देश को स्पर्श करता है ?
५. बहुत देशों से बहुत देशों को स्पर्श करता है ?
६. बहुत देशों से सर्व को स्पर्श करता है ?
७. सर्व से एक देश को स्पर्श करता है ?
८. सर्व से बहुत देशों को स्पर्श करता है ?
९. सर्व से सर्व को स्पर्श करता है ?

उ. गौतम ! (परमाणु पुद्गल को)

१. एक देश से एक देश को स्पर्श नहीं करता,
२. एक देश से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता,
३. एक देश से सर्व को स्पर्श नहीं करता,
४. बहुत देशों से एक देश को स्पर्श नहीं करता,
५. बहुत देशों से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता,
६. बहुत देशों से सभी को स्पर्श नहीं करता,
७. सर्व से एक देश को स्पर्श नहीं करता है,
८. सर्व से बहुत देशों को स्पर्श नहीं करता है किन्तु
९. सर्व से सर्व को स्पर्श करता है।

इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणु-पुद्गल सातवें (सर्व से एक देश का) और नौवें (सर्व से सर्व का) इन दो विकल्पों से स्पर्श करता है।

त्रिप्रदेशीस्कन्ध को स्पर्श करता हुआ परमाणुपुद्गल अन्तिम तीन विकल्पों (७-९) से स्पर्श करता है।

जिस प्रकार एक परमाणु-पुद्गल द्वारा त्रिप्रदेशीस्कन्ध के स्पर्श करने का आलापक कहा गया है उसी प्रकार अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध पर्यंत के स्पर्श का आलापक कहना चाहिए।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणु पुद्गल को स्पर्श करता हुआ क्या–

१. एक देश से एक देश को स्पर्श करता है यावत्
९. सर्व से सर्व को स्पर्श करता है ?

उ. गोयमा ! तइय नवमेहिं फुसइ,

दुपएसिओ दुपदेसियं फुसमाणो पढम-तइय-सत्तम-णवमेहिं फुसइ,

दुपदेसिओ तिपदेसियं फुसमाणो आदिल्लएहि य पच्छिल्लएहि य तिहिं फुसइ, मज्झिमएहिं तिहिं वि पडिसेहेयव्वं।

दुपदेसिओ जहा तिपदेसियं फुसाविओ एवं फुसावेयव्वो जाव अणंतपएसियं फुसइ।

प. तिपएसिए णं भंते ! खंधे परमाणुपोग्गलं फुसमाणे किं–

१. देसेणं देसं फुसइ जाव

९. सव्वेणं सव्वं फुसइ ?

उ. गोयमा ! तइय-छट्ठ-णवमेहिं फुसइ।

तिपएसिओ दुपएसियं फुसमाणो पढमएणं, तइएणं, चउत्थ-छट्ठ-सत्तम-णवमेहिं फुसइ।

तिपएसिओ तिपएसियं फुसमाणो सव्वेसु वि ठाणेसु फुसइ।

जहा-तिपएसिओ तिपदेसियं फुसाविओ एवं तिपदेसिओ-जाव-अणंतपएसिएणं संजोएयव्वो।

जहा तिपएसिओ एवं जाव-अणंतपएसिओ भाणियव्वो।

–विया. स. ५, उ. ७, सु. ११-१३

८०. परमाणु पोग्गलाणं खंधाण य वाउकाएणं फुसणा परूवणं–

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! वाउकाएणं फुडे, वाउकाए वा परमाणुपोग्गलेणं फुडे ?

उ. गोयमा ! परमाणु पोग्गले वाउकाएणं फुडे, नो वाउकाए परमाणु पोग्गलेणं फुडे।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे वाउकाएणं फुडे, वाउकाए वा, दुपएसिएणं खंधेणं फुडे ?

उ. गोयमा ! दुपएसिए खंधे वाउकाएणं फुडे, नो वाउकाए दुपएसिएणं खंधेणं फुडे।

एवं जाव असंखेज्जपएसिए।

प. अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे वाउकाएणं फुडे, वाउकाए वा, अणंतपएसिएणं खंधेणं फुडे ?

उ. गोयमा ! अणंतपएसिए खंधे वाउकाएणं फुडे, वाउकाए अणंतपएसिएणं खंधेणं सिय फुडे, सिय नो फुडे।

–विया. स. १८, उ. १०, सु. ४-७

उ. गौतम ! (द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणु पुद्गल को) तीसरे और नौवें (एक देश से सर्व को तथा सर्व से सर्व को) विकल्प से स्पर्श करता है।

द्विप्रदेशीस्कन्ध-द्विप्रदेशीस्कन्ध को स्पर्श करता हुआ पहले, तीसरे, सातवें और नौवें विकल्प से स्पर्श करता है।

द्विप्रदेशीस्कन्ध-त्रिप्रदेशीस्कन्ध को स्पर्श करता हुआ आदि के तीन (१-३) तथा अन्तिम तीन (७-९) विकल्पों से स्पर्श करता है। इसमें मध्य के तीन (चतुर्थ, पंचम और षष्ठ) विकल्पों को छोड़ देना चाहिए।

जिस प्रकार द्विप्रदेशीस्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श का आलापक कहा उसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त स्पर्श का आलापक कहना चाहिए।

प्र. भंते ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध परमाणुपुद्गल को स्पर्श करता हुआ क्या–

१. एक देश से एक देश को स्पर्श करता है यावत्

९. सर्व से सर्व को स्पर्श करता है ?

उ. गौतम ! (त्रिप्रदेशी स्कन्ध परमाणु पुद्गल को) तीसरे, छठे और नौवें (एकदेश से सर्व को, बहुत देशों से सर्व को और सर्व से सर्व को) विकल्प से स्पर्श करता है।

त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्विप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ पहले, तीसरे, चौथे, छठे, सातवें और नौवें विकल्प से स्पर्श करता है।

त्रिप्रदेशीस्कन्ध त्रिप्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करता हुआ सभी (१-९) विकल्पों से स्पर्श करता है।

जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध के स्पर्श का आलापक कहा उसी प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्वारा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त के स्पर्श आलापक कहने चाहिए।

जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध के परमाणु पुद्गल आदि से स्पर्श के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध द्वारा परमाणु पुद्गल स्पर्श करने के लिए कहना चाहिए।

८०. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों का वायुकाय से स्पर्शना का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल वायुकाय से स्पृष्ट (व्याप्त) है या वायुकाय परमाणुपुद्गल से स्पृष्ट है ?

उ. गौतम ! परमाणु-पुद्गल वायुकाय से स्पृष्ट है किन्तु वायुकाय परमाणु परमाणु-पुद्गल से स्पृष्ट नहीं है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशिक-स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है या वायुकाय द्विप्रदेशिक स्कन्ध से स्पृष्ट है ?

उ. गौतम ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है किन्तु वायुकाय द्विप्रदेशिक स्कन्ध से स्पृष्ट नहीं है।

इसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! अनन्तप्रदेशी स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है या वायुकाय अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से स्पृष्ट है ?

उ. गौतम ! अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध वायुकाय से स्पृष्ट है, किन्तु वायुकाय अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध से कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं है।

८१. परमाणु पोग्गल खंधाणं असिधाराइसु ओगाहणाइ परूवणं–

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! असिधारं वा, खुरधारं वा, ओगाहेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! ओगाहेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा, भिज्जेज्ज वा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे,
नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।
एवं जाव असंखेज्जपएसिओ।

प. अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे असिधारं वा, खुरधारं वा ओगाहेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! ओगाहेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ छिज्जेज्ज वा, भिज्जेज्ज वा।

उ. गोयमा ! अत्थेगइए छिज्जेज्ज वा, भिज्जेज्ज वा,
अत्थेगइए नो छिज्जेज्ज वा, नो भिज्जेज्ज वा।

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! अगणिकायस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! वीइवएज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे,
नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. से णं भंते ! पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! वीइवएज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ उल्लेसिया ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे,
नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. से णं भंते ! गंगाए महाणदीए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! हव्वमागच्छेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ विणिहायमावज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे,
नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

प. से णं भंते ! उदगावत्तं वा, उदगबिंदु वा ओगाहेज्जा ?

उ. हंता, गोयमा ! ओगाहेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ परियावज्जेज्जा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे,
नो खलु तत्थ सत्थं कमइ।

८१. परमाणु-पुद्गल स्कन्धों का असिधारादि पर अवगाहनादि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या परमाणु पुद्गल तलवार की धार या छुरे की धार पर अवगाहन करके रह सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह अवगाहना करके रह सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह छेदा-भेदा जा सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
उस पर शस्त्र का प्रयोग नहीं हो सकता है।
इसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त (शस्त्र प्रयोग न होने से) जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तलवार की धार या छुरे की धार पर अवगाहन करके रह सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह अवगाहन करके रह सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह छेदा-भेदा जा सकता है ?

उ. गौतम ! कोई अनन्तप्रदेशी स्कन्ध छिन्न-भिन्न हो सकता है,
कोई छिन्न-भिन्न नहीं हो सकता है।

प्र. भंते ! क्या परमाणु पुद्गल अग्निकाय के बीच में प्रवेश कर सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह प्रवेश कर सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह (अग्नि में) जल सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
उस पर शस्त्र का प्रयोग नहीं हो सकता है। (अर्थात् अग्नि से नहीं जल सकता है।)

प्र. भंते ! क्या वह पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ के बीच में प्रवेश कर सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह प्रवेश कर सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह (महामेघ में) भीग सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
क्योंकि उस पर शस्त्र का प्रयोग नहीं हो सकता है (अर्थात् वह भीग नहीं सकता है।)

प्र. भंते ! क्या वह गंगा महानदी के प्रतिस्रोत (विपरीत प्रवाह) में गमन कर सकता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह (विपरीत प्रवाह) में गमन कर सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह विनष्ट हो सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
उस पर शस्त्र का प्रयोग नहीं हो सकता है (अर्थात् विनष्ट नहीं हो सकता है।)

प्र. भंते ! क्या वह उदकावर्त और उदक बिन्दु में अवगाहन करके रह जाता है ?

उ. हाँ, गौतम ! वह अवगाहन करके रह सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह रूपान्तर में परिणत हो सकता है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।
उस पर शस्त्र का प्रयोग नहीं हो सकता है। (अर्थात् वह रूपान्तर में परिणत नहीं हो सकता है।)

एवं जाव असंखेज्जपएसिओ।

प. अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे अगणिकायस्स मज्झं मज्झेणं वीइवएज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! वीइवएज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ झियाएज्जा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए झियाएज्जा, अत्थेगइए नो झियाएज्जा।

प. से णं भंते ! पुक्खलसंवट्टगस्स महामेहस्स मज्झंमज्झेणं वीइवएज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! वीइवएज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ उल्लेसिया।

उ. गोयमा ! अत्थेगइए उल्लेसिया, अत्थेगइए नो उल्लेसिया।

प. से णं भंते ! गंगाए महाणईए पडिसोयं हव्वमागच्छेज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! हव्वमागच्छेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ विणिहायमावज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए विणिहायमावज्जेज्जा, अत्थेगइए नो विणिहायमावज्जेज्जा।

प. से णं भंते ! उदगावत्तं वा, उदगविन्दु वा ओगाहेज्जा?

उ. हंता, गोयमा ! ओगाहेज्जा।

प. से णं भंते ! तत्थ परियावज्जेज्जा?

उ. गोयमा ! अत्थेगइए परियावज्जेज्जा, अत्थेगइए नो परियावज्जेज्जा॥ *–विया. स. ५, उ. ७, सु. ३-८*

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों पर्यंत जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या अनन्त प्रदेशी स्कन्ध अग्निकाय के बीच में प्रवेश कर सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! वह प्रवेश कर सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह (अग्नि में) जल सकता है?

उ. गौतम ! कोई जल सकता है और कोई नहीं जल सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ के बीच में प्रवेश कर सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! वह प्रवेश कर सकता है।

प्र. भंते ! वह (महामेघ में) भीग सकता है?

उ. गौतम ! कोई भीग सकता है और कोई नहीं भीग सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह गंगा महानदी के प्रतिस्रोत में गमन कर सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! वह गमन कर सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह विनष्ट हो सकता है?

उ. गौतम ! कोई विनष्ट हो सकता है और कोई विनष्ट नहीं हो सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह उदकावर्त और उदकविन्दु में अवगाहन करके रह सकता है?

उ. हाँ, गौतम ! वह अवगाहन करके रह सकता है।

प्र. भंते ! क्या वह रूपान्तर में परिणत हो सकता है?

उ. गौतम ! कोई परिणत हो सकता है और कोई परिणत नहीं हो सकता है।

८२. परमाणु-पोग्गल खंधाणं एयणाइ परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! एयइ, वेयइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, खुब्भइ, उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ?

उ. हंता, गोयमा ! १. सिय एयइ जाव उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ,

२. सिय नो एयइ जाव नो उदीरइ, नो तं तं भावं परिणमइ।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे एयइ जाव उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ?

उ. गोयमा ! १. सिय एयइ जाव उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ,

२. सिय नो एयइ जाव नो उदीरइ, नो तं तं भावं परिणमइ,

३. सिय देसे एयइ, देसे नो एयइ।

प. तिपएसिए णं भंते ! खंधे एयइ, नो एयइ।

उ. गोयमा ! १. सिय एयइ,

२. सिय नो एयइ,

८२. परमाणु पुद्गल स्कन्धों के कम्पन आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या परमाणु पुद्गल कांपता है, विशेष रूप से कांपता है, चलता है, फड़कता है, मिलता है, क्षुभित होता है, उदीरित होता है और उस-उस भाव में परिणत होता है?

उ. हाँ, गौतम ! १. परमाणु पुद्गल कदाचित् कांपता है यावत् उदीरित होता है और उस-उस भाव में परिणत होता है,

२. परमाणु पुद्गल कदाचित् नहीं कांपता है यावत् उदीरित नहीं होता है और उस-उस भाव में परिणत नहीं होता है।

प्र. भंते ! क्या द्विप्रदेशिक स्कन्ध कांपता है यावत् उदीरित होता है और उस-उस भाव में परिणत होता है?

उ. गौतम ! १. कदाचित् कांपता है यावत् उदीरित होता है और उस-उस भाव में परिणत होता है।

२. कदाचित् नहीं कांपता है यावत् उदीरित नहीं होता है और उस-उस भाव में परिणत नहीं होता है।

३. कदाचित् एक अंश से कांपता है और एक अंश से नहीं कांपता है।

प्र. भंते ! क्या त्रिप्रदेशिक स्कन्ध कांपता है और नहीं कांपता है?

उ. गौतम ! १. कदाचित् कांपता है,

२. कदाचित् नहीं कांपता है,

३. सिय देसे एयइ, देसे नो एयइ,

४. सिय देसे एयइ, नो देसा एयंति,

५. सिय देसा एयंति, नो देसे एयइ,

प. चउप्पएसिए णं भंते ! खंधे एयइ, नो एयइ?

उ. गोयमा ! १. सिय एयइ,

२. सिय नो एयइ,

३. सिय देसे एयइ, नो देसे एयइ,

४. सिय देसे एयइ, नो देसा एयंति,

५. सिय देसा एयंति, नो देसे एयइ,

६. सिय देसा एयंति, नो देसा एयंति,

जहा चउप्पदेसिओ तहा पंच पदेसिओ, एवं जाव अणंतपदेसिओ। *-विया. स. ५, उ. ७, सु. १-२*

३. कदाचित् एक अंश से कांपता है और एक अंश से नहीं कांपता है,

४. कदाचित् एक अंश से कांपता है और बहुत अंशों से नहीं कांपता है,

५. कदाचित् बहुत अंशों से कांपता है और एक अंश से नहीं कांपता है,

प्र. भंते ! क्या चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध कांपता है और नहीं कांपता है?

उ. गौतम ! १. कदाचित् कांपता है,

२. कदाचित् नहीं कांपता है,

३. कदाचित् एक अंश से कांपता है और एक अंश से नहीं कांपता है।

४. कदाचित् एक अंश से कांपता है और बहुत अंशों से नहीं कांपता है,

५. कदाचित् बहुत अंशों से कांपता है और एक अंश से नहीं कांपता है,

६. कदाचित् बहुत अंशों से कांपता है और बहुत अंशों से नहीं कांपता है।

जिस प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के लिए कहा उसी प्रकार पंचप्रदेशी स्कन्धों से अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त कहना चाहिए।

८३. परमाणु पोग्गल-खंधेसु जहाजोगं देसेयाइ परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं देसेए, सव्वेए, निरेए?

उ. गोयमा ! नो देसेए, सिय सव्वेए, सिय निरेए,

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे देसेए, सव्वेए, निरेए?

उ. गोयमा ! सिय देसेए, सिय सव्वेए, सिय निरेए,

एवं - जाव - अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं देसेया, सव्वेया, निरेया?

उ. गोयमा ! नो देसेया, सव्वेया वि, निरेया वि,

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधा किं देसेया, सव्वेया, निरेया?

उ. गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि, निरेया वि,

एवं - जाव - अणंतपएसिया।

-विया. स. २५, उ. ४, सु. २११-२१६

८३. परमाणु पुद्गल स्कन्धों में यथायोग्य देशकम्पक आदि का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु पुद्गल देशकम्पक (कुछ अंश से कम्पित होने वाला) है, सर्वकम्पक (पूर्णतया कम्पित होने वाला) है या निष्कम्पक है?

उ. गौतम ! परमाणु-पुद्गल देश कम्पक नहीं है, वह कदाचित् सर्वकम्पक है, कदाचित् निष्कम्पक है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध देशकम्पक है, सर्वकम्पक है या निष्कम्पक है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् देशकम्पक है, कदाचित् सर्वकम्पक है और कदाचित् निष्कम्पक है।

इसी प्रकार अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल देशकम्पक हैं, सर्वकम्पक हैं या निष्कम्पक हैं?

उ. गौतम ! वे देशकम्पक नहीं हैं, किन्तु सर्वकम्पक हैं और निष्कम्पक भी हैं।

प्र. भंते ! (बहुत) द्विप्रदेशी-स्कन्ध देशकम्पक हैं, सर्वकम्पक हैं या निष्कम्पक हैं?

उ. गौतम ! वे देश कम्पक भी हैं, सर्वकम्पक भी हैं और निष्कम्पक भी हैं।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त जानना चाहिए।

८४. विविह पगाराणं परमाणु पोग्गल-खंधाणं ठिई परूवणं–

प. परमाणु पोग्गले णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

एवं जाव अणंतपएसिओ।

प. एगपदेसोगाढे णं भंते ! पोग्गले सेए तम्मि वा ठाणे अन्नंमि वा ठाणे कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

एवं जाव असंखेज्जपदेसोगाढे।

प. एगपदेसोगाढे णं भंते ! पोग्गले निरेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

एवं जाव असंखेज्जपदेसोगाढे।

प. एगगुणकालए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

एवं जाव अणंतगुणकालए,

एवं वण्ण-गंध-रस-फास जाव अणंतगुणलुक्खे।

एवं सुहुमपरिणए बायरपरिणए पोग्गले वि।

प. सद्दपरिणए णं भंते ! पोग्गले कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

असद्दपरिणए जहा एगगुणकालए।

–विया. स. ५, उ. ७, सु. १४-२१

८४. विविध प्रकारों से परमाणु पुद्‌गल स्कन्धों की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु पुद्‌गल काल की अपेक्षा कब तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक प्रदेशावगाढ पुद्‌गल स्वस्थान में या अन्य स्थान में काल की अपेक्षा कब तक सकम्प रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यात भाग तक सकम्प रहता है।

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशावगाढ पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक प्रदेशावगाढ पुद्‌गल काल की अपेक्षा कब तक निष्कम्प रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक निष्कम्प रहता है।

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशावगाढ पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक गुण काला पुद्‌गल काल की अपेक्षा कब तक एक गुण काल रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहता है।

इसी प्रकार अनन्तगुण काले पुद्‌गल पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार वर्ण-गंध-रस यावत् अणंतगुणरूक्ष स्पर्श पुद्‌गल के लिए कहना चाहिए।

इसी प्रकार सूक्ष्म परिणत एवं बादरपरिणत पुद्‌गल के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

प्र. भंते ! शब्दपरिणत पुद्‌गल काल की अपेक्षा कब तक शब्द परिणत रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यात भाग तक रहता है।

जिस प्रकार एक गुण काले पुद्‌गल के विषय में कहा उसी प्रकार अशब्दपरिणत पुद्‌गल के विषय में कहना चाहिए।

८५. विविह पगाराणं परमाणुपोग्गलखंधाणं अंतरकाल परूवणं–

प. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं,

एवं जाव अणंतपएसिओ।

प. एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स सेयस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

८५. विविध प्रकारों के परमाणु पुद्‌गल स्कन्धों के अंतर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्‌गल का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर होता है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशिक स्कन्ध का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल का अन्तर होता है।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! एक प्रदेशावगाढ सकम्प पुद्‌गल का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर होता है।

एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे।

प. एगपएसोगाढस्स णं भंते ! पोग्गलस्स निरेयस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं,

एवं जाव असंखेज्जपएसोगाढे।

वण्ण-गंध-रस-फास-सुहुमपरिणय-बायरपरिणयाणं एएसिं जं चेव संचिट्ठणा तं चेव अंतरं पि भाणियव्वं।

प. सद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. असद्दपरिणयस्स णं भंते ! पोग्गलस्स अंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं। *–विया. स. ५, उ. ७, सु. २२-२८*

८६. सव्वेय-देसेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं ठिई परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! सव्वेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं।

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! निरेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे देसेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे सव्वेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे निरेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

एवं जाव अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सव्वेया कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेया कालओ केवचिरं होंति ?

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशावगाढ पर्यन्त पुद्गलों का अन्तर काल कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक प्रदेशावगाढ निष्कम्प पुद्गल का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यात भाग का अन्तर होता है।

इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशावगाढ पर्यन्त पुद्गलों का अन्तर कहना चाहिए।

वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श सूक्ष्म परिणत एवं बादर परिणत पुद्गलों का जो संस्थितिकाल है वही उनका अन्तर काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! शब्दपरिणत पुद्गल का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर होता है।

प्र. भंते ! अशब्दपरिणत पुद्गल का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यात भाग का अन्तर होता है।

८६. सर्व कम्पक-देश कम्पक निष्कम्पक परमाणु पुद्गल स्कन्धों की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (एक) परमाणु पुद्गल सर्वकम्पक कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक सर्वकम्पक रहता है।

प्र. भंते ! (एक) परमाणु-पुद्गल निष्कम्पक कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (निष्कम्पक) रहता है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध देशकम्पक कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक (देशकम्पक) रहता है।

प्र. भंते ! द्वि-प्रदेशी स्कन्ध सर्वकम्पक कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक (सर्वकम्पक) रहता है।

प्र. भंते ! द्वि-प्रदेशी स्कन्ध निष्कम्पक कितने काल तक रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (निष्कम्पक) रहता है।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशीस्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) परमाणु-पुद्गल सर्वकम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे सर्वदा सर्वकम्पक रहते हैं।

प्र. भंते ! (अनेक) परमाणु-पुद्गल निष्कम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधा देसेया कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधा सव्वेया कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधा निरेया कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

एवं जाव अणंतपएसिया।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २१७-२२८

उ. गौतम ! वे सदैव निष्कम्पक रहते हैं।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध देश कम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे सदैव देशकम्पक रहते हैं।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध सर्वकम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे सदैव सर्वकम्पक रहते हैं।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध निष्कम्पक कितने काल तक रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे सदैव निष्कम्पक रहते हैं।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त जानना चाहिए।

८७. सव्वेय देसेय निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं अंतरकाल परूवणं–

प. परमाणु पोग्गलस्स णं भंते ! सव्वेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण असंखेज्जं कालं।

प. परमाणु पोगलस्स णं भंते ! निरेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स देसेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स सव्वेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहा देसेयस्स।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स निरेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं।

एवं जाव अणंतपएसियस्स।

प. परमाणु पोग्गला णं भंते ! सव्वेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ ?

८७. सर्वकम्पक-देशकम्पक-निष्कम्पक परमाणु पुद्गल स्कन्धों के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! सर्वकम्पक परमाणु पुद्गल का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर है।

परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल का अन्तर है।

प्र. भंते ! निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट-आवलिका के असंख्यातवें भाग का अन्तर है।

परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर है।

प्र. भंते ! देशकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर है ?

परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल का अन्तर है।

प्र. भंते ! सर्वकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार देशकम्पक का अन्तर काल कहा उसी प्रकार सर्वकम्पक का भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! निष्कम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का अन्तर है।

परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल का अन्तर है।

इसी प्रकार अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त अन्तर काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (अनेक) सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गलों का अन्तर काल कितना है ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. परमाणु पोग्गला णं भंते ! निरेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. दुपएसियाणं भंते ! खंधाणं देसेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. दुपएसियाणं भंते ! खंधाणं सव्वेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधाणं निरेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

एवं जाव अणंतपएसियाणं।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २२९-२४०

८८. सव्वेय-देसेय-निरेय-परमाणुपोग्गलखंधाणं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! परमाणु पोग्गलाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सव्वेया,
२. निरेया असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! दुपएसियाणं खंधाणं देसेयाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा दुपएसिया खंधा सव्वेया,
२. देसेया असंखेज्जगुणा,
३. निरेया असंखेज्जगुणा।

एवं जाव असंखेज्जपएसियाणं खंधाणं।

प. एएसि णं भंते ! अणंतपएसियाणं खंधाणं देसेयाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा सव्वेया,
२. निरेया अणंतगुणा,
३. देसेया अणंतगुणा।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २४१-२४४

८९. सव्वेय - देसेय - निरेय - परमाणुपोग्गलखंधाणं दव्वट्ठयाइ अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपएसियाणं, असंखेज्जपएसियाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं देसेयाणं, सव्वेयाणं निरेयाणं दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गौतम ! उनका अन्तर काल नहीं है।

प्र. भंते ! निष्कम्पक परमाणु-पुद्गलों का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! उनका भी अन्तर काल नहीं है।

प्र. भंते ! देशकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्धों का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! उनका भी अन्तर काल नहीं है।

प्र. भंते ! सर्वकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्धों का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! उनका भी अन्तर काल नहीं है।

प्र. भंते ! निष्कम्पक द्विप्रदेशी स्कन्धों का अन्तर काल कितना है?

उ. गौतम ! उनका भी अन्तर काल नहीं है।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त के अन्तर काल जानना चाहिए।

८८. सर्वकम्पक-देशकम्पक-निष्कम्पक परमाणु पुद्गल स्कन्धों का अल्प-बहुत्व–

प्र. भंते ! एक सर्वकम्पक और निष्कम्पक परमाणु-पुद्गलों में कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गल हैं,
२. (उनसे) निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,

प्र. भंते ! देशकम्पक, सर्वकम्पक और निष्कम्पक द्विप्रदेशी स्कन्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सर्वकम्पक द्विप्रदेशी स्कन्ध हैं,
२. (उनसे) देशकम्पक असंख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) निष्कम्पक असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार असंख्यात-प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त का अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

प्र. भंते ! देशकम्पक, सर्वकम्पक और निष्कम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प सर्वकम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं,
२. (उनसे) निष्कम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) देशकम्पक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुणे हैं।

८९. सर्वकम्पक - देशकम्पक - निष्कम्पक परमाणु पुद्गल स्कन्धों का द्रव्यार्थादि की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन देशकम्पक, सर्वकम्पक और निष्कम्पक परमाणु-पुद्गलों, संख्यातप्रदेशी, असंख्यात-प्रदेशी और अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों में, द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा तथा द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए,
२. अणंतपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
३. अणंतपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
४. असंखेज्जपएसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
५. संखेज्जपएसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
६. परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
७. संखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
८. असंखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
९. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१०. संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
११. असंखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

पएसट्ठाए–सव्वत्थोवा अणंतपएसिया।

सेसं तं चेव।

णवरं–परमाणुपोग्गला अपएसट्ठयाए भाणियव्वा,

संखेज्जपएसिया खंधा निरेया पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए,
२. ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
३. अणंतपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
४. ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
५. अणंतपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
६. ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
७. असंखेज्जपएसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
८. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
९. संखेज्जपएसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१०. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

उ. गौतम !

१. सर्वकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प है,
२. (उनसे) निष्कम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
३. (उनसे) देशकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
४. (उनसे) सर्वकम्पक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
५. (उनसे) सर्वकम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
६. (उनसे) सर्वकम्पक परमाणु-पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
७. (उनसे) देशकम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
८. (उनसे) देशकम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
९. (उनसे) निष्कम्पक परमाणु-पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
१०. (उनसे) निष्कम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
११. (उनसे) निष्कम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा–सबसे अल्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध हैं।

शेष कथन पूर्ववत् है।

विशेष–परमाणु पुद्गलों के प्रदेश नहीं कहने चाहिए।

प्रदेशों की अपेक्षा निष्कम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं।

द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा–

१. द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प सर्वकम्पक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध हैं,
२. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
३. द्रव्य की अपेक्षा निष्कम्पक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुणे हैं,
४. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
५. द्रव्य की अपेक्षा देशकम्पक अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुणे हैं,
६. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,
७. द्रव्य की अपेक्षा सर्वकम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुणे हैं,
८. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
९. द्रव्य की अपेक्षा सर्वकम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
१०. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,

११. परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठ अपएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१२. संखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१३. ते चेव पएसट्ठंयाए असंखेज्जगुणा,
१४. असंखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१५. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१६. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठ अपएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१७. संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
१८. ते चेव पएसट्ठयाए संखेज़्जगुणा,
१९. असंखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
२०. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २४५

११. द्रव्यों तथा अप्रदेशों की अपेक्षा सर्वकम्पक परमाणु पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
१२. द्रव्यों की अपेक्षा देश कम्पक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
१३. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
१४. द्रव्यों की अपेक्षा देशकम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
१५. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
१६. द्रव्यों की तथा अप्रदेशों की अपेक्षा निष्कम्पक परमाणु पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
१७. द्रव्यों की अपेक्षा निष्कम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध संख्यातगुणे हैं,
१८. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
१९. द्रव्यों की अपेक्षा निष्कम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
२०. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

९०. एगत्त पुहत्त विवक्खया परमाणुपोग्गल खंधाण य सेय-निरेय परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सेए, निरेए?

उ. गोयमा ! सिय सेए, सिय निरेए।
एवं जाव अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं सेया, निरेया?

उ. गोयमा ! सेया वि, निरेया वि,
एवं जाव अणंतपएसिया।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १८९-१९२

९०. एकत्व वहुत्व की विवक्षा से परमाणु पुद्गल और स्कन्धों के सकम्प-निष्कम्प का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (एक) परमाणु-पुद्गल सैज (सकम्प) है या निरेज (निष्कम्प) है?

उ. गौतम ! वह कदाचित् सकम्प है और कदाचित् निष्कम्प है।
इसी प्रकार एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (वहुत) परमाणु-पुद्गल सकम्प हैं या निष्कम्प हैं?

उ. गौतम ! वे सकम्प भी हैं और निष्कम्प भी हैं।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त जानना चाहिए।

९१. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं ठिई परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! सेए कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं।

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! निरेए कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
एवं जाव अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सेया कालओ केवचिरं होंति?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेया कालओ केवचिरं होंति?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं,
एवं जाव अणंतपएसिया।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १९३-१९८

९१. सकम्प-निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल कितने काल तक सकम्प रहता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक (सकम्प) रहता है।

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल कितने काल तक निष्कम्प रहता है?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (निष्कम्प) रहता है।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कितने काल तक सकम्प रहते हैं?

उ. गौतम ! वे सदैव सकम्प रहते हैं।

प्र. भंते ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कितने काल तक निष्कम्प रहते हैं?

उ. गौतम ! वे सदैव निष्कम्प रहते हैं।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यंत जानना चाहिए।

९२. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं अंतरकाल परूवणं–

प. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! सेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! निरेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स सेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स निरेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं,

एवं जाव अणंतपएसियस्स।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं,

एवं जाव अणंतपएसियाणं खंधाणं।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १९९-२०६

९२. सकम्प निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (एक) सकम्प परमाणु-पुद्गल का अन्तर काल कितना होता है?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल का होता है।

परस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का होता है।

प्र. भंते ! निष्कम्प परमाणु-पुद्गल का अन्तरकाल कितना होता है?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का होता है।

परस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का होता है।

प्र. भंते ! सकम्प द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर काल कितना होता है?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का होता है।

परस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल का होता है।

प्र. भंते ! निष्कम्प द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तरकाल कितना होता है?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का होता है,

परस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल का होता है।

इसी प्रकार सकम्प-निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त अन्तर काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सकम्प परमाणु पुद्गलों का अन्तर काल कितना होता है?

उ. गौतम ! उनमें अन्तर काल नहीं होता है।

प्र. भंते ! निष्कम्प परमाणु-पुद्गलों का अन्तरकाल कितना होता है?

उ. गौतम ! उनका भी अन्तर काल नहीं होता है।

इसी प्रकार सकम्प-निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त अन्तर काल जानना चाहिए।

९३. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं सेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सेया,

२. निरेया असंखेज्जगुणा।

एवं जाव असंखेज्जपएसियाणं खंधाणं।

९३. सकम्प-निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सकम्प और निष्कम्प परमाणु पुद्गलों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे थोड़े सकम्प परमाणु पुद्गल हैं,

२. (उनसे) निष्कम्प परमाणु-पुद्गल असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार असंख्यात-प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त के अल्पबहुत्व के विषय में जानना चाहिए।

११. परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठ अपएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१२. संखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१३. ते चेव पएसट्ठंयाए असंखेज्जगुणा,
१४. असंखेज्जपएसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१५. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१६. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठ अपएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
१७. संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
१८. ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
१९. असंखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
२०. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

-विया. स. २५, उ. ४, सु. २४५

११. द्रव्यों तथा अप्रदेशों की अपेक्षा सर्वकम्पक परमाणु पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
१२. द्रव्यों की अपेक्षा देश कम्पक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
१३. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
१४. द्रव्यों की अपेक्षा देशकम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
१५. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं,
१६. द्रव्यों की तथा अप्रदेशों की अपेक्षा निष्कम्पक परमाणु पुद्गल असंख्यातगुणे हैं,
१७. द्रव्यों की अपेक्षा निष्कम्पक संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध संख्यातगुणे हैं,
१८. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,
१९. द्रव्यों की अपेक्षा निष्कम्पक असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध असंख्यातगुणे हैं,
२०. वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

९०. एगत्त पुहत्त विवक्खया परमाणुपोग्गल खंधाण य सेय-निरेय परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सेए, निरेए ?

उ. गोयमा ! सिय सेए, सिय निरेए।
एवं जाव अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं सेया, निरेया ?

उ. गोयमा ! सेया वि, निरेया वि,
एवं जाव अणंतपएसिया।

-विया. स. २५, उ. ४, सु. १८९-१९२

९०. एकत्व बहुत्व की विवक्षा से परमाणु पुद्गल और स्कन्धों के सकम्प-निष्कम्प का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (एक) परमाणु-पुद्गल सैज (सकम्प) है या निरेज (निष्कम्प) है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् सकम्प है और कदाचित् निष्कम्प है।
इसी प्रकार एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (वहुत) परमाणु-पुद्गल सकम्प हैं या निष्कम्प हैं ?

उ. गौतम ! वे सकम्प भी हैं और निष्कम्प भी हैं।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त जानना चाहिए।

९१. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं ठिई परूवणं–

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! सेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं।

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! निरेए कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
एवं जाव अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सेया कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेया कालओ केवचिरं होंति ?

उ. गोयमा ! सव्वद्धं,
एवं जाव अणंतपएसिया।

-विया. स. २५, उ. ४, सु. १९३-१९८

९१. सकम्प-निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल कितने काल तक सकम्प रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक (सकम्प) रहता है।

प्र. भंते ! परमाणु-पुद्गल कितने काल तक निष्कम्प रहता है ?

उ. गौतम ! वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक (निष्कम्प) रहता है।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कितने काल तक सकम्प रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे सदैव सकम्प रहते हैं।

प्र. भंते ! (बहुत) परमाणु-पुद्गल कितने काल तक निष्कम्प रहते हैं ?

उ. गौतम ! वे सदैव निष्कम्प रहते हैं।
इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्धों पर्यंत जानना चाहिए।

९२. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं अंतरकाल परूवणं–

प. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! सेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! निरेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइ भागं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स सेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं।

प. दुपएसियस्स णं भंते ! खंधस्स निरेयस्स केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं,

परट्ठाणंतरं पडुच्च-जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं,

एवं जाव अणंतपएसियस्स।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेयाणं केवइयं कालं अंतरं होइ ?

उ. गोयमा ! नत्थि अंतरं,

एवं जाव अणंतपएसियाणं खंधाणं।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १९९-२०६

९२. सकम्प निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! (एक) सकम्प परमाणु-पुद्गल का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल का होता है।

परस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का होता है।

प्र. भंते ! निष्कम्प परमाणु-पुद्गल का अन्तरकाल कितना होता है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का होता है।

परस्थान की अपेक्षा-जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का होता है।

प्र. भंते ! सकम्प द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का होता है।

परस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल का होता है।

प्र. भंते ! निष्कम्प द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तरकाल कितना होता है ?

उ. गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का होता है,

परस्थान की अपेक्षा–जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल का होता है।

इसी प्रकार सकम्प-निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त अन्तर काल जानना चाहिए।

प्र. भंते ! सकम्प परमाणु पुद्गलों का अन्तर काल कितना होता है ?

उ. गौतम ! उनमें अन्तर काल नहीं होता है।

प्र. भंते ! निष्कम्प परमाणु-पुद्गलों का अन्तरकाल कितना होता है ?

उ. गौतम ! उनका भी अन्तर काल नहीं होता है।

इसी प्रकार सकम्प-निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त अन्तर काल जानना चाहिए।

९३. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं सेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सेया,

२. निरेया असंखेज्जगुणा।

एवं जाव असंखेज्जपएसियाणं खंधाणं।

९३. सकम्प-निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन सकम्प और निष्कम्प परमाणु पुद्गलों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे थोड़े सकम्प परमाणु पुद्गल हैं,

२. (उनसे) निष्कम्प परमाणु-पुद्गल असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार असंख्यात-प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त के अल्पबहुत्व के विषय में जानना चाहिए।

प. एएसि णं भंते ! अणंतपएसियाणं खंधाणं सेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा निरेया,

२. सेया अणंतगुणा। *–विया. स. २५, उ. ४, सु. २०७-२०९*

९४. सेय-निरेय परमाणुपोग्गल खंधाणं दव्वट्ठयाईहिं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं संखेज्जपएसियाणं असंखेज्जपएसियाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं सेयाणं निरेयाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा !

१. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए,
२. अणंतपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
३. परमाणुपोग्गला सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
४. संखेज्जपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
५. असंखेज्जपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
६. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
७. संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,
८. असंखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

पएसट्ठयाए एवं चेव,

णवरं–परमाणुपोग्गला अपएसट्ठयाए भाणियव्वा, संखेज्जपएसिया खंधा निरेया पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

सेसं तं चेव।

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए,
२. ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
३. अणंतपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,
४. ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
५. परमाणुपोग्गला सेया दव्वट्ठयाए अपएसट्ठयाए अणंतगुणा,

प्र. भंते ! सकम्प और निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध हैं।
(उनसे) सकम्प अनन्त प्रदेशी स्कन्ध अनन्तगुणे हैं।

९४. सकम्प-निष्कम्प परमाणु पुद्गल स्कन्धों का द्रव्यादि की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! सकम्प और निष्कम्प परमाणु-पुद्गलों, संख्यात-प्रदेशी स्कन्धों, असंख्यात-प्रदेशी स्कन्धों और अनन्त-प्रदेशी स्कन्धों में द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम !

१. निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं।
२. (उनसे) सकम्प अनन्त प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
३. (उनसे) सकम्प परमाणु-पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
४. (उनसे) सकम्प संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।
५. (उनसे) सकम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।
६. (उनसे) निष्कम्प परमाणु पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।
७. (उनसे) निष्कम्प संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।
८. (उनसे) निष्कम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रदेश की अपेक्षा भी आठ भंग जानने चाहिए।

विशेष–परमाणुपुद्गलों के लिए अप्रदेश की अपेक्षा तथा निष्कम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे कहने चाहिए।

शेष कथन पूर्ववत् है।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा–

१. निष्कम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं।
२. (उनसे) निष्कम्प अनन्त प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
३. सकम्प अनन्त प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
४. (उनसे) सकम्प अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
५. (उनसे) सकम्प परमाणु-पुद्गल द्रव्य और अप्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।

६. संखेज्जपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

७. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

८. असंखेज्जपएसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

९. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

१०. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए अपएसट्ठाए असंखेज्जगुणा,

११. संखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

१२. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

१३. असंखेज्जपएसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

१४. ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

–विया. स. २५, उ. ४, सु. २१०

६. (उनसे) सकम्प संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

७. (उनसे) सकम्प संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

८. (उनसे) सकम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

९. (उनसे) सकम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

१०. (उनसे) निष्कम्प परमाणु-पुद्गल द्रव्य और अप्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

११. (उनसे) निष्कम्प संख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

१२. (उनसे) निष्कम्प संख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

१३. (उनसे) निष्कम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

१४. (उनसे) निष्कम्प असंख्यात-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

९५. परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए बहुयत्त परूवणं–

दव्वट्ठयाए–

प. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं दुपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया?

उ. गोयमा ! दुपएसिएहिंतो खंधेहिंतो परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया।

प. एएसि णं भंते ! दुपएसियाणं तिपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया?

उ. गोयमा ! तिपएसिएहिंतो खंधेहिंतो दुपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

एवं एएणं गमएणं जाव दसपएसिएहिंतो खंधेहिंतो नवपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

प. एएसि णं भंते ! दसपएसियाणं खंधाणं संखेज्जपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया?

उ. गोयमा ! दसपएसिएहिंतो खंधेहिंतो संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

प. एएसि णं भंते ! संखेज्जपएसियाणं खंधाणं असंखेज्जपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया?

उ. गोयमा ! संखेज्जपएसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्ज पएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

प. एएसि णं भंते ! असंखेज्जपएसियाणं खंधाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया?

९५. परमाणु पुद्गलों और स्कन्धों का द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा से बहुत्व का प्ररूपण–

द्रव्य की अपेक्षा–

प्र. भंते ! इन परमाणु-पुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्धों में द्रव्य विवक्षा से कौन किससे बहुत हैं?

उ. गौतम ! द्वि-प्रदेशिक स्कन्धों से परमाणु-पुद्गल द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

प्र. भंते ! इन द्वि-प्रदेशिक स्कन्ध और त्रिप्रदेशिक स्कन्धों में द्रव्य की विवक्षा से कौन किससे बहुत हैं?

उ. गौतम ! तीन प्रदेशिक स्कन्धों से द्वि-प्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार दस प्रदेशी स्कन्धों से नौ प्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

प्र. भंते ! इन दस प्रदेशी स्कन्धों और संख्यात प्रदेशी स्कन्धों में द्रव्य विवक्षा से कौन-किससे बहुत हैं?

उ. गौतम ! दस प्रदेशी स्कन्धों से संख्यात प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

प्र. भंते ! इन संख्यात प्रदेशी स्कन्धों और असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों में द्रव्य की विवक्षा से कौन किससे बहुत हैं?

उ. गौतम ! संख्यात प्रदेशी स्कन्धों से असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

प्र. भंते ! इन असंख्यात प्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों में द्रव्य विवक्षा से कौन किससे बहुत हैं?

उ. गोयमा ! अणंतपएसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्ज-पएसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया।

पएसट्ठयाए-

प. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं दुपएसियाण य खंधाणं पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया ?

उ. गोयमा ! परमाणुपोग्गलेहिंतो दुपएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया।

एवं एएणं गमएणं जाव नवपएसिएहिंतो खंधेहिंतो दसपएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया।

एवं सव्वत्थ पुच्छियव्वं,

दसपएसिएहिंतो खंधेहिंतो संखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया,

संखेज्जपएसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया।

प. एएसि णं भंते ! असंखेज्जपएसियाण य खंधाणं अणंतपएसियाण य खंधाणं पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया ?

उ. गोयमा ! अणंतपएसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्ज-पएसिया खंधा पएसट्ठयाए बहुया।

-विया. स. २५, उ. ४, सु. १६-१०५

उ. गौतम ! अनन्त प्रदेशी स्कन्धों से असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

प्रदेश की अपेक्षा-

प्र. भंते ! इन परमाणु-पुद्गलों के और द्विप्रदेशिक स्कन्ध में प्रदेश विवक्षा से कौन किससे बहुत हैं ?

उ. गौतम ! परमाणु-पुद्गलों से द्विप्रदेशिक स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

इसी प्रकार इस पाठ के अनुसार नवप्रदेशिक स्कन्धों से दस प्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

इस प्रकार सर्वत्र प्रश्न करना चाहिए।

दस प्रदेशी स्कन्धों से संख्यात प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

संख्यात प्रदेशी स्कन्धों से असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

प्र. भंते ! इन असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों और अनन्त प्रदेशी स्कन्धों में प्रदेश विवक्षा से कौन किससे बहुत हैं ?

उ. गौतम ! अनन्त प्रदेशी स्कन्धों से असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

९६. परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य ओगाहणं ठिइं च पडुच्च दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए विसेसाहियत्ताइ परूवणं-

प. एएसि णं भंते ! एगपएसोगाढाणं दुपएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

उ. गोयमा ! दुपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया।

एवं एएणं गमएणं-

तिपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया जाव दसपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो नवपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया,

दसपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया।

संखेज्जपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्ज-पएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया।

पुच्छा सव्वत्थ भाणियव्वा।

प. एएसि णं भंते ! एगपएसोगाढाणं दुपएसोगाढाण य पोग्गलाणं पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

उ. गोयमा ! एगपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए विसेसाहिया,

एवं जाव-

नवपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दसपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए विसेसाहिया।

९६. परमाणु पुद्गलों और स्कन्धों की अवगाहना स्थिति द्वारा द्रव्य व प्रदेश विवक्षा से विशेषाधिक आदि का प्ररूपण-

प्र. भंते ! इन एक प्रदेश में रहे हुए और दो प्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों में द्रव्य विवक्षा से कौन किससे विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! दो प्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों से एक प्रदेश में रहे हुए पुद्गल द्रव्य विवक्षा से विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार इस अभिलापानुसार-

तीन प्रदेशों में रहने वाले पुद्गलों से दो प्रदेशों में रहने वाले पुद्गल द्रव्य विवक्षा से विशेषाधिक हैं यावत्-दस प्रदेशों में रहने वाले पुद्गलों से नव प्रदेशों में रहने वाले पुद्गल द्रव्य विवक्षा से विशेषाधिक हैं,

दस प्रदेशों में रहने वाले पुद्गलों से संख्यात प्रदेशों में रहने वाले पुद्गल द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

संख्यात प्रदेशों में रहने वाले पुद्गलों से असंख्यात प्रदेशों में रहने वाले पुद्गल द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

सर्वत्र प्रश्न (स्वतः) कहने चाहिए।

प्र. भंते ! इन एक प्रदेश में और दो प्रदेश में रहते हुए पुद्गलों में प्रदेश विवक्षा से कौन-किससे विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! एक प्रदेश में रहते हुए पुद्गलों से दो प्रदेशों में रहे हुए पुद्गल प्रदेश विवक्षा से विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार यावत्-

नौ प्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों से दस प्रदेशों में रहे हुए पुद्गल प्रदेश विवक्षा से विशेषाधिक हैं।

दसपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए बहुया,

संखेज्जपएसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्ज-पएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए बहुया।

प. एएसि णं भंते ! एगसमयट्ठिईयाणं दुसमयट्ठिईया य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

उ. गोयमा ! जहा ओगाहणाए वत्तव्वया एवं ठिईए वि।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १०६-११०

दस प्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों से संख्यात प्रदेशों में रहे हुए पुद्गल प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

संख्यात प्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों से असंख्यात प्रदेशों में रहे हुए पुद्गल प्रदेश विवक्षा से बहुत हैं।

प्र. भंते ! एक समय की स्थिति वाले और दो समय की स्थिति वाले पुद्गलों में द्रव्य विवक्षा से कौन किससे विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार प्रदेशों में रहे हुए अवगाहना के सम्बन्ध में कहा उसी प्रकार स्थिति के विषय में कहना चाहिए।

९७. परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य वण्णाइ पडुच्च दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए बहुयत्त-परूवणं–

प. एएसि णं भंते ! एगगुणकालयाणं दुगुणकालयाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

उ. गोयमा ! एएसिं जहा परमाणुपोग्गलाईणं वत्तव्वया तहेव निरवसेसा भाणियव्वा।

एवं सव्वेसिं वण्ण-गंध-रसाणं।

प. एएसि णं भंते ! एगगुणकक्खडाणं दुगुणकक्खडाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

उ. गोयमा ! एगगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया।

एवं जाव–

नवगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो दसगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया।

दसगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया,

संखेज्जगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्जगुण-कक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया,

असंखेज्जगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो अणंतगुण-कक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया।

एवं पएसट्ठयाए वि।

सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा।

जहा कक्खडा एवं मउय-गरुय-लहुया वि,

सीय उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वण्णा।

–विया. स. २५, उ. ४, सु. १११-११७

९७. परमाणु पुद्गलों और स्कन्धों का वर्णादि की अपेक्षा द्रव्य प्रदेश द्वारा बहुत्व का प्ररूपण–

प्र. भंते ! इन एक गुण काले और दो गुण काले पुद्गलों में द्रव्य विवक्षा से कौन-किससे विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! पूर्व में जैसे परमाणु-पुद्गल के लिए कहा उसी के अनुसार यहाँ भी सम्पूर्ण कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार सभी वर्ण, गंध, रस के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! एक गुण कर्कश और द्विगुण कर्कश पुद्गलों में द्रव्य विवक्षा से कौन किससे विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! एक गुण कर्कश पुद्गलों से द्विगुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार यावत्–

नौ गुण कर्कश पुद्गलों से दस गुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से विशेषाधिक हैं।

दस गुण कर्कश पुद्गलों से संख्यातगुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

संख्यातगुण कर्कश पुद्गलों से असंख्यात गुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

असंख्यातगुण कर्कश पुद्गलों से अनन्तगुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से बहुत हैं।

इसी प्रकार प्रदेश विवक्षा से भी समझना चाहिए।

सर्वत्र प्रश्न करना चाहिए।

जैसे–कर्कश स्पर्श सम्बन्धी कथन किया वैसा ही मृदु, गुरु और लघु स्पर्शों का वर्णन करना चाहिए।

शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों का कथन वर्णों के समान करना चाहिए।

९८. परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य दव्वट्ठयाईहिं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते !

१. परमाणुपोग्गलाणं,
२. संखेज्जपएसियाणं,
३. असंखेज्जपएसियाणं,
४. अणंतपएसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

९८. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों का द्रव्यादि की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन

१. परमाणु-पुद्गलों,
२. संख्यातप्रदेशी,
३. असंख्यातप्रदेशी और
४. अनन्तप्रदेशी स्कन्धों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा कौन-किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए,

२. परमाणु पोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,

३. संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

४. असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा पएसट्ठयाए,
२. परमाणुपोग्गला अपएसट्ठयाए अणंतगुणा,
३. संखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
४. असंखेज्जपएसिया खंधा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा अणंतपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा,
२. परमाणुपोग्गला दव्वट्ठ अपएसट्ठयाए अणंतगुणा,
३. संखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
४. असंखेज्जपएसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।[1] –विया. स. २५, उ. ४, सु. ११८

उ. गौतम ! १ द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं,

२. (उनसे) परमाणुपुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं,

३. (उनसे) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

प्रदेश की अपेक्षा–

१. अनन्तप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश की अपेक्षा सबसे अल्प हैं।
२. (उनसे) परमाणु पुद्‌गल अप्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
३. (उनसे) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।
४. (उनसे) असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा–

१. सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं और वे ही प्रदेशों की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
२. (उनसे) परमाणु पुद्‌गल द्रव्य एवं अप्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुणे हैं।
३. (उनसे) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।
४. (उनसे) असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

९९. एगपएसाइ पोग्गलाणं ओगाहणाठिई पडुच्च अप्पावहुयं–

प. [illegible] णं भंते ! १. एगपएसोगाढाणं,

२. [illegible]पएसोगाढाणं,

३. अ[illegible]पएसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए [illegible] दव्वट्ठ पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो [illegible] जाव विसेसाहिया वा?

उ. [illegible] ! १. सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला [illegible],

२. [illegible] पोग्गला दव्वट्ठयाए [illegible],

३. [illegible] पोग्गला दव्वट्ठयाए [illegible]

[illegible]

[illegible] पोग्गला [illegible],

[illegible] पएसट्ठयाए [illegible]

९९. एक प्रदेशादि पुद्‌गलों का अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! १. एक प्रदेशावगाढ,

२. संख्यातप्रदेशावगाढ और

३. असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गलों में से द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा और द्रव्य प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. द्रव्य की अपेक्षा एक प्रदेशावगाढ पुद्‌गल सबसे अल्प हैं,

२. (उनसे) संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

प्रदेश की अपेक्षा–

१. एक प्रदेशावगाढ पुद्‌गल एक प्रदेश की अपेक्षा सबसे अल्प हैं।
२. (उनसे) संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।

---

१. [illegible]

३. असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

दव्वट्ठपएसट्ठयाए–

१. सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठ अपएसट्ठयाए,

२. संखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,

३. असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

प. एएसि णं भंते ! एगसमयट्ठिईयाणं संखेज्जसमयट्ठिईयाणं असंखेज्जसमयट्ठिईयाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! जहा ओगाहणाए भणिया तहा ठिईए वि अप्पाबहुयं भाणियव्वं।[1]

–विया. स. २५, उ. ४, सु. ११९-१२०

३. (उनसे) असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा–

१. एक प्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्य और अप्रदेश की अपेक्षा सबसे अल्प हैं।

२. (उनसे) संख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेश की अपेक्षा संख्यातगुणे हैं।

३. (उनसे) असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं और वे ही प्रदेश की अपेक्षा असंख्यातगुणे हैं।

प्र. भंते ! एक समय की स्थिति वाले, संख्यातसमय की स्थिति वाले और असंख्यातसमय की स्थिति वाले पुद्गलों में द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेश की अपेक्षा और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! जैसे अवगाहना का अल्पबहुत्व कहा वैसे ही स्थिति का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

१००. परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य वण्णाइं पडुच्च दव्वट्ठयाईहिं अप्पाबहुयं–

प. एएसि णं भंते ! १. एगगुणकालगाणं,

२. संखेज्जगुणकालगाणं,

३. असंखेज्जगुणकालगाणं,

४. अणंतगुणकालगाण य

पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! एएसिं जहा परमाणुपोग्गलाणं अप्पाबहुयं तहा एएसिं पि अप्पाबहुयं,

एवं सेसाण वि वण्ण - गंध - रसाणं।

प. एएसि णं भंते ! १. एगगुणकक्खडाणं,

२. संखेज्जगुणकक्खडाणं,

३. असंखेज्जगुणकक्खडाणं,

४. अणंतगुणकक्खडाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा एगगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए,

२. संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

३. असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

१००. परमाणु पुद्गल और स्कन्धों का वर्णादि की अपेक्षा द्रव्यादि विवक्षा द्वारा अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! इन १. एक गुण कृष्ण वर्ण वाले,

२. संख्यातगुण कृष्ण वर्ण वाले,

३. असंख्यातगुण कृष्ण वर्ण वाले और

४. अनन्तगुण कृष्ण वर्ण वाले,

पुद्गलों में द्रव्य विवक्षा, प्रदेश विवक्षा और द्रव्य-प्रदेश विवक्षा से कौन-किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार परमाणु-पुद्गलों का अल्प-बहुत्व कहा है उसी प्रकार इनका भी अल्प-बहुत्व कहना चाहिए।

इसी प्रकार शेष वर्ण, गंध और रसों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

प्र. भंते ! इन १. एक गुण कर्कश,

२. संख्यातगुण कर्कश,

३. असंख्यातगुण कर्कश और

४. अनन्तगुण कर्कश पुद्गलों में द्रव्य विवक्षा, प्रदेश विवक्षा तथा द्रव्य-प्रदेश विवक्षा से कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. एक गुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से सबसे अल्प हैं,

२. (उनसे) संख्यातगुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) असंख्यातगुण कर्कश पुद्गल द्रव्य विवक्षा से असंख्यातगुणे हैं,

१. पण्ण, प. ३, सु. ३३१-३३२

४. अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,

पएसट्ठयाए एवं चेव,

णवरं-संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,

सेसं तं चेव।

दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए-

१. सव्वत्थोवा एगगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए,
२. संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
३. असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
४. अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, ते चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणा।

एवं मउय-गुरु-लहुयाण वि अप्पाबहुयं।

सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खाणं जहा वन्नाणं तहेव।[1]

-विया. स. २५, उ. ४, सु. १२१-१२५

४. (उनसे) अनन्तगुण कर्कश पुद्‌गल द्रव्य विवक्षा से अनन्तगुणे हैं,

प्रदेश विवक्षा से भी इसी प्रकार अल्पवहुत्व कहना चाहिए।

विशेष-संख्यातगुण कर्कश पुद्‌गल प्रदेश विवक्षा से असंख्यातगुणे हैं।

शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

द्रव्य प्रदेशों की विवक्षा-

१. एक गुण कर्कश पुद्‌गल द्रव्य प्रदेश विवक्षा से सबसे अल्प हैं,
२. (उनसे) संख्यातगुण कर्कश पुद्‌गल द्रव्य विवक्षा से संख्यातगुणे हैं, वे ही प्रदेश विवक्षा से भी संख्यातगुणे हैं,
३. (उनसे) असंख्यातगुण कर्कश पुद्‌गल द्रव्य विवक्षा से असंख्यातगुणे हैं, वे ही प्रदेश विवक्षा से असंख्यात-गुणे हैं,
४. (उनसे) अनन्तगुण कर्कश पुद्‌गल द्रव्य विवक्षा से अनन्तगुणे हैं और वे ही प्रदेश विवक्षा से अनन्तगुणे हैं।

इसी प्रकार मृदु, गुरु और लघु स्पर्शों का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष स्पर्शों का अल्प-बहुत्व वर्णों के अनुसार कहना चाहिए।

१०१. परमाणुपोग्गलाणं खंधाण य दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कडजुम्माइ परूवणं-

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे, तेओए, दावरजुम्मे, कलिओए?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, कलिओए,

एवं जाव अणंतपएसिए खंधे।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओगा?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओगा,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेओगा, नो दावरजुम्मा, कलिओगा,

एवं जाव अणंतपएसिया खंधा।

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलिओए?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, कलिओए।

प. दुपएसिए णं भंते ! खंधे पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलिओए?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेओए, दावरजुम्मे, नो कलिओए।

१०१. परमाणु-पुद्‌गल और स्कन्धों का द्रव्य व प्रदेश की अपेक्षा से कृतयुग्मादि का प्ररूपण-

प्र. भंते ! क्या द्रव्य की अपेक्षा (एक) परमाणु-पुद्‌गल कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है या कल्योज है?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म नहीं है किन्तु कल्योज है।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! द्रव्य की अपेक्षा (वहुत) परमाणु-पुद्‌गल कृतयुग्म हैं यावत् कल्योज हैं?

उ. गौतम ! सामान्य आदेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

विशेषादेश से-कृतयुग्म, त्र्योज और द्वापरयुग्म नहीं हैं किन्तु कल्योज हैं।

इसी प्रकार अनन्त प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या एक परमाणु-पुद्‌गल प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज है?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म, त्र्योज और द्वापरयुग्म नहीं है, किन्तु कल्योज है।

प्र. भंते ! द्विप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज है?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म, त्र्योज या कल्योज नहीं है किन्तु द्वापर युग्म है।

---

१. पण्ण. प. ३, सु. ३३३

प. तिपएसिए णं भंते ! खंधे पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलिओए ?

उ. गोयमा ! नो कडजुम्मे, तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलिओए।

प. चउप्पएसिए णं भंते ! खंधे पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलिओए ?

उ. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेओए, नो दावरजुम्मे, नो कलिओए।

पंचपएसिए जहा परमाणुपोग्गले।

छप्पएसिए जहा दुपएसिए।

सत्तपएसिए जहा तिपएसिए।

अट्ठपएसिए जहा चउप्पएसिए।

नवपएसिए जहा परमाणुपोग्गले।

दसपएसिए जहा दुपएसिए।

प. संखेज्जपएसिए णं भंते ! खंधे पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलिओगे ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलिओगे।

एवं असंखेज्जपएसिए वि, अणंतपएसिए वि।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! पएसट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओगा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओगा,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेओगा, नो दावरजुम्मा, कलिओगा।

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधा पएसट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओगा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा, नो तेओगा, सिय दावरजुम्मा, नो कलिओगा,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेओगा, दावरजुम्मा, नो कलिओगा।

प. तिपएसिया णं भंते ! खंधा पएसट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओगा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओगा,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, तेओगा, नो दावरजुम्मा, नो कलिओगा,

प. चउप्पएसियाणं भंते ! खंधा पएसट्ठयाए किं कडजुम्मा जाव कलिओगा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेण वि, विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेओगा, नो दावरजुम्मा, नो कलिओगा।

पंचपएसिया जहा परमाणुपोग्गला।

प्र. भंते ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म, द्वापरयुग्म या कल्योज नहीं है किन्तु त्र्योज है।

प्र. भंते ! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कृतयुग्म है किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज नहीं है।

परमाणु-पुद्गल के समान पांच प्रदेशी स्कन्ध का कथन है।

द्वि-प्रदेशिक स्कन्ध के समान षट्प्रदेशी स्कन्ध का कथन है।

तीन-प्रदेशिक स्कन्ध के समान सप्तप्रदेशी स्कन्ध का कथन है।

चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के समान अष्टप्रदेशी स्कन्ध का कथन है।

परमाणु-पुद्गल के समान नौ प्रदेशी स्कन्ध का कथन है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान दस प्रदेशी स्कन्ध का कथन है।

प्र. भंते ! संख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशविवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।

इसी प्रकार असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध और अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (बहुत) परमाणु-पुद्गल प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! सामान्य आदेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्म, त्र्योज या द्वापरयुग्म नहीं हैं किन्तु कल्योज हैं।

प्र. भंते ! द्वि-प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज है ?

उ. गौतम ! सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं और कदाचित् द्वापरयुग्म हैं किन्तु त्र्योज और कल्योज नहीं हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्म, त्र्योज या कल्योज नहीं हैं किन्तु द्वापरयुग्म हैं।

प्र. भंते ! तीन प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! सामान्य आदेश से कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्म, द्वापरयुग्म या कल्योज नहीं हैं किन्तु त्र्योज हैं।

प्र. भंते ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश विवक्षा से कृतयुग्म यावत् कल्योज हैं ?

उ. गौतम ! सामान्य और विशेष आदेश से कृतयुग्म हैं किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज नहीं हैं।

पांच प्रदेशी स्कन्धों का कथन परमाणु-पुद्गलों के समान है,

प. दुपएसिया णं भंते ! खंधा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलिओगपएसोगाढा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेओगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलिओगपएसोगाढा,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेओगपएसोगाढा, दावरजुम्मपएसोगाढा वि, कलिओगपएसोगाढा वि।

प. तिपएसिया णं भंते ! खंधा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलिओगपएसोगाढा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेओगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलिओगपएसोगाढा,

विहाणादेसेणं नो कडजुम्मपएसोगाढा, तेओगपएसोगाढा वि, दावरजुम्मपएसोगाढा वि, कलिओगपएसोगाढा वि,

प. चउप्पएसिया णं भंते ! खंधा किं कडजुम्मपएसोगाढा जाव कलिओगपएसोगाढा ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा, नो तेओगपएसोगाढा, नो दावरजुम्मपएसोगाढा, नो कलिओगपएसोगाढा,

विहाणादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढा वि जाव कलिओगपएसोगाढा वि।

एवं जाव अणंतपएसिया।

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठिईए जाव कलिओगसमयट्ठिईए ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मसमयट्ठिईए जाव सिय कलिओगसमयट्ठिईए,

एवं जाव अणंतपएसिए।

प. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं कडजुम्मसमयट्ठिईया जाव कलिओगसमयट्ठिईया ?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं-सिय कडजुम्मसमयट्ठिईया जाव सिय कलिओगसमयट्ठिईया,

विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयट्ठिईया वि जाव कलिओगसमयट्ठिईया वि,

एवं जाव अणंतपएसिया।

प. परमाणुपोग्गले णं भंते ! कालवन्नपज्जवेहिं किं कडजुम्मे, तेओगे, दावरजुम्मे, कलिओगे ?

उ. गोयमा ! जहा ठिईए वत्तव्वया एवं वन्नेसु वि सव्वेसु, गंधेसु वि।

एवं रसेसु वि जाव महुरो रसो त्ति।

प. अणंतपएसिए णं भंते ! खंधे कक्खडफासपज्जवेहिं किं कडजुम्मे, तेओगे, दावरजुम्मे, कलिओगे ?

प्र. भंते ! क्या (बहुत) द्विप्रदेशी स्कन्ध कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं ?

उ. गौतम ! सामान्यादेश से कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ हैं किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्म प्रदेशावगाढ और त्र्योज प्रदेशावगाढ नहीं हैं किन्तु द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ भी हैं और कल्योज प्रदेशावगाढ भी हैं।

प्र. भंते ! क्या (बहुत) त्रिप्रदेशी स्कन्ध कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं ?

उ. गौतम ! सामान्यादेश से कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हैं किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्मप्रदेशावगाढ नहीं हैं किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज प्रदेशावगाढ हैं।

प्र. भंते ! क्या (बहुत) चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हैं यावत् कल्योज प्रदेशावगाढ हैं ?

उ. गौतम ! सामान्यादेश से कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हैं, किन्तु त्र्योज, द्वापरयुग्म या कल्योज प्रदेशावगाढ नहीं हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्म प्रदेशावगाढ भी हैं यावत् कल्योज-प्रदेशावगाढ भी हैं।

इसी प्रकार अनन्त प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (एक) परमाणु-पुद्‌गल कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है यावत् कल्योज समय की स्थिति वाला है ?

उ. गौतम ! कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है यावत् कदाचित् कल्योज समय की स्थिति वाला है।

इसी प्रकार अनन्तप्रदेशी स्कन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या (बहुत) परमाणु-पुद्‌गल कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं यावत् कल्योज समय की स्थिति वाले हैं ?

उ. गौतम ! सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं यावत् कदाचित् कल्योज समय की स्थिति वाले हैं।

विशेषादेश से कृतयुग्म समय की स्थिति वाले भी हैं यावत् कल्योज समय की स्थिति वाले भी हैं।

इसी प्रकार अनन्त प्रदेशी स्कन्धों पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! (एक) परमाणु-पुद्‌गल कृष्णवर्ण पर्यायों की अपेक्षा क्या कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार स्थिति के सम्बन्ध में कहा है उसी प्रकार सभी वर्णों और गंधों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार मधुर रस पर्यन्त सभी रसों के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! (एक) अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कर्कश स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा क्या कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज है ?

उ. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलिओगे।

प. अणंतपएसिया णं भंते ! खंधा कक्खडफासपज्जवेहिं किं कडजुम्मा, तेओगा, दावरजुम्मा, कलिओगा?

उ. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलिओगा,
विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलिओगा वि।
एवं मउय-गरुय-लहुया वि भाणियव्वा,

सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वन्ना।
-विया. स. २५, उ. ४, सु. १५४-१७३

१०३. अण्णउत्थियाणं खंधस्स साहण्ण भेयस्स धारणा निराकरण परूवणं-

अण्णउत्थिया णं भंते ! एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति-

दो परमाणु पोग्गला एगयओ न साहण्णंति।

प. कम्हा दो परमाणु पोग्गला एगयओ न साहण्णंति?

उ. दोण्हं परमाणुपोग्गलाणं नत्थि सिणेहकाए,
तम्हा दो परमाणु पोग्गला एगयओ न साहण्णंति,
तिण्णि परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति।

प. कम्हा तिण्णि परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति?

उ. तिण्हं परमाणुपोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए,
तम्हा तिण्णि परमाणुपोग्गला एगयओ साहण्णंति,
ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिहा वि कज्जंति।

दुहा कज्जमाणा एगयओ दिवड्ढे परमाणु पोग्गले भवइ,
एगयओ वि दिवड्ढे परमाणु पोग्गले भवइ।
तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणु पोग्गला भवंति,

एवं चत्तारि।

पंच परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति।
एगयओ साहण्णित्ता दुक्खत्ताए कज्जंति।
दुक्खे वि य णं से सासए सया समियं उवचिज्जइ य अवचिज्जइ य।

प. से कहमेयं भंते ! एवं?

उ. गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवमाइक्खंति जाव एवं परूवेंति-
दो परमाणु पोग्गला एगयओ न साहण्णंति जाव-
दुक्खे वि य णं सासए सया समियं उवचिज्जइ य अवचिज्जइ य।
जे ते एवमाहंसु मिच्छा ते एवमाहंसु,
अहं पुण एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि-

उ. गौतम ! वह कदाचित् कृतयुग्म है यावत् कदाचित् कल्योज है।

प्र. भंते ! (बहुत) अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कर्कश स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा क्या कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज हैं?

उ. गौतम ! सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज हैं,
विशेषादेश से कृतयुग्म भी हैं यावत् कल्योज भी हैं।
इसी प्रकार मृदु, गुरु और लघु स्पर्श के सम्बन्ध में कहना चाहिए।
शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष स्पर्शों का वर्णों के समान कथन करना चाहिए।

१०३. अन्यतीर्थिकों की स्कन्ध के संघात और भेद की धारणा निराकरण का प्ररूपण-

भंते ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं-यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि-
'दो परमाणुपुद्गल' एक साथ नहीं चिपकते हैं।

प्र. दो परमाणु पुद्गल एक साथ क्यों नहीं चिपकते हैं?

उ. दो परमाणु पुद्गलों में चिकनापन नहीं है।
इसलिए दो परमाणुपुद्गल चिपकते नहीं हैं।
तीन परमाणु पुद्गल एक साथ चिपकते हैं।

प्र. तीन परमाणु-पुद्गल एक साथ क्यों चिपकते हैं?

उ. तीन परमाणु-पुद्गलों में चिकनापन है।
इसलिए तीन परमाणु-पुद्गल एक साथ चिपकते हैं।
तीन परमाणुपुद्गलों के दो विभाग भी होते हैं और तीन विभाग भी होते हैं।
दो विभाग किये जावें तो एक ओर डेढ़ परमाणु होता है और दूसरी तरफ भी डेढ़ परमाणु होता है।
तीन विभाग किये जावें तो अलग-अलग तीन परमाणु पुद्गल हो जाते हैं।
इसी प्रकार चार परमाणु-पुद्गलों के संबंध में कहना चाहिए।
पाँच परमाणु पुद्गल एक साथ चिपक जाते हैं,
एक साथ चिपक कर वे दुःख रूप में परिणत हो जाते हैं।
वह दुःख शाश्वत है और सदा सम्यक् प्रकार से उपचय तथा अपचय को प्राप्त होता है।

प्र. भंते ! अन्यतीर्थिकों का यह कथन कैसा है?

उ. गौतम ! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार जो प्ररूपणा करते हैं कि-
'दो परमाणु पुद्गल एक साथ नहीं चिपकते हैं यावत्
वह दुःख शाश्वत है, सदा सम्यक् प्रकार से उपचय तथा अपचय को प्राप्त होता है।
उन्होंने जो इस प्रकार कहा है वह मिथ्या कहा है।
गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि-

'दो परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति।'

प. कम्हा दो परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति?

उ. दोण्हं परमाणु पोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए,
तम्हा दो परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति,
ते भिज्जमाणा दुहा कज्जंति,
दुहा कज्जमाणा–
एगयओ परमाणु पोग्गले,
एगयओ परमाणु पोग्गले भवइ।
तिण्णि परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति।

प. कम्हा तिण्णि परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति?

उ. तिण्हं परमाणु पोग्गलाणं अत्थि सिणेहकाए,
तम्हा तिण्णि परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति।
ते भिज्जमाणा दुहा वि, तिहा वि कज्जंति।
दुहा कज्जमाणा एगयओ परमाणु पोग्गले,
एगयओ दुपएसिए खंधे भवइ।
तिहा कज्जमाणा तिण्णि परमाणु पोग्गला भवंति,
एवं चत्तारि।

पंच परमाणु पोग्गला एगयओ साहण्णंति,
एगयओ साहण्णित्ता खंधत्ताए कज्जंति,
खंधे वि य णं से असासए सया समियं उवचिज्जइ य अवचिज्जइ य। *–विया. स. १, उ. १०, सु. १*

'दो परमाणुपुद्गल एक साथ चिपक जाते हैं।'

प्र. दो परमाणु पुद्गल एक साथ क्यों चिपक जाते हैं?

उ. दोनों परमाणु पुद्गलों में चिकनापन है,
इसलिए दो परमाणु पुद्गल एक साथ चिपक जाते हैं।
उन दो परमाणु पुद्गलों के दो भाग किये जा सकते हैं,
उन दो परमाणु पुद्गलों के दो विभाग किये जावें तो–
एक ओर एक परमाणु पुद्गल रहता है।
एक ओर एक परमाणु पुद्गल रहता है।
तीन परमाणु पुद्गल एक साथ चिपकते हैं।

प्र. तीन परमाणु पुद्गल एक साथ क्यों चिपक जाते हैं?

उ. तीन परमाणु पुद्गलों में चिकनापन है,
इसलिए तीन परमाणु पुद्गल एक साथ चिपक जाते हैं।
तीन परमाणु पुद्गलों के विभाग किये जावें तो-दो विभाग भी होते हैं और तीन विभाग भी होते हैं।
दो विभाग किये जाने पर एक ओर एक परमाणु पुद्गल रहता है।
एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है।
तीन विभाग करने पर तीन परमाणु पुद्गल होते हैं।
इसी प्रकार चारों परमाणु पुद्गलों के सम्बन्ध में भी कहना चाहिए।
पाँच परमाणु पुद्गल एक साथ चिपक जाते हैं।
एक साथ चिपककर स्कन्ध बन जाते हैं।
वह स्कन्ध अशाश्वत है और वह सदा सम्यक् प्रकार से उपचय तथा अपचय को प्राप्त होता है।

१०४. निक्खेव विहिणा खंधस्स परूवणं–

प. से किं तं खंधे?

उ. खंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. नामखंधे, २. ठवणाखंधे,
३. दव्वखंधे, ४. भावखंधे।

प. से किं तं नाम खंधे?

उ. नामखंधे जस्स णं जीवस्स वा अजीवस्स वा जाव खंधे ति णामं कज्जइ, से तं णामखंधे।

प. से किं तं ठवणाखंधे?

उ. ठवणाखंधे जण्णं कट्ठकम्मे वा जाव वराडे इ वा एगो वा अणेगा वा सब्भावठवणाए वा असब्भावठवणाए वा खंधे इ ठवणा ठविज्जइ, से तं ठवणाखंधे।

प. णाम-ठवणाणं को पइविसेसो?

उ. नामं आवकहियं ठवणा इत्तरिया वा होज्जा आवकहिया वा।

प. से किं तं दव्वखंधे?

उ. दव्वखंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. आगमओ य,
२. नो आगमओ य।

१०४. निक्षेप विधि से स्कन्ध का प्ररूपण–

प्र. स्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. स्कन्ध चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. नामस्कन्ध, २. स्थापना स्कन्ध,
३. द्रव्य स्कन्ध, ४. भावस्कन्ध।

प्र. नामस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. जिस किसी जीव या अजीव का यावत् 'स्कन्ध' यह नाम रखा जाता है, उसे नामस्कन्ध कहते हैं।

प. स्थापनास्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. काष्ठकर्म यावत् वराटक में एक अथवा अनेक स्कन्ध की सद्भाव या असद्भाव रूप से स्थापना की जाती है वह स्थापनास्कन्ध है।

प्र. नाम और स्थापना में क्या अन्तर है?

उ. नाम यावत्कथिक (वस्तु के अस्तित्व रहने तक) होता है परन्तु स्थापना इत्वरिक (स्वल्पकालिक) और यावत्कथिक दोनों प्रकार की होती है।

प्र. द्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. द्रव्यस्कन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. आगम से द्रव्य स्कन्ध,
२. नो आगम से द्रव्य स्कन्ध।

प. से किं तं आगमओ दव्वखंधे?

उ. आगमओ दव्वखंधे जस्स णं खंधे इ पयं सिक्खियं, ठियं, जियं मियं जाव णेगमस्स एगे अणुवउत्तं आगमओ एगे दव्वखंधे,

दो अणुवउत्ता आगमओ दोण्णि दव्वखंधाइं,

तिण्णि अणुवउत्ता आगमओ तिण्णि दव्वखंधाइं,

एवं जावइया अणुवउत्ता तावइया ताइं दव्वखंधाइं।

एवमेव ववहारस्स वि।

संगहस्स एगो वा अणेगा वा अणुवउत्तो वा, अणुवउत्ता वा दव्वखंधे वा दव्वखंधाणि वा से एगे दव्वखंधे।

उज्जुसुयस्स एगो अणुवउत्तो आगमओ एगे दव्वखंधे, पुहत्तं णेच्छइ।

तिण्हं सद्दणयाणं जाणए अणुवउत्ते अवत्थू,

कम्हा जइ जाणए कहं अणुवउत्ते भवइ।

से त्तं आगमओ दव्वखंधे।

प. से किं तं णो आगमओ दव्वखंधे?

उ. णो आगमओ दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जाणगसरीरदव्वखंधे, २. भवियसरीरदव्वखंधे,

३. जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे।

प. से किं तं जाणगसरीरदव्वखंधे?

उ. जाणगसरीरदव्वखंधे खंधे इ पयत्थाहिगार जाणगस्स जं सरीरयं ववगय चुयचावित चत्त देहं जीव विप्पजढं सेज्जागयं वा संथारगयं वा सिद्धसिलातलगयं वा पासित्ताणं कोइ भणेज्जा–अहो! णं इमेणं सरीरं समुस्सएणं जिणदिट्ठेणं भावेणं खंधे त्ति पयं आघवियं पण्णवियं परूवियं दंसियं निदंसियं उवदंसियं।

जहा को दिट्ठंतो?

अयं महुकंभे आसी, अयं घयकुंभे आसी, से त्तं जाणग सरीर दव्वखंधे।

प. से किं तं भवियसरीरदव्वखंधे?

उ. भवियसरीरदव्वखंधे जे जीवे जोणिजम्मणनिक्खंते इमेणं चेव सरीरसमुस्सएणं आदत्तएणं जिणोवइट्ठेणं खंधे इ पयं से य काले सिक्खिस्सइ ण ताव सिक्खइ।

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. अयं महुकुंभे भविस्सइ, अयं घयकुम्भे भविस्सइ, से त्तं भवियसरीर दव्वखंधे।

प. से किं तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे?

प्र. आगमद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. जिसने स्कन्ध पद को सीखा है, स्थित किया है, जित, मित किया है यावत् नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा आगम से एक द्रव्यस्कन्ध है,

दो अनुपयुक्त आत्मायें आगम से दो द्रव्य स्कन्ध हैं,

तीन अनुपयुक्त आत्मायें तीन आगमद्रव्यस्कन्ध हैं,

इस प्रकार जितनी भी अनुपयुक्त आत्मायें हैं, उतने ही आगमद्रव्यस्कन्ध जानना चाहिये।

इसी प्रकार व्यवहारनय भी आगमद्रव्यस्कन्ध के भेद मानता है।

संग्रहनय एक अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्य स्कन्ध और अनेक अनुपयुक्त आत्मायें अनेक द्रव्यस्कन्ध नहीं मानता है, किन्तु सभी को एक ही द्रव्यस्कन्ध मानता है।

ऋजुसूत्रनय एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्यस्कन्ध मानता है। वह भेदों को स्वीकार नहीं करता है।

तीनों शब्दनय अनुपयुक्त ज्ञायक को अवस्तु मानते हैं।

क्योंकि जो ज्ञायक है वह अनुपयुक्त कैसे हो सकता है?

यह आगम द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. नो आगमद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. नो आगमद्रव्यस्कन्ध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ज्ञायकसरीरद्रव्यस्कन्ध, २. भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध,

३. ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध।

प्र. ज्ञायकसरीर द्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. स्कन्ध पद के अर्थाधिकार को जानने वाले के व्यवपगत (चैतन्यरहित) चित चावित (प्राणरहित) त्यक्त देह जीव विप्रमुक्त शरीर को शैय्यागत संस्तारकगत सिद्धसिलागत देखकर कोई कहे–अहो ! इस शरीरपिण्ड से (जिनोपदिष्टभाव से) स्कन्धपद का अध्ययन किया था, प्रज्ञापित, प्ररूपित, दर्शित, निदर्शित और उपदर्शित किया था, वह ज्ञायक शरीर द्रव्य स्कन्ध है?

इसका कोई दृष्टान्त है?

यह मधुकुंभ था, यह घृतकुंभ था, यह ज्ञायकशरीर-द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. समय पूर्ण होने पर यथाकाल कोई योनिस्थान से बाहर निकला और वह इस प्राप्त शरीरसंघात से भविष्य में जिनोपदिष्ट भावानुसार स्कन्ध पद को सीखेगा किन्तु अभी नहीं सीखता है।

प्र. उसके लिए क्या दृष्टान्त है?

उ. यह मधुकुंभ होगा या घृतकुम्भ होगा ऐसा कहा जाता है, यह भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध है।

प्र. ज्ञायकशरीर भव्यशरीर व्यतिरिक्त द्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सचित्ते, २. अचित्ते, ३. मीसए।

प. से किं तं सचित्तदव्वखंधे?

उ. सचित्तदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. हयखंधे, २. गयखंधे,
३. किन्नरखंधे, ४. किंपुरिसखंधे,
५. महोरगखंधे, ६. उसभखंधे।

से तं सचित्त दव्वखंधे।

प. से किं तं अचित्तदव्वखंधे?

उ. अचित्तदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
दुपएसिए खंधे, तिपएसिए खंधे जाव दसपएसिए खंधे, संखेज्जपएसिए खंधे, असंखेज्जपएसिए खंधे, अणंतपएसिए खंधे, से त्तं अचित्तदव्वखंधे।

प. से किं त्तं मीसदव्वखंधे?

उ. मीसदव्वखंधे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–
सेणाए अग्गिमखंधे, सेणाए मज्झिमखंधे, सेणाए पच्छिमखंधे, से त्तं मीसदव्वखंधे।

अहवा जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कसिणखंधे, २. अकसिणखंधे,
३. अणेगदवियखंधे।

प. से किं तं कसिणखंधे?

उ. कसिणखंधे से चेव हयक्खंधे गयक्खंधे जाव उसभखंधे, से त्तं कसिणखंधे।

प. से किं तं अकसिणखंधे?

उ. अकसिणखंधे से चेव दुपएसियाई खंधे जाव अणंतपएसिए खंधे।
से त्तं अकसिणखंधे।

प. से किं तं अणेगदवियखंधे?

उ. अणेगदविय खंधे तस्सेव देसे अवचिए तस्सेव देसे उवचिए से त्तं अणेगदवियखंधे।

से त्तं जाणगसरीरभवियसरीरवइरित्ते दव्वखंधे।
से त्तं नोआगमओ दव्वखंधे।
से त्तं दव्वखंधे।

प. से किं तं भाव खंधे?

उ. भाव खंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आगमओ य, २. नोआगमओ य।

प. से किं तं आगमओ भाव खंधे?

उ. आगमओ भाव खंधे जाणए उवउत्ते।

से तं आगमओ भावखंधे।

प. से किं तं नो आगमओ भावखंधे?

उ. ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

प्र. सचित्तद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. सचित्तद्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. हय (अश्व) स्कन्ध, २. गज (हाथी) स्कन्ध,
३. किन्नरस्कन्ध, ४. किंपुरुषस्कन्ध,
५. महोरगस्कन्ध, ६. वृषभ (बैल) स्कन्ध

यह सचित्तद्रव्य स्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. अचित्तद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. अचित्तद्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–
द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध यावत् दसप्रदेशी स्कन्ध, संख्यातप्रदेशी स्कन्ध, असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, यह अचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. मिश्रद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. मिश्रद्रव्यस्कन्ध अनेक प्रकार का कहा गया है, यथा–
सेना का अग्रिम स्कन्ध, सेना का मध्य स्कन्ध, सेना का अंतिम स्कन्ध, यह मिश्रद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।

अथवा ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध के तीन प्रकार हैं, यथा–

१. कृत्स्नस्कन्ध, २. अकृत्स्नस्कन्ध,
३. अनेकद्रव्यस्कन्ध।

प्र. कृत्स्नस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. हयस्कन्ध, गजस्कन्ध यावत् वृषभस्कन्ध जो पूर्व में कहे हैं वही कृत्स्नस्कन्ध है। यही कृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. अकृत्स्नस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. अकृत्स्नस्कन्ध पूर्व में कहे गये द्विप्रदेशी स्कन्ध यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं।
यह अकृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. अनेकद्रव्यस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. एक देश अपचित और एक देश उपचित भाग मिलकर उनका जो समुदाय बनता है, वह अनेकद्रव्यस्कन्ध है। यह अनेक द्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है।
यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध का कथन हुआ। यह नोआगम द्रव्यस्कन्ध का वर्णन पूर्ण हुआ।
यह द्रव्य स्कन्ध का वर्णन पूर्ण हुआ।

प्र. भावस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. भावस्कन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आगमभाव स्कन्ध, २. नो आगमभाव स्कन्ध।

प्र. आगमभावस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. स्कन्ध पद के अर्थ का उपयोग युक्त ज्ञाता आगमभाव-स्कन्ध है।
यह आगमस्कन्ध का स्वरूप है।

प्र. नोआगमभावस्कन्ध का क्या स्वरूप है?

उ. नो आगमओ भावखंधे एएसिं चेव सामाइयमाइयाणं छण्हं अज्झयणाणं समुदयसमिइसमागमेणं निष्फन्ने आवस्सयसुयक्खंधे भाव खंधे त्ति लब्भइ, से त्तं नो आगमओ भावखंधे।

से तं भावखंधे।

तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा नामधेज्जा भवंति, तं जहा–

गाहा–गण काय निकाय खंध वग्ग रासी पुंजे य पिंड नियरे य। संघाय आकुल समूह भावखंधस्स पज्जाया। से त्तं खंधे। –अणु. सु. ५२-७२

उ. परस्पर-संबंधित सामायिक आदि छह अध्ययनों के समुदाय के मिलने से निष्पन्न आवश्यकश्रुतस्कन्ध कहलाता है। यह नो आगमभावस्कन्ध का स्वरूप है।

यह भावस्कन्ध का अध्ययन हुआ।

उस भावस्कन्ध के विविध घोषों एवं व्यंजनों वाले एकार्थक (पर्यायवाची) नाम इस प्रकार हैं, यथा–

(गाथार्थ) गण, काय, निकाय, स्कन्ध, वर्ग, राशि, पुँज, पिंड, निकर, संघात, आकुल और समूह ये सभी भावस्कन्ध के पर्याय हैं। यह स्कन्ध का कथन पूर्ण हुआ।

१०५. सद्दस्स भेयप्पभेया–

दसविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा–

१. णीहारि,
२. पिंडिमे,
३. लुक्खे,
४. भिण्णे,
५. जज्जरिए इ य,
६. दीहे,
७. रहस्से,
८. पुहत्ते य,
९. काकणी,
१०. खिंखिणिस्सरे। –ठाणं. अ. १०, सु. ७०५

दुविहे सद्दे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भासासद्दे चेव, २. नोभासासद्दे चेव।

भासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अक्खरसंबद्धे चेव, २. नो अक्खरसंबद्धे चेव।

नो भासासद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आउज्जसद्दे चेव,
२. नो आउज्जसद्दे चेव।

आउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. तते चेव, २. वितते चेव,

तते दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. घणे चेव, २. झुसिरे चेव,

एवं वितते वि।

नो आउज्जसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. भूसणसद्दे चेव, २. नो भूसणसद्दे चेव।

नो भूसणसद्दे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. तालसद्दे चेव, २. लत्तियासद्दे चेव।

–ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ७३(१-८)

१०५. शब्दों के भेद-प्रभेद–

शब्द दस प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. निर्हारी–घोषवान् शब्द जैसे–घंटे का,
२. पिण्डिम–घोषवर्जित शब्द, जैसे–नगाड़े का,
३. रुक्ष कर्कशशब्द–जैसे कौवे का,
४. भिन्न–वस्तु के टूटने से होने वाला शब्द,
५. जर्जरित–जैसे–तार वाले बाजे का शब्द,
६. दीर्घ–जो दूर तक सुनाई दे सके, जैसे–मेघ का शब्द,
७. ह्रस्व–सूक्ष्म शब्द जैसे–वीणा का,
८. पृथक्त्व–अनेक बाजों का संयुक्त शब्द,
९. काकणी–सूक्ष्मकण्ठों की गीतध्वनि,
१०. किंकिणी स्वर–घूघरों की ध्वनि।

शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भाषा शब्द, २. नो भाषा शब्द।

भाषा शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अक्षर संबद्ध-वर्णात्मक, २. नो अक्षर संबद्ध।

नो भाषा शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आतोद्य (वाद्य) शब्द,
२. नो आतोद्य शब्द (वाद्यरहित)।

आतोद्य शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. तत, २. वितत।

तत शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. घन, २. झुषिर।

इसी प्रकार वितत शब्द भी दो प्रकार का कहा गया है।

नो आतोद्य शब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. भूषणशब्द, २. नो भूषणशब्द।

नो भूषणशब्द दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. तालशब्द, २. लत्तिकशब्द।

१०६. सद्दुप्पत्ति निमित्ताणि–

दोहिं ठाणेहिं सद्दुप्पाए सिया, तं जहा–

१. साहन्नंताणं चेव पुग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया,

१०६. शब्दों की उत्पत्ति के निमित्त–

दो कारणों से शब्द की उत्पत्ति होती है, यथा–

१. पुद्गलों का संघात (एकत्रित) होने पर शब्द की उत्पत्ति होती है,

२. भिज्जंताणं चेव पोग्गलाणं सद्दुप्पाए सिया।
—ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ७३ (१)

२. पुद्गलों का भेद होने पर शब्द की उत्पत्ति होती है।

१०७. सद्दादिणं पोग्गल रूवत्त परूवणं—

सद्दंधयार उज्जोओ, पहा छाया तवे इ वा।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पोग्गलाणं तु लक्खणं॥
एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं।
—उत्त. अ. २८, गा. १२-१३

१०७. शब्दादि का पुद्गल रूपत्व प्ररूपण—

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया और आतप तथा वर्ण रस, गन्ध, और स्पर्श ये पुद्गल के लक्षण हैं।

एकत्व, पृथक्त्व, (भिन्नत्व) संख्या, संस्थान (आकार) संयोग और विभाग—(पुद्गल) ये पर्यायों के लक्षण हैं।

१०८. सद्दाईणं एगत्तं—

एगे सद्दे, एगे रूवे, एगे गंधे, एगे रसे, एगे फासे।
एगे सुब्भिसद्दे, एगे दुब्भिसद्दे।
एगे सुरूवे, एगे दुरूवे।
एगे दीहे, एगे हस्से।
एगे वट्टे, एगे तंसे, एगे चउरंसे, एगे पिहुले, एगे परिमंडले।
एगे किण्हे, एगे नीले, एगे लोहिए, एगे हालिद्दे, एगे सुक्किल्ले।
एगे सुब्भिगंधे, एगे दुब्भिगंधे।
एगे तित्ते, एगे कडुए, एगे कसाए, एगे अंबिले, एगे महुरे।
एगे कक्खडे जाव एगे लुक्खे। —ठाणं. अ. १, सु. ३८

१०८. शब्दादि का एकत्व—

एक शब्द, एक रूप, एक गंध, एक रस, एक स्पर्श।
एक शुभ शब्द, एक अशुभशब्द।
एक सुरूप, एक कुरूप।
एक दीर्घ, एक ह्रस्व।
एक वृत्त, एक त्र्यस्र, एक चतुरस्र, एक पृथुल (चौडा), एक परिमण्डल।
एक कृष्ण, एक नील, एक रक्त, एक पीत, एक शुक्ल।
एक सुगंध, एक दुर्गन्ध।
एक तिक्त, एक कटुक, एक कषाय, एक अम्ल, एक मधुर।
एक कर्कश—यावत् एक रुक्ष।

१०९. सद्दाईणं विविहपयारेण भेय परूवणं—

दुविहा सद्दा पण्णत्ता, तं जहा—
१. अत्ता चेव, २. अणत्ता चेव।
एवं इट्ठा जाव मणामा।
दुविहा रूवा पण्णत्ता, तं जहा—
१. अत्ता चेव, २. अणत्ता चेव।
एवं इट्ठा जाव मणामा।
एवं गंधा, रसा, फासा,
एवमिक्किक्के छ-छ आलावगा भाणियव्वा।
—ठाणं. अ.२, उ. ३, सु. ७५

१०९. शब्दादि पुद्गलों के विविध प्रकार से भेदों का प्ररूपण—

शब्द दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—
१. आत्त (ग्रहण किये हुए), २.अनात्त (अग्रहीत)
इसी प्रकार इष्ट यावत् मनाम दो दो प्रकार के कहने चाहिए।
रूप दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—
१. आत्त, २. अनात्त,
इसी प्रकार इष्ट यावत् मनाम दो-दो प्रकार के कहने चाहिए।
इसी प्रकार गंध, रस और स्पर्श के भेद कहने चाहिए।
इस प्रकार प्रत्येक के छह-छह आलापक कहने चाहिए।

११०. पयोगवंध-वीससावंधनाम वंधभेयजुगं—

प. कइविहे णं भंते ! वंधे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! दुविहे वंधे पण्णत्ते, तं जहा—
१. पयोगवंधे य,
२. वीससावंधे य। —विया. स. ८, उ. ९, सु. १

११०. प्रयोगवन्ध विश्रसावन्ध नामक दो वंध भेद—

प्र. भंते ! वन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. प्रयोगवन्ध (प्रयोग से होने वाला वंध),
२. विश्रसावंध (स्वाभाविक रूप से होने वाला वन्ध)।

१११. वीससावंधस्स वित्थरओ परूवणं—

प. वीससावंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. साईयवीससावंधे य,
२. अणाईयवीससा वंधे य।
प. अणाईयवीससावंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१११. विश्रसावंध का विस्तार से प्ररूपण—

प्र. भंते ! विश्रसावंध कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
१. सादिक विश्रसावन्ध,
२. अनादिक विश्रसावन्ध।
प्र. भंते ! अनादिक विश्रसावन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे,
२. अधम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे,
३. आगासत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे।

प. धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे णं भंते ! किं देसबंधे? सव्वबंधे?
उ. गोयमा ! देसबंधे, नो सव्वबंधे।
एवं अधम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे वि,
एवं आगासत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे वि।

प. धम्मत्थिकायअन्नमन्नअणाईयवीससाबंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?
उ. गोयमा ! सव्वद्धं।
एवं अधम्मत्थिकाए, एवं आगासत्थिकाए।

प. साईयवीससाबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?
उ. गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. बंधणपच्चइए, २. भायणपच्चइए,
३. परिणामपच्चइए।

प. से किं तं बंधणपच्चइए?
उ. बंधणपच्चइए, जं णं परमाणुपुग्गला दुपएसिय-तिपएसिय **जाव** दसपएसिए संखेज्जपएसिय-असंखेज्जपएसिय-अणंतपएसियाणं खंधाणं-वेमाय-निद्धयाए वेमायलुक्खयाए वेमायनिद्ध-लुक्खयाए बंधणपच्चइएणं बंधे समुप्पजइ,
से जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
से त्तं बंधणपच्चइए।

प. से किं तं भायणपच्चइए?
उ. भायणपच्चइए, जं णं जुण्णसुरा-जुण्णगुल-जुण्णतंदुलाणं भायणपच्चइएणं बंधे समुप्पज्जइ,
से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं,
से त्तं भायणपच्चइए।

प. से किं तं परिणामपच्चइए?
उ. परिणामपच्चइए, जं णं अब्भाणं अब्भरुक्खाणं **जाव** अमोहाणं परिणामपच्चइएणं बंधे समुप्पज्जइ,
से जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।
से त्तं परिणामपच्चइए।
से त्तं साईयवीससाबंधे।
से त्तं वीससाबंधे। *–विया. स. ८, उ. ९, सु. २-११*

१. धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक विश्रसावन्ध,
२. अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक विश्रसावन्ध,
३. आकाशास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक विश्रसावन्ध।

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादिक-विश्रसावन्ध क्या देशवन्ध है या सर्ववन्ध है?
उ. गौतम ! वह देशवन्ध है, सर्ववन्ध नहीं है।
इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के अन्योन्य- अनादि-विश्रसावन्ध के लिए कहना चाहिए।
इसी प्रकार आकाशास्तिकाय के अन्योन्य- अनादि-विश्रसावन्ध के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य-अनादि-विश्रसावन्ध कितने काल तक रहता है?
उ. गौतम ! सर्वकाल रहता है।
इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय एवं आकाशास्तिकाय के (अन्योन्य-अनादि-विश्रसावन्ध) के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! सादिक-विश्रसावन्ध कितने प्रकार का गया है?
उ. गौतम ! वह तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. वन्धन प्रत्ययिक, २. भाजन प्रत्ययिक,
३. परिणाम प्रत्ययिक।

प्र. भंते ! वन्धन-प्रत्ययिक (सादिविश्रसावन्ध) किसे कहते हैं?
उ. गौतम ! परमाणु पुद्गल द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् दशप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक पुद्गल-स्कन्धों का विषम स्निग्धता, विषम रूक्षता और विषम स्निग्ध रूक्षता से जो वन्ध होता है उसे वन्धन प्रत्ययिक वंध कहते हैं।
वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यातकाल तक रहता है।
यह वन्धन-प्रत्ययिक (सादि-विश्रसावन्ध) का स्वरूप है।

प्र. भंते ! भाजन-प्रत्ययिक-(सादि-विश्रसावन्ध) किसे कहते हैं?
उ. गौतम ! पुरानी मदिरा, पुराने गुड़ और पुराने चावलों का पात्र के निमित्त से जो वंध होता है उसे भाजन-प्रत्ययिक वंध कहते हैं।
वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है।
यह भाजन-प्रत्ययिक (सादि-विश्रसावन्ध) का स्वरूप है।

प्र. भंते ! परिणामप्रत्ययिक-सादि-विश्रसावन्ध किसे कहते हैं?
उ. गौतम ! वादलों अभ्रवृक्षों यावत् अमोघों आदि का परिणाम-प्रत्ययिक वंध होता है।
वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक रहता है।
यह परिणाम-प्रत्ययिक विश्रसावन्ध का स्वरूप है।
यह सादि–विश्रसावन्ध का स्वरूप है।
यह विश्रसावन्ध का कथन हुआ।

११२. पयोगबंधस्स भेय-प्पभेय परूवणं–
प. से किं तं पयोगबंधे?
उ. पयोगबंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–

११२. प्रयोगवन्ध के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–
प्र. भंते ! प्रयोगवन्ध कितने प्रकार का है?
उ. गौतम ! प्रयोगवन्ध तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अणाईए वा अप्पज्जवसिए,

२. साईए वा अपज्जवसिए,

३. साईए वा सपज्जवसिए।

१. तत्थ णं जे से अणाईए अपज्जवसिए से णं अट्ठण्हं जीवमज्झपएसाणं।
तत्थ वि णं तिण्हं-तिण्हं अणाईए अपज्जवसिए, सेसाणं साईए।

२. तत्थ णं जे से साईए अपज्जवसिए से णं सिद्धाणं,

३. तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से णं चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. आलावणवंधे, २. अल्लियावणवंधे,
३. सरीरवंधे, ४. सरीरप्पयोगवंधे।

प. से किं तं आलावणवंधे ?

उ. आलावणवंधे, जं णं तणभाराण वा, कट्ठभाराण वा, पत्तभाराण वा, पलालभाराण वा, वेल्लभाराण वा वेत्तलया-वाग-वरत्त-रज्ज-वल्लि-कुस-दब्भमादिएहिं आलावणवंधे समुप्पज्जइ,
से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं।

से त्तं आलावणवंधे।

प. से किं तं अल्लियावणवंधे ?

उ. अल्लियावणवंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. लेसणावंधे, २. उच्चयवंधे,
३. समुच्चयवंधे, ४. साहणणवंधे।

प. से किं तं लेसणावंधे ?

उ. लेसणावंधे, जं णं कुड्डाणं कुट्टिमाणं खंधाणं पासायाणं कट्ठाणं चम्माणं घडाणं पडाणं कडाणं छुहा-चिक्खल्ल-सिलेस लक्ख-महुसित्थमाइएहिं लेसणएहिं वंधे समुप्पज्जइ,
से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं,

से त्तं लेसणावंधे।

प. से किं त्तं उच्चयवंधे ?

उ. उच्चयवंधे, जं णं तणरासीण वा, कट्ठरासीण वा, पत्तरासीण वा, तुसरासीण वा, भुसरासीण वा, गोमयरासीण वा, अवगररासीण वा उच्चएणं वंधे समुप्पज्जइ,
से जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं,

से त्तं उच्चयवंधे।

प. से किं तं समुच्चयवंधे ?

१. अनादि-अपर्यवसित,

२. सादि-अपर्यवसित,

३. सादि-सपर्यवसित,

१. इनमें से जो अनादि-अपर्यवसित है, वह जीव के आठ मध्यप्रदेशों का होता है।
उनमें भी तीन-तीन प्रदेशों का अनादि-अपर्यवसित वन्ध है, शेष का सादि (अपर्यवसित) बन्ध है।

२. इन तीनों में जो सादि-अपर्यवसित वन्ध है वह सिद्धों का होता है।

३. सादि-सपर्यवसित वन्ध है, वह चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. आलापन वन्ध, २. अल्लिकापन वन्ध,
३. शरीर वन्ध, ४. शरीर प्रयोग वन्ध।

प्र. १. भंते ! आलापनवन्ध किसे कहते हैं ?

उ. गौतम ! तृण (घास), काष्ठ, पत्तों, पलाल और वेल के भारों को, वेत की लता, छाल, वस्त्रा (चमड़े की वनी मोटी रस्सी) रज्जु (रस्सी), वेल, कुश और डाभ (नारियल की जटा) आदि से वाँधने को आलापनवन्ध कहते हैं।
यह वन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है।
यह आलापनवन्ध का स्वरूप है।

प्र. २. अल्लिकापन वन्ध किसे कहते हैं ?

उ. गौतम ! अल्लिकापन वन्ध चार प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. श्लेषणावन्ध, २. उच्चयवन्ध,
३. समुच्चयवन्ध, ४. संहननवन्ध।

प्र. १. भंते ! श्लेषणावन्ध किसे कहते हैं ?

उ. गौतम ! कुड्यों (भित्तियों), कुट्टियों (आंगन के फर्श), स्तम्भों, प्रासादों, काष्ठों, चर्मों (चमड़ों), घड़ों, वस्त्रों और चटाईयों (कटों) को, चूना कीचड़ श्लेप (लेप) लाख, मोम आदि द्रव्यों से चिपकाने को श्लेषणावन्ध कहते हैं।
यह वन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है।
यह श्लेषणावन्ध का स्वरूप है।

प्र. २. भंते ! उच्चयवन्ध किसे कहते हैं ?

उ. गौतम ! तृणराशि (ढेर), काष्ठराशि, पत्रराशि, तुषराशि, भुसराशि, गोमयराशि और उकरड़े के ऊँचे ढेर लगाने को उच्चयवन्ध कहते हैं।
यह वन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है।
यह उच्चयवन्ध का स्वरूप है।

प्र. ३. भंते ! समुच्चयवन्ध किसे कहते हैं ?

उ. [illegible], [illegible] अगड़-तडाग-नदी-दह- वावी-[illegible]-[illegible]याणं-गुंजालियाणं सराणं सरपंतियाणं [illegible] बिलपंतियाणं देवकुल-सभा-पवा-[illegible] [illegible] [illegible] पागारट्टालग-चरिय-[illegible]-[illegible] पासाय-घर-सरण-लेण-आवणाणं [illegible] [illegible]-चच्चर-चउम्मुह-महापहमादीणं [illegible]-[illegible]समुच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ,

[illegible] [illegible]मुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं,

[illegible] [illegible]वंधे।

प्र. [illegible] [illegible]वंधे?

उ. [illegible] [illegible] दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible]वंधे य, २. सव्वसाहणणावंधे य।

प्र. [illegible] [illegible]वंधे?

उ. [illegible]वंधे, जं णं सगड-रह-जाण-जुग-गिल्लि-[illegible] [illegible]-[illegible]-लोहकडाह-कडच्छुअ-[illegible] [illegible]-उवगरणमाईणं [illegible] [illegible],

[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] कालं,

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

उ. गौतम ! कुआ, तालाब, नदी, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, बड़े सरोवरों की पंक्ति, बिलों, बिलों की पंक्ति, देवकुल (मन्दिर) सभा, प्रपा (प्याऊ), स्तूप, खाई, परिखा, प्राकार (कोटा), अट्टालक (बुर्ज), चरिका (गढ़ और नगर के मध्य का मार्ग), द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद (महल), घर, शरणस्थान, लयन (गृहविशेष) आपण (दुकान), शृंगाटक (सिंघाड़े के आकार का मार्ग) त्रिक (तिराहा) चतुष्क (चौराहा) चौक, चतुर्मुख मार्ग और राजमार्ग आदि को चूना, मिट्टी, कीचड़ एवं श्लेष (लेप) आदि के द्वारा चिपकाने को समुच्चयबन्ध कहते हैं।

यह बन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल रहता है।

यह समुच्चय बन्ध का स्वरूप है।

प्र. ४. भंते ! संहननबन्ध किसे कहते हैं?

उ. गौतम ! संहननबन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. देशसंहननबन्ध, २. सर्वसंहननबन्ध।

प्र. १. भंते ! देशसंहननबन्ध किसे कहते हैं?

उ. गौतम ! शकट (गाड़ी), रथ, यान, युग्य, गिल्लि, (अम्बाड़ी) थिल्लि (पलाण), शिविका (पालखी), स्यन्दमानिका (पुरुष प्रमाण वाहनविशेष), लोढ़ी, लोहे की कड़ाही, कुड़छी, आसन, शयन, स्तम्भ, भाण्ड (मिट्टी के बर्तन), पात्र, नाना उपकरण आदि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध होता है, वह देशसंहननबन्ध है।

यह बंध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यातकाल तक रहता है।

यह देशसंहननबन्ध का स्वरूप है।

प्र. २. सर्वसंहननबन्ध किसे कहते हैं?

उ. गौतम ! दूध और पानी आदि की तरह एकमेक हो जाना सर्वसंहननबन्ध कहलाता है।

यह सर्वसंहननबन्ध का स्वरूप है।

यह संहनन का स्वरूप है।

यह आलीकापन बंध का कथन हुआ।

प्र. भंते ! शरीरबन्ध किसे कहते हैं?

उ. गौतम ! शरीरबन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पूर्वप्रयोग-प्रत्ययिक,

२. प्रत्युत्पन्न प्रयोग-प्रत्ययिक।

प्र. भंते ! पूर्वप्रयोग प्रत्ययिक (शरीरबन्ध) किसे कहते हैं?

उ. गौतम ! [illegible] [illegible] कारणों से [illegible] [illegible] नैरयिक आदि सभी संसारी जीवों के जीवप्रदेशों का [illegible] [illegible], वह पूर्वप्रयोग प्रत्ययिक बन्ध कहलाता है।

यह पूर्वप्रयोग प्रत्ययिक बन्ध का स्वरूप है।

प्र. [illegible] ! प्रत्युत्पन्न प्रयोग प्रत्ययिक बंध किसे कहते हैं?

उ. [illegible] [illegible]

[illegible]

प. किं कारणं?

उ. ताहे से पएसा एगत्तीगया भवंतीत्ति,
से त्तं पडुप्पन्नप्पयोगपच्चइए,
से त्तं सरीरवंधे। *-विया. स. ८, उ. ९, सु. १२-२३*

११३. सरीरप्पयोगवंधस्स भेया-

प. से किं तं सरीरप्पयोगवंधे?

उ. सरीरप्पयोगवंधे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. ओरालियसरीरप्पयोगवंधे,
२. वेउव्वियसरीरप्पयोगवंधे,
३. आहारगसरीरप्पयोगवंधे,
४. तेयगसरीरप्पयोगवंधे,
५. कम्मगसरीरप्पयोगवंधे। *-विया. स. ८, उ. ९, सु. २४*

११४. ओरालियसरीरप्पयोगवंधस्स वित्थरओ परूवणं-

प. ओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-

१. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे,
२. वेइंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे,
३. तेइंदियओरालिय सरीरप्पयोग वंधे,
४. चउरिंदियओरालियसरीरप्पयोग वंधे,
५. पंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे।

प. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-

पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे, एवं एएणं अभिलावेणं भेदा जहा ओगाहणसंठाणे ओरालियसरीरस्स तहा भाणियव्वा जाव पज्जत्तगब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे य, अपज्जत्तगब्भ वक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय-ओरालियसरीरप्पयोगवंधे य।

प. ओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा! वीरियसजोगसद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च पडुच्च ओरालियसरीरप्पयोगनामकम्मस्स उदएणं ओरालियसरीरप्पयोगवंधे।

प. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा! एवं चेव।

पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे एवं चेव।

प्र. (तैजस् और कार्मण शरीर के बन्ध होने का) क्या कारण है?

उ. क्योंकि उस समय वे प्रदेश एकत्रित हुए रहते हैं।
यह प्रत्युत्पन्नप्रयोगप्रत्ययिक वन्ध का स्वरूप है।
यह शरीर बन्ध का कथन है।

११३. शरीरप्रयोगबन्ध के भेद-

प्र. भंते! शरीरप्रयोगवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम! शरीरप्रयोगवन्ध पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. औदारिकशरीरप्रयोगवन्ध,
२. वैक्रियशरीरप्रयोगवन्ध,
३. आहारकशरीरप्रयोगवन्ध,
४. तैजस्शरीरप्रयोगवन्ध,
५. कार्मणशरीरप्रयोगवन्ध।

११४. औदारिक शरीरप्रयोगवन्ध का विस्तार से प्ररूपण-

प्र. भंते! औदारिक शरीरप्रयोगवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा-

१. एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोग वन्ध,
२. द्वीन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोग वन्ध,
३. त्रीन्द्रिय-औदारिक शरीर प्रयोग वन्ध,
४. चतुरिन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोग वन्ध,
५. पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोग वन्ध।

प्र. भंते! एकेन्द्रिय औदारिक-शरीरप्रयोग वन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम! वह (एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगवन्ध) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा-

प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें पद में अवगाहना संस्थान की अपेक्षा औदारिक शरीर के जो भेद कहे गए हैं, वैसे ही यहाँ पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगवन्ध से पर्याप्त-गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगवन्ध और अपर्याप्त गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगवन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते! औदारिकशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम! सवीर्यता, सयोग्यता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद के कारण, कर्म, योग, भव और आयु आदि हेतुओं की अपेक्षा औदारिक शरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से औदारिक शरीरप्रयोग वन्ध होता है।

प्र. एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम! पूर्वोक्त-कथनानुसार यहाँ भी जानना चाहिए।
इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर-प्रयोगवन्ध के लिए कहना चाहिए।

एवं जाव वणस्सइकाइया। एवं बेइंदिया। एवं तेइंदिया। एवं चउरिंदिया।

प. तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! वीरियसजोगसद्दव्वयाए पमादपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च पडुच्च मणुस्स-पंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं मणुस्सपंचिंदिय-ओरालिय सरीरप्पयोगबंधे।

प. ओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबंधे?

उ. गोयमा ! देसवंधे वि, सव्ववंधे वि।

प. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्ववंधे?

उ. गोयमा ! देसवंधे वि, सव्ववंधे वि।

एवं पुढविकाइया।

एवं जाव–

प. मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसवंधे सव्ववंधे?

उ. गोयमा ! देसवंधे वि, सव्ववंधे वि।

–विया. स. ८, उ. ९, सु. २५-३६

इसी प्रकार वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर-प्रयोगबन्ध पर्यन्त तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगबन्ध के लिए कहना चाहिए।

प्र. भंते ! तिर्यञ्च-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! पूर्वोक्त कथनानुसार यहाँ भी जानना चाहिए।

प्र. भंते ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक शरीर प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोग्यता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद के कारण, कर्म, योग, भव और आयु की अपेक्षा मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर-नामकर्म के उदय से मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीर प्रयोगबन्ध होता है।

प्र. भंते ! औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है?

उ. गौतम ! वह देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है?

उ. गौतम ! वह देश बंध भी है और सर्वबन्ध भी है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक (एकेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोगबन्ध) के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार यावत्–

प्र. भंते ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है?

उ. गौतम ! वह देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है।

११५. ओरालिय सरीरप्पयोग बंधस्स ठिई परूवणं–

प. ओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधे एक्कं समयं, देसवंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयूणाइं।

प. एगिंदियओरालियसरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधे एक्कं समयं, देसवंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयूणाइं।

प. [illegible]गिंदिय ओरालिय सरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! [illegible] केवचिरं होइ?

उ. [illegible] ! सव्ववंधे एक्कं समयं, देसवंधे जहन्नेणं [illegible] तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं [illegible]।

[illegible] सव्ववंधो एक्कं समयं,

[illegible] जहन्नेणं [illegible] तिसमयूणं, उक्कोसेणं जा जस्स [illegible]।

११५. औदारिक-शरीरप्रयोगबंध की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध काल की अपेक्षा कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! सर्वबन्ध एक समय और देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम तक होता रहता है।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध काल की अपेक्षा कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! सर्वबन्ध एक समय और देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम बावीस हजार वर्ष तक होता रहता है।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीर-प्रयोगबन्ध काल की अपेक्षा कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! सर्वबन्ध एक समय और देशबन्ध जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव-ग्रहण पर्यन्त तथा उत्कृष्ट एक समय कम बावीस हजार वर्ष तक होता रहता है।

इसी प्रकार सभी जीवों का सर्वबन्ध एक समय तक होता है। जिनके वैक्रियशरीर नहीं है उनका देशबन्ध जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभवग्रहण-पर्यन्त और उत्कृष्ट जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति है, उसमें एक समय कम होता है।

जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं देसबंधो जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं जा जस्स ठिई सा समयूणा कायव्वा।

एवं जाव मणुस्साणं देसबंधे जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णिपलिओवमाइं समयूणाइं।

–विया. स. ८, उ. ९, सु. ३७-४०

जिनके वैक्रियशरीर है, उनके देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट जिसकी जितनी स्थिति है, उसमें से एक समय कम तक होता है,

इसी प्रकार यावत् मनुष्यों का देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम तक जानना चाहिए।

११६. ओरालियसरीरप्पयोग बंधंतर काल परूवणं–

प. ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं. उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडि समयाहियाइं।

देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं तिसमयाहियाइं।

प. एगिंदियओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागं भवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयाहियाइं।

देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. पुढविक्काइयएगिंदिय ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्वं।

देसबंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि समया।

जहा पुढविक्काइयाणं एवं जाव चउरिंदियाणं वाउक्काइयवज्जाणं।

णवरं–सव्ववंधंतरं उक्कोसेणं जा जस्स ठिई सा समयाहिया कायव्वा।

वाउक्काइयाणं सव्ववंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं समयाहियाइं।

देसवंधंतरं जहन्नेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. पंचिंदियतिरिक्खजोणियओरालियसरीरवंधंतरं णं भंते! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयूणं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी समयाहिया।

देसवंधंतरं जहा एगिंदियाणं तहा पंचिंदियतिरिक्ख जोणियाणं।

११६. औदारिक शरीरबन्ध के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! औदारिक शरीर के बन्ध का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण है और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्वकोटि सहित तेतीस सागरोपम है।

देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समय अधिक तेतीस सगारोपम है।

प्र. भंते ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीरबन्ध का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! इसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव-ग्रहण है और उत्कृष्ट एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है।

देशबन्ध का अन्तर काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है।

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिकशरीरबन्ध का अन्तर काल कितना है ?

उ. गौतम ! इसके सर्वबन्ध काल का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय का कहा गया है उसी प्रकार कहना चाहिए।

देशवन्ध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समय का है।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर वन्ध का अन्तर कहा गया है, उसी प्रकार वायुकायिक जीवों को छोड़कर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवों के शरीरवन्ध का अन्तर कहना चाहिए।

विशेष–उत्कृष्ट सर्ववन्ध का अन्तर जिस जीव की जितनी स्थिति है, उससे एक समय अधिक कहनी चाहिए।

वायुकायिक जीवों के सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट समयाधिक तीन हजार वर्ष है।

देशवन्ध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का है।

प्र. भंते ! पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-औदारिकशरीरवन्ध का कितने काल का अन्तर कहा गया है ?

उ. गौतम ! सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव-ग्रहण है और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्वकोटि का है।

देशवन्ध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों का कहा गया उसी प्रकार सभी पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिकों का कहना चाहिए।

एवं मणुस्साण वि निरवसेसं भाणियव्वं जाव उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

इसी प्रकार मनुष्यों के शरीरबन्धान्तर के विषय में भी पूर्ववत् उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त कहना चाहिए।

प. जीवस्स णं भंते ! एगिंदियत्ते णो एगिंदियत्ते पुणरवि एगिंदियत्ते एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधंतरं कालओ केवचिरं होइ?

प्र. भंते ! एकेन्द्रियावस्थागत जीव नो-एकेन्द्रियावस्था (किसी दूसरी-जाति) गत होकर पुनः एकेन्द्रिय में हो तो एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोगबन्ध का कितने काल का अन्तर होता है?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहन्नेणं दो खुड्डागभवग्गहणाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं,

देसबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्ज-वासमब्भहियाइं।

उ. गौतम ! (ऐसे जीव का) सर्वबन्धान्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव-ग्रहण काल और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष-अधिक दो हजार सागरोपम का होता है।

देशबन्ध का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लक भवग्रहण और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम का होता है।

प. जीवस्स णं भंते ! पुढविकाइयत्ते नो पुढविकाइयत्ते पुणरवि पुढविकाइयत्ते पुढविकाइयएगिंदियओरालिय-सरीरप्पयोगबंधंतरं कालओ केवचिरं होइ?

प्र. भंते ! पृथ्वीकायिक-अवस्थागत जीव नो पृथ्वीकायिक-अवस्था में उत्पन्न हो और पुनः पृथ्वीकायिक रूप में आए तो पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय- औदारिकशरीरप्रयोगबन्ध का कितने काल का अन्तर होता है?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहन्नेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ,

खेत्तओ अणंता लोगा, असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो।

देसबंधंतरं जहन्नेणं खुड्डागभवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं अणंतकालं जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो।

जहा पुढविकाइयाणं एवं वणस्सइकाइयवज्जाणं जाव मणुस्साणं।

वणस्सइकाइयाणं दोण्णि खुड्डाइं एवं चेव,

उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखेज्जाओ उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा।

एवं देसबंधंतरं पि उक्कोसेणं पुढवीकालो।

-विया. स. ८, उ. ९, सु. ४१-४९

उ. गौतम ! (ऐसे जीव का) सर्वबन्धान्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लकभव-ग्रहण काल और उत्कृष्ट अनन्तकाल है, जो काल से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी प्रमाण है,

क्षेत्र से अनन्त लोक प्रमाण और असंख्यात पुद्गल-परावर्तन है। वे पुद्गल-परावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रमाण है। (अर्थात्-आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय है, उतने पुद्गल परावर्तन हैं।)

देशबन्ध का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट अनन्तकाल यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रमाण है,

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का औदारिकशरीर प्रयोग बन्धान्तर कहा गया है उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों को छोड़कर मनुष्यों पर्यन्त जानना चाहिए।

वनस्पतिकायिक जीवों के सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य दो क्षुल्लकभव-ग्रहण आदि पूर्ववत् जानना चाहिए।

उत्कृष्ट असंख्यातकाल प्रमाण है जो काल से असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी और क्षेत्र से असंख्यात लोक प्रमाण है।

इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभवग्रहण है और उत्कृष्ट पृथ्वीकाय के स्थितिकाल के बराबर है।

११८. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधस्स वित्थरओ परूवणं–

प. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य,

२. पंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य।

प. भंते ! जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे किं वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे अवाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे?

उ. गोयमा ! वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरप्पयोग बंधे, णो अवाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरप्पयोग बंधे।

एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्वियसरीरभेदो तहा भाणियव्वो जाव पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीयवेमाणिय-देवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे य, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पातीय वेमाणिय देव पंचिंदिय वेउव्वियसरीरप्पयोग बंधे य।

प. वेउव्वियसरीरप्पयोग बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे।

प. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा लद्धिं वा पडुच्च वाउक्काइय एगिंदियवेउव्विय-सरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरप्पयोगबंधे।

प. रयणप्पभापुढविनेरइयपंचिंदियवेउव्विय-सरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभापुढवि पंचिंदिय वेउव्विय सरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं रयणप्पभापुढवि पंचिंदिय वेउव्वियसरीरप्पयोग बंधे।

एवं जाव अहेसत्तमाए।

प. तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा लद्धिं वा पडुच्च तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्वियसरीरप्पयोग बंधे।

११८. वैक्रिय शरीरप्रयोग बंध का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भंते ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! दो प्रकार कहा गया है, यथा–

१. एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध,

२. पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध।

प्र. भंते ! यदि एकेन्द्रिय-वैक्रिय शरीर प्रयोगबन्ध है, तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगबन्ध है या अवायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रिय शरीर प्रयोगबन्ध है?

उ. गौतम ! वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध है और अवायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध नहीं है।

इस प्रकार के अभिलाप द्वारा (प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें) अवगाहना संस्थानपद में वैक्रियशरीर के जिस प्रकार भेद कहे गए हैं, उसी प्रकार यहां भी "पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध, अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध- अनुत्तरोप-पातिक-कल्पातीत-वैमानिक देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोग वन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! वैक्रियशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धि से तथा वैक्रियशरीरप्रयोग नामकर्म के उदय से वैक्रियशरीरप्रयोग वन्ध होता है।

प्र. भंते ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धि से तथा वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीरप्रयोग वन्ध होता है।

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वीनैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य से तथा रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध होता है।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीरप्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धि से तथा तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से तिर्यञ्चयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध होता है।

प. मणुस्सपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पयोग बंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. असुरकुमारभवणवासिदेवपंचिंदियवेउव्विय-सरीरप्पयोग बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! जहा रयणप्पभापुढवि नेरइया।

एवं जाव थणियकुमारा।

एवं वाणमंतरा।

एवं जोइसिया।

एवं सोहम्मकप्पोवगया वेमाणिया एवं जाव अच्चुय कप्पोवगया वेमाणिया।

गेवेज्जकप्पाईया वेमाणिया एवं चेव।

अणुत्तरोववाइयकप्पाईया वेमाणिया एवं चेव।

प. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबन्धे, सव्वबन्धे?

उ. गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि।

उ. वाउक्काइयएगिंदिय वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

प. रयणप्पभापुढविनेरइयवेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबंधे?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं जाव अणुत्तरोववाइया।

–विया. स. ८, उ. ९, सु. ५१-६५

प्र. भंते ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

प्र. भंते ! असुरकुमार-भवनवासीदेव-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक का कथन किया है उसी प्रकार कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त कहना चाहिए।

इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार ज्योतिष्कदेवों के विषय में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देवों से अच्युत-कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों पर्यंत के लिए जानना चाहिए।

ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक देवों के विषय में भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

प्र. भंते ! वैक्रिय शरीरप्रयोगवन्ध क्या देश बन्ध है या सर्वबन्ध है?

उ. गौतम ! वह देश बन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है।

प. भंते ! वायुकायिक एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक-वैक्रियशरीर प्रयोगबन्ध क्या देशवन्ध है या सर्वबन्ध है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवों पर्यन्त जानना चाहिए।

११९. वेउव्विय सरीरप्पयोग वंधस्स ठिई परूवणं–

प. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो समया।

देसवंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं।

प. वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय सरीरप्पयोग वंधे णं भंते! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधे एक्कं समयं,
देसवंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

प. रयणप्पभापुढविनेरइय वेउव्विय सरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधे एक्कं समयं,
देसवंधे जहण्णेणं दसवाससहस्साइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं समयूणं।
एवं जाव अहेसत्तमा।

११९. वैक्रिय शरीर प्रयोग बन्ध की स्थिति का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वैक्रियशरीरप्रयोगवन्ध काल कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! इसका सर्वबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक होता है।

देशवन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक होता है।

प्र. भंते ! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगवन्ध काल कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! इसका सर्वबन्ध एक समय तक होता है, देशवन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक होता है।

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक-वैक्रियशरीर-प्रयोगवन्ध काल कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! इसका सर्ववन्ध एक समय तक होता है,
देशवन्ध जघन्य तीन समय कम दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट एक समय कम एक सागरोपम तक होता है।
इसी प्रकार अधःसप्तम नरकपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

णवरं–देसवंधे जस्स जा जहन्निया ठिई सा तिसमयूणा कायव्वा,
जा च उक्कोसिया सा समयूणा।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाणं।

असुरकुमार-नागकुमार जाव अणुत्तरोववाइयाणं जहा नेरइयाणं,

णवरं–जस्स जा ठिई सा भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइयाणं सव्वबंधे एक्कं समयं,

देसवंधे एक्कतीसं सागरोवमाइं तिसमयूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयूणाइं।

–विया. स. ८, उ. ९, सु. ६६-७०

विशेष–जिसकी जितनी जघन्य (आयु) स्थिति हो, उसमें तीन समय कम जघन्य देशवन्ध तथा जिसकी जितनी उत्कृष्ट (आयु) स्थिति हो, उसमें एक समय कम उत्कृष्ट देशबन्ध जानना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों का कथन वायुकायिक के समान जानना चाहिए।

असुरकुमार नागकुमारों से अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त का कथन नैरयिक के समान जानना चाहिए।

विशेष–जिसकी जितनी स्थिति हो उतनी कहनी चाहिए, अनुत्तरोपपातिक देवों पर्यन्त का सर्वबन्ध एक समय तक होता है।

देशवन्ध जघन्य तीन समय कम इकतीस सागरोपम और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक का होता है।

१२०. वेउव्वियसरीरप्पयोग बंधंतर काल परूवणं–

प. वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतंकालं, अणंताओ ओसप्पिणी उस्सप्पिणीओ जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो।

एवं देसबंधंतरं पि।

प. वाउक्काइय-वेउव्वियसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं।

एवं देसबंधंतरं पि।

प. तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय-वेउव्वियसरीर-प्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहत्तं।

एवं देसबंधंतरं पि।

एवं मणूसस्स वि। *–विया. स. ८, उ. ९, सु. ७१-७४*

१२०. वैक्रियशरीर प्रयोग बन्ध के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! इसके सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर जानना चाहिए।

इसी प्रकार देश बन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

प्र. भंते ! वायुकायिक वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर (स्वकाय की अपेक्षा) काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! इसके सर्ववन्ध का अन्तर (स्वकाय की अपेक्षा) जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवें भाग होता है।

इसी प्रकार देशवन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

प्र. भंते ! तिर्यञ्चयोनिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! इसके सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि पृथक्त्व का होता है।

इसी प्रकार देशवन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी (पूर्ववत्) जान लेना चाहिए।

१२१. पुणरवि वेउव्वियसरीरपावगाणं वेउव्वियसरीरप्पयोग वंधंतरं काल परूवणं–

प. जीवस्स णं भंते ! वाउकाइयत्ते नो वाउकाइयत्ते पुणरवि या वाउकाइयत्ते वाउकाइय-एगिंदिय-वेउव्वियसरीर-प्पयोगवंधंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतंकालं वणस्सइकालो।

एवं देसबंधंतरं पि।

१२१. पुनः वैक्रिय शरीर प्राप्त करने वालों के वैक्रिय शरीरप्रयोगवंध के अन्तर काल का प्ररूपण–

प्र. भंते ! वायुकायिक अवस्थागत जीव (वहाँ से मर कर) वायुकायिक के सिवाय अन्यकाय में उत्पन्न होकर रहे और फिर वह वहाँ से मर कर पुनः वायुकायिक जीवों में उत्पन्न हो तो उसके वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर- प्रयोग-बन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! उसके सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) तक होता है।

इसी प्रकार देशवन्ध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

प. जीवस्स णं भंते ! रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते णो रयणप्पभापुढविनेरइयत्ते पुणरवि रयणप्पभापुढवीनेरइयत्ते रयणप्पभापुढवीनेरइय वेउव्वियसरीरप्पयोग बंधंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

देसबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो।

एवं जाव अहेसत्तमाए,

णवरं–जा जस्स ठिई जहण्णिया सा सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा,

सेसं तं चेव।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्साणं जहा वाउक्काइयाणं।

असुर-नागकुमार जाव सहस्सारदेवाणं एएसिं जहा रयणप्पभायाणं,

णवरं–सव्वबंधंतरं जस्स जा ठिई जहण्णिया सा अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा,

सेसं तं चेव।

प. जीवस्स णं भंते ! आणयदेवत्ते नो आणयदेवत्ते पुणरवि आणयदेवत्ते आणयदेव वेउव्विय सरीरप्पयोग बंधंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अट्ठारससागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, वणस्सइकालो।

देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं अणंतंकालं वणस्सइकालो।

एवं जाव अच्चुए,

णवरं–जस्स जा ठिई सा सव्वबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तमब्भहिया कायव्वा,

सेसं तं चेव।

प. जीवस्स णं भंते ! गेवेज्जकप्पातीयत्ते नो गेवेज्जकप्पातीयत्ते पुणरवि गेवेज्जकप्पातीयत्ते गेवेज्जकप्पातीय-वेउव्विय-सरीरप्पयोगबंधंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहण्णेणं वावीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो।

प्र. भंते ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक रूप में रहा हुआ जीव (वहाँ से मर कर) रत्नप्रभापृथ्वी के सिवाय अन्य स्थानों में उत्पन्न हो और वहाँ से मर कर पुनः रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक के रूप में उत्पन्न हो तो उसके वैक्रिय शरीरप्रयोग बन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! उसके सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष का और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का होता है।

देशवन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का होता है।

इसी प्रकार अधःसप्तम नरकपृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेष–जिस नैरयिक की जो जघन्य स्थिति हो, उससे अन्तर्मुहूर्त अधिक सर्ववन्ध का जघन्य अन्तर जानना चाहिए।

शेष कथन पूर्ववत् है।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवों और मनुष्यों के वन्ध का अन्तर वायुकायिक के समान जानना चाहिए।

इसी प्रकार असुरकुमार, नागकुमारों से सहस्रार देवों पर्यन्त के वैक्रियशरीर-प्रयोगवन्ध का अन्तर रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

विशेष–जिसकी जो जघन्य स्थिति हो, उसके सर्ववन्ध का अन्तर उससे अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना चाहिए।

शेष सारा कथन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

प्र. भंते ! आनत देवलोक में देवरूप से उत्पन्न कोई देव (वहाँ से च्यव कर) आनतदेवलोक के सिवाय दूसरे जीवों में उत्पन्न हो जाए, फिर वहाँ से मर कर पुनः आनत देव लोक में देवरूप से उत्पन्न हो तो उस आनतदेव के वैक्रिय शरीर प्रयोगवन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! उसके सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम का और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का होता है।

देशबन्ध का अन्तर काल जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का होता है।

इसी प्रकार अच्युत देवलोक पर्यन्त के देवों का अन्तर जानना चाहिए।

विशेष–जिसकी जितनी जघन्य स्थिति हो, सर्वबन्धान्तर में उससे वर्ष-पृथक्त्व अधिक समझना चाहिए।

शेष सारा कथन पूर्ववत् जान लेना चाहिए।

प. भंते ! ग्रैवेयककल्पातीत रूप में उत्पन्न कोई देव (वहाँ से च्यव कर) ग्रैवेयक कल्पातीतदेवलोक के सिवाय दूसरे जीवों में उत्पन्न हो जाए फिर वहाँ से मरकर पुनः ग्रैवेयककल्पातीतदेवलोक में देवरूप से उत्पन्न हो तो उस ग्रैवेयककल्पातीत वैक्रिय-शरीर-प्रयोगवन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! सर्ववन्ध का अन्तर जघन्यतः वर्ष-पृथक्त्व अधिक वावीस सागरोपम का और उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पतिकाल) का होता है।

देसवंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

प. जीवस्स णं भंते ! अणुत्तरोववाइयत्ते नो अणुत्तरोववाइयत्ते पुणरवि अणुत्तरोववाइयत्ते अणुत्तरोववाइय-वेउव्वियसरीरप्पयोगवंधंतरं कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! सव्ववंधंतरं जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं।

देसवंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं। *–विया. स. ८, उ. ९, सु. ७५-८१*

१२२. वेउव्वियसरीरबंधगावंधगाणं अप्पावहुयं–

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं वेउव्वियसरीरस्स देसवंधगाणं सव्ववंधगाणं, अवंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा वेउव्वियसरीरस्स सव्ववंधगा,

२. देसवंधगा असंखेज्जगुणा,

३. अवंधगा अणंतगुणा। *–विया. स. ८, उ. ९, सु. ८२*

१२३. आहारगसरीरप्पयोगवंधस्स वित्थरओ परूवणं–

प. आहारगसरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते।

प. भंते ! जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणुस्साहारगसरीर-प्पयोगवंधे, किं अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगवंधे ?

उ. गोयमा ! मणुस्साहारगसरीरप्पयोगवंधे, नो अमणुस्साहारगसरीरप्पयोगवंधे।

एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठि - पज्जत्त - संखेज्ज - वासाउय-कम्मभूमिग-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साहारग-सरीरप्पयोगवंधे,

णो अणिड्ढिपत्तपमत्त - संजय सम्मद्दिट्ठि पज्जत्त संखेज्ज वासाउय कम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय-मणुस्साहारगसरीरप्पयोगवंधे।

प. आहारगसरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

उ. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव लद्धिं पडुच्च आहारगसरीरप्पयोगणामाए कम्मस्स उदएणं आहारग-सरीरप्पयोगवंधे।

प. आहारगसरीरप्पयोग वंधे णं भंते ! किं देसवंधे, सव्ववंधे ?

देशबन्ध का अन्तर जघन्य वर्षपृथक्त्व और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल का होता है।

प. भंते ! अनुत्तरोपपातिकदेवरूप में उत्पन्न जीव (वहाँ से च्यव कर) अनुत्तरोपपातिकदेवों के सिवाय दूसरे जीवों में उत्पन्न हो जाए फिर वहाँ से मरकर पुनः अनुत्तरोपपातिक देवरूप में उत्पन्न हो तो अनुत्तरोपपातिक देव के वैक्रियशरीर-प्रयोग बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! उसके सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य वर्षपृथक्त्व-अधिक इकतीस सागरोपम का और उत्कृष्ट संख्यात-सागरोपम का होता है।

उसके देशबन्ध का अन्तर जघन्य वर्षपृथक्त्व का और उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम का होता है।

१२२. वैक्रिय शरीर के बन्धक-अबन्धकों का अल्पबहुत्व–

प्र. भन्ते ! वैक्रिय शरीर के इन देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. इनमें सबसे थोड़े वैक्रिय शरीर के सर्वबन्धक जीव हैं,

२. (उनसे) देशबन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) अबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

१२३. आहारक शरीरप्रयोग बन्ध का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! (आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध) एक प्रकार का कहा गया है।

प्र. भन्ते ! यदि (आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध) एक प्रकार का कहा गया है तो वह मनुष्यों के होता है या मनुष्यों के सिवाय (अन्य जीवों के) होता है ?

उ. गौतम ! मनुष्यों के आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है, मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों को नहीं होता है ?

इस प्रकार इसी अभिलाप से (प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें) "अवगाहना-संस्थानपद" में कहे अनुसार यावत् ऋद्धि प्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज-मनुष्य के आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है,

परन्तु ऋद्धि रहित प्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यात-वर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज-मनुष्य के .आहारक-शरीर प्रयोग बन्ध नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! आहारकशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् (आहारक-लब्धि) के निमित्त से आहारकशरीरप्रयोग नामकर्म के उदय से आहारकशरीरप्रयोगबन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! आहारकशरीरप्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध होता है या सर्वबन्ध होता है ?

उ. गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि।

प. आहारगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प. आहारगसरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, अवड्ढपोग्गल-परियट्टं देसूणं।

एवं देसबंधंतरं पि।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं आहारगसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा,

२. देसबंधगा संखेज्जगुणा,

३. अबंधगा अणंतगुणा।

—विया. स. ८, उ. ९, सु. ८३-८९

उ. गौतम ! वह देशवन्ध भी होता है, सर्ववन्ध भी होता है।

प्र. भन्ते ! आहारकशरीर-प्रयोगवन्ध काल कितने काल तक होता है?

उ. गौतम ! आहारकशरीरप्रयोगवन्ध का सर्ववन्ध एक समय तक होता है, देशवन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक होता है।

प्र. भन्ते ! आहारक-शरीर-प्रयोगवन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है?

उ. गौतम ! इसके सर्ववन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, काल से अनन्त-उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल होता है, क्षेत्र से अनन्तलोक, देशोन (कुछ कम) अपार्ध पुद्गलपरावर्तन प्रमाण है।

इसी प्रकार देशवन्ध का अन्तर भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! आहारकशरीर के इन देशवन्धक,. सर्ववन्धक और अवन्धक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प आहारकशरीर के सर्ववन्धक जीव हैं,

२. (उनसे) देश-वन्धक संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) अवन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

१२४. तेयासरीरप्पयोगबंधस्स वित्थरओ परूवणं–

प. तेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे जाव–

५. पंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे।

प. एगिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पुढविक्काइय-एगिंदिय तेयासरीरप्पयोगबंधे जाव

५. वणप्फइकाइय-एगिंदिय तेयासरीरप्पयोगबंधे।

एवं एएणं अभिलावेणं भेदो जहा ओगाहणसंठाणे जाव–पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पाईय-वेमाणिय देव-पंचिंदियतेयासरीरप्पयोगबंधे य, अपज्जत्त-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय कप्पाईय वेमाणियदेव पंचिंदिय तेयासरीरप्पयोग बंधे य।

प. तेयगसरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च तेयासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं तेयासरीरप्पयोगबंधे।

१२४. तैजस् शरीरप्रयोग बन्ध का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! तैजसशरीर-प्रयोगवन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! वह पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. एकेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध यावत्–

५. पंचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगवन्ध।

प्र. भन्ते ! एकेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. गौतम ! पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय तैजस् शरीर प्रयोगवन्ध यावत्-

५. वनस्पतिक-एकेन्द्रिय तैजस् शरीरप्रयोग वन्ध।

इस प्रकार इसी अभिलाप द्वारा जैसे-(प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें) अवगाहना संस्थानपद में भेद कहे हैं वैसे ही यहाँ भी पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय–तैजसशरीर प्रयोगवन्ध और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिकदेव-पंचेन्द्रिय-तैजसशरीर-प्रयोगवन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! तैजसशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य के निमित्त से तथा तैजसशरीरप्रयोगनामकर्म के उदय से तैजसशरीर-प्रयोगवन्ध होता है।

प. तेयासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

उ. गोयमा ! देसवंधे, नो सव्ववंधे।

प. तेयासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए वा अपज्जवसिए,

२. अणाईए वा सपज्जवसिए।

प. तेयासरीरप्पयोगवंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

उ. गोयमा ! अणाईयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं,

अणाईयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं तेयासरीरस्स देसबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा तेयासरीरस्स अबंधगा,

२. देसबंधगा अणंतगुणा।

–विया. स. ८, उ. ९, सु. १०-१६

१२५. अट्ठविह कम्मासरीरप्पयोगवंधस्स वित्थरओ परूवणं–

प. कम्मासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. नाणावरणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगवंधे जाव–

८. अंतराइय-कम्मासरीरप्पयोगवंधे।

प. १. णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

उ. गोयमा ! नाणपडिणीययाए, णाणणिण्हवणयाए, णाणंतराएणं, णाणप्पदोसेणं, णाणच्चासायणाए, णाणविसंवादणाजोगेणं णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं णाणावरणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोग वंधे।

प. २. दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

उ. गोयमा ! दंसणपडिणीययाए, दंसणणिण्हवणयाए, दंसणंतराएणं, दंसणप्पदोसेणं, दंसणच्चासायणाए, दंसणविसंवादणाजोगेणं, दरिसणावरणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगवंधे।

प. ३. सायावेदणिज्जकम्मासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

प्र. भन्ते ! तैजस्शरीर-प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध होता है या सर्वबन्ध होता है ?

उ. गौतम ! देशबन्ध होता है, सर्वबन्ध नहीं होता है।

प्र. भन्ते ! तैजस्शरीरप्रयोगबन्ध काल से कितने काल तक होता है ?

उ. गौतम ! वह दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अनादि-अपर्यवसित

२. अनादि-सपर्यवसित।

प्र. भन्ते ! तैजस्शरीरप्रयोगवन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है ?

उ. गौतम ! अनादि-अपर्यवसित तैजस्शरीर-प्रयोगबन्ध का अन्तर नहीं है,

अनादि-सपर्यवसित तैजस्शरीर प्रयोगबन्ध का भी अन्तर नहीं है।

प्र. भन्ते ! इन तैजस्शरीर के देशबन्धक और अबन्धक जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ?

उ. गौतम ! १. तैजस्-शरीर के अबन्धक जीव सबसे अल्प है,

२. (उनसे) देशबन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

१२५. आठ प्रकार के कार्मण शरीरप्रयोग बन्ध का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

उ. गौतम ! वह आठ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ज्ञानावरणीय कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध यावत्–

८. अन्तराय कार्मणशरीर-प्रयोग बन्ध।

प्र. १. भन्ते ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

उ. गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता (विपरीतता) करने से, ज्ञान का निह्नव (अपलाप) करने से, ज्ञान में अन्तराय देने से, ज्ञान से प्रद्वेष करने से, ज्ञान की अत्यन्त आशातना करने से, ज्ञान के विसंवादन-योग (उपघात) से तथा ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से ज्ञानावरणीय-प्रयोगबन्ध होता है।

प्र. २. भन्ते ! दर्शनावरणीय कार्मण शरीर प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

उ. गौतम ! दर्शन की प्रत्यनीकता करने से, दर्शन का निह्नव करने से, दर्शन में अन्तराय देने से, दर्शन से प्रद्वेष करने से, दर्शन की अत्यन्त आशातना करने से, दर्शन-विसंवादन योग से तथा दर्शनावरणीय कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से दर्शनावरणीय कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध होता है।

प्र. ३. भन्ते ! सातावेदनीयकार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

उ. गोयमा ! पाणाणुकंपाए, भूयाणुकंपाए, जीवाणुकंपाए, सत्ताणुकंपाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणयाए, अपरियावणयाए सायावेयणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं सायावेयणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगबंधे।

प. अस्सायावेयणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोग बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरितावणयाए बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए जाव परियावणयाए अस्साया वेयणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं अस्साया वेयणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधे।

प. ४. मोहणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोग बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! तिव्वकोहयाए, तिव्वमाणयाए, तिव्वमायाए, तिव्वलोभाए, तिव्वदंसणमोहणिज्जयाए तिव्वचरित्त-मोहणिज्जयाए, मोहणिज्जकम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं मोहणिज्ज-कम्मासरीरप्पयोगबंधे।

प. ५. नेरइयाउय-कम्मासरीरप्पयोग बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! महारंभयाए, महापरिग्गहयाए, पंचिंदियवहेणं, कुणिमाहारेणं, नेरइयाउय कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मासरीरप्पयोगबंधे।

प. तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीरप्पयोग बंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! माइल्लयाए, नियडिल्लयाए, अलियवयणेणं-[illegible] तिरिक्खजोणियाउय कम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं तिरिक्खजोणियाउय कम्मासरीरप्पयोगबंधे।

प. [illegible]कम्मासरीरप्पयोगबंधे णं भंते ! कस्स [illegible]

उ. [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], मणुस्साउय [illegible] मणुस्साउय [illegible]

प. [illegible] भंते ! कस्स कम्मस्स [illegible]

उ. [illegible]

उ. गौतम ! प्राणियों पर अनुकम्पा करने से, भूतों पर अनु करने से, जीवों पर अनुकम्पा करने से, सत्वों पर अनु करने से, बहुत प्राणी यावत् सत्वों को दुःख न देने से, न कराने से, खेद-खिन्न न कराने से, पीड़ा न पहुँचाने पीटने से, परिताप उत्पन्न न कराने से सातावेदनीय-कार्मण शरीर प्रयोग नामकर्म के उदय सातावेदनीय कार्मण शरीर प्रयोगबन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! असातावेदनीय-कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध किस के उदय से होता है?

उ. गौतम ! दूसरे जीवों को दुःख पहुँचाने से, उन्हें शोक उ कराने से, चिन्तित करने से, पीड़ा देने से, पीटने से, परि उत्पन्न कराने से, बहुत से प्राणी यावत् सत्वों को दुःख से यावत् उन्हें परिताप उत्पन्न करने से असातावेदनीय-कार्मण शरीरप्रयोग बन्ध नामकर्म के उ से असातावेदनीय कार्मण शरीर प्रयोग बन्ध होता है।

प्र. ४. भन्ते ! मोहनीय-कार्मण-शरीर-प्रयोगबन्ध किस कर्म उदय से होता है?

उ. गौतम ! तीव्र क्रोध से, तीव्र मान से, तीव्र माया से, त लोभ से, तीव्र दर्शनमोहनीय से और तीव्र चारित्रमोहनीय तथा मोहनीय-कार्मणशरीरप्रयोग नामकर्म के उदय मोहनीय कार्मण-शरीर प्रयोग बन्ध होता है।

प्र. ५. भन्ते ! नैरयिकायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस क के उदय से होता है?

उ. गौतम ! महारम्भ करने से, महापरिग्रह से, पंचेन्द्रिय जी का वध करने से और माँसाहार करने से तथा नैरयिकायु कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से नैरयिकायुष्य कार्मणशरीर-प्रयोगबन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! माया करने से, निकृति (कपट) करने से, मिथ्य बोलने से, खोटा तौल और खोटा माप करने से तथ तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग नामकर्म के उदय से, तिर्यञ्चयोनिक-आयुष्य-कार्मण शरीर प्रयोगबन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! मनुष्यायुष्य कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की विनीतता (नम्रता) से, दयालुता से, अमत्सरभाव से तथा मनुष्यायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से मनुष्यायुष्य-कार्मण-शरीर प्रयोग बन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! देवायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! सराग-संयम से, संयमासंयम (देशविरति) से, बाल (अज्ञानपूर्वक) तपस्या करने से तथा अकामनिर्जरा से एवं देवायुष्य-कार्मणशरीरप्रयोग-नामकर्म के उदय से देवायुष्य कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध होता है।

प. ६. सुभनामकम्मासरीरप्पयोग वंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! कायउज्जुययाए, भावुज्जुययाए, भासुज्जुययाए, अविसंवादणजोगेणं सुभनामकम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं सुभनामकम्मासरीरप्पयोगवंधे।

प. असुभनामकम्मासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! कायअणुज्जुययाए, भावअणुज्जुययाए, भासअणुज्जुययाए, विसंवायणाजोगेणं असुभनामकम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं असुभनामकम्मासरीरप्पयोग वंधे।

प. ७. उच्चागोयकम्मासरीरप्पयोग वंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! जातिअमदेणं, कुलअमदेणं, वलअमदेणं, रूवअमदेणं, तवअमदेणं, सुयअमदेणं, लाभअमदेणं, इस्सरियअमदेणं, उच्चागोयकम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं उच्चागोयकम्मासरीरप्पयोगवंधे।

प. नीयागोयकम्मासरीरप्पयोग वंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! जातिमदेणं, कुलमदेणं, वलमदेणं, रूवमदेणं, तवमदेणं, सुयमदेणं, लाभमदेणं, इस्सरियमदेणं, नीयागोय- कम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं नीयागोयकम्मासरीरप्पयोगवंधे।

प. ८. अंतराइयकम्मासरीरप्पयोग वंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं?

उ. गोयमा ! दाणंतराएणं, लाभंतराएणं, भोगंतराएणं, उवभोगंतराएणं, वीरियंतराएणं, अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगवंधे।

प. णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! किं देसवंधे, सव्ववंधे?

उ. गोयमा ! देसवंधे, णो सव्ववंधे।

एवं जाव अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगवंधे।

प. णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगवंधे णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगवंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अणाईए सपज्जवसिए,

२. अणाईए अपज्जवसिए,

एवं जहा अंतराइयकम्मस्स।

प्र. ६. भन्ते ! शुभनाम-कार्मणशरीरप्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! काया की ऋजुता (सरलता) से, भावों की ऋजुता से, भाषा की ऋजुता से तथा अविसंवादनयोग से एवं शुभनाम-कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से शुभनाम-कार्मण शरीर-प्रयोग वन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! अशुभनाम-कार्मणशरीरप्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! काया की वक्रता से, भावों की वक्रता से, भाषा की वक्रता से तथा विसंवादन-योग से एवं अशुभनाम-कार्मणशरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से अशुभनाम-कार्मण-शरीर-प्रयोगवन्ध होता है।

प्र. ७. भन्ते ! उच्चगोत्र-कार्मण शरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! जातिमद न करने से, कुलमद न करने से, वलमद न करने से, रूपमद न करने से, तपोमद न करने से, श्रुतमद न करने से, लाभमद न करने से और ऐश्वर्यमद न करने से तथा उच्चगोत्र-कार्मण-शरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से उच्चगोत्रकार्मणशरीर प्रयोगवन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! नीचगोत्र-कार्मण-शरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! जाति मद करने से, कुलमद करने से, वलमद करने से, रूपमद करने से, तपोमद करने से, श्रुतमद करने से, लाभमद करने से और ऐश्वर्यमद करने से तथा नीचगोत्र कार्मण-शरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से नीचगोत्र कार्मणशरीर प्रयोग वन्ध होता है।

प. ८. भन्ते ! अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है?

उ. गौतम ! दानान्तराय से, लाभान्तराय से, भोगान्तराय से, उपभोगान्तराय से और वीर्यान्तराय से तथा अन्तराय-कार्मणशरीर-प्रयोगनामकर्म के उदय से अन्तराय-कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध होता है।

प्र. भन्ते ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध क्या देशवन्ध है या सर्ववन्ध है?

उ. गौतम ! वह देशवन्ध है, सर्ववन्ध नहीं है।

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त-कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगवन्ध काल से कितने काल तक रहता है?

उ. गौतम ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर-प्रयोगवन्ध दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अनादि-सपर्यवसित,

२. अनादि-अपर्यवसित,

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त के कार्मण शरीर प्रयोग वन्ध के स्थिति काल को जानना चाहिए।

प. णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पयोगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवचिरं होइ?

उ. गोयमा ! अणाईयस्स अप्पज्जवसियस्स नत्थि अंतरं, अणाईयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं।

एवं जाव अंतराइयकम्मासरीरप्पयोगबंधंतरं।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं नाणावरणिज्जस्स देसबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स अबंधगा,

२. देसबंधगा अणंतगुणा,

एवं आउयवज्जं जाव अंतराइयस्स।

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं आउय कम्मस्स देसबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा **जाव** विसेसाहिया वा?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स देसबंधगा,

२. अबंधगा संखेज्जगुणा।

—विया. स. ८, उ. ९, सु. ९७-१११

प्र. ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर प्रयोग वन्ध का अन्तर काल कितने काल का होता है?

उ. गौतम ! अनादि-अपर्यवसित का अन्तर नहीं है, अनादि-सपर्यवसित का भी अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार अन्तराय कर्म पर्यन्त कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध के अन्तर के लिए समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! ज्ञानावरणीय-कार्मणशरीर के इन देशवन्धक और अवन्धक जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है?

उ. गौतम ! १. ज्ञानावरणीय कर्म के अवन्धक सवसे अल्प हैं।

२. (उनसे) देशवन्धक जीव अनन्तगुणे हैं।

इसी प्रकार आयुष्य को छोड़कर अन्तराय-कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध पर्यन्त के देशवन्धक और अवन्धकों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! आयुष्यकार्मणशरीर के देशवन्धक और अवन्धक जीवों में कौन किससे अल्प **यावत्** विशेषाधिक हैं?

उ. गौतम ! १. आयुष्यकर्म के देशवन्धक जीव सवसे अल्प हैं,

२. (उनसे) अवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं।

१२६. पंच सरीराणं परोप्परं बंधगाबंधगस्स परूवणं—

प. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

उ. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।

प. जस्स णं भंते ! ओरालिय सरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते ! आहारगसरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

उ. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।

प. जस्स णं भंते ! ओरालिय सरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते! तेयासरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

उ. गोयमा ! बंधए, नो अबंधए।

प. जइ णं भंते ! तेयासरीरस्स बंधए किं देसबंधए, सव्वबंधए?

उ. गोयमा ! देसबंधए, नो सव्वबंधए।

प. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते ! कम्मासरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

उ. गोयमा ! जहेव तेयगस्स जाव **देसबंधए, नो सव्वबंधए।**

प. जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स देसबंधे से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए?

उ. गोयमा ! नो बंधए, अबंधए।

एवं जहेव सव्वबंधेणं भणियं तहेव देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स।

१२६. पाँच शरीरों के परस्पर बन्धक अबन्धक का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्ववन्ध है तो भन्ते ! क्या वह वैक्रिय शरीर का वन्धक है या अवन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक नहीं है, अवन्धक है।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के औदारिक का सर्ववन्ध है तो भन्ते ! क्या वह आहारकशरीर का वन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक नहीं है, अबन्धक है।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्ववन्ध है तो भन्ते ! क्या वह तैजस्शरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक है, अवन्धक नहीं है।

प्र. यदि वह तैजस्शरीर का वन्धक है तो भन्ते ! क्या वह देशवन्धक है या सर्ववन्धक है?

उ. गौतम ! वह देशवन्धक है, सर्ववन्धक नहीं है।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्ववन्ध है तो भन्ते ! क्या वह कार्मणशरीर का वन्धक है या अवन्धक है?

उ. गौतम ! जैसे तैजस्शरीर के विषय में कहा है, वैसे ही यहाँ **भी देशवन्धक है, सर्ववन्धक नहीं है पर्यन्त कहना चाहिए।**

प्र. भन्ते ! जिस जीव के औदारिक शरीर का देश वन्ध है तो भन्ते ! क्या वह वैक्रिय शरीर का वन्धक है या अवन्धक है?

उ. गौतम ! वह वन्धक नहीं है, अदन्धक है।

जिस प्रकार सर्ववन्ध के विषय में कथन किया उसी प्रकार देशवन्ध के विषय में भी कार्मणशरीर पर्यन्त कहना चाहिए।

प. जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स सव्ववंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! नो वंधए, अवंधए।

आहारगसरीरस्स एवं चेव।

तेयगस्स कम्मगस्स य जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं जाव देसवंधए, नो सव्ववंधए।

प. जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स देसवंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! नो वंधए, अवंधए।

एवं जहा सव्ववंधेणं भणियं तहेव देसवंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स।

प. जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स सव्ववंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! नो वंधए, अवंधए।

एवं वेउव्वियस्स वि।

तेया-कम्माणं जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं।

प. जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स देसवंधे से णं भंते! ओरालियसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! नो वंधए, अवंधए,

एवं जहा आहारगसरीरस्स सव्ववंधेणं भणियं तहा देसवंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स।

प. जस्स णं भंते ! तेयासरीरस्स देसवंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! वंधए वा, अवंधए वा।

प. जइ भंते ! ओरालियसरीरस्स वंधए किं देसवंधए, सव्ववंधए?

उ. गोयमा ! देसवंधए वा, सव्ववंधए वा।

प. जस्स णं भंते ! तेयासरीरस्स देसवंधे से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! एवं चेव।

एवं आहारगसरीरस्स वि।

प. जस्स णं भंते ! तेयासरीरस्स देसवंधे से णं भंते ! कम्मगसरीरस्स किं वंधए, अवंधए?

उ. गोयमा ! वंधए, नो अवंधए।

प. जइ भंते ! कम्मगसरीरस्स वंधए किं देसवंधए, सव्ववंधए?

उ. गोयमा ! देसवंधए, नो सव्ववंधए।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का सर्वबन्ध है तो भन्ते! क्या वह औदारिक शरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक नहीं है अबन्धक है।

इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय में भी कहना चाहिए।

तैजस् और कार्मण शरीर के विषय में जैसे औदारिक शरीर के साथ कथन किया है, वैसा ही देशबन्धक है, सर्वबन्धक नहीं है पर्यन्त यहाँ भी कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के वैक्रियशरीर का देशबन्ध है तो भन्ते! क्या वह औदारिकशरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक नहीं है, अबन्धक है।

इसी प्रकार जैसे वैक्रियशरीर के सर्वबन्ध के विषय में कहा गया वैसे ही यहाँ भी देशबन्ध के विषय में भी कार्मणशरीर पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के आहारकशरीर का सर्वबन्ध है तो भन्ते! क्या वह औदारिक शरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक नहीं है, अबन्धक है।

इसी प्रकार वैक्रियशरीर के लिए भी कहना चाहिए।

तैजस् और कार्मणशरीर के विषय में जैसे औदारिकशरीर के साथ कथन किया वैसे ही इनके लिए भी यहाँ कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के आहारकशरीर का देशबन्ध है तो भन्ते! क्या वह औदारिक शरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक नहीं है, अबन्धक है।

जिस प्रकार आहारकशरीर के सर्वबन्ध के विषय में कहा, उसी प्रकार देशबन्ध के विषय में भी कार्मण शरीर पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के तैजस्शरीर का देशबन्ध है तो भन्ते ! क्या वह औदारिक शरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक भी है और अबन्धक भी है।

प्र. यदि वह औदारिकशरीर का बन्धक है तो भन्ते ! क्या वह देशबन्धक है या सर्वबन्धक है?

उ. गौतम ! वह देशबन्धक भी है और सर्वबन्धक भी है।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के तैजस्शरीर का देश बन्ध है तो भन्ते! क्या वह वैक्रिय शरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसी प्रकार आहारकशरीर के विषय में भी जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! जिस जीव के तैजस् शरीर का देशबन्ध है तो भन्ते! क्या वह कार्मणशरीर का बन्धक है या अबन्धक है?

उ. गौतम ! वह बन्धक है, अबन्धक नहीं है।

प्र. यदि वह कार्मणशरीर का बन्धक है तो भन्ते ! क्या वह देशबन्धक है या सर्वबन्धक है?

उ. गौतम ! वह देशबन्धक है, सर्वबन्धक नहीं है।

प. जस्स णं भंते ! कम्मगसरीरस्स देसबंधए से णं भंते! ओरालियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

उ. गोयमा ! **जहा तेयगस्स वत्तव्वया भणिया तहा कम्मगस्स वि भाणियव्वा जाव तेयासरीरस्स जाव देसबंधए, नो सव्वबंधए।**

-विया. स. ८, उ. ९, सु. १२०-१२८

प्र. भन्ते ! जिस जीव के कार्मणशरीर का देशवन्ध है तो भन्ते! क्या वह औदारिक-शरीर का वन्धक है या अवन्धक है ?

उ. गौतम ! जिस प्रकार तैजस् शरीर का कथन किया है, उसी प्रकार कार्मणशरीर का भी तैजस् शरीर पर्यन्त देशवन्धक है, सर्ववन्धक नहीं है कहना चाहिए।

१२७. पंच सरीराणं बंधगाबंधगाणं अप्पाबहुयं-

प. एएसि णं भंते ! जीवाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मासरीरगाणं देसबंधगाणं सव्वबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा,

२. तस्स चेव देसबंधगा संखेज्जगुणा,

३. वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधगा असंखेज्जगुणा,

४. तस्स चेव देसबंधगा असंखेज्जगुणा,

५. तेया-कम्माणं दुण्ह वि तुल्ला अबंधगा अणंतगुणा,

६. ओरालियसरीरस्स सव्वबंधगा अणंतगुणा,

७. तस्स चेव अबंधगा विसेसाहिया,

८. तस्स चेव देसबंधगा असंखेज्जगुणा,

९. तेया-कम्मगाणं देसबंधगा विसेसाहिया,

१०. वेउव्वियसरीरस्स अबंधगा विसेसाहिया,

११. आहारगसरीरस्स अबंधगा विसेसाहिया।

-विया. स. ८, उ. ९, सु. १२९

१२७. पाँच शरीरों के वन्धक अवन्धकों का अल्पवहुत्व-

प्र. भन्ते ! इन औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण शरीरों के देशवन्धक, सर्ववन्धक और अवन्धक जीवों में कौन किनसे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सवसे अल्प आहारकशरीर के सर्ववन्धक जीव हैं,

२. (उनसे) उसी (आहारकशरीर) के देशवन्धक जीव संख्यातगुणे हैं,

३. (उनसे) वैक्रिय शरीर के सर्ववन्धक असंख्यातगुणे हैं,

४. (उनसे) उसी (वैक्रियशरीर) के देशवन्धक जीव असंख्यातगुणे हैं,

५. (उनसे) तैजस् और कार्मण, इन दोनों शरीरों के अवन्धक जीव अनन्तगुणे हैं और ये दोनों परस्पर तुल्य हैं,

६. (उनसे) औदारिकशरीर के सर्ववन्धक जीव अनन्तगुणे हैं,

७. (उनसे) उसी (औदारिकशरीर) के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं,

८. (उनसे) उसी (औदारिकशरीर) के देशवन्धक असंख्यातगुणे हैं,

९. (उनसे) तैजस् और कार्मणशरीर के देशवन्धक जीव विशेषाधिक हैं,

१०. (उनसे) वैक्रियशरीर के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं,

११. (उनसे) आहारकशरीर के अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

१२८. घाणसहगयपोग्गलाणं घाणवहण परूवणं-

प. अह भंते ! कोट्ठपुडाण वा जाव केयईपुडाण वा अणुवायंसि उब्भिज्जमाणाणं वा जाव ठाणाओ वा ठाणं संकामिज्जमाणाणं किं कोट्ठेवाइ जाव केयईवाइ ?

उ. गोयमा ! नो कोट्ठेवाइ जाव नो केयईवाइ, घाणसहगया पोग्गला वहंति। *-विया. स. ६, उ. ६, सु. ३६*

१२८. घ्राणेन्द्रिय से संलग्न पुद्गलों के घ्राणग्राह्यत्व का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! कोई व्यक्ति यदि खुले हुए कोष्ठपुटों (सुगन्धित द्रव्य के पुड़े) यावत् केतकी (पुष्प) पुटों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए तव क्या कोष्ठपुट यावत् केतकी पुट वहते हैं या गन्ध वहता है ?

उ. गौतम ! कोष्ट पुट यावत् केतकी पुट नहीं वहता, गंध के जो पुद्गल हैं वे वहते हैं।

१२९. चउवीसदंडएसु आहारियाइ पोग्गलाणं परिणयाइ परूवणं-

प. नेरइयाणं भंते ! १. पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया ?

२. आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया ?

१२९. चौबीसदण्डकों में आहारिक पुद्गलों के परिणतादि का प्ररूपण-

प्र. भन्ते ! १. नैरियकों द्वारा पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए ?

२. आहार किये हुए तथा आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत हुए ?

३. अणाहारिया आहारिज्जस्समाणा पोग्गला परिणया?

४. अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा पोग्गला परिणया?

उ. गोयमा ! नेरइयाणं १. पुव्वाहारिया पोग्गला परिणया,

२. आहारिया आहारिज्जमाणा पोग्गला परिणया परिणमंति य,

३. अणाहारिया आहारिज्जस्समाणा पोग्गला नो परिणया परिणमिस्संति,

४. अणाहारिया अणाहारिज्जस्समाणा पोग्गला नो परिणया नो परिणमिस्संति।

जहा परिणया तहा चिया, उवचिया, उदीरिया, वेइया, निज्जिण्णा।

गाहा–परिणय-चिया-उवचिया-उदीरिया-वेइया य निज्जिण्णा।

एक्केक्कम्मि पदम्मी चउव्विहा पोग्गला होंति॥

प. नेरइया णं भंते ! कइविहा पोग्गला भिज्जंति?

उ. गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणं अहिकिच्च दुविहा पोग्गला भिज्जंति, तं जहा–

१. अणु चेव, २. बायरा चेव।

प. नेरइया णं भंते ! कइविहा पोग्गला चिज्जंति?

उ. गोयमा ! आहारदव्ववग्गणं अहिकिच्च दुविहा पोग्गला चिज्जंति, तं जहा–

१. अणु चेव, २. बायरा चेव।

एवं उवचिज्जंति।

प. नेरइया णं भंते ! कइविहे पोग्गले उदीरेंति?

उ. गोयमा ! कम्मदव्ववग्गणं अहिकिच्च दुविहे पोग्गले उदीरेंति, तं जहा–

१. अणु चेव, २. बायरे चेव।

एवं वेदेंति, निज्जरेंति।

ओयट्टिंसु, ओयट्टेंति, ओयट्टिस्संति।

संकामिंसु, संकामेंति, संकामिस्संति।

निहत्तिंसु, निहत्तेंति, निहत्तिस्संति।

निकायंसु, निकायंति, निकाइस्संति।

सव्वेसु वि कम्मदव्ववग्गणमहिकिच्च।

३. अथवा जो पुद्गल अनाहारित हैं, जो पुद्गल आहार के रूप में ग्रहण किये जाएँगे वे परिणत हुए?

४. जो पुद्गल अनाहारित हैं और भविष्य में भी अनाहारित होंगे वे परिणत हुए?

उ. गौतम ! १. नारकों द्वारा पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए,

२. आहार किये हुए और आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत हुए और परिणत होते हैं,

३. अनाहारित पुद्गल परिणत नहीं हुए तथा भविष्य में जो पुद्गल आहार रूप में ग्रहण किये जाएँगे वे परिणत होंगे।

४. जिन पुद्गलों का आहार नहीं किया गया और आहार नहीं किया जाएगा वे परिणत भी नहीं हुए और परिणत भी नहीं होंगे।

जिस प्रकार परिणत के लिए कहा उसी प्रकार चय, उपचय, उदीरणा, वेदन तथा निर्जरा को प्राप्त हुए के लिए भी कहना चाहिए।

गाथार्थ–परिणत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण इन प्रत्येक पद में चार-चार प्रकार के पुद्गल सम्बन्धी प्रश्नोत्तर जानने चाहिए।

प्र. भन्ते ! नारक जीवों द्वारा कितने प्रकार के पुद्गल भेदे जाते हैं?

उ. गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा दो प्रकार के पुद्गल भेदे जाते हैं, यथा–

१. अणु (सूक्ष्म) २. बादर (स्थूल)।

प्र. भन्ते ! नारक जीवों द्वारा कितने प्रकार के पुद्गल चय किये जाते हैं?

उ. गौतम ! आहार द्रव्यवर्गणा की अपेक्षा वे दो प्रकार के पुद्गलों का चय करते हैं, यथा–

१. अणु और २. बादर।

इसी प्रकार उपचय भी समझना चाहिए।

प्र. भन्ते ! नारक जीव कितने प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा करते हैं?

उ. गौतम ! कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा दो प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा करते हैं, यथा–

१. अणु और २. बादर।

इसी प्रकार वेदते हैं, निर्जरा करते हैं।

अपवर्तन को प्राप्त हुए, अपवर्तन को प्राप्त हो रहे हैं और अपवर्तन को प्राप्त करेंगे।

संक्रमण किया, संक्रमण करते हैं और संक्रमण करेंगे।

निधत्त हुए, निधत्त होते हैं और निधत्त होंगे।

निकाचित हुए, निकाचित होते हैं और निकाचित होंगे।

इन सब पदों में भी कर्मद्रव्यवर्गणा की अपेक्षा (अणु और बादर) पुद्गलों का कथन करना चाहिए।

गाहा—भेदिया चिया उवचिया उदीरिया वेदिया य निज्जिण्णा।
ओयट्टण-संकामण-निहत्तण-निकायणे तिविहे कालो॥

गाथार्थ—भेदे गए, चय को प्राप्त हुए, उपचय को प्राप्त हुए, उदीर्ण हुए, वेदे गए और निर्जीर्ण हुए (इसी प्रकार) अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन (इन पिछले चार) पदों में तीनों प्रकार का काल कहना चाहिए।

प. नेरइया णं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गेण्हंति ते किं तीयकालसमए गेण्हंति, पडुप्पन्नकालसमए गेण्हंति, अणागय कालसमए गेण्हंति ?

उ. गोयमा ! नो तीयकालसमए गेण्हंति, पडुप्पन्न-कालसमए गेण्हंति, नो अणागयकालसमए गेण्हंति।

प. नेरइयाणं भंते ! जे पोग्गले तेयाकम्मत्ताए गहिए उदीरेंति, ते किं तीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति, पडुप्पन्नकालसमयघेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति, गहणसमयपुरेक्खडे पोग्गले उदीरेंति ?

उ. गोयमा ! तीयकालसमयगहिए पोग्गले उदीरेंति, नो पडुप्पन्नकालसमयघेप्पमाणे पोग्गले उदीरेंति, नो गहणसमयपुरेक्खडे पोग्गले उदीरेंति।

एवं वेदेंति, निज्जरेंति।

एवं जाव वेमाणिया। *—विया. स. १, उ. १, सु. ६*

प्र. भन्ते ! नारक जीव जिन पुद्‌गलों को तैजस् और कार्मणरूप में ग्रहण करते हैं उन्हें क्या अतीत काल में ग्रहण करते थे, वर्तमान काल में ग्रहण करते हैं या भविष्य काल में ग्रहण करेंगे ?

उ. गौतम ! अतीत काल में ग्रहण नहीं करते थे, वर्तमान काल में ग्रहण करते हैं, भविष्य काल में ग्रहण नहीं करेंगे।

प्र. भन्ते ! नारक जीव तैजस् और कार्मणरूप में ग्रहण किये हुए जिन पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं, तो क्या अतीत काल में गृहीत पुद्‌गलों की उदीरणा करते थे, वर्तमान काल में ग्रहण किये जाते हुए पुद्‌गलों की उदीरणा करते हैं या भविष्य काल में ग्रहण किये जाते हुए पुद्‌गलों की उदीरणा करेंगे ?

उ. गौतम ! वे अतीत काल में गृहीत पुद्‌गलों की उदीरणा करते थे, किन्तु वर्तमान काल में ग्रहण किये जाते हुए पुद्‌गलों की और भविष्य में ग्रहण किये जाने वाले पुद्‌गलों की उदीरणा नहीं करेंगे।

इसी प्रकार अतीत काल में गृहीत पुद्‌गलों को वेदते हैं और उनकी निर्जरा भी करते हैं।

इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त जानना चाहिए।

१३०. निरयपुढवीसु सव्व पोग्गलाणं पविट्ठपुव्वाइ परूवणं—

प. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा, सव्वपोग्गला पविट्ठा ?

उ. गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गला पविट्ठपुव्वा, नो चेव णं सव्वपोग्गला पविट्ठा।

एवं जाव अहेसत्तमाए पुढवीए।

प. इमा णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा, सव्वपोग्गला विजढा ?

उ. गोयमा ! इमा णं रयणप्पभापुढवी सव्वपोग्गलेहिं विजढपुव्वा, नो चेव णं सव्वपोग्गलेहिं विजढा।

एवं जाव अहेसत्तमा। *—जीवा. पडि. ३, सु. ७७*

१३०. नरक पृथ्वियों में स्थित सर्वपुद्‌गलों में पूर्व प्रवेश आदि का प्ररूपण—

प्र. भन्ते ! क्या इस रत्नप्रभापृथ्वी में कालक्रम से सब पुद्‌गल पहले प्रविष्ट हुए हैं या एक साथ सब पुद्‌गल प्रविष्ट हुए हैं ?

उ. गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी में कालक्रम से सब पुद्‌गल पहले प्रविष्ट हुए हैं परन्तु एक साथ सब पुद्‌गल प्रविष्ट नहीं हुए हैं।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! क्या यह रत्नप्रभापृथ्वी कालक्रम से सब पुद्‌गलों के द्वारा पूर्व में परित्यक्त हैं या सब पुद्‌गलों ने एक साथ परित्यक्त किया है ?

उ. गौतम ! यह रत्नप्रभापृथ्वी कालक्रम से सब पुद्‌गलों द्वारा पूर्व में परित्यक्त हैं परन्तु सब पुद्‌गलों ने एक साथ परित्यक्त नहीं किया है।

इसी प्रकार अधःसप्तम पृथ्वी पर्यन्त जानना चाहिए।

प्रकीर्णक : आमुख

प्रकीर्णक (पइण्णयं) शब्द का प्रयोग चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान आदि आगमतुल्य ग्रन्थों के लिये भी किया जाता है, किन्तु यहाँ पर प्रकीर्णक शब्द का प्रयोग आगम की उस सामग्री के लिए किया गया है जिसका विभाजन द्रव्यानुयोग के अन्य अध्ययनों में नहीं किया जा सका है। इस प्रकीर्णक अध्ययन में वह विविध सामग्री संकलित है जिसका अन्यत्र वर्गीकरण नहीं किया जा सका है।

इस अध्ययन में मुख्यतः स्थानांग सूत्र में वर्णित विविध भेदों का संकलन है। अनुयोग, व्याख्याप्रज्ञप्ति एवं प्रज्ञापना सूत्रों से भी कुछ सामग्री संग्रहीत है। अठारह प्रकार के पाप एवं उनसे विरमण, आशीविष के प्रकार और उनके प्रभावक्षेत्र, ऋद्धि के तीन प्रकारों, विकथा के भेदोपभेदों, तुल्य के छह प्रकारों, छह प्रकार की दिशाओं, सप्तविध भयों, आयुर्वेद के आठ अंगों, रोगोत्पत्ति के नौ कारणों, नवविध पुण्यों, नौ तत्त्वों, दान के दस भेदों, दुःषम एवं सुषम काल के लक्षणों, दशविध अनन्तकों, दस प्रकार के शस्त्रों, दस प्रकार के बलों, एजना के चार प्रकारों, चलना के भेदों आदि का वर्णन इस अध्ययन का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

आशीविष के दो प्रकार कहे गए हैं—१. जाति आशीविष और २. कर्म आशीविष। जाति आशीविष के अन्तर्गत बिच्छू, मेंढक, सर्प एवं मनुष्य आशीविष को लिया गया तथा कर्म आशीविष के अन्तर्गत पर्याप्त संख्यातवर्षायुष्क गर्भज तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य एवं देवों को लिया गया। नरक में इस आशीविष का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय में भी यह आशीविष नहीं है। इसका तात्पर्य है कि जो जीव अधिक विकसित हैं उनमें ही यह आशीविष रहता है।

ऋद्धि के तीन प्रकारों में देवों की ऋद्धि, राजाओं की ऋद्धि एवं आचार्यों की ऋद्धि का उल्लेख है। ये सभी ऋद्धियाँ भी सचित्त, अचित्त एवं मिश्र के भेद से तीन-तीन प्रकार की होती हैं। इनके अन्य विशिष्ट भेद भी होते हैं। देवों की ऋद्धि विमान, वैक्रिय रूप एवं परिचारण के रूप में, राजाओं की ऋद्धि अतियान, निर्याण एवं सेना-वाहन-कोष आदि के रूप में तथा आचार्य की ऋद्धि ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र के रूप में भी प्रतिपादित की गई है।

जैन दर्शन में प्रायः धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की चर्चा तो मिलती है, किन्तु इन्हें पुरुषार्थ चतुष्टय नहीं कहा गया है। यहाँ विनिश्चय (जानने योग्य का अर्थ) के तीन भेद बताए गए हैं—१. अर्थ, २. धर्म और ३. काम। शूरों के चार प्रकार होते हैं—१. क्षमाशूर, २. तपःशूर, ३. दानशूर और ४. युद्धशूर। चार कारणों से विद्यमान गुणों का नाश होना माना गया है। वे चार कारण हैं—१. क्रोध, २. ईर्ष्या, ३. अकृतज्ञता एवं ४. दुराग्रह। व्याधि के वात, पित्त, कफ एवं इनके सन्निपात (मिश्रण) से चार भेद होते हैं।

सत्य के चार प्रकार होते हैं—१. नाम, २. स्थापना, ३. द्रव्य और ४. भाव। विकथा के चार प्रकार प्रसिद्ध हैं—१. स्त्रीकथा, २. भक्तकथा, ३. देशकथा और ४. राजकथा। इनके चार-चार उपभेदों का कथन प्रस्तुत अध्ययन में हुआ है। दण्ड के पाँच प्रकार होते हैं—१. अर्थ दण्ड, २. अनर्थ दण्ड, ३. हिंसा दण्ड, ४. अकस्मात् दण्ड एवं ५. दृष्टिविपर्यास दण्ड।

निधि का अर्थ मात्र धन ही नहीं होता। निधि के पाँच प्रकार हैं—१. पुत्र निधि, २. मित्र निधि, ३. शिल्प निधि, ४. धन निधि एवं ५. धान्य निधि। सुप्त मनुष्य पाँच कारणों से जाग्रत होता है—१. शब्द से, २. स्पर्श से, ३. भूख से, ४. निद्राक्षय से एवं ५. स्वप्न-दर्शन से। तुल्य का इस अध्ययन में विस्तार से निरूपण हुआ है। तुल्य छह प्रकार का कहा गया है—१. द्रव्य तुल्य, २. क्षेत्र तुल्य, ३. काल तुल्य, ४. भव तुल्य, ५. भाव तुल्य एवं ६. संस्थान तुल्य। यह तुल्यता आपेक्षिक होती है। यथा एक परमाणु पुद्गल दूसरे परमाणु पुद्गल से द्रव्यतः तुल्य होता है। एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल दूसरे एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल के साथ क्षेत्रतः तुल्य है।

वचन के सात विकल्प कहे गए हैं—१. आलाप, २. अनालाप, ३. उल्लाप, ४. अनुल्लाप, ५. संलाप, ६. प्रलाप एवं ७. विप्रलाप। भय के सात स्थान कहे गए हैं—१. इहलोक, २. परलोक, ३. आदान भय, ४. अकस्मात् भय, ५. आजीव भय, ६. मरण भय और ७. अश्लोक भय।

दान के दस प्रकारों का उल्लेख हुआ है—१. अनुकम्पा दान, २. संग्रह दान, ३. भय दान, ४. कारुण्य दान, ५. लज्जा दान, ६. गौरव दान, ७. अधर्म दान, ८. धर्म दान, ९. करिष्यति दान (भविष्य में वह देगा, इसलिए देना) एवं १०. कृतमिति दान (उसने पहले दिया इसलिए देना)।

कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर भी इस अध्ययन में विचार हुआ है। प्रश्न हुआ, जीव किससे भयभीत होते हैं? भगवान ने उत्तर दिया—जीव दुःख से भयभीत होते हैं। वह दुःख भी जीवों के प्रमाद से उत्पन्न होता है। एक प्रश्न उठाया गया कि देवलोक में उत्पन्न होने वाला छद्मस्थ मनुष्य अन्त समय में क्षीण भोगी होने पर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुष पराक्रम से विपुल भोगोपभोगों को भोगने में समर्थ है या नहीं? समाधान किया गया कि वह भोगने में समर्थ है। इसी प्रकार के अन्य प्रश्न भी इसमें हैं।

द्रव्यानुयोग का यह अन्तिम अध्ययन होने से इसमें उपसंहार करते हुए कहा गया—

इय जीवमजीवे य सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वनयाणमणुमए, रमेज्ज संजमे मुणी॥

पइण्णग

प्रकीर्णक

सूत्र

१. अव्वोच्छित्तिनय दिट्ठया अत्थिकायादीणं एगत्त परूवणं–

एगे धम्मे,
एगे अधम्मे,
एगे मोक्खे,
एगे पुण्णे, एगे पावे,
एगे आसवे, एगे संवरे। –ठाणं. अ. १, सु. ६-९

२. वियच्चादीणं एगत्त परूवणं–

एगा वियच्चा –ठाणं. अ. १, सु. १६
एगा तक्का –ठाणं. अ. १, सु. १९
एगा मण्णा –ठाणं. अ. १, सु. २१
एगा विण्णू, –ठाणं. अ. १, सु. २२
एगे छेयणे
एगे भेयणे –ठाणं. अ. १, सु. २४-२५
एगे संसुद्धे अहाभूए पत्ते,
एगे दुक्खे जीवाणं एगभूए,
एगा अहम्मपडिमा, जं से आया परिकिलेसइ।
एगा धम्मपडिमा जं से आया पज्जवजाए।
–ठाणं. अ. १, सु. २७-३०
एगे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसकार परक्कमे,
देवासुर-मणुयाणं तंसि-तंसि समयंसि। –ठाणं. अ. १, सु. ३४
एगे णाणे, एगे दंसणे, एगे चरित्ते, –ठाणं. अ. १, सु. ३५
एगे समए, एगे पएसे, –ठाणं. अ. १, सु. ३६
एगे दंडे, एगे अदंडे, –सम. सम. १, सु. ६-७
एगा सिद्धी, एगे सिद्धे,
एगे परिणिव्वाणे, एगे परिणिव्वुए। –ठाणं. अ. १, सु. ३७

३. अव्वोच्छित्ति नयदिट्ठया पावट्ठाण णामाणि–

१. एगे पाणाइवाए, २. एगे मुसावाए,
३. एगे अदिण्णादाणे, ४. एगे मेहुणे,
५. एगे परिग्गहे, ६. एगे कोहे,
७. एगे माणे, ८. एगे माया,
९. एगे लोभे,[1] १०. एगे पेज्जे,
११. एगे दोसे, १२. एगे कलहे,
१३. एगे अब्भक्खाणे, १४. एगे पेसुण्णे,
१५. एगे परपरिवाए, १६. एगा अरइरई,
१७. एगे मायामोसे, १८. एगे मिच्छादंसणसल्ले।
–ठाणं. अ. १, सु. ३९(१)

सूत्र

१. द्रव्यार्थिक नय दृष्टि से अस्तिकाय आदि के एकत्व का प्ररूपण–

धर्म (धर्मास्तिकाय) एक है,
अधर्म (अधर्मास्तिकाय) एक है,
मोक्ष एक है,
पुण्य एक है, पाप एक हैं,
आश्रव एक है, संवर एक हैं।

२. चित्तवृत्यादि के एकत्व का प्ररूपण–

विशिष्ट चित्तवृत्ति एक है,
तर्क एक है,
मनन एक है,
विद्वत्ता एक है,
छेदन एक है,
भेदन एक है।
जो संशुद्ध यथाभूत और पात्र है, वह एक है।
प्रत्येक जीव का दुःख एक है और एकभूत है।
अधर्मप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा परिक्लेश को प्राप्त होता है।
धर्मप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा पर्यवजात को प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान आदि की विशेष शुद्धि को प्राप्त होता है।
देव-असुर और मनुष्यों के एक समय में एक ही उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार अथवा पराक्रम होता है।
ज्ञान एक है, दर्शन एक है, चारित्र एक है,
समय एक है, प्रदेश एक है,
दण्ड एक है, अदण्ड एक है,
सिद्धि एक है, सिद्ध एक है,
परिनिर्वाण एक है, परिनिर्वृत्त एक है।

३. द्रव्यार्थिक नय दृष्टि से अठारह पापस्थानों के नाम–

१. प्राणातिपात एक है, २. मृषावाद एक है,
३. अदत्तादान एक है, ४. मैथुन एक है,
५. परिग्रह एक है, ६. क्रोध एक है,
७. मान एक है, ८. माया एक है,
९. लोभ एक है, १०. प्रेय (प्रेम राग) एक है,
११. द्वेष एक है, १२. कलह एक है,
१३. अभ्याख्यान एक है, १४. पैशुन्य एक है,
१५. परपरिवाद एक है, १६. अरति-रति एक है,
१७. मायामृषा एक है, १८. मिथ्यादर्शनशल्य एक है।

अव्वोच्छित्ति नयदिट्ठया पावट्ठाण विरमण णामाणि–

१. एगे पाणाइवाय–वेरमणे,
२. एगे मुसावाय–वेरमणे,
३. एगे अदिण्णादाण–वेरमणे,
४. एगे मेहुण–वेरमणे,
५. एगे परिग्गह–वेरमणे,
६. एगे कोह–विवेगे,
७. एगे माण–विवेगे,
८. एगे माया–विवेगे,
९. एगे लोभ–विवेगे,
१०. एगे पेज्ज–विवेगे,
११. एगे दोस–विवेगे,
१२. एगे कलह–विवेगे,
१३. एगे अब्भक्खाण–विवेगे,
१४. एगे पेसुण्ण-विवेगे,
१५. एगे परपरिवाय–विवेगे,
१६. एगे अरइरई-विवेगे,
१७. एगे मायामोस–विवेगे,
१८. एगे मिच्छादंसणसल्ल–विवेगे। *–ठाणं. अ. १, सु. ३९(२)*

४. द्रव्यार्थिक नय दृष्टि से अठारह पापस्थान विरमण के नाम–

१. प्राणातिपात–विरमण एक है,
२. मृषावाद–विरमण एक है,
३. अदत्तादान–विरमण एक है,
४. मैथुन–विरमण एक है,
५. परिग्रह–विरमण एक है,
६. क्रोध–विवेक एक है,
७. मान–विवेक एक है,
८. माया–विवेक एक है,
९. लोभ–विवेक एक है,
१०. प्रेय (प्रेम-राग) विवेक एक है,
११. द्वेष–विवेक एक है,
१२. कलह–विवेक एक है,
१३. अभ्याख्यान–विवेक एक है,
१४. पैशुन्य-विवेक एक है,
१५. परपरिवाद–विवेक एक है,
१६. अरति-रति–विवेक एक है,
१७. मायामृषा–विवेक एक है,
१८. मिथ्यादर्शनशल्य–विवेक एक है।

. गुणप्पमाणस्स दुविहत्तं–

प. से किं तं गुणप्पमाणे?

उ. गुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवगुणप्पमाणे, २. अजीवगुणप्पमाणे य।

अणु. सु. ४२८

५. गुणप्रमाण के दो प्रकार–

प्र. गुणप्रमाण क्या है?

उ. गुणप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जीवगुणप्रमाण, २. अजीवगुणप्रमाण।

. भाव संखा सरूव परूवणं–

प. से किं तं भावसंखा?

उ. जे इमे जीवा संखगइनामगोत्ताइं कम्माइं वेदेंति।

से तं भावसंखा। *अणु., सु. ५२०*

६. भाव शंख के स्वरूप का प्ररूपण–

प्र. भाव शंख का क्या स्वरूप है?

उ. इस लोक में जो जीव शंखगतिनाम-गोत्र कर्मादिकों का वेदन कर रहे हैं वे भाव शंख है।

यह भाव शंख है।

. चउवीसदंडएसु ओहेण दंडसंखा परूवणं–

दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठादंडे य, २. अणट्ठादंडे य।

दं. १. णेरइयाणं दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठादंडे य, २. अणट्ठादंडे य।

दं. २-२४ एवं चउवीसदंडओ जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ६८

७. चौबीसदंडकों में सामान्य से दंड संख्या का प्ररूपण–

दण्ड दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अर्थदण्ड, २. अनर्थदण्ड।

दं. १. नैरयिकों में दो प्रकार के दण्ड कहे गए हैं, यथा–

१. अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त चौबीस दण्डकों (जीव भेदों) में दो दो दण्ड जानने चाहिए।

. आसीविसभेयाणं वित्थरओ परूवणं–

प. [illegible] भंते ! आसीविसा पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! दुविहा आसीविसा पण्णत्ता, तं जहा–

१. जाति-आसीविसा य, २. कम्म-आसीविसा य।

[illegible] जाति-आसीविसे पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible] जाति-आसीविसे [illegible]

८. आशीविष भेदों का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भंते ! आशीविष कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम ! आशीविष दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. जाति-आशीविष, २. कर्म-आशीविष।

चार प्रकार के जाति-आशीविष (दाढ़ों में विष वाले) कहे गए हैं, यथा–

१. जाति-आशीविष वृश्चिक (बिच्छू),

पइण्णग

प्रकीर्णक

सूत्र

१. अव्वोच्छित्तिनय दिट्ठया अत्थिकायादीणं एगत्त परूवणं-

एगे धम्मे,
एगे अधम्मे,
एगे मोक्खे,
एगे पुण्णे, एगे पावे,
एगे आसवे, एगे संवरे। -ठाणं. अ. १, सु. ६-९

२. वियच्चादीणं एगत्त परूवणं-

एगा वियच्चा -ठाणं. अ. १, सु. १६
एगा तक्का -ठाणं. अ. १, सु. १९
एगा मण्णा -ठाणं. अ. १, सु. २१
एगा विण्णू, -ठाणं. अ. १, सु. २२
एगे छेयणे
एगे भेयणे -ठाणं. अ. १, सु. २४-२५
एगे संसुद्धे अहाभूए पत्ते,
एगे दुक्खे जीवाणं एगभूए,
एगा अहम्मपडिमा, जं से आया परिकिलेसइ।
एगा धम्मपडिमा जं से आया पज्जवजाए। -ठाणं. अ. १, सु. २७-३०
एगे उट्ठाण-कम्म-बल-वीरिय-पुरिसकार परक्कमे,
देवासुर-मणुयाणं तंसि-तंसि समयंसि। -ठाणं. अ. १, सु. ३४
एगे णाणे, एगे दंसणे, एगे चरित्ते, -ठाणं. अ. १, सु. ३५
एगे समए, एगे पएसे, -ठाणं. अ. १, सु. ३६
एगे दंडे, एगे अदंडे, -सम. सम. १, सु. ६-७
एगा सिद्धी, एगे सिद्धे,
एगे परिणिव्वाणे, एगे परिणिव्वुए। -ठाणं. अ. १, सु. ३७

३. अव्वोच्छित्ति नयदिट्ठया पावट्ठाण णामाणि-

१. एगे पाणाइवाए, २. एगे मुसावाए,
३. एगे अदिण्णादाणे, ४. एगे मेहुणे,
५. एगे परिग्गहे, ६. एगे कोहे,
७. एगे माणे, ८. एगे माया,
९. एगे लोभे,[1] १०. एगे पेज्जे,
११. एगे दोसे, १२. एगे कलहे,
१३. एगे अब्भक्खाणे, १४. एगे पेसुण्णे,
१५. एगे परपरिवाए, १६. एगा अरइरई,
१७. एगे मायामोसे, १८. एगे मिच्छादंसणसल्ले।
-ठाणं. अ. १, सु. ३९(१)

सूत्र

१. द्रव्यार्थिक नय दृष्टि से अस्तिकाय आदि के एकत्व का प्ररूपण-

धर्म (धर्मास्तिकाय) एक है,
अधर्म (अधर्मास्तिकाय) एक है,
मोक्ष एक है,
पुण्य एक है, पाप एक है,
आश्रव एक है, संवर एक है।

२. चित्तवृत्यादि के एकत्व का प्ररूपण-

विशिष्ट चित्तवृत्ति एक है,
तर्क एक है,
मनन एक है,
विद्वत्ता एक है,
छेदन एक है,
भेदन एक है।
जो संशुद्ध यथाभूत और पात्र है, वह एक है।
प्रत्येक जीव का दुःख एक है और एकभूत है।
अधर्मप्रतिमा एक है, जिससे आत्मा परिक्लेश को प्राप्त होता है।
धर्मप्रतिमा एक है. जिससे आत्मा पर्यवजात को प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान आदि की विशेष शुद्धि को प्राप्त होता है।
देव-असुर और मनुष्यों के एक समय में एक ही उत्थान, कर्म, वल, वीर्य, पुरुषकार अथवा पराक्रम होता है।
ज्ञान एक है, दर्शन एक है, चारित्र एक है,
समय एक है, प्रदेश एक है,
दण्ड एक है, अदण्ड एक है,
सिद्धि एक है, सिद्ध एक है,
परिनिर्वाण एक है, परिनिर्वृत्त एक है।

३. द्रव्यार्थिक नय दृष्टि से अठारह पापस्थानों के नाम-

१. प्राणातिपात एक है, २. मृषावाद एक है,
३. अदत्तादान एक है, ४. मैथुन एक है,
५. परिग्रह एक है, ६. क्रोध एक है,
७. मान एक है, ८. माया एक है,
९. लोभ एक है, १०. प्रेय (प्रेम राग) एक है,
११. द्वेष एक है, १२. कलह एक है,
१३. अभ्याख्यान एक है, १४. पैशुन्य एक है,
१५. परपरिवाद एक है, १६. अरति-रति एक है,
१७. मायामृषा एक है, १८. मिथ्यादर्शनशल्य एक है।

1. ठाणं. अ. ९, सु. ६७७

४. अव्वोच्छित्ति नयट्ठिया पावट्ठाण विरमण णामाणि–

१. एगे पाणाइवाय–वेरमणे,
२. एगे मुसावाय–वेरमणे,
३. एगे अदिण्णादाण–वेरमणे,
४. एगे मेहुण–वेरमणे,
५. एगे परिग्गह–वेरमणे,
६. एगे कोह–विवेगे,
७. एगे माण–विवेगे,
८. एगे माया–विवेगे,
९. एगे लोभ–विवेगे,
१०. एगे पेज्ज–विवेगे,
११. एगे दोस–विवेगे,
१२. एगे कलह–विवेगे,
१३. एगे अब्भक्खाण–विवेगे,
१४. एगे पेसुण्ण-विवेगे,
१५. एगे परपरिवाय–विवेगे,
१६. एगे अरइरई-विवेगे,
१७. एगे मायामोस–विवेगे,
१८. एगे मिच्छादंसणसल्ल–विवेगे। *–ठाणं. अ. १, सु. ३९ (२)*

५. गुणप्पमाणस्स दुविहत्तं–

प. से किं तं गुणप्पमाणे?

उ. गुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. जीवगुणप्पमाणे, २. अजीवगुणप्पमाणे य।

अणु. सु. ४२८

६. भाव संखा सरूव परूवणं–

प. से किं तं भावसंखा?

उ. जे इमे जीवा संखगइनामगोत्ताइं कम्माइं वेदेंति।

से तं भावसंखा। *अणु., सु. ५२०*

७. चउवीसदंडएसु ओहेण दंडसंखा परूवणं–

दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठादंडे य, २. अणट्ठादंडे य।

दं. १. णेरइयाणं दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा–

१. अट्ठादंडे य, २. अणट्ठादंडे य।

दं. २-२४ एवं चउवीसदंडओ जाव वेमाणियाणं।

–ठाणं. अ. २, उ. २, सु. ५८

८. आसीविसभेयाणं वित्थरओ परूवणं–

प. कइविहा णं भंते! आसीविसा पण्णत्ता?

उ. गोयमा! दुविहा आसीविसा पन्नत्ता, तं जहा–

१. जातिआसीविसा य, २. कम्मआसीविसा य।

चत्तारि जातिआसीविसा पण्णत्ता, तं जहा–

१. विच्छुय जातिआसीविसे,

४. द्रव्यार्थिक नय दृष्टि से अठारह पापस्थान विरमण के नाम–

१. प्राणातिपात–विरमण एक है,
२. मृषावाद–विरमण एक है,
३. अदत्तादान–विरमण एक है,
४. मैथुन–विरमण एक है,
५. परिग्रह–विरमण एक है,
६. क्रोध–विवेक एक है,
७. मान–विवेक एक है,
८. माया–विवेक एक है,
९. लोभ–विवेक एक है,
१०. प्रेय (प्रेम-राग) विवेक एक है,
११. द्वेष–विवेक एक है,
१२. कलह–विवेक एक है,
१३. अभ्याख्यान–विवेक एक है,
१४. पैशुन्य-विवेक एक है,
१५. परपरिवाद–विवेक एक है,
१६. अरति-रति–विवेक एक है,
१७. मायामृषा–विवेक एक है,
१८. मिथ्यादर्शनशल्य–विवेक एक है।

५. गुणप्रमाण के दो प्रकार–

प्र. गुणप्रमाण क्या है?

उ. गुणप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. जीवगुणप्रमाण, २. अजीवगुणप्रमाण।

६. भाव शंख के स्वरूप का प्ररूपण–

प्र. भाव शंख का क्या स्वरूप है?

उ. इस लोक में जो जीव शंखगतिनाम-गोत्र कर्मादिकों का वेदन कर रहे हैं वे भाव शंख हैं।

यह भाव शंख है।

७. चौवीसदंडकों में सामान्य से दंड संख्या का प्ररूपण–

दण्ड दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–

१. अर्थदण्ड, २. अनर्थदण्ड।

दं. १. नैरयिकों में दो प्रकार के दण्ड कहे गए हैं, यथा–

१. अर्थदण्ड, अनर्थदण्ड।

दं. २-२४. इसी प्रकार वैमानिकों पर्यन्त चौवीस दण्डकों (जीव भेदों) में दो दो दण्ड जानने चाहिए।

८. आशीविष भेदों का विस्तार से प्ररूपण–

प्र. भंते! आशीविष कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उ. गौतम! आशीविष दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. जाति आशीविष, २ कर्म आशीविष।

चार प्रकार के जाति-आशीविष (दाढों में विष वाले) कहे गए हैं, यथा–

१. जाति-आशीविष वृश्चिक (विच्छु),

२. मंडुक्कजातिआसीविसे,
३. उरगजातिआसीविसे,
४. मणुस्सजातिआसीविसे।

२. जाति-आशीविष मेंढक,
३. जाति-आशीविष सर्प,
४. जाति-आशीविष मनुष्य।

प. विच्छुयजातिआसीविसस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते?

प्र. १. भंते ! वृश्चिक जाति आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र में कहा गया है?

उ. गोयमा ! पभू णं विच्छुयजातिआसीविसे अद्धभरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणतं विसट्टमाणिं करित्तए।
विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा।

उ. गौतम ! वृश्चिक जाति आशीविष अपने विष के प्रभाव से अर्धभरत प्रमाण शरीर को (लगभग दो सौ तिरेसठ योजन) विषपरिणत और विषैला कर सकता है।
यह उसकी विषात्मक क्षमता है, परन्तु इतने क्षेत्र में उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

प. मंडुक्कजातिआसीविसस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते?

प्र. २. भंते ! मंडुक जाति आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र में कहा गया है?

उ. गोयमा ! पभू णं मंडुक्कजातिआसीविसे भरहप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणतं विसट्टमाणिं करित्तए।
विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा।

उ. गौतम ! जाति आशीविष मंडुक अपने विष के प्रभाव से भरतप्रमाण शरीर को विषपरिणत और विषैला कर सकता है।
यह उसकी विषात्मक क्षमता है, परन्तु इतने क्षेत्र में उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

प. ३. उरगजातिआसीविसस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते?

प्र. ३. भंते ! उरगजाति आशीविष के विष का प्रभाव कितने क्षेत्र में कहा गया है?

उ. गोयमा ! पभू णं उरगजातिआसीविसे जंबुद्दीवपमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणतं विसट्टमाणिं करित्तए।
विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा।

उ. गौतम ! उरगजाति आशीविष अपने विष के प्रभाव से जम्बूद्वीप प्रमाण (लाख योजन) शरीर को विषपरिणत और विषैला कर सकता है।
यह उसकी विषात्मक क्षमता है, परन्तु इतने क्षेत्र में उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

प. ४. मणुस्सजातिआसीविसस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते?

प्र. ४. भंते ! मनुष्यजाति आशीविष के विषय का प्रभाव कितने क्षेत्र में कहा गया है?

उ. गोयमा ! पभू णं मणुस्सजातिआसीविसे समयखेत्तपमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिणतं विसट्टमाणिं करेत्तए।
विसए से विसट्ठताए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा।[1]

उ. गौतम ! मनुष्यजाति आशीविष के विष का प्रभाव मनुष्य क्षेत्रप्रमाण (पैंतालीस लाख योजन) शरीर को विषपरिणत और विषैला कर सकता है।
यह उसकी विषात्मक क्षमता है, परन्तु इतने क्षेत्र में उसने अपनी क्षमता का न तो कभी उपयोग किया है, न करता है और न कभी करेगा।

प. भंते ! जइ कम्मआसीविसे किं–
१. नेरइयकम्मआसीविसे,
२. तिरिक्खजोणियकम्मआसीविसे,
३. मणुस्सकम्मआसीविसे,
४. देवकम्मआसीविसे।

प्र. भंते ! यदि कर्म आशीविष है तो क्या वह–
१. नैरयिक कर्म आशीविष है,
२. तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है,
३. मनुष्य कर्म आशीविष है या
४. देव कर्म आशीविष है?

उ. गोयमा ! १. नो नेरइयकम्मासीविसे, २. तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, ३. मणुस्सकम्मासीविसे वि, ४. देवकम्मासीविसे वि।

उ. गौतम ! १. नैरयिक कर्म आशीविष नहीं है, किन्तु २. तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है, ३. मनुष्य कर्म आशीविष है और ४. देव कर्मआशीविष है।

प. भंते ! जइ तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिंदिय-तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे जाव पंचिंदियतिरिक्ख-जोणियकम्मासीविसे?

प्र. भंते ! यदि तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है यावत् पंचेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिक कर्म आशीविष है?

उ. गोयमा ! नो एगिंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय-कम्मासीविसे।

प. भंते ! जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं सम्मुच्छिम पंचेंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

उ. गोयमा ! एवं जहा वेउव्वियसरीरस्स भेओ जाव[1] पज्जत्तसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतिय पंचिंदिय तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे नो अपज्जत्ता-संखेज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिय कम्मासीविसे।

प. जइ भंते ! मणुस्सकम्मासीविसे किं सम्मुच्छिममणुस्स-कम्मासीविसे गब्भवक्कंतियमणुस्स कम्मासीविसे ?

उ. गोयमा ! णो सम्मुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे,

एवं जहा वेउव्वियसरीरं जाव पज्जत्तसंखेज्जवासाउय-कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे, नो अपज्जत संखेज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्स कम्मासीविसे।

प. भंते ! जइ देवकम्मासीविसे किं भवणवासी-देवकम्मासीविसे जाव वेमाणियदेव कम्मासीविसे ?

उ. गोयमा ! भवणवासिदेवकम्मासीविसे वि जाव वेमाणिय-देवकम्मासीविसे वि।

प. भंते ! जइ भवणवासिदेवकम्मासीविसे किं असुरकुमार-भवणवासिदेवकम्मासीविसे जाव थणियकुमार-भवणवासिदेवकम्मासीविसे ?

उ. गोयमा ! असुरकुमार भवणवासिदेवकम्मासीविसे वि जाव थणियकुमार भवणवासिदेव कम्मासीविसे वि।

प. भंते ! जइ असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे किं पज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे, अपज्जत्तअसुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे ?

उ. गोयमा ! नो पज्जत्तअसुरकुमार भवणवासिदेव कम्मासीविसे, अपज्जत्तअसुरकुमार भवणवासिदेव-कम्मासीविसे।

एवं जाव थणियकुमाराणं।

प. भंते ! जइ वाणमंतरदेवकम्मासीविसे किं पिसाय-वाणमंतरदेवकम्मासीविसे जाव गंधव्ववाण-मंतरदेवकम्मासीविसे।

उ. गोयमा ! एवं सव्वेसिं पि अपज्जत्तगाणं।

उ. गौतम ! एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रि तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष नहीं है, किन्तु पंचेन्द्रि तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है।

प्र. भंते ! यदि पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है तो क्य सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है र गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष है ?

उ. गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीरपद में वैक्रिय शरीर वे सम्बन्ध में जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार कहना चाहि यावत् पर्याप्त संख्यातवर्ष की आयुष्य वाला गर्भज कर्मभूमि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष होता है, परन्त अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाला गर्भज कर्मभूमि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म आशीविष नहीं होता है।

प्र. भंते ! यदि मनुष्य कर्म आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष कर्म आशीविष है या गर्भज मनुष्य कर्म आशीविष है ?

उ. गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कर्म आशीविष नहीं होता है, किन्त गर्भज मनुष्य कर्म आशीविष होता है।

इसी प्रकार जैसे प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीरपद में वैक्रिय शरीर के सम्बन्ध में जीव भेद कहे गए हैं उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए यावत् पर्याप्त संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य कर्मआशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य कर्म आशीविष नहीं होता है।

प्र. भंते ! यदि देव कर्म आशीविष होता है तो क्या भवनवासी देव कर्म आशीविष होता है यावत् वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है ?

उ. गौतम ! भवनवासी देव भी कर्म आशीविष होता है यावत् वैमानिक देव भी कर्म आशीविष होता है।

उ. भंते ! यदि भवनवासी देव कर्म आशीविष होता है तो क्या असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष होता है यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष होता है ?

उ. गौतम ! असुरकुमार भवनवासी देव भी कर्म आशीविष होता है यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव भी कर्म आशीविष होता है।

प्र. भंते ! यदि असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष है तो क्या पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष है या अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासीदेव कर्म आशीविष है ?

उ. गौतम ! पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष नहीं है, परन्तु अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. भंते ! यदि वाणव्यन्तरदेव कर्म आशीविष है तो क्या पिशाच वाणव्यन्तरदेव कर्म आशीविप है यावत् गन्धर्व वाणव्यन्तरदेव कर्म आशीविप है ?

उ. गौतम ! वे पिशाचादि सर्व वाणव्यन्तरदेव अपर्याप्तावस्था में कर्म आशीविप हैं।

१. (पण्ण. प. २१, सु. १५१८) शरीर अध्ययन में देखें।

जोइसियाणं सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं।

इसी प्रकार सभी ज्योतिष्कदेव भी अपर्याप्तावस्था में कर्म आशीविष होते हैं।

प. भंते ! जइ वेमाणियदेवकम्मासीविसे किं कप्पोवग-वेमाणियदेवकम्मासीविसे, कप्पातीयवेमाणिय देवकम्मा-सीविसे ?

प्र. भंते ! यदि वैमानिकदेव कर्म आशीविष हैं तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष है या कल्पातीत वैमानिक देव कर्म आशीविष है ?

उ. गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, नो कप्पातीयवेमाणियदेवकम्मासीविसे।

उ. गौतम ! कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है किन्तु कल्पातीत वैमानिक देव कर्म आशीविष नहीं होता है।

प. भंते ! जइ कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोहम्म-कप्पोवगवेमाणियदेव कम्मासीविसे जाव अच्चुयकप्पोवग वेमाणियदेव कम्मासीविसे ?

प्र. भंते ! यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है तो क्या सौधर्म कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है यावत् अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है।

उ. गोयमा ! सोहम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेव कम्मासीविसे वि।

नो आणयकप्पोवग वेमाणियदेव कम्मासीविसे जाव नो अच्चुयकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे।

उ. गौतम ! सौधर्म कल्पोपपन्नक वैमानिक देव भी कर्म आशीविष होता है यावत् सहस्रार कल्पोपपन्नक वैमानिक देव भी कर्म आशीविष होता है।

परन्तु आनत यावत् अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष नहीं होता है।

प. भंते ! जइ सोहम्मकप्पोवग वेमाणियदेव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय देव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसोहम्म कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

प्र. भंते ! यदि सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष है तो क्या पर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है या अपर्याप्त सौधर्मकल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है ?

उ. गोयमा ! नो पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय देव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय देव-कम्मासीविसे।

एवं जाव नो पज्जत्तसहस्सारकप्पोवगवेमाणिय देव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसहस्सार कप्पोवग वेमाणियदेव कम्मासीविसे। *–विया. स. ८, उ. २, सु. १-१९*

उ. गौतम ! पर्याप्त सौधर्म कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष नहीं होता है, परन्तु अपर्याप्त सौधर्म कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है।

इसी प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष नहीं होता है किन्तु अपर्याप्त सहस्रार कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष होता है।

९. तिविहा इड्ढी भेयप्पभेय परूवणं–

तिविहा इड्ढी पण्णत्ता, तं जहा–

१. देविड्ढी, २. राइड्ढी,

३. गणिड्ढी।

(१) देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. विमाणिड्ढी, २. विगुव्वणिड्ढी, ३. परियारणिड्ढी।

अहवा देविड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सचित्ता, २. अचित्ता, ३. मीसिया।

(२) राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. रण्णो अइयाणिड्ढी, २. रण्णो णिज्जाणिड्ढी,

३. रण्णो वलवाहणकोस कोट्ठागारिड्ढी।

अहवा राइड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सचित्ता, २. अचित्ता, ३. मीसिया।

(३) गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णाणिड्ढी, २. दंसणिड्ढी, ३. चरित्तड्ढी।

अहवा गणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. सचित्ता, २. अचित्ता, ३. मीसिया।

–ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २१४

९. तीन प्रकार की ऋद्धि के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण–

ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. देवताओं की ऋद्धि, २. राजाओं की ऋद्धि,

३. आचार्यों की ऋद्धि।

(१) देवताओं की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. विमान ऋद्धि, २. वैक्रिय ऋद्धि, ३. परिचारणा ऋद्धि।

अथवा देवताओं की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

(२) राजाओं की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. अतियान ऋद्धि, २. निर्याण ऋद्धि,

३. सेना, वाहन, कोष और कोष्ठागार की ऋद्धि,

अथवा राजाओं की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

(३) गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. ज्ञान की ऋद्धि २. दर्शन की ऋद्धि, ३. चारित्र की ऋद्धि।

अथवा गणी की ऋद्धि तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. सचित्त, २. अचित्त, ३. मिश्र।

१०. अत्थोप्पायणस्स हेउ तिविहत्तं–

तिविहा अत्थजोणी पण्णत्ता, तं जहा–

१. सामे, २. दंडे, ३. भेए।

–ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १९१(११)

११. विवक्खया इंदाणं तिविहत्तं–

तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णामिंदे,
२. ठवणिंदे,
३. दव्विंदे।

तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा–

१. णाणिंदे, २. दंसणिंदे, ३. चरित्तिंदे।

तओ इंदा पण्णत्ता, तं जहा–

१. देविंदे, २. असुरिंदे, ३. मणुस्सिंदे।

–ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १२७

१२. विणिच्छियस्स तिविहत्तं–

तिविहे विणिच्छिए पन्नते, तं जहा–

१. अत्थविणिच्छिए, २. धम्मविणिच्छिए,
३. कामविणिच्छिए,

–ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १९४/९

१३. समणमाहणाणं अभिसमागमस्स तिविहत्तं–

तिविहे अभिसमागमे पन्नते, तं जहा–

१. उड्ढं, २. अहं, ३. तिरियं।

जया णं तहारूवस्स समणस्स वा, माहणस्स वा अइसेसे नाण-दंसणे समुप्पज्जइ, से णं तप्पढमयाए उड्ढमभिसमेइ, तओ तिरियं तओ पच्छा अहे।

अहोलोगे णं दुरभिगमे पण्णत्ते, समणाउसो!

–ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २१३

१४. सूराणं चउव्विहत्त परूवणं–

चत्तारि सूरा पण्णत्ता, तं जहा–

१. खंतिसूरे, २. तवसूरे,
३. दाणसूरे, ४. जुद्धसूरे।

१ खंतिसूरा अरहंता,
२. तवसूरा अणगारा,
३. दाणसूरे वेसमणे,
४. जुद्धसूरे वासुदेवे।

–ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१७

१५. संत गुणाणं विनास-विकास चउ हेऊ–

चउहिं ठाणेहिं संते गुणे नासेज्जा, तं जहा–

१. कोहेणं, २. पडिनिवेसेणं,
३. अकयण्णुयाए, ४. मिच्छत्ताभिनिवेसेणं।

चउहिं ठाणेहिं संते गुणे दीवेज्जा, तं जहा–

१. अब्भासवत्तियं,
२. परच्छंदाणुवत्तियं,

१०. अर्थोपार्जन हेतु के तीन प्रकार–

अर्थयोनि (राज्य वैभव प्राप्ति के उपाय) तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. साम, २. दण्ड, ३. भेद।

११. विवक्षा से इन्द्रों के तीन प्रकार–

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. नामइन्द्र–केवल नाम के इन्द्र,
२. स्थापनाइन्द्र–किसी वस्तु में इन्द्र का आरोपण,
३. द्रव्यइन्द्र–भूत या भावी इन्द्र।

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. ज्ञानेन्द्र, २. दर्शनेन्द्र, ३. चारित्रेन्द्र।

इन्द्र तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. देवेन्द्र, २. असुरेन्द्र, ३. मनुष्येन्द्र।

१२. विनिश्चय के तीन प्रकार–

विनिश्चय (अर्थादि के स्वरूप का परिज्ञान) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अर्थ-विनिश्चय, २. धर्म-विनिश्चय,
३. काम-विनिश्चय।

१३. श्रमण माहनों के अभिसमागम के तीन प्रकार–

अभिसमागम (जानना) तीन प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. ऊर्ध्व, २. अधः, ३. तिर्यक्।

तथारूप-श्रमण-माहन को जब अतिशय ज्ञान-दर्शन प्राप्त होता है तब वह पहले ऊर्ध्व लोक को जानता है फिर तिर्यक् लोक को जानता है और उसके बाद अधोलोक को जानता है। हे आयुष्मन् श्रमणों ! अधोलोक सबसे अधिक दुरभिगम कहा गया है।

१४. शूरों के चार प्रकार–

शूर चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. क्षमा शूर, २. तपःशूर,
३. दान शूर, ४. युद्ध शूर।

१. अर्हन्त क्षमा शूर हैं,
२. अनगार तपःशूर हैं,
३. वैश्रमण (कुबेर) दान शूर हैं,
४. वासुदेव युद्ध शूर हैं।

१५. विद्यमान गुणों का विनाश-विकाश के चार हेतु–

चार स्थानों (कारणों) से विद्यमान गुण नष्ट होते हैं, यथा–

१. क्रोध से, २. प्रतिनिवेश-ईर्ष्या से,
३. अकृतज्ञता से, ४. मिथ्याभिनिवेश–दुराग्रह से।

चार स्थानों (कारणों) से विद्यमान गुण उद्दीप्त (प्रकाशित) होते हैं, यथा–

१. अभ्यास करने की वृत्ति होने से,
२. दूसरों के गुणों का अनुसरण करने से,

३. कज्जहेउं,
४. कयपडिकडेइ वा। —ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३७०

३. कार्य सिद्धि के लिए अनुकूल प्रयत्न करने से,
४. उपकारी के प्रति उपकार करने से।

१६. संसारस्स चउविहत्तं–

चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. दव्वसंसारे,
२. खेत्तसंसारे,
३. कालसंसारे,
४. भावसंसारे। —ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६१

१६. चार प्रकार का संसार–

संसार चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. द्रव्यसंसार–जीव और पुद्‌गलों का परिभ्रमण,
२. क्षेत्र संसार–जीव और पुद्‌गलों के परिभ्रमण का क्षेत्र,
३. काल संसार–काल का परिवर्तन या काल मर्यादा के अनुसार होने वाला जीव और पुद्‌गलों का परिवर्तन,
४. भाव संसार–जीव और पुद्‌गलों के परिभ्रमण की क्रिया।

१७. गइविवक्खया संसारस्स चउविहत्तं–

चउव्विहे संसारे पण्णत्ते, तं जहा–
१. णेरइय संसारे, २. तिरिक्खजोणिय संसारे,
३. मणुस्स संसारे, ४. देव संसारे। —ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९४

१७. गति की अपेक्षा संसार के चार प्रकार–

संसार (जन्म मरण रूप) चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नैरयिकसंसार, २. तिर्यक्‌योनिकसंसार,
३. मनुष्यसंसार, ४. देवसंसार।

१८. णिक्खेव-विवक्खया सच्चस्स चउप्पगारा–

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते, तं जहा–
१.णामसच्चे, २. ठवणासच्चे,
३. दव्वसच्चे, ३. भावसच्चे। —ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. ३०८

१८. निक्षेप-विवक्षा से सत्य के चार प्रकार–

सत्य चार प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. नामसत्य, २. स्थापनासत्य,
३. द्रव्यसत्य, ४. भावसत्य।

१९. हासुप्पत्ति चउ कारणाणि–

चउहिं ठाणेहिं हासुप्पत्ती सिया, तं जहा–
१. पासेत्ता,
२. भासेत्ता।
३. सुणेत्ता,
४. संभरेत्ता। —ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २६९

१९. हास्योत्पत्ति के चार कारण–

चार कारणों से हँसी आती है, यथा–
१. देखकर–विदूषक आदि की चेष्टाओं को देखकर,
२. बोलकर–किसी के बोलने की नकल कर,
३. सुनकर–उस प्रकार की चेष्टाओं और वाणी को सुनकर,
४. स्मरण–पूर्वदृष्ट और सुनी हुई बातों को यादकर।

२०. वाही-चउप्पगारा–

चउव्विहे वाही पण्णत्ते, तं जहा–
१. वाइए,
२. पित्तिए,
३. सिंभिए,
४. सन्निवाइए। —ठाणं. अ. ४. उ. ४, सु. ३४२

२०. व्याधि के चार प्रकार–

व्याधि चार प्रकार की कही गई हैं, यथा–
१. वातिक–वायुविकार से होने वाली,
२. पैत्तिक-पित्तविकार से होने वाली,
३. श्लैष्मिक–कफविकार से होने वाली,
४. सान्निपातिक–तीनों के मिश्रण से होने वाली।

२१. तिगिच्छया चउ अंगो–

चउव्विहा तिगिच्छा पण्णत्ता, तं जहा
१. वेज्जो, २, ओसहाइं
३. आउरे, ४. परिचारए। —ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४२

२१. चिकित्सा के चार अंग–

चिकित्सा के चार अंग कहे गए हैं, यथा–
१. वैद्य, २. औषध,
३. रोगी, ४. परिचारक।

२२. तिगिच्छगस्स चउप्पगारा–

चत्तारि तिगिच्छगा पण्णत्ता, तं जहा–
१. आयतिगिच्छे णाममेगे, णो परतिगिच्छए,
२. परतिगिच्छे णाममेगे, णो आयतिगिच्छए,

२२. चिकित्सक के चार प्रकार–

चिकित्सक चार प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. कुछ चिकित्सक अपनी चिकित्सा करते हैं परन्तु दूसरों की नहीं करते,
२. कुछ चिकित्सक दूसरों की चिकित्सा करते हैं परन्तु अपनी नहीं करते,

३. एगे आयतिगिच्छए वि, परतिगिच्छए वि,

४. एगे णो आयतिगिच्छए, णो परतिगिच्छए।

—ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३४२

३. कुछ चिकित्सक अपनी चिकित्सा भी करते हैं और दूसरों की भी चिकित्सा करते हैं,

४. कुछ चिकित्सक न अपनी चिकित्सा करते हैं और न दूसरों की चिकित्सा करते हैं।

२३. **विकहाओ भेयप्पभेय परूवणं—**

चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. इत्थिकहा, २. भत्तकहा,
३. देसकहा, ४. राय कहा।

(१) इत्थिकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. इत्थीणं जाइकहा,
२. इत्थीणं कुलकहा,
३. इत्थीणं रूवकहा,
४. इत्थीणं णेवत्थकहा।

(२) भत्तकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. भत्तस्स आवावकहा,
२. भत्तस्स णिव्वावकहा,
३. भत्तस्स आरंभकहा,
४. भत्तस्स णिट्ठाणकहा,

(३) देसकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. देसविहिकहा,
२. देसविकप्पकहा,
३. देसच्छंदकहा,
४. देसणेवत्थकहा।

(४) रायकहा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. रण्णो अतियाणकहा,
२. रण्णो णिज्जाणकहा,
३. रण्णो बल-वाहणकहा,
४. रण्णो कोस-कोट्ठागारकहा। —ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८२

२३. **विकथा के भेद-प्रभेदों का प्ररूपण—**

विकथा चार प्रकार की कही गई है, यथा—

१. स्त्री कथा, २. भक्त कथा,
३. देश कथा, ४. राजकथा,

(१) स्त्री कथा चार प्रकार की कही गई है, यथा—
१. स्त्रियों की जाति की कथा,
२. स्त्रियों के कुल की कथा,
३. स्त्रियों के रूप की कथा,
४. स्त्रियों के वेशभूषा की कथा।

(२) भक्तकथा चार प्रकार की कही गई है, यथा—
१. आवापकथा—रसोई घृतादि की कच्ची सामग्री की चर्चा करना,
२. निर्वापकथा—बनी हुई सामग्री की चर्चा करना,
३. आरंभकथा—भोज्य सामग्री की लागत आदि की चर्चा करना,
४. निष्ठानकथा—भोज्य सामग्री में व्यय होने आदि की चर्चा करना।

(३) देशकथा चार प्रकार की कही गई है, यथा—
१. देशविधिकथा—विभिन्न देशों के शासन व्यवस्था की चर्चा करना,
२. देशविकल्प कथा—विभिन्न देशों में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं की चर्चा करना,
३. देशच्छंदकथा—विभिन्न देशों के सामाजिक रीति रिवाजों की चर्चा करना,
४. देशनेपथ्यकथा—विभिन्न देशों के पहनावे की चर्चा करना।

(४) राजकथा चार प्रकार की कही गई है, यथा—
१. राजा के अतियान—नगर आदि के प्रवेश की कथा करना,
२. राजा के निर्याण—निष्क्रमण की कथा करना,
३. राजा की सेना और वाहनों की कथा करना,
४. राजा के कोश और कोष्ठागार—अनाज के कोठों की कथा करना।

२४. **दंडस्स पंच पगारा—**

पंच दंडा पन्नत्ता, तं जहा—
१. अट्ठादंडे,
२. अणट्ठादंडे,
३. हिंसादंडे,
४. अकम्मादंडे,
५. दिट्ठीविपरियासिया दंडे। —ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४१८

२४. **दण्ड के पाँच प्रकार—**

दण्ड पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—
१. अर्थदण्ड—प्रयोजनवश त्रस या स्थावर प्राणियों की हिंसा करना,
२. अनर्थदण्ड—निष्प्रयोजन हिंसा करना,
३. हिंसादण्ड—यह मुझे मार रहा है, मारेगा या मारा था इसलिए हिंसा करना,
४. अकस्मात्‌दण्ड—एक के वध के लिए प्रहार करने पर दूसरे का वध हो जाना,
५. दृष्टि विपर्यास दण्ड—मित्र को अमित्र जानकर दण्डित करना।

२५. **णिहिस्स पंच पगारा—**

पंच णिही पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुत्तणिही, २. मित्तणिही,

२५. **निधि के पाँच प्रकार—**

निधि पाँच प्रकार की कही गई हैं, यथा—
१. पुत्रनिधि, २. मित्रनिधि,

३. सिप्पणिही, ४. धणणिही,
५. धन्नणिही। –ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४४८

३. शिल्पनिधि, ४. धननिधि,
५. धान्यनिधि।

२६. इंदियविसएसु रज्जाइ पंच हेऊ–

पंचहिं ठाणेहिं जीवा सज्जंति, तं जहा–
१. सद्देहिं, २. रूवेहिं,
३. गंधेहिं, ४. रसेहिं
५. फासेहिं।

एवमेव रज्जंति, मुच्छंति, गिज्झंति, अज्झोववज्जंति विणिघायमावज्जंति। –ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३९०

२६. इन्द्रिय विषयों में अनुरक्ति के पाँच हेतु–

जीव पाँच स्थानों से लिप्त होते हैं, यथा–
१. शब्द से, २. रूप से,
३. गंध से, ४. रस से,
५. स्पर्श से।

इसी प्रकार इन पाँच कारणों से अनुरक्त, मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और विनष्ट होते हैं।

२७. पडिहाणं पंच पगारा–

पंचविहा पडिहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. गइपडिहा,
२. ठिइपडिहा,
३. बंधणपडिहा,
४. भोगपडिहा,
५. बल-वीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमपडिहा। –ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ४०६

२७. प्रतिघातों के पाँच प्रकार–

प्रतिघात (स्खलन) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. गति-प्रतिघात–अशुभ प्रवृत्ति के द्वारा प्रशस्त गति का अवरोध,
२. स्थिति-प्रतिघात–उदीरणा के द्वारा कर्म-स्थिति का अल्पीकरण,
३. वन्धन-प्रतिघात–प्रशस्त औदारिक शरीर आदि की प्राप्ति का अवरोध,
४. भोग-प्रतिघात–सामग्री के अभाव में भोग की अप्राप्ति,
५. बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम का प्रतिघात।

२८. आजीवगाणं पंच पगारा–

पंचविहे आजीवे पण्णत्ते, तं जहा–
१. जाईआजीवे,
२. कुलाजीवे,
३. कम्माजीवे,
४. सिप्पाजीवे,
५. लिंगाजीवे। –ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ४०७

२८. आजीवकों के पाँच प्रकार–

आजीवक पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा–
१. जात्याजीव–जाति से आजीविका करने वाला,
२. कुलाजीव–कुल से आजीविका करने वाला,
३. कर्माजीव–कृषि आदि से आजीविका करने वाला,
४. शिल्पाजीव–कला से आजीविका करने वाला,
५. लिंगाजीव–वेष आदि से आजीविका करने वाला।

२९. सुत्तस्स विबुज्झण पंच हेऊ–

पंचहिं ठाणेहिं सुत्ते विबुज्झेज्जा, तं जहा–
१. सद्देणं, २. फासेणं,
३. भोयणपरिणामेणं, ४. णिद्दक्खएणं,
५. सुविणदंसणेणं। –ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४३६

२९. सुप्त के जागृत होने के पाँच हेतु–

पाँच कारणों से सोया हुवा मनुष्य जागृत हो जाता है, यथा–
१. शब्द से, २. स्पर्श से,
३. भोजन परिणाम, (भूख से) ४. निद्राक्षय से,
५. स्वप्नदर्शन से।

३०. सोयस्स पंच पगारा–

पंचविहे सोए पण्णत्ते, तं जहा–
१. पुढविसोए,
२. आउसोए,
३. तेउसोए,
४. मंतसोए,
५. बंभसोए। –ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४४९

३०. शौच के पाँच प्रकार–

शौच (शुद्धि) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. पृथ्वी शौच–मिट्टी द्वारा शुद्धि करना,
२. जलशौच–जल द्वारा शुद्धि करना,
३. तेजःशौच–अग्नि द्वारा शुद्धि करना,
४. मन्त्रशौच–मन्त्र द्वारा शुद्धि करना,
५. ब्रह्मशौच–ब्रह्मचर्य आदि के आचरण द्वारा शुद्धि करना।

३१. उक्कलाणं पंच पगारा–

पंच उक्कला पण्णत्ता, तं जहा–

३१. उत्कल के पाँच प्रकार–

उत्कल अथवा उत्कट (प्रवल, प्रचंड) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. दंडुक्कले,
२. रज्जुक्कले,
३. तेणुक्कले,
४. देसुक्कले,
५. सव्वुक्कले। —ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४५६

१. दण्डोत्कल–जिसके पास प्रबल दण्ड शक्ति हो,
२. राज्योत्कल–जिसके पास प्रबल राज्य शक्ति हो,
३. स्तेनोत्कल–जिसके पास चोरों का प्रबल संग्रह हो,
४. देशोत्कल–जिसके पास प्रबल जनमत हो,
५. सर्वोत्कल–जिसके पास पूर्वोक्त सभी दण्ड प्रबलतम हो।

३२. छेयणस्स पंच पगारा–

पंचविहे छेयणे पण्णत्ते, तं जहा–
१. उप्पाछेयणे,
२. वियच्छेयणे,
३. बंधच्छेयणे,
४. पएसच्छेयणे,
५. दोधारच्छेयणे। —ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४६२ (१)

३२. छेदन के पाँच प्रकार–

छेदन (विभाग) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. उत्पादछेदन–उत्पाद की अपेक्षा से विभाग करना,
२. व्ययछेदन–विनाश की अपेक्षा से विभाग करना,
३. बंधछेदन–सम्बन्ध विच्छेद होना,
४. प्रदेशछेदन–बुद्धि की कल्पना से स्कन्धों का छेदन करना,
५. द्विधारछेदन–अखण्ड वस्तु के दो टुकड़े करना।

३३. आणंतरियस्स पंच पगारा–

पंचविहे आणंतरिए पण्णत्ते, तं जहा–
१. उप्पायणंतरिए,
२. वियाणंतरिए,
३. पएसाणंतरिए,
४. समयाणंतरिए,
५. सामण्णाणंतरिए। —ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४६२ (२)

३३. आनन्तर्य के पाँच प्रकार–

आनन्तर्य (निरन्तरता) पाँच प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. उत्पाद-आनन्तर्य–उत्पाद का अविरह,
२. व्यय-आनन्तर्य–विनाश का अविरह,
३. प्रदेश-आनन्तर्य–प्रदेशों की संलग्नता,
४. समय-आनन्तर्य–समय की संलग्नता,
५. सामान्य-आनन्तर्य–जिसमें विशेष की विवक्षा न हो।

३४. तुल्लस्स छ भेया तेसां सरूव परूवणं–

प. कइविहे णं भंते ! तुल्लए पन्नत्ते?
उ. गोयमा ! छव्विहे तुल्लए पन्नत्ते, तं जहा–
१. दव्वतुल्लए, २. खेत्ततुल्लए,
३. कालतुल्लए, ४. भवतुल्लए।
५. भावतुल्लए, ६. संठाणतुल्लए।

प. १. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–
'दव्वतुल्लए, दव्वतुल्लए?'

उ. गोयमा ! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वओ तुल्ले, परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलवइरित्तस्स दव्वओ णो तुल्ले।

दुपएसिए खंधे दुपएसियस्स खंधस्स दव्वओ तुल्ले, दुपएसिए खंधे दुपएसियवइरित्तस्स खंधस्स दव्वओ णो तुल्ले।

एवं जाव दसपएसिए।

तुल्लसंखेज्जपएसिए खंधे तुल्लसंखेज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वओ तुल्ले, तुल्लसंखेज्जपएसिए खंधे-तुल्लसंखेज्जपएसियवइरित्तस्स खंधस्स दव्वओ णो तुल्ले।

एवं तुल्लअसंखेज्जपएसिए वि।

३४. तुल्य के छः भेद और उनके स्वरूप का प्ररूपण–

प. भन्ते ! तुल्य कितने प्रकार का कहा गया है?
उ. गौतम ! तुल्य छह प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. द्रव्यतुल्य, २. क्षेत्रतुल्य,
३. कालतुल्य, ४. भवतुल्य,
५. भावतुल्य, ६. संस्थानतुल्य।

प्र. १. भन्ते ! किस कारण से 'द्रव्यतुल्य–द्रव्यतुल्य' कहा जाता है?

उ. गौतम ! एक परमाणु पुद्‌गल दूसरे परमाणु पुद्‌गल से द्रव्यतः तुल्य है किन्तु परमाणु पुद्‌गल से व्यतिरिक्त (भिन्न) दूसरे पदार्थों के साथ द्रव्य से तुल्य नहीं है।

एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु द्विप्रदेशिक स्कन्ध से व्यतिरिक्त दूसरे स्कन्ध के साथ द्विप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य से तुल्य नहीं है।

इसी प्रकार दशप्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त कहना चाहिए।

एक तुल्य संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध दूसरे तुल्य संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध के साथ द्रव्य से तुल्य है, किन्तु तुल्य संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध से व्यतिरिक्त दूसरे स्कन्ध के साथ वह द्रव्य से तुल्य नहीं है।

इसी प्रकार तुल्यअसंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में भी कहना चाहिए।

एवं तुल्लअणंतपएसिए वि।

इसी प्रकार तुल्य अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में भी जानना चाहिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'दव्वतुल्लए दव्वतुल्लए।'

इस कारण से गौतम ! 'द्रव्यतुल्य-द्रव्यतुल्य' कहा जाता है।

प. २. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-'खेत्ततुल्लए खेत्ततुल्लए?'

प्र. २. भन्ते ! किस कारण से 'क्षेत्रतुल्य-क्षेत्रतुल्य' कहा जाता है?

उ. गोयमा ! एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स खेत्तओ तुल्ले, एगपएसोगाढे पोग्गले एगपएसोगाढवइरित्तस्स पोग्गलस्स खेत्तओ णो तुल्ले,

उ. गौतम ! एकप्रदेशावगाढ पुद्गल दूसरे एकप्रदेशावगाढ पुद्गल के साथ क्षेत्र से तुल्य है किन्तु एकप्रदेशावगाढ व्यतिरिक्त पुद्गल से एकप्रदेशावगाढ पुद्गल क्षेत्र से तुल्य नहीं है।

एवं जाव दसपएसोगाढे,

इसी प्रकार दस प्रदेशावगाढ पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिए।

तुल्लसंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले, तुल्लसंखेज्जपएसियवइरित्तस्सखंधस्स खेत्तओ णो तुल्ले।

एक तुल्य संख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल दूसरे तुल्य संख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गल के साथ क्षेत्र से तुल्य है, किन्तु एक तुल्य संख्यातप्रदेशावगाढ व्यतिरिक्त पुद्गल से तुल्य संख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गल क्षेत्र की अपेक्षा तुल्य नहीं है।

एवं तुल्लअसंखेज्जपएसोगाढे वि।

इसी प्रकार तुल्य असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'खेत्ततुल्लए, खेत्ततुल्लए।'

इस कारण से गौतम ! 'क्षेत्रतुल्य क्षेत्रतुल्य' कहा जाता है।

प. ३. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-'कालतुल्लए कालतुल्लए?'

प्र. ३. भन्ते ! किस कारण से 'कालतुल्य-कालतुल्य' कहा जाता है?

उ. गोयमा ! एगसमयठिईए पोग्गले एगसमयठिईयस्स पोग्गलस्स कालओ तुल्ले, एगसमयठिईए पोग्गले एगसमयठिईयवइरित्तस्स पोग्गलस्स कालओ णो तुल्ले।

उ. गौतम ! एक समय की स्थिति वाला पुद्गल अन्य एक समय की स्थिति वाले पुद्गल के साथ काल से तुल्य है किन्तु एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से व्यतिरिक्त दूसरे पुद्गलों के साथ एक समय की स्थिति वाला पुद्गल काल से तुल्य नहीं है।

एवं जाव दससमयट्ठिईए।

इसी प्रकार दस समय की स्थिति वाले पुद्गल पर्यन्त के विषय में कहना चाहिए।

तुल्लसंखेज्जसमयट्ठिईए एवं चेव।

तुल्य संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

एवं तुल्लअसंखेज्जसमयट्ठिईए वि।

तुल्य असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गल के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'कालतुल्लए कालतुल्लए।'

इस कारण से गौतम ! 'कालतुल्य-कालतुल्य' कहा जाता है।

प. ४. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-'भवतुल्लए भवतुल्लए?'

प्र. भन्ते ! किस कारण से 'भवतुल्य-भवतुल्य' कहा जाता है?

उ. गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स भवट्ठयाए तुल्ले, नेरइए नेरइयवइरित्तस्स भवट्ठयाए नो तुल्ले।

उ. गौतम ! एक नैरयिक दूसरे नैरयिक के साथ भव की अपेक्षा तुल्य है, किन्तु एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से व्यतिरिक्त (तिर्यञ्च मनुष्यादि के साथ) भव से तुल्य नहीं है।

तिरिक्खजोणिए एवं चेव।

इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक भव तुल्य के लिए समझना चाहिए।

एवं मणुस्से, एवं देवे वि।

मनुष्य तथा देव भव तुल्य के लिए भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'भवतुल्लए भवतुल्लए।'

इस कारण से गौतम ! भवतुल्य-भवतुल्य' कहा जाता है।

प. ५. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-'भावतुल्लए, भावतुल्लए?'

प्र. ५. भन्ते ! किस कारण से 'भावतुल्य-भावतुल्य' कहा जाता है?

उ. गोयमा ! एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स भावओ तुल्ले, एगगुणकालए पोग्गले एगगुणकालगवइरित्तस्स पोग्गलस्स भावओ नो तुल्ले,

उ. गौतम ! एक गुण काले वर्ण वाला पुद्गल दूसरे एक गुण काले वर्ण वाले पुद्गल के साथ भाव से तुल्य है, किन्तु एक गुण काले वर्ण वाला पुद्गल एक गुण काले वर्ण से व्यतिरिक्त दूसरे पुद्गलों के साथ भाव से तुल्य नहीं है।

एवं जाव दसगुणकालए।

इसी प्रकार दस गुण काले पुद्गल पर्यन्त कहना चाहिए।

तुल्लसंखेज्जगुणकालए पोग्गले वि एवं चेव।

इसी प्रकार तुल्य संख्यात गुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल के लिए भी जानना चाहिए।

एवं तुल्लअसंखेज्जगुणकालए वि।

इसी प्रकार असंख्यातगुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल के लिए जानना चाहिए।

एवं तुल्लअणंतगुणकालए वि।

इसी प्रकार तुल्य अनन्तगुण कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल के लिए भी जानना चाहिए।

जहा कालए एवं नीलए, लोहियए, हालिद्दए, सुक्किल्लए।

जिस प्रकार काले वर्ण के लिए कहा उसी प्रकार नीले, लाल, पीले और श्वेत वर्ण के विषय में भी कहना चाहिए।

एवं सुब्भिगंधे दुब्भिगंधे।

इसी प्रकार सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध के लिए कहना चाहिए।

एवं तित्ते जाव महुरे।

इसी प्रकार तिक्त यावत् मधुर रस के लिए कहना चाहिए।

एवं कक्खडे जाव लुक्खे।

कर्कश यावत् रुक्ष स्पर्श वाले पुद्गल के लिए भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

उदइए भावे उदइयस्स भावस्स भावओ तुल्ले, उदइए भावे उदइयभाववइरित्तस्स भावस्स भावओ नो तुल्ले।

औदयिक भाव औदयिक भाव की अपेक्षा भाव से तुल्य है किन्तु औदयिक भाव औदयिक भाव से व्यतिरिक्त भाव से भाव की अपेक्षा तुल्य नहीं है।

एवं उवसमिए, खइए, खयोवसमिए, पारिणामिए।

इसी प्रकार औपशमिक, क्षायिक क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक भाव के विषय में भी कहना चाहिए।

सन्निवाइए भावे सन्निवाइयस्स भावस्स भावओ तुल्ले, सन्निवाइए भावे सन्निवाइय भाववइरित्तस्स भावस्स भावओ नो तुल्ले।

सान्निपातिक भाव, सान्निपातिक भाव के साथ भाव से तुल्य है, किन्तु सान्निपातिक भाव सान्निपातिक भाव से व्यतिरिक्त भाव से तुल्य नहीं है।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'भावतुल्लए भावतुल्लए।'

इस कारण से गौतम ! 'भावतुल्य-भावतुल्य' कहा जाता है।

प. ६. से केणट्ठेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ–
'संठाणतुल्लए, संठाणतुल्लए?'

प्र. ६. भन्ते ! किस कारण से 'संस्थानतुल्य-संस्थानतुल्य' कहा जाता है?

उ. गोयमा ! परिमंडले संठाणे परिमंडलस्स संठाणस्स संठाणओ तुल्ले, परिमंडले संठाणे परिमंडल-संठाणवइरित्तस्स संठाणस्स संठाणओ नो तुल्ले।

उ. गौतम ! परिमण्डल संस्थान, अन्य परिमण्डल संस्थान के साथ संस्थानतुल्य है किन्तु परिमण्डल संस्थान परिमण्डल संस्थान से व्यतिरिक्त संस्थान से तुल्य नहीं है।

एवं वट्टे, तंसे, चउरंसे, आयए।

इसी प्रकार वृत्त संस्थान, त्र्यस्र संस्थान, चतुरस्रसंस्थान एवं आयतसंस्थान के विषय में भी कहना चाहिए।

समचउरंससंठाणे समचउरंसस्स संठाणस्स संठाणओ तुल्ले, समचउरंसे संठाणे समचउरंससंठाणवइरित्तस्स संठाणस्स संठाणओ नो तुल्ले।

एक समचतुरस्रसंस्थान अन्य समचतुरस्रसंस्थान के साथ संस्थान से तुल्य है, किन्तु समचतुरस्र संस्थान समचतुरस्र-संस्थान से व्यतिरिक्त संस्थान से तुल्य नहीं है।

एवं जाव हुंडे

इसी प्रकार हुण्डकसंस्थान पर्यन्त कहना चाहिए।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'संठाणतुल्लए संठाणतुल्लए।'

–विया. स. १४, उ. ७, सु. ४-१०

इस कारण से गौतम ! 'संस्थान तुल्य संस्थान तुल्य' कहा जाता है।

३५. छहिं दिसाहिं जीवाणं गई-आगई पवत्ति परूवणं–

छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. पाईणा, २. पडीणा,
३. दाहिणा, ४. उदीणा,
५. उड्ढा, ६. अहा।

छहिं दिसाहिं जीवाणं गइ पवत्तइ, तं जहा–

१. पाइणाए **जाव** ६. अहाए।
छहिं दिसाहिं जीवाणं–
२. आगई
३. वक्कंती,
४. आहारे,
५. वड्ढी,
६. णिवड्ढी,
७. विगुव्वणा,
८. गइपरियाए,
९. समुग्घाए,
१०. कालसंजोगे,
११. दंसणाभिगमे,
१२. णाणाभिगमे
१३. जीवाभिगमे,
१४. अजीवाभिगमे पण्णत्ते, तं जहा–

१. पाईणाए **जाव** ६. अहाए
एवं पंचेंदिय तिरिक्खजोणियाण वि मणुस्साण वि।

–ठाणं. अ. ६, सु. ४९९

३६. विस परिणामस्स छव्विहत्तं–

छव्विहे विसपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा–
१. डक्के,
२. भुत्ते,
३. निवइए,
४. मंसाणुसारी,
५. सोणियाणुसारी,
६. अट्ठिमिंजाणुसारी।

–ठाणं. अ. ६, सु. ५३३

३७. सत्तवयण पओग पगारा–

सत्तविहे वयणविकप्पे पण्णत्ते, तं जहा–

३५. छहों दिशाओं में जीवों की गति-आगति आदि प्रवृत्तियों का प्ररूपण–

दिशाएँ छह प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. पूर्व, २. पश्चिम,
३. दक्षिण, ४. उत्तर,
५. ऊर्ध्व, ६. अधः।

छहों ही दिशाओं में जीवों की गति (वर्तमान भव से अग्रिम भव में जाने रूप गति) होती हैं, यथा–

१. पूर्व **यावत्** ६. अधो दिशा।
२. आगति–पूर्व भव से प्रस्तुत भव में आना,
३. अवक्रान्ति–उत्पत्ति स्थान में जाकर उत्पन्न होना,
४. आहार–प्रथम समय में जीवनोपयोगी पुद्गलों का संचय करना,
५. वृद्धि–शरीर की वृद्धि,
६. हानि–शरीर की हानि
७. विक्रिया–विकुर्वणा करना,
८. गति–पर्याय-गमन करना (यहाँ इसका अर्थ परलोकगमन नहीं है)
९. समुद्घात–वेदना आदि में तन्मय होकर आत्मप्रदेशों का इधर-उधर प्रक्षेप करना,
१०. काल संयोग–सूर्य आदि द्वारा कृत काल विभाग,
११. दर्शनाभिगम–अवधि आदि दर्शन के द्वारा वस्तु का परिज्ञान,
१२. ज्ञानाभिगम–अवधि आदि ज्ञान के द्वारा वस्तु का परिज्ञान,
१३. जीवाभिगम–अवधि आदि ज्ञान के द्वारा जीव का परिज्ञान,
१४. अजीवाभिगम–अवधि आदि ज्ञान के द्वारा पुद्गलों का परिज्ञान, ये छहों दिशाओं में जीवों के होते हैं, यथा–

१. पूर्व **यावत्** ६. अधो दिशा
इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों की गति आगति आदि छहों दिशाओं में होती है।

३६. विष परिणाम के छह प्रकार–

विष का परिणाम छह प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. दष्ट–विषैले प्राणी द्वारा काट जाने पर प्रभाव डालने वाला,
२. भुक्त–खाए जाने पर प्रभाव डालने वाला,
३. निपतित–शरीर के वाहरी भाग से स्पृष्ट होकर प्रभाव डालने वाला,
४. मांसानुसारी–मांस तक की धातुओं को प्रभावित करने वाला,
५. शोणितानुसारी–रक्त तक की धातुओं को प्रभावित करने वाला,
६. अस्थिमज्जानुसारी–अस्थि मज्जा तक की धातुओं को प्रभावित करने वाला।

३७. वचन प्रयोग के सात प्रकार–

वचन के सात विकल्प कहे गए हैं, यथा–

१. आलावे,
२. अणालावे,
३. उल्लावे,
४. अणुल्लावे,
५. संलावे,
६. पलावे,
७. विप्पलावे। —ठाणं. अ. ७, सु. ५८४

१. आलाप-थोड़ा बोलना,
२. अनालाप-कुत्सित आलाप करना,
३. अल्लाप-गुनगुनाकर बोलना,
४. अनुल्लाप-कुत्सित ध्वनिविकार के द्वारा बोलना,
५. संलाप-परस्पर भाषण करना,
६. प्रलाप करना,
७. विप्रलाप-विरुद्ध वचन बोलना।

३८. विकहा सत्त पगारा–

सत्त विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. इत्थिकहा, २. भत्तकहा,
३. देसकहा, ४. रायकहा,
५. मिउकालुणिया,
६. दंसणभेयणी,
७. चरित्तभेयणी। —ठाणं. अ. ७, सु. ५६९

३८. विकथा के सात प्रकार

विकथाएँ सात प्रकार की कही गई हैं, यथा–

१. स्त्रीकथा, २. भक्तकथा,
३. देशकथा, ४. राज्यकथा
५. मृदुकारुणिकी–वियोग के समय करुणारस उत्पन्न करने वाली वार्ता,
६. दर्शनभेदिनी-सम्यक्दर्शन का विनाश करने वाली वार्ता,
७. चारित्रभेदिनी-चारित्र का विनाश करने वाली वार्ता।

३९. सत्त भयट्ठाणाणि–

सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा–

१. इहलोगभए,
२. परलोगभए,
३. आदाणभए,
४. अकम्हाभए,
५. आजीवभए,
६. मरणभए,
७. असिलोग भए। —सम. सम. ७, सु. १

३९. सात भय स्थान–

सात भय स्थान कहे गए हैं, यथा–

१. इहलोक भय-सजातीय का सजातीय से भय,
२. परलोक भय-विजातीय से भय,
३. आदान भय-धन आदि के अपहरण से भय,
४. अकस्मात् भय-किसी वाह्य निमित्त के विना होने वाला भय,
५. आजीव भय-आजीविका का भय,
६. मरण भय-मृत्यु का भय,
७. अश्लोक भय-अपकीर्ति का भय।

४०. आउव्वेदस्स अट्ठंगाणि–

अट्ठविहे आउव्वेदे पण्णत्ते, तं जहा–

१. कुमारभिच्चे,
२. कायतिगिच्छा.
३. सालाई,
४. सल्लहत्ता,
५. जंगोली,
६. भूयविज्जा।
७. खारतंते,
८. रसायणे। —ठाणं. अ. ८, सु. ६११

४०. आयुर्वेद के आठ अंग–

आयुर्वेद के आठ प्रकार कहे गए हैं, यथा–

१. कुमारभृत्य–वालकों का चिकित्साशास्त्र,
२. कायचिकित्सा–ज्चर आदि रोगों का चिकित्साशास्त्र,
३. शालाक्य–कान, मुँह, नाक आदि के रोगों की शल्य चिकित्सा का शास्त्र,
४. शल्यहत्या–शल्य चिकित्सा का शास्त्र,
५. जंगोली–विप चिकित्सा का शास्त्र,
६. भूतविद्या–देव, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि से ग्रस्त व्यक्तियों की चिकित्सा का शास्त्र।
७. क्षारतन्त्र–वीर्य पुष्टि का शास्त्र,
८. रसायन–पारद आदि धातुओं के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा का शास्त्र।

४१. पुण्णस्स णव पगारा–

णवविहे पुण्णे पण्णत्ते, तं जहा–

१. अण्ण पुण्णे, २. पाण पुण्णे,
३. वत्थ पुण्णे, ४. लयण पुण्णे,
५. सयण पुण्णे, ६. मण पुण्णे,

४१. पुण्य के नौ प्रकार–

पुण्य के नौ प्रकार कहे गए हैं, यथा–

१. अन्नपुण्य, २. पानपुण्य,
३. वस्त्रपुण्य, ४. लयनपुण्य,
५. शयनपुण्य, ६. मनपुण्य,

७. वइ पुण्णे, ८. काय पुण्णे,

९. णमोक्कार पुण्णे। –ठाणं. अ. ९, सु. ६७६

४२. नव सब्भावपयत्थाणं नामाणि–

नव सब्भावपयत्था पन्नत्ता, तं जहा–

१. जीवा, २. अजीवा,

३. पुण्णं, ४. पावं,

५. आसवो, ६. संवरो,

७. निज्जरा, ८. बंधो,

९. मोक्खो। –ठाणं. अ. ९, सु. ६६५

४३. रोगुप्पत्ति णव कारणा–

णवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ती सिया, तं जहा–

१. अच्चासणाए,

२. अहियासणाए,

३. अइणिद्दाए,

४. अइजागरिएणं,

५. उच्चारनिरोहेणं,

६. पासवणनिरोहेणं,

७. अद्धाणगमणेणं,

८. भोयणपडिकूलयाए,

९. इंदियत्थविकोवणयाए। –ठाणं. अ. ९, सु. ६६७

४४. णव सरीरस्स मलदार णामाणि–

णवसोयपरिस्सवा बोंदी पण्णत्ता, तं जहा–

१-२ दो सोत्ता, ३-४ दो णेत्ता, ५-६ दो घाणा, ७, मुहं ८. पोसए, ९ पाऊ। –ठाणं. अ. ९, सु. ६७५

४५. विविह विवक्खया अणंतस्स दस पगारा–

दसविहे अणंतए पण्णत्ते, तं जहा–

१. [illegible], २. ठवणाणंतए,

३. [illegible], ४. गणणाणंतए,

५. [illegible], ६. एगओणंतए,

७. [illegible], ८. देसवित्थाराणंतए,

९. [illegible], १०. सासयाणंतए।

–ठाणं अ. १०, सु. ७३०

४६. [illegible]

[illegible]

७. वचनपुण्य, ८. कायपुण्य,

९. नमस्कारपुण्य।

४२. सद्‌भाव पदार्थों के नव भेदों के नाम–

सद्‌भाव पदार्थ (पारमार्थिक वस्तु) नौ कहे गए हैं, यथा–

१. जीव, २. अजीव,

३. पुण्य, ४. पाप,

५. आश्रव, ६. संवर,

७. निर्जरा, ८. बंध,

९. मोक्ष।

४३. रोगोत्पत्ति के नौ कारण–

नौ स्थानों (कारणों) से रोगों की उत्पत्ति होती है, यथा–

१. निरन्तर बैठे रहना या अतिभोजन करना,

२. अहितकर आसन पर बैठना या अहितकर भोजन करना,

३. अतिनिद्रा लेने से,

४. अतिजागरण करने से,

५. उच्चार (मल) का निरोध करने (रोकने) से,

६. प्रश्रवण का निरोध करने से,

७. अधिक चलने से,

८. भोजन की प्रतिकूलता से,

९. इन्द्रियार्थविकोपन–इन्द्रिय विषयों के अधिक सेवन करने से।

४४. शरीर के मल द्वारों के नौ नाम–

शरीर से मल निकलने के नौ द्वार कहे गए हैं, यथा–

१-२. दो कान, ३-४. दो नेत्र, ५-६. दो नाक, ७. मुँह, ८. मूत्रेन्द्रिय, ९. गुदा।

४५. विविध विवक्षा से अनन्तक के दस प्रकार–

अनन्तक दस प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. नाम अनन्तक, २. स्थापना अनन्तक,

३. द्रव्य अनन्तक, ४. गणना अनन्तक,

५. प्रदेश अनन्तक, ६. एकतः अनन्तक,

७. उभयतः अनन्तक, ८. देशविस्तार अनन्तक

९. सर्वविस्तार अनन्तक, १०. शाश्वत अनन्तक।

४६. दान के दस निमित्त कारणों का प्ररूपण–

दान दस प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. अनुकम्पादान-करुणा से देना,

२. संग्रहदान-सहायता के लिए देना,

३. भयदान-भय से देना,

४. कारुण्यकदान-मृत के पीछे देना,

५. लज्जादान-लज्जावश देना,

६. गौरवदान-यश के लिए देना या गर्वपूर्वक देना,

७. अधर्मदान-हिंसा आदि में आसक्त व्यक्ति को देना,

८. धम्मे य अट्ठमे वुत्ते
९. काहीति य
१०. कतंति य॥ —ठाणं. अ. १०, सु. ७४५

८. धर्म दान-संयमी को देना,
९. करिष्यतिदान-भविष्य में सहयोग करेगा इसलिए देना,
१०. कृतमितिदान-पूर्व में सहयोग किया इसलिए उसे देना।

४७. दुसम-सुसम-काल लक्खणं–

दसहिं ठाणेहिं ओगाढं दुस्समं जाणेज्जा, तं जहा–

१. अकाले वरिसइ,
२. काले ण वरिसइ,
३. असाहू पुज्जंति,
४. साहू ण पुज्जंति,
५. गुरुसु जणो मिच्छं पडिवन्नो,
६. अमणुण्णा सद्दा,
७. अमणुण्णा रूवा,
८. अमणुण्णा गंधा,
९. अमणुण्णा रसा,
१०. अमणुण्णा फासा।

दसहिं ठाणेहिं ओगाढं सुसमं जाणेज्जा, तं जहा–

१. अकाले न वरिसइ,
२. काले वरिसइ,
३. असाहू ण पुज्जंति,
४. साहू पुज्जंति,
५. गुरूसु जणो सम्मं पडिवन्नो[1]
६. मणुण्णा सद्दा,
७. मणुण्णा रूवा,
८. मणुण्णा गंधा,
९. मणुण्णा रसा
१०. मणुण्णा फासा। —ठाणं. अ. १०, सु. ७६५

४७. दुःषम और सुषमकाल का लक्षण–

दस स्थानों से दुःषमकाल की अवस्थिति जानी जाती है, यथा–

१. अकाल में वर्षा होती है,
२. समय पर वर्षा नहीं होती है,
३. असाधुओं की प्रतिष्ठा होती है,
४. साधुओं की प्रतिष्ठा नहीं होती है,
५. गुरुजनों के प्रति अविनयपूर्ण व्यवहार होता है,
६. अमनोज्ञ शब्द होते हैं,
७. अमनोज्ञ रूप होते हैं,
८. अमनोज्ञ गंध होते हैं,
९. अमनोज्ञ रस होते हैं,
१०. अमनोज्ञ स्पर्श होते हैं।

दस स्थानों से सुषमाकाल की अवस्थिति जानी जाती है, यथा–

१. अकाल में वर्षा नहीं होती है,
२. समय पर वर्षा होती है,
३. असाधुओं की प्रतिष्ठा नहीं होती है,
४. साधुओं की प्रतिष्ठा होती है,
५. गुरुजनों के प्रति सम्यक् व्यवहार होता है,
६. शब्द मनोज्ञ होते हैं,
७. रूप मनोज्ञ होते हैं,
८. गंध मनोज्ञ होते हैं,
९. रस मनोज्ञ होते हैं,
१०. स्पर्श मनोज्ञ होते हैं।

४८. दसविह वल परूवणं–

दसविहे बले पण्णत्ते, तं जहा–

१. सोइंदिय वले, २. चक्खिंदिय वले,
३. घाणिंदिय वले, ४. रसेंदिय वले,
५. फासिंदिय वले, ६. णाणवले,
७. दंसणवले, ८. चरित्तवले,
९. तवबले, १०. वीरियवले। —ठाणं. अ. १०, सु. ७४०

४८. दस प्रकार के बलों का प्ररूपण–

दस प्रकार का वल (सामर्थ्य) कहा गया है, यथा–

१. श्रोत्रेन्द्रियवल, २. चक्षुइन्द्रियबल,
३. घ्राणेन्द्रियवल, ४. जिह्वेन्द्रियवल,
५. स्पर्शेन्द्रियवल, ६. ज्ञानवल,
७. दर्शनवल, ८. चारित्रवल,
९. तपोवल, १०. वीर्यबल।

४९. सत्थस्स दस पगारा–

दसविहे सत्थे पण्णत्ते, तं जहा–

१. सत्थमग्गी २. विसं,
३. लोणं, ४. सिणेहो,
५-६. खारमंबिलं,
७. दुप्पउत्तो मणो, ८. वाया,
९. काओ, १०. भावो य अविरई॥ —ठाणं. अ. १०, सु. ७४३

४९. दस प्रकार के शस्त्रों का प्ररूपण–

दस प्रकार का शस्त्र कहा गया है, यथा–

१. अग्नि, २. विष,
३. लवण, ४. स्नेह, (चिकनाई)
५. क्षार, (सोडा आदि) ६. अम्ल, (खटाई) तथा
७. दुष्प्रयुक्त मन, ८. दुष्प्रयुक्त वचन,
९. दुष्प्रयुक्त काया, १०. भाव से अविरति।

---

१. ठाणं. अ. ७, सु. ५५९ में सात कारणों में इनके पश्चात् दुस्सम में 'मणो दुहया, वइ दुहया' और सुस्सम में 'मणोसुहया, वइ सुहया' ये दो-दो पद हैं।

५०. आसंसापयोगस्स दस भेया–

दसविहे आसंसप्पओगे पण्णत्ते, तं जहा–

१. इहलोगासंसप्पओगे,
२. परलोगासंसप्पओगे,
३. दुहओलोगासंसप्पओगे,
४. जीवियासंसप्पओगे,
५. मरणासंसप्पओगे।
६. कामासंसप्पओगे,
७. भोगासंसप्पओगे,
८. लाभासंसप्पओगे,
९. पूयासंसप्पओगे,
१०. सक्कारासंसप्पओगे। –ठाणं. अ. १०, सु. ७५९

५१. अथिर-थिर-बालाईणं परियट्टणा-अपरियट्टणा सासयाइ परूवणं–

प. से नूणं भंते ! अथिरे पलोट्टइ, नो थिरे पलोट्टइ?

अथिरे भज्जइ, नो थिरे भज्जइ?

सासए बालए, बालियत्तं असासयं?

सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं?

उ. हंता, गोयमा ! अथिरे पलोट्टइ जाव पंडियत्तं असासयं। –विया. स. १, उ. ९, सु. २८

५२. सेलेसिं पडिवन्नगस्स अणगारस्स परप्पयोगेणविणा एयणाइ निसेह परूवणं–

प. सेलेसिं पडिवन्नए णं भंते ! अणगारे सया समियं एयइ वेयइ जाव तं तं भावं परिणमइ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थेगेणं परप्पयोगेणं। –विया. स. १७, उ. ३, सु. १

५०. आंशसा प्रयोग के दस भेद–

आशंसा प्रयोग (अभिलाषा या प्रयत्न) के दस प्रकार कहे गए हैं, यथा–

१. इहलोक की आशंसा करना,
२. परलोक की आशंसा करना,
३. इहलोक और परलोक की आशंसा करना,
४. जीवन की आशंसा करना,
५. मरण की आशंसा करना,
६. काम (शब्द और रूप) की आशंसा करना,
७. भोग (गंध, रस और स्पर्श) की आशंसा करना,
८. लाभ की आशंसा करना,
९. पूजा की आशंसा करना,
१०. सत्कार की आशंसा करना।

५१. अस्थिर स्थिर बालादि का परिवर्तन-अपरिवर्तन और शाश्वतादि का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! क्या अस्थिर आत्मा ही बदलती है और स्थिर आत्मा नहीं बदलती है?

क्या अस्थिर आत्मा ही नियम का भंग करती है और स्थिर आत्मा नहीं करती है?

क्या बाल आत्मा शाश्वत है और बालत्व आत्मा अशाश्वत है?

क्या पण्डित आत्मा शाश्वत है और पण्डितत्व अशाश्वत है?

उ. हां, गौतम ! अस्थिर आत्मा बदलती है यावत् (आत्मा का) पण्डितत्व अशाश्वत है।

५२. शैलशी प्रतिपन्नक अणगार के पर प्रयोग के विना एजनादि के निषेध का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! शैलेशी अवस्था प्राप्त अनगार क्या सदा निरन्तर कांपता है, विशेपरूप से कांपता है यावत् उन-उन भावों में परिणमता है?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, पर-प्रयोग के विना कंपन आदि संभव नहीं है।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयदव्वेयणा, नेरइयदव्वेयणा ?'

उ. गोयमा ! जे णं नेरइया नेरइयदव्वे वट्टिंसु वा, वट्टंति वा, वट्टिस्संति वा, तेणं तत्थ नेरइया नेरइयदव्वे वट्टमाणा नेरइयदव्वेयणं एइंसु वा, एयंति वा, एइस्संति वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयदव्वेयणा, नेरइय दव्वेयणा।'

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'तिरिक्खजोणियदव्वेयणा, तिरिक्खजोणियदव्वेयणा ?'

उ. गोयमा ! एवं चेव
णवरं–तिरिक्खजोणियदव्वं भाणियव्वं,

सेसं तं चेव।
एवं मणुस्सदव्वेयणा देवदव्वेयणा वि।

प. २. खेत्तेयणा णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! चउव्विहा पन्नत्ता, तं जहा–
१. नेरइयखेत्तेयणा जाव ४. देवखेत्तेयणा।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'नेरइयखेत्तेयणा, नेरइयखेत्तेयणा ?'

उ. गोयमा ! एवं चेव।

णवरं–नेरइयखेत्तेयणा भाणियव्वा।

एवं जाव देवखेत्तेयणा।
३-४. एवं कालेयणा वि, एवं भवेयणा वि।

५. एवं जाव देवभावेयणा।

–विया. स. १७, उ. ३, सु. २-१०

५४. चलणाए भेयप्पभेया तेसिं सरूव परूवणं–

प. कइविहा णं भंते ! चलणा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! तिविहा चलणा पन्नत्ता, तं जहा–
१. सरीरचलणा, २. इंदियचलणा,
३. जोगचलणा।

प. १. सरीरचलणा णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहासरीरचलणा पन्नत्ता, तं जहा–
१. ओरालियसरीरचलणा जाव ५. कम्मगसरीरचलणा।

प. २. इंदियचलणा णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

उ. गोयमा ! पंचविहा इंदियचलणा पन्नत्ता, तं जहा–
१. सोइंदियचलणा जाव ५. फासिंदियचलणा।

प. ३. जोगचलणा णं भंते ! कइविहा पन्नत्ता ?

प्र. भन्ते ! नैरयिक द्रव्य एजना को नैरयिक द्रव्य एजना क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! जो नैरयिक जीव नैरयिकद्रव्य में विद्यमान थे, हैं और रहेंगे, उन नैरयिक जीवों ने नैरयिकद्रव्य में विद्यमान होते हुए नैरयिकद्रव्य की एजना पहले भी की थी, अब भी करते हैं और भविष्य में भी करेंगे।

इस कारण से गौतम ! वह नैरयिकद्रव्य एजना नैरयिक द्रव्य एजना कहलाती है।

प्र. भन्ते ! तिर्यञ्चयोनिकद्रव्य एजना तिर्यञ्चयोनिकद्रव्य एजना क्यों कहलाती है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिए
विशेष–'नैरयिकद्रव्य' के स्थान पर 'तिर्यञ्चयोनिक द्रव्य' कहना चाहिए।
शेष सभी कथन पूर्ववत् है।
इसी प्रकार मनुष्यद्रव्य एजना और देवद्रव्य एजना के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. २. भन्ते ! क्षेत्र एजना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! वह चार प्रकार की कही गई है, यथा–
१. नैरयिकक्षेत्र एजना यावत् ४. देवक्षेत्र एजना।

प्र. भन्ते ! नैरयिकक्षेत्र एजना को नैरयिक क्षेत्र एजना क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! नैरयिकद्रव्य एजना के समान सारा कथन करना चाहिए।
विशेष–'नैरयिकद्रव्य एजना' के स्थान पर यहां 'नैरयिक क्षेत्र एजना' कहना चाहिए।
इसी प्रकार देव क्षेत्र एजना पर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिए।
३-४. इसी प्रकार काल एजना और भव एजना के भी चार-चार भेद जानना चाहिए।
५. इसी प्रकार देवभाव एजना पर्यन्त भाव एजना के चार भेद कहने चाहिए।

५४. चलना के भेद-प्रभेद और उनके स्वरूप का प्ररुपण–

प्र. भन्ते ! चलना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! चलना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. शरीरचलना, २. इन्द्रियचलना,
३. योगचलना।

प्र. १. भन्ते ! शरीरचलना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! शरीर चलना पाँच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. औदारिकशरीरचलना यावत् ५. कार्मणशरीरचलना।

प्र. २. भन्ते ! इन्द्रिय चलना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गौतम ! इन्द्रिय चलना पाँच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. श्रोत्रेन्द्रिय चलना यावत् ५. स्पर्शेन्द्रिय चलना।

प्र. ३. भन्ते ! योगचलना कितने प्रकार की कही गई है ?

उ. गोयमा ! तिविहा जोगचलणा पन्नत्ता, तं जहा–
१. मणोजोगचलणा, २. वइजोगचलणा,
३. कायजोगचलणा।

प. १. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'ओरालियसरीरचलणा-ओरालियसरीरचलणा ?

उ. गोयमा ! जं णं जीवा ओरालियसरीरे वट्टमाणा– ओरालियसरीरप्पायोग्गाइं दव्वाइं ओरालिय–सरीरत्ताए परिणामेमाणा ओरालियसरीरचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'ओरालिय-सरीरचलणा-ओरालियसरीरचलणा।'

प. २. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'वेउव्वियसरीरचलणा, वेउव्वियसरीरचलणा ?

उ. गोयमा ! **एवं चेव।**

णवरं–वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा।

एवं जाव **कम्मगसरीरचलणा।**

प. ३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'सोइंदियचलणा, सोइंदियचलणा ?'

उ. गोयमा ! जं णं जीवा सोइंदिए वट्टमाणा सोइंदियप्पायोग्गाइं दव्वाइं सोइंदियत्ताए परिणामेमाणा सोइंदियचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'सोइंदियचलणा, सोइंदियचलणा।'
एवं जाव **फासिंदियचलणा।**

प. ४, से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'मणजोगचलणा, मणजोगचलणा।'

उ. गोयमा ! जं णं जीवा मणजोए वट्टमाणा मणजोगप्पायोग्गाइं दव्वाइं मणजोगत्ताए परिणामेमाणा मणचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'मणजोगचलणा-मणजोगचलणा'
एवं वइजोगचलणा वि, एवं कायजोगचलणा वि।

–विया. स. १७, उ. ३, सु. ११-२१

उ. गौतम ! योगचलना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. मनोयोगचलना, २. वचन योगचलना,
३. काययोगचलना।

प्र. १. भन्ते ! औदारिकशरीर चलना को औदारिक शरीर चलना क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! जीवों ने औदारिक शरीर में विद्यमान रहते हुए औदारिक शरीर के योग्य द्रव्यों को औदारिकशरीर के रूप में परिणमाते हुए भूतकाल में औदारिक शरीर की चलना की थी, वर्तमान में चलना करते हैं और भविष्य में चलना करेंगे।

इस कारण से गौतम ! औदारिक शरीर चलना को औदारिक शरीर चलना कहा जाता है।

प्र. २. भन्ते ! वैक्रियशरीर चलना को वैक्रियशरीर चलना क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् (औदारिक शरीर चलना के समान) **समग्र कथन करना चाहिए।**

विशेष–औदारिकशरीर के स्थान पर वैक्रिय शरीर में विद्यमान रहते हुए कहना चाहिए।

इसी प्रकार कार्मण शरीर चलना पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. ३. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय चलना को श्रोत्रेन्द्रिय चलना क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय को धारण करते हुए जीवों ने श्रोत्रेन्द्रिय योग्य द्रव्यों को श्रोत्रेन्द्रिय रूप में परिणमाते हुए श्रोत्रेन्द्रिय चलना की थी, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे।

इस प्रकार से गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय चलना को श्रोत्रेन्द्रिय चलना कहा जाता है।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय चलना पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. ४. भन्ते ! मनोयोग चलना को मनोयोग चलना क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! क्योंकि मनोयोग को धारण करते हुए जीवों ने मनोयोग के योग्य द्रव्यों को मनोयोग रूप में परिणमाते हुए मनोयोग की चलना की थी, वर्तमान में चलना करते हैं और भविष्य में भी चलना करेंगे।

इस कारण से गौतम! मनोयोग चलना को मनोयोग चलना कहा जाता है।

इसी प्रकार वचनयोग चलना एवं काययोगचलना के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए।

५५. जीवाणं भय हेउ परूवणं–

अज्जोत्ति ! समणे भगवं महावीरे गोयमाई समणे णिग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी–

प. 'किं भया पाणा ? समणाउसो !'

गोयमाई समणा णिग्गंथा समणं भगवं महावीरं उवसंकमंति, उवसंकमित्ता वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता, णमंसित्ता एवं वयासी–

५५. जीवों के भय हेतु का प्ररूपण–

'हे आर्यो' श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमंत्रित कर इस प्रकार कहा–

प्र. 'हे आयुष्मान् श्रमणों ! जीव किससे भयभीत होते हैं ?'

गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के निकट आए और निकट आकर वन्दन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके यह कहा–

उ. णो खलु वयं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो वा पासामो वा, तं जइ णं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं णो गिलायंति परिकहित्तए, तमिच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए।

"अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे गोयमाई समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी–

"दुक्खभया पाणा समणाउसो !"

प. से णं भंते ! दुक्खे केण कडे ?

उ. गोयमा ! जीवेणं कडे पमाएणं।

प. से णं भंते ! दुक्खे कहं वेइज्जंति ?

उ. गोयमा ! अप्पमाएणं। *–ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १७४*

उ. देवानुप्रिय ! हम इस अर्थ को नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं, यदि आप देवानुप्रिय को इस अर्थ को कहने में श्रम न हो तो हम देवानुप्रिय आपके पास से इसे जानना चाहते हैं।

'हे आर्यों' श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा–

हे आयुष्मान् श्रमणों ! जीव दुःख से भयभीत होते हैं।

प्र. भन्ते ! वह दुःख किसके द्वारा किया गया है ?

उ. गौतम ! जीवों के द्वारा अपने प्रमाद से किया गया है।

प्र. भन्ते ! दुःख का वेदन (क्षय) कैसे होता है ?

उ. गौतम ! जीवों के द्वारा प्रमाद नहीं करने से क्षय होता है।

५६. जुज्झमाणाणं पुरिसाणं जय-पराजय हेऊ परूवणं–

प. दो भंते ! पुरिसा सरित्तया सरिव्वया सरिसभंडमत्तो–वगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं संगामं संगामेंति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणइ, एगे पुरिसे पराइज्जइ, से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ।'

उ. गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं नो बद्धाइं, नो पुट्ठाइं जाव नो अभिसमन्नागयाइं, नो उदिण्णाइं, उवसंताइं भवंति, से णं पुरिसे पराइणइ।

जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं जाव अभिसमन्नागयाइं उदिण्णाइं कम्माइं नो उवसंताइं भवंति, से णं पुरिसे पराइज्जइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ।'

–विया. स. १, उ. ८, सु. ९

५६. युद्ध करते हुए पुरुषों के जय-पराजय हेतु का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! एक सरीखे, एक सरीखी चमड़ी वाले, समानवयस्क, समान द्रव्य और उपकरण (शस्त्रादि साधन) वाले कोई दो पुरुष परस्पर एक-दूसरे के साथ संग्राम करे तो उनमें से एक पुरुष जीतता है और एक पुरुष हारता है तो भन्ते ! ऐसा क्यों होता है ?

उ. गौतम ! जो पुरुष सवीर्य (वीर्यवान् शक्तिशाली) होता है वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है वह हारता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'जो पुरुष सवीर्य होता है वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है वह हारता है।'

उ. गौतम ! जिसने वीर्य-विघातक कर्म नहीं बाँधे हैं, नहीं स्पर्श किये हैं यावत् प्राप्त नहीं किये हैं और उसके वे कर्म उदय में नहीं आए हैं परन्तु उपशान्त हैं वह पुरुष जीतता है।

जिसने वीर्य विघातक कर्म बाँधे हैं, स्पर्श किये हैं यावत् प्राप्त किये हैं, उसके वे कर्म उदय में आए हैं परन्तु उपशान्त नहीं हुए हैं, वह पुरुष पराजित होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'सवीर्य पुरुष विजयी होता है और वीर्यहीन पुरुष पराजित होता है।'

५७. अंगभूय अंतट्ठिय वत्थू समवाएणं रायगिह नयर परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी–

प. किमिदं भंते ! नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं पुढवी नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं आऊ नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं तेऊ, वाऊ, वणस्सई नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं टंका, कूडा, सेला, सिहरी, पब्भारा नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं जल-थल-बिल-गुह-लेणा-नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं उज्झर-निज्झर-चिल्लल-पल्लल-वप्पिणा नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

५७. अंगभूत और अंतःस्थित वस्तु समूह के द्वारा राजगृह नगर का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में यावत् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार पूछा–

प्र. भन्ते ! यह राजगृह नगर क्या कहलाता है ?

क्या पृथ्वी राजगृह नगर कहलाती है ?

क्या जल राजगृह नगर कहलाता है ?

क्या अग्नि, वायु और वनस्पति राजगृह नगर कहलाते हैं ?

क्या टंक, कूट, शैल, शिखरी और प्राग्भार राजगृह नगर कहलाते हैं ?

क्या जल, थल, बिल, गुफा और लयन राजगृह नगर कहलाते हैं ?

क्या उज्झर (जलप्रपात) झरना, निर्झर, चिल्लल (दलदल) पल्लल (जलाशय) वप्रीण (नदी आदि के किनारे का क्षेत्र) राजगृह नगर कहलाते हैं ?

उ. गोयमा ! तिविहा जोगचलणा पन्नत्ता, तं जहा–
१. मणोजोगचलणा, २. वइजोगचलणा,
३. कायजोगचलणा।

प. १. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'ओरालियसरीरचलणा-ओरालियसरीरचलणा ?

उ. गोयमा ! जं णं जीवा ओरालियसरीरे वट्टमाणा–ओरालियसरीरप्पायोग्गाइं दव्वाइं ओरालिय–सरीरत्ताए परिणामेमाणा ओरालियसरीरचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ 'ओरालिय-सरीरचलणा-ओरालियसरीरचलणा।'

प. २. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'वेउव्वियसरीरचलणा, वेउव्वियसरीरचलणा ?

उ. गोयमा ! एवं चेव।
णवरं–वेउव्वियसरीरे वट्टमाणा।
एवं जाव कम्मगसरीरचलणा।

प. ३. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'सोइंदियचलणा, सोइंदियचलणा ?'

उ. गोयमा ! जं णं जीवा सोइंदिए वट्टमाणा सोइंदियप्पायोग्गाइं दव्वाइं सोइंदियत्ताए परिणामेमाणा सोइंदियचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'सोइंदियचलणा, सोइंदियचलणा।'
एवं जाव फासिंदियचलणा।

प. ४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–
'मणजोगचलणा, मणजोगचलणा।'

उ. गोयमा ! जं णं जीवा मणजोए वट्टमाणा मणजोगप्पायोग्गाइं दव्वाइं मणजोगत्ताए परिणामेमाणा मणजोगचलणं चलिंसु वा, चलंति वा, चलिस्संति वा।
से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–
'मणजोगचलणा-मणजोगचलणा'
एवं वइजोगचलणा वि, एवं कायजोगचलणा वि।
–विया. स. १७, उ. ३, सु. ११-२१

५५. [illegible] भय हेउ [illegible]–
[illegible] समणे भगवं महावीरे गोयमाई समणे णिग्गंथे [illegible]–
प. [illegible]
[illegible]

उ. गौतम ! योगचलना तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. मनोयोगचलना, २. वचन योगचलना,
३. काययोगचलना।

प्र. १. भन्ते ! औदारिकशरीर चलना को औदारिक शरीर
क्यों कहा जाता है ?

उ. गौतम ! जीवों ने औदारिक शरीर में विद्यमान रह
औदारिक शरीर के योग्य द्रव्यों को औदारिकशरीर के
परिणमाते हुए भूतकाल में औदारिक शरीर की चलना व
वर्तमान में चलना करते हैं और भविष्य में चलना करें
इस कारण से गौतम ! औदारिक शरीर चलना को औ
शरीर चलना कहा जाता है।

प्र. २. भन्ते ! वैक्रियशरीर चलना को वैक्रियशरीर चलन
कहा जाता है ?

उ. गौतम ! पूर्ववत् (औदारिक शरीर चलना के स
समग्र कथन करना चाहिए।
विशेष–औदारिकशरीर के स्थान पर वैक्रिय शरी
विद्यमान रहते हुए कहना चाहिए।
इसी प्रकार कार्मण शरीर चलना पर्यन्त कहना चाहिए।

प्र. ३. भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय चलना को श्रोत्रेन्द्रिय चलना क्यों
जाता है ?

उ. गौतम ! क्योंकि श्रोत्रेन्द्रिय को धारण करते हुए जी
श्रोत्रेन्द्रिय योग्य द्रव्यों को श्रोत्रेन्द्रिय रूप में परिणमा
श्रोत्रेन्द्रिय चलना की थी, वर्तमान में करते हैं और भवि
करेंगे।
इस प्रकार से गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय चलना को श्रोत्रेन्द्रिय च
कहा जाता है।
इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय चलना पर्यन्त जानना चाहिए।

प्र. ४. भन्ते ! मनोयोग चलना को मनोयोग चलना क्यों
जाता है ?

उ. गौतम ! क्योंकि मनोयोग को धारण करते हुए जीव
मनोयोग के योग्य द्रव्यों को मनोयोग रूप में परिणमाते
मनोयोग की चलना की थी, वर्तमान में चलना करते हैं
भविष्य में भी चलना करेंगे।
इस कारण से गौतम! मनोयोग चलना को मनोयोग च
कहा जाता है।
इसी प्रकार वचनयोग चलना एवं काययोगचलना के सम
में भी जानना चाहिए।

५५. जीवों के भय हेतु का प्ररूपण–
'हे आर्यो' श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्र
निर्ग्रन्थों को आमंत्रित कर इस प्रकार कहा–

प्र. 'हे आयुष्मान् श्रमणों ! जीव किससे भयभीत होते हैं ?'
गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ भगवान् महावीर के निकट
और निकट आकर वन्दन नमस्कार किया, वंदन नमस
करके यह कहा–

उ. णो खलु वयं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं जाणामो वा पासामो वा, तं जइ णं देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं णो गिलायंति परिकहित्तए, तमिच्छामो णं देवाणुप्पियाणं अंतिए एयमट्ठं जाणित्तए।

"अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे गोयमाई समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी–

"दुक्खभया पाणा समणाउसो!"

प. से णं भंते ! दुक्खे केण कडे ?

उ. गोयमा ! जीवेणं कडे पमाएणं।

प. से णं भंते ! दुक्खे कहं वेइज्जंति ?

उ. गोयमा ! अप्पमाएणं। –ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १७४

उ. देवानुप्रिय ! हम इस अर्थ को नहीं जानते हैं, नहीं देखते हैं, यदि आप देवानुप्रिय को इस अर्थ को कहने में श्रम न हो तो हम देवानुप्रिय आपके पास से इसे जानना चाहते हैं।

'हे आर्यो' श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा–

हे आयुष्मान् श्रमणों ! जीव दुःख से भयभीत होते हैं।

प्र. भन्ते ! वह दुःख किसके द्वारा किया गया है ?

उ. गौतम ! जीवों के द्वारा अपने प्रमाद से किया गया है।

प्र. भन्ते ! दुःख का वेदन (क्षय) कैसे होता है ?

उ. गौतम ! जीवों के द्वारा प्रमाद नहीं करने से क्षय होता है।

५६. जुज्झमाणाणं पुरिसाणं जय-पराजय हेऊ परूवणं–

प. दो भंते ! पुरिसा सरित्तया सरिव्वया सरिसभंडमत्तो–वगरणा अन्नमन्नेणं सद्धिं संगामं संगामेंति, तत्थ णं एगे पुरिसे पराइणइ, एगे पुरिसे पराइज्जइ, से कहमेयं भंते ! एवं ?

उ. गोयमा ! सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ।

प. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–

'सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ।'

उ. गोयमा ! जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं नो बद्धाइं, नो पुट्ठाइं जाव नो अभिसमन्नागयाइं, नो उदिण्णाइं, उवसंताइं भवंति, से णं पुरिसे पराइणइ।

जस्स णं वीरियवज्झाइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं जाव अभिसमन्नागयाइं उदिण्णाइं कम्माइं नो उवसंताइं भवंति, से णं पुरिसे पराइज्जइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ–

'सवीरिए पराइणइ, अवीरिए पराइज्जइ।'

–विया. स. १, उ. ८, सु. ९

५६. युद्ध करते हुए पुरुषों के जय-पराजय हेतु का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! एक सरीखे, एक सरीखी चमड़ी वाले, समानवयस्क, समान द्रव्य और उपकरण (शस्त्रादि साधन) वाले कोई दो पुरुष परस्पर एक-दूसरे के साथ संग्राम करे तो उनमें से एक पुरुष जीतता है और एक पुरुष हारता है तो भन्ते ! ऐसा क्यों होता है ?

उ. गौतम ! जो पुरुष सवीर्य (वीर्यवान् शक्तिशाली) होता है वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है वह हारता है।

प्र. भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–

'जो पुरुष सवीर्य होता है वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है वह हारता है।'

उ. गौतम ! जिसने वीर्य-विघातक कर्म नहीं बाँधे हैं, नहीं स्पर्श किये हैं यावत् प्राप्त नहीं किये हैं और उसके वे कर्म उदय में नहीं आए हैं परन्तु उपशान्त हैं वह पुरुष जीतता है।

जिसने वीर्य विघातक कर्म बाँधे हैं, स्पर्श किये हैं यावत् प्राप्त किये हैं, उसके वे कर्म उदय में आए हैं परन्तु उपशान्त नहीं हुए हैं, वह पुरुष पराजित होता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–

'सवीर्य पुरुष विजयी होता है और वीर्यहीन पुरुष पराजित होता है।'

५७. अंगभूय अंतट्ठिय वत्थू समवाएणं रायगिह नयर परूवणं–

तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी–

प. किमिदं भंते ! नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं पुढवी नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं आऊ नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं तेऊ, वाऊ, वणस्सई नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं टंका, कूडा, सेला, सिहरी, पब्भारा नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं जल-थल-बिल-गुह-लेणा-नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

किं उज्झर-निज्झर-चिल्लल-पल्लल-वप्पिणा नगरं रायगिहं ति पवुच्चइ ?

५७. अंगभूत और अंतःस्थित वस्तु समूह के द्वारा राजगृह नगर का प्ररूपण–

उस काल और उस समय में यावत् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार पूछा–

प्र. भन्ते ! यह राजगृह नगर क्या कहलाता है ?

क्या पृथ्वी राजगृह नगर कहलाती है ?

क्या जल राजगृह नगर कहलाता है ?

क्या अग्नि, वायु और वनस्पति राजगृह नगर कहलाते हैं ?

क्या टंक, कूट, शैल, शिखरी और प्राग्भार राजगृह नगर कहलाते हैं ?

क्या जल, थल, बिल, गुफा और लयन राजगृह नगर कहलाते हैं ?

क्या उज्झर (जलप्रपात) झरना, निर्झर, चिल्लल (दलदल) पल्लल (जलाशय) वप्रीण (नदी आदि के किनारे का क्षेत्र) राजगृह नगर कहलाते हैं ?

प. आहोहिए णं भंते ! मणुस्से जे भविए अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए से नूणं भंते ! से खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, से नूणं भंते ! एयमट्ठं एवं वयह ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा छउमत्थे जाव महापज्जवसाणे भवइ।

प. परमाहोहिए णं भंते ! मणुस्से जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झित्तए जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेत्तए, से नूणं भंते ! से खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, से नूणं भंते ! एयमट्ठं एवं वयह ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, सेसं जहा छउमत्थस्स।

प. केवली णं भंते ! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झित्तए जाव अंतं करेत्तए, ते नूणं भंते ! ते खीणभोगी नो पभू उट्ठाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, से नूणं भंते ! एयमट्ठं एवं वयह ?

उ. गोयमा ! एवं चेव जहा परमाहोहिए जाव महापज्जवसाणे भवइ। *–विया. स. ७, उ. ७, सु. २०-२३*

प्र. भन्ते ! ऐसा अधोऽवधिक (नियत क्षेत्र का अवधिज्ञानी) मनुष्य जो किसी देवलोक में देव रूप में उत्पन्न होने वाला हो तो भंते ! वास्तव में वह क्षीणभोगी उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम द्वारा विपुल भोगोपभोगों को भोगने में समर्थ नहीं है ? तो भन्ते ! क्या आप इस अर्थ को इसी तरह कहते हैं ?

उ. गौतम ! छद्मस्थ के समान महापर्यवसान वाला होता है पर्यन्त समग्र कथन करना चाहिए।

प्र. भन्ते ! ऐसा परमावधिक (परम) अवधिज्ञानी मनुष्य जो उसी भवग्रहण से सिद्ध होने वाला है यावत् सर्व दुखों का अन्त करने वाला है तो भन्ते ! वास्तव में वह क्षीणभोगी उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम से विपुल भोगोपभोगों को भोगने में समर्थ नहीं है ? भन्ते ! क्या आप इस अर्थ को इसी तरह कहते हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, शेष वर्णन छद्मस्थों के समान जानना चाहिए।

प्र. भन्ते ! केवलज्ञानी मनुष्य जो उसी भव ग्रहण से सिद्ध होने वाला है यावत् सभी दुखों का अन्त करने वाला है तो भन्ते ! वास्तव में वह क्षीण भोगी उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम से विपुल भोगोपभोगों को भोगने में समर्थ नहीं है ? भन्ते ! क्या आप इस अर्थ को इसी तरह कहते हैं ?

उ. गौतम ! इसका कथन परमावधिज्ञानी की तरह महापर्यवसान वाला होता है पर्यन्त करना चाहिए।

५९. अद्दाईपेहणा विण्णाणं–

प. १. अद्दाए णं भंते ! पेहमाणे मणूसे किं अद्दायं पेहेइ, अत्ताणं पेहेइ, पलिभागं पेहेइ ?

उ. गोयमा ! अद्दाइं पेहेइ, णो अत्ताणं पेहेइ, पलिभागं पेहेइ।

एवं एएणं अभिलावेणं २. असिं, ३. मणिं, ४. उडुपाणं, ५. तेल्लं, ६. फाणियं, ७. वसं। *–पण्ण प. १५, उ. १, सु. ९९९*

५९. आदर्श आदि को देखने सम्बन्धी विज्ञान–

प्र. भन्ते ! दर्पण में अपना प्रतिविम्ब देखता हुआ मनुष्य क्या दर्पण को देखता है या अपने आपको देखता है अथवा अपने प्रतिविम्ब को देखता है ?

उ. गौतम ! वह दर्पण को देखता है, अपने शरीर को नहीं देखता है किन्तु अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देखता है।

इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार क्रमशः २. असि, ३. मणि, ४. गहरा पानी ५. तेल, ६. गीला गुड़ (काकब) ७. वसा के विषय में कथन करना चाहिए।

६०. धावमाणस्स आसस्स 'खु खु' सद्दकरणे हेऊ परूवणं–

प. आसस्स णं भंते ! धावमाणस्स किं 'खु खु' त्ति करेइ ?

उ. गोयमा ! आसस्स णं धावमाणस्स हिययस्स य जगयस्स य अंतरा एत्थ णं कक्कडए णामं वाए समुट्ठइ जे णं आसस्स धावमाणस्स 'खु खु' त्ति करेइ। *–विया. स. १०, उ. ३, सु. १८*

६०. दौड़ते हुए घोड़े के 'खु खु' शब्द करने के हेतु का प्ररूपण–

प्र. भन्ते ! दौड़ता हुआ घोड़ा 'खु खु' शब्द क्यों करता है ?

उ. गौतम ! दौड़ते हुए घोड़े के हृदय और यकृत के बीच में कर्कट नामक वायु उत्पन्न होती है। इससे दौड़ता हुआ घोड़ा 'खु खु' शब्द करता है।

६१. दव्वाणुओगस्स उवसंहारो–

संसारत्था य सिद्धा य इह जीवा वियाहिया।
रूविणो चेव रूवी य अजीवा दुविहा वि य॥

इह जीवमजीवे य सोच्चा सद्दहिऊण य।
सव्वनयाणं अणुमए रमेज्जा संजमे मुणी॥
–उत्त. अ. ३६, गा. २४८-२४९



६१. द्रव्यानुयोग का उपसंहार–

इस प्रकार संसारस्थ और सिद्धों की अपेक्षा जीवों का तथा रूपी और अरूपी की अपेक्षा दोनों प्रकार के अजीवों का कथन किया गया है।

इस प्रकार जीव और अजीव के कथन को सुनकर और उस पर श्रद्धा करके (ज्ञान एवं क्रिया आदि) सभी नयों से सम्मत संयम में मुनि रमण करें।



ग्रन्थ का नाम	संस्करण	संपादक	प्रकाशक
६. औपपातिक सूत्र	सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, पिपलिया बाजार, ब्यावर (राज.)
औपपातिक सूत्र	सानुवाद	श्री उमेश मुनि जी म. 'अणु'	जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना (म. प्र.)
औपपातिक सूत्र	मूल	युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी म.	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता
औपपातिक सूत्र	संस्कृत टीका	आचार्य श्री अभयदेव सूरि जी म.	आगमोदय समिति, सूरत
७. जीवाभिगम सूत्र	भाग १-२ सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
जीवाभिगम सूत्र	भाग १-३ सानुवाद	पूज्य श्री घासीलाल जी म.	जैन शास्त्रोद्धार समिति, अहमदाबाद
जीवाभिगम सूत्र	संस्कृत टीका	आचार्य श्री अभयदेवसूरि जी म.	आगमोदय समिति, सूरत
८. प्रज्ञापना सूत्र	भाग १-२ मूल	मुनि श्री पुण्यविजय जी म.	महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
प्रज्ञापना सूत्र	भाग १-३ सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
प्रज्ञापना सूत्र	भाग १-४ सानुवाद	पूज्य श्री घासीलाल जी म.	जैन शास्त्रोद्धार समिति, अहमदाबाद
प्रज्ञापना सूत्र	भाग १-३ संस्कृत टीका	आचार्य श्री अभयदेवसूरि जी म.	आगमोदय समिति, सूरत
९. उत्तराध्ययन सूत्र	मूल	मुनि श्री पुण्यविजय जी म.	महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
उत्तराध्ययन सूत्र	भाग १-२ सानुवाद	आचार्य श्री तुलसी जी म.	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता
उत्तराध्ययन सूत्र	भाग १-३ सानुवाद	आचार्य श्री आत्माराम जी म.	आचार्य आत्माराम प्रकाशन समिति, लुधियाना
उत्तराध्ययन सूत्र	भाग १-३ सानुवाद	आचार्य श्री हस्तीमल जी म.	सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर (राज.)
उत्तराध्ययन सूत्र	सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
उत्तराध्ययन सूत्र	सानुवाद	साध्वी श्री चंदना जी म.	सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा (उ. प्र.)
१०. नंदी सूत्र	मूल	मुनि श्री पुण्यविजय जी म.	महावीर जैन विद्यालय, गोवालिया टैंक, बम्बई
नंदी सूत्र	सानुवाद	आचार्य श्री आत्माराम जी म.	आचार्य आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना
नंदी सूत्र	सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
नंदी सूत्र	मूल	उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म.	आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद
११. अनुयोगद्वार सूत्र	मूल	मुनि श्री पुण्यविजय जी म.	महावीर जैन विद्यालय, बम्बई
अनुयोगद्वार सूत्र	भाग १-२ सानुवाद	पं. रत्न श्री ज्ञानमुनि जी म.	शालिग्राम प्रकाशन समिति, गोविन्दगढ़
अनुयोगद्वार सूत्र	सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
अनुयोगद्वार सूत्र	संस्कृत टीका	आचार्य श्री अभयदेवसूरि जी म.	आगमोदय समिति, सूरत
१२. सुत्तागमे	भाग १-२ मूल	श्री फूलचन्द जी म. 'पुप्फभिक्खु'	जैन स्थानक, गुड़गाँव (हरियाणा)
१३. अत्थागमे	भाग १-३ अनुवाद	श्री फूलचन्द जी म. 'पुप्फभिक्खु'	जे. डी. जैन, गाजियाबाद (उ. प्र.)
१४. सम्पूर्ण जैनागम बत्तीसी	सानुवाद	आचार्य श्री अमोलख ऋषि जी म.	लाला ज्वालाप्रसाद सुखदेवसहाय, हैदराबाद
सम्पूर्ण जैनागम बत्तीसी	सानुवाद	आचार्य श्री घासीलाल जी म.	अ. भा. जैन शास्त्रोद्धार समिति, अहमदाबाद
सम्पूर्ण जैनागम बत्तीसी	सानुवाद	युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म.	आगम प्रकाशन समिति, पिपलिया बाजार, ब्यावर
१५. अंगसुत्ताणि	भाग १-३ मूल	युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी म.	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
१६. उवंगसुत्ताणि	भाग १-२ मूल	युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी म.	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
१७. नवसुत्ताणि	मूल	युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ जी म.	जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
१८. अंग पविट्ठ	भाग १-३ मूल	श्री रतनलाल जी डोसी	जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना (म. प्र.)
१९. अनंग पविट्ठ	मूल	श्री रतनलाल जी डोसी	जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना (म. प्र.)
२०. आगम सुधा सिन्धु	भाग १-१४ मूल	श्री हर्षचन्द्र विजय जी	हर्ष पुष्पामृत ग्रन्थमाला, जामनगर (सौराष्ट्र)
२१. जैनागम नवनीत	भाग १-८ हिन्दी	श्री तिलोक मुनि जी म.	आगम नवनीत प्रकाशन समिति, सिरोही (राज.)
२२. जैनागम निर्देशिका	हिन्दी	उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म.	आगम अनुयोग प्रकाशन परिषद्, दिल्ली-सांडेराव
२३. धर्मकथानुयोग	भाग १-२ सानुवाद	उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म.	आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद-१३
२४. चरणानुयोग	भाग १-२ सानुवाद	उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म.	आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद-१३
२५. गणितानुयोग	सानुवाद	उपाध्याय श्री कन्हैयालाल जी म.	आगम अनुयोग ट्रस्ट, अहमदाबाद-१३
२६. कर्मग्रन्थ भाग १-६	सानुवाद	श्रीचन्द जी सुराना, पं. देवकुमार जी जैन	श्री मरुधरकेशरी साहित्य प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
२७. क्रिया कोश	सानुवाद	श्रीचन्द जी रामपुरिया	श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता

प्रकीर्णक (पृ. १८९३-१९१५)

धर्मकथानुयोग–

द्रव्यानुयोग–

४४. चरमाचरम अध्ययन (पृ. १७०८-१७२६)

गणितानुयोग–

पृ. ७४२, सू. ५–लोक के चरमाचरम।

पृ. ७४३, सू. ६–अलोक के चरमाचरम।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ११६, सू. २१–चरम-अचरम जीव।

पृ. ११३८, सू. ७९–चरम-अचरम की अपेक्षा आठ कर्मों का बंध।

पृ. १२११, सू. १६९–चरमाचरम की अपेक्षा जीव और चौवीस दंडकों में महाकर्मत्वादी का प्ररूपण।

४५. अजीव द्रव्य अध्ययन (पृ. १७२७-१७४६)

गणितानुयोग–

पृ. २४, सू. ५५–अजीव के दो प्रकार।

पृ. २४, सू. ६०–रूपी अजीव के चार प्रकार।

पृ. २४, सू. ६०–अरूपी अजीव के सात प्रकार।

पृ. ६५७, सू. ४–अरूपी अजीव के चार प्रकार।

द्रव्यानुयोग–

पृ. १०, सू. ४–अजीव के भेद।

पृ. ६५, सू. ७–अजीव के पर्याय और परिमाण।

पृ. ९४, सू. ४–अजीव परिणाम के भेद।

पृ. २२, सू. २०-२२–अजीव के भेद।

पृ. ९४, सू. ४–अजीव संस्थान परिणाम।

पृ. ५२१, सू. ९–भाषा में अजीवत्व का प्ररूपण।

पृ. ५२१, सू. १०–अजीवों के भाषा का निषेध।

पृ. ५४०, सू. १३–मन के अजीवत्व का प्ररूपण।

पृ. ५४०, सू. १४–अजीवों के मन का निषेध।

पृ. १७१४, सू. ६–परिमण्डलादि संस्थानों के चरमाचरमत्व।

पृ. १७४३, सू. ९–परिमण्डलादि संस्थानों के सौ भेद।

४६. पुद्गल अध्ययन (पृ. १७४७-१८९२)

धर्मकथानुयोग–

भाग १, खण्ड १, पृ. १९, सू. ४८–मणियों के वर्ण, गंध, स्पर्श का वर्णन।

भाग १, खण्ड १, पृ. १५५, सू. ३९२–पाँच काम गुण।

भाग २, खण्ड ६, पृ. ३६१, सू. ६४५–अचित्त पुद्गलावभासन उद्योत सम्बन्धी प्रश्नोत्तर।

भाग २, खण्ड ४, पृ. २०-२२, सू. २०–काले वर्ण की मणी, नीले वर्ण की मणी, लाल वर्ण की मणी, पीले वर्ण की मणी, श्वेत वर्ण की मणी, मणियों की गंध, मणियों का स्पर्श सम्बन्धी वर्णन।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १६६, सू. ३५३–पुद्गल को पकड़ने की शक्ति के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर।

गणितानुयोग–

पृ. [illegible], सू. ११३ (२)–ऊर्ध्वलोक में अनन्त वर्णादि पर्यव।

पृ. ७१२, सू. ३४–पुद्गल परावर्त के भेदों का प्ररूपण।

पृ. ७१२, सू. ३५–परमाणु पुद्गलों के अनन्तानन्त पुद्गल परावर्तों का प्ररूपण।

पृ. ७१२, सू. ३६–पुद्गल परावर्त के सात भेदों का प्ररूपण।

द्रव्यानुयोग–

पृ. ११, सू. ६–पुद्गल का लक्षण।

पृ. ११, सू. ७–सर्व द्रव्यों में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श।

पृ. २५, सू. २८–जीव और पुद्गल आदि का अल्पबहुत्व।

पृ. ३०, सू. ७–पंचास्तिकायों में वर्णादि का प्ररूपण।

पृ. ४०-४५, सू. ५–वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की अपेक्षा पर्यायों का परिमाण।

पृ. ४८-६५, सू. ६–जघन्य, उत्कृष्ट, अजघन्य-अनुत्कृष्ट वर्ण, गंध, रस, स्पर्श वाले नैरयिक, तिर्यञ्च मनुष्य और देव के पर्यायों के परिमाण।

पृ. ६६, सू. ८–परमाणु पुद्गलों के पर्यायों के परिमाण।

पृ. ६७, सू. ९–स्कन्धों के पर्यायों का परिमाण।

पृ. ६९, सू. १०–एकादिप्रदेशावगाढ़ पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण।

पृ. ७१, सू. १२–एकादिगुणयुक्त वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले पुद्गलों के पर्यायों का परिमाण। (पृ. ७१, सू. ११ व १३ से १९ में भी पर्यायों के परिमाण परमाणु पुद्गल हैं।)

पृ. ९५, सू. ४–वर्ण, गंध, रस, स्पर्श परिणाम के प्रकार।

पृ. ३३, सू. १२–पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों में द्रव्य और द्रव्यदेशों का प्ररूपण।

पृ. ९५, सू. ४–शब्द परिणाम के प्रकार।

पृ. २५, सू. २८–पुद्गल आदि का अल्पबहुत्व।

पृ. १९५, सू. ९८–चौवीस दंडक में समान वर्ण।

पृ. ३६०, सू. १२–चौवीस दंडकों के जीवों द्वारा पुद्गलों का आहरण, निर्जरण।

पृ. ३६०, सू. १३–चौवीस दंडकों में निर्जरा पुद्गलों के जानने-देखने और आहरण का प्ररूपण।

पृ. ३९६, सू. ४–शरीरों का पुद्गल चयन।

पृ. ४६५, सू. २१–पुद्गलों के ग्रहण द्वारा वर्णादि का प्ररूपण।

पृ. ४६४, सू. १९–पुद्गलों के ग्रहण द्वारा विकुर्वणाकरण परिणमन।

पृ. ७२०, सू. १२६–छद्मस्थादि द्वारा परमाणु पुद्गलादि का जानना-देखना।

पृ. ५५९, सू. ९–पुद्गल गति का स्वरूप।

पृ. ७२१, सू. १२७–निर्जरा पुद्गलों का जानना-देखना।

पृ. ७३२, सू. १४९–नैगमादि नयों से परमाणु पुद्गलादि के भंग।

पृ. ८५९, सू. २१–सलेश्य चौवीस दंडकों में सभी समान वर्ण वाले नहीं हैं।

पृ. १२०८, सू. १६४–आठ कर्मों में वर्णादि का प्ररूपण।

पृ. १२८१, सू. ३६–उत्पल पत्र में वर्ण, गंध आदि।

पृ. १४०७, सू. २८–वैमानिक देवों के शरीरों के वर्ण, गंध और स्पर्श।

प्रकीर्णक (पृ. १८९३-१९१५)

धर्मकथानुयोग–

द्रव्यानुयोग–

●●

परिशिष्ट-२

संकलन में प्रयुक्त आगमों के स्थल निर्देश
(द्रव्यानुयोग भाग १, २, ३ के अनुसार)

पृष्ठांक		स्थल निर्देश		

१. द्रव्यानुयोग प्रारम्भिक (पृ. २-४)

सूत्रकृतांग सूत्र

३	श्रु. २	अ. ५		गा. १३

ठाणांग सूत्र

३		अ. १०		सू. ७२६

औपपातिक सूत्र

३-४				सू. ५६

दशवैकालिक सूत्र

२-३		अ. ४		गा. ३४-४८

उत्तराध्ययन सूत्र

२		अ. २०		गा. १
		अ. ३६		गा. १
		अ. ३६		गा. ३

२. द्रव्य अध्ययन (पृ. ५-२५)

ठाणांग सूत्र

६		अ. २	उ. १	सू. ६३
२२		अ. ३	उ. २	सू. १७३

समवायांग सूत्र

६	टि.			सू. १४९/१
२२	टि.			सू. १४९

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१२		श. १	उ. ३	सू. ७ (१-५)
२३		श. १	उ. ९	सू. ९
२३		श. १	उ. ९	सू. १६
२३		श. १	उ. १०	सू. २९-३०
११		श. १२	उ. ५	सू. ३३-३५
१४-१८		श. १३	उ. ४	सू. २९-५१
१८-२१		श. १३	उ. ४	सू. ५२-६३
६		श. २५	उ. २	सू. १
१३		श. २५	उ. २	सू. ७
२५	टि.	श. २५	उ. ३	सू. १२०
६	टि.	श. २५	उ. ४	सू. ८
१२-१३		श. २५	उ. ४	सू. ९-१६
२५	टि.	श. २५	उ. ४	सू. १७
१३		श. २५	उ. ४	सू. १८-२३
१३-१४		श. २५	उ. ४	सू. २४-२७

जीवाभिगम सूत्र

६	टि.	पडि. १	सू. २
२२	टि.	पडि. १	सू. ४
२२	टि.	पडि. १	सू. ५

पण्णवणा सूत्र

६	टि.	प. १	सू. ३
२२	टि.	प. १	सू. ५
२३-२५		प. ३	सू. २७०-२७३
२५		प. ३	सू. २७५
२३		प. ३	सू. ३२८-३२९
२२	टि.	प. ५	सू. ५००
२२	टि.	प. ५	सू. ५०२
२२		प. १५	सू. १०००-१००१
११		प. १८	सू. १३९५

उत्तराध्ययन सूत्र

१०		अ. २८	गा. ६
२१		अ. २८	गा. ८
११		अ. २८	गा. ९-१२
२१		अ. ३६	गा. २
२१		अ. ३६	गा. ४
२२		अ. ३६	गा. ५-६
२२		अ. ३६	गा. ७-९
२२		अ. ३६	गा. १०
२१		अ. ३६	गा. ४८ (१)
६	टि.	अ. ३६	गा. ४८

अनुयोगद्वार सूत्र

६-७		सू. १३२-१३४
७-१०		सू. २१६ (१-१९)
६		सू. २१८
६	टि.	सू. २६९
११		सू. २६९
२१	टि.	सू. ३९९
२१	टि.	सू. ४००
२२	टि.	सू. ४०१
२२	टि.	सू. ४०२

३. अस्तिकाय अध्ययन (पृ. २६-३५)

स्थानांग सूत्र

३०	अ. ४	उ. १	सू. २५२
३४	अ. ४	उ. ३	सू. ३३३/१

४. पर्याय अध्ययन (पृ. ३६-८८)

५. परिणाम अध्ययन (पृ. ८९-९५)

६. जीव-अजीव अध्ययन (पृ. ९६-१००)

७. जीव अध्ययन (पृ. १०१-२६१)

१०८	टि.	अ. ४	उ. ४	सू. ३५१ (३)
१३०		अ. ४	उ. ४	सू. ३६५
११८	टि.	अ. ४	उ. ४	सू. ३६५
१७२	टि.	अ. ५	उ. १	सू. ४०१/१
१३७	टि.	अ. ५	उ. ३	सू. ४४४
११८	टि.	अ. ५	उ. ३	सू. ४५८
१३०		अ. ५	उ. ३	सू. ४५८/१
१०७		अ. ६		सू. ४७९
१३०		अ. ६		सू. ४८२ (१)
११८	टि.	अ. ६		सू. ४८३
१६१	टि.	अ. ६		सू. ४९० (१)
१६१	टि.	अ. ६		सू. ४९० (२)
१६४	टि.	अ. ६		सू. ४९७
१०८		अ. ६		सू. ५१३
१३७	टि.	अ. ७		सू. ५४७
१३०		अ. ७		सू. ५६०
११९	टि.	अ. ७		सू. ५६२
१३०		अ. ८		सू. ६४६ (१)
११९	टि.	अ. ८		सू. ६४६/१
११९	टि.	अ. ८		सू. ६४६/२
१७१	टि.	अ. ८		सू. ६५४
१०७		अ. ९		सू. ६६६
१३०		अ. ९		सू. ६६६ (१)
११९	टि.	अ. ९		सू. ६६६/११
१२०	टि.	अ. ९		सू. ६६६/१२
१५२	टि.	अ. ९		सू. ७०१
१५८	टि.	अ. ९		सू. ७०१
१६५	टि.	अ. १०		सू. ७५१
१९२		अ. १०		सू. ७५७
१५६	टि.	अ. १०		सू. ७८२
१३१		अ. १०		सू. ७७१ (१)
१२०	टि.	अ. १०		सू. ७७१/२
१२०	टि.	अ. १०		सू. ७७१/३
१५८	टि.	अ. १०		सू. ७८२

समवायांग सूत्र

१३१	टि.	सम. १४	सू. १
१६४	टि.	सम. १८	सू. ७
१२३		सम. ३१	सू. १
१४२	टि.	सम. ८४	सू. १३
१२४	टि.		सू. १०४
१२०	टि.		सू. १४९
१५३	टि.		सू. १४९

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१९८-१९९		श. १	उ. १	सू. ७-८
१९४-१९६	टि.	श. १	उ. २	सू. ५ (१-७)
१९७	टि.	श. १	उ. २	सू. ६
१९८	टि.	श. १	उ. २	सू. ७
१९८	टि.	श. १	उ. २	सू. ८
१९९	टि.	श. १	उ. २	सू. ९
२००	टि.	श. १	उ. २	सू. १०
२००	टि.	श. १	उ. २	सू. ११
१०५		श. १	उ. ४	सू. ११
२०१-२०६		श. १	उ. ५	सू. ६-३६
१७६-१७७		श. १	उ. ८	सू. १०-११
२१२		श. १	उ. ९	सू. ६
१७१	टि.	श. २	उ. ७	सू. १
१०५		श. २	उ. १०	सू. ९ (१-२)
१०९		श. ५	उ. २	सू. १४
१०९-११०		श. ५	उ. २	सू. १५
११०		श. ५	उ. २	सू. १६
११०		श. ५	उ. २	सू. १७
२०७-२०९		श. ५	उ. ७	सू. ३०-३६
११४-११५		श. ५	उ. ८	सू. १०-२०
११३		श. ५	उ. ८	सू. २१-२८
२१०-२११		श. ५	उ. ९	सू. ३-९
२११-२१२		श. ५	उ. ९	सू. १०-१३
१७१	टि.	श. ५	उ. ९	सू. १७
१७२	टि.	श. ५	उ. ९	सू. १७
१११-११२		श. ६	उ. ३	सू. ८-९
१८४-१८७		श. ६	उ. ४	सू. १-१९
१८४		श. ६	उ. ४	सू. २०
१७४	टि.	श. ६	उ. ४	सू. २१
१७७		श. ६	उ. ४	सू. २१
१७७		श. ६	उ. ४	सू. २२-२३
१७८		श. ६	उ. ४	सू. २४
१७३		श. ६	उ. १०	सू. २-५
१७३-१७४		श. ६	उ. १०	सू. ६-८
२१३		श. ६	उ. १०	सू. ९-१०
१७४-१७५		श. ७	उ. २	सू. ९-१६
१७५-१७६		श. ७	उ. २	सू. १७-२७
१७४		श. ७	उ. २	सू. २९-३५
१८२-१८३		श. ७	उ. २	सू. ३६-३८
१८३		श. ७	उ. ३	सू. २३-२४
१३०	टि.	श. ७	उ. ४	सू. २
१७३	टि.	श. ७	उ. ४	सू. २
१८८-१८९		श. ७	उ. ७	सू. १३-१९
१०८-१०९		श. ७	उ. ८	सू. २
१०९		श. ८	उ. ३	सू. ६
१७१	टि.	श. ८	उ. ५	सू. १५
१८९-१९०		श. ८	उ. १०	सू. ५९-६१
१२२	टि.	श. ११	उ. ९	सू. ३३

१२५	टि.	श. ११	उ. [illegible]	सू. [illegible]
११२		श. १२	उ. २	सू. [illegible]
१०६-१०७		श. १२	उ. ५	सू. २
१७१	टि.	श. १३	उ. २	सू. २
१७३	टि.	श. १३	उ. २	सू. २
२१४-२१५		श. १४	उ. २	सू. [illegible]
२०९-२१०		श. १४	उ. ३	सू. [illegible]
२१६-२१८		श. १४	उ. ५	सू. [illegible]
२१८-२१९		श. १४	उ. ५	सू. [illegible]
२०१		श. १४	उ. ६	सू. [illegible]
१७९-१८०		श. १६	उ. १	सू. [illegible]
१८०		श. १६	उ. १	सू. १८
१८१		श. १६	उ. १	सू. १९
१८२		श. १६	उ. १	सू. २०
१८१		श. १६	उ. १	सू. २१-२८
१८१-१८२		श. १६	उ. १	सू. २९-३०
१८२		श. १६	उ. १	सू. ३१-३३
१७८		श. १६	उ. ६	सू. ३-८
१७८		श. १६	उ. ६	सू. १०
१९७	टि.	श. १६	उ. ११	सू. १
१९७	टि.	श. १६	उ. १२-१४	
१८२		श. १७	उ. २	सू. ११-१६
१९८	टि.	श. १७	उ. १२	सू. १
१९७	टि.	श. १७	उ. १३-१७	
२१३		श. १८	उ. ७	सू. ३-११
१९२-१९४		श. १९	उ. ४	सू. १-२२
१९३-१९४		श. १९	उ. ८	सू. १-४
२१३-२१४		श. १९	उ. ८	सू. २१-२५
२१४		श. १९	उ. ९	सू. १-३
२१४		श. १९	उ. ९	सू. ९-१०
२००	टि.	श. १९	उ. १०	सू. १
१७१	टि.	श. २०	उ. ८	सू. १७
१३१		श. २५	उ. १	सू. ४
२३६-२३७		श. २५	उ. १	सू. ५
१०८	टि.	श. २५	उ. २	सू. ३
१८७-१८८		श. २५	उ. २	सू. ४-६
१८३-१८४		श. २५	उ. ४	सू. ८१-८६
१४९	टि.	श. २५	उ. ५	सू. ४५-४६
२५४	टि.	श. २६	उ. ३	सू. ११९

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

११०-१११	श्रु. १ अ. १०	सू. ४-६

औपपातिक सूत्र

१२५	सू. १५६-१५९
१२४	सू. १६८-१६९
१२३-१२४	सू. १७०-१७५
[illegible]	सू. [illegible]
[illegible]	सू. [illegible]
[illegible]	सू. [illegible]

जीवाजीवाभिगम सूत्र

[illegible]	टि.	पडि. १	सू. [illegible]
[illegible]	टि.	पडि. १	सू. [illegible]
[illegible]		पडि. १	सू. [illegible]
[illegible]		पडि. १	सू. [illegible]
[illegible]	टि.	पडि. १	सू. १०
१३४	टि.	पडि. १	सू. ११
१३४	टि.	पडि. १	सू. १२
१३४	टि.	पडि. १	सू. १३
१३५	टि.	पडि. १	सू. १४
१३५	टि.	पडि. १	सू. १५
१३५	टि.	पडि. १	सू. १६
१३५	टि.	पडि. १	सू. १७
१३८	टि.	पडि. १	सू. १८
१३८	टि.	पडि. १	सू. १९
१३८	टि.	पडि. १	सू. २०
१३९	टि.	पडि. १	सू. २० (१-२)
१४३	टि.	पडि. १	सू. २०
१४८	टि.	पडि. १	सू. २१ (१-२)
१२६	टि.	पडि. १	सू. २२
१३६	टि.	पडि. १	सू. २३
१३६	टि.	पडि. १	सू. २४
१३७	टि.	पडि. १	सू. २५
१३७	टि.	पडि. १	सू. २६
१३८	टि.	पडि. १	सू. २६
१५०	टि.	पडि. १	सू. २७
१५०	टि.	पडि. १	सू. २८
१५१	टि.	पडि. १	सू. २९
१५२	टि.	पडि. १	सू. ३०
१५२	टि.	पडि. १	सू. ३१
१५२	टि.	पडि. १	सू. ३२
१५५	टि.	पडि. १	सू. ३३, ३४, ३७
१५४	टि.	पडि. १	सू. ३५
१५८	टि.	पडि. १	सू. ३६
१५९	टि.	पडि. १	सू. ३६
१६१	टि.	पडि. १	सू. ३६
१५७	टि.	पडि. १	सू. ३६ (१-२)
१५५	टि.	पडि. १	सू. ३७
१५४	टि.	पडि. १	सू. ३८
१५६	टि.	पडि. १	सू. ३९
१५५	टि.	पडि. १	सू. ३९ (१-२)
१५८	टि.	पडि. १	सू. ३९

१५९	टि.	पडि. १	सू. ३९
१६०	टि.	पडि. १	सू. ४०
१६१	टि.	पडि. १	सू. ४१ (१-३)
१७३	टि.	पडि. १	सू. ४२
२२४		पडि. १	सू. ४३
२५६		पडि. १	सू. ४३
२२७		पडि. १	सू. ४३
१५७	टि.	पडि. १	सू. १०८
१५७	टि.	पडि. १	सू. १०९
१५८	टि.	पडि. १	सू. ११०
१२६		पडि. २	सू. ४४
१२६		पडि. २	सू. ४५ (१)
१२६-१२७		पडि. २	सू. ४५ (१)
१२७		पडि. २	सू. ४५ (२)
१२७-१२८		पडि. २	सू. ४५ (३)
१२८		पडि. २	सू. ५२ (१-४)
१६१	टि.	पडि. २	सू. ५२
१२९-१३०		पडि. २	सू. ५८ (१-४)
१२८		पडि. २	सू. ६४
१३०	टि.	पडि. ३	सू. ६५
१५२	टि.	पडि. ३	सू. ६६
१९४	टि.	पडि. ३	सू. ८८ (१)
१५३		पडि. ३	सू. ९६ (१)
१५४	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (२)
१५६	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (२)
१३४	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (१)
१५४	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (२)
१५५	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (२)
१५९	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (२)
१६०	टि.	पडि. ३	सू. ९६ (२)
१४२		पडि. ३	सू. ९८
१४०	टि.	पडि. ३	सू. ९८ (१-३)
१३०	टि.	पडि. ३	सू. १००
१३४	टि.	पडि. ३	सू. १००
१७३	टि.	पडि. ३	सू. १००
१३४		पडि. ३	सू. १०१
२१९	टि.	पडि. ३	सू. १०१ (१)
२१९-२२०		पडि. ३	सू. १०१ (२)
१६१	टि.	पडि. ३	सू. १०५
१६१	टि.	पडि. ३	सू. १०६
१६१		पडि. ३	सू. १०६
१६१	टि.	पडि. ३	सू. १०७
१६२	टि.	पडि. ३	सू. १०८
१६२	टि.	पडि. ३	सू. ११३
१७१	टि.	पडि. ३	सू. ११३
१७१	टि.	पडि. ३	सू. ११४
१७१	टि.	पडि. ३	सू. ११५
१७३	टि.	पडि. ३	सू. ११५
१३०	टि.	पडि. ४	सू. २०७
१३०	टि.	पडि. ५	सू. २१०
१३४	टि.	पडि. ५	सू. २१०
१३५	टि.	पडि. ५	सू. २१०
१३६	टि.	पडि. ५	सू. २१०
१३८	टि.	पडि. ५	सू. २१०
१५०		पडि. ५	सू. २१०
२२१	टि.	पडि. ५	सू. २१२
२२७		पडि. ५	सू. २१२
२५६	टि.	पडि. ५	सू. २१३
२५४	टि.	पडि. ५	सू. २१३
२२२	टि.	पडि. ५	सू. २१५
२२७-२२८		पडि. ५	सू. २१६
२४६	टि.	पडि. ५	सू. २१७
२१९	टि.	पडि. ५	सू. २१९ (१-२)
२२८		पडि. ५	सू. २२०
२४९	टि.	पडि. ५	सू. २२१ (अ)
२५४	टि.	पडि. ५	सू. २२१ (आ)
१४९-१५०		पडि. ५	सू. २२२-२२३
२५८-२६१		पडि. ५	सू. २२४
१४८-१४९		पडि. ६	सू. २२४
१३०	टि.	पडि. ६	सू. २२५
२२७	टि.	पडि. ६	सू. २२६
१३०	टि.	पडि. ७	सू. २२७
१३०	टि.	पडि. ८	सू. २२८
२२१	टि.	पडि. ८	सू. २२८
२३६	टि.	पडि. ८	सू. २२८
१३१	टि.	पडि. ९	सू. २२९
२२७		पडि. ९	सू. २३०
२५७-२५८		पडि. ९	सू. २३०
११५-११६		पडि. ९	सू. २३१
२२८		पडि. ९	सू. २३१
१२०	टि.	पडि. ९	सू. २३१
११६		पडि. ९	सू. २३२ (१-७)
२५४		पडि. ९	सू. २३२
११६		पडि. ९	सू. २३३
११६		पडि. ९	सू. २३४
११६		पडि. ९	सू. २३५ (१-२)
११६		पडि. ९	सू. २३६
११७		पडि. ९	सू. २३७
११७		पडि. ९	सू. २३८
२२५	टि.	पडि. ९	सू. २३८
२५६	टि.	पडि. ९	सू. २३८
११७		पडि. ९	सू. २३९

२२४	टि.	पडि. ९	सू. २३९	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
२२८		पडि. ९	सू. २३९	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
२५७	टि.	पडि. ९	सू. २३९	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
११७		पडि. ९	सू. २४०	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
२२४	टि.	पडि. ९	सू. २४०	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
२२८		पडि. ९	सू. २४०	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
२४३	टि.	पडि. ९	सू. २४०	[illegible]	पद १	सू. [illegible]
११७		पडि. ९	सू. २४१	१४०-१४१	पद १	सू. [illegible]
११७		पडि. ९	सू. २४२	१४२-१४३	पद १	सू. [illegible]
२२६	टि.	पडि. ९	सू. २४२	१४३	पद १	सू. ५३
२५७	टि.	पडि. ९	सू. २४२	१४३-१४४	पद १	सू. ५४(१-२)
११७		पडि. ९	सू. २४२	१४४-१४५	पद १	सू. ५४(३-११, ५५)
२२४-२२५		पडि. ९	सू. २४२	१५०	पद १	सू. ५६
२२८		पडि. ९	सू. २४३	१५१	पद १	सू. ५७
२५७		पडि. ९	सू. २४३	१५१-१५२	पद १	सू. ५८
११७		पडि. ९	सू. २४४	१५२	पद १	सू. ५९
११७		पडि. ९	सू. २४५	१५३	पद १	सू. ६०
११८		पडि. ९	सू. २४६	१५४	पद १	सू. ६१
११८		पडि. ९	सू. २४७	१५४	पद १	सू. ६२-६३
११८		पडि. ९	सू. २४८	१५४-१५५	पद १	सू. ६४-६६
११८		पडि. ९	सू. २४९	१५५	पद १	सू. ६७-६८
११८		पडि. ९	सू. २५० (१-२)	१५५-१५६	पद १	सू. ६९-७५
११८		पडि. ९	सू. २५१	१५६	पद १	सू. ७६
११९		पडि. ९	सू. २५२	१५६-१५८	पद १	सू. ७६-८४
२५४	टि.	पडि. ९	सू. २५२	१५८-१५९	पद १	सू. ८५
११९		पडि. ९	सू. २५३	१५९-१६०	पद १	सू. ८६-९१
११९		पडि. ९	सू. २५४	१६१	पद १	सू. ९२
११९		पडि. ९	सू. २५५	१६१	पद १	सू. ९३
११९		पडि. ९	सू. २५६	१६१-१६२	पद १	सू. ९४-९७
१२०		पडि. ९	सू. २५६	१६२-१६३	पद १	सू. ९८
२२६		पडि. ९	सू. २५६	१६३-१६४	पद १	सू. ९९-१०७
२५७		पडि. ९	सू. २५६	१६४-१६५	पद १	सू. १०८
११९-१२०		पडि. ९	सू. २५७	१६५	पद १	सू. १०९-११० (१)
२२६		पडि. ९	सू. २५८	१६५-१६७	पद १	सू. ११०-११९ (३)
१२०		पडि. ९	सू. २५८	१६७-१७१	पद १	सू. १२०-१३८
२२०	टि.	पडि. ९	सू. २५८	१७१-१७३	पद १	सू. १४६-१४७
२३५-२३६		पडि. ९	सू. २५८	२२८-२३२	पद ३	सू. २१३-२२४
१२०		पडि. ९	सू. २५९	२४४-२४६	पद ३	सू. २३२-२३६
				२४३-२४४	पद ३	सू. २३७-२४१
		प्रज्ञापना सूत्र		२४६	पद ३	सू. २६५
१२०		पद १	सू. १४	२४७	पद ३	सू. २६६
१२०-१२१		पद १	सू. १५-१७	२४३	पद ३	सू. २६७
१३०	टि.	पद १	सू. १८	२४६-२४७	पद ३	सू. २६९
१३३		पद १	सू. १८	२३७-२३९	पद ३	सू. २७६-२९१
३४		पद १	सू. १९	२३९-२४३	पद ३	सू. ३०७-३२४
४		पद १	सू. २०-२२	२३२-२३५	पद ३	सू. ३३४

१९४-२००	पद १७	उ. १	सू. ११२३-११४४
२१९	पद १८		सू. १२६०
२२०-२२३	पद १८		सू. १२८५-१३२०
२२५	पद १८		सू. १३७६-१३८२
२२४	पद १८		सू. १३८३-१३८५
२२४	पद १८		सू. १३८६-१३८८
२२५-२२६	पद १८		सू. १३९२-१३९४
२९५-२९६	पद ३४		सू. २०३३-२०३७
२०६-२०७	पद ३४		सू. २०४७-२०४८
२०७	पद ३४		सू. २०४९-२०५०

उत्तराध्ययन सूत्र

१६५	टि.	अ. २८	गा. १६
१६५	टि.	अ. २८	गा. २८-३१
१२०		अ. ३६	गा. ४८
१२१		अ. ३६	गा. ४९
१२५		अ. ३६	गा. ४९-५४
१२४	टि.	अ. ३६	गा. ५५-५६
१२४		अ. ३६	गा. ६५
१२४	टि.	अ. ३६	गा. ६६
१२४		अ. ३६	गा. ६७
१२६	टि.	अ. ३६	गा. ६८
१२६	टि.	अ. ३६	गा. ६९-१०६
१३४	टि.	अ. ३६	गा. ७०
१३५	टि.	अ. ३६	गा. ७०
१३४	टि.	अ. ३६	गा. ७१-७२
१३५	टि.	अ. ३६	गा. ७२-७७
२२७	टि.	अ. ३६	गा. ८२
१३६	टि.	अ. ३६	गा. ८४
१३६	टि.	अ. ३६	गा. ८५
२२७	टि.	अ. ३६	गा. ९०
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ९२
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ९३
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ९४-९५
१४८	टि.	अ. ३६	गा. ९६
१४३	टि.	अ. ३६	गा. ९६-९९
१४३	टि.	अ. ३६	गा. ९७-१००
२२७	टि.	अ. ३६	गा. १०४
१२६	टि.	अ. ३६	गा. १०७
१३६	टि.	अ. ३६	गा. १०८
१३७	टि.	अ. ३६	गा. १०८-११०
२२७	टि.	अ. ३६	गा. ११५
१३७	टि.	अ. ३६	गा. ११७
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ११८-११९
२२७	टि.	अ. ३६	गा. १२४
१५०	टि.	अ. ३६	गा. १२६
१५०	टि.	अ. ३६	गा. १२७-१३०
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १३३
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १३४
१४८	टि.	अ. ३६	गा. १३५
१५१	टि.	अ. ३६	गा. १३६-१३९
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १४२
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १४३
१५२	टि.	अ. ३६	गा. १४५-१४९
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १५२
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १५३
१५२	टि.	अ. ३६	गा. १५५
१५२	टि.	अ. ३६	गा. १५६-१५७
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १६७
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १६८
१५४	टि.	अ. ३६	गा. १७१
१५४	टि.	अ. ३६	गा. १७२
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १७७
१५५	टि.	अ. ३६	गा. १७९
१५५	टि.	अ. ३६	गा. १८०
१५६	टि.	अ. ३६	गा. १८१
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १८६
१५९	टि.	अ. ३६	गा. १८८
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १९३
१६१	टि.	अ. ३६	गा. १९५
१६१	टि.	अ. ३६	गा. १९६-१९७
२२६	टि.	अ. ३६	गा. २०२
१७१	टि.	अ. ३६	गा. २०४
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २०५
१७१	टि.	अ. ३६	गा. २०६
१७१	टि.	अ. ३६	गा. २०७
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २०८
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २०९
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २१०-२११
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २१२
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २१२-२१५
१७३	टि.	अ. ३६	गा. २१६
२२६	टि.	अ. ३६	गा. २४६

अनुयोगद्वार सूत्र

१०७-१०८	सू. ४०४

८. प्रथम-अप्रथम अध्ययन (पृ. २६२-२६९)

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

२६३-२६९	श. १८	उ. १	सू. ३-६२
२६३	श. १८	उ. १	सू. ६३

२२४	टि.	पडि. ९	सू. २३९
२२८		पडि. ९	सू. २३९
२५७	टि.	पडि. ९	सू. २३९
११७		पडि. ९	सू. २४०
२२४	टि.	पडि. ९	सू. २४०
२२८		पडि. ९	सू. २४०
२४३	टि.	पडि. ९	सू. २४०
११७		पडि. ९	सू. २४१
११७		पडि. ९	सू. २४२
२२६	टि.	पडि. ९	सू. २४२
२५७	टि.	पडि. ९	सू. २४२
११७		पडि. ९	सू. २४३
२२४-२२५		पडि. ९	सू. २४३
२२८		पडि. ९	सू. २४३
२५७		पडि. ९	सू. २४३
११७		पडि. ९	सू. २४४
११७		पडि. ९	सू. २४५
११८		पडि. ९	सू. २४६
११८		पडि. ९	सू. २४७
११८		पडि. ९	सू. २४८
११८		पडि. ९	सू. २४९
११८		पडि. ९	सू. २५० (१-२)
११८		पडि. ९	सू. २५१
११९		पडि. ९	सू. २५२
२५४	टि.	पडि. ९	सू. २५२
११९		पडि. ९	सू. २५३
११९		पडि. ९	सू. २५४
११९		पडि. ९	सू. २५५
११९		पडि. ९	सू. २५६
२२०		पडि. ९	सू. २५६
२२६		पडि. ९	सू. २५६
२५७		पडि. ९	सू. २५६
११९-१२०		पडि. ९	सू. २५७
२२६		पडि. ९	सू. २५८
१२०		पडि. ९	सू. २५८
२२०	टि.	पडि. ९	सू. २५८
२३५-२३६		पडि. ९	सू. २५८
१२०		पडि. ९	सू. २५९

प्रज्ञापना सूत्र

१२०		पद १	सू. १४
१२०-१२१		पद १	सू. १५-१७
१३०	टि.	पद १	सू. १८
१३३		पद १	सू. १८
१३४		पद १	सू. १९
४		पद १	सू. २०-२२
१३४		पद १	सू. २३
१३५		पद १	सू. २४-२५
१३६		पद १	सू. २६-२८
१३६-१३७		पद १	सू. २९-३१
१३७-१३८		पद १	सू. ३२-३४
१३८		पद १	सू. ३५-३८
१३९		पद १	सू. ३९-४१
१४०-१४२		पद १	सू. ४३-४९
१४२-१४३		पद १	सू. ५०-५२
१४३		पद १	सू. ५३
१४३-१४४		पद १	सू. ५४ (१-२)
१४४-१४८		पद १	सू. ५४ (२-११) ५५
१५०		पद १	सू. ५६
१५१		पद १	सू. ५७
१५१-१५२		पद १	सू. ५८
१५२		पद १	सू. ५९
१५२		पद १	सू. ६०
१५४		पद १	सू. ६१
१५४		पद १	सू. ६२-६३
१५४-१५५		पद १	सू. ६४-६६
१५५		पद १	सू. ६७-६८
१५५-१५६		पद १	सू. ६९-७५
१५६		पद १	सू. ७६
१५६-१५८		पद १	सू. ७६-८४
१५८-१५९		पद १	सू. ८५
१५९-१६०		पद १	सू. ८६-९१
१६१		पद १	सू. ९२
१६१		पद १	सू. ९३
१६१-१६२		पद १	सू. ९४-९७
१६२-१६३		पद १	सू. ९८
१६३-१६४		पद १	सू. ९९-१०७
१६४-१६५		पद १	सू. १०८
१६५		पद १	सू. १०९-११० (१)
१६५-१६७		पद १	सू. ११०-११९ (३)
१६७-१७१		पद १	सू. १२०-१३८
१७१-१७३		पद १	सू. १४६-१४७
२२८-२३२		पद ३	सू. २१३-२२४
२५४-२५६		पद ३	सू. २३२-२३६
२४३-२५४		पद ३	सू. २३७-२५१
२५६		पद ३	सू. २६५
२५७		पद ३	सू. २६६
२४३		पद ३	सू. २६७
२५६-२५७		पद ३	सू. २६९
२३७-२३९		पद ३	सू. २७६-२९१
२३९-२४३		पद ३	सू. ३०७-३२४
२३२-२३५		पद ३	सू. ३३४

१९४-२००	पद १७	उ. १	सू. ११२३-११४४
२१९	पद १८		सू. १२६०
२२०-२२३	पद १८		सू. १२८५-१३२०
२२५	पद १८		सू. १३७६-१३८२
२२४	पद १८		सू. १३८३-१३८५
२२४	पद १८		सू. १३८६-१३८८
२२५-२२६	पद १८		सू. १३९२-१३९४
२१५-२१६	पद ३४		सू. २०३३-२०३७
२०६-२०७	पद ३४		सू. २०४७-२०४८
२०७	पद ३४		सू. २०४९-२०५०

उत्तराध्ययन सूत्र

१६५	टि.	अ. २८	गा. १६
१६५	टि.	अ. २८	गा. २८-३१
१२०		अ. ३६	गा. ४८
१२१		अ. ३६	गा. ४९
१२५		अ. ३६	गा. ४९-५४
१२४	टि.	अ. ३६	गा. ५५-५६
१२४		अ. ३६	गा. ६५
१२४	टि.	अ. ३६	गा. ६६
१२४		अ. ३६	गा. ६७
१२६	टि.	अ. ३६	गा. ६८
१२६	टि.	अ. ३६	गा. ६९-१०६
१३४	टि.	अ. ३६	गा. ७०
१३५	टि.	अ. ३६	गा. ७०
१३४	टि.	अ. ३६	गा. ७१-७२
१३५	टि.	अ. ३६	गा. ७२-७७
२२७	टि.	अ. ३६	गा. ८२
१३६	टि.	अ. ३६	गा. ८४
१३६	टि.	अ. ३६	गा. ८५
२२७	टि.	अ. ३६	गा. ९०
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ९२
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ९३
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ९४-९५
१४८	टि.	अ. ३६	गा. ९६
१४३	टि.	अ. ३६	गा. ९६-९९
१४३	टि.	अ. ३६	गा. ९७-१००
२२७	टि.	अ. ३६	गा. १०४
१२६	टि.	अ. ३६	गा. १०७
१३६	टि.	अ. ३६	गा. १०८
१३७	टि.	अ. ३६	गा. १०८-११०
२२७	टि.	अ. ३६	गा. ११५
१३७	टि.	अ. ३६	गा. ११७
१३८	टि.	अ. ३६	गा. ११८-११९
२२७	टि.	अ. ३६	गा. १२४
१५०	टि.	अ. ३६	गा. १२६
१५०	टि.	अ. ३६	गा. १२७-१३०
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १३३
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १३४
१४८	टि.	अ. ३६	गा. १३५
१५१	टि.	अ. ३६	गा. १३६-१३९
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १४२
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १४३
१५२	टि.	अ. ३६	गा. १४५-१४९
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १५२
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १५३
१५२	टि.	अ. ३६	गा. १५५
१५२	टि.	अ. ३६	गा. १५६-१५७
२२०	टि.	अ. ३६	गा. १६७
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १६८
१५४	टि.	अ. ३६	गा. १७१
१५४	टि.	अ. ३६	गा. १७२
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १७७
१५५	टि.	अ. ३६	गा. १७९
१५५	टि.	अ. ३६	गा. १८०
१५६	टि.	अ. ३६	गा. १८१
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १८६
१५९	टि.	अ. ३६	गा. १८८
२२६	टि.	अ. ३६	गा. १९३
१६१	टि.	अ. ३६	गा. १९५
१६१	टि.	अ. ३६	गा. १९६-१९७
२२६	टि.	अ. ३६	गा. २०२
१७१	टि.	अ. ३६	गा. २०४
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २०५
१७१	टि.	अ. ३६	गा. २०६
१७१	टि.	अ. ३६	गा. २०७
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २०८
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २०९
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २१०-२११
१७२.	टि.	अ. ३६	गा. २१२
१७२	टि.	अ. ३६	गा. २१२-२१५
१७३	टि.	अ. ३६	गा. २१६
२२६	टि.	अ. ३६	गा. २४६

अनुयोगद्वार सूत्र

१०७-१०८	सू. ४०४

८. प्रथम-अप्रथम अध्ययन (पृ. २६२-२६९)

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

२६२-२६९	श. १८	उ. १	सू. ३-६२
२६२	श. १८	उ. १	सू. ६३

९. संज्ञी अध्ययन (पृ. २७०-२७२)

स्थानांग सूत्र

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

जीवाभिगम सूत्र

प्रज्ञापना सूत्र

१०. योनि अध्ययन (पृ. २७३-२८०)

स्थानांग सूत्र

समवायांग सूत्र

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

जीवाभिगम सूत्र

प्रज्ञापना सूत्र

११. संज्ञा अध्ययन (पृ. २८१-२८४)

स्थानांग सूत्र

समवायांग सूत्र

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

जीवाभिगम सूत्र

प्रज्ञापना सूत्र

१२. स्थिति अध्ययन (पृ. २८५-३४७)

स्थानांग सूत्र

२८७		अ. २		सू. ७९ (१६-१८)
३१७	टि.	अ. २	उ. ४	सू. १२४ (१)
३१९	टि.	अ. २	उ. ४	सू. १२४ (१)
३२७	टि.	अ. २	उ. ४	सू. १२४ (२)
३२९	टि.	अ. २	उ. ४	सू. १२४ (३)
३३३	टि.	अ. २	उ. ४	सू. १२४ (४)
३३३	टि.	अ. २	उ. ४	सू. १२४ (५)
३१०	टि.	अ. ३	उ. १	सू. १५१ (२)
२९९	टि.	अ. ३	उ. १	सू. १५३ (१)
३००	टि.	अ. ३	उ. १	सू. १५३ (२)
२९२	टि.	अ. ३	उ. १	सू. १५५ (१)
२९२	टि.	अ. ३	उ. १	सू. १५५ (२)
३२८	टि.	अ. ३	उ. ४	सू. २०२ (१)
३२९	टि.	अ. ३	उ. ४	सू. २०२ (२)
३३१	टि.	अ. ३	उ. ४	सू. २०२ (३)
३२८	टि.	अ. ४	उ. १	सू. २६० (१)
३३१	टि.	अ. ४	उ. १	सू. २६० (२)
३२०	टि.	अ. ४	उ. २	सू. २९९ (३)
३२०	टि.	अ. ४	उ. २	सू. ३००
३२०	टि.	अ. ४	उ. २	सू. ३०२ (१)
३२०	टि.	अ. ४	उ. २	सू. ३०२ (२-३)
३२८	टि.	अ. ५	उ. १	सू. ४०५ (१)
३३१	टि.	अ. ५	उ. १	सू. ४०५ (२)
३३१	टि.	अ. ६		सू. ५०६
२९८	टि.	अ. ७		सू. ५७३ (१)
२९२	टि.	अ. ७		सू. ५७३ (२)
२९३	टि.	अ. ७		सू. ५७३ (३)
३३०	टि.	अ. ७		सू. ५७५ (१)
३२८		अ. ७		सू. ५७५ (२)
३२७	टि.	अ. ७		सू. ५७५ (३)
३३३	टि.	अ. ७		सू. ५७७ (१)
३३४	टि.	अ. ७		सू. ५७७ (३)
३४६		अ. ८		सू. ६२५ (३)
३३०		अ. ९		सू. ६८३ (१)
३३०	टि.	अ. ९		सू. ६८३ (२)
२९०	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (२)
२९३	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (३)
२९३	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (४)
२९३	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (६)
३००	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (७)
३२०	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (८)
३३४	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (१८)
३३५	टि.	अ. १०		सू. ७५७ (१८)

समवायांग सूत्र

३२१		सम. १	सू. ३
३१३	टि.	सम. १	सू. ९
२९०	टि.	सम. १	सू. २७ (उ.)
२९२	टि.	सम. १	सू. २८ (ज.)
२९०		सम. १	सू. २९
३१९		सम. १	सू. ३१
३१४		सम. १	सू. ३२
३०४		सम. १	सू. ३५
३१०		सम. १	सू. ३६
३२७		सम. १	सू. ३९
३२७		सम. १	सू. ४०
३२९	टि.	सम. १	सू. ४१
३२९		सम. १	सू. ४२
३४३		सम. १	सू. ४३
२९०		सम. २	सू. ८
२९२		सम. २	सू. ९
३१४		सम. २	सू. १०
३१७	टि.	सम. २	सू. ११
३१९	टि.	सम. २	सू. ११
३०४		सम. २	सू. १२
३१०		सम. २	सू. १३
३२७		सम. २	सू. १४
३२९		सम. २	सू. १५
३२७	टि.	सम. २	सू. १६
३२९	टि.	सम. २	सू. १७
३३३	टि.	सम. २	सू. १८
३३३	टि.	सम. २	सू. १९
३४३		सम. २	सू. २०
२९०		सम. ३	सू. १३
२९२	टि.	सम. ३	सू. १५
३१४		सम. ३	सू. १६
३०४		सम. ३	सू. १७
२९५	टि.	सम. ३	सू. १८
३१०	टि.	सम. ३	सू. १८
३३१		सम. ३	सू. १९
३३४		सम. ३	सू. २०
३४३		सम. ३	सू. २१
२९२	टि.	सम. ३	सू. २८
२९०		सम. ४	सू. १०
२९२	टि.	सम. ४	सू. ११
३१४		सम. ४	सू. १२
३३१		सम. ४	सू. १३
३३४		सम. ४	सू. १४
३४४		सम. ४	सू. १५

३४५		सम. १७	सू. १८
२९१		सम. १८	सू. ९
२९४		सम. १८	सू. १०
३१४		सम. १८	सू. ११
३३२		सम. १८	सू. १२
३३७	टि.	सम. १८	सू. १३
३३७	टि.	सम. १८	सू. १४
३४५		सम. १८	सू. १५
२९१		सम. १९	सू. ६
२९४		सम. १९	सू. ७
३१४		सम. १९	सू. ८
३३२		सम. १९	सू. ९
३३७	टि.	सम. १९	सू. १०
३३८	टि.	सम. १९	सू. ११
३४५		सम. १९	सू. १२
२९१		सम. २०	सू. ८
२९४		सम. २०	सू. ९
३१४		सम. २०	सू. १०
३३२		सम. २०	सू. ११
३३८	टि.	सम. २०	सू. १२
३३९	टि.	सम. २०	सू. १३
३४६		सम. २०	सू. १४
२९१		सम. २१	सू. ५
२९४		सम. २१	सू. ६
३१४		सम. २१	सू. ७
३३२		सम. २१	सू. ८
३३९	टि.	सम. २१	सू. ९
३३९	टि.	सम. २१	सू. १०
३४६		सम. २१	सू. ११
२९१		सम. २२	सू. ७
२९४	टि.	सम. २२	सू. ८
२९४	टि.	सम. २२	सू. ९
३३९	टि.	सम. २२	सू. ९
३१४		सम. २२	सू. १०.
३४०	टि.	सम. २२	सू. १०
३३२		सम. २२	सू. ११
३४६		सम. २२	सू. १४
२९१		सम. २३	सू. ५
२९५		सम. २३	सू. ६
३१५		सम. २३	सू. ७
३३२		सम. २३	सू. ८
३४०	टि.	सम. २३	सू. ९
३४०	टि.	सम. २३	सू. १०
२९१		सम. २४	सू. ७
२९५		सम. २४	सू. ८
३१५		सम. २४	सू. ९

३३२		सम. २४	सू. १०
३४०	टि.	सम. २४	सू. ११
३४०	टि.	सम. २४	सू. १२
२९१		सम. २५	सू. १०
२९५		सम. २५	सू. ११
३१५		सम. २५	सू. १२
३३२		सम. २५	सू. १३
३४१		सम. २५	सू. १४
३४०		सम. २५	सू. १५
२९१		सम. २६	सू. ३
२९५		सम. २६	सू. ४
३१५		सम. २६	सू. ५
३३२		सम. २६	सू. ६
३४१	टि.	सम. २६	सू. ७
३४१	टि.	सम. २६	सू. ८
२९१		सम. २७	सू. ७
२९५		सम. २७	सू. ८
३१५		सम. २७	सू. ९
३३२		सम. २७	सू. १०
३४१	टि.	सम. २७	सू. ११
३४१	टि.	सम. २७	सू. १२
२९१		सम. २८	सू. ६
२९५		सम. २८	सू. ७
३१५		सम. २८	सू. ८
३३२		सम. २८	सू. ९
३४२	टि.	सम. २८	सू. ११
३४१	टि.	सम. २८	सू. १२
२९१		सम. २९	सू. १०
२९५		सम. २९	सू. ११
३१५		सम. २९	सू. १२
३३२		सम. २९	सू. १३
३४२	टि.	सम. २९	सू. १४
३४२	टि.	सम. २९	सू. १५
२९१		सम. ३०	सू. ९
२९५		सम. ३०	सू. १०
३१५		सम. ३०	सू. ११
३३२		सम. ३०	सू. ११
३४२	टि.	सम. ३०	सू. १२
३४२	टि.	सम. ३०	सू. १३
२९१		सम. ३१	सू. ६
२९५		सम. ३१	सू. ७
३१५		सम. ३१	सू. ८
३३२		सम. ३१	सू. ९
३४३	टि.	सम. ३१	सू. १०
३४२	टि.	सम. ३१	सू. ११
२९१		सम. ३२	सू. ७

२८८		पडि. २	सू. ५३
२८८-२८९		पडि. २	सू. ५९ (१)
३२७	टि.	पडि. २	सू. ७९ (३)
२९०	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. ९०
२९२	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. ९०
२९३	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. ९०
२९४	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. ९०
३०९	टि.	पडि. ३ उ. १	सू. ९७ (१)
३०७	टि.	पडि. ३ उ. १	सू. ९७ (२)
३०८	टि.	पडि. ३ उ. १	सू. ९७ (२)
२८९	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. १०१
२९७-२९८		पडि. ३ उ. २	सू. १०१
३१५-३१७		पडि. ३ उ. २	सू. ११८-११९
३१७-३१९		पडि. ३ उ. २	सू. १२०
३२०		पडि. ३ उ. २	सू. १२०
३२१		पडि. ३ उ. २	सू. १२१
३२३		पडि. ३ उ. २	सू. १२२
३२४		पडि. ३ उ. २	सू. १२२
३४६		पडि. ३ उ. २	सू. १४३
३२२	टि.	पडि. ३	सू. १९७
३२३	टि.	पडि. ३	सू. १९७
३२४	टि.	पडि. ३	सू. १९७
३२५	टि.	पडि. ३	सू. १९७
३२६	टि.	पडि. ३	सू. १९७
३२८-३२९		पडि. ३ उ. २	सू. १९९
३३०-३३१		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (अ)
३३१		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (आ)
३३३		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (इ)
३३४		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (ई)
३३५		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (ई)
३३५-३३६		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (ई)
३३६-३३७		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (ई)
३३७		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (ई)
३३८		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (ई)
३३९		पडि. ३ उ. २	सू. १९९ (उ)
३४३	टि.	पडि. ३	सू. २०४
३५२	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. २०६
३५५		पडि. ३ उ. २	सू. २०६
[illegible]	टि.	पडि. ३ उ. २	सू. २०६
[illegible]		पडि. ३ उ. २	सू. २०६
[illegible]		पडि. ४	सू. [illegible]
[illegible]	टि.	पडि. ४	सू. [illegible]
[illegible]	टि.	पडि. ४	सू. [illegible]
[illegible]		पडि. ४	सू. [illegible]
[illegible]	[illegible]	पडि. ५	सू. [illegible]
[illegible]	[illegible]	पडि. ५	सू. [illegible]

२८७		पडि. ५	सू. २११
२९९	टि.	पडि. ५	सू. २११
३००	टि.	पडि. ५	सू. २११
२९७	टि.	पडि. ५	सू. २१२
२८७		पडि. ५	सू. २१४
२९७	टि.	पडि. ५	सू. २१८
२८७		पडि. ५	सू. २१८
३०१		पडि. ५	सू. २१८
२८९	टि.	पडि. ६	सू. २२५
३१२	टि.	पडि. ६	सू. २२५
२८९		पडि. ७	सू. २२६
३१०		पडि. ७	सू. २२६
२९६		पडि. ७	सू. २२६
३१२	टि.	पडि. ७	सू. २२६
२९७	टि.	पडि. ८	सू. २२८
२९८	टि.	पडि. ८	सू. २२८
२९९	टि.	पडि. ८	सू. २२८
३००	टि.	पडि. ८	सू. २२८
३०१	टि.	पडि. ८	सू. २२८
३०२	टि.	पडि. ८	सू. २२८
३०३	टि.	पडि. ८	सू. २२८
३०२		पडि. ९	सू. २२९
३०२-३०३		पडि. ९	सू. २२९
३०३		पडि. ९	सू. २२९
२९६		पडि. ९	सू. २२९
३०१-३०२		पडि. ९	सू. २२९

प्रज्ञापना सूत्र

२८९	पद ४	सू. ३३५
२९०	पद ४	सू. ३३६
२९२	पद ४	सू. ३३७
२९२	पद ४	सू. ३३८
२९३	पद ४	सू. ३३९
२९३	पद ४	सू. ३४०
२९४	पद ४	सू. ३४१
२९४-२९५	पद ४	सू. ३४२
३१२	पद ४	सू. ३४३
३१२	पद ४	सू. ३४४
३३३	पद ४	सू. ३४५
३३३	पद ४	सू. ३४६
३३३	पद ४	सू. [illegible]
[illegible]	पद ४	सू. [illegible]
[illegible]	पद ४	सू. [illegible]
[illegible]	पद ४	सू. ३५०
[illegible]	पद ४	सू. [illegible]
[illegible]	पद ४	सू. [illegible]

३१९	पद ४	सू. ३५३
२९६-२९७	पद ४	सू. ३५४-३५६
२९८	पद ४	सू. ३५७-३५९
२९८-२९९	पद ४	सू. ३६०-३६२
२९९-३००	पद ४	सू. ३६३-३६५
३००-३०१	पद ४	सू. ३६६-३६८
३०१	पद ४	सू. ३६९
३०२	पद ४	सू. ३७०
३०२	पद ४	सू. ३७१
३०३-३०४	पद ४	सू. ३७२-३७४
३०४-३०५	पद ४	सू. ३७५-३७७
३०५-३०६	पद ४	सू. ३७८-३८०
३०६-३०७	पद ४	सू. ३८१-३८३
३०७-३०८	पद ४	सू. ३८४-३८६
३०८-३०९	पद ४	सू. ३८७-३८९
३०९-३१०	पद ४	सू. ३९०
३१०	पद ४	सू. ३९१-३९२
३२०	पद ४	सू. ३९३
३२०	पद ४	सू. ३९४
३२१-३२२	पद ४	सू. ३९५
३२२	पद ४	सू. ३९६
३२२-३२३	पद ४	सू. ३९७-३९८
३२३-३२४	पद ४	सू. ३९९-४००
३२४-३२५	पद ४	सू. ४०१-४०२
३२५	पद ४	सू. ४०३-४०४
३२५-३२६	पद ४	सू. ४०५-४०६
३२६	पद ४	सू. ४०७
३२६-३२७	पद ४	सू. ४०८
३२७	पद ४	सू. ४०९-४१०
३२७-३२८	पद ४	सू. ४११
३२८	पद ४	सू. ४१२
३२९	पद ४	सू. ४१३-४१४
३३०	पद ४	सू. ४१५
३३०	पद ४	सू. ४१६
३३२-३३३	पद ४	सू. ४१७
३३३	पद ४	सू. ४१८
३३४	पद ४	सू. ४१९
३३५	पद ४	सू. ४२०
[illegible]	पद ४	सू. ४२१
[illegible]	पद ४	सू. ४२२
[illegible]	पद ४	सू. ४२३
[illegible]	पद ४	सू. ४२४
[illegible]	पद ४	सू. ४२५
[illegible]	पद ४	सू. ४२६
[illegible]	पद ४	सू. ४२७-४३५
[illegible]	पद ४	सू. ४३६-४३७

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

३२२	टि.	वक्ष. ७	सू. २०५
३२३	टि.	वक्ष. ७	सू. २०५
३२४	टि.	वक्ष. ७	सू. २०५
३२५	टि.	वक्ष. ७	सू. २०५
३२६	टि.	वक्ष. ७	सू. २०५

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

३२१	टि.	पा. १८	सू. ९८
३२२	टि.	पा. १८	सू. ९८
३२३	टि.	पा. १८	सू. ९८
३२४	टि.	पा. १८	सू. ९८
३२५	टि.	पा. १८	सू. ९८
३२६	टि.	पा. १८	सू. ९८

उत्तराध्ययन सूत्र

२९७	टि.	अ. ३६	गा. ८०
२९८	टि.	अ. ३६	गा. ८८
३००	टि.	अ. ३६	गा. १०२
२९८	टि.	अ. ३६	गा. ११३
२९९	टि.	अ. ३६	गा. १२२
३०१	टि.	अ. ३६	गा. १३२
३०२	टि.	अ. ३६	गा. १४१
३०२	टि.	अ. ३६	गा. १५१
२९०	टि.	अ. ३६	गा. १६०
२९२	टि.	अ. ३६	गा. १६१
२९२	टि.	अ. ३६	गा. १६२
२९३	टि.	अ. ३६	गा. १६३
२९३	टि.	अ. ३६	गा. १६४
२९४	टि.	अ. ३६	गा. १६५
२९४	टि.	अ. ३६	गा. १६६
३०४	टि.	अ. ३६	गा. १७५
३०६	टि.	अ. ३६	गा. १८४
३०८	टि.	अ. ३६	गा. १९१
३०९	टि.	अ. ३६	गा. २००
३१३	टि.	अ. ३६	गा. २१९
३२०	टि.	अ. ३६	गा. २२०
३२१	टि.	अ. ३६	गा. २२१
३२७	टि.	अ. ३६	गा. २२२
३२९	टि.	अ. ३६	गा. २२३
३३३	टि.	अ. ३६	गा. २२४
३३३	टि.	अ. ३६	गा. २२५
३३४	टि.	अ. ३६	गा. २२६
३३५	टि.	अ. ३६	गा. २२७
३३६	टि.	अ. ३६	गा. २२८
३३७	टि.	अ. ३६	गा. २२९
३३७	टि.	अ. ३६	गा. २३०

३३८	टि.	अ. ३६	गा. २३१
३३९	टि.	अ. ३६	गा. २३२
३३९	टि.	अ. ३६	गा. २३३
३४०	टि.	अ. ३६	गा. २३४
३४०	टि.	अ. ३६	गा. २३५
३४०	टि.	अ. ३६	गा. २३६
३४१	टि.	अ. ३६	गा. २३७
३४१	टि.	अ. ३६	गा. २३८
३४१	टि.	अ. ३६	गा. २३९
३४२	टि.	अ. ३६	गा. २४०
३४२	टि.	अ. ३६	गा. २४१
३४२	टि.	अ. ३६	गा. २४२
३४३	टि.	अ. ३६	गा. २४३
३४३	टि.	अ. ३६	गा. २४४

अनुयोगद्वार सूत्र

२८९	टि.	कालदारे	सू. ३८३/१
२९०	टि.		सू. ३८३/२
२९२	टि.		सू. ३८३/३
२९३	टि.		सू. ३८३/४
२९४	टि.		सू. ३८३/४
३९३	टि.		सू. ३८४/१
३९५	टि.		सू. ३८४/१
३९७	टि.		सू. ३८४/२
३९९	टि.		सू. ३८४/३
२९७	टि.		सू. ३८५/१
२९८	टि.		सू. ३८५/२
२९८	टि.		सू. ३८५/३
२९९	टि.		सू. ३८५/३
२९९	टि.		सू. ३८५/४
३००	टि.		सू. ३८५/४
३००	टि.		सू. ३८५/५
३०१	टि.		सू. ३८५/५
३०१	टि.		सू. ३८६/१
३०२	टि.		सू. ३८६/२
३०२	टि.		सू. ३८६/३
३०३	टि.		सू. ३८७/१
३०४	टि.		सू. ३८७/२
[illegible]	टि.		सू. ३८७/२
[illegible]	[illegible]		सू. ३८७/३
[illegible]	[illegible]		सू. ३८७/३
[illegible]	[illegible]		सू. ३८७/३
[illegible]	[illegible]		सू. ३८७/३
[illegible]	[illegible]		सू. ३८७/४
[illegible]	[illegible]		सू. ३८७/४-५
[illegible]	[illegible]		सू. ३८८/१

३१०	टि.	सू. ३८८/२
३१०	टि.	सू. ३८८/३
३२०	टि.	सू. ३८९
३२१	टि.	सू. ३९०
३२२	टि.	सू. ३९०/१
३२२	टि.	सू. ३९०/२
३२३	टि.	सू. ३९०/३
३२४	टि.	सू. ३९०/३
३२४	टि.	सू. ३९०/४
३२५	टि.	सू. ३९०/५
३२५	टि.	सू. ३९०/६
३२६	टि.	सू. ३९१/१
३२७	टि.	सू. ३९१/२
३२८	टि.	सू. ३९१/२
३२९	टि.	सू. ३९१/३
३३४	टि.	सू. ३९१/६
३३५	टि.	सू. ३९१/७
३३६	टि.	सू. ३९१/७
३३७	टि.	सू. ३९१/७
३३८	टि.	सू. ३९१/७
३३९	टि.	सू. ३९१/७
३४०	टि.	सू. ३९१/८
३४१	टि.	सू. ३९१/८
३४२	टि.	सू. ३९१/८
३४३	टि.	सू. ३९१/९
३३३	टि.	सू. ३९४/४
३३३	टि.	सू. ३९४/५

१३. आहार अध्ययन (पृ. ३४८-३९३)

सूत्रकृतांग सूत्र

३८३-३८७	श्रु. २	अ. ३	सू. ७२२-७३१
३८७-३८८	श्रु. २	अ. ३	सू. ७३२
३८८-३८९	श्रु. २	अ. ३	सू. ७३३-७३७
३८९-३९०	श्रु. २	अ. ३	सू. ७३८
३९०-३९१	श्रु. २	अ. ३	सू. ७३९-७४५
३९१-३९२	श्रु. २	अ. ३	सू. ७४६-[illegible]

स्थानांग सूत्र

३७७	टि.	अ. २	उ. ३	सू. [illegible]
३५१		अ. ८	उ. २	सू. [illegible]
३५१		अ. ४	उ. ४	सू. ३८०
[illegible]		अ. ६		सू. ५३३
३५१		अ. ८		सू. [illegible]

समवायांग सूत्र

३८९	टि.	सम. ९	सू. [illegible]
[illegible]		सम. ९	सू. [illegible]

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

[illegible]	३६३	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६ (१, ३)
[illegible]	३६४	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६ (१, ३)
[illegible]	३६५	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६ (२, ५)
[illegible]	३६६	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६ (१, ३)
[illegible]	३६६	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६/४
[illegible]	३६७	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६/१२ (४, ५)
[illegible]	३६७	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६/१७ (२, ३)
[illegible]	३६८	द्वि. श्रु. १	उ. १	सु. ६/१७ (५, ६)
[illegible]	३४९	श्रु. १	उ. ६	सु. ४५
[illegible]	३५७-३५८	श्रु. १	उ. ७	सु. २-४
[illegible]	३५८	श्रु. १	उ. ७	सु. ५
[illegible]	३५८-३५९	श्रु. १	उ. ७	सु. ६
[illegible]	३५१-३५२	श्रु. १	उ. ७	सु. १२-१५
[illegible]	३८७	द्वि. श्रु. ६	उ. २	सु. १
[illegible]	३४९, ३६०	श्रु. ६	उ. १०	सु. १२-१३
[illegible]	३५३	श्रु. ७	उ. १	सु. ३-४
[illegible]	३५५	श्रु. ७	उ. ३	सु. १-२
[illegible]	३५६-३५७	श्रु. ७	उ. ३	सु. ३-४
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	सु. २१
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	सु. ४०
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	सु. १
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

जीवाजीवाभिगम सूत्र

[illegible]

[illegible]

३६९	पद २८	उ. १	सू. १८२४-१८२८
३६९-३७३	पद २८	उ. १	सू. १८२९-१८५२
३७६	पद २८	उ. १	सू. १८५३-१८५८
३७६	पद २८	उ. १	सू. १८५९-१८६१
३७६-३७७	पद २८	उ. १	सू १८६२-१८६४
३७७-३८३	पद २८	उ. २	सू. १८६५-१९०७
३५९	पद ३४		सू. २०३८-२०३९
३६५	टि. पद ३४		सू. २०३९
३६६	टि. पद ३४		सू. २०३९
३६७	टि. पद ३४		सू. २०३९

१४. शरीर अध्ययन (पृ. ३९४-४४१)

स्थानांग सूत्र

४३१	टि. अ. १		सू. ४६
४११	अ. २	उ. २	सू. ६५/१
४१८	अ. २	उ. २	सू. ६५/२
४०८	अ. २	उ. २	सू. ६५/३-४
४३१	टि. अ. २	उ. ३	सू. १०४
४३०	टि. अ. ३	उ. २	सू. १५९
४१०	टि. अ. ३	उ. ४	सू. २०७
४११	टि. अ. ३	उ. ४	सू. २०७
४२१	अ. ४	उ. १	सू. २७६
४१८	अ. ४	उ. ३	सू. ३३१/१
३९७-३९८	अ. ४	उ. ३	सू. ३३२
४१८-४१९	अ. ४	उ. ३	सू. ३३४/२
४०८	अ. ४	उ. ४	सू. ३७१
४३०	टि. अ. ४	उ. ४	सू. ३७५/२
४१८	अ. ५	उ. १	सू. ३९५ (१)
४१८	अ. ५	उ. १	सू. ३९५ (२)
३९६	टि. अ. ५	उ. १	सू. ३९५
४४१	अ. ६		सू. ४९४
४२९	अ. ६		सू. ४९५
४३०	टि. अ. ६		सू. ५३२/२
[illegible]	टि. अ. ८		सू. ५७८
[illegible]	टि. अ. [illegible]		सू. ५७८
[illegible]	अ. [illegible]		सू. ६६६/१२
[illegible]	अ. १०		सू. ७२८ (१)
[illegible]	टि. अ. १०		सू. ७२८ (२)
[illegible]	टि. अ. १०		सू. ७२८ (३)

समवायांग सूत्र

[illegible]		सम. १०४	सू. ६३
[illegible]	टि.	सम.	सू. १५२
[illegible]	टि.	सम.	सू. १५२
[illegible]	टि.	सम.	सू. १५२
[illegible]	टि.	सम.	सू. १५२
४०७	टि.	सम.	सू. १५२
४२१	टि.	सम.	सू. १५२
४२६	टि.	सम.	सू. १५२
४३१	टि.	सम.	सू. १५२
४३३	टि.	सम.	सू. १५२
४३८	टि.	सम.	सू. १५२
४३९	टि.	सम.	सू. १५२
४३३	टि.	सम.	सू. १५५
४३८	टि.	सम.	सू. १५५
४३९	टि.	सम.	सू. १५५
४४१		सम.	सू. १५५ (१-४)
४४०		सम.	सू. १५५ (५-११)

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

३९६	श. १	उ. ३	सू. ९/५
४३३	टि. श. १	उ. ५	सू. १० (३६)
३९६	श. १	उ. ९	सू. १२
४१०	टि. श. १	उ. ५	सू. १२
४१०	टि. श. १	उ. ५	सू. २९
४११	टि. श. १	उ. ५	सू. ३०-३२
४११	टि. श. १	उ. ५	सू. ३४
४११	टि. श. १	उ. ५	सू. ३५
४११	टि. श. १	उ. ५	सू. ३६
३९६	टि. श. १०	उ. १	सू. १८
४३४	टि. श. १०	उ. १	सू. १८-१९
४१८	टि. श. ११	उ. १	सू. १९
४१८	टि. श. ११	उ. २	सू. ८
३९६	टि. श. १७	उ. १	सू. १५
४०८	श. १९	उ. ८	सू. ८-१०
४४०-४४१	श. १९	उ. ८	सू. २६-३१
४०८-४०९	श. २०	उ. ७	सू. १८
४२१	टि. श. २४	उ. १२	सू. ३
४२२	टि. श. २४	उ. १२	सू. १७
४२७	टि. श. २४	उ. २०	सू. ४
४०९-४१०	श. २५	उ. ७	सू. ११-१६
३९६	टि. श. २५	उ. ४	सू. ८०

जीवाभिगम सूत्र

४१०	टि.	प्रति. १	सू. १३ (१)
४२९	टि.	प्रति. १	सू. १३ (२)
४४९	टि.	प्रति. १	सू. १३ (३)
४३५	टि.	प्रति. १	सू. १३ (४)
४४०	टि.	प्रति. १	सू. १३ (५)
[illegible]	टि.	प्रति. १	सू. १४
[illegible]	टि.	प्रति. १	सू. १४
[illegible]	टि.	प्रति. १	सू. १५
[illegible]	टि.	प्रति. १	सू. १६

४३१-४३३		पद २१		सू. १५४५-१५५१
४०८		पद २१		सू. १५५२
४३३		पद २१		सू. १५५२
४३९		पद २१		सू. १५५२
३९६		पद २१		सू. १५५३-१५५८
३९६-३९७		पद २१		सू. १५५९-१५६४
४२०-४२१		पद २१		सू. १५६५
४३४		पद २१		सू. १५६६

अनुयोगद्वार सूत्र

४४०		खेत्तदारे		सू. २०५
४२८-४२९		खेत्तदारे		सू. ३४७ (१-६)
४२१	टि.	खेत्तदारे		सू. ३४९
४२२	टि.	खेत्तदारे		सू. ३४९/१
४२२-४२७		खेत्तदारे		सू. ३५०-३५२
४२९-४३१		खेत्तदारे		सू. ३५३-३५५
४२९	टि.	कालदारे		सू. ३८८
३९६	टि.	कालदारे		सू. ४०५
४१०	टि.	कालदारे		सू. ४०६
४१०	टि.	कालदारे		सू. ४०७
४१०	टि.	कालदारे		सू. ४०८
४११	टि.	कालदारे		सू. ४०८
४११	टि.	कालदारे		सू. ४०९
४११	टि.	कालदारे		सू. ४१०
४११	टि.	कालदारे		सू. ४११
४११	टि.	कालदारे		सू. ४१२
४१२	टि.	कालदारे		सू. ४१३
४१२	टि.	कालदारे		सू. ४१४
४१२	टि.	कालदारे		सू. ४१५
४१३	टि.	कालदारे		सू. ४१६
४१३	टि.	कालदारे		सू. ४१७
४१३	टि.	कालदारे		सू. ४१८/१
४१३	टि.	कालदारे		सू. ४१८/२
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१८/३
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१८/४
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१९/१
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१९/२
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१९/३
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१९/४
४१४	टि.	कालदारे		सू. ४१९/५
[illegible]	टि.	कालदारे		सू. [illegible]
[illegible]	टि.	कालदारे		सू. [illegible]
[illegible]	टि.	कालदारे		सू. [illegible]
[illegible]	टि.	कालदारे		सू. [illegible]
४१६	टि.	कालदारे		सू. ४२१/१
४१६	टि.	कालदारे		सू. ४२१/२
४१६	टि.	कालदारे		सू. ४२२/१-२
४१७	टि.	कालदारे		सू. ४२३/१
४१७	टि.	कालदारे		सू. ४२३/२
४१७	टि.	कालदारे		सू. ४२३/३
४१७	टि.	कालदारे		सू. ४२३/४
४१७	टि.	कालदारे		सू. ४२४
४१८	टि.	कालदारे		सू. ४२५
४१८	टि.	कालदारे		सू. ४२६

१५. विकुर्वणा अध्ययन (पृ. ४४२-४७०)

स्थानांग सूत्र

४४४		अ. १		सू. १२
४४४		अ. ३	उ. १	सू. १२८

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

४५५-४६३		श. ३	उ. १	सू. २-३०
४६९-४७०		श. ३	उ. ४	सू. ६-७
४७०		श. ३	उ. ४	सू. ८-११
४४७-४४८		श. ३	उ. ४	सू. १५-१८
४५१-४५२		श. ३	उ. ४	सू. १९
४५२	टि.	श. ३	उ. ४	सू. १९
४४८		श. ३	उ. ५	सू. १-३
४४८-४४९		श. ३	उ. ५	सू. ४-५
४४९		श. ३	उ. ५	सू. ६-७
४४९		श. ३	उ. ५	सू. ८-९
४४९-४५०		श. ३	उ. ५	सू. १०
४५०		श. ३	उ. ५	सू. ११
४५०		श. ३	उ. ५	सू. १२-१४
४५२		श. ३	उ. ५	सू. १५-१६
४५२	टि.	श. ३	उ. ५	सू. १५ (१)
४५०-४५१		श. ३	उ. ६	सू. ११-१३
४५३		श. ५	उ. ४	सू. ३६
४६९	टि.	श. ५	उ. ६	सू. १४
४६५-४६६		श. ६	उ. १	सू. [illegible]
४५२-४५३		श. ७	उ. ९	सू. १-४
४५४-४५५		श. १३	उ. ९	सू. [illegible]
[illegible]		श. १३	उ. ९	सू. [illegible]
४५२		श. १३	उ. ९	सू. [illegible]
४५२	टि.	श. १३	उ. ९	सू. [illegible]
[illegible]		श. [illegible]	उ. [illegible]	सू. [illegible]
[illegible]		श. [illegible]	उ. [illegible]	सू. [illegible]
[illegible]		श. [illegible]	उ. [illegible]	सू. [illegible]

७०१	श. ८	उ. २	सू. ४९-५२
७०१-७०२	श. ८	उ. २	सू. ५३-५५
७०२-७०३	श. ८	उ. २	सू. ५६-७०
७०३	श. ८	उ. २	सू. ७१-७५
७०३	श. ८	उ. २	सू. ७६-७८
७०३	श. ८	उ. २	सू. ७९-८१
७०७-७०८	श. ८	उ. २	सू. ८२-११६
७०३-७०७	श. ८	उ. २	सू. ११७
७०८-७०९	श. ८	उ. २	सू. ११८-१३०
७०९	श. ८	उ. २	सू. १३१-१३३
७०९	श. ८	उ. २	सू. १३४-१३७
७१०	श. ८	उ. २	सू. १३८-१३९
७१०	श. ८	उ. २	सू. १४०-१४१
७१०	श. ८	उ. २	सू. १४२-१४३
७१०-७१२	श. ८	उ. २	सू. १४४-१५१
७१३	श. ८	उ. २	सू. १५२-१५३
७१४	टि. श. ८	उ. २	सू. १५४
७१४	टि. श. ८	उ. २	सू. १५५
७१५-७१६	श. ८	उ. २	सू. १५६-१६२
६१३	टि. श. ८	उ. ४	सू. १
६१३	टि. श. ८	उ. ५	सू. १
६१३	टि. श. ८	उ. ७	सू. १-२
६१३	टि. श. ८	उ. ८	सू. १
६१३	टि. श. ८	उ. १०	सू. १
६१०	श. ९	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. ९	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. ९	उ. २	सू. १
६१३	टि. श. ९	उ. ३	सू. १
६१३	टि. श. ९	उ. ३१	सू. १
६९०-६९५	श. ९	उ. ३१	सू. ८-३१
६९५-६९७	श. ९	उ. ३१	सू. ३२-४४
६१३	टि. श. ९	उ. ३२	सू. १
६१३	टि. श. ९	उ. ३३	सू. १
६१३	टि. श. ९	उ. ३४	सू. १
६१०	श: १०	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १०	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १०	उ. २	सू. १
६१३	टि. श. १०	उ. ३	सू. १
६१३	टि. श. १०	उ. ४	सू. १-४
६१३	टि. श. १०	उ. ५	सू. १
६१०	श. ११	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. ११	उ. १	सू. ३
६१३	टि. श. ११	उ. १०	सू. १
६१०	श. १२	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १२	उ. ३	सू. १
[illegible]	टि. श. १२	उ. ४	सू. १

६१३	टि. श. १२	उ. ५	सू. १
५९३	श. १२	उ. ५	सू. ९
५९७	श. १२	उ. ५	सू. १०
६१३	टि. श. १२	उ. ६	सू. १
६१३	टि. श. १२	उ. ७	सू. १
६१३	टि. श. १२	उ. ८	सू. १
६१०	श. १३	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १३	उ. १	सू. १
६१२	श. १३	उ. ४	सू. १
६१३	टि. श. १३	उ. ६	सू. १
६१३	टि. श. १३	उ. ७	सू. १
६१३	टि. श. १३	उ. ९	सू. १
६१०	श. १४	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १४	उ. १	सू. १
६१२	श. १४	उ. ३	सू. १
६१२	श. १४	उ. ४	सू. १
६१२	श. १४	उ. ५	सू. १
६१३	टि. श. १४	उ. ६	सू. १
६१३	टि. श. १४	उ. ७	सू. १
६८०	श. १४	उ. १०	सू. १-६
६८१-६८२	श. १४	उ. १०	सू. ७-११
६८१	श. १४	उ. १०	सू. १२-२४
६१०	श. १६	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १६	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १६	उ. २	सू. १
६१३	टि. श. १६	उ. ३	सू. १
६१३	टि. श. १६	उ. ४	सू. १
६१३	टि. श. १६	उ. ५	सू. १-२
६६४	श. १६	उ. ६	सू. १-२
६६५-६६६	श. १६	उ. ६	सू. २०-३५
६७५	टि. श. १६	उ. १०	सू. १
६१३	टि. श. १७	उ. १	सू. १
६११	श. १७	उ. १	सू. २
७५३	टि. श. १७	उ. १	सू. २८-२९
६१३	टि. श. १८	उ. १	सू. १
६११	श. १८	उ. १	सू. १
६१३	टि. श. १८	उ. २	सू. १
६१३	टि. श. १८	उ. ३	सू. १
७२१	टि. श. १८	उ. ३	सू. ८-९ (१)
६१३	टि. श. १८	उ. ४	सू. १
६१३	टि. श. १८	उ. ७	सू. १
६१३	टि. श. १८	उ. ८	सू. १
७२०-७२१	श. १८	उ. ८	सू. १६-२३
६१३	टि. श. १८	उ. ९	सू. १
६१३	टि. श. १८	उ. १०	सू. १
६११	श. १९	उ. १	सू. १

७३०-७३१		सू. ९३-९८
७३१-७३२		सू. ९९-१०२
७३२-७३४		सू. १०३
७३४		सू. १०४
७३४-७३५		सू. १०५-१०७
७३५-७३६		सू. ११०-११४
७३७-७३८		सू. ११५-१२१
७३८		सू. १२२-१२४
७३८-७३९		सू. १२७-१३०
७३९-७४०		सू. १३१-१३८
७४०		सू. १३९-१४१
७४०-७४२		सू. १४२-१५१
७४२-७४३		सू. १५२-१५८
७४३		सू. १५९-१६०
७४३		सू. २०७
७४३-७४४		सू. २०८-२१५
७४४		सू. २१७
७४४-७४५		सू. २२६
७४५		सू. २२७-२३१
७४५		सू. २३२
७४६		सू. २३३
७४६		सू. २३४-२३८
७४६-७४७.		सू. २३९-२४१
७४७-७४८		सू. २४२-२४४
७४८		सू. २४५-२४७
७४८-७४९		सू. २४८-२५०
७४९-७५३		सू. २५१-२५९
७५३-७५६		सू. २६० (१-११)
७५७		सू. २६१
७५७-७५९		सू. २६२ (१-११)
७५९-७६१		सू. २६३-२७१
७६१-७६२		सू. २७२-२७८
७६२		सू. २७९-२८१
७६३		सू. २८२
७६३		सू. २८३
७६३		सू. २८४
७६३		सू. २८५
७६३-७६४		सू. २८७-२९१
७६४		सू. २९२
७६४		सू. २९३
७६४-७६६		सू. २९४-३०१
७६६-७६७		सू. ३०२-३१०
७६७	अनु.	सू. ३११
७६७-७६८	अनु.	सू. ३१२
७६८		सू. ३१३
७६८		सू. ३१४-३१७
७६८-७६९		सू. ३१८-३१९
७६९		सू. ३२०-३२१
७६९-७७०		सू. ३२२-३२३
७७०		सू. ३२४-३२५
७७०		सू. ३२६-३२७
७७०-७७१		सू. ३२८-३२९
७२३	टि.	सू. ४३६
७७१-७७४		सू. ४७७-४९२
६६०-६६१		सू. ४९३-४९५
७७४		सू. ४९६
७७४		सू. ५२०
७७४-७७५		सू. ५२१-५२४
७७५		सू. ५२५
७७५-७७६		सू. ५२६
७७६-७७७		सू. ५२७-५३१
७७७-७७८		सू. ५३३
७७८		सू. ५३४
७७८		सू. ५३५
७७८-७७९		सू. ५३६-५४६
७७९-७८०		सू. ५४७-५५७
७८१		सू. ५५८-५६५
७८१-७८२		सू. ५६६-५७०
७८२		सू. ५७१-५७४
७८२-७८३	अनु.	सू. ५७५-५७९
७८३-७८४		सू. ५८०-५९२
७८४-७८५		सू. ५९३-५९८
७८५		सू. ५९९
७८६		सू. ६००
७८६		सू. ६०१
७८६		सू. ६०२-६०४
७८६-७८७		सू. ६०५
७८७		सू. ६०६
६४४		सू. ६०६

दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र

६५०	दशा. १	सू. १

आवश्यक सूत्र

६६४	अ. ४

२५. संयत अध्ययन (पृ. ७९०-८४१)

स्थानांग सूत्र

८१४		अ. ३	उ. २	सू. १६६
७९६	टि.	अ. ५	उ. ३	सू. ४४५
७९७	टि.	अ. ५	उ. ३	सू. ४४५

१०४१	पडि. २		सू. ५१ (२)
१०४७-१०४८	पडि. २		सू. ५४
१०४९-१०५०	पडि. २		सू. ५५
१०५३-१०५४	पडि. २		सू. ५६ (१-२)
१०४८-१०४९	पडि. २		सू. ५९ (२)
१०५०-१०५१	पडि. २		सू. ५९ (३)
१०५४-१०५६	पडि. २		सू. ६० (१-५)
१०६१	पडि. २		सू. ६१ (२)
१०५६-१०६२	पडि. २		सू. ६२ (१-९)
१०४९	टि. पडि. २		सू. ६३
१०५०	टि. पडि. २		सू. ६३
१०४२	टि. पडि. ३	उ. १	सू. ९७ (२)
१०४७	टि. पडि. ३		सू. २०६
१०४६	टि. पडि. ६		सू. २२५
१०४४	टि. पडि. ९		सू. २३२
१०४५	टि. पडि. ९		सू. २३२
१०४९	पडि. ९		सू. २३२
१०५१	पडि. ९		सू. २३२
१०५१	टि. पडि. ९		सू. २३२
१०४५	टि. पडि. ९		सू. २४५
१०४९	टि. पडि. ९		सू. २४५
१०५०	टि. पडि. ९		सू. २४५
१०५१	टि. पडि. ९		सू. २४५
१०४६	टि. पडि. ९		सू. २५५
१०४७	टि. पडि. ९		सू. २५५

प्रज्ञापना सूत्र

१०५१	पद ३	सू. २५३
१०४६	टि. पद १८	सू. १२६२
१०४६	टि. पद १८	सू. १२६३
१०४४-१०४५	पद १८	सू. १३२६-१३३०
१०६२-१०६५	पद ३४	सू. २०५१-२०५२
१०६५	पद ३४	सू. २०५३

उत्तराध्ययन सूत्र

१०४७	टि. अ. ३६	गा. २०१

३०. कषाय अध्ययन (पृ. १०६८-१०७५)

स्थानांग सूत्र

१०६९	अ. १		सू. ३९ (१)
१०७३	टि. अ. २	उ. ४	सू. १११
१०६९	टि. अ. ४	उ. १	सू. २४९
[illegible]	टि. अ. ४	उ. १	सू. २४९
[illegible]	टि. अ. ४	उ. १	सू. २४९
[illegible]	अ. ४	उ. २	सू. २९३
[illegible]	अ. ४	उ. २	सू. ३११
[illegible]	अ. ४	उ. ३	सू. ३११

१०७१-१०७२	अ. ४	सू. ३८५
१०७२-१०७३	अ. ८	सू. ६०६
१०६९	टि. अ. ९	सू. ६९३
१०७२	अ. १०	सू. ७०८
१०७३	अ. १०	सू. ७१०

समवायांग सूत्र

१०६९	सम. ४	सू. १
१०७३	टि. सम. ८	सू. १

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१०६९	श. १८	उ. ४	सू. ३
१०७३	श. १९	उ. ९	सू. ८
१०७३	श. १९	उ. ८	सू. १९-२०

जीवाभिगम सूत्र

१०७४	पडि. १	सू. १३ (५)
१०७४	पडि. १	सू. १५
१०७४	पडि. १	सू. १६, १७
१०७४	पडि. १	सू. १८, २०, २१
१०७४	पडि. १	सू. २४, २५
१०७४	पडि. १	सू. २६
१०७४	पडि. १	सू. २८
१०७४	पडि. १	सू. २९
१०७४	पडि. १	सू. ३०
१०७३	पडि. १	सू. ३२
१०७४	पडि. १	सू. ३५
१०७४	पडि. १	सू. ३६
१०७४	पडि. १	सू. ३८
१०७४	पडि. १	सू. ३९
१०७४	पडि. १	सू. ४०
१०७४	पडि. १	सू. ४१
१०७४	पडि. १	सू. ४२
१०७५	टि. पडि. ९	सू. २३२
१०७५	पडि. ९	सू. २४८
१०७५	टि. पडि. ९	सू. २४८

प्रज्ञापना सूत्र

१०७५	पद ३	सू. २५४
१०६९	पद १४	सू. ९५८-९५९
१०७३	पद १४	सू. ९६०
१०७२	पद १४	सू. ९६१
१०६९	पद १४	सू. ९६२-९६३
१०७४-१०७५	पद १८	सू. १३३१-१३३४

३१. कर्म अध्ययन (पृ. १०७६-१२१७)

स्थानांग सूत्र

१२०१	अ. १	सू. १
११२२	अ. १	सू. ७

११२२	अ. २	उ. २	सू. ६७
११५८-११५९	अ. २	उ. ३	सू. ७९ (१९-२१)
१०८१	अ. २	उ. ३	सू. ७९ (२२)
११५८	अ. २	उ. ३	सू. ७९ (२३-२४)
११०४	अ. २	उ. ४	सू. १०७
११२२	अ. २	उ. ४	सू. १०७
११४४	टि. अ. २	उ. ४	सू. १०७/२
१०९३	अ. २	उ. ४	सू. ११६ (१)
१०९३	अ. २	उ. ४	सू. ११६ (२)
१०९४	टि. अ. २	उ. ४	सू. ११६ (३)
१०९४	टि. अ. २	उ. ४	सू. ११६ (४)
१०९५	अ. २	उ. ४	सू. ११६ (५)
१०९५	अ. २	उ. ४	सू. ११६ (६)
१०९७	टि. अ. २	उ. ४	सू. ११६ (७)
१०९८	अ. २	उ. ४	सू. ११६ (८)
११०२	अ. २	उ. ४	सू. १२५
११६०	टि. अ. ३	उ. १	सू. १३३
११८०	अ. ३	उ. १	सू. १५२
१२०६	अ. ३	उ. ४	सू. २२६
११०२	अ. ३	उ. ४	सू. २३३
१०९३	टि. अ. ४	उ. १	सू. २५०
१२०६	अ. ४	उ. १	सू. २६८
१२०६	अ. ४	उ. १	सू. २६८
११४८	अ. ४	उ. १	सू. २६८
१०९५	टि. अ. ४	उ. २	सू. २९४
११२९	अ. ४	उ. २	सू. २९६ (१)
११२९-११३०	अ. ४	उ. २	सू. २९६ (२-१०)
११३०	अ. ४	उ. ४	सू. ३५४
१०८१	अ. ४	उ. ४	सू. ३६२ (१)
१०८१	अ. ४	उ. ४	सू. ३६२ (२)
११५८	टि. अ. ४	उ. ४	सू. ३७३
११०२	अ. ४	उ. ४	सू. ३८७
१२१४	अ. ५	उ. १	सू. ४२३
१०८९	अ. ५	उ. २	सू. ४२६
१०९३	टि. अ. ५	उ. ३	सू. ४६४
११०२-११०३	अ. ५	उ. ३	सू. ४७३
११६१	टि. अ. ६		सू. ५३६ (१)
११६२	टि. अ. ६		सू. ५३६ (२-३)
११६६	टि. अ. ६		सू. ५३६ (४-८)
११०३	अ. ६		सू. ५४०
११८०	अ. ७		सू. ५६१
१२०२	टि. अ. ७		सू. ५८८
१२०३	टि. अ. ७		सू. ५८८
११०३	अ. ७		सू. ५९२
१०९२	अ. ८		सू. ५९६

११८४	टि. अ. ८	सू. ६५८
११९१	टि. अ. ८	सू. ६५८
११९२	टि. अ. ८	सू. ६५८
११०३	अ. ८	सू. ६६०
१०९४	टि. अ. ९	सू. ६६८
११६१	अ. ९	सू. ६८६
११२२	टि. अ. ९	सू. ६९३
१०९५	टि. अ. ९	सू. ७००
११०३	अ. ९	सू. ७०२
१०९०	अ. १०	सू. ७५८
११८०	अ. १०	सू. ७७२
११०३-११०४	अ. १०	सू. ७८३

समवायांग सूत्र

१२०१	टि. सम. १	सू. ३
११२२	टि. सम. १	सू. १६
११२२	टि. सम. २	सू. ३
११२९	टि. सम. ४	सू. ५
१२०६	सम. ७	सू. ६
१०९४	टि. सम. ९	सू. ११
१२१५-१२१६	सम. १४	सू. ५
१०९५	टि. सम. १६	सू. २
११३५	सम. १७	सू. १०
११८४	टि. सम. २०	सू. ५
१०९८	सम. २१	सू. २
१०९९	सम. २५	सू. ६
१०९९	सम. २६	सू. २
१०९९	सम. २७	सू. ५
१०९९	सम. २८	सू. २
१०९९-११००	सम. २८	सू. ५
११००	सम. २९	सू. ९
१०८७	टि. सम. ३०	सू. १
१०९८	सम. ३९	सू. ४
१०९६	टि. सम. ४२	सू. ६
१०९८	सम. ५१	सू. ५
१०८४-१०८५	सम. ५२	सू. १
१०९८	सम. ५२	सू. ४
१०९८	सम. ५५	सू. ६
१०९८	सम. ५८	सू. २
१०९८	सम. ६९	सू. ३
११८१	सम. ७०	सू. ४
१०९८	सम. ८७	सू. ५
१०९८	सम. ९१	सू. ४
१०९८	सम. ९७	सू. ३
११६२	सम.	सू. १५४ (५)
११६४	सम.	सू. १५५ (९)

भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र)

१२१३-१२१४		श. १	उ. १	सू. ५
१०१२		श. १	उ. १	सू. ६ (९-१०)
११७७		श. १	उ. २	सू. ४
११६७-११६८		श. १	उ. २	सू. २०-२१
११६८		श. १	उ. २	सू. २२
११५४-११५५		श. १	उ. ३	सू. १-३
११५७		श. १	उ. ३	सू. ४-५
११५४		श. १	उ. ३	सू. ८-९
११५५-११५६		श. १	उ. ३	सू. १०-११
११५६		श. १	उ. ३	सू. १२-१३
११५६-११५७		श. १	उ. ३	सू. १४
११५७-११५८		श. १	उ. ३	सू. १५
१०८१	टि.	श. १	उ. ४	सू. १
१२०६		श. १	उ. ४	सू. २-५
१२१६		श. १	उ. ४	सू. ६
११७७-११७८		श. १	उ. ७	सू. ९
१२०१		श. १	उ. ७	सू. २२
११६८-११७०		श. १	उ. ८	सू. १-३
१०८१-१०८२		श. १	उ. ९	सू. ९
१०६६-१०६७		श. १	उ. ९	सू. २०
१२१३	टि.	श. १	उ. १०	सू. १
११७८-११७९		श. ५	उ. ३	सू. १
११५९		श. ५	उ. ३	सू. २-४
११५९-११६०		श. ५	उ. ३	सू. ५
११३४		श. ५	उ. ४	सू. ५-९
११३४		श. ५	उ. ४	सू. १०-१४
११६०-११६१		श. ५	उ. ६	सू. १-४
१०९०		श. ५	उ. ६	सू. २०
१२१२-१२१३		श. ६	उ. ३	सू. २-३
१२०८-१२०९		श. ६	उ. ३	सू. ४-५
१२०९		श. ६	उ. ३	सू. ६-७
१०८२	टि.	श. ६	उ. ३	सू. १०
११८०-११८१		श. ६	उ. ३	सू. ११ (१-७)
११३५-११३८		श. ६	उ. ३	सू. १२-२८
११६१	टि.	श. ६	उ. ८	सू. २७
११६२	टि.	श. ६	उ. ८	सू. २८
११६२-११६३		श. ६	उ. ८	सू. २९-३४
११३३	टि.	श. ६	उ. ९	सू. १
[illegible]		श. ७	उ. १	सू. ११-१३ (१-४)
[illegible]		श. ७	उ. ६	सू. २-४
[illegible]		श. ७	उ. ६	सू. ५-६
[illegible]		श. ७	उ. ६	सू. १२-१४
[illegible]		श. ७	उ. ६	सू. १५-२२
[illegible]		श. ७	उ. ६	सू. २३-३०
११०५		श. ७	उ. ८	सू. ३-४
१०८०		श. ८	उ. ४	सू. १८
११२२		श. ८	उ. ८	सू. १०
११२२-११२५		श. ८	उ. ८	सू. ११-१४
११२५		श. ८	उ. ८	सू. १५-१६
११२५-११२६		श. ८	उ. ८	सू. १७-२०
११२६		श. ८	उ. ८	सू. २१-२२
१०८२	टि.	श. ८	उ. ८	सू. २३
११००-११०१		श. ८	उ. ८	सू. २४-२९
११०१-११०२		श. ८	उ. ८	सू. ३०-३४
१०८२	टि.	श. ८	उ. १०	सू. ३१
१०८२	टि.	श. ८	उ. १०	सू. ३२
१२०७		श. ८	उ. १०	सू. ३३-४१
१०८२-१०८४		श. ८	उ. १०	सू. ४२-४८
१२१३		श. ९	उ. ३३	सू. ९६
११२९		श. १२	उ. १	सू. २६-२८
११२८-११२९		श. १२	उ. २	सू. २१
१२०८		श. १२	उ. ५	सू. २७
१०८२		श. १२	उ. ५	सू. ३७
११९२		श. १३	उ. ८	सू. १
११७६		श. १४	उ. १	सू. १०-१३
११७६		श. १४	उ. १	सू. १६-१९
११७७		श. १४	उ. १	सू. २०
१०९१		श. १६	उ. २	सू. १७-१९
१०८२	टि.	श. १६	उ. ३	सू. २-३
११३३	टि.	श. १६	उ. ३	सू. ४
११४७	टि.	श. १६	उ. ३	सू. ४ (१)
११४८	टि.	श. १६	उ. ३	सू. ४ (२)
११२६-११२७		श. १८	उ. ३	सू. १०-१४
११२७		श. १८	उ. ३	सू. १५-१६
११२७		श. १८	उ. ३	सू. १७-२०
११०४-११०५		श. १८	उ. ३	सू. २१-२३
१२०९-१२१०		श. १८	उ. ५	सू. ५-७
११७८		श. १८	उ. ५	सू. ८-११
१२१४-१२१५		श. १८	उ. ७	सू. ४८-५१
१२११		श. १९	उ. ५	सू. १-५
१०९०-१०९१		श. १९	उ. ८	सू. ५-७
११२७		श. २०	उ. ७	सू. १-३
११२८		श. २०	उ. ७	सू. ४-७
११२८		श. २०	उ. ७	सू. ८-११
११२८		श. २०	उ. ७	सू. १६-१८
११६७		श. २०	उ. १०	सू. १-६
११०५		श. २६	उ. १	सू. २ गा. १
११०५-११०७		श. २६	उ. १	सू. ४-३३
११०७-११०८		श. २६	उ. १	सू. ३४-४३
१११०-१११३		श. २६	उ. १	सू. ४४-८८

११०९	श. २६	उ. २	सू. १-९
१११३-१११४	श. २६	उ. २	सू. १०-१६
१११५	श. २६	उ. ३	सू. १-२
१११६	श. २६	उ. ४	सू. १
१११६	श. २६	उ. ५	सू. १
१११६	श. २६	उ. ६	सू. १
१११६	श. २६	उ. ७	सू. १
१११६	श. २६	उ. ८	सू. १
१११६	श. २६	उ. ९	सू. १
१११७	श. २६	उ. १०	सू. १
११०९-१११०	श. २६	उ. ११	सू. १-४
१११४-१११५	श. २६	उ. ११	सू. ५-१९
१११७	श. २७	उ. १-११	सू. १-२
१११७-१११८	श. २८	उ. १	सू. १-१०
१११८	श. २८	उ. २	सू. १-४
१११९	श. २८	उ. ३-११	सू. १
१११९-११२०	श. २९	उ. १	सू. १-६
११२०-११२१	श. २९	उ. २	सू. १-७
११२१	श. २९	उ. ३-११	सू. १
११७०-११७२	श. ३०	उ. १	सू. ३३-६४
११७२-११७५	श. ३०	उ. १	सू. ६५-९३
११७५	श. ३०	उ. २	सू. ५-१०
११७५	श. ३०	उ. ३	सू. १
११७५-११७६	श. ३०	उ. ३	सू. ४-११
११४८-११४९	श. ३३/१	उ. १	सू. ७-१६
११४९-११५०	श. ३३/१	उ. २	सू. ४-१०
११५०	श. ३३/१	उ. ३	सू. २
११५०	श. ३३/१	उ. ४	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. ५	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. ६	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. ७	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. ८	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. ९	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. १०	सू. १
११५०	श. ३३/१	उ. ११	सू. १
११५०	श. ३३/२	उ. १	सू. ४-६
११५०	श. ३३/२	उ. २	सू. २
११५१	श. ३३/२	उ. ३	सू. २
११५१	श. ३३/२	उ. ४-११	सू. १
११५१	श. ३३/३	उ. १-११	सू. १
११५१	श. ३३/३	उ. १-११	सू. १
११५१	श. ३३/४	उ. १-११	सू. १
११५१	श. ३३/५	उ. १-११	सू. २
११५१	श. ३३/६	उ. १-११	सू. ६
११५१	श. ३३/६	उ. १-११	सू. १०-११
११५१	श. ३३/७	उ. १-११	सू. १
११५१	श. ३३/८	उ. १-११	सू. १
११५१	श. ३३/९	उ. १-९	सू. १
११५१	श. ३३/१०	उ. १-९	सू. १
११५२	श. ३३/११	उ. १-९	सू. १
११५२	श. ३३/१२	उ. १-९	सू. १
११५२	श. ३४/१	उ. १	सू. ७०-७३
११४४-११४५	श. ३४/१	उ. १	सू. ७६
११५२	श. ३४/१	उ. २	सू. ४
११४५-११४६	श. ३४/१	उ. २	सू. ७
११५२-११५३	श. ३४/१	उ. ३	सू. ३ (१)
११४६	श. ३४/१	उ. ३	सू. ३ (२)
११५३	श. ३४/१	उ. ४-११	सू. १
११५३	श. ३४/२	उ. १-११	सू. ३
११५३	श. ३४/३-५	उ. १-११	सू. १-२
११५३	श. ३४/६	उ. १-११	सू. २
११५३	श. ३४/६	उ. १-११	सू. ५
११५३	श. ३४/७-१२	उ. १-११	सू. १-३

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

१२१०-१२११	श्रु. १	अ. ६	सू. ४-७
१०९०	श्रु. १	अ. ८	सू. १४

औपपातिक सूत्र

११५८		सू. ५६
१०८१	टि.	सू. ५६
११०४		सू. ६४-६५
११४३		सू. ६६

जीवाभिगम सूत्र

११८३	टि. पडि. २	सू. ५१
११८४	टि. पडि. २	सू. ५७
११८४	टि. पडि. २	सू. ६१

प्रज्ञापना सूत्र

११६४-११६५	पद ३		सू. ३२५
११६५-११६६	पद ६		सू. ६७७-६८३
११६१	पद ६		सू. ६८४
११६१-११६२	पद ६		सू. ६८५-६८६
११६३-११६४	पद ६		सू. ६८७-६९०
११६४	पद ६		सू. ६९१-६९२
१०९२-१०९३	पद १४		सू. ९६४-९७१
११६७	टि. पद २०		सू. १४७१
११६८	टि. पद २०		सू. १४७२
११६८	टि. पद २०		सू. १४७३
११३९-११४१	पद २२		सू. १६४२-१६४९
११४३	टि. पद २२		सू. १६४३
१०८१	पद २३	उ. १	सू. १६६४
१०८२	पद २३	उ. १	सू. १६६५

१०८२	पद २३	उ. १	सू. १६६६
१०८७-१०८८	पद २३	उ. १	सू. १६६७-१६६९
११४३-११४४	पद २३	उ. १	सू. १६७०-१६७४
११४६-११४७	पद २३	उ. १	सू. १६७५-१६७८
१२०१-१२०५	पद २३	उ. १	सू. १६७९-१६८६
१०८२	टि. पद २३	उ. २	सू. १६८७
१०९३	पद २३	उ. २	सू. १६८८
१०९४-१०९५	पद २३	उ. २	सू. १६८९-१६९१
१०९५	पद २३	उ. २	सू. १६९२
१०९५-१०९७	पद २३	उ. २	सू. १६९३-१६९५
१०९८	पद २३	उ. २	सू. १६९६
११८९-११९२	पद २३	उ. २	सू. १६९७-१७०४
११९४-११९६	पद २३	उ. २	सू. १७०५-१७१४
११९६-११९७	पद २३	उ. २	सू. १७१५-१७२०
११९७	पद २३	उ. २	सू. १७२१-१७२४
११९७-११९८	पद २३	उ. २	सू. १७२५-१७२७
११९८-११९९	पद २३	उ. २	सू. १७२८-१७३३
११९९-१२००	पद २३	उ. २	सू. १७३४-१७४१
११९२-११९३	पद २३	उ. २	सू. १७४२-१७४४
११९३-११९४	पद २३	उ. २	सू. १७४५-१७५३
१०८२	टि. पद २४		सू. १७५४ (१-२)
११३१-११३३	पद २४		सू. १७५५-१७६८
१०८२	टि. पद २५		सू. १७६९ (१-२)
११४७	पद २५		सू. १७७०-१७७४
१०८२	टि. पद २६		सू. १७७५ (१-२)
११४१-११४३	पद २६		सू. १७७६-१७८६
११४७-११४८	पद २७		सू. १७८६-१७९२
१०८२	टि. पद २७		सू. १७८७ (१-२)

उत्तराध्ययन सूत्र

१२१६	अ. २९	सू. २९
१०८१	अ. ३३	गा. १
१०८२	टि. अ. ३३	गा. २-३
१०९३	टि. अ. ३३	गा. ४
१०९४	ठि. अ. ३३	गा. ५-६
१०९४	टि. अ. ३३	गा. ७
१०९५	टि. अ. ३३	गा. ८-११
१०९५	टि. अ. ३३	गा. १२
१०९५	टि. अ. ३३	गा. १३
१०९७	टि. अ. ३३	गा. १४
१०९८	टि. अ. ३३	गा. १५-१६ (१)
१२०८	अ. ३३	गा. १६ (२)-१८
११८१	अ. ३३	गा. १९-२३
१५	अ. ३३	गा. २४-२५

दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र

'५-१०८७	दसा. ९	गाथा १-३०

३२. वेदना अध्ययन (पृ. १२१८-१२४०)

सूत्रकृतांग सूत्र

१२२८-१२३०	श्रु. १ अ. ५	उ. १	गा. ६-२७

स्थानांग सूत्र

१२१९	अ. १		सू. २३
१२१९	टि. अ. ३	उ. १	सू. १५५
१२२५	टि. अ. ४	उ. ४	सू. ३४२
१२३२	अ. ६		सू. ४८८
१२३२-१२३३	अ. १०		सू. ७३७
१२३५	अ. १०		सू. ७३९
१२२५	टि. अ. १०		सू. ७५३

समवायांग सूत्र

१२१९	टि. सम.	सू. १५३ (२)
१२२२	टि. सम.	सू. १५३ गा. २

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१२३१-१२३२	श. १	उ. २	सू. २-३
१२२४-१२२५	श. ५	उ. ५	सू. २-४
१२३८-१२३९	श. ६	उ. १	सू. २-४
१२२२-१२२३	श. ६	उ. १	सू. ५-१२
१२३५-१२३६	श. ६	उ. १	सू. १३
१२३३-१२३४	श. ६	उ. १०	सू. १
१२२४	टि. श. ६	उ. १०	सू. ११
१२३३	श. ६	उ. १०	सू. ११
१२२४	श. ७	उ. १	सू. १४-१५
१२३६	श. ७	उ. ३	सू. १०-१२
१२३७-१२३८	श. ७	उ. ३	सू. १३-१९
१२३६-१२३७	श. ७	उ. ३	सू. २०-२२
१२४०	श. ७	उ. ६	सू. ७-११
१२३०	श. ७	उ. ७	सू. २४
१२३०-१२३१	श. ७	उ. ७	सू. २५-२८
१२२५	श. ७	उ. ८	सू. ७
१२१९	टि. श. १०	उ. २	सू. ५
१२२०	टि. श. १०	उ. २	सू. ५
१२३१	श. १४	उ. ४	सू. ५-७
१२३४-१२३५	श. १६	उ. २	सू. २-७
१२३२	श. १७	उ. ४	सू. १३-२०
१२२५	श. १९	उ. ३	सू. ३३-३७
१२२२	टि. श. १९	उ. ५	सू. ६-७

प्रज्ञापना सूत्र

१२१९	पद ३५	सू. २०५४ गा. १
१२४०	पद ३५	सू. २०५४ गा. २
१२१९-१२२०	पद ३५	सू. २०५५-२०५९
१२२०	पद ३५	सू. २०६०-२०६२
१२२०	पद ३५	सू. २०६३-२०६५

१२२०	पद ३५		सू. २०६६-२०६८
१२२०	पद ३५		सू. २०६९-२०७१
१२२१	पद ३५		सू. २०७२-२०७६
१२२२	पद ३५		सू. २०७७-२०८४

जीवाभिगम सूत्र

१२२८	पडि. ३		सू. ८८
१२१९	टि. पडि. ३	उ. २	सू. ८९ (३)
१२२५-१२२८	पडि. ३	उ. २	सू. ८९ (५)

३३. गति अध्ययन (पृ. १२४१-१२५१)

स्थानांग सूत्र

१२४३	टि. अ. ३	उ. ३	सू. १८७ (१-२)
१२४४	टि. अ. ३	उ. ३	सू. १८७ (३-४)
१२४३	अ. ४	उ. १	सू. २६७
१२४४	अ. ४	उ. १	सू. २६७
१२४३	अ. ५	उ. १	सू. ३९०/१२-१३
१२४३-१२४४	अ. ५	उ. १	सू. ३९१
१२४३	अ. ५	उ. ३	सू. ४४२
१२४३	अ. ८		सू. ६३०
१२४३	अ. १०		सू. ७४५

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१२५०	टि. श. २५	उ. ३	सू. ११७

प्रज्ञापना सूत्र

१२४९-१२५०	पद ३	सू. २२५-२२६
१२४६	पद १८	सू. १२६१-१२६५
१२४७	पद १८	सू. १२६६-१२७०

जीवाभिगम सूत्र

१२४४	पडि. १	सू. १३ (१२)
१२४५	पडि. १	सू. १३ (३३)
१२४४	पडि. १	सू. १४-२६
१२४५	पडि. १	सू. १४-२६
१२४५	पडि. १	सू. १८
१२४५	पडि. १	सू. २१
१२४४	पडि. १	सू. २७-३०
१२४५	पडि. १	सू. २८-३०
१२४४	पडि. १	सू. ३२
१२४५	पडि. १	सू. ३२
१२४५	पडि. १	सू. ३५-४०
१२४६	पडि. १	सू. ३५-४०
१२४५	पडि. १	सू. ४१
१२४६	पडि. १	सू. ४१
१२४५	पडि. १	सू. ४२
१२४६	पडि. १	सू. ४२
१२४६	टि. पडि. ३	सू. २०६
१२४८	टि. पडि. ३	सू. २०६
१२४६	टि. पडि. ६	सू. २२५
१२५०	टि. पडि. ६	सू. २२५
१२४८	टि. पडि. ६	सू. २२५
१२४६	टि. पडि. ७	सू. २२६
१२४८	टि. पडि. ७	सू. २२६
१२४९	टि. पडि. ७	सू. २२७
१२५१	टि. पडि. ७	सू. २२७
१२४८-१२४९	पडि. ९	सू. २३१
१२४६	पडि. ९	सू. २३१
१२४६	टि. पडि. ९	सू. २४९
१२४८	टि. पडि. ९	सू. २४९
१२५०	टि. पडि. ९	सू. २४९
१२४६	टि. पडि. ९	सू. २५५
१२४८	पडि. ९	सू. २५५
१२५०	टि. पडि. ९	सू. २५५
१२४८	टि. पडि. ९	सू. २५७
१२४९	टि. पडि. ९	सू. २५७
१२५१	टि. पडि. ९	सू. २५७
१२४७-१२४८	पडि. ९	सू. २५९
१२४९	पडि. ९	सू. २५९
१२५०-१२५१	पडि. ९	सू. २५९

उत्तराध्ययन सूत्र

१२४६	टि. अ. ३६	गा. १६७
१२४८	टि. अ. ३६	गा. १६८
१२४६	अ. ३६	गा. १७६
१२४६	टि. अ. ३६	गा. १७६
१२४७	अ. ३६	गा. १८५-१८६/१
१२४७	अ. ३६	गा. १९२-१९३/१
१२४६	अ. ३६	गा. २०१
१२४८	टि. अ. ३६	गा. २०२
१२४६	अ. ३६	गा. २४५
१२४८	टि. अ. ३६	गा. २४६

३४. नरकगति अध्ययन (पृ. १२५२-१२५८)

सूत्रकृतांग सूत्र

१२५३	श्रु. १ अ. ५	उ. १	गा. १-५
१२५३	श्रु. १ अ. ५	उ. २	गा. १-२५

स्थानांग सूत्र

१२५७	अ. ४	उ. १	सू. २४५

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१२५७	श. ५	उ. ६	सू. १३
१२५३	टि. श. १३	उ. ४	सू. ६-९
१२५८	श. १३	उ. ४	सू. ११
१२५६-१२५७	श. १४	उ. ३	सू. १४-१७

जीवाभिगम सूत्र

१२५६	पडि. ३	उ. २	सू. ८९ (४)
१२५३	पडि. ३	उ. २	सू. ९२
१२५७	टि. पडि. ३	उ. ३	सू. २

३५. तिर्यञ्चगति अध्ययन (पृ. १२५९-१२९५)

स्थानांग सूत्र

१२६३	अ. २	उ. १	सू. ६३
१२६२	अ. २	उ. १	सू. ६५
१२९४	अ. ३	उ. १	सू. १४९
१२६२	अ. ३	उ. २	सू. १७२
१२६४-१२६५	अ. ३	उ. ३	सू. १८२
१२६२-१२६३	अ. ५	उ. १	सू. ३९३
१२६५	अ. ५	उ. २	सू. ४४४
१२७१	अ. ५	उ. ३	सू. ४४४

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१२६४	श. १		उ. ६	सू. २७
१२९५	टि. श. ७		उ. ३	सू. ५
१२९४-१२९५	श. ८		उ. ३	सू. १-५
१२७८-१२८५	श. ११		उ. १	सू. २-४५
१२८५	श. ११		उ. २	सू. १
१२८५	श. ११		उ. ३	सू. १
१२८५	श. ११		उ. ४	सू. १
१२८६	श. ११		उ. ५	सू. १
१२८६	श. ११		उ. ६	सू. १
१२८६	श. ११		उ. ७	सू. १
१२८६	श. ११		उ. ८	सू. १
१२६३-१२६४	श. १३		उ. ४	सू. ६४-६५
१२९३-१२९४	श. १४		उ. ८	सू. १८-२०
१२६५	श. १६		उ. १	सू. ३-५
१२६५-१२६८	श. १९		उ. ३	सू. २-२१
१२७२-१२७४	श. १९		उ. ३	सू. २२
१२७०-१२७१	श. १९		उ. ३	सू. २३-३०
१२७१-१२७२	श. १९		उ. ३	सू. ३१
१२७२	श. १९		उ. ३	सू. ३२
१२६८-१२६९	श. २०		उ. १	सू. ३-६
१२६९-१२७०	श. २०		उ. १	सू. ७-१०
१२७०	श. २०		उ. १	सू. ११
१२८७	श. २१	व. १	उ. २	सू. १
१२८७	श. २१	व. १	उ. ३	सू. १
१२८७	श. २१	व. १	उ. ४	सू. १
१२८८	श. २१	व. १	उ. ५	सू. १
१२८८	श. २१	व. १	उ. ६	सू. १
१२८८	श. २१	व. १	उ. ७	सू. १
१२८८	श. २१	व. १	उ. ८	सू. १
१२८८	श. २१	व. १	उ. ९	सू. १
१२८६-१२८७	श. २१	व. १	उ. ९	सू. २-१६
१२८८	श. २१	व. १	उ. १०	सू. १
१२८८	श. २१	व. २		सू. १
१२८८	श. २१	व. ३		सू. १
१२८८-१२८९	श. २१	व. ४		सू. १
१२८९	श. २१	व. ५		सू. १
१२८९	श. २१	व. ६		सू. १
१२८९	श. २१	व. ७		सू. १
१२८९	श. २१	व. ८		सू. १
१२८९	टि. श. २१	व. १-८		गा. १
१२९०	श. २२	व. १		सू. २-३
१२९०	श. २२	व. २		सू. १
१२९०-१२९१	श. २२	व. ३		सू. १
१२९१	श. २२	व. ४		सू. १
१२९१	श. २२	व. ५		सू. १
१२९१	श. २२	व. ६		सू. १
१२९१	टि. श. २२	व. १-६		गा. १
१२९१-१२९२	श. २३	व. १		सू. १-४
१२९२	श. २३	व. २		सू. १
१२९२	श. २३	व. ३		सू. १
१२९२	श. २३	व. ४		सू. १
१२९२-१२९३	श. २३	व. ५		सू. १
१२९३	टि. श. २३	व. १-५		गा. १
१२७०	श. ३३		उ. १	सू. १-६
१२७४-१२७५	श. ३३		उ. २	सू. १
१२७५	श. ३३		उ. ३	सू. १
१२७५	श. ३३/१		उ. ४-११	
१२७५-१२७६	श. ३३/२		उ. १	सू. १-३
१२७६	श. ३३/२		उ. २	सू. १
१२७६	श. ३३/२		उ. ३	सू. १
१२७६	श. ३३/२		उ. ४-११	
१२७६	श. ३३/३		उ. १-११	
१२७६	श. ३३/४		उ. १-११	
१२७७	श. ३३/५		उ. १-११	
१२७७	श. ३३/६		उ. १-११	सू. १-५
१२७७	श. ३३/६		उ. १-११	सू. ७-९
१२७७	श. ३३/६		उ. १-११	सू. ११
१२७८	श. ३३/७		उ. १-११	
१२७८	श. ३३/८		उ. १-११	
१२७८	श. ३३/९		उ. १-११	
१२७८	श. ३३/१०		उ. १-११	
१२७८	श. ३३/११		उ. १-९	
१२७८	श. ३३/१२		उ. १-९	सू. १-२
१२७५	टि. श. ३४/ए-१		उ. ३	सू. १
१२७०	टि. श. ३४/ए-२		उ. १	सू. १
१२७५	टि. श. ३४/ए-२		उ. १	सू. १

जीवाभिगम सूत्र

१२९५	पडि. ३	उ. २	सू. ९८
१२६२	पडि. ३	उ. २	सू. १०१ (२)

प्रज्ञापना सूत्र

१२९४	टि. पद १	सू. ४०
१२९५	टि. पद १	सू. ४१
१२९४	टि. पद १	सू. ४८
१२७९	टि. पद ६	सू. ६५३

३६. मनुष्यगति अध्ययन (पृ. १२९६-१३८१)

स्थानांग सूत्र

१३८१	अ. २		सू. ९२
१३३९	टि. अ. ३	उ. १	सू. १३४
१२९८	अ. ३	उ. १	सू. १३७
१३८१	अ. ३	उ. १	सू. १५१/२
१२९८-१२९९	अ. ३	उ. २	सू. १६८
१२९९-१३००	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (८-१३)
१३००	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (१४-१८)
१३००-१३०१	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (२०-२५)
१३०१-१३०२	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (२३-३१)
१३०२-१३०३	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (३२-३७)
१३०३	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (३८-४३)
१३०३-१३०४	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (४४-४९)
१३०४-१३०५	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (५०-५५)
१३०५-१३०६	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (५६-६१)
१३०६	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (६२-६७)
१३०६-१३०७	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (६८-७३)
१३०७-१३०८	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (७४-७९)
१३०८-१३०९	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (८०-८५)
१३०९	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (८६-९१)
१३०९-१३१०	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (९२-९७)
१३१०-१३११	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (९८-१०३)
१३११	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (१०४-१०९)
१३१२	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (११०-११५)
१३१२-१३१३	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (११६-१२१)
१३१३-१३१४	अ. ३	उ. २	सू. १६८ (१२२-१२७)
१३१७-१३१८	अ. ४	उ. १	सू. २३६
१३१८-१३१९	अ. ४	उ. १	सू. २३६
१३३७-१३३८	अ. ४	उ. १	सू. २३६
१३३८-१३३९	अ. ४	उ. १	सू. २३६
१३५८-१३५९	अ. ४	उ. १	सू. २३९
१३१४-१३१५	अ. ४	उ. १	सू. २३९
१३६७	अ. ४	उ. १	सू. २४०
१३१५-१३१७	अ. ४	उ. १	सू. २४१
१३२०-१३२१	अ. ४	उ. १	सू. २४१
१३५९-१३६०	अ. ४	उ. १	सू. २४१
१३४०	अ. ४	उ. १	सू. २४२
१३४०-१३४१	अ. ४	उ. १	सू. २५३
१३३२	अ. ४	उ. १	सू. २५६
१३३४-१३३५	अ. ४	उ. १	सू. २५६
१३६७	अ. ४	उ. १	सू. २७०
१३६७	अ. ४	उ. १	सू. २७१
१३६१	अ. ४	उ. १	सू. २७५
१३६६	अ. ४	उ. १	सू. २७५
१३२९-१३३१	अ. ४	उ. २	सू. २७९
१३२१-१३२३	अ. ४	उ. २	सू. २८०
१३४९-१३५१	अ. ४	उ. २	सू. २८१
१३५६	अ. ४	उ. २	सू. २८१ गा. १-५
१३५७	अ. ४	उ. २	सू. २८१
१३३३-१३३४	अ. ४	उ. २	सू. २८३
१३२५	अ. ४	उ. २	सू. २८७
१३३६	अ. ४	उ. २	सू. २८७
१३२५	अ. ४	उ. २	सू. २८९
१३३७	अ. ४	उ. २	सू. २८९
१३४२	अ. ४	उ. २	सू. २८९
१३४५-१३४६	अ. ४	उ. २	सू. २८९
१३६५-१३६६	अ. ४	उ. २	सू. २८९
१३५७-१३५८	अ. ४	उ. ३	सू. २९२/२-४
१३२३-१३२४	अ. ४	उ. ३	सू. ३१२
१३५८	अ. ४	उ. ३	सू. ३१२
१३३९	अ. ४	उ. ३	सू. ३१३
१३३५	अ. ४	उ. ३	सू. ३१५
१३१९	अ. ४	उ. ३	सू. ३१८
१३२६-१३२९	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३३५-१३३६	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३३६	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३४०	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३४६-१३४७	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३४७-१३४८	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३४८	अ. ४.	उ. ३	सू. ३१९
१३४८-१३४९	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३५४-१३५५	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३५५-१३५६	अ. ४	उ. ३	सू. ३१९
१३२५-१३२६	अ. ४	उ. ३	सू. ३२७ (१)
१३२६	अ. ४	उ. ३	सू. ३२७
१३३१-१३३२	अ. ४	उ. ३	सू. ३२७
१३३२-१३३३	अ. ४	उ. ३	सू. ३२७
१३५१	अ. ४	उ. ३	सू. ३२८
१३५२-१३५४	अ. ४	उ. ३	सू. ३२८
१३६८	टि. अ. ४	उ. ३	सू. ३३१
१३६७	अ. ४	उ. ४	सू. ३३९

१३३६-१३३७	अ. ४	उ. ४	सू. ३४३
१३३५	अ. ४	उ. ४	सू. ३४४
१३६२	अ. ४	उ. ४	सू. ३४४
१३६३-१३६४	अ. ४	उ. ४	सू. ३४६
१३६५	अ. ४	उ. ४	सू. ३४६
१३६२-१३६३	अ. ४	उ. ४	सू. ३४७
१३३९-१३४०	अ. ४	उ. ४	सू. ३५०
१३६०-१३६१	अ. ४	उ. ४	सू. ३५०
१३६१	अ. ४	उ. ४	सू. ३५०
१३२९	अ. ४	उ. ४	सू. ३५२
१३२४	अ. ४	उ. ४	सू. ३५२/६
१३४१	अ. ४	उ. ४	सू. ३५८
१३४१-१३४२	अ. ४	उ. ४	सू. ३५८
१३६७-१३६८	अ. ४	उ. ४	सू. ३५९
१३४३	अ. ४	उ. ४	सू. ३६०
१३४३-१३४५	अ. ४	उ. ४	सू. ३६०
१३२४	अ. ४	उ. ४	सू. ३६६
१३३३	अ. ४	उ. ४	सू. ३६६
१३६८	टि. अ. ५	उ. २	सू. ४४०
१३६८	अ. ५	उ. ३	सू. ४५२
१३६८	अ. ६		सू. ४९०
१३६८-१३६९	अ. ६		सू. ४९१
१३८१	अ. ६		सू. ४९३
१३६९	अ. ९		सू. ६७९
१३६९	अ. १०		सू. ७६२

समवायांग सूत्र

१३८१	सम. ६३	सू. २

जीवाभिगम सूत्र

१३६९-१३७२	पडि. ३	सू. १११/१३
१३७२-१३७५	पडि. ३	सू. १११/१४
१३७५-१३८०	पडि. ३	सू. १११/१५-१६
१३८०	पडि. ३	सू. १११/१७ (क)
१३८१	पडि. ३	सू. १११/१७ (ख)

व्यवहार सूत्र

१३३६	उ. १०	सू. ४-८

३७. देवगति अध्ययन (पृ. १३८२-१४३१)

स्थानांग सूत्र

१४१३	अ. २	उ. २	सू. ७१/१२
१४११	अ. ३	उ. १	सू. १४१ (२-३)
१४११	टि. अ. ३	उ. १	सू. १४२
१४१५	टि. अ. ३	उ. १	सू. १४२
१४१३	टि. अ. ३	उ. १	सू. १४२
१४१३	टि. अ. ३	उ. ३	सू. १८३/१
१४१४	टि. अ. ३	उ. ३	सू. १८३/२
१४१०	अ. ३	उ. ३	सू. १८४/१
१४१०	अ. ३	उ. ३	सू. १८४/२
१४१०	अ. ३	उ. ३	सू. १८५
१३८८	अ. ४	उ. १	सू. २४८/१
१४१३-१४१४	अ. ४	उ. ३	सू. ३२३
१४१०-१४११	अ. ४	उ. ३	सू. ३२४
१४१३	अ. ४	उ. ३	सू. ३२४
१४१४-१४१५	अ. ४	उ. ३	सू. ३२४/३-४
१४१५	अ. ४	उ. ३	सू. ३२४
१४२४	टि. अ. ५	उ. १	सू. ४०४
१३८६	टि. अ. ५	उ. १	सू. ४०९/२
१४०३	टि. अ. ६		सू. ५०५
१४०४	अ. ६		सू. ५०५
१४०४	अ. ७		सू. ५७४
१३८९	अ. ७		सू. ५७६
१४२३-१४२४	अ. ७		सू. ५८२
१४२४	अ. ७		सू. ५८३
१४०३	अ. ८		सू. ६१२
१४०४	अ. ८		सू. ६१२
१३८९	अ. ८		सू. ६२५

समवायांग सूत्र

१३९३	सम. १५	सू. १
१३८९	सम. २०	सू. ४
१३८८	सम. २४	सू. ४
१३८९	सम. ३०	सू. ५
१३८८	सम. ३२	सू. २
१३८९	सम. ६०	सू. ४
१३८९	सम. ६०	सू. ५
१३८९	सम. ६४	सू. ३
१३८९	सम. ७०	सू. ५
१४२२	सम. ७८	सू. १
१३८९	सम. ८४	सू. ६

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१४३०-१४३१	श. १	उ. १	सू. १२ (२)
१४१५-१४१६	श. ३	उ. १	सू. ५६-६१
१४२६	श. ३	उ. १	सू. ६२
१३९२-१३९३	श. ३	उ. २	सू. १४-१८
१४१७-१४२२	श. ३	उ. ७	सू. २-७
१३९५-१३९७	श. ३	उ. ८	सू. १-६
१४२२-१४२३	श. ४	उ. १-४	सू. ५
१४२३	श. ४	उ. ५-८	सू. १
१४२६-१४२७	श. ५	उ. ४	सू. १५-१६
१४२५	श. ५	उ. ४	सू. ३३
१३९४	टि. श. ८	उ. ८	सू. ४५
१३९५	टि. श. ८	उ. ८	सू. ४७
१३९५	श. ९	उ. ३३	सू. १०४-१०७

१४३०	श. १०	उ. ३	सू. १-५
१४२७-१४२९	श. १०	उ. ३	सू. ६-१७
१४२९	टि. श. १०	उ. ३	सू. ८-१७
१३८९-१३९२	श. १०	उ. ४	सू. १-१४
१३९७-१४००	श. १०	उ. ५	सू. १-१८
१४०१-१४०२	श. १०	उ. ५	सू. १९-२६
१४०२	श. १०	उ. ५	सू. २७-२९
१४०२-१४०३	श. १०	उ. ५	सू. ३०-३३
१४०३	टि. श. १०	उ. ५	सू. ३४
१४१६-१४१७	श. १०	उ. ६	सू. १-२
१३८६	श. १२	उ. ९	सू. १-६
१३८७	श. १२	उ. ९	सू. २६
१३८७	श. १२	उ. ९	सू. २७-३१
१३८७-१३८८	श. १२	उ. ९	सू. ३२-३३
१४११-१४१२	श. १४	उ. २	सू. ७-१३
१४२९-१४३०	श. १४	उ. ३	सू. १-३
१४२७	टि. श. १४	उ. ३	सू. १०-११
१४२९	श. १४	उ. ३	सू. १०-१३
१४२७	श. १४	उ. ५	सू. २१-२२
१४०४-१४०५	श. १४	उ. ६	सू. ६-९
१४२५	श. १४	उ. ७	सू. ३
१४२५-१४२६	श. १४	उ. ७	सू. १२
१४२४-१४२५	श. १४	उ. ७	सू. १३-१४
१४१२	श. १४	उ. ८	सू. २३
१४१७	श. १७	उ. ५	सू. १
१४०९-१४१०	श. १८	उ. ५	सू. १-४

जीवाभिगम सूत्र

१३९४	टि. पडि. ३	सू. १७९
१३९५	टि. पडि. ३	सू. १७९
१४०५-१४०७	पडि. ३	सू. १९९
१४०७-१४०८	पडि. ३	सू. २०१ (ई)
१४०७	पडि. ३	सू. २०३
१४०८-१४०९	पडि. ३	सू. २०४

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र

१३९३-१३९४	वक्ख. ७	सू. १७३
१३९४	वक्ख. ७	सू. १७४
१३९४-१३९५	वक्ख. ७	सू. १७४

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

१३९४	टि. पा. १९	सू. १००
१३९५	टि. पा. १९	सू. १००

३८. वक्कंति अध्ययन (पृ. १४३२-१५३८)

स्थानांग सूत्र

१४३६	अ. १		सू. १४-१५
१४३६	अ. १		सू. १७-१८
१४३७	अ. २	उ. २	सू. ६८
१४३६	अ. २	उ. ३	सू. ७९
१४८८	टि. अ. ३	उ. १	सू. १२९
१५०८-१५०९	अ. ३	उ. २	सू. १५८
१४३७-१४३८	अ. ४	उ. ४	सू. ३६७
१४३८	अ. ४	उ. ४	सू. ३६७
१४३८	अ. ५		सू. ४५८
१४३८	अ. ६		सू. ४८२
१४४०	अ. ६		सू. ५३५
१४३९	टि. अ. ७		सू. ५४३/२
१४३९	अ. ८		सू. ५९५/२
१४५६	अ. ८		सू. ६४४
१४३८	अ. ९		सू. ६६६/२-१०

समवायांग सूत्र

१४४०	टि. सम.	सू. १५४ (६)
१४४०	टि. सम.	सू. १५४ (८)
१४४०	टि. सम.	सू. १५५/६
१४४०	टि. सम.	सू. १५६/६

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१४९९-१५००	श. १	उ. २	सू. १९
१४५८	श. १	उ. ७	सू. १
१४६६	श. १	उ. ७	सू. ३
१४५८-१४५९	श. १	उ. ७	सू. ५ (१)
१४६६	श. १	उ. ७	सू. ५ (२)
१४५९	श. १	उ. ७	सू. ६
१४६६-१४६७	श. १	उ. ७	सू. ६
१४४०	टि. श. १	उ. १०	सू. ३
१५०७-१५०८	श. २	उ. १	सू. ७ (१-३)
१५०७	टि. श. २	उ. ३	सू. १
१४७३	टि. श. ४	उ. ९	सू. १
१५०९	श. ९	उ. ३२	सू. २
१४३९	टि. श. १	उ. ३२	सू. ३
१४६०	श. १	उ. ३२	सू. ३-६
१४६२	टि. श. १	उ. ३२	सू. ७-१३
१५०९	श. ९	उ. ३२	सू. १४
१५०९	श. ९	उ. ३२	सू. १५
१५०९	श. ९	उ. ३२	सू. १६
१५१०	श. ९	उ. ३२	सू. १७
१५१०-१५१२	श. ९	उ. ३२	सू. १८
१५१३-१५१६	श. ९	उ. ३२	सू. १९
१५१६-१५२०	श. ९	उ. ३२	सू. २०
१५२०-१५२१	श. ९	उ. ३२	सू. २१
१५२१-१५२२	श. ९	उ. ३२	सू. २२

[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २३	१४९६	श. १३	उ. २	सू. २४-२७
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २४	१४६०	श. १३	उ. ६	सू. २-४
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २५	१४६५	टि. श. १३	उ. ६	सू. ४
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २६	१४६४	श. १४	उ. १	सू. ६
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २७	१४५७-१४५८	श. १४	उ. १	सू. ८-९
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २८	१४६७	श. १४	उ. १	सू. १४-१५
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. २९	१४८६	श. १७	उ. १	सू. ४-७
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ३०-३३	१५०१-१५०२	श. १७	उ. ६	सू. १-६
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ३४	१५०२-१५०३	श. १७	उ. ७	सू. १
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ३५-४०	१५०३	श. १७	उ. ८	सू. १-२
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ४१	१५०३	श. १७	उ. ९	सू. १-३
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ४२-४५	१५०३-१५०४	श. १७	उ. १०	सू. १
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ४६	१५०४	श. १७	उ. ११	सू. १
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ४७	१४८६-१४८७	श. १८	उ. ९	सू. २-९
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ४८	१४८९	श. १९	उ. ३	सू. १७
[illegible]	टि. श. ९	उ. ३३	सू. ४८	१४८४-१४८५	श. २०	उ. १०	सू. ७-१२
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ४९-५१	१४८५	श. २०	उ. १०	सू. १३-१६
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ५२	१४८५	श. २०	उ. १०	सू. १७-१९
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. ५३-५८	१४८५-१४८६	श. २०	उ. १०	सू. २०-२२
[illegible]	श. ९	उ. ३३	सू. १०८-१०९	१४८७-१४८८	श. २०	उ. १०	सू. २३-२८
[illegible]	टि. श. ११	उ. १	सू. ५	१४८८	श. २०	उ. १०	सू. २९-३१
[illegible]	टि. श. ११	उ. १	सू. ६	१४८८-१४९०	श. २०	उ. १०	सू. ३२-३६
[illegible]	श. १२	उ. ७	सू. ५-१९	१४९०	श. २०	उ. १०	सू. ३७-४२
[illegible]	श. १२	उ. ७	सू. २०-२३	१४९१-१४९२	श. २०	उ. १०	सू. ४३-४७
[illegible]	श. १२	उ. ८	सू. २-४	१४९२	श. २०	उ. १०	सू. ४८
[illegible]	श. १२	उ. ८	सू. ५-७	१४९२-१४९३	श. २०	उ. १०	सू. ४९-५४
[illegible]	श. १२	उ. ९	सू. ७	१४९४	श. २०	उ. १०	सू. ५५-५६
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. ८	१४५१	टि. श. २१	उ. १	सू. ३-४
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. ९	१४५७	टि. श. २१	उ. १	सू. ४
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. १०	१४५१	टि. श. २१	उ. २-८	सू. १
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. ११	१४५७	टि. श. २१	उ. २-८	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. २१	१४५७	टि. श. २२	उ. १-६	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. २२	१४५७	टि. श. २३	उ. १-५	
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. २३	१४४८	टि. श. २४	उ. १२	सू. १
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. २४	१४४९	टि. श. २४	उ. १२	सू. १
[illegible]	[illegible]	[illegible]	सू. २५	१४४९	टि. श. २४	उ. १२	सू. १३
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१४४९	टि. श. २४	उ. १२	सू. १८
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	सू. १९
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	टि. श. २४	उ. १२	[illegible]

१४५१	टि. श. २४	उ. १४	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १५	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १६	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १७	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १८	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १९	सू. १
१४५२	टि. श. २४	उ. २०	सू. १-२
१४५२	टि. श. २४	उ. २०	सू. ११
१४५३	टि. श. २४	उ. २१	सू. १
१४५३	टि. श. २४	उ. २१	सू. ५, १३, १४
१४५४	टि. श. २४	उ. २२	सू. १
१४५४	टि. श. २४	उ. २३	सू. १
१४५४	श. २४	उ. २४	सू. १
१४६३-१४६५	श. २५	उ. ८	सू. २-१०
१४६५	श. २५	उ. ९	सू. १
१४६५	श. २५	उ. १०	सू. १
१४६५	श. २५	उ. ११	सू. १-२
१४६५	श. २५	उ. १२	सू. १

जीवाभिगम सूत्र

१४४१	टि. पडि. १	सू. १३ (१९)
१४५१	पडि. १	सू. १३ (१९)
१४६९	पडि. १	सू. १३ (२२)
१४३६	पडि. १	सू. १३ (२३)
१४५१	पडि. १	सू. १४
१४३६	पडि. १	सू. १५
१४६९-१४७०	पडि. १	सू. १५
१४७०	पडि. १	सू. १६
१४३६	पडि. १	सू. १६-१८
१४५१	टि. पडि. १	सू. १७
१४३६	पडि. १	सू. २०-२१
१४३६-१४३७	पडि. १	सू. २४-२५
१४५१	टि. पडि. १	सू. २५
१४३७	पडि. १	सू. २६
१४३७	पडि. १	सू. २८-३०
१४५१	टि. पडि. १	सू. २८-३०
१४३६	पडि. १	सू. ३२
१४४१	पडि. १	सू. ३२
१४६७	टि. पडि. १	सू. ३२
१४७१	पडि. १	सू. ३५
१४३७	पडि. १	सू. ३५-३६
१४५२	पडि. १	सू. ३५-३६
१४५२-१४५३	पडि. १	सू. ३८-३९
१४३७	पडि. १	सू. ३८-४०
१४५१	टि. पडि. १	सू. ३८-४०
१४५३	टि. पडि. १	सू. ४०

१४३७	पडि. १		सू. ४१
१४५४	पडि. १		सू. ४१
१४७१-१४७२	पडि. १		सू. ४१
१४३७	पडि. १		सू. ४२
१४४८	पडि. १		सू. ४२
१४६८	पडि. १		सू. ४२
१४४८	टि. पडि. ३		सू. ८६
१४५६	टि. पडि. ३		सू. ८६ (२)
१४९५	पडि. ३		सू. ८६ (२)
१५०६-१५०७	पडि. ३		सू. ८८
१४६८	टि. पडि. ३		सू. ९१
१५०७	पडि. ३		सू. ९३
१४५३	पडि. ३	उ. १	सू. ९७
१४७१	पडि. ३	उ. १	सू. ९७ (२)
१४५३	पडि. १		सू. १२८
१४५७	पडि. ३		सू. २०१ (ई)
१४५४	टि. पडि. ३		सू. २०१ (ई)
१४९५	पडि. ३	उ. २	सू. २०१ (ई)
१४७२	टि. पडि. ३		सू. २०४
१५०७	पडि. ३		सू. २०५
१५००-१५०१	पडि. ३		सू. ६३० (तेरापंथी)

प्रज्ञापना सूत्र

१४३९-१४४०	पद ६	सू. ५६०-५६३
१४४०	पद ६	सू. ५६४
१४४०	पद ६	सू. ५६५-५६८
१४६०-१४६३	पद ६	सू. ५६९-६०५
१४४०	टि. पद ६	सू. ६०६
१४६५-१४६६	पद ६	सू. ६०७-६०८
१४३९	पद ६	सू. ६०९-६१२
१४५९-१४६०	पद ६	सू. ६१३-६२२
१४६०	पद ६	सू. ६२३
१४६५	पद ६	सू. ६२४-६२५
१४५६-१४५७	पद ६	सू. ६२६-६३५
१४५७	पद ६	सू. ६३६
१४६५	पद ६	सू. ६३७-६३९
१४४१-१४४८	पद ६	सू. ६३९-६४७
१४४८	पद ६	सू. ६४८-६४९
१४४८-१४५१	पद ६	सू. ६५० (१-१८)
१४५१	पद ६	सू. ६५१-६५४
१४५१-१४५२	पद ६	सू. ६५५
१४५३	पद ६	सू. ६५६
१४५४-१४५६	पद ६	सू. ६५७-६६५
१४६७-१४६८	पद ६	सू. ६६६-६६७
१४६८-१४६९	पद ६	सू. ६६८-६६९
१४७०-१४७१	पद ६	सू. ६७०-६७२

१४५१	टि. श. २४	उ. १४	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १५	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १६	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १७	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १८	सू. १
१४५१	टि. श. २४	उ. १९	सू. १
१४५२	टि. श. २४	उ. २०	सू. १-२
१४५२	टि. श. २४	उ. २०	सू. ११
१४५३	टि. श. २४	उ. २१	सू. १
१४५३	टि. श. २४	उ. २१	सू. ५, १३, १४
१४५४	टि. श. २४	उ. २२	सू. १
१४५४	टि. श. २४	उ. २३	सू. १
१४५४	श. २४	उ. २४	सू. १
१४६३-१४६५	श. २५	उ. ८	सू. २-१०
१४६५	श. २५	उ. ९	सू. १
१४६५	श. २५	उ. १०	सू. १
१४६५	श. २५	उ. ११	सू. १-२
१४६५	श. २५	उ. १२	सू. १

जीवाभिगम सूत्र

१४४१	टि. पडि. १		सू. १३ (१९)
१४५१	पडि. १		सू. १३ (१९)
१४६९	पडि. १		सू. १३ (२२)
१४३६	पडि. १		सू. १३ (२३)
१४५१	पडि. १		सू. १४
१४३६	पडि. १		सू. १५
१४६९-१४७०	पडि. १		सू. १५
१४७०	पडि. १		सू. १६
१४३६	पडि. १		सू. १६-१८
१४५१	टि. पडि. १		सू. १७
१४३६	पडि. १		सू. २०-२१
१४३६-१४३७	पडि. १		सू. २४-२५
१४५१	टि. पडि. १		सू. २५
१४३७	पडि. १		सू. २६
१४३७	पडि. १		सू. २८-३०
१४५१	टि. पडि. १		सू. २८-३०
१४३६	पडि. १		सू. ३२
१४४१	पडि. १		सू. ३२
१४६७	टि. पडि. १		सू. ३२
१४७१	पडि. १		सू. ३५
१४३७	पडि. १		सू. ३५-३६
१४५२	पडि. १		सू. ३५-३६
१४५२-१४५३	पडि. १		सू. ३८-३९
१४३७	पडि. १		सू. ३८-४०
१४३१	टि. पडि. १		सू. ३८-४०
१४५३	टि. पडि. १		सू. ४०
१४३७	पडि. १		सू. ४१
१४५४	पडि. १		सू. ४१
१४७१-१४७२	पडि. १		सू. ४१
१४३७	पडि. १		सू. ४२
१४४८	पडि. १		सू. ४२
१४६८	पडि. १		सू. ४२
१४४८	टि. पडि. ३		सू. ८६
१४५६	टि. पडि. ३		सू. ८६ (२)
१४९५	पडि. ३		सू. ८६ (२)
१५०६-१५०७	पडि. ३		सू. ८८
१४६८	टि. पडि. ३		सू. ९१
१५०७	पडि. ३		सू. ९३
१४५३	पडि. ३	उ. १	सू. ९७
१४७१	पडि. ३	उ. १	सू. ९७ (२)
१४५३	पडि. १		सू. १२८
१४५७	पडि. ३		सू. २०१ (ई)
१४५४	टि. पडि. ३		सू. २०१ (ई)
१४९५	पडि. ३	उ. २	सू. २०१ (ई)
१४७२	टि. पडि. ३		सू. २०४
१५०७	पडि. ३		सू. २०५
१५००-१५०१	पडि. ३		सू. ६३० (तेरापंथी)

प्रज्ञापना सूत्र

१४३९-१४४०	पद ६	सू. ५६०-५६३
१४४०	पद ६	सू. ५६४
१४४०	पद ६	सू. ५६५-५६८
१४६०-१४६३	पद ६	सू. ५६९-६०५
१४४०	टि. पद ६	सू. ६०६
१४६५-१४६६	पद ६	सू. ६०७-६०८
१४३९	पद ६	सू. ६०९-६१२
१४५९-१४६०	पद ६	सू. ६१३-६२२
१४६०	पद ६	सू. ६२३
१४६५	पद ६	सू. ६२४-६२५
१४५६-१४५७	पद ६	सू. ६२६-६३५
१४५७	पद ६	सू. ६३६
१४६५	पद ६	सू. ६३७-६३९
१४४१-१४४८	पद ६	सू. ६३९-६४७
१४४८	पद ६	सू. ६४८-६४९
१४४८-१४५१	पद ६	सू. ६५० (१-१८)
१४५१	पद ६	सू. ६५१-६५४
१४५१-१४५२	पद ६	सू. ६५५
१४५३	पद ६	सू. ६५६
१४५४-१४५६	पद ६	सू. ६५७-६६५
१४६७-१४६८	पद ६	सू. ६६६-६६७
१४६८-१४६९	पद ६	सू. ६६८-६६९
१४७०-१४७१	पद ६	सू. ६७०-६७२

१४७१	पद ६		सू. ६७३/१
१४७२	पद ६		सू. ६७३/२
१४७२	पद ६		सू. ६७४-६७६
१४७२-१४७३	पद १७	उ. ३	सू. ११९९-१२००
१५००	टि. पद २०		सू. १४७०

सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र

१४७३-१४७५	पा. १७		सू. ८८

३९. गर्भ अध्ययन (पृ. १५३९-१५६१)

स्थानांग सूत्र

१५६१	अ. १		सू. २६
१५४१	अ. २	उ. ३	सू. ७९
१५४६	टि. अ. ३	उ. ४	सू. २०९
१५४७	टि. अ. ३	उ. ४	सू. २२५
१५४१	अ. ४	उ. २	सू. २९४
१५४४-१५४५	अ. ४	उ. ४	सू. ३७६
१५४२	अ. ४	उ. ४	सू. ३७७
१५४१-१५४२	अ. ५	उ. २	सू. ४१६
१५६१	अ. ५	उ. ३	सू. ४६१

समवायांग सूत्र

१५५८-१५५९	सम. १७		सू. १

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१५४६-१५४७	श. १	उ. ७	सू. ७-८
१५४४	श. १	उ. ७	सू. १०-११
१५४६	श. १	उ. ७	सू. १६-१७
१५४६	श. १	उ. ७	सू. १८
१५४२-१५४४	श. १	उ. ७	सू. १९-२०
१५४५	श. १	उ. ७	सू. २१-२२ (क)
१५४५	श. २	उ. ५	सू. २-६
१५४५-१५४६	श. २	उ. ५	सू. ७
१५४६	श. २	उ. ५	सू. ८
१५६१	टि. श. २	उ. १	सू. २६
१५६१	टि. श. २	उ. १	सू. २७-२९
१५४४	श. १२	उ. ५	सू. ३६
१५५९-१५६१	श. १३	उ. ७	सू. २३-४४
१५४४	टि. श. २०	उ. ३	सू. २
१५४७-१५५६	श. ३४	ए/उ. १	सू. १-६८
१५५७	श. ३४	ए/उ. २	सू. १
१५५७	श. ३४	ए/उ. ३	सू. १-२
१५५८	श. ३४	ए/उ. ३-५	सू. २-३
१५५७	श. ३४	ए/उ. १-११	सू. ५ (२)
१५५७	श. ३४	ए/उ. ४-११	

जीवाभिगम सूत्र

१५५८	पडि. ३		सू. १४६
१५५८	पडि. ३		सू. १५४
१५५८	पडि. ३		सू. १५४
१५५८	पडि. ३		सू. १५५-१

४०. युग्म अध्ययन (पृ. १५६२-१५९९)

स्थानांग सूत्र

१५६४	टि. अ. ४	उ. ३	सू. ३१६

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र

१५७६	श. ११	उ. १	सू. १
१५६३	श. १८	उ. ४	सू. ४
१५६४	श. १८	उ. ४	सू. ५-१२
१५६४-१५६५	श. १८	उ. ४	सू. १३-१७
१५६३	श. २५	उ. ४	सू. १
१५६३-१५६४	श. २५	उ. ४	सू. २-७
१५६५-१५६६	श. २५	उ. ४	सू. २८-४०
१५६६	श. २५	उ. ४	सू. ४१-४६
१५६६-१५६७	श. २५	उ. ४	सू. ४७-५४
१५६७	श. २५	उ. ४	सू. ५५-६१
१५६७-१५६८	श. २५	उ. ४	सू. ६२-७४
१५६८	श. २५	उ. ४	सू. ७५-७७
१५६८-१५६९	श. २५	उ. ४	सू. ७८-७९
१५६९	टि. श. २५	उ. ८	सू. ३
१५६९	श. ३१	उ. १	सू. २
१५६९-१५७०	श. ३१	उ. १	सू. ३-१४
१५७०-१५७१	श. ३१	उ. २	सू. १-९
१५७१-१५७२	श. ३१	उ. ३	सू. १-४
१५७२	श. ३१	उ. ४	सू. १-४
१५७२-१५७३	श. ३१	उ. ५	सू. १-४
१५७३	श. ३१	उ. ६	सू. १-२
१५७३	श. ३१	उ. ७	सू. १
१५७३	श. ३१	उ. ८	सू. १
१५७३	श. ३१	उ. ९-१२	सू. १
१५७३	श. ३१	उ. १३-१६	सू. १
१५७३	श. ३१	उ. १७-२०	सू. १
१५७३	श. ३१	उ. २१-२४	सू. १
१५७३-१५७४	श. ३१	उ. २५-२८	सू. १
१५७४	श. ३२	उ. १	सू. १-६
१५७४	श. ३२	उ. २-२८	
१५७५-१५७६	श. ३५ १/ए.	उ. १	सू. १ (१-२)
१५७६-१५८०	श. ३५ १/ए.	उ. १	सू. २-२३
१५८०-१५८१	श. ३५ १/ए.	उ. २	सू. १-४
१५८१	श. ३५ १/ए.	उ. ३	सू. १
१५८१	श. ३५ १/ए.	उ. ४	सू. १
१५८१	श. ३५ १/ए.	उ. ५	सू. १
१५८१	श. ३५ १/ए.	उ. ६	सू. १

८१	श. ३५ १/ए.	उ. ७	सू. १
८१	श. ३५ १/ए.	उ. ८	सू. १
८१	श. ३५ १/ए.	उ. ९	सू. १
८१	श. ३५ १/ए.	उ. १०	सू. १
८१	श. ३५ १/ए.	उ. ११	सू. १
८२	श. ३५ २/ए.	उ. १	सू. १-६
८२-१५८३	श. ३५ २/ए.	उ. २-११	
८३	श. ३५ ३/ए.	उ. १-११	
८३	श. ३५ ४/ए.	उ. १-११	
८३	श. ३५ ५/ए.	उ. १-११	
८३	श. ३५ ६/ए.	उ. १-११	
८३	श. ३५ ७/ए.	उ. १-११	
८३	श. ३५ ८/ए.	उ. १-११	
८३-१५८४	श. ३५ ९-१२/ए.	उ. १-११	
८४	श. ३६	उ. १	सू. १-४
८४-१५८५	श. ३६ १/वे.	उ. २-११	
८५	श. ३६ २/वे.	उ. १-११	
८५	श. ३६ ३/वे.	उ. १-११	
८५	श. ३६ ४/वे.	उ. १-११	
८५	श. ३६ ५-८/वे.	उ. १-११	
८६	श. ३६ ९-१२/वे.	उ. १-११	
८६	श. ३७	उ. १-१२	
८६	श. ३८		
८६	श. ३९		
८६-१५८८	श. ४० १/स.प.	उ. १	सू. १-६
८८	श. ४० १/स.प.	उ. २-११	
८८-१५८९	श. ४० २/स.प.	उ. १	
८९	श. ४० २/स.प.	उ. २-११	
८९	श. ४० ३/स.प.	उ. १-११	
८९	श. ४० ४/स.प.	उ. १-११	
८९-१५९०	श. ४० ५/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० ६/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० ७/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० ८/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० ९/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० १०/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० ११-१४/स.प.	उ. १-११	
९०-१५९१	श. ४० १५/स.प.	उ. १-११	
९०	श. ४० १६/स.प.	उ. १-११	
९१-१५९२	श. ४० १७-२१/स.प.	उ. १-११	
९२	श. ४०		सू. १
९२	श. ४१	उ. १	सू. १
९२-१५९४	श. ४१	उ. १	सू. २-११
९४-१५९५	श. ४१	उ. २	सू. १-३
९५	श. ४१	उ. ३	सू. १-३
९५-१५९६	श. ४१	उ. ४	सू. १-३

१५९६	श. ४१	उ. ५	सू. १-३
१५९६	श. ४१	उ. ६	सू. १
१५९६	श. ४१	उ. ७	सू. १
१५९६	श. ४१	उ. ८	सू. १
१५९६-१५९७	श. ४१	उ. ९-१२	सू. १
१५९७	श. ४१	उ. १३-१६	सू. १
१५९७	श. ४१	उ. १७-२०	सू. १
१५९७	श. ४१	उ. २१-२४	सू. १
१५९७	श. ४१	उ. २५-२८	सू. १-२
१५९७-१५९८	श. ४१	उ. २९-५६	सू. १-८
१५९८	श. ४१	उ. ५७-८४	सू. १-९
१५९८	श. ४१	उ. ८५-११२	सू. १-४
१५९८-१५९९	श. ४१	उ. ११३-१४०	सू. १
१५९९	श. ४१	उ. १४१-१६८	सू. १
१५९९	श. ४१	उ. १६९-१९६	सू. १-२

प्रज्ञापना सूत्र

१५६९	टि. पद ६	सू. ६३९ (१-२६)
१५७०	टि. पद ६	सू. ६४०-६४७

४१. गम्मा अध्ययन (पृ. १६००-१६७३)

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१६०२	श. २४	उ. १	गा. १-३
१६०२-१६२१	श. २४	उ. १	सू. ३-११७
१६२१-१६२६	श. २४	उ. २	सू. २-२७
१६२७-१६२९	श. २४	उ. ३	सू. २-१८
१६२९	श. २४	उ. ४-११	सू. १
१६३०-१६४४	श. २४	उ. १२	सू. १-५५
१६४४	श. २४	उ. १३	सू. २-३
१६४५	श. २४	उ. १४	सू. १
१६४५	श. २४	उ. १५	सू. १
१६४५	श. २४	उ. १६	सू. १
१६४५-१६४६	श. २४	उ. १७	सू. १-२
१६४६	श. २४	उ. १८	सू. १
१६४६	श. २४	उ. १९	सू. १
१६४६-१६५८	श. २४	उ. २०	सू. १-६५
१६५८-१६६३	श. २४	उ. २१	सू. १-२७
१६६४-१६६५	श. २४	उ. २२	सू. १-९
१६६५-१६६८	श. २४	उ. २३	सू. १-१२
१६६८-१६७३	श. २४	उ. २४	सू. १-२९

४२. आत्मा अध्ययन (पृ. १६७४-१६७९)

स्थानांग सूत्र

१६७५	अ. १		सू. २
१६७६	अ. २	उ. २	सू. ७१
१६७९	अ. २	उ. ४	सू. १०८

१७१५-१७१८	पद १०		सू. ८०२-८०६
१७०९-१७१२	पद १०		सू. ८०७-८२९
१७०९	पद १०		सू. ८२९ गा. १
१७२६	पद १८		सू. १३९७-१३९८

४५. अजीव द्रव्य अध्ययन (पृ. १७२७-१७४६)

स्थानांग सूत्र

१७३०	टि. अ. ५	उ. १	सू. ३९०/१

समवायांग सूत्र

१७२९	टि. सम.		सू. १४९
१७२९	टि. सम.		सू. १४९

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१७२९	टि. श. २	उ. १०	सू. ११
१७३०	टि. श. २	उ. १०	सू. ११
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ४८
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ४८
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ७४
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ७५
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ७६
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ७७
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ७८
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ७९
१७२९	श. २५	उ. २	सू. २
१७२९	टि. श. २५	उ. २	सू. २
१७३०	टि. श. २५	उ. २	सू. २
१७४६	टि. श. २५	उ. २	सू. २

जीवाभिगम सूत्र

१७२९	टि. पडि. १	सू. ३
१७२९	टि. पडि. १	सू. ४
१७३०	टि. पडि. १	सू. ५
१७३१	टि. पडि. १	सू. ५
१७४५	टि. पडि. १	सू. ५

प्रज्ञापना सूत्र

१७३२-१७३४	पद १	सू. १ (१-५)
१७२९	टि. पद १	सू. ४
१७२९	पद १	सू. ५
१७२९-१७३०	पद १	सू. ६
१७३१	पद १	सू. ७-८
१७३४-१७३५	पद १	सू. १० (१-२)
१७३५-१७३८	पद १	सू. ११ (१-५)
१७३८-१७४३	पद १	सू. १२ (१-८)
१७४३-१७४६	पद १	सू. १३ (१-५)

उत्तराध्ययन सूत्र

१७२९	टि. अ. ३६	गा. ५-६
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १०
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १५
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १६
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १७
१७३१	टि. अ. ३६	गा. १८
१७३१	टि. अ. ३६	गा. १९-२०
१७३१	टि. अ. ३६	गा. २१
१७३२	टि. अ. ३६	गा. २२
१७३३	टि. अ. ३६	गा. २३
१७३३	टि. अ. ३६	गा. २४
१७३४	टि. अ. ३६	गा. २५
१७३४	टि. अ. ३६	गा. २६
१७३५	टि. अ. ३६	गा. २७
१७३५	टि. अ. ३६	गा. २८
१७३६	टि. अ. ३६	गा. २९
१७३६	टि. अ. ३६	गा. ३०
१७३७	टि. अ. ३६	गा. ३१
१७३७	टि. अ. ३६	गा. ३२
१७३८	टि. अ. ३६	गा. ३३
१७३९	टि. अ. ३६	गा. ३४
१७३९	टि. अ. ३६	गा. ३५
१७४०	टि. अ. ३६	गा. ३६
१७४०	टि. अ. ३६	गा. ३७
१७४१	टि. अ. ३६	गा. ३८
१७४२	टि. अ. ३६	गा. ३९
१७४२	टि. अ. ३६	गा. ४०
१७४३	टि. अ. ३६	गा. ४१
१७४३	टि. अ. ३६	गा. ४२
१७४४	टि. अ. ३६	गा. ४३
१७४४	टि. अ. ३६	गा. ४४
१७४५	टि. अ. ३६	गा. ४५
१७४५	टि. अ. ३६	गा. ४६

अनुयोगद्वार सूत्र

१७३०	टि. अणु.	सू. २१९
१७३०	टि. अणु.	सू. २२०
१७३०	टि. अणु.	सू. २२१
१७३१	टि. अणु.	सू. २२२
१७३१	टि. अणु.	सू. २२३
१७३१	टि. अणु.	सू. २२४
१७२९	टि. अनु.	सू. ४००
१७२९	टि. अनु.	सू. ४०१
१७३०	टि. अनु.	सू. ४०२

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१६७५	श. १२	उ. १०	सू. १
१६७७-१६७९	श. १२	उ. १०	सू. २-८
१६७९	श. १२	उ. १०	सू. ९
१६७५	श. १२	उ. १०	सू. १०-१८
१६७६-१६७७	श. १७	उ. २	सू. १७
१६७७	श. २०	उ. ३	सू. १

४३. समुद्घात अध्ययन (पृ. १६८०-१७०७)

स्थानांग सूत्र

१६८१	टि. अ. ४	सू. ३८०
१६८२	टि. अ. ४	सू. ३८०
१६८१	टि. अ. ७	सू. ५८६
१६८२	टि. अ. ७	सू. ५८६
१७०५	टि. अ. ८	सू. ६५२

समवायांग सूत्र

१६९९	टि. सम. ६	सू. ५
१६८१	टि. सम. ७	सू. २
१७०५	टि. सम. ८	सू. ७

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१६८१	टि. श. २	उ. २	सू. १
१६९४-१६९६	श. ६	उ. ६	सू. ३-८
१६९९	टि. श. १३	उ. १०	सू. १
१६८२	टि. श. १७	उ. ६	सू. १ (२)
१६८२	टि. श. २४	उ. १२	सू. ३
१६८२	टि. श. २४	उ. १२	सू. २०
१६८१	टि. श. २४	उ. १२	सू. ४६
१६८३	श. ३४	उ. १	सू. ७५
१६८३	श. ३४	उ. २	सू. ६
१६८३	श. ३४	उ. ३	सू. १
१६८३	श. ३४	उ. ४-११	

औपपातिक सूत्र

१७०४	टि.	सू. १३१-१३२
१७०४	टि.	सू. १३३-१४०
१७०३	टि.	सू. १४१-१४२
१७०५	टि.	सू. १४३
१७०५	टि.	सू. १४४
१७०६	टि.	सू. १४५-१४६
१७०६	टि.	सू. १४७-१५०
१७०७	टि.	सू. १५१-१५५

जीवाभिगम सूत्र

१६८२	टि. पडि. १	सू. १३ (९)
१६९६	पडि. १	सू. १३-४१
१६८२	टि. पडि. १	सू. १६-३०
१६८२	टि. पडि. १	सू. २६
१६८१	टि. पडि. १	सू. ३२
१६८२	पडि. १	सू. ३५-३६
१६८२	टि. पडि. १	सू. ३८
१६८२-१६८३	पडि. १	सू. ३८-४०
१६८२	टि. पडि. १	सू. ४१
१६८३	पडि. १	सू. ४१
१६८१	टि. पडि. १	सू. ४२
१६८२	पडि. ३	सू. ८८ (२)
१६८२	टि. पडि. ३	सू. ९७ (१)
१६९६	पडि. ३	सू. ९७
१६८३-१६८४	पडि. ३	सू. २०३
१६८४	पडि. ३	सू. ११११२-१११३ (तेरा.)

प्रज्ञापना सूत्र

१६८१	पद ३६	सू. २०८५
१६८१	पद ३६	सू. २०८६
१६८१	पद ३६	सू. २०८७-२०८८
१६८१-१६८२	पद ३६	सू. २०८९-२०९२
१६८४-१६८६	पद ३६	सू. २०९३-२१००
१६८६-१६९१	पद ३६	सू. २१०१-२१२४
१६९४-१६९९	पद ३६	सू. २१२५-२१३२
१७००-१७०३	पद ३६	सू. २१३३-२१४६
१६९९-१७००	पद ३६	सू. २१४७-२१५२
१६९१-१६९४	पद ३६	सू. २१५३-२१६७
१७०३-१७०४	पद ३६	सू. २१६८-२१६९
१७०३	पद ३६	सू. २१७०
१७०५	पद ३६	सू. २१७१
१७०५	पद ३६	सू. २१७२
१७०५-१७०६	पद ३६	सू. २१७३
१७०६	पद ३६	सू. २१७४
१७०६-१७०७	पद ३६	सू. २१७५-२१७६

४४. चरमाचरम अध्ययन (पृ. १७०८-१७२६)

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१७१२	टि. श. ८	उ. ३	सू. ८
१७१८	श. १४	उ. ४	सू. ९
१७१२-१७१४	श. १८	उ. १	सू. ६४-१०२
१७०९	श. १८	उ. १	सू. १०३

जीवाभिगम सूत्र

१७१४	टि. पडि. ९	सू. २३६
१७२६	टि. पडि. ९	सू. २३६

प्रज्ञापना सूत्र

१७१४	पद ३	सू. २७४
१७२५-१७२६	पद १०	सू. ७७४-७७६
१७१८-१७२५	पद १०	सू. ७८१-७९०
१७१४-१७१५	पद १०	सू. ७९७-८०१

१७१५-१७१८	पद १०		सू. ८०२-८०६
१७०९-१७१२	पद १०		सू. ८०७-८२९
१७०९	पद १०		सू. ८२९ गा. १
१७२६	पद १८		सू. १३९७-१३९८

४५. अजीव द्रव्य अध्ययन (पृ. १७२७-१७४६)

स्थानांग सूत्र

१७३०	टि. अ. ५	उ. १	सू. ३९०/१

समवायांग सूत्र

१७२९	टि. सम.		सू. १४९
१७२९	टि. सम.		सू. १४९

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१७२९	टि. श. २	उ. १०	सू. ११
१७३०	टि. श. २	उ. १०	सू. ११
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ४८
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ४८
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ७४
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ७५
१७३०	टि. श. ८	उ. १	सू. ७६
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ७७
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ७८
१७३१	टि. श. ८	उ. १	सू. ७९
१७२९	श. २५	उ. २	सू. २
१७२९	टि. श. २५	उ. २	सू. २
१७३०	टि. श. २५	उ. २	सू. २
१७४६	टि. श. २५	उ. २	सू. २

जीवाभिगम सूत्र

१७२९	टि. पडि. १	सू. ३
१७२९	टि. पडि. १	सू. ४
१७३०	टि. पडि. १	सू. ५
१७३१	टि. पडि. १	सू. ५
१७४५	टि. पडि. १	सू. ५

प्रज्ञापना सूत्र

१७३२-१७३४	पद १	सू. १ (१-५)
१७२९	टि. पद १	सू. ४
१७२९	पद १	सू. ५
१७२९-१७३०	पद १	सू. ६
१७३१	पद १	सू. ७-८
१७३४-१७३५	पद १	सू. १० (१-२)
१७३५-१७३८	पद १	सू. ११ (१-५)
१७३८-१७४३	पद १	सू. १२ (१-८)
१७४३-१७४६	पद १	सू. १३ (१-५)

उत्तराध्ययन सूत्र

१७२९	टि. अ. ३६	गा. ५-६
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १०
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १५
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १६
१७३०	टि. अ. ३६	गा. १७
१७३१	टि. अ. ३६	गा. १८
१७३१	टि. अ. ३६	गा. १९-२०
१७३१	टि. अ. ३६	गा. २१
१७३२	टि. अ. ३६	गा. २२
१७३३	टि. अ. ३६	गा. २३
१७३३	टि. अ. ३६	गा. २४
१७३४	टि. अ. ३६	गा. २५
१७३४	टि. अ. ३६	गा. २६
१७३५	टि. अ. ३६	गा. २७
१७३५	टि. अ. ३६	गा. २८
१७३६	टि. अ. ३६	गा. २९
१७३६	टि. अ. ३६	गा. ३०
१७३७	टि. अ. ३६	गा. ३१
१७३७	टि. अ. ३६	गा. ३२
१७३८	टि. अ. ३६	गा. ३३
१७३९	टि. अ. ३६	गा. ३४
१७३९	टि. अ. ३६	गा. ३५
१७४०	टि. अ. ३६	गा. ३६
१७४०	टि. अ. ३६	गा. ३७
१७४१	टि. अ. ३६	गा. ३८
१७४२	टि. अ. ३६	गा. ३९
१७४२	टि. अ. ३६	गा. ४०
१७४३	टि. अ. ३६	गा. ४१
१७४३	टि. अ. ३६	गा. ४२
१७४४	टि. अ. ३६	गा. ४३
१७४४	टि. अ. ३६	गा. ४४
१७४५	टि. अ. ३६	गा. ४५
१७४५	टि. अ. ३६	गा. ४६

अनुयोगद्वार सूत्र

१७३०	टि. अणु.	सू. २१९
१७३०	टि. अणु.	सू. २२०
१७३०	टि. अणु.	सू. २२१
१७३१	टि. अणु.	सू. २२२
१७३१	टि. अणु.	सू. २२३
१७३१	टि. अणु.	सू. २२४
१७२९	टि. अणु.	सू. ४००
१७२९	टि. अणु.	सू. ४०१
१७३०	टि. अणु.	सू. ४०२

४६. पुद्गल अध्ययन (पृ. १७४७-१८९२)

स्थानांग सूत्र

समवायांग सूत्र

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१८३६	श. १२	उ. ४	सू. ५४
१७७४	श. १२	उ. ५	सू. २-७
१७७४-१७७५	श. १२	उ. ५	सू. ८
१७७५	श. १२	उ. ५	सू. ९-११
१७७५	श. १२	उ. ५	सू. १२-१७
१७७६	श. १२	उ. ५	सू. १८
१७७६-१७७७	श. १२	उ. ५	सू. १९-२५
१७७७	श. १२	उ. ५	सू. २६
१७७७	श. १२	उ. ५	सू. २७-२९
१७७७	श. १२	उ. ५	सू. ३०
१७७७	श. १२	उ. ५	सू. ३१
१७७७	श. १२	उ. ५	सू. ३२
१७७८	श. १२	उ. ५	सू. ३३-३४
१७७८	श. १२	उ. ५	सू. ३५
१७७६	श. १२	उ. ५	सू. ३६
१८३९-१८४४	श. १२	उ. १०	सू. २७-३३
१७५३-१७५४	श. १४	उ. ४	सू. १-४
१८३१	श. १४	उ. ४	सू. ८
१८२५-१८२६	श. १४	उ. ९	सू. ४-११
१८३०-१८३१	श. १६	उ. ८	सू. १३
१८२७-१८२८	श. १८	उ. ६	सू. १-५
१७५४-१७५५	श. १८	उ. ६	सू. ६-१३
१७५५	टि. श. १८	उ. ६	सू. ६
१७५६	टि. श. १८	उ. ६	सू. ७
१७५७	टि. श. १८	उ. ६	सू. ८
१७५९	टि. श. १८	उ. ६	सू. ९
१७६२	टि. श. १८	उ. ६	सू. १०
१७७५-१७७६	श. १८	उ. १०	सू. ९-१२
१८४५	श. १८	उ. १०	सू. ४-७
१८२८	श. १९	उ. ८	सू. २१-२५
१७५२	श. १९	उ. ९	सू. ११-१४
१७५५-१७७४	श. २०	उ. ५	सू. १-१४
१८३०	श. २०	उ. ५	सू. १५-१९
१८२३	श. २५	उ. २	सू. ८-१०
१७७९	श. २५	उ. ३	सू. १
१७७९	श. २५	उ. ३	सू. २-५
१७७९-१७८०	श. २५	उ. ३	सू. ६
१७८०	टि. श. २५	उ. ३	सू. ७-१०
१७८१	श. २५	उ. ३	सू. ११-२१
१७८१-१७८२	श. २५	उ. ३	सू. २२-२७
१७८२	श. २५	उ. ३	सू. २८-३६
१७८३-१७८४	श. २५	उ. ३	सू. ३७-४१
१७८४-१७८६	श. २५	उ. ३	सू. ४२-५०
१७८६-१७८८	श. २५	उ. ३	सू. ५१-६०
१७८८	श. २५	उ. ३	सू. ६१-६४
१७८८	श. २५	उ. ३	सू. ६५-६६
१८३७-१८३८	श. २५	उ. ३	सू. १०९-११३
१८३१-१८३२	श. २५	उ. ४	सू. ८७-९५
१८५७-१८५८	श. २५	उ. ४	सू. ९६-१०५
१८५८-१८५९	श. २५	उ. ४	सू. १०६-११०
१८५९	श. २५	उ. ४	सू. १११-११७
१८५९-१८६०	श. २५	उ. ४	सू. ११८
१८६०-१८६१	श. २५	उ. ४	सू. ११९-१२०
१८६१-१८६२	श. २५	उ. ४	सू. १२१-१२५
१८६२-१८६४	श. २५	उ. ४	सू. १२६-१५३
१८६४-१८६६	श. २५	उ. ४	सू. १५४-१७३
१८३८-१८३९	श. २५	उ. ४	सू. १७४-१८८
१८५४	श. २५	उ. ४	सू. १८९-१९२
१८५४	श. २५	उ. ४	सू. १९३-१९८
१८५५	श. २५	उ. ४	सू. १९९-२०६
१८५५-१८५६	श. २५	उ. ४	सू. २०७-२०९
१८५६-१८५७	श. २५	उ. ४	सू. २१०
१८४८	श. २५	उ. ४	सू. २११-२१६
१८५०-१८५१	श. २५	उ. ४	सू. २१७-२२८
१८५१-१८५२	श. २५	उ. ४	सू. २२९-२४०
१८५२	श. २५	उ. ४	सू. २४१-२४४
१८५२-१८५४	श. २५	उ. ४	सू. २४५

जीवाभिगम सूत्र

१८११	पडि. १	सू. ५
१८९२	पडि. ३	सू. ७७
१८२६-१८२७	पडि. ३	सू. १८९

प्रज्ञापना सूत्र

१८११	टि. पद १	सू. ६
१८२८-१८२९	पद ३	सू. ३२६-३२७
१८६०	टि. पद ३	सू. ३३०
१८६१	टि. पद ३	सू. ३३१-३३२
१८२९	पद ३	सू. ३३२
१८३०	पद ३	सू. ३३३
१८६२	टि. पद ३	सू. ३३३
१७७९	टि. पद १०	सू. ७९१
१७८०-१७८१	पद १०	सू. ७९२-७९६
१८९५	टि. पद २१	सू. १५१४-१५२०/५१
१८९६	टि. पद २१	सू. १५५३/९-१०

उत्तराध्ययन सूत्र

१७४३	अ. ३६	गा. ११-१४
१८३१	अ. २८	गा. १२-१३

अनुयोगद्वार सूत्र

[illegible]	सू. [illegible]
[illegible]	सू. [illegible]

प्रकीर्णक (पृ. १८९३-१९१५)

स्थानांग सूत्र

१८९४	अ. १		सू. ६-९
१८९४	अ. १		सू. १६
१८९४	अ. १		सू. १९
१८९४	अ. १		सू. २१
१८९४	अ. १		सू. २२
१८९४	अ. १		सू. २४-२५
१८९४	अ. १		सू. २७-३०
१८९४	अ. १		सू. ३४
१८९४	अ. १		सू. ३५
१८९४	अ. १		सू. ३६
१८९४	अ. १		सू. ३७
१८९४	अ. १		सू. ३९ (१)
१८९५	अ. १		सू. ३९ (२)
१८९५	अ. २	उ. २	सू. ५८
१८९९	अ. ३	उ. १	सू. १२७
१९१२-१९१३	अ. ३	उ. २	सू. १७४
१८९९	अ. ३	उ. ३	सू. १९१ (११)
१८९९	अ. ३	उ. ३	सू. १९४ (९)
१८९९	अ. ३	उ. ४	सू. २१३
१८९८	अ. ३	उ. ४	सू. २१४
१८९९-१९००	अ. ४	उ. १	सू. २६१
१९००	अ. ४	उ. १	सू. २६९
१९०१	अ. ४	उ. २	सू. २८२
१९००	अ. ४	उ. २	सू. २९४
१९००	अ. ४	उ. १	सू. ३०८
१८९९	अ. ४	उ. ३	सू. ३१७
१८९६	टि. अ. ४	उ. १	सू. ३४१
१९००	अ. ४	उ. ४	सू. ३४२
१९००-१९०१	अ. ४	उ. ४	सू. ३४२
१८९९-१९००	अ. ४	उ. ४	सू. ३७०
१९०२	अ. ५	उ. १	सू. ३९०
१९०२	अ. ५	उ. १	सू. ४०६
१९०२	अ. ५	उ. १	सू. ४०७
१९०१	अ. ५	उ. २	सू. ४१८
१९०२	अ. ५	उ. २	सू. ४३६
१९०१-१९०२	अ. ५	उ. ३	सू. ४४८
१९०२	अ. ५	उ. ३	सू. ४४९
१९०२-१९०३	अ. ५	उ. ३	सू. ४५६
१९०३	अ. ५	उ. ३	सू. ४६२ (१)
१९०३	अ. ५	उ. ३	सू. ४६२ (२)
१९०६	अ. ६		सू. ४९९
१९०६	अ. ६		सू. ५३३
१९०९	टि. अ. ७		सू. ५५९
१९०७	अ. ७		सू. ५६९
१९०६-१९०७	अ. ७		सू. ५८४
१९०७	अ. ८		सू. ६११
१९०८	अ. ९		सू. ६६५
१९०८	अ. ९		सू. ६६७
१९०८	अ. ९		सू. ६७५
१९०७-१९०८	अ. ९		सू. ६७६
१८९४	टि. अ. ९		सू. ६७७
१९०८	अ. १०		सू. ७३०
१९०९	अ. १०		सू. ७४०
१९०९	अ. १०		सू. ७४३
१९०८-१९०९	अ. १०		सू. ७४५
१९०९	अ. १०		सू. ७६५
१९१०	अ. १०		सू. ७५९

समवायांग सूत्र

१८९४	सम. १		सू. ६-७
१९०७	सम. ७		सू. १

व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र (भगवती सूत्र)

१९१३	श. १	उ. ८	सू. ९
१९१०	श. १	उ. ९	सू. २८
१९१३-१९१४	श. ५	उ. ९	सू. १-२
१९१४-१९१५	श. ७	उ. ७	सू. २०-२३
१८९५-१८९८	श. ८	उ. २	सू. १-१९
१९१५	श. १०	उ. ३	सू. १८
१९०३-१९०५	श. १४	उ. ७	सू. ४-१०
१९१०	श. १७	उ. ३	सू. १
१९१०-१९११	श. १७	उ. ३	सू. २-१०
१९११-१९१२	श. १७	उ. ३	सू. ११-२१

प्रज्ञापना सूत्र

१९१५	पद १५	उ. १	सू. ९९९
१८९७	टि. पद २१		सू. १५१८

उत्तराध्ययन सूत्र

१९१५	अ. ३६	गा. २४८-२४९

अनुयोगद्वार सूत्र

१८९५	अणु.	सू. ४२८
१८९५	अणु.	सू. ५२०

●●

प्रकीर्णक

द्रव्यानुयोग के प्रकाशन से पूर्व भी धर्मकथानुयोग (भाग १-२), गणितानुयोग तथा चरणानुयोग (भाग १-२) यों कुल ५ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। द्रव्यानुयोग के सम्पादन के समय उक्त प्रकरणों से सम्बन्धित कुछ पाठ प्राप्त हुए जो किसी कारणवश उन ग्रन्थों में संकलित नहीं हो सके। अतः यहाँ पर उन विषयों से सम्बन्धित अवशेष पाठों का संकलन किया गया है। पाठक यथास्थान उक्त अवशेष पाठ संयोजित कर लेवें।

—संपादक

धर्मकथानुयोग प्रकीर्णक

अवशेष पाठों का संकलन

(कोने पर संबंधित पाठों के पृष्ठ व सूत्रांक अंकित हैं)

भाग १, खण्ड १, पृ. १५९

६. उक्कित्तणाणुपुव्वी—

सूत्र ४२६ (ख)

प. से किं तं उक्कित्तणाणुपुव्वी ?

उ. उक्कित्तणाणुपुव्वी—तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. १. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी—
१. उसभे, २. अजिए, ३. संभवे, ४. अभिणंदे,
५. सुमती, ६. पउमप्पभे, ७. सुपासे, ८. चंदप्पहे,
९. सुविही, १०. सीतले, ११. सेज्जंसे, १२. वासुपुज्जे,
१३. विमले, १४. अणंते, १५. धम्मे, १६. संती,
१७. कुंथू, १८. अरे, १९. मल्ली, २०. मुणिसुव्वए,
२१. णमी, २२. अरिट्ठणेमी, २३. पासे, २४. वद्धमाणे।
से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. २. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी—२४. वद्धमाणे, २३. पासे जाव १. उसभे।
से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. ३. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

उ. अणाणुपुव्वी—एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए चउवीसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो।
से तं अणाणुपुव्वी।
से तं उक्कित्तणाणुपुव्वी। —अणु. सु. २०३

६. उत्कीर्तनानुपूर्वी—

प्र. उत्कीर्तनानुपूर्वी क्या है ?

उ. उत्कीर्तनानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा—
१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. १. पूर्वानुपूर्वी क्या है ?

उ. पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार है—
१. ऋषभ, २. अजित, ३. सम्भव, ४. अभिनन्दन,
५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ,
९. सुविधि, १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य,
१३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, १६. शान्ति,
१७. कुन्थु, १८. अर, १९. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत,
२१. नमि, २२. अरिष्टनेमि, २३. पार्श्व, २४. वर्धमान।
यह पूर्वानुपूर्वी है।

प्र. २. पश्चानुपूर्वी क्या है ?

उ. व्युत्क्रम से अर्थात् २४. वर्धमान, २३. पार्श्व यावत् १. ऋषभ नामोच्चारण करना पश्चानुपूर्वी है।
यह पश्चानुपूर्वी है।

प्र. ३. अनानुपूर्वी क्या है ?

उ. इन्हीं (ऋषभ से वर्धमान पर्यन्त) को एक से लेकर एक-एक की वृद्धि करके चौबीस संख्या की श्रेणी स्थापित कर परस्पर गुणाकार करने से जो राशि बनती है उसमें से प्रथम और अन्तिम इन दो भंगों को कम करने पर शेष भंग अनानुपूर्वी कहलाते हैं।
यह अनानुपूर्वी है।
यह उत्कीर्तनानुपूर्वी का वर्णन है।

भाग १, खण्ड १, पृ. १६४

विमलस्स अरहओ अणुपिट्ठिं सिद्धाइं पुरिसजुगाइं संखा परूवणं–

सूत्र ४३७ (घ)

विमलस्स णं अरहओ चोयालीसं पुरिसजुगाइं अणुपिट्ठिं सिद्धाइं वुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुयाइं सव्वदुक्खप्पहीणाइं।

–सम. सम. ४४, सु. २

भ. विमलनाथ के बाद अनुक्रम से सिद्ध हुए पुरुष युगों की संख्या का प्ररूपण–

अर्हत् विमलनाथ के वाद चौवालीस पुरुष युग अनुक्रम से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत्त हुए तथा सर्व दुःखों का क्षय किया।

भाग १, खण्ड १, पृ. २५६

कण्ह वासुदेवस्स परिनिव्वुड अट्ठ अग्गमहिसीओ–

सूत्र ६३१ (ख)

कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहओ णं अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया सिद्धाओ वुद्धाओ मुत्ताओ अंतगडाओ परिणिव्वुडाओ सव्वदुक्खप्पहीणाओ, तं जहा–

१. पउमावई य, २. गोरी, ३. गंधारी, ४. लक्खणा, ५. सुसीमा य। ६. जंववती, ७. सच्चभामा, ८. रूप्पिणी अग्गमहिसीओ।

–ठाणं. अ. ८, सु. ६२८

कृष्ण वासुदेव की परिनिर्वृत्त आठ अग्रमहिषियाँ–

वासुदेव कृष्ण की आठ अग्रमहिषियाँ अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर, आगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत्त और समस्त दुःखों के रहित हुई, यथा–

१. पद्मावती, २. गौरी, ३. गांधारी, ४. लक्ष्मणा, ५. सुसीमा, ६. जाम्बवती, ७. सत्यभामा, ८. रुक्मिणी।

भाग १, खण्ड १, पृ. १५८

जंबुद्दीवे मंदर पव्वयस्स पुरत्थिमाइ दिसासु उक्कोसेणं अरहंताईणं उप्पत्ति परूवणं–

सूत्र ४२१ (ख)

जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमे णं सीयाए महाणईए उत्तरेणं उक्कोसपए अट्ठ अरहंता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति, उप्पज्जिस्संति वा।

जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं सीयाए महाणईए दाहिणे णं उक्कोसपए अट्ठ अरहंता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिंसु वा, उप्पज्जंति वा, उपज्जिस्संति वा।

जंवुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमे णं सीओयाए महाणईए दाहिणे णं उक्कोसपए अट्ठ अरहंता, अट्ठ चक्कवट्टी, अट्ठ बलदेवा, अट्ठ वासुदेवा उप्पज्जिंसु, उप्पज्जंति वा, उप्पज्जिस्संति वा।

एवं उत्तरेण वि। *–ठाणं अ. ८, सु. ६३८*

जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत की पूर्वादि दिशाओं में उत्कृष्टतः अरिहंत आदिकों की उत्पत्ति का प्ररूपण–

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के उत्तर में उत्कृष्ट आठ अर्हंत, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पूर्व में शीता महानदी के दक्षिण में उत्कृष्ट आठ अर्हंत, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।

जम्बूद्वीप द्वीप के मन्दर पर्वत के पश्चिम में शीतोदा महानदी के दक्षिण में उत्कृष्ट आठ अर्हंत, आठ चक्रवर्ती, आठ बलदेव और आठ वासुदेव उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।

इसी प्रकार उत्तर दिशा के भी जानना चाहिए।

भाग १, खण्ड १, पृ. १८५

अज्ज सुहम्मे सव्वाउ–

सूत्र ४७५ (ग)

थेरे णं अज्जसुहम्मे एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे वुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे। *–सम. १००, सु. ५*

आर्य सुधर्मा स्वामी की सर्वायु–

स्थविर आर्य सुधर्मा स्वामी सौ वर्षों की सर्वायु भोगकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत्त हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

भाग १, खण्ड १, पृष्ठ १८५

भगवओ महावीरस्स गोयमगणहरे–

सूत्र ४७६ (क)

रायगिहे जाव परिसा पडिगया,

गोयमा ! दी समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं –

भगवान महावीर के गौतम गणधर–

राजगृह नगर में (महावीर का पदार्पण हुआ) यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषदा लौट गई।

श्रमण भगवान महावीर ने 'हे गौतम !' इस प्रकार भगवान गौतम को सम्बोधित करके इस प्रकार कहा–

चिरसंसिट्ठोऽसि मे गोयमा !
चिरसंथुओऽसि मे गोयमा !
चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा !
चिरझुसिओऽसि मे गोयमा !
चिराणुगओऽसि मे गोयमा !
चिराणुवत्तीऽसि मे गोयमा !
अणंतरं देवलोए, अणंतरं माणुस्सए भवे,
किं परं मरणा कायस्स भेदा इतो चुया,
दो वि तुल्ला एगट्ठा अविसेसमणाणत्ता भविस्सामो।

–विया. स. १४, उ. ७, सु. १-२

गौतम ! तू मेरे साथ चिरकाल से संश्लिष्ट है।
हे गौतम ! तू मेरा चिरकाल से संस्तुत है।
हे गौतम ! तू मेरा चिर-परिचित है।
हे गौतम ! तू मेरे साथ चिरकाल से प्रीति करने वाला है।
हे गौतम ! तू मेरा चिरकाल से अनुगामी है।
हे गौतम ! तू मेरे साथ चिरकाल से अनुवृत्ति करने वाला है।

इस वर्तमान भव से पूर्व देवलोक में और इसके बाद के मनुष्य भव में तेरा मेरे साथ स्नेह सम्बन्ध था और अधिक क्या कहूँ, यहाँ से मरकर (इस शरीर का त्याग कर) और च्युत होकर हम दोनों तुल्य (एक जैसे) और एकार्थ (एक लक्ष्य को सिद्ध करने वाले) व विशेषता और भिन्नता से रहित हो जायेंगे।

भाग १, खण्ड २, पृ. २६

गंगदत्त देवेण मायीमिच्छादिट्ठिउववन्नग देवस्स अट्ठ पण्हाणं समाहाणं–

गंगदत्त देव द्वारा मायीमिथ्यादृष्टि उत्पन्नक देव के आठ प्रश्नों का समाधान–

सूत्र ६१ (क)

तेणं कालेणं तेणं समएणं उल्लुयतीरे नामं होत्था, वण्णओ एगजंबुए चेइए वण्णओ।

उस काल और उस समय में उल्लूकतीर नामक नगर था, वहाँ एक जम्बूक नाम का उद्यान था, इन दोनों का वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे जाव परिसा पज्जुवासइ।

उस काल और उस समय में श्रमण महावीर स्वामी वहाँ पधारे यावत् परिषद् ने पर्युपासना की।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी जाव दिव्वेणं जाणविमाणेणं आगओ जाव जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

उस काल और उस समय देवेन्द्र देवराज वज्रपाणि शक्र यावत् दिव्य यान विमान से आया और जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया और आकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार कर उसने इस प्रकार पूछा–

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू आगमित्तए ?

उ. सक्का ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे बाहिरए पोग्गले परियादित्ता पभू आगमित्तए ?

उ. हंता, पभू।

प. देवे णं भंते ! महिड्ढीए जाव महेसक्खे एवं एएणं अभिलावेणं–

१. गमित्तए वा, २. भासित्तए वा, ३. विआगरित्तए वा, ४. उम्मिसावेत्तए वा, निमिसावेत्तए वा, ५. आउंटावेत्तए वा, पसारेत्तए वा, ६. ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेइत्तए वा, ७. विउव्वित्तए वा, ८. परियारेत्तए वा ?

उ. हंता, पभू।

इमाइं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता संभंतियवंदणएणं वंदइ, संभंतियवंदणएणं वंदित्ता तमेव दिव्वं जाणविमाणं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना यहाँ आने में समर्थ है ?

उ. हे शक्र ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या महर्द्धिक यावत् महासौख्यसम्पन्न देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके यहाँ आने में समर्थ है ?

उ. हाँ, शक्र ! वह समर्थ है।

प्र. भंते ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव इसी अभिलाप से–

१. गमन करने, २. बोलने, ३. उत्तर देने, ४. आँखें खोलने और बन्द करने, ५. शरीर के अवयव को सिकोड़ने और पसारने, ६. स्थान, शय्या, निषद्या को भोगने, ७. विक्रिया (विकुर्वणा) करने अथवा ८. परिचारणा (विषय भोग) करने में समर्थ है ?

उ. हाँ, शक्र, वह (गमन यावत् परिचारणा करने में) समर्थ है।

देवेन्द्र देवराज शक्र ने इन (पूर्वोक्त) उत्क्षिप्त (अतिसंक्षिप्त) आठ प्रश्नों के उत्तर पूछे और उत्सुकता सहित भगवान को संभ्रमपूर्वक वन्दन किया। वन्दन करके उसी दिव्य यान-विमान पर चढ़कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

"भंते ! त्ति" भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

"भंते !" इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा–

प. अन्नयाणं भंते ! सक्के देविंदे देवराया देवाणुप्पियं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सक्कारेइ जाव पज्जुवासइ, किं णं भंते ! अज्ज सक्के देविंदे देवराया देवाणुप्पियं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छइ पुच्छित्ता संभंतियवंदणएणं वंदइ वंदित्ता जाव पडिगए ?

प्र. भंते ! अन्य दिनों में (जब कभी) देवेन्द्र देवराज शक्र आता है, तब आप देवानुप्रिय को वन्दन नमस्कार करता है, आपका सत्कार सन्मान करता है यावत् आपकी पर्युपासना करता है, किन्तु भंते ! आज तो देवेन्द्र देवराज शक्र आप देवानुप्रिय से संक्षेप में आठ प्रश्नों के उत्तर पूछकर और उत्सुकतापूर्वक वन्दना नमस्कार करके यावत् शीघ्र ही चला गया। (इसका क्या कारण है ?)

"गोयमा !" समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी–

"गौतम !" इस प्रकार से सम्बोधित करके श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा–

उ. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालणं तेणं समएणं महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे दो देवा महिड्ढीया जाव महेसक्खा एगविमाणंसि देवत्ताए उववन्ना, तं जहा–

१. मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नए य,

२. अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नए य।

तए णं से मायिमिच्छादिट्ठिउववन्नए देवे तं अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासी–

"परिणममाणा पोग्गला नो परिणया, अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला नो परिणया, अपरिणया।"

तए णं से अमायिसम्मद्दिट्ठिउववन्नए देवे तं मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासि–"परिणममाणा पोग्गला परिणया, नो अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला परिणया, नो अपरिणया।"

तं मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगं देवं पडिहणइ,

एवं पडिहणित्ता ओहिं पउंजइ, ओहिं पउंजित्ता ममं ओहिणा आभोएइ, ममं ओहिणा आभोइत्ता अयमेयारूवे जाव समुप्पज्जित्था–

'एवं खलु समणं भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे उल्लुयतीरस्स नगरस्स बहिया एगजंबुए चेइए अहापडिरूवं जाव विहरइ, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता जाव पज्जुवासित्ता इमं एयारूवं वागरणं पुच्छित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ एवं संपेहित्ता चउहिं वि सामाणियसाहस्सीहिं, सपरिवारो जहा सूरियाभस्स जाव निग्घोसनाइयरवेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव उल्लुयतीरे नगरे जेणेव एगजंबुए चेइए जेणेव ममं अंतियं तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं से सक्के देविंदे देवराया तस्स देवस्स तं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवज्जुइं, दिव्वं देवाणुभावं, दिव्वं तेयलेस्सं असहमाणे ममं अट्ठ उक्खित्तपसिणवागरणाइं पुच्छइ पुच्छित्ता संभंतिय जाव पडिगए।

उ. गौतम ! उस काल और उस समय में महाशुक्र कल्प के महासामान्य नामक विमान में महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न दो देव एक ही विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए, यथा–

१. मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्नक,

२. अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्नक।

एक दिन उस मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्नक देव ने अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्नक देव से इस प्रकार कहा–

"परिणमते हुए पुद्गल नहीं कहलाते अपरिणत कहलाते हैं, क्योंकि वे पुद्गल अभी परिणत हो रहे हैं, इसलिए वे परिणत नहीं, अपरिणत हैं।"

इस पर अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्नक देव ने मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्नक देव से कहा–"परिणमते हुए पुद्गल परिणत कहलाते हैं, अपरिणत नहीं, क्योंकि वे परिणत हो रहे हैं इसलिए ऐसे पुद्गल परिणत हैं, अपरिणत नहीं हैं।"

इस प्रकार कहकर मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्नक देव को पराजित किया।

इस प्रकार पराजित करने के पश्चात् (अमायी सम्यग्दृष्टि देव ने) अवधिज्ञान का उपयोग लगाकर अवधिज्ञान से मुझे देखा, अवधिज्ञान से मुझे देखकर उसे ऐसा यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि–

'जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में उल्लूकतीर नामक नगर के बाहर एक जम्बूक नाम के उद्यान में श्रमण भगवान महावीर स्वामी यथायोग्य अवग्रह लेकर यावत् विचरते हैं। अतः मुझे (वहाँ जाकर) श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार यावत पर्युपासना करके यह तथारूप (उपर्युक्त) प्रश्न पूछना श्रेयस्कर है', ऐसा विचार किया ऐसा विचार करके चार हजार सामानिक देवों के परिवार के साथ सूर्याभ देव के समान वाद्यादि की ध्वनियों के साथ जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में उल्लूकतीर नगर के जम्बूक उद्यान में मेरे पास आने के लिए उसने प्रस्थान किया।

तब वह देवेन्द्र देवराज शक्र उस देव की दिव्य देवर्द्धि दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव और दिव्य तेजःप्रभा को सहन नहीं करता हुआ मेरे पास आया और मुझसे संक्षेप में आठ प्रश्न पूछे और पूछकर शीघ्र ही वन्दना नमस्कार करके यावत् चला गया।

जावं च णं समणे भगवं महावीरे भगवओ गोयमस्स एयमट्ठं परिकहेइ तावं च णं से देवे तं देसं हव्वमागए।

जब श्रमण भगवान महावीर गौतम से यह (उपर्युक्त) बात कर रहे थे इतने में ही वह देव (अमायी सम्यग्दृष्टि उत्पन्नक) वहाँ आ पहुँचा।

तए णं से देवे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासि—

तब उस देव ने आते ही श्रमण भगवान महावीर को तीन वार प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

प. एवं खलु भंते ! महासुक्के कप्पे महासामाणे विमाणे एगे मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नए देवे ममं एवं वयासी—

"परिणममाणा पोग्गला नो परिणया अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला नो परिणया अपरिणया।"

प्र. भंते ! महाशुक्र कल्प में महासामान्य विमान में उत्पन्न हुए एक मायी मिथ्यादृष्टि उत्पन्नक देव ने मुझे इस प्रकार पूछा—

"परिणमते हुए पुद्गल अभी परिणत नहीं कहे जाकर अपरिणत कहे जाते हैं, क्योंकि वे पुद्गल अभी परिणत हो रहे हैं इसलिए वे परिणत नहीं, अपरिणत ही कहे जाते हैं।"

तए णं अहे तं मायिमिच्छद्दिट्ठिउववन्नगं देवं एवं वयासी—

तब मैंने (इसके उत्तर में) उस मायी मिथ्यादृष्टि देव से इस प्रकार कहा—

परिणममाणा पोग्गला परिणया नो अपरिणया, परिणमंतीति पोग्गला परिणया, णो अपरिणया, से कहमेयं भंते ! एवं ?

परिणमते हुए पुद्गल परिणत कहलाते हैं, अपरिणत नहीं, क्योंकि वे पुद्गल परिणत हो रहे हैं, इसलिए परिणत कहलाते हैं, अपरिणत नहीं, भंते ! इस प्रकार का मेरा कथन कैसा है ?

उ. "गंगदत्ता !" ई समणे भगवं महावीरे गंगदत्तं देवं एवं वयासी—

अहंपि णं गंगदत्ता ! एवमाइक्खामि जाव परूवेमि-परिणममाणा पोग्गला जाव नो अपरिणया, सच्चमेसे अट्ठे।

उ. "हे गंगदत्त !" इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान महावीर ने गंगदत्त देव को इस प्रकार कहा—

गंगदत्त ! मैं भी इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ कि "परिणमते हुए पुद्गल यावत् अपरिणत नहीं है (किन्तु परिणत है)। यह अर्थ (सिद्धान्त) सत्य है।"

तए णं से गंगदत्ते देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने जाव पज्जुवासइ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर से यह उत्तर सुनकर और अवधारणा करके वह गंगदत्त देव हर्षित और सन्तुष्ट हुआ और उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके वह न अति दूर और न अतिनिकट बैठकर यावत् भगवान की पर्युपासना करने लगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे गंगदत्तस्स देवस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ जाव आराहए भवइ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने गंगदत्त देव को और महती परिषद् को धर्मकथा कही यावत् जिसे सुनकर जीव आराधक हुए।

तए णं से गंगदत्ते देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ उट्ठेइ उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

उस समय गंगदत्त देव श्रमण भगवान महावीर से धर्मदेशना सुनकर और अवधारण करके हृष्ट तुष्ट हुआ और फिर उसने खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

अहण्णं भंते ! गंगदत्ते देवे किं भवसिद्धिए अभवसिद्धिए ?

भंते ! मैं गंगदत्त देव भवसिद्धिक हूँ या अभवसिद्धिक हूँ ?

एवं जहा सूरियाभो जाव बत्तीसइविहं नट्टविहिं उवदंसेइ उवदंसेत्ता जाव तामेव दिसं पडिगए।

राजप्रश्नीय सूत्र में कथित सूर्याभ देव के समान उत्तर जानना चाहिए, गंगदत्त देव ने भी उसी प्रकार बत्तीस प्रकार की नाट्यविधि प्रदर्शित की और फिर वह जिस दिशा से आया था उसी दिशा में लौट गया।

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं जाव एवं वयासी—

प. गंगदत्तस्स णं भंते ! देवस्स सा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देवज्जुई जाव अणुप्पविट्ठा ?

उ. गोयमा ! सरीरं गया, सरीरं अणुप्पविट्ठा। कूडागारसालादिट्ठंतो जाव सरीरं अणुप्पविट्ठा[1]।

— विया. स. १६, उ. ५, सु. ९-१४

"भंते !" इस प्रकार सम्बोधन करके भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से यावत् इस प्रकार पूछा—

प्र. भंते ! गंगदत्त देव की वह दिव्य देवर्द्धि दिव्य देवद्युति यावत् कहाँ गई, कहाँ प्रविष्ट हो गई ?

उ. गौतम ! वह दिव्य देवर्द्धि उस गंगदत्त देव के शरीर में गई और शरीर में ही अनुप्रविष्ट हो गई। यहाँ कूटाकारशाला का दृष्टान्त यावत् शरीर में अनुप्रविष्ट हो गई पर्यन्त समझना चाहिए।

---

१. [illegible]

२. उड्ढलोए असंखेज्जगुणे, — २. (उससे) ऊर्ध्वलोक असंख्यातगुणा है।

३. अहेलोए विसेसाहिए। *–विया. स. १३, उ. ४, सु. ७०* — ३. (उससे) अधोलोक विशेषाधिक है।

अधोलोक

पृ. ३६

अट्ठ पुढवीओ– / **आठ पृथ्वियाँ–**

सूत्र ७५ (ख)

प. कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

१. रयणप्पभा, २. सक्करप्पभा, ३. वालुयप्पभा, ४. पंकप्पभा, ५. धूमप्पभा, ६. तमप्पभा, ७. तमतमा[1], ८. ईसीपब्भारा[2]। *–विया. स. ६, उ. ८, सु. १*

प्र. भंते ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं ?

उ. गौतम ! आठ पृथ्वियाँ कही गई हैं, यथा–

१. रत्नप्रभा, २. शर्कराप्रभा, ३. बालुकाप्रभा, ४. पंकप्रभा, ५. धूमप्रभा, ६. तमःप्रभा, ७. महातमःप्रभा, ८. ईषत्प्राग्भारा।

एगमेगा पुढवी तिहिं वलएहिं परिक्खित्तत्त परूवणं– / **सभी पृथ्वियों का तीन वलयों से परिवृत्त होने का प्ररूपण–**

सूत्र ७५ (ग)

एगमेगा णं पुढवी तिहिं वलएहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, तं जहा–

१. घणोदधिवलएणं,
२. घणवायवलएणं,
३. तणुवायवलएणं। *–ठाणं अ. ३, उ. ४, सु. २२४*

सभी पृथ्वियाँ तीन वलयों से सर्वतः परिवृत (घिरी) हुई हैं, यथा–

१. घनोदधि वलय से,
२. घनवात वलय से,
३. तनुवात वलय से।

पृ. ४७

महाहिमवंत रूप्पिवासहर पव्वएहिंतो सोगंधिय कंडस्स अंतरं– / **महाहिमवंत-रुक्मी वर्षधर पर्वतों से सौगंधिक कांड का अंतर–**

सूत्र १०२ (ख)

महाहिमवंतस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं बासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

एवं रूप्पिस्स वि। *–सम. सम. ८२, सु. ३-४*

महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर के चरमान्त से सौगंधिक कांड के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर बयासी सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार रुक्मी वर्षधर पर्वत से अंतर के लिए जानना चाहिए।

महाहिमवंत कूडेहिंतो सोगंधिय कंडस्स अंतर परूवणं– / **महाहिमवंत कूट से सौगंधिक कांड के अंतर का प्ररूपण–**

सूत्र १०२ (ग)

महाहिमवंत कूडस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

एवं रूप्पिकूडस्स वि। *–सम. सम. ८७, सु. ६-७*

महाहिमवंत कूट के उपरितन चरमान्त से सौगंधिक कांड के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर सत्तासी सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार रुक्मी कूट से अंतर के लिए जानना चाहिए।

वट्टवेयड्ढपव्वएहिंतो सोगंधियकंडस्स अंतरं– / **वृत्तवैताढ्य पर्वतों से सौगंधिक कांड का अंतर–**

सूत्र १०२ (घ)

सव्वेसि णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ सोगंधियकंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं नवइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते। *–सम. सम. ९०, सु. ५*

सभी वृत्तवैताढ्य पर्वतों के उपरितन शिखरतल से सौगंधिक कांड के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर नौ सौ ([illegible]) योजन का कहा गया है।

पृ. ७३

नरय नेरइयाणं परोप्परं अप्पमहत्तरत्त परूवणं– / **नरक और नैरयिकों का परस्पर अल्पमहत्तरत्व का प्ररूपण–**

सूत्र १५४ (ख)

अहेसत्तमाए णं भंते ! पुढवीए पंच अणुत्तरा महइ महालया महानिरया पण्णत्ता, तं जहा–

१. काले, २. महाकाले, ३. रोरुए, ४. महारोरुए, ५. अपइट्ठाणे।

अधःसप्तमपृथ्वी में पाँच अनुत्तर और [illegible] कहे गए हैं, यथा–

१. काल, २. महाकाल, ३. रौरव, ४. महारौरव, ५. अप्रतिष्ठान।

---

१. (क) [illegible] (ग) [illegible]
(ख) [illegible] (घ) [illegible]
२. [illegible], सु. १४८

ते णं नरगा, छट्ठीए तमाए पुढवीए नरएहिंतो महत्तरा चेव, महाविथिण्णतरा चेव, महोवासतरा चेव, महापइरिक्कतरा चेव, नो तहा महापवेसणतरा चेव, आइण्णतरा चेव, आउलतरा चेव, अणोमाणतरा चेव। तेसु णं नरएसु नेरइया छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेयणतरा चेव। नो तहा अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पासवतरा चेव, अप्पवेयणतरा चेव। अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पजुइयतरा चेव, नो तहा महिड्ढियतरा चेव, महज्जुइयतरा चेव।

छट्ठीए णं तमाए पुढवीए एगे पंचूणे निरयावाससयसहस्से पण्णत्ते।

ते णं नरगा अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो नो तहा महत्तरा चेव, महाविथिण्णतरा चेव, महोवासतरा चेव, महापइरिक्कतरा चेव।

महप्पवेसणतरा चेव, आइण्णतरा चेव, आउलतरा चेव, अणोमाणतरा चेव।

तेसु णं नरएसु नेरइया अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइएहिंतो अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पासवतरा चेव, अप्पवेयणतरा चेव, नो तहा महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेयणतरा चेव।

महिड्ढियतरा चेव, महज्जुइयतरा चेव, नो तहा अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पजुइयतरा चेव।

छट्ठीए णं तमाए णरगा पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरएहिंतो महत्तरा चेव, महाविथिण्णतरा चेव, महोवासतरा चेव, महापइरिक्कतरा चेव।

नो तहा महप्पवेसणतरा चेव, आइण्णतरा चेव, आउलतरा चेव, अणोमाणतरा चेव।

तेसु णं नरएसु नेरइया पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइएहिंतो महाकम्मतरा चेव, महाकिरियतरा चेव, महासवतरा चेव, महावेयणतरा चेव।

नो तहा अप्पकम्मतरा चेव, अप्पकिरियतरा चेव, अप्पासवतरा चेव, अप्पवेयणतरा चेव।

अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पजुइयतरा चेव, नोतहा महड्ढियतरा चेव, महज्जुइयतरा चेव।

पंचमाए णं धूमप्पभाए पुढवीए तिण्णि निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

एवं जहा छट्ठीए पुढवीए भणिया तहा सत्त वि पुढवीओ परोप्पर भण्णंति जाव रयणप्पभंति जाव नो तहा महड्ढियतरा चेव, महज्जुइयतरा चेव,

अप्पिड्ढियतरा चेव, अप्पज्जुइयतरा चेव।

–विया. स. १३, उ. ४, सु. २-५

वे नरकावास छठी तम:प्रभापृथ्वी के नरकावासों से महत्तर (बड़े) हैं, महाविस्तीर्णतर हैं, महान् अवकाश वाले हैं, बहुत रिक्त स्थान वाले हैं, किन्तु वे महाप्रवेश अत्यन्त आकीर्णतर, प्रचुरतर और अनवमानतर नहीं हैं। उन नरकावासों में रहे हुए नैरयिक छठी तम:प्रभापृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाश्रव वाले एवं महावेदना वाले हैं। किन्तु अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्पआश्रव और अल्पवेदना वाले नहीं हैं। वे नैरयिक अल्प ऋद्धि वाले और अल्प द्युति वाले हैं, किन्तु महान ऋद्धि वाले और महान् द्युति वाले नहीं हैं।

छठी तम:प्रभापृथ्वी में पांच कम एक लाख नरकावास कहे गए हैं।

वे नरकावास अध:सप्तमपृथ्वी के नरकावासों के जैसे महत्तर महाविस्तीर्ण, महान् अवकाश वाले और शून्य स्थान वाले नहीं हैं।

वे (सप्तम नरकपृथ्वी के नरकावासों की अपेक्षा) महाप्रवेश वाले, संकीर्ण, व्याप्त और विशाल हैं।

उन नरकावासों में रहे हुए नैरयिक अध:सप्तमपृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा अल्पकर्म, अल्पक्रिया, अल्प आश्रव और अल्पवेदना वाले हैं, किन्तु वे (अध:सप्तमपृथ्वी के नारकों के समान) महाकर्म, महाक्रिया, महाश्रव और महावेदना वाले नहीं हैं।

वे (उनकी अपेक्षा) महान् ऋद्धि और महान् द्युति वाले हैं, किन्तु वे (उनकी तरह) अल्प ऋद्धि वाले और अल्प द्युति वाले नहीं हैं।

छठी तम:प्रभा नरकपृथ्वी के नरकावास पाँचवीं धूमप्रभा नरकपृथ्वी के नरकावासों से महत्तर, महाविस्तीर्ण, महान् अवकाश वाले और महान् रिक्त स्थान वाले हैं।

किन्तु वे (पंचम नरकपृथ्वी के नरकावासों की तरह) महाप्रवेश वाले, संकीर्ण, व्याप्त और विशाल नहीं हैं।

छठी पृथ्वी के नरकावासों के नैरयिक पाँचवीं धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा महाकर्म, महाक्रिया, महाश्रव तथा महावेदना वाले हैं।

किन्तु उनकी (पाँचवीं धूमप्रभा के नारकों की) तरह वे अल्पकर्म अल्पक्रिया अल्पाश्रव एवं अल्पवेदना वाले नहीं हैं।

वे उनसे अल्प ऋद्धि वाले और अल्प द्युति वाले हैं किन्तु महान् ऋद्धि वाले और महान् द्युति वाले नहीं हैं।

पाँचवीं धूमप्रभापृथ्वी में तीन लाख नरकावास कहे गए हैं।

इसी प्रकार जैसे छठी तम:प्रभापृथ्वी के लिए कहा उसी प्रकार रत्नप्रभापृथ्वी पर्यंत सातों नरकपृथ्वियों के लिए परस्पर कहना चाहिए कि (शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा (महान् ऋद्धि और महान् द्युति वाले नहीं हैं। किन्तु वे (उनकी अपेक्षा) अल्प ऋद्धि और अल्प द्युति वाले हैं।

पृ. ८०

चमरिन्देण नट्टविहि उवदंसणं–

सूत्र १६१ (ख)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव नट्टविहिं उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। *–विया. स. ३, उ. २, सु. २*

चमरेन्द्र द्वारा नाट्य विधि का उपदर्शन–

उस काल और उस समय में चौंसठ हजार सामानिक देवों से परिवृत होकर अपनी चमरचंचा नामक राजधानी की सुधर्मासभा में चमर नामक सिंहासन पर स्थित असुरेन्द्र असुरराज चमर ने (राजगृह में विराजमान भगवान को अवधिज्ञान से देखा) यावत् नाट्यविधि दिखलाकर जिस दिशा से आया था उसी दिशा में वापस लौट गया।

तिर्यक्लोक

पृ. १२२

निरियलोए खेत्ताणुपुव्विस्स परूवणं–

सुत्र ४ (ख)

तिरियलोयखेत्ताणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी–
जंबुद्दीवे, लवणे, धायइ, कालोय, पुक्खरे, वरुणे।
खीर, घय, खोय, नंदी, अरुणवरे, कुंडले, रुयगे॥१॥

जंबुद्दीवाओ खलु निरंतरा, सेसया असंखइमा।
भुयगवर, कुसवरा वि य कोंचवरा भरणमाइया॥२॥

आभरण, वत्थ, गंधे, उप्पल, तिलये य पउम, निहि, रयणे।
वासहर, दह, णईओ विजया वक्खार, कप्पिंदा॥३॥

कुरु, मंदर, आवासा कूडा नक्खत्त, चंद सूरा य।
देवे नागे जक्खे भूये य सयंभुरमणे य॥४॥

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी सयंभुरमणे य भूए य जाव जंबुद्दीवे।
से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

उ. अणाणुपुव्वी [illegible]
[illegible]
से तं अणाणुपुव्वी। [illegible]

पृ. १२४ के प्रारम्भ में

जंबुद्दीव [illegible]–

सुत्र [illegible]

[illegible]

तिर्यक्लोक-क्षेत्रानुपूर्वी का प्ररूपण–

तिर्यग् (मध्य) लोकक्षेत्रानुपूर्वी के तीन भेद कहे गये हैं, यथा–
१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. मध्यलोक क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. मध्यलोक क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–
जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखंडद्वीप, कालोदधिसमुद्र, पुष्करद्वीप (पुष्करोदसमुद्र), वरुणद्वीप (वरुणोदसमुद्र), क्षीरद्वीप (क्षीरोदसमुद्र), घृतद्वीप (घृतोदसमुद्र), इक्षुवरद्वीप (इक्षुवरसमुद्र), नन्दीद्वीप (नन्दीसमुद्र), अरुणवरद्वीप (अरुणवरसमुद्र), कुण्डलद्वीप (कुण्डलसमुद्र), रुचकद्वीप (रुचकसमुद्र)॥१॥

जम्बूद्वीप से लेकर ये सभी द्वीप-समुद्र बिना किसी अन्तर के एक-दूसरे को घेरे हुए स्थित हैं। इनके आगे असंख्यात द्वीप-समुद्रों के पश्चात् भुजगवर है, इसके बाद फिर असंख्यात द्वीप-समुद्रों के पश्चात् कुशवरद्वीप समुद्र, इसके बाद असंख्यात द्वीप समुद्रों के पश्चात् क्रौंचवर द्वीप है॥२॥

पुनः असंख्यात द्वीप-समुद्रों के पश्चात् आभरणों आदि के सदृश शुभ नाम वाले द्वीप-समुद्र हैं। यथा–आभरण, वस्त्र, गंध, उत्पल, तिलक, पद्म, निधि, रत्न, वर्षधर, द्रह, नदी, विजय, वक्षस्कार, कल्पेन्द्र॥३॥

कुरु, मंदर, आवास, कूट, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्यदेव, नाग, यक्ष, भूत आदि के पर्यायवाचक नामों वाले द्वीप समुद्र असंख्यात हैं और अन्त में स्वयंभूरमणद्वीप एवं स्वयंभूरमणसमुद्र है॥४॥

यह मध्यलोक क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी का कथन है।

प्र. मध्यलोक क्षेत्र पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. स्वयंभूरमणसमुद्र, भूतद्वीप आदि से जम्बूद्वीप पर्यन्त व्युत्क्रम से द्वीप समुद्रों के कथन करने को मध्यलोक क्षेत्रपश्चानुपूर्वी कहते हैं।

प्र. मध्यलोक क्षेत्र अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. [illegible]

जम्बूद्वीप [illegible]–

[illegible]

खंडगणियाणुसारेण जंबुद्दीवस्स खंड संखा परूवणं-

सूत्र ४ (ख)

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइयं खंडगणिएणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते।

—जंबू. वक्ख. ६, सु. १५८

खण्डगणित के अनुसार जंबूद्वीप की खण्ड संख्या का प्ररूपण-

प्र. भंते ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के बराबर खण्ड किये जाएँ तो वे कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! खण्डगणित के अनुसार वे एक सौ नव्वे कहे गए हैं।

जंबुद्दीवस्स खेत्तफलपमाण परूवणं-

सूत्र ४ (ग)

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं जोअणगणिएणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सत्तेव य कोडिसया, णउआ छप्पण्ण सय-सहस्साइं।
चउणवइं च सहस्सा, सयं दिवड्ढं च गणिअ-पयं ॥२॥

—जंबू. वक्ख. २, सु. १५८

जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल प्रमाण का प्ररूपण-

प्र. भंते ! योजनगणित के अनुसार जम्बूद्वीप का कितना प्रमाण (क्षेत्रफल) कहा गया है ?

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल (७,९०,५६,९४,१५०) सात अरब, नव्वे करोड़, छप्पन लाख, चौरानवे हजार, एक सौ पचास योजन का कहा गया है।

जंबुद्दीवस्स कला परिमाणं-

सूत्र ४ (घ)

जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीसं छेयणाओ पण्णत्ताओ।

—सम. सम. १९, सु. ४

जम्बूद्वीप की कलाओं का परिमाण-

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की कलाएँ एक योजन के उन्नीस छेदनक (भाग रूप) कही गई हैं।

पृ. २३१

निसढ-नीलवंत वासहर पव्वएहिंतो रयणप्पभापुढवी अंतरं-

सूत्र ३४३ (ख)

निसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए एसणं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

एवं नीलवंतस्स वि। —सम. सु. १००

निषध-नीलवंत वर्षधर पर्वतों से रत्नप्रभापृथ्वी का अंतर-

निषध वर्षधर पर्वत के उपरितन शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम काण्ड के बहुमध्यदेश भाग का अबाधा अन्तर नौ सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार नीलवंत का भी अंतर जानना चाहिए।

पृ. २३४

बाहिरिया मंदर पव्वयाणं उच्चत्तं परूवणं-

सूत्र ३४८ (ख)

सव्वेवि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं-चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। —सम. सम. ८४, सु. १

बाहर के मंदर पर्वतों की ऊँचाई का प्ररूपण-

बाहर के सभी मंदर पर्वत चौरासी-चौरासी हजार योजन ऊँचे कहे गए हैं।

पृ. २५७

जंबुद्दीव विज्जाहराई सेढीणं अवट्ठिई आगाराइ य परूवणं-

सूत्र ४०६ (ख)

वेअड्ढस्स णं पव्वयस्स उभओ पासिं दस-दस जोअणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे विज्जाहरसेढीओ पण्णत्ताओ-पाईणपडीणाययाओ, उदीणदाहिण-विच्छिण्णाओ, दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ, ताओ णं पउमवरवेइयाओ, अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, वणसंडा वि पउमवरवेइयासमगा आयामेणं।

वण्णओ।

जम्बूद्वीप में विद्याधरादि श्रेणियों की अवस्थिति और आकारादि का प्ररूपण-

वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दस-दस योजन की ऊँचाई पर दो विद्याधर श्रेणियाँ (आवास पंक्तियाँ) कही गई हैं। वे पूर्व-पश्चिम में लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ी हैं। उनकी चौड़ाई दस-दस योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है। वे दोनों पार्श्व में दो-दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो-दो वनखण्डों से परिवेष्टित हैं। वे पद्मवरवेदिकाएँ ऊँचाई में आधा योजन, चौड़ाई में पाँच सौ धनुष तथा लम्बाई में पर्वत जितनी है। वनखण्ड भी लम्बाई में पद्मवरवेदिकाओं जितने ही हैं।

उनका वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

प. विज्जाहरसेढीणं भंते ! भूमीणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं, तणेहिं उवसोभिए, तं जहा-कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

तत्थ णं दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेढीए गगणवल्लभपामोक्खा पण्णासं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए रहनेउरचक्कवालपामोक्खा सट्ठिं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं दाहिणिल्लाए, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए एगं दसुत्तरं विज्जाहरणगरावाससयं भवतीतिमक्खायं।

ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणजाणवया जाव पडिरूवा।

तेसु णं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसंति महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारा।

रायवण्णओ भाणिअव्वो।

प. विज्जाहरसेढीणं भंते ! मणुआणं केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! ते णं मणुआ बहुसंघयणा, बहुसंठाणा, बहुउच्चत्तपज्जवा, बहुआउपज्जवा, बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया मणुयगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

तासि णं विज्जाहरसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेअड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस-दस जोअणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे अभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ। पाईणपडीणायायाओ, उदीणदाहिणवित्थिण्णाओ, दस-दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ वण्णओ दोण्ह वि पव्वयसमियाओ आयामेणं।

प्र. भंते ! विद्याधर श्रेणियों की भूमि का आकार स्वरूप कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल रमणीय कहा गया है। वह मुरज के ऊपरी भाग के समान समतल है यावत् नाना प्रकार की मणियों तथा तृणों से सुशोभित है, यथा–कृत्रिम, अकृत्रिम।

दक्षिणवर्ती विद्याधर श्रेणी में गगनवल्लभ आदि पचास विद्याधर नगर कहे गए हैं। उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणी में रथनूपुरचक्रवाल आदि साठ विद्याधर नगर कहे गए हैं। इस प्रकार दक्षिणवर्ती एवं उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणियों के कुल मिलाकर एक सौ दस नगरावास कहे गए हैं।

वे विद्याधर-नगर वैभवशाली सुरक्षित एवं समृद्ध हैं। वहाँ के निवासी तथा अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति वहाँ आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रसन्न रहते हैं यावत् अत्यंत दर्शनीय हैं।

उन विद्याधर नगरों में विद्याधर राजा निवास करते हैं, वे महाहिमवान् पर्वत के सदृश महत्ता तथा मलय मेरु एवं महेन्द्र संज्ञक पर्वतों के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिए हुए हैं।

इत्यादि राजा का वर्णन करना चाहिए।

प्र. भंते ! विद्याधर श्रेणियों के मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! वहाँ के मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयु अनेक प्रकार का है। वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं, भोगकर कई नरकगति में, कई तिर्यञ्चगति में, कई मनुष्यगति में और कई देवगति में जाते हैं। कई सिद्ध बुद्ध मुक्त परिनिर्वृत्त और सब दुःखों का अंत करते हैं।

उन विद्याधर श्रेणियों के समतल भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दस-दस योजन ऊपर दो आभियोगिक श्रेणियाँ कही गई हैं।

वे पूर्व पश्चिम में लम्बी तथा उत्तर दक्षिण में चौड़ी हैं। इनकी चौड़ाई दस-दस योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है। ये दोनों श्रेणियाँ अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो वनखण्डों से परिवेष्टित हैं। लम्बाई में दोनों पर्वत जितनी हैं।

खंडगणियाणुसारेण जंबुद्दीवस्स खंड संखा परूवणं–

सूत्र ४ (ख)

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहप्पमाणमेत्तेहिं खंडेहिं केवइयं खंडगणिएणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! णउअं खंडसयं खंडगणिएणं पण्णत्ते।

–जंबू. वक्ख. ६, सु. १५८

खण्डगणित के अनुसार जंबूद्वीप की खण्ड संख्या का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के बराबर खण्ड किये जाएँ तो वे कितने कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! खण्डगणित के अनुसार वे एक सौ नव्वे कहे गए हैं।

जंबुद्दीवस्स खेत्तफलपमाण परूवणं–

सूत्र ४ (ग)

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइअं जोअणगणिएणं पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! सत्तेव य कोडिसया, णउआ छप्पण्ण सय-सहस्साइं।
चउणवइं च सहस्सा, सयं दिवड्ढं च गणिअ-पयं॥२॥

–जंबू. वक्ख. २, सु. १५८

जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल प्रमाण का प्ररूपण–

प्र. भंते ! योजनगणित के अनुसार जम्बूद्वीप का कितना प्रमाण (क्षेत्रफल) कहा गया है ?

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल (७,९०,५६,९४,१५०) सात अरब, नव्वे करोड़, छप्पन लाख, चौरानवे हजार, एक सौ पचास योजन का कहा गया है।

जंबुद्दीवस्स कला परिमाणं–

सूत्र ४ (घ)

जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीसं छेयणाओ पण्णत्ताओ।

–सम. सम. १९, सु. ४

जम्बूद्वीप की कलाओं का परिमाण–

जम्बूद्वीप नामक द्वीप की कलाएँ एक योजन के उन्नीस छेदनक (भाग रूप) कही गई हैं।

पृ. २३१

निसढ-नीलवंत वासहर पव्वएहिंतो रयणप्पभापुढवी अंतरं–

सूत्र ३४३ (ख)

निसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए एसणं नव जोयणसयाइं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते।

एवं नीलवंतस्स वि। –सम. सु. १००

निषध-नीलवंत वर्षधर पर्वतों से रत्नप्रभापृथ्वी का अंतर–

निषध वर्षधर पर्वत के उपरितन शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम काण्ड के बहुमध्यदेश भाग का अबाधा अन्तर नौ सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार नीलवंत का भी अंतर जानना चाहिए।

पृ. २३४

बाहिरिया मंदर पव्वयाणं उच्चत्तं परूवणं–

सूत्र ३४८ (ख)

सव्वेवि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं-चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता। –सम. सम. ८४, सु. १

बाहर के मंदर पर्वतों की ऊँचाई का प्ररूपण–

बाहर के सभी मंदर पर्वत चौरासी-चौरासी हजार योजन ऊँचे कहे गए हैं।

पृ. २५७

जंबुद्दीव विज्जाहराई सेढीणं अवट्ठिई आगाराइ य परूवणं–

सूत्र ४०६ (ख)

वेअड्ढस्स णं पव्वयस्स उभओ पासिं दस-दस जोअणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे विज्जाहरसेढीओ पण्णत्ताओ-पाईणपडीणाययाओ, उदीणदाहिण-वित्थिण्णाओ, दस दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं, दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ, ताओ णं पउमवरवेइयाओ, अद्धजोअणं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, वणसंडा वि पउमवरवेइयासमगा आयामेणं।

वण्णओ।

जम्बूद्वीप में विद्याधरादि श्रेणियों की अवस्थिति और आकारादि का प्ररूपण–

वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दस-दस योजन की ऊँचाई पर दो विद्याधर श्रेणियाँ (आवास पंक्तियाँ) कही गई हैं। वे पूर्व-पश्चिम में लम्बी तथा उत्तर-दक्षिण में चौड़ी हैं। उनकी चौड़ाई दस-दस योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है। वे दोनों पार्श्व में दो-दो पद्मवरवेदिकाओं तथा दो-दो वनखण्डों से परिवेष्टित हैं। वे पद्मवरवेदिकाएँ ऊँचाई में आधा योजन, चौड़ाई में पाँच सौ धनुष तथा लम्बाई में पर्वत जितनी है। वनखण्ड भी लम्बाई में पद्मवरवेदिकाओं जितने ही हैं।

उनका वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

प. विज्जाहरसेढीणं भंते ! भूमीणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! वहुसमरणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं, तणेहिं उवसोभिए, तं जहा–कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

तत्थ णं दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेढीए गगणवल्लभपामोक्खा पण्णासं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए रहनेउरचक्कवालपामोक्खा सट्ठिं विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता, एवामेव सपुव्वावरेणं दाहिणिल्लाए, उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए एगं दसुत्तरं विज्जाहरणगरावाससयं भवंतीतिमक्खायं।

ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणजाणवया जाव पडिरूवा।

तेसु णं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसंति महयाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारा।

रायवण्णओ भाणिअव्वो।

प. विज्जाहरसेढीणं भंते ! मणुआणं केरिसए आयारभाव-पडोयारे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! ते णं मणुआ वहुसंघयणा, वहुसंठाणा, बहुउच्चत्त-पज्जवा, वहुआउपज्जवा, बहूइं वासाइं आउं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया मणुयगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

तासि णं विज्जाहरसेढीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ वेअड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस-दस जोअणाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दुवे अभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ। पाईणपडीणायययाओ, उदीणदाहिण विच्छिण्णाओ, दस-दस जोअणाइं विक्खंभेणं, पव्वयसमियाओ आयामेणं, उभओ पासिं दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं संपरिक्खित्ताओ वण्णओ दोण्ह वि पव्वयसमियाओ आयामेणं।

प. आभिओगसेढीणं भंते ! केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव तणेहिं उवसोभिए।

वण्णाइं जाव तणाणं सद्दोत्ति।

तासि णं आभिओगसेढीणं तत्थ देसे तहिं-तहिं वहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ अ आसयंति, सयंति जाव फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

तासु णं आभिओगसेढीसु सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोम जम वरुण वेसमणकाइआणं आभिओगाणं देवाणं वहवे

प्र. भंते ! विद्याधर श्रेणियों की भूमि का आकार स्वरूप कैसा कहा गया है?

उ. गौतम ! उनका भूमिभाग बड़ा समतल रमणीय कहा गया है। वह मुरज के ऊपरी भाग के समान समतल है यावत् नाना प्रकार की मणियों तथा तृणों से सुशोभित है, यथा–कृत्रिम, अकृत्रिम।

दक्षिणवर्ती विद्याधर श्रेणी में गगनवल्लभ आदि पचास विद्याधर नगर कहे गए हैं। उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणी में रथनूपुरचक्रवाल आदि साठ विद्याधर नगर कहे गए हैं। इस प्रकार दक्षिणवर्ती एवं उत्तरवर्ती विद्याधर श्रेणियों के कुल मिलाकर एक सौ दस नगरावास कहे गए हैं।

वे विद्याधर-नगर वैभवशाली सुरक्षित एवं समृद्ध हैं। वहाँ के निवासी तथा अन्य भागों से आये हुए व्यक्ति वहाँ आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रसन्न रहते हैं यावत् अत्यंत दर्शनीय हैं।

उन विद्याधर नगरों में विद्याधर राजा निवास करते हैं, वे महाहिमवान् पर्वत के सदृश महत्ता तथा मलय मेरू एवं महेन्द्र संज्ञक पर्वतों के सदृश प्रधानता या विशिष्टता लिए हुए हैं।

इत्यादि राजा का वर्णन करना चाहिए।

प्र. भंते ! विद्याधर श्रेणियों के मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा कहा गया है?

उ. गौतम ! वहाँ के मनुष्यों का संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयु अनेक प्रकार का है। वे बहुत वर्षों का आयुष्य भोगते हैं, भोगकर कई नरकगति में, कई तिर्यञ्चगति में, कई मनुष्यगति में और कई देवगति में जाते हैं। कई सिद्ध बुद्ध मुक्त परिनिर्वृत और सब दुःखों का अंत करते हैं।

उन विद्याधर श्रेणियों के समतल भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों ओर दस-दस योजन ऊपर दो आभियोगिक श्रेणियाँ कही गई हैं।

वे पूर्व पश्चिम में लम्बी तथा उत्तर दक्षिण में चौड़ी हैं। उनकी चौड़ाई दस-दस योजन तथा लम्बाई पर्वत जितनी है। वे दोनों श्रेणियाँ अपने दोनों ओर दो पद्मवरवेदिकाओं एवं दो वनखण्डों से परिवेष्टित हैं। लम्बाई में दोनों पर्वत जितनी हैं।

इनका वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

प्र. भंते ! आभियोगिक श्रेणियों का आकार स्वरूप कैसा कहा गया है?

उ. गौतम ! उनका वड़ा समतल रमणीय भूमि भाग कहा गया है यावत् मणियों एवं तृणों से उपशोभित है।

मणियों के वर्ण यावत् तृणों के शब्दों का वर्णन करना चाहिए।

उन आभियोगिक श्रेणियों पर वहुत से वाणव्यंतर देव-देवियाँ वैठते हैं, शयन करते हैं यावत् अपने पुण्य कर्मों के फल विशेष का अनुभव करते हुए विचरते हैं।

उन आभियोगिक श्रेणियों में देवराज देवेन्द्र शक्र के सोम, यम, वरुण तथा वैश्रमणकायिक आभियोगिक देवों के वहुत से

भवणा पण्णत्ता। ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा वण्णओ।

तत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोम जम वरूण वेसमणकाइआ बहवे आभिओगा देवा महिड्ढिआ, महज्जुईआ, महाबला, महायसा, महासोक्खा पलिओवमट्ठिईया परिवसंति।

–जंबू. वक्ख. १, सु. १३-१६

भवन कहे गए हैं। वे भवन बाहर से गोल भीतर से चौरस हैं, इत्यादि भवनों का वर्णन कहना चाहिए।

वहाँ देवराज देवेन्द्र शक्र के अत्यन्त ऋद्धिसम्पन्न बलवान्, यशस्वी, सौख्यसम्पन्न और पल्योपम की स्थिति वाले सोम, यम, वरुण एवं वैश्रमण संज्ञक आभियोगिक देव निवास करते हैं।

जंबुद्दीवे विज्जाहराइ सेढीणं संखा परूवणं–

जंबूद्वीप में विद्याधरादि श्रेणियों की संख्या का प्ररूपण–

सूत्र ४०६ (ग)

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे केवइआ विज्जाहरसेढीओ ? केवइआ आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ ?

उ. गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे अट्ठसट्ठी विज्जाहर सेढीओ, अट्ठसट्ठी आभिओगसेढीओ पण्णत्ताओ।

एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे छत्तीसे सेढीसए भवंतीतिमक्खायं। *–जंबू. वक्ख. ६, सु. १५८*

प्र. भंते ! जंबूद्वीप द्वीप में कितनी विद्याधर श्रेणियाँ और कितनी आभियोगिक श्रेणियाँ कही गई हैं ?

उ. गौतम ! जंबूद्वीप द्वीप में अड़सठ विद्याधर श्रेणियाँ और अड़सठ आभियोगिक श्रेणियाँ कही गई हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर जंबूद्वीप द्वीप में एक सौ छत्तीस श्रेणियाँ होती हैं ऐसा कहा गया है।

पृ. २६२

णिसढ नीलवंतपव्वय समीवे वक्खार पव्वयाणं उच्चत्तं उव्वेहे य परूवणं–

निषध-नीलवंत पर्वतों के समीप के वक्षस्कार पर्वतों की ऊँचाई और गहराई का प्ररूपण–

सूत्र ४१२ (ख)

सव्वेवि णं वक्खारपव्वया णिसढ-नीलवंत-वासहर पव्वयंतेणं चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि-चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता। *–सम. सु. १०६ (३)*

सभी वक्षस्कार पर्वत निषध और नीलवंत वर्षधर पर्वतों के पास चार सौ-चार सौ योजन ऊँचे तथा चार सौ-चार सौ गव्यूति गहरे कहे गए हैं।

पृ. २७६

वासहर पव्वयाणं कूडेहिंतो समधरणितलस्स अंतरं–

वर्षधर पर्वतों के कूटों से समभूतल का अंतर–

सूत्र ४४८ (ख)

[illegible]कूडस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ चुल्लहिमवंतस्स [illegible]पव्वयस्स समे धरणितले, एस णं छ जोयणसयाइं अवाहाए [illegible]।

एवं सिहरीकूडस्स वि। *–सम. सु. १०१ (२)*

[illegible]कूडस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ महाहिमवंतस्स [illegible]पव्वयस्स समे धरणितले, एस णं सत्त जोयणसयाइं अवाहाए [illegible]।

[illegible]कूडस्स वि। *–सम. सु. ११० (५)*

[illegible] णं उवरिल्लाओ [illegible]ओ णिसढस्स वासहर [illegible], एस णं नव जोयणसयाइं अवाहाए अंतरे [illegible]।

[illegible]कूडस्स वि। *–सम. सु. ११२ (५)*

चुल्लहिमवंतकूट के उपरितन चरमान्त से चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के समभूतल का अवाधा अन्तर छह सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार शिखरीकूट का भी अंतर जानना चाहिये।

महाहिमवंतकूट के उपरितन चरमान्त से महाहिमवंत वर्षधर पर्वत के समभूतल का अवाधा अन्तर सात सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार रुक्मीकूट का भी अंतर जानना चाहिए।

निषधकूट के उपरितन चरमान्त से निषध वर्षधर पर्वत के समभूतल का अवाधा अन्तर नौ सौ योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार नीलवंतकूट का भी अंतर जानना चाहिए।

पृ. [illegible]

[illegible] उच्चत्ताइ परूवणं–

हरिहरिस्सहकूटों और बलकूट की ऊँचाई आदि का प्ररूपण–

सूत्र [illegible]

[illegible] दस-दस [illegible] विक्खंभेणं [illegible]

वक्षस्कारकूटों को छोड़कर सभी हरिकूट और हरिस्सहकूट हजार-हजार योजन ऊँचे और मूल में हजार-हजार योजन चौड़े कहे गए हैं।

एवं वलकूडा वि नंदणकूडवज्जा। *–सम. सु. ११३ (५-६)*

इसी प्रकार नंदनकूटों को छोड़कर बलकूटों के लिए भी जानना चाहिए

वक्खारपव्वयकूडाणं उच्चत्त आयाम विक्खंभ य परूवणं–

सूत्र ४५८ (ग)

सव्वेवि णं वक्खारपव्वयकूडा हरिहरिस्सहकूडवज्जा पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच-पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता। *–सम. सु. १०८(६)*

वक्षस्कार पर्वत के कूटों की ऊँचाई और लम्बाई-चौड़ाई का प्ररूपण–

हरिहरिस्सह कूटों को छोड़कर सभी वक्षस्कार पर्वतों के कूट पाँच सौ-पाँच सौ योजन ऊँचे तथा मूल में पाँच सौ-पाँच सौ योजन लम्बे-चौड़े कहे गए हैं।

पृ. २८९

बलकूडवज्जा नंदणकूडाणं उच्चत्तं आयाम-विक्खंभ य परूवणं–

सूत्र ४८३ (ख)

सव्वेवि णं नंदणकूडा वलकूडवज्जा पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच-पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता। *–सम. सु. १०८(७)*

बलकूट को छोड़कर नंदनकूटों की ऊँचाई और लम्बाई-चौड़ाई का प्ररूपण–

बलकूट को छोड़कर सभी नन्दनवन के कूट पाँच सौ-पाँच सौ योजन ऊँचे तथा मूल में पाँच सौ-पाँच सौ योजन लम्बे-चौड़े कहे गये हैं।

पृ. ३२३

सीता-सीतोदा नईयाओ पवायं दिसा परूवणं–

सूत्र ५८९ (ख)

निसहाओ णं वासहरपव्वयाओ तिगिंछिद्दहाओ सीतोदामहानदी चोवत्तरिं जोयणसयाइं साहियाइं उत्तराहि मुही पवहित्ता वइरामइयाए जिब्भियाए चउजोयणायामाए पण्णासजोयणविक्खंभाए वइरतले कुंडे महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहार संठाणसंठिएणं पवाएणं महया सद्देणं पवडइ।

एवं सीता वि दक्खिणाभिमुही भाणियव्वा। *–सम. सम. ७४, सु. २*

सीता-शीतोदा नदियों के प्रवाह दिशा का प्ररूपण–

निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछिद्रह से शीतोदा महानदी कुछ अधिक चौहत्तर सौ योजन उत्तर दिशा की ओर बहकर चार योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी वज्ररलमय ज़िह्वा से विशाल घटमुख में प्रवेश करके मुक्तावलिहार के संस्थान.से संस्थित प्रवाह से महान् शब्द करती हुई (वज्रतल वाले) कुंड में गिरती है।

इसी प्रकार सीता नदी का भी दक्षिणाभिमुखी बहकर कुंड में गिरने का कथन करना चाहिए।

पृ. ३२९

जंवुद्दीवे णवजोयणिय मच्छाणं पवेसणं–

सूत्र ६०५ (ख)

जंवुद्दीवे दीवे णवजोयणिया मच्छा पविंसिंसु वा, पविसंति वा, पविसिस्संति वा। *–ठाणं अ. ९, सु. ६७२*

जम्बूद्वीप में नौ योजन के मत्स्यों का प्रवेश–

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में नौ योजन के मत्स्यों ने प्रवेश किया था, करते हैं और करेंगे।

पृ. ३४५

ओहेण वेलंधर णागरायाणं आवास पव्वयाणं परूवणं–

सूत्र ६४९ (ख)

जंवुद्दीवस्स णं दीवस्स वाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं वायालीसं वायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चउण्हं वेलंधर णागराईणं चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा–

१. गोधूभे, २. उदओभासे,
३. संखे, ४. दगसीमे।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तं जहा–

१. गोधूभे, २. सिवए,
३. संखे, ४. मणोसिलाए। *–ठाणं अ. ४, सु. ३०२*

सामान्यतः वेलंधर नागराजों के आवास पर्वतों का प्ररूपण–

जम्बूद्वीप द्वीप की वाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों दिशाओं में लवणसमुद्र में वयालीस-वयालीस हजार योजन जाने पर वेलंधर नागराजों के चार आवास पर्वत कहे गए हैं, यथा–

१. गोस्तूप, २. उदकावभास,
३. शंख, ४. दकसीम।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्धिक देव रहते हैं, यथा–

१. गोस्तूप, २. शिवक,
३. शंख, ४. मनःशिलाक।

पृ. ३५०

ओहेण अणुवेलंधर णागरायाणं आवास पव्वयाणं परूवणं–

सूत्र ६६५ (ख)

जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बाहिरिल्लाओ वेइयंताओ चउसु विदिसासु लवणसमुद्दं बायालीसं बायालीसं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता, एत्थ णं चउण्हं अणुवेलंधर णागराईणं चत्तारि आवासपव्वया पण्णत्ता, तं जहा–

१. कक्कोडए, २. विज्जुप्पभे,
३. केलासे, ४. अरूणप्पभे।

तत्थं णं चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव पलिओवमट्ठिईया परिवसंति, तं जहा–

१. कक्कोडए, २. कद्दमए,
३. केलासे, ४. अरूणप्पभे।

–ठाणं. अ. ४, सु. ३०२

सामान्यतः अनुवेलंधर नागराजों के आवास पर्वतों का प्ररूपण–

जम्बूद्वीप द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्तिम भाग से चारों विदिशाओं में लवण समुद्र में बयालीस-बयालीस हजार योजन जाने पर अनुवेलंधर नागराजों के चार आवास पर्वत कहे गए हैं, यथा–

१. कर्कोटक, २. विद्युत्प्रभ,
३. कैलाश, ४. अरुणप्रभ।

उनमें पल्योपम की स्थिति वाले चार महर्द्धिक देव रहते हैं, यथा–

१. कर्कोटक, २. कर्दमक,
३. कैलाश, ४. अरुणप्रभ।

पृ. ३५२

महापायालाणं रयणप्पभा पुढवीए अंतरं परूवणं–

सूत्र ६७४ (ख)

वलयामुहस्स णं पायालस्स हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ इमीसेणं रयणप्पभाए पुढवीए हेठिल्ले चरिमंते, एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

एवं केउस्स वि, जूयस्स वि, ईसरस्स वि।

–सम. सम. ७९, सु. १-२

महापाताल कलशों का रत्नप्रभा पृथ्वी से अंतर का प्ररुपण–

वलयामुख पातालकलश के नीचे के चरमान्त से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त का अबाधा अन्तर उन्यासी हजार योजन का कहा गया है।

इसी प्रकार केतु, यूपक और ईश्वर नामक महापाताल कलशों से भी अंतर जानना चाहिए।

पृ. ३६१

धायइसंडदीवे खेत्ताइ संखा परूवणं–

सूत्र ७०२ (ख)

धायसंडे णं दीवे–

दो भरहाइं, दो एरवयाइं, दो हेमवयाइं, दो हेरण्णवयाइं, दो हरिवासाइं, दो रम्मगवासाइं, दो पुव्वविदेहाइं, दो अवरविदेहाइं, दो देवकुराओ, दो देवकुरूमहद्दुमा, दो देवकुरूमहद्दुमवासी देवा, दो उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरूमहद्दुमा, दो उत्तरकुरूमहद्दुमवासी देवा।

–ठाणं. अ. २, सु. १००

धातकीखण्ड द्वीप में क्षेत्रादि की संख्या का प्ररूपण–

धातकीखण्ड द्वीप में–

भरत, ऐरवत, हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यक्वर्ष, पूर्वविदेह, अपरविदेह, देवकुरू, देवकुरूमहाद्रुम, देवकुरूमहाद्रुमवासी देव, उत्तरकुरू, उत्तरकुरूमहाद्रुम, उत्तरकुरूमहाद्रुमवासी देव दो-दो कहे गए हैं।

पृ. ३७४

मंडलिय पव्वया णं नामाणि–

सूत्र ७५१ (ख)

तओ मंडलिया पव्वया पण्णत्ता, तं जहा–

१. माणसुत्तरे, २. कुंडलवरे, ३. रूयगवरे।

–ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २०५

मांडलिक पर्वतों के नाम–

मांडलिक पर्वत तीन कहे गए हैं, यथा–

१. मानुषोत्तर, २. कुण्डलवर, ३. रूचकवर।

पृ. ३७५

माणुसुत्तर पव्वयस्स बाहिरं चंदसूराणं अवट्ठिय जोग परूवणं–

सूत्र ७५३ (ख)

बहियाओ मणुस्सनगस्स चंदसूराणं अवट्ठिया जोगा।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चन्द्र सूर्यो के अवस्थित योग का प्ररूपण–

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चन्द्र व सूर्य अवस्थित योग वाले हैं।

चंदा अभीइजुत्ता सूरा पुण होंति पुस्सेहिं।[1] ॥३२॥

—जीवा. पडि. ३, सु. १७७

चन्द्र अभिजित्नक्षत्र से और सूर्य पुष्यनक्षत्र से युक्त रहते हैं।

पृ. ४१४

रूयगवर-कुंडलवरपव्वयाणं उव्वेहाइ परूवणं—

रूचकवर और कुण्डलवर पर्वतों के उद्वेध आदि का प्ररूपण—

सूत्र ८४७ (ख)

रूयगवरे णं पव्वए दस जोयणसयाइं उव्वेहेणं,

मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं,

उवरिं दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

एवं कुंडलवरे वि। —ठाणं. अ. १०, सु. ७२५

रुचकवर पर्वत की गहराई एक हजार योजन की है।

मूल भाग में उसकी चौड़ाई दस हजार योजन की है।

ऊपर के भाग की चौड़ाई एक हजार योजन की कही गई है।

कुण्डलवर पर्वत का कथन रूचकवर पर्वत के समान जानना चाहिए।

पृ. ४१६

वहुमच्छकच्छभाइण्णं समुद्दाणणामाणि—

मच्छ-कच्छभ आदि बहुल समुद्रों के नाम—

सूत्र ८९४ (ख)

प. कइ णं भंते ! समुद्दा वहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! तओ समुद्दा वहुमच्छकच्छभाइण्णा पण्णता, तं जहा—

१. लवणे, २. कालोए, ३. सयंभूरमणे[2]।

अवसेसा समुद्दा अप्पमच्छकच्छभाइण्णा पण्णत्ता समणाउसो!

—जीवा. पडि. ३, सु. १८७

प्र. भंते ! कौन से समुद्र वहुत मत्स्य-कच्छपों से व्याप्त कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! तीन समुद्र वहुत मत्स्य-कच्छपों से व्याप्त कहे गए हैं, यथा—

१. लवण, २. कालोद, ३. स्वयंभूरमण समुद्र।

हे आयुष्मन् श्रमण ! शेष सब समुद्र अल्प मत्स्य-कच्छपों वाले कहे गए हैं।।

पृ. ४१९

दीवंत सागरंताणं फुसणा परूवणं—

द्वीप सागरांत की स्पर्शना का परूपण—

सूत्र.९०४ (ख)

प. दीवंते भंते ! सागरंतं फुसइ ? सागरंते वि दीवंतं फुसइ ?

उ. हंता, गोयमा ! दीवंते सागरंतं फुसइ, सागरंते वि दिवंतं फुसइ जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ।

एवं एएणं अभिलावेणं उदयंते, पोदंते, दूसंतं, छायंते, आतवंतं जाव नियमा छद्दिसिं फुसइ।

—विया. स. १, उ. ६, सु. ५-६

प्र. भंते ! क्या द्वीप का अन्त (किनारा) समुद्र के अन्त को स्पर्श करता है और समुद्र का अन्त क्या द्वीप के अन्त को स्पर्श करता है ?

उ. हाँ, गौतम ! द्वीप का अन्त समुद्र के अंत को और समुद्र का अन्त द्वीप के अन्त को यावत् नियम से छहों दिशाओं को स्पर्श करता है।

इसी प्रकार इसी अभिलाप से पानी का किनारा पोत (नोका) के किनारे को और पोत का किनारा पानी के किनारे को, छेद का किनारा वस्त्र के किनारे को और वस्त्र का किनारा छेद के किनारे को, छाया का अन्त आतप (धूप) के अन्त को और आतप का अन्त छाया के अन्त को यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं को स्पर्श करता है।

ज्योतिष्क निरूपण

पृ. ४२८

जोइसिय देवाणं वण्णगदार गाहाओ—

ज्योतिष्क देवों की वर्णक द्वार गाथाएँ—

सूत्र ९२५ (ख)

१. हिट्ठिं.

१. अधस्तन-निचले, मध्य और ऊपरी क्षेत्र में स्थित तारा विमानों के देव,

---

१. सूरिय. पा. १९, सु. १००

२. ठाणं अ. ३, सु. १५९

२. ससि-परिवारो,
३. मन्दर बाहा तहेव,
४. लोगंते,
५. धरणितलाओ अबाधा,
६. अंतो वाहिं च उद्धमुहे,
७. संठाणं च,
८. पमाणं,
९. वहंति,
१०. सीहगई,
११. इद्धिमन्ता य,
१२. तारंतर
१३. अग्गमहिसी तुडिअ,
१४. पहु,
१५. ठिईअ,
१६. अप्पबहू। —जंबू. वक्ख. ७, सु. १९६

२. चन्द्र परिवार,
३. मेरु से ज्योतिष्चक्र के अन्तर,
४. लोकान्त से ज्योतिष्चक्र के अन्तर,
५. भूतल से ज्योतिष्चक्र के अन्तर,
६. नक्षत्रों के अन्दर बाहर ऊर्ध्वमुखादि चलने,
७. ज्योतिष्क देवों के विमानों के संस्थान,
८. ज्योतिष्क देवों की संख्या,
९. चन्द्र आदि के वाहक देवों की संख्या,
१०. ज्योतिष्क देवों की शीघ्र मंद गति,
११. देवों की ऋद्धि,
१२. ताराओं का पारस्परिक अन्तर,
१३. ज्योतिष्क देवों की अग्रमहिषियाँ,
१४. देवियों के साथ भोग भोगने का सामर्थ्य,
१५. ज्योतिष्क देवों की स्थिति,
१६. ज्योतिष्क देवों का अल्पबहुत्व।

पृ. ४३१

जोइसिय विमाणाणं संखाइ परूवणं—

सूत्र ९२८ (ख)

प. केवइया णं भंते ! जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! असंखेज्जा जोइसियविमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।
प. ते णं भंते ! किं मया पण्णत्ता ?
उ. गोयमा ! सव्वफालिहामया अच्छा, सेसं तं चेव। —विया. स. १९, उ. ७, सु. ६-७

ज्योतिष्क विमानों की संख्यादि का प्ररूपण—

प्र. भंते ! ज्योतिष्क देवों के विमानावास कितने लाख कहे गए हैं ?
उ. गौतम ! ज्योतिष्क देवों के विमानावास असंख्यात लाख कहे गए हैं।
प्र. भंते ! वे विमानावास किस वस्तु से निर्मित हैं ?
उ. गौतम ! वे विमानावास सर्वस्फटिकरत्नमय हैं और स्वच्छ हैं, शेष सब वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।

पृ. ४३४

लवणसमुद्दे नक्खत्ताणं गहाण य संखा परूवणं—

सूत्र ९३२ (ख)

लवणे णं समुद्दे चत्तारि कत्तियाओ जाव चत्तारि भरणीओ।

चत्तारि अग्गी जाव चत्तारि जमा।

चत्तारि अंगारा जाव चत्तारि भावकेऊ। —ठाणं अ. ४, उ. २, सु. ३०३

लवण समुद्र में नक्षत्रों और ग्रहों की संख्या का प्ररूपण—

लवण समुद्र में कृत्तिका से भरणी पर्यन्त चार-चार नक्षत्रों ने, चन्द्रमा के साथ योग किया था, करते हैं और करेंगे।

इन नक्षत्रों के अग्नि यावत् यम ये चार-चार देव हैं।

अंगार से भावकेतु पर्यन्त के सभी ग्रहों ने चार किया था, करते हैं और करेंगे।

पृ. ४३९

समयखेत्ते जोइसियाणं परूवणस्स उवसंहारो—

सूत्र ९३८ (ख)

एसो तारापिंडो सव्वसमासेणं मणुयलोगम्मि।
वहिया पुण ताराओ जिणेहिं भणिया असंखेज्जा ॥१॥

एवइयं तारग्गं जं भणियं माणुसम्मि लोगम्मि।
चारं कलुंबयापुप्फसंठिय जोइसं चरइ[1] ॥२॥
—जीवा. पडि. ३, सु. १७७

समय क्षेत्र में ज्योतिष्कों के प्ररूपण का उपसंहार—

इस प्रकार मनुष्यलोक में तारापिण्ड पूर्वोक्त संख्याप्रमाण हैं।

मनुष्यलोक के बाहर तारापिण्डों का प्रमाण जिनेश्वर देवों ने असंख्यात कहा है।

मनुष्यलोक में जो पूर्वोक्त तारागणों का प्रमाम कहा गया है वे गति स्थान वाले होने से गतिशील हैं और कदम्ब के फूल के आकार के समान हैं।

१. सूरिय. पा. १९, सु. १००

पृ. ५५७

उत्तरायणगय सूरस्स मंडलांतर गई परूवणं–

सूत्र ५५६ (ख)

उत्तरायणगए णं सूरिए चउवीसंगुलियं पोरिसिछायं णिव्वत्तइत्ता णं णियट्टइत्ति। –सम. सम. २४, सु. ५

उत्तरायणगत सूर्य की मंडलांतर गति का प्ररूपण–

उत्तरायण में गया हुआ सूर्य चौवीस अंगुल वाली पौरुषी छाया करके कर्क संक्रांति के दिन सर्वाभ्यंतर मंडल से दूसरे मंडल में जाता है।

पृ. ५६२

चंद सूराणं परोप्परं अंतराई परूवणं–

सूत्र ५६ (ख)

चंदाओ सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ।
पन्नास सहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं ॥२७॥

सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतरं होइ।
वहियाओ मणुस्सनगस्स जोयणाणं सयसहस्सं ॥२८॥

सूरंतरिया चंदा चंदंतरिया य दिणयरा दित्ता।
चित्तंतरलेसागा सुहलेसा मंदलेसा य[1] ॥२९॥

–जीवा. पडि. ३, सु. ११७

चन्द्र और सूर्य का परस्पर अंतर आदि का प्ररूपण–

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चन्द्र से सूर्य का और सूर्य से चन्द्र का अन्तर पचास-पचास हजार योजन का है।

तथा सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चन्द्र का अन्तर एक लाख योजन का है।

चन्द्र का प्रकाश सूर्य से और सूर्य का प्रकाश चन्द्र से अंतरित होता है। इसलिए परस्पर प्रकाश को अंतरित होने से चन्द्र सूर्य की प्रभा सुहावनी व सुखरूप लगती है।

पृ. ५६८

चंद सूराणं तावक्खेत्तस्स वुड्ढिहाणी हेऊ परूवणं–

सूत्र ६१ (ख)

तेसिं पविसंताणं तावक्खेत्तं तु वड्ढए नियमा।
तेणेव कमेण पुणो परिहायई निक्खमंताणं ॥१४॥

–जीवा. पडि. ३, सु. १७७(३)

चन्द्र सूर्यों के तापक्षेत्र की वृद्धि हानि के हेतु का प्ररूपणं–

सर्वबाह्यमण्डल से आभ्यन्तरमण्डल में प्रवेश करते हुए सूर्य और चन्द्रमा का तापक्षेत्र प्रतिदिन नियमतः आयाम की अपेक्षा बढ़ता जाता है और जिस क्रम से वह बढ़ता है उसी क्रम से सर्वाभ्यन्तरमण्डल से बाहर निकलने वाले सूर्य और चन्द्रमा का तापक्षेत्र क्रमशः घटता जाता है।

पृ. ५७९

जंबुद्दीवस्स सूराणं सूरदीवाणं परूवणं–

सूत्र ६८ (ख)

प. कहि णं भंते ! जंबुद्दीवगाणं सूराणं सूरदीवा णामं दीवा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दं वारसजोयणसहस्साइं ओगाहित्ता।

तं चेव उच्चत्तं, आयामविक्खंभेणं, परिक्खेवो, वेदिया, वनसंडो, भूमिभागा जाव आसयंति, पासायवडेंसगाणं तं चेव पमाणं मणिपेढिया सीहासणा सपरिवारा।

अट्ठो उप्पलाइं सूरप्पभाइं सूरा एत्थ देवा जाव रायहाणीओ सगाणं दीवाणं पच्चत्थिमेणं अण्णम्मि जंबुद्दीवे दीवे।

जम्बूद्वीप के सूर्यों के सूर्य द्वीपों का प्ररूपण–

प्र. भंते ! जम्बूद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप नामक द्वीप कहाँ कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के पश्चिम में लवणसमुद्र में बारह हजार योजन आगे जाने पर जम्बूद्वीप के सूर्यों के सूर्यद्वीप हैं।

उनका उच्चत्व, आयाम-विष्कंभ, परिधि, वेदिका, वनखंड, भूमिभाग यावत् देव देवियों का बैठना-उठना, प्रसादावतंसक, उनका प्रमाण, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन आदि का वर्णन चन्द्रद्वीप की तरह कहना चाहिए।

(भंते ! सूर्यद्वीप क्यों कहलाते हैं) (गौतम !) उन द्वीपों की बावड़ियों आदि में सूर्य के समान वर्ण और आकृति वाले बहुत सारे उत्पल आदि कमल हैं, इसलिए वे सूर्यद्वीप कहलाते हैं यावत् इनकी राजधानियाँ अपने-अपने द्वीपों से पश्चिम में अन्य जम्बूद्वीप में हैं।

---

१. सूरिय. पा. १९, सु. १००

सेसं तं चेव जाव सूरा देवा। —जीवा. पडि. ३, सु. १६२

शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

वहाँ सूर्य नामक महर्धिक देव रहते हैं पर्यन्त जानना चाहिए।

पृ. ५९७

णक्खत्ताणं वण्णगदार गाहा—

सुत्र ८८ (क)

१. जोगो,
२. देवय,
३. तारग्ग,
४. गोत्त,
५. संठाण,
६. चंद-रवि-जोगा।
७. कुल,
८. पुण्णिम अवमंसा य,
९. सण्णिवाए,
१०. अणेता य॥१॥ —जंबू. वक्ख. ७, सु. १८८

नक्षत्रों की वर्णक द्वार गाथा—

१. योग—अट्ठाईस नक्षत्रों में कौन-सा नक्षत्र चन्द्रमा के साथ दक्षिणयोगी है, कौन-सा नक्षत्र उत्तरयोगी है इत्यादि दिशायोग,
२. देवता—नक्षत्रों का देवता,
३. ताराग्र—नक्षत्रों का तारा परिमाण,
४. गोत्र—नक्षत्रों के गोत्र,
५. संस्थान—नक्षत्रों के आकार,
६. चन्द्र-रवि-योग—नक्षत्रों का चन्द्रमा और सूर्य के साथ योग,
७. कुल—कुलसंज्ञक, उपकुलसंज्ञक तथा कुलोपकुलसंज्ञक नक्षत्रों के नाम,
८. पूर्णिमा-अमावस्या—पूर्णिमाओं और अमावस्याओं की संख्या,
९. सन्निपात—पूर्णिमाओं तथा अमावस्याओं की अपेक्षा से नक्षत्रों का संबंध,
१०. नेता—मास समापक नक्षत्रों के नाम इन सबका यहाँ वर्णन है।

पृ. ६५४

तारारूवाणं चलण हेऊ—

सुत्र १२८ (ख)

तिहिं ठाणेहिं तारारूवे चलेज्जा, तं जहा—

१. विकुव्वमाणे वा, २. परियारेमाणे वा,
३. ठाणाओ वा ठाणं संकममाणे-तारारूवे चलेज्जा। —ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४९

तारा रूपों के चलित होने के हेतु—

तीन कारणों से तारे चलित होते हैं, यथा—

१. वैक्रिय रूप करते हुए, २. परिचारणा करते हुए,
३. एक स्थान से दूसरे स्थान में संक्रमण करते हुए तारे चलित होते हैं।

ऊर्ध्वलोक

पृ. ६५७

उड्ढलोय खेत्ताणुपुव्विस्स परूवणं—

सुत्र ५ (ग)

[illegible]णुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

उ. पुव्वाणुपुव्वी—१. सोहम्मे, २. ईसाणे, ३. सणंकुमारे, ४. [illegible], ५. बंभलोए, ६. लंतए, ७. महासुक्के, ८. सहस्सारे, [illegible], १०. पाणए, ११. आरणे, १२. अच्चुए, १३. [illegible], १४. अणुत्तरविमाणा, १५. ईसिपब्भारा।

[illegible] पुव्वाणुपुव्वी।

ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी का परूपण—

ऊर्ध्वलोक क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा—

१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. ऊर्ध्वलोक क्षेत्रपूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उ. ऊर्ध्वलोक क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है—

१. सौधर्म, २. ईशान, ३. सनत्कुमार, ४. माहेन्द्र, ५. ब्रह्मलोक, ६. लान्तक, ७. महाशुक्र, ८. सहस्रार, ९. आनत, १०. प्राणत, ११. आरण, १२. अच्युत, १३. ग्रैवेयकविमान, १४. अनुत्तरविमान, १५. ईषत्-प्राग्भारापृथ्वी।

इस क्रम से ऊर्ध्वलोक के क्षेत्रों का कथन करने को ऊर्ध्वलोक क्षेत्र पूर्वानुपूर्वी कहते हैं।

प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी ईसिपब्भारा जाव सोहम्मेकप्पे।
से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

उ. अणाणुपुव्वी एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए पण्णरसगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी। —अणु. सु. १७२-१७५

प्र. ऊर्ध्वलोक क्षेत्र पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. ईषत्प्राग्भारापृथ्वी से सौधर्म कल्प तक के क्षेत्रों का व्युत्क्रम से कथन करने को ऊर्ध्वलोक क्षेत्र पश्चानुपूर्वी कहते हैं।

प्र. ऊर्ध्वलोक क्षेत्र अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. आदि में एक रखकर एकोत्तरवृद्धि द्वारा निर्मित पन्द्रह पर्यन्त की श्रेणी में परस्पर गुणा करने पर प्राप्त राशि में से आदि और अंत के दो भंगों को कम करने पर शेष भंगों को ऊर्ध्वलोक क्षेत्र अनानुपूर्वी कहते हैं।

पृ. ६५८

वेमाणिय विमाणाणं संखाइ परूवणं—

सूत्र ६ (ख)

प. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवइया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

प. ते णं भंते ! किं मया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! सव्वरयणामया अच्छा, सेसं तं चेव।

एवं जाव अणुत्तरविमाणा।

णवरं—जाणियव्वा जत्तिया भवणा विमाणा वा।
—विया स. १९, उ. ७, सु. ८-१०

वैमानिक विमानों की संख्या आदि का प्ररूपण—

प्र. भंते ! सौधर्म कल्प में कितने लाख विमानावास कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उसमें बत्तीस लाख विमानावास कहे गए हैं।

प्र. भंते ! वे विमानावास किस वस्तु से निर्मित हैं ?

उ. गौतम ! वे सर्वरत्नमय हैं और स्वच्छ हैं, शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए।

इसी प्रकार (सौधर्म कल्प से) अनुत्तरविमान पर्यन्त कहना चाहिए।

विशेष—जहाँ जितने भवन या विमान हों उतने कहने चाहिए।

पृ. ६५९

कप्पोववन्नग वेमाणिय देवाणं इंदा—

सूत्र ७ (ख)

सोहम्मीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सक्के चेव, २. ईसाणे चेव।

सणंकुमार माहिंदेसु कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सणंकुमारे चेव, २. माहिंदे चेव।

बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—

१. बंभे चेव, २. लंतए चेव।

महासुक्क-सहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—

१. महासुक्के चेव, २. सहस्सारे चेव।

आणय-पाणय आरण-अच्चुएसु णं कप्पेसु दो इंदा पण्णत्ता, तं जहा—

१. पाणए चेव, २. अच्चुए चेव। —ठाणं अ. २, सु. १०४

कल्पोपपन्नक वैमानिक देवों के इन्द्र—

सौधर्म और ईशान कल्प के दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा—

१. शक्र, २. ईशान।

सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प के दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा—

१. सनत्कुमार, २. माहेन्द्र।

ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा—

१. ब्रह्म २. लान्तक।

महाशुक्र और सहस्रार कल्प के दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा—

१. महाशुक्र, २. सहस्रार।

आनत और प्राणत तथा आरण और अच्युत कल्प के दो इन्द्र कहे गए हैं, यथा—

१. प्राणत, २. अच्युत।

पृ. ६६०

सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए जिणसकहाओ अवट्ठिइ—

सूत्र ८ (ख)

सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए माणवए चेइयखंभे हेट्ठा उवरिं च अद्धतेरस जोयणाणि वज्जेत्ता मज्झे पणतीसं जोयणेसु वइरामएसु गोलवट्ट समुग्गएसु जिणसकहाओ पण्णत्ताओ। —सम. सम. ३५

सौधर्म कल्प की सुधर्मा सभा में जिनअस्थियों की अवस्थिति—

सौधर्म कल्प की सुधर्मा सभा में माणवक नामक चैत्यस्तंभ के नीचे और ऊपर के साढ़े बारह-साढ़े बारह योजन क्षेत्र को छोड़कर मध्य के पैंतीस योजन में वज्रमय गोलवृत्त वर्तुलाकार डिब्बों में जिनेश्वर देवों की अस्थियाँ कही गई हैं।

पृ. ६६९

सोहम्मीसाणाई कप्पाणं अहे गेहाईणं अभावं बलाहयाईण भाव य परूवणं–

सूत्र २८ (ख)

प. अत्थि णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे गेहा इ वा, गेहावणा इ वा ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प. अत्थि णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे उराला बलाहया ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

देवो पकरेइ, असुरो वि पकरेइ, नो नाओ पकरेइ।

एवं थणियसद्दे वि।

प. अत्थि णं भंते ! सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं अहे वायरे पुढविकाइए, वायरे अगणिकाए ?

उ. गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे, नऽन्नत्थ विग्गहगइसमावन्नएणं।

प. अत्थि णं भंते ! चंदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. अत्थि णं भंते ! गामाइ वा जाव सण्णिवेसाइ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. अत्थि णं भंते ! चंदाभा इ वा, सूराभा इ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

एवं सणंकुमार माहिंदेसु,

णवरं–देवो एगो पकरेइ।

एवं बंभलोए वि।

एवं बंभलोगस्स उवरिं सव्वेहिं देवो पकरेइ।

पुच्छियव्वे य वायरे आउकाए, वायरे तेउकाए, वायरे वणस्सइकाइए।

अन्नं तं चेव।

गाहा–तमुकाए कप्पपणए अगणी पुढवी य, अगणि पुढवीसु।
आऊ तेउ वणस्सइ कप्पुवरिम कण्हराईसु॥

–विया. स. ६, उ. ८, सु. १५-२६

सौधर्म-ईशानादि कल्पों के नीचे गृहादिकों का अभाव बलाहकादिकों के भाव का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या सौधर्म और ईशान कल्पों के नीचे गृह या गृहापण हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या सौधर्म और ईशान देवलोकों के नीचे उदार बलाहक (महामेघ) हैं ?

उ. हाँ, गौतम ! (वहाँ महामेघ हैं)।

(सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे पूर्वोक्त ये कार्य बादलों का छाना, मेघ उमड़ना, वर्षा बरसाना आदि) देव करते हैं, असुर भी करते हैं, किन्तु नागकुमार नहीं करते।

इसी प्रकार वहाँ स्तनित शब्द के लिए भी कहना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या सौधर्म और ईशान देवलोक के नीचे बादर पृथ्वीकायिक और बादर अग्निकाय हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, यह निषेध विग्रहगति समापन्नक जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए जानना चाहिए।

प्र. भंते ! क्या वहाँ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या वहाँ ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! क्या वहाँ चन्द्रप्रभा और सूर्यप्रभा है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकों के लिए भी कहना चाहिए।

विशेष–वहाँ (यह सब) सिर्फ देव ही करते हैं।

इसी प्रकार ब्रह्मलोक (पंचम देवलोक) में भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार ब्रह्मलोक से ऊपर के सभी देवलोकों में पूर्वोक्त कथन करना चाहिए और (यह सब) सिर्फ देव ही करते हैं।

इसी प्रकार बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय के लिए प्रश्न करने चाहिए तथा

पूर्ववत् सब कथन करना चाहिए।

गाथार्थ–तमस्काय और पाँच देवलोकों में अग्निकाय और पृथ्वीकाय के सम्बन्ध में रत्नप्रभा आदि नरकपृथ्वियों में अग्निकाय के सम्बन्ध में पाँचवें देवलोक से ऊपर सब स्थानों में तथा कृष्णराजियों में अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय के सम्बन्ध में प्रश्न करने चाहिए।

पृ. [illegible]

सोत्थियाइ वेमाणिय देव विमाणाणं आयाम-विक्खंभ महालयत्त य परूवणं–

सूत्र [illegible]

प. [illegible] विमाणाइं सोत्थियाणि, सोत्थियावत्ताइं, [illegible], सोत्थियकन्ताइं, सोत्थियवन्नाइं,

स्वस्तिक आदि वैमानिक देव विमानों के आयाम-विष्कंभ और विशालता का प्ररूपण–

प्र. भंते ! क्या स्वस्तिक, स्वस्तिकावर्त, स्वस्तिकप्रभ, स्वस्तिककान्त, स्वस्तिकवर्ण, स्वस्तिकलेश्य,

सोत्थियलेसाइं, सोत्थियज्झयाइं, सोत्थियसिंगाराइं, सोत्थियकूडाइं, सोत्थियसिट्ठाइं सोत्थियउत्तरवडिंसगाइं?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. ते णं भंते ! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जावइए णं सूरिए उदेइ जावइएणं य सूरिए अत्थमइ एवइया तिण्णोवासंतराइं अत्थेगइयस्स देवस्स एक्के विक्कमे सिंया। से- णं देवे ताए उक्किट्ठाए तुरियाए जाव दिव्वाए देवगइए वीइवयमाणे वीइवयमाणे जाव एगाहं वा दुयाहं वा उक्कोसेणं छम्मासा वीइवएज्जा, अत्थेगइया विमाणं वीइवएज्जा, अत्थेगइया विमाणं नो वीइवएज्जा, एमहालया णं गोयमा ! ते विमाणा पण्णत्ता।

प. अत्थि णं भंते ! विमाणाइं अच्चीणि अच्चिरावत्ताइं तहेव जाव अच्चुत्तरवडिंसगाइं?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

प. ते णं भंते ! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! एवं जहा सोत्थियाईणि।

णवरं–एवइयाइं पंच उवासंतराइं अत्थेगइयस्स देवस्स एगे विक्कमे सिया।

सेसं तं चेव।

प. अत्थि णं भंते ! विमाणाइं कामाइं कामावत्ताइं जाव कामुत्तरवडिंसगाइं?

उ. हंता, अत्थि।

प. ते णं भंते ! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जहा सोत्थियाईणि।

णवरं–सत्त उवासंतराइं विक्कमे।

सेसं तहेव।

प. अत्थि णं भंते ! विमाणाइं विजयाइं वेजयंताइं जयंताइं अपराजियाइं?

उ. हंता, अत्थि।

प. ते णं भंते ! विमाणा केमहालया पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! जावइए सूरिए उदेह एवइयाइं नव ओवासंतराइं,

सेसं तं चेव, जाव नो चेव णं ते विमाणे वीइवएज्जा एमहालयाणं विमाणा पण्णत्ता, समणाउसो !

–जीवा. पडि. ३, सु. ९९

स्वस्तिकध्वज, स्वस्तिकशृंगार, स्वस्तिककूट, स्वस्तिकशिष्ट और स्वस्तिकोत्तरावतंसक नाम वाले विमान हैं?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! वे विमान कितने बड़े कहे गए हैं?

उ. गौतम ! जितनी दूरी से सूर्य उदित होता हुआ अस्त होता हुआ दिखाई देता है उतना एक अवकाशान्तर है ऐसे तीन अवकाशान्तरप्रमाण क्षेत्र किसी देव का एक विक्रम (पदन्यास) हो और वह देव उस उत्कृष्ट, त्वरित यावत् दिव्य देवगति से चलता हुआ यावत् एक दिन, दो दिन उत्कृष्ट छह मास तक चलता जाए तो किसी विमान का तो पार पा सकता है और किसी विमान का पार नहीं पा सकता है। हे गौतम ! इतने बड़े वे विमान कहे गये हैं।

प्र. भंते ! क्या अर्चि, अर्चिरावर्त यावत् अर्चिरूत्तरावतंसक नाम वाले विमान हैं?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! वे विमान कितने बड़े कहे गये हैं?

उ. गौतम ! जैसा कथन स्वस्तिक आदि विमानों का किया है वैसा ही यहाँ करना चाहिए।

विशेष–यहाँ पाँच अवकाशान्तर प्रमाण-क्षेत्र किसी देव का एक पदन्यास (एक विक्रम) कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! क्या काम, कामावर्त यावत् कामोत्तरावतंसक नाम वाले विमान हैं?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! वे विमान कितने बड़े कहे गए हैं?

उ. गौतम ! जैसा कथन स्वस्तिकादि विमानों का किया है वैसा ही यहाँ करना चाहिए।

विशेष–यहाँ वैसे सात अवकाशान्तर प्रमाण-क्षेत्र किसी देव का विक्रम (पदन्यास) कहना चाहिए।

शेष सब कथन पूर्ववत् है।

प्र. भंते ! क्या विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नाम के विमान हैं?

उ. हाँ, गौतम ! हैं।

प्र. भंते ! वे विमान कितने बड़े कहे गए हैं?

उ. गौतम ! जितनी दूरी से सूर्य दिखाई देता है इत्यादि एक अवकाशान्तर की तरह नौ अवकाशान्तर प्रमाण क्षेत्र किसी एक देव का एक पदन्यास कहना चाहिए।

शेष कथन पूर्ववत् है यावत् किन्हीं विमानों के पार नहीं पहुँच सकता है। हे आयुष्मन् श्रमण ! इतने बड़े विमान कहे गये हैं।

काल लोक

पृ. ६९१

कालाणुपुव्विस्स भेयप्पभेया–

सूत्र १ (ख)

प. से किं तं कालाणुपुव्वी?

कालानुपूर्वी के भेद-प्रभेद–

प्र. कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उ. कालाणुपुव्वी दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. ओवणिहिया य, २. अणोवणिहिया य।
तत्थ णं जा सा ओवणिहिया सा ठप्पा।
तत्थ णं जा सा अणोवणिहिया सा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. णेगम-ववहाराणं, २. संगहस्स य।
–अणु. सु. १८०-१८२

उ. कालानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. औपनिधिकी, २. अनौपनिधिकी।
इनमें से औपनिधिकी कालानुपूर्वी अविवेचनीय है।
अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी दो प्रकार की कही गई है, यथा–
१. नैगम-व्यवहारनयसम्मत, २. संग्रहनयसम्मत।

णेगम-ववहारनय सम्मया अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी–

नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी–

सूत्र १ (ग)

प. से किं तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी ?

उ. णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी-पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. अट्ठपयपरूवणया, २. भंगसमुक्कित्तणया,
३. भंगोवदंसणया, ४. समोयारे,
५. अणुगमे।

प. से किं तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया ?

उ. णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया–
तिसमयट्ठिईए आणुपुव्वी जाव दससमयट्ठिईए आणुपुव्वी, संखेज्जसमयट्ठिईए आणुपुव्वी,
असंखेज्जसमयट्ठिईए आणुपुव्वी,
एगसमयट्ठिईए अणाणुपुव्वी,
दुसमयट्ठिईए अवत्तव्वए,
तिसमयट्ठिईयाओ आणुपुव्वीओ जाव असंखेज्जसमयट्ठिईयाओ आणुपुव्वीओ।
एगसमयट्ठिईयाओ अणाणुपुव्वीओ,
दुसमयट्ठिईयाइं अवत्तव्वयाइं।
से तं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणया।

प. एयाए णं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए किं पओयणं ?

उ. एयाए णं णेगम-ववहाराणं अट्ठपयपरूवणयाए भंगसमुक्कित्तणया कज्जइ।

प. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया ?

उ. णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया–
अत्थि आणुपुव्वी, अत्थि अणाणुपुव्वी, अत्थि अवत्तव्वए।
एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं कानागुपुव्वीए वि ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा।
से तं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणया।

प. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए किं पओयणं ?

उ. एयाए णं णेगम-ववहाराणं भंगसमुक्कित्तणयाए भंगोवदंसणया कज्जइ।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पाँच प्रकार की कही गई है, यथा–
१. अर्थपदप्ररूपणता, २. भंगसमुत्कीर्तनता,
३. भंगोपदर्शनता, ४. समवतार,
५. अनुगम।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप इस प्रकार है–
तीन समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है यावत् दस समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है, संख्यात समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है,
असंख्यात समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है,
एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी है,
दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्य है,
तीन समय की स्थिति वाले द्रव्य आनुपूर्वी हैं यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्य आनुपूर्वी हैं,
एक समय की स्थिति वाले द्रव्य अनानुपूर्वी हैं,
दो समय की स्थिति वाले द्रव्य अवक्तव्य हैं,
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का स्वरूप है।

प्र. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपण का क्या प्रयोजन है ?

उ. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपण के द्वारा भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है।

प्र. नैगम-व्यहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या स्वरूप है ?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप इस प्रकार है–
आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्य है।
इसी प्रकार द्रव्यानुपूर्वीवत् कालानुपूर्वी के भी २६ भंग जानना चाहिए।
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का स्वरूप है।

प्र. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ?

उ. इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता से भंगोपदर्शनता की जाती है।

प. से किं तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया?

उ. णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया–

१. तिसमयट्ठिईए आणुपुव्वी,

२. एगसमयट्ठिईए अणाणुपुव्वी,

३. दुसमयट्ठिईए अवत्तव्वए,

४. तिसमयट्ठिईयाओ आणुपुव्वीओ,

५. एगसमयट्ठिईयाओ अणाणुपुव्वीओ,

६. दुसमयट्ठिईयाइं अवत्तव्वयाइं।

एवं दव्वाणुपुव्वीगमेणं ते चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा।

से तं णेगम-ववहाराणं भंगोवदंसणया।

प. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कहिं समोयरंति?

उ. तिण्णि वि सट्ठाणे-सट्ठाणे समोयरंति त्ति भाणियव्वं।

से तं समोयारे।

प. से किं तं अणुगमे?

उ. अणुगमे-णवविहे पण्णत्ते, तं जहा–

१. संतपयपरूवणया, २. दव्वपमाणं, ३. च खेत्त, ४. फुसणा य, ५. कालो, ६. य अंतरं, ७. भाग, ८. भाव, ९. अप्पावहुं चेव ॥१०॥

प. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं किं अत्थि णत्थि?

उ. नियमा तिण्णि वि अत्थि।

प. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं किं संखेज्जाइं असंखेज्जाइं अणंताइं?

उ. तिण्णि वि नो संखेज्जाइं, असंखेज्जाइं, नो अणंताइं।

प. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं लोगस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा, संखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, सव्वलोए होज्जा?

उ. एगदव्वं पडुच्च लोगस्स संखेज्जइभागे वा होज्जा, असंखेज्जइभागे वा होज्जा, संखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु वा भागेसु होज्जा, देसूणे वा लोए होज्जा।

नाणादव्वाइं पडुच्च नियमा सव्वलोए होज्जा।

एवं अणाणुपुव्वी अवत्तव्वयदव्वाणि भाणियव्वाणि जहा णेगम ववहाराणं खेत्ताणुपुव्वीए एवं फुसणा वि भाणियव्वा।

प. १. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवचिरं होइ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च-जहण्णेणं तिण्णि समया, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

प. २. णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्वीदव्वाइं कालओ केवचिरं होइ?

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता का क्या स्वरूप है?

उ. नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता का स्वरूप इस प्रकार है–

१. तीन समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है,

२. एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी है,

३. दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्य है।

४. तीन समय की स्थिति वाले द्रव्य आनुपूर्वी हैं।

५. एक समय की स्थिति वाले द्रव्य अनानुपूर्वी हैं।

६. दो समय की स्थिति वाले द्रव्य अवक्तव्य हैं।

इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के समान यहाँ भी छव्वीस भंग जानने चाहिए।

यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनता का स्वरूप है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का कहाँ समवतार होता है?

उ. तीनों स्व-स्व स्थान में समवतरित जानने चाहिए।

यह समवतार का स्वरूप है।

प्र. अनुगम का क्या स्वरूप है?

उ. अनुगम नौ प्रकार का कहा गया है, यथा–

१. सतपदप्ररूपणता, २. द्रव्यप्रमाण, ३. क्षेत्र, ४. स्पर्शना, ५. काल, ६. अन्तर, ७. भाग, ८. भाव, ९. अल्पवहुत्व।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं?

उ. नियमतः ये तीनों द्रव्य हैं।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी आदि द्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उ. तीनों द्रव्य संख्यात और अनन्त नहीं हैं, परन्तु असंख्यात हैं।

प्र. नैगम और व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग में, असंख्यातवें भाग में, संख्यातवें भागों में, असंख्यातवें भागों में या सम्पूर्ण लोक में रहते हैं?

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग में, असंख्यातवें भाग में, संख्यात भागों में, असंख्यात भागों में या देशऊन (कुछ कम) लोक में रहते हैं।

अनेक द्रव्यों की अपेक्षा निश्चित रूप से सम्पूर्ण लोक में रहते हैं।

जिस प्रकार नैगम और व्यवहारनय की अपेक्षा क्षेत्रानुपूर्वी का कथन किया है, इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यों के लिए भी कहना चाहिए।

इसी प्रकार स्पर्शना के लिए भी जानना चाहिए।

प्र. १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य कितने काल तक रहते हैं?

उ. एक आनुपूर्वी द्रव्य की अपेक्षा जघन्य स्थिति तीन समय की उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात काल की है।

अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा स्थिति सर्वकालिक है।

प्र. २. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वी द्रव्य कितने काल तक रहते हैं?

उ. एगदव्वं पडुच्च-अजहण्णमणुक्कोसेणं एक्कं समयं,
नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

प. ३. णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वयदव्वाइं कालओ केवचिरं होइ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च अजहण्णमणुक्कोसेणं दो समया,
नाणादव्वाइं पडुच्च सव्वद्धा।

प. १. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाणमंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च-जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो समया,

नाणादव्वाइं पडुच्च नत्थि अंतरं।

प. २. णेगम-ववहाराणं अणाणुपुव्विदव्वाणमंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च-जहण्णेणं दो समया, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
नाणादव्वाइं पडुच्च णत्थि अंतरं।

प. ३. णेगम-ववहाराणं अवत्तव्वगदव्वाणं अंतरं कालओ केवचिरं होइ?

उ. एगं दव्वं पडुच्च-जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं,
नाणादव्वाइं पडुच्च-णत्थि अंतरं।

प. णेगम-ववहाराणं आणुपुव्विदव्वाइं सेसदव्वाणं कइभागे होज्जा?

उ. जहेव खेत्ताणुपुव्वीए।
भावो वि तहेच अप्पाबहुं पि तहेव नेयव्वं।

से तं अणुगमे।
से तं णेगम-ववहाराणं अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी।

—अणु सु. १८३-१९८

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा तो अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय की तथा अनेक द्रव्यों की अपेक्षा सर्वकालिक है।

प्र. ३. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्य द्रव्य कितने काल रहते हैं?

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति दो समय की है।
अनेक द्रव्यों की अपेक्षा सर्वकालिक है।

प्र. १. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का अन्तर कितने समय का होता है?

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय का और उत्कृष्ट अन्तर दो समय का है।
किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है।

प्र. २. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वी द्रव्यों का अन्तर कितने समय का होता है?

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य दो समय का और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है।
अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है।

प्र. ३. नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्य द्रव्यों का अन्तर कितने समय का होता है?

उ. एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय का और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है।
अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से अन्तर नहीं है।

प्र. नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कितने भाग प्रमाण है?

उ. यहाँ क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही कथन समझना चाहिए।
भावद्धार और अल्पवहुत्व का भी कथन क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही समझना चाहिए।
यह अनुगम का स्वरूप है।
यह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है।

संगहणय सम्मय अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी—

सुत्र १ (घ)

प. से किं तं संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी?

उ. संगहस्स अणोवणिहिया कालाणुपुव्वी-पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. [illegible], २. भंगसमुक्कित्तणया,
३. [illegible], ४. समोयारे, ५. अणुगमे।

प. [illegible]?

उ. [illegible] पंच वि दाराइं संगहस्स [illegible]।
[illegible]।
[illegible] कालाणुपुव्वी।
[illegible] कालाणुपुव्वी। —अणु सु. १९९-२००

संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी—

प्र. संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उ. संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी पाँच प्रकार की कही गई है, यथा—
१. अर्थपदप्ररूपणता, २. भंगसमुत्कीर्तनता,
३. भंगोपदर्शनता, ४. समवतार, ५. अनुगम।

प्र. संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या स्वरूप है?

उ. संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता आदि इन पाँचों द्वारों का कथन संग्रहनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी के समान जानना चाहिए।
विशेष—प्रदेशावगाढ के बदले स्थिति कहना चाहिए।
यह संग्रहनयसम्मत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है।
यह अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी है।

[illegible] कालाणुपुव्वी—

[illegible]

प. [illegible] कालाणुपुव्वी?

औपनिधिकी कालानुपूर्वी—

प्र. औपनिधिकी कालानुपूर्वी का क्या स्वरूप है?

उ. ओवणिहिया कालाणुपुव्वी-तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी–एगसमयठिईए दुसमयठिईए तिसमयठिईए जाव दससमयठिईए जाव संखेज्जसमयठिईए असंखेज्जसमयठिईए।

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी–असंखेज्जसमयठिईए जाव एक्कसमयठिईए।

से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

उ. अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए असंखेज्ज गच्छ गयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी।

अहवा–ओवणिहिया कालाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी ?

उ. पुव्वाणुपुव्वी–समए, आवलिया, आणापाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, दिवसे, अहोरत्ते, पक्खे, मासे, उदू, अयणे, संवच्छरे, जुगे, वाससए, वाससहस्से, वाससयसहस्से, पुव्वंगे पुव्वे, तुडियंगे तुडिए, अडडंगे अडडे, अववंगे अववे, हूहुयंगे हूहुए, उप्पलंगे उप्पले, पउमंगे पउमे, णलिणंगे णलिणे, अत्थनिउरंगे अत्थनिउरे, अउयंगे अउए, नउयंगे नउए, पउयंगे पउए, चूलियंगे चूलिए, सीसपहेलियंगे सीसपहेलिया, पलिओवमे, सागरोवमे, ओसप्पिणी, उस्सप्पिणी, पोग्गलपरियट्टे, तीतद्धा अणागतद्धा, सव्वद्धा।

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. से किं तं पच्छाणुपुव्वी ?

उ. पच्छाणुपुव्वी–सव्वद्धा अणागतद्धा जाव समए।

से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. से किं तं अणाणुपुव्वी ?

उ. अणाणुपुव्वी–एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए अणंतगच्छगयाए सेढीए अण्णमण्णब्भासो दुरूवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी।

से तं ओवणिहिया कालाणुपुव्वी।

से तं कालाणुपुव्वी। –अणु. सु. २०१-२०२

उ. औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–
१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–एक समय की स्थिति वाले, दो समय की स्थिति वाले, तीन समय की स्थिति वाले यावत् दस समय की स्थिति वाले यावत् संख्यात समय की स्थिति वाले, असंख्यात समय की स्थिति वाले।

इस अनुक्रम से कथन करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं।

प्र. पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. पश्चानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–असंख्यात समय की स्थिति वाले यावत् एक समय की स्थिति वाले द्रव्यों का– इस प्रकार विपरीत क्रम से कथन करना पश्चानुपूर्वी है।

प्र. अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–एक से लेकर असंख्यात पर्यन्त एक-एक की वृद्धि द्वारा निष्पन्न श्रेणी में परस्पर गुणाकार करने से प्राप्त महाराशि में से आदि और अन्त के दो भंगों से न्यून राशि अनानुपूर्वी है।

अथवा–औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. पूर्वानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. समय, आवलिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वांग पूर्व, त्रुटितांग त्रुटित, अडडांग अडड, अववांग अवव, हुहुकांग हुहुक, उत्पलांग उत्पल, पद्मांग पद्म, नलिनांग नलिन, अर्थनिपुरांग अर्थनिपुर, अयुतांग अयुत, नयुतांग नयुत, प्रयुतांग प्रयुत, चूलिकांग चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरावर्त, अतीतकाल, अनागतकाल, सर्वकाल, इस प्रकार क्रम से कथन करना काल की अपेक्षा पूर्वानुपूर्वी है।

यह पूर्वानुपूर्वी है।

प्र. पश्चानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. सर्वकाल, अनागतकाल यावत् समय पर्यन्त व्युत्क्रम से पदों की स्थापना करना पश्चानुपूर्वी है।

यह पश्चानुपूर्वी है।

प्र. अनानुपूर्वी का क्या स्वरूप है ?

उ. एक से प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि करके सर्वकाल पर्यन्त की श्रेणी स्थापित कर परस्पर गुणाकार से निष्पन्न राशि में से आद्य और अन्तिम दो भंगों को कम करने के बाद बचे हुए शेष भंग अनानुपूर्वी हैं।

यह अनानुपूर्वी है।

यह औपनिधिकी कालानुपूर्वी है।

यह कालानुपूर्वी है।

पृ. ६९४

चेत्तासोएसु मासेसु पोरिसीच्छायप्पमाणं—

सूत्र ६ (ख)

चेत्तासोएसु णं मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसीछायं निव्वत्तइ। —सम. सम. ३६, सु. ४

चैत्र और आसोज मास में पौरुषी छाया का प्रमाण—

चैत्र और आश्विन मास में सूर्य एक बार छत्तीस अंगुल प्रमाण पौरुषी छाया करता है।

कत्तियबहुल सत्तमीए पोरिसीच्छायप्पमाणं—

सूत्र ६ (ग)

कत्तियवहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसिच्छायं निव्वत्तइत्ता णं चारं चरइ। —सम. सम. ३७, सु. ५

कार्तिक वदी सप्तमी को पौरुषी छाया का प्रमाण—

कार्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैंतीस अंगुल की पौरुषी छाया करता हुआ गति करता है।

पृ. ६९९

कम्माकम्मभूमिसु ओसप्पिणी-उस्सप्पिणी कालस्स भावाभाव परूवणं—

सूत्र १२ (ख)

प. एएसु णं भंते ! तीसासु अकम्मभूमीसु अत्थि ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ?

उ. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प. एएसु णं पंचसु भरहेसु, पंचसु एरवएसु अत्थि ओसप्पिणी इ वा, उस्सप्पिणी इ वा ?

उ. हंता, गोयमा ! अत्थि।

एएसु णं पंचसु महाविदेहेसु णेवत्थि ओसप्पिणी नेवत्थि उस्सप्पिणी अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो! —विया. स. २०, उ. ८, सु. ३-५

कर्म-अकर्म भूमियों में अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल के भाव-अभाव का प्ररूपण—

प्र. भंते ! इन (उपर्युक्त) तीस अकर्मभूमियों में क्या अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल है ?

उ. गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र. भंते ! इन पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्रों में क्या अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल है ?

उ. हाँ, गौतम ! है।

इन (उपर्युक्त) पाँच महाविदेह क्षेत्रों में वहाँ न तो अवसर्पिणी काल है और न उत्सर्पिणी काल है।

हे आयुष्मन् श्रमण ! वहाँ (एकमात्र) अवस्थित काल कहा गया है।

ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीए सुसमसुसमा कालस्समान परूवणं—

सूत्र १२ (ग)

जंवुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीताए उस्सप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो हुत्था।

जंवुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु इमीसे ओसप्पिणीए सुसमसुसमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो।

जंवुद्दीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सुसमसुमाए समाए चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो भविस्सइ।

एवं धायइसंडदीव पुरत्थिमद्धे वि।

एवं पुक्खरवरदीव पच्चत्थिमद्धे वि। —ठाणं अ. ४, उ. २, सु. २९९

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी के सुषमसुषमा कालमान का प्ररूपण—

जम्बूद्वीप द्वीप के भरत ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के "सुषमसुषमा" नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम का था।

जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवंत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी के "सुषमसुषमा" नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम का कहा है।

जम्बूद्वीप द्वीप के भरत और ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के "सुषमसुषमा" नामक आरे का कालमान चार कोडाकोडी सागरोपम का होगा।

इसी प्रकार धातकीखण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में एवं

अर्धपुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध में काल जानना चाहिए।

भरहेवासे ओसप्पिणीकालस्स छण्हंआरकाणं आयारभाव पडोयार परूवणं—

सूत्र १२ (घ)

प. १. जंवुद्दीवे णं भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए

भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के छः आरों के आकार भाव स्वरूप का परूपण—

प्र. १. भंते ! जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के

सुसमसुसमाए समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?

सुषमसुषमा नामक प्रथम आरे में जब वह अपने उत्कर्ष की पराकाष्ठा में था तब भरत क्षेत्र का आकार स्वरूप किस प्रकार का था?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं तणेहिं य मणीहिं य उवसोभिए, तं जहा– किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहिं।

उ. गौतम ! उसका भूमिभाग बड़ा समतल व रमणीय था। वह मुरज के ऊपरी भाग के समान समतल यावत् अनेक प्रकार की इन पाँच वर्ण की मणियों एवं तृणों से उपशोभित था, यथा–काली यावत् सफेद।

एवं वण्णो, गंधो, रसो, फासो, सद्दो अ तणाण य मणीण य भाणिअव्वो जाव तत्थ णं बहवे मणुस्सा मणुस्सीओ आसयंति, संयंति, चिट्ठंति, णिसीअंति, तुअट्टंति, हसंति, रमंति, ललंति।

इस प्रकार तृणों एवं मणियों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्द का वर्णन करना चाहिए यावत् वहाँ बहुत से मनुष्य मनुष्यनियाँ आश्रय लेते, शयन करते, खड़े होते, बैठते, देह को दायें-बायें घुमाते, मोड़ते, हँसते, रमण करते और मनोरंजन करते हैं।

तीसे णं समाए भरहे वासे बहवे १. उद्दाला, २, कुद्दाला, ३. मुद्दाला, ४. कयमाला, ५, णट्टमाला, ६. दंतमाला, ७. नागमाला, ८. सिंगमाला, ९. संखमाला, १०. सेअमाला।

उस समय भरत क्षेत्र में १. उद्दाल, २. कुद्दाल, ३. मुद्दाल, ४. कृतमाल, ५. नृत्तमाल, ६. दन्तमाल, ७. नागमाल, ८. शृंगमाल, ९. शंखमाल तथा १०. श्वेतमाल नामक दस वृक्ष कहे गए हैं।

णामं दुमगणा पण्णत्ता, कुसविकुसविसुद्धरूक्खमूला, मूलमंतो, कंदमंतो जाव बीअमंतो।

उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध थीं। वे मूल वाले, जड़ वाले यावत् बीज वाले थे।

पत्तेहिं य पुप्फेहिं य फलेहिं य उच्छण्णपडिच्छण्णा, सिरीए अईव-अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

वे पत्तों, फूलों और फलों से परस्पर आच्छादित होने के कारण अपनी शोभा से अत्यन्त उपशोभित होते हैं।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ-तत्थ बहवे भेरूतालवणाइं, हेरूतालवणाइं, मेरूतालवणाइं, पभयालवणाइं, सालवणाइं, सरलवणाइं, सत्तिवण्णवणाइं, पूयफलिवणाइं, खज्जूरीवणाइं, णालिएरीवणाइं, कुसविकुसविसुद्धरूक्खमूलाइं जाव चिट्ठंति।

उस समय भरत क्षेत्र में जहाँ-तहाँ बहुत से भेरूताल वृक्षों के वन, हेरूताल वृक्षों के वन, मेरूताल वृक्षों के वन, प्रभताल वृक्षों के वन, साल के वृक्षों के वन, सरल वृक्षों के वन, सप्तपर्ण वृक्षों के वन, सुपारी के वृक्षों के वन, खजूर के वृक्षों के वन, नारियल के वृक्षों के वन थे। उनकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध यावत् रहित हैं।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ-तत्थ बहवे सेरिआगुम्मा, णीमालिआगुम्मा, कोरंटयगुम्मा, बंधुजीवगगुम्मा, मणोज्जगुम्मा, बीअगुम्मा, बाणगुम्मा, कणइरगुम्मा, कुज्जयगुम्मा, सिंदुवारगुम्मा, मोग्गरगुम्मा, जूहिआगुम्मा, मल्लिआगुम्मा, वासंतिआगुम्मा, वत्थुलगुम्मा, कत्थुलगुम्मा, सेवालगुम्मा, अगत्थिगुम्मा, मगदंतिआगुम्मा, चंपकगुम्मा, जाइगुम्मा, णवणीइआगुम्मा, कुंदगुम्मा, महाजाइगुम्मा रम्मा महामेहणिकुरंबभूआ दसद्धवण्णं कुसुमं कुसुमेंति।

उस समय भरत क्षेत्र में जहाँ-तहाँ अनेक सेरिका गुल्म, नवमालिका गुल्म, कोरंटक गुल्म, बन्धुजीवक गुल्म, मनोज्ञ गुल्म, बीज गुल्म, बाण गुल्म, कनेर गुल्म, कुब्जक गुल्म, सिंदुवार गुल्म, मुद्गर गुल्म, यूथिका गुल्म, मल्लिका गुल्म, वासंतिका गुल्म, वस्तुक गुल्म, कस्तुल गुल्म, शैवाल गुल्म, अगस्ति गुल्म, मगदंतिका गुल्म, चंपक गुल्म, जाती गुल्म, नवनीतिका गुल्म, कुन्द गुल्म, महाजाती गुल्म थे। वे गुल्म रमणीय बादलों की घटाओं जैसे गहरे पंचरंगे फूलों से युक्त थे।

जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुअग्गसाला मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिअं करेंति।

वे वायु से प्रकंपित अपनी शाखाओं के अग्र भाग से गिरे हुए फूलों से वे भरत क्षेत्र के अति समतल, रमणीय भूमिभाग को सुरभित बना देते थे।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ-तत्थ तहिं तहिं बहुईओ पउमलयाओ जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमिआओ जाव लयावण्णओ।

उस समय भरत क्षेत्र में जहाँ-तहाँ अनेक पद्मलताएँ यावत् श्यामलताएँ होती हैं। वे लताएँ सब ऋतुओं में फूलती थीं यावत् कलियाँ धारण किये रहती थीं।

तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ-तत्थ तहिं तहिं बहुईओ वणराईओ पण्णत्ताओ। किण्हाओ, किण्होभासाओ जाव मणोहराओ, रयमत्तगछप्पयकोरंग-भिंगारग-कोंडलग-जीवंजीवग-नंदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंडव-चक्कवायग-कलहंस-हंस-सारस-अणेगसउणगण मिहुणविअरिआओ सद्दुण्णइयमहुरसरणाइआओ, संपिंडिअ-दरिय-भमर-महुयरि-

उस समय भरत क्षेत्र में जहाँ-तहाँ बहुत-सी वनराजियाँ (वनपंक्तियाँ) थीं। वे कृष्ण, कृष्णाभायुक्त यावत् मनोहर थीं। पुष्प पराग के सौरभ से मत्त, भ्रमर, कोरक, भृंगारक, कुंडल, चकोर, नंदीमुख, कपिल, पिंगलाक्ष, कारंडक, चक्रवाक, बतक, हंस, सारस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े उनमें विचरण करते थे। वे वनराजियाँ पक्षियों के मधुर शब्दों

पहकर परिलिंत-मत्त-छप्पय-कुसुमासवलोलमहुर-गुमगुमंत-गुंजंतदेसभागाओ, अब्भितरपुप्फ फलाओ वाहिरपत्तोच्छण्णओ, पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्न वलिच्छत्ताओ, साउफलाओ, निरोययाओ, अकंटयाओ, णाणाविह-गुच्छ-गुम्ममंडवग-सोहियाओ, विचित्तसुहकेउ-भूयाओ, वावी-पुक्खरिणी दीहियासु-निवेसिय-रम्मजाल-हरयाओ पिडिम-णीहारिम-सुगंधि-सुह-सुरभि-मणहरं च महयागंधद्धाणिं मुयंताओ, सव्वोउयपुप्फुफलसमिद्धाओ सुरम्माओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ। तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ-तत्थ तहिं तहिं मत्तगा णामं दुमगणा पण्णत्ता।

से सदा प्रतिध्वनित रहती थीं। उन वनराजियों के प्रदेश कुसुमों का आसव पीने को उत्सुक, मधुर गुंजन करते हुए भ्रमरियों के समूह से परिवृत मत्त भ्रमरों की मधुर ध्वनि से मुखरित थे। वे वनराजियाँ भीतर पुष्पों और फलों से तथा बाहर पत्तों से आच्छन्न थीं। पत्र और पुष्पों रूपी छत्रों से वे आच्छादित थीं। वहाँ के फल स्वादिष्ट थे। वहां का वातावरण निरोग था। वे काँटों से रहित थीं। वे तरह-तरह के फूलों के गुच्छों, लताओं के गुल्मों तथा मंडपों से शोभित थीं। वे अनेक प्रकार की सुन्दर ध्वजा से सुशोभित मालूम होती थीं। जहाँ सुघड़ता से निर्मित जाली झरोखों से युक्त वापिकाएँ, पुष्करणियाँ और दीर्घकाएँ थीं। वनराजियाँ ऐसी तृप्तिप्रद सुगन्ध छोड़ती थीं जो बाहर निकलकर पूँजीभूत होकर बहुत दूर फैल जाती थी और बड़ी मनोहर थी। वे वनराजियाँ सब ऋतुओं के पुष्पों और फलों से समृद्ध थीं। वे सुरम्य, प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप थीं। उस समय भरत क्षेत्र में जहाँ-तहाँ मत्तांग नामक कल्पवृक्ष समूह होते थे।

एवं जाव अणिगणा णामं दुमगणा पण्णत्ता।

इसी प्रकार अनग्न पर्यन्त दस प्रकार के कल्पवृक्ष समूह कहे गए हैं।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयांरभाव पडोयारे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! ते णं मणुआ सुपइड्डियकुम्म चारूचलणा जाव पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

प. तेसि णं भंते ! मणुआणं केवइकालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ ?

उ. गोयमा ! अट्ठमभत्तस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, पुढवीपुप्फफलाहारा णं ते मणुआ पण्णत्ता, समणाउसो!

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआणं केवइअं कालं ठिई पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआणं सरीरा केवइअं उच्चत्तेणं पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि गाउआइं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउआइं।

प. ते णं भंते ! मणुआ किं संघयणी पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणी पण्णत्ता।

प. तेसि णं भंते ! मणुआणं सरीरा किं संठिया पण्णत्ता ?

उ. गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिआ पण्णत्ता, तेसि णं मणुआणं वेछप्पण्णा पिट्ठकरंडयसया पण्णत्ता, समणाउसो !

प. ते णं भंते ! मणुआ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छन्ति ? कहिं उववज्जंति ?

उ. गोयमा ! छम्मासावसेसाउ जुंअलगं पसवंति, एगूणपण्णं राइंदिआइं सारक्खंति, संगोवेंति, संगोवेत्ता, कासित्ता, छीइत्ता, जंभाइत्ता, अक्किट्ठा अव्वहिआ—अपरिआविआ

प्र. भंते ! उस समय भरत वर्ष के मनुष्यों का आकार भाव स्वरूप कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! उन मनुष्यों के चरण सुन्दर आकृति वाले कछुवे की पीठ की तरह उठे हुए मनोज्ञ यावत् प्रासादिक दर्शनीय अभिरूप प्रतिरूप होते हैं।

प्र. भंते ! उन मनुष्यों को कितने समय वाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ?

उ. हे आयुष्मन् ! श्रमण गौतम ! उनको तीन दिन के वाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। वे मनुष्य पृथ्वी, पुष्प और फल का आहार करने वाले कहे गए हैं।

प्र. भंते ! उस समय भरत क्षेत्र में मनुष्यों का आयुष्य कितने काल का कहा गया है ?

उ. गौतम ! जघन्य देशून तीन पल्योपम का और उत्कृष्ट तीन पल्योपम का होता है।

प्र. भंते ! उस समय भरत क्षेत्र में मनुष्यों के शरीर कितने ऊँचे कहे गए हैं ?

उ. गौतम ! उनके शरीर जघन्यतः देशून तीन गव्यूति तथा उत्कृष्टतः तीन गव्यूति ऊँचे होते हैं।

प्र. भंते ! उन मनुष्यों का संहनन कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! वे वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन वाले होते हैं।

प्र. भंते ! उन मनुष्यों का शरीर संस्थान कैसा कहा गया है ?

उ. हे आयुष्मन् ! श्रमण गौतम ! उनका समचौरस संस्थान कहा गया है। उनके पसलियों की दो सौ छप्पन हड्डियाँ होती हैं।

प्र. भंते ! वे मनुष्य कालमास में काल करके कहाँ जाते हैं ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उ. गौतम ! जव उनका आयुष्य छह मास शेष रहता है तव वे एक युगल (एक वच्चा-एक वच्ची) को उत्पन्न करते हैं, उनकी पचास दिन-रात सार सम्हाल करते हैं, पालन-पोषण करते हैं,

कालमासे कालं किच्चा देवलोएसु उववज्जंति, देवलोअपरिग्गहा णं ते मणुआ पण्णत्ता।

पालन पोषण कर वे खाँस कर, छींक कर, जम्हाई लेकर शारीरिक कष्ट, व्यथा तथा परिताप का अनुभव नहीं करते हुए काल मास में काल करके देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। उन मनुष्यों का जन्म देवलोक में ही कहा गया है।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे कइविहा मणुस्सा अणुसज्जित्था ?

उ. गोयमा ! छव्विहा पण्णत्ता, तं जहा–१. पम्हगंधा, २. मिअगंधा, ३. अममा, ४. तेअतली, ५. सहा, ६. सणिचारी[1]। –जंबू. वक्ख. २, सु. २६-३२

प्र. भंते ! उस समय भरत क्षेत्र में कितने प्रकार के मनुष्य होते हैं ?

उ. गौतम ! छह प्रकार के मनुष्य कहे गये हैं, यथा–१. **पद्मगन्ध**–*कमल के समान गंध वाले*, २. **मृगगंध**–*कस्तूरी सदृश गंध वाले*, ३. **अमम**–ममत्वरहित, ४. **तेजस्वी**–पराक्रमी, ५. सह–सहनशील, ६. शनैश्चारी–उत्सुकता न होने से धीरे-धीरे चलने वाले।

२. तीसे णं समाए चउहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं, अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं, अणंतेहिं रसपज्जवेहिं, अणंतेहिं फासपज्जवेहिं, अणंतेहिं संघयणपज्जवेहिं, अणंतेहिं संठाणपज्जवेहिं, अणंतेहिं उच्चत्तपज्जवेहिं, अणंतेहिं आउपज्जवेहिं, अणंतेहिं गुरुलहुपज्जवेहिं, अणंतेहिं अगुरुलहुपज्जवेहिं, अणंतेहिं उट्ठाणकम्मबलवीरिअ-पुरिसक्कार-परक्कमपज्जवेहिं, अणंतगुण परिहाणीए परिहायमाणे-परिहायमाणे एत्थ णं सुसमा णामं समाकाले पडिवज्जिसु, समणाउसो !

२. हे आयुष्मन् श्रमण ! चार कोडाकोडी सागरोपम के प्रमाण वाले सुषम-सुषमा नामक प्रथम आरे के व्यतीत होने पर अनन्त वर्ण पर्यायों, अनन्त गंध पर्यायों , अनन्त रस पर्यायों, अनन्त स्पर्श पर्यायों, अनन्त संहनन पर्यायों, अनन्त संस्थान पर्यायों, अनन्त उच्चत्व पर्यायों, अनन्त आयु पर्यायों, अनन्त गुरु-लघु पर्यायों, अनन्त अगुरु-लघु पर्यायों, अनन्त उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार-पराक्रम पर्यायों का अनन्त गुण परिहानि के क्रम से ह्रास होते-होते अवसर्पिणी काल का सुषमा नामक द्वितीय आरा प्रारम्भ होता है।

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमाए समाए उत्तम कट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था ?

प्र. भंते ! इस अवसर्पिणी के उत्कृष्टता को प्राप्त सुषमा नामक आरे में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र का कैसा आकार स्वरूप कहा गया है ?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा।

तं चेव जं सुसमसुसमाए पुव्ववण्णिअं।

उ. गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है।

मुरज के ऊपरी भाग जैसा इत्यादि जैसा वर्णन सुषम-सुषमा आरे में किया गया है वैसा ही यहाँ जानना चाहिए।

णवरं–णाणत्तं चउधणुसहस्समूसिआ एगे अट्ठावीसे पिट्ठकरंडकसए छट्ठभत्तस्स आहारट्ठे चउसट्ठिं राइंदिआइं सारक्खंति, दो पलिओवमाइं आऊ।

सेसं तं चेव।

तीसे णं समाए चउव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था, तं जहा–

१. एका, २. पउरजंघा, ३. कुसुमा, ४. सुसमणा।

उससे इतना अन्तर है–उस काल के मनुष्य चार हजार धनुष की अवगाहना वाले होते हैं, उनकी पसलियों की हड्डियाँ एक सौ अट्ठाईस होती हैं। दो दिन बीतने पर उन्हें भोजन की इच्छा होती है। वे अपने यौगलिक बच्चों की चौंसठ दिन-रात तक सार सम्हाल करते हैं, उनकी आयु दो पल्योपम की होती है। **शेष सब कथन पूर्ववत् है।**

उस समय चार प्रकार के मनुष्य होते हैं–

१. एक–प्रवर श्रेष्ठ, २. प्रचुरजंघ–पुष्ट जंघा वाले, ३. कुसुम–पुष्प के सदृश सुकुमार, ४. सुशमन–अत्यन्त शान्त।

३. तीसे णं समाए तिहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं **जाव** अणंतेहिं उट्ठाण-कम्म-बलवीरिय-पुरिसक्कार-परक्कमपज्जवेहिं अणंतगुण परिहाणीए परिहायमाणे-परिहायमाणे एत्थ णं सुसमदुस्समाणामं समा पडिवज्जिसु, समणाउसो !

३. हे आयुष्मन् श्रमण ! तीन कोटाकोटि सागरोपम के प्रमाण वाले सुषमा नामक द्वितीय आरे के व्यतीत होने पर अनन्त वर्ण पर्यायों यावत् अनन्त उत्थान कर्म-बल-वीर्य पुरुषाकार पराक्रम पर्यायों का अनन्त गुण परिहानि के क्रम से ह्रास होते-होते अवसर्पिणी काल का सुषमदुषमा नामक तृतीय आरा प्रारम्भ होता है।

सा णं समा तिहा विभज्जइ, तं जहा–१. पढमे तिभाए, २. मज्झिमे तिभाए, ३. पच्छिमे तिभाए।

वह आरा तीन भागों में विभक्त है, यथा–१. प्रथम त्रिभाग, २. मध्यम त्रिभाग ३. पश्चिम (अंतिम) त्रिभाग।

---

१. मनुष्य मनुष्यनियों के क्षेत्र आदि संबंधी विस्तृत वर्णन एकोरूक द्वीप के वर्णन में देखें, यहाँ विशेष (जीवा. पडि. ३, सु. १११) अंतर पाठ दिया है, शेष वर्णन उसके समान है।

प. जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए सुसमदुसमाए समाए पढममज्झिमेसु तिभाएसु भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, सो चेव गमो णेअव्वो णाणत्तं-दो धणुसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं, तेसिं च मणुआणं चउसट्ठिपिट्ठकरंडगा, चउत्थभत्तस्स आहारत्थे समुप्पज्जइ, ठिई पलिओवमं, एगूणासीइं राइंदियाइं सारक्खंति, संगोवेंति जाव देवलोएसु उववज्जंति, देवलोगपरिग्गहिआ णं ते मणुआ पण्णत्ता, समणाउसो !

प. तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोभिए, तं जहा-कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

प. तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभागे भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था?

उ. गोयमा ! तेसिं मणुयाणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूणि धणुसयाणि उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं संखिज्जाणि वासाणि, उक्कोसेणं असंखिज्जाणि वासाणि आउअं पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, अप्पेगइया तिरिअगामी, अप्पेगइया मणुस्सगामी, अप्पेगइया देवगामी, अप्पेगइया सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। *-जम्बू. वक्ख. २, सु. ३३-३४*

४. तीसे णं समाए दोहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव परिहायमाणे-परिहायमाणे एत्थ णं दूसमसुसमा णामं समाकाले पडिवज्जिंसु, समणाउसो !

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोभिए तं जहा-कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! तेसिं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउअं पालेंति, पालित्ता, अप्पेगइआ णिरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया मणुयगामी, अप्पेगइआ देवगामी, अप्पेगइआ सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

प्र. भंते ! इस अवसर्पिणी के सुषमदुषमा आरे के प्रथम तथा मध्यम त्रिभाग में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र का आकार भाव स्वरूप कैसा होता है?

उ. हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। उसका पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिए। अन्तर यह है उस समय के मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई दो हजार धनुष होती है। उनकी पसलियों की हड्डियाँ चौंसठ होती है। एक दिन के बाद उनमें आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। उनकी आयु एक पल्योपम की होती है। अपने यौगलिक शिशुओं का वे ७९ दिन-रात पालन-पोषण करते हैं, सुरक्षा करते हैं यावत उन मनुष्यों का जन्म देवलोक में होता है। वे मनुष्य देवलोक वासी ही कहे गए हैं।

प्र. भंते ! उस आरे के अंतिम भाग में भरत क्षेत्र का आकार स्वरूप कैसा होता है?

उ. गौतम ! उस समय मुरज के ऊपरी भाग जैसा उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होता है यावत् कृत्रिम एवं अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होता है।

प्र. भंते ! उस आरे के अंतिम तीसरे भाग में भरत क्षेत्र में मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा होता है?

उ. गौतम ! उन मनुष्यों के छहों प्रकार के संहनन होते हैं, छहों प्रकार के संस्थान होते हैं, उनके शरीर की ऊँचाई सैकड़ों धनुष परिमाण होती है। उनका आयुष्य जघन्य संख्यात वर्षों का तथा उत्कृष्टतः असंख्यात वर्षों का होता है। अपनी आयु पूर्ण कर उनमें से कई नरक गति में, कई तिर्यञ्च गति में, कई मनुष्य गति में और कई देव गति में उत्पन्न होते हैं तथा कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त और समग्र दुःखों का अन्त करने वाले होते हैं।

४. हे आयुष्मन् श्रमण ! दो कोटाकोटि सागरोपम के प्रमाण वाले सुषम-दुःषमा नामक तृतीय आरे के व्यतीत होने पर अनन्त वर्ण पर्यायों आदि के क्रमशः हीन होते-होते अवसर्पिणी काल का दुषम-सुषमा नामक चौथा आरा प्रारम्भ होता है।

प्र. भंते ! उस समय भरत क्षेत्र का आकार भाव स्वरूप कैसा कहा गया है?

उ. गौतम ! उस समय में भरत क्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। मुरज के ऊपरी भाग जैसा समतल है यावत् कृत्रिम तथा अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होता है।

प्र. भंते ! उस समय भरत क्षेत्र के मनुष्यों का आकार भावस्वरूप कैसा कहा गया है?

उ. गौतम ! उन मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन होते हैं, छह प्रकार के संस्थान होते हैं उनकी ऊँचाई अनेक धनुष प्रमाण होती है। वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि का आयु भोगकर उनमें से कई नरक गति में, कई तिर्यञ्च गति में, कई मनुष्य गति में तथा कई देव गति में जाते हैं और कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होते हैं तथा समस्त दुःखों का अन्त करते हैं।

तीसे णं समाएं तओ वंसा समुप्पज्जित्था, तं जहा- १.अरहंतवंसे, २.चक्कवट्टिवंसे, ३.दसारवंसे, तीसे णं समाए तेवीसं तित्थयरा, इक्कारस चक्कवट्टी, णव बलदेवा, णव वासुदेवा समुप्पज्जित्था।

५. तीसे णं समाए एक्काए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं तहेव जाव परिहाणीए परिहायमाणे-परिहायमाणे एत्थ णं दूसमाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो !

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा, मुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ?

उ. गोयमा ! तेसिं मणुयाणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहुइओ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउयं पालेंति पालेत्ता अप्पेगइया णिरयगामी जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

तीसे णं समाए पच्छिमे तिभागे गणधम्मे, पासंडधम्मे, रायधम्मे, जायतेए धम्मचरणे वोच्छिज्जिस्सइ।

६. तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव परिहाणीए परिहायमाणे-परिहायमाणे एत्थ णं दूसमदूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ, समणाउसो !

प. तीसे णं भंते ! समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

उ. गोयमा ! काले भविस्सइ हाहाभूए, भंभाभूए, कोलाहलभूए, समाणुभावेण य खरफरूसधूलिमइला, दुव्विसहा, वाउला, भयंकरा य वाया संवट्टगा य वाइंति।

इह अभिक्खणं-अभिक्खणं धूमाहिंतिअ दिसा समंता रउस्सला रेणुकलुसतमपडलणिरालोआ समयलुक्खयाए णं अहिअं चंदा सीअं मोच्छिहिंति, अहिअं सूरिआ तविस्संति।

अदुत्तरं च णं गोयमा ! अभिक्खणं अरसमेहा, विरसमेहा, खारमेहा, खत्तमेहा, अग्गिमेहा, विज्जुमेहा, विसमेहा, अजवणिज्जोदगा, वाहिरोगवेदणो दारणपरिणामसलिला, अमणुण्णपाणिअगा चंडानिलपहयतिक्खधाराणिवायपउरं वासं वासिहिंति।

उस समय तीन वंश १. अर्हत् वंश, २. चक्रवर्ति वंश तथा ३. दशार वंश उत्पन्न (स्थापित) होते हैं तथा उस काल में तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव उत्पन्न होते हैं।

५. हे आयुष्मन् श्रमण ! बयालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम के प्रमाण वाले दुःषमसुषमा नामक चतुर्थ आरे के पूर्ण होने पर उसी प्रकार अनन्त वर्ण पर्यायों आदि का क्रमशः ह्रास होते-होते अवसर्पिणी काल का दुषमा नामक पाँचवाँ आरा प्रारम्भ होगा।

प्र. भंते ! उस काल में भरत क्षेत्र का कैसा आकार स्वरूप कहा गया है ?

उ. गौतम ! उस समय भरत क्षेत्र का भूमिभाग बहुत समतल और रमणीय होता है। वह मुरज के मृदंग के ऊपरी भाग जैसा समतल यावत् विविध प्रकार के पाँच वर्णों तथा कृत्रिम और अकृत्रिम मणियों द्वारा उपशोभित होता है।

प्र. भंते ! उस काल में भरत क्षेत्र में मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा कहा गया है ?

उ. गौतम ! उस समय मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन और छह प्रकार के संस्थान होते हैं। उनकी ऊँचाई अनेक हाथ (सात हाथ) की होती है। वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ वर्ष का आयु भोगते हैं और भोगकर उनमें से कई नरक गति में जाते हैं यावत् कई सब दुःखों का अंत करते हैं।

उस काल के अन्तिम तीसरे भाग में गण धर्म, खण्ड धर्म, राज धर्म, अग्नि धर्म तथा धर्माचरण विच्छिन्न हो जायेंगे।

६. हे आयुष्मन् श्रमण ! इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण वाले दुषमा नामक पाँचवें आरे के पूर्ण होने पर अनन्त वर्ण पर्यायों आदि का क्रमशः ह्रास होते-होते अवसर्पिणी काल का दुःषमा-दुषमा नामक छट्ठा आरा प्रारम्भ होगा।

प्र. भंते ! जब वह आरा उत्कृष्ट की पराकाष्ठा पर पहुँचेगा तब भरत क्षेत्र का आकार स्वरूप कैसा होगा ?

उ. गौतम ! उस समय दुःखार्ततावश लोगों में हाहाकार मच जायेगा, गाय आदि पशुओं में दुःखोद्विग्नता से चीत्कार फैल जायेगा, कोलाहल मच जायेगा। तब अत्यन्त कठोर, धूल से मलिन दुस्सह व्याकुल आकुलतापूर्ण भयंकर वायु चलेंगे, संवर्तक तृण काष्ठ आदि को उड़ाकर कहीं का कहीं पहुँचा देने वाले वायु विष चलेंगे।

उस काल में दिशाएँ प्रतिक्षण धुआँ छोड़ती रहेंगी, वे सर्वथा रज से भरी हुई होंगी, धूल से मलिन होंगी और घोर अंधकार के कारण प्रकाश शून्य हो जायेंगी। काल की रूक्षता के कारण चन्द्र अधिक अहित अपथ्य शीत हिम छोड़ेंगे, सूर्य असह्य रूप में तपेंगे।

गौतम ! इस कारण अरसमेघ–मनोज्ञ रस वर्जित जलयुक्त मेघ, विरसमेघ–विपरीत रसमय जलयुक्त मेघ, क्षारमेघ–खार के समान जलयुक्त मेघ, खात्रमेघ–करीप सदृश रसमय जलयुक्त मेघ (अम्ल या खट्टे जलयुक्त मेघ), अग्निमेघ–अग्नि सदृश दाहक जलयुक्त मेघ, विद्युत मेघ–बिजली गिराने वाले मेघ, विषमेघ–विषमय जलवर्षक मेघ, अयापनीयोदक–अप्रयोजनीय मेघ, व्याद्धि–कुष्ट आदि और तत्काल प्राण लेने वाली बीमारी उत्पादक जलयुक्त मेघ, अप्रियमेघ-तूफान जनित तीव्र प्रचुर जलधारा छोड़ने वाले मेघ निरंतर वर्षा करेंगे।

तेणं भरहे वासे गामागर-णगर-खेडकब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासमगयं जणवयं, चउप्पयगवेलए, खहयरे पक्खिसंघे गामारण्णप्पयारणिरए तसे अ पाणे, बहुप्पयारे रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-पवालंकुरमादीए तणवणस्सइकाइए ओसहीओ अ विद्धंसेहिंति, पव्वयगिरिडोंगरूत्थलभट्टिमादीए अ वेअड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति, सलिल-बिल-विसम-गत्तणिण्णुण्णयाणि अ गंगासिंधुवज्जाइं समीकरेहिंति।

जिससे भरत क्षेत्र के ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन आश्रम निवासी मनुष्यों, गाय आदि चौपाये प्राणियों, खेचर पक्षियों, गाँवों और वनों में रहने वाले द्वीन्द्रियादि त्रसों और प्राणियों तथा अनेक प्रकार के वृक्षों, नवमालिका आदि गुल्मों, अशोकलता आदि लताओं, बालुक्य आदि गुच्छों, बेलों, पत्तों, अंकुर इत्यादि बादर वनस्पति-कायिक औषधियों का वे विध्वंस कर देंगे. वैताढ्य आदि शाश्वत पर्वतों के अतिरिक्त अन्य पर्वतों, वैभार आदि क्रीड़ापर्वतों, चित्रकूट आदि डूँगरों, पथरीले टीलों, धूलवर्जित भूमि पठारों को तहस-नहस कर डालेंगे। गंगा और सिन्धु महानदी के अतिरिक्त शेष जल के स्रोतों, झरनों, विषमगर्त-उबड़-खाबड़ गड्ढों, निम्न उन्नत नीचे ऊँचे जलीय स्थानों को समान कर देंगे अर्थात् उनका नामोनिशान मिटा देंगे।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ?

उ. गोयमा ! भूमी भविस्सइ इंगालभूआ, मुम्मुरभूआ, छारिअभूआ, तत्तकवेल्लुअभूआ, तत्तसमजोइभूआ, धूलिबहुला, रेणुबहुला, पंकबहुला, पणयबहुला, चलणिबहुला, बहूणं धरणिगोअराणं सत्ताणं दुन्निक्कमा या वि भविस्सइ।

प्र. भंते ! उस काल में भरत क्षेत्र की भूमि का आकार स्वरूप कैसा होगा?

उ. गौतम ! उस समय भूमि अंगारों जैसी, अग्निकणों जैसी, गर्म राख जैसी, तपे हुए कवेलु जैसी, सर्वत्र एक जैसी तप्त ज्वालामय होगी। उसमें धूलि रेणु बालुका पंक कीचड़ पतला कीचड़ चलते समय जिसमें पैर डूब जाए ऐसे प्रचूर कीचड़ की बहुलता होगी। (पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले प्राणियों का उस पर चलना बड़ा कठिन होगा।)

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ?

उ. गोयमा ! मणुआ भविस्संति दुरूवा, दुव्वण्णा, दुगंधा, दुरसा, दुफासा अणिट्ठा अकंता, अप्पिआ, असुभा, अमणुन्ना, अमणामा।

हीणस्सरा, दीणस्सरा, अणिट्ठस्सरा, अकंतस्सरा, अप्पिअस्सरा, अमणामस्सरा, अमणुण्णस्सरा। अणादेज्जवयणपच्चायाता, णिल्लज्जा, कूड-कवड-कलह-बंध-वेर-निरया मज्जायातिक्कमप्पहाणा, अकज्जणिच्चुज्जुया, गुरूणिओगविणयरहिआ य विकलरूवा, परूढ णह केस-मंसु-रोमा काला, खरफरूससमावण्णा, फुट्टसिरा, कविलपलिअकेसा, बहुण्हारूणिसंपिणद्धदुद्दंसणिज्जरूवा, संकुडिअ वलीतरंग परिवेढिअंगमंगा, जरापरिण यव्वथेरगणरा, पविरलपरिसडिअदंतसेढी, उब्भडघडमुहा, विसमणयणवंकणासा, वंकवलीविगयभेसणुमुहा, दुद्द विकिटिभ सिब्भफुडिअ, फरूसच्छवी, चित्तलंगमंगा, कच्छू खसराभिभूआ, खरतिक्खणक्खकंडूइ-अविकयतणू, टोलगतिविसमसंधिबंधणा, उक्कडूअट्ठि-अविभत्तदुब्बल-

प्र. भंते ! उस काल में भरत क्षेत्र के मनुष्यों का आकार स्वरूप कैसा होगा?

उ. गौतम ! उस समय मनुष्यों का रूप वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ तथा अमनोहर होगा।

उनका स्वर हीन, दीन, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोगम्य और अमनोज्ञ होगा। उनका वचन अनादेय अशोभन होगा। वे निर्लज्ज होंगे, कूट, कपट, कलह, बन्ध तथा वैर भाव में निरत होंगे। मर्यादाएँ लाँघने में तत्पर रहेंगे। अकार्य करने में सदा उद्यत होंगे, गुरुजनों की आज्ञा पालन और विनय से रहित होंगे, उनका विकराल रूप होगा। बढ़े हुए नख, केश तथा दाढ़ी मूँछ युक्त काले, कठोर स्पर्शयुक्त, गहरी रेखाओं या सलवटों के कारण फटे हुए से मस्तक युक्त धुएँ से वर्ण वाले तथा सफेद केशों से युक्त, अत्यधिक नाड़ियों से परिबद्ध होने से दुर्दर्शनीय रूप से युक्त, देह में पास-पास पड़ी झुर्रियों की तरंगों से परिव्याप्त अंगयुक्त, जरा जर्जर वृद्धों से सदृश प्रविरल दूर-दूर प्ररूढ तथा परिशटित परिपतितदन्त श्रेणीयुक्त, घड़े के विकृत मुख सदृश मुखयुक्त, असमान नेत्रयुक्त, वक्र-टेढ़ी नासिका युक्त, झुर्रियों से विकृत वीभत्स भीषण मुखयुक्त, दाद, खाज, सेहुआ आदि से विकृत, कठोर चर्मयुक्त, चित्रल-चितकबरे अवयवमय देह युक्त पाँव एवं खसरसंज्ञक चर्मरोग से पीड़ित, कठोर तीक्ष्ण नखों से खाज करने के कारण विकृत व्रणमय खरोंची हुई देहयुक्त, ऊँट आदि की चाल के समान अशुभ चालयुक्त, विषमसन्धि बन्धनयुक्त, अयथावस्थित अस्थियुक्त,

कुसंघयणकुप्पमाणकुसंठिआ, कुरूवा कुट्ठाणा-सणकुसेज्जकुभोइणो, असुइणो अणेगवाहिपीलि-अंगमंगा खलंतविब्भलगई णिरूच्छाहा, सत्तपरि-वज्जियाविगयचेट्ठा नट्ठतेआ, अभिक्खणं सीउण्हखरफरूसवाय विज्झडि-अमलिणपंसुर ओगुंडिअंगमंगा, वहुकोह-माण-माया-लोभा, वहुमोहा, असुभदुक्खभागी, ओसण्णं धम्मसण्ण-सम्मत्तपरिब्भट्ठा।

पौष्टिक भोजनरहित, शक्तिहीन, कुत्सित संहनन, कुत्सित परिमाण, कुत्सित संस्थान एवं कुत्सित रूप युक्त, कुत्सित आश्रय, कुत्सित आसन, कुत्सित शय्या तथा कुत्सित भोजनसेवी, अशुचि अपवित्र अथवा अश्रुति श्रुत-शास्त्र ज्ञान वर्जित अनेक व्याधियों से पीड़ित, स्खलित विह्वल गति युक्त लड़खड़ाकर चलने वाले, उत्साहरहित सत्वहीन निश्चेष्ट, नष्टतेज तेजोविहीन निरन्तर शीत उष्ण तीक्ष्ण कठोर वायु से व्याप्त शरीरयुक्त, मलिन धूलि से आवृत देहयुक्त, बहु क्रोधी अहंकारी मायावी लोभी तथा मोहमय अशुभ कार्यों के परिमाणस्वरूप अत्यधिक दुःखी प्रायः धर्मसंज्ञा धार्मिक श्रद्धा तथा सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे।

उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता, सोलसवीसइवास-परमाउसो, वहुपुत्तणत्तुपरियालपणयवहुला, गंगासिंधुओ महाणईओ वेअड्ढं च पव्वये नीसाए बावत्तरिं णिगोअवीअं बीअमेत्ता विलवासिणो मणुआ भविस्संति[1]।

उत्कृष्टतः उनके शरीर की ऊँचाई एक हाथ की होगी, उनका अधिकतम आयुष्य स्त्रियों का सोलह वर्ष तथा पुरुषों का बीस वर्ष का होगा। अपने बहुपुत्र पौत्रमय परिवार में उनका बड़ा प्रेम मोह होगा। वे गंगा महानदी, सिन्धु महानदी के तट तथा वैताढ्य पर्वत के समीपवर्ती विलों में रहेंगे। वे बिलवासी मनुष्य संख्या में बहत्तर होंगे। जो भविष्य में मानव जाति के विस्तार के लिए बीजरूप होंगे।

प. तेणं भंते मणुआ किमाहारिस्संति ?

उ. गोयमा ! तेणं कालेणं ते णं समएणं गंगासिंधुओ महाणईओ रहपहमित्तवित्थराओ अक्खसोअप्पमाणमेत्तं जलं वोज्झिहिंति। सेवि अ णं जले वहुमच्छकच्छभाइण्णे णो चेव णं आउवहुले भविस्सइ।

प्र. भंते ! वे मनुष्य क्या आहार करेंगे ?

उ. गौतम ! उस काल और उस समय में गंगा महानदी और सिन्धु महानदी ये दो नदियाँ रहेंगी। जिनका रथ चलने के लिए अपेक्षित पथ जितना मात्र उनका विस्तार होगा। उनमें रथ के चक्र के छेद की गहराई जितना गहरा जल रहेगा। उनमें अनेक मत्स्य तथा कच्छप कछुए रहेंगे। उस जल में सजातीय अप्काय के जीव नहीं होंगे।

तए णं ते मणुआ सूरूग्गमणुमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणूमुहुत्तंसि अ विलेहिंतो णिद्धाइस्संति, विलेहिंतो णिद्धाइत्ता मच्छकच्छभे थलाइं गाहेहिंति, मच्छकच्छभे थलाइं गाहेत्ता सीआतवतत्तेहिं मच्छकच्छभेहिं इक्कवीसं वाससहस्साइं वित्तिं कप्पेमाणा विहरिस्संति[2]।

वे मनुष्य सूर्योदय के समय तथा सूर्यास्त के समय अपने बिलों से तेजी से दौड़कर निकलेंगे। विलों से निकलकर मछलियों और कछुओं को पकड़ेंगे और उनको किनारे पर लायेंगे। किनारे लाकर रात में शीत द्वारा तथा दिन में आतप द्वारा उनको पकायेंगे, सुखायेंगे, इस प्रकार वे अतिसरस खाद्य को पचाने में असमर्थ अपनी जठराग्नि के अनुरूप उन्हें आहार योग्य वना लेंगे। इस आहार वृत्ति द्वारा वे इक्कीस हजार वर्ष पर्यन्त अपना निर्वाह करेंगे।

प. ते णं भंते ! मणुआ णिस्सीला णिव्वया, णिग्गुणा, णिम्मेरा, णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासा, ओसण्णं मंसाहारा, मच्छाहारा, खुड्डाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति, कहिं उववज्जिहिंति ?

प्र. भंते ! वे मनुष्य जो निःशील–शीलरहित, आचाररहित, निर्व्रत–महाव्रत अणुव्रतरहित, निर्गुण–उत्तरगुणरहित, निर्मर्याद–कुल आदि की मर्यादाओं से रहित, प्रत्याख्यान–त्याग पौषध व उपवास से रहित होंगे। वे प्रायः माँसभोजी, मत्स्यभोजी, यत्र-तत्र अवशिष्ट क्षुद्र तुच्छ धान्यादिक भोजी, कुणिपभोजी– वसा या चर्वी आदि दुर्गन्धित पदार्थ भोजी होंगे। वे मनुष्य आयुष्य समाप्त होने पर मरकर कहाँ जायेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ?

उ. गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति।

उ. गौतम ! वे प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे।

प. तीसे णं भंते ! समाए सीहा, वग्घा, विगा, दीविआ, अच्छा, तरस्सा, परस्परा, सरभ, सियालविरालसुणगा, कोलसुणगा,

प्र. भंते ! तत्कालवर्ती सिंह, वाघ, भेड़िए, रीछ, तरक्ष, चीते, गेंडे शरभ-अष्टापद, शृंगाल, विलाव, कुत्ते, जंगली कुत्ते या सूअर,

१. विया.स.७,उ.६,सु.३१-३३

२. विया.स.७,उ.६,सु.३४

ससगा, चित्तगा, चिल्ललगा, ओसण्णं मंसाहारा, मच्छाहारा, खोद्दाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति, कहिं उववज्जिहिंति ?

उ. गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति।

प. ते णं भंते ! ढंका, कंका, पीलगा, मग्गुगा, सिही ओसण्णं मंसाहारा, मच्छाहारा, खोद्दाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति, कहिं उववज्जिहिंति ?

उ. गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु गच्छिहिंति उववज्जिहिंति[1]। –जंबू. वक्ख. २, सु. ४४-४६

खरगोश, चीतल तथा चिल्लक जो प्रायः माँसाहारी मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी तथा कुणिमाहारी होंगे वे आयुष्य समाप्त होने पर मरकर कहाँ जायेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ?

उ. गौतम ! वे प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होंगे।

प्र. भंते ! ढंक (काक विशेष) कंक कठफोडा पीलक मद्गुक जल काकशिखी मयूर जो प्रायः माँसाहारी मत्स्याहारी क्षुद्राहारी तथा कुणिमाहारी होंगे वे आयुष्य समाप्त होने पर मरकर कहाँ जायेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ?

उ. गौतम ! वे प्रायः नरकगति और तिर्यञ्चगति में जायेंगे।

भरहे वासे उस्सप्पिणी कालस्स छण्हंआरकाणं आयारभावपडोयार परूवणं–

भरत क्षेत्र में उत्सर्पिणी काल के छह आरों के आकार भाव स्वरूप का प्ररूपण–

सूत्र १२ (ङ)

१. तीसे णं समाए इक्कवीसाइ वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते आगमिस्साइ उस्सप्पिणीए सावणवहुलपडिवए वालवकरणंसि अभीइणक्खत्ते चोद्दसपढमसमये अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुण परविढीए परिवड्ढेमाणे-परिवड्ढेमाणे एत्थ णं दूसमदूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ, समणाउसो !

१. हे आयुष्मन् श्रमण ! उस अवसर्पिणी काल के छठे आरे के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर श्रावण मास कृष्ण पक्ष प्रतिपदा के दिन वालव नामक करण में चन्द्रमा के साथ अभिजित् नक्षत्र का योग होने पर चतुर्दशविध काल के प्रथम समय में आगामी उत्सर्पिणी काल का दुपमदुपमा नामक प्रथम आरा प्रारम्भ होगा। उसमें अनन्त वर्ण पर्यायादि अनन्तगुण परिवृद्धि के क्रम से परिवर्द्धित होते जायेंगे।

प. तीसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

प्र. भंते ! उस काल में भरत क्षेत्र का आकार स्वरूप कैसा होगा ?

उ. गोयमा ! **काले भविस्सइ, हाहाभूए, भंभाभूए एवं सो चेव दूसमदूसमावेढओ णेअव्वो।**

उ. गौतम ! **उस समय अवसर्पिणी काल के दुपमदुपमा नामक छट्ठे आरे के समान हाहाकारमय चीत्कारमय स्थिति होगी।**

२. तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिवुड्ढीए परिवड्ढेमाणे-परिवड्ढेमाणे एत्थ णं दूसमादूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ, समणाउसो !

२. हे आयुष्मन् श्रमण ! उस काल के उत्सर्पिणी के प्रथम आरक दुःषम दुषमा के इक्कीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर उसका दुषमा नामक द्वितीय आरा प्रारम्भ होगा। उसमें अनन्त वर्णपर्यायादि अनन्त गुण परिवृद्धि के क्रम से परिवर्द्धित होते जायेंगे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पुक्खलसंवट्टए णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं तदणुरूवं च णं विक्खंभवाहल्लेणं। तए णं से पुक्खलसंवट्टए महामेहखिप्पामेव पतण तणाइस्सइ, खिप्पामेव पतणतणाइत्ता खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता खिप्पामेव जुग-मुसल-मुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिस्सइ, तेणं भरहस्स वासस्स भूमिभागं इंगालभूअं मुम्मुरभूअं छारिअभूअं तत्त कवेल्लुगभूअं तत्तसमजोइभूअं णिव्वाविस्सइ त्ति।

उस काल और उस समय उत्सर्पिणी काल के दुःषमा नामक दूसरे आरे के प्रारम्भ में भरत क्षेत्र प्रमाण आयाम विष्कम्भ वाहल्य वाला पुष्कर संवर्तक नामक महामेघ प्रादुर्भूत होगा। वह पुष्कर संवर्तक महामेघ शीघ्र ही गर्जन करेगा, गर्जन कर शीघ्र ही विद्युत से युक्त होगा, उसमें विजलियाँ चमकने लगेंगी, विद्युतयुक्त शीघ्र ही वह युग मूसल और मुष्टि परिमित कोटि धाराओं से सात दिन-रात तक सर्वत्र एक जैसा वरसेगा जिससे वह भरत क्षेत्र के अंगारमय मुर्मुरमय, क्षारमय तप्त कटाह सदृश सव ओर से परितृप्त तथा दहकते भूमिभाग को शीतल करेगा।

तंसि च णं पुक्खलसंवट्टगंसि महामेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं खीरमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ, भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं, तदणुरूवं च णं विक्खंभवाहल्लेणं।

यों सात दिन-रात तक पुष्कर संवर्तक महामेघ के वरस जाने पर क्षीरमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई चौड़ाई तथा विस्तार में भरत क्षेत्र जितना होगा। वह क्षीरमेघ नामक

१. वया.स.७, उ.६, सु.३५-३७

तए णं से खीरमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव खिप्पामेव जुग-मुसल-मुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिस्सइ, जेणं भरहवासस्स भूमीए वण्णं गंधं रसं फासं च जणइस्सइ।

महामेघ शीघ्र ही गर्जन करेगा यावत् शीघ्र ही युग-मूसल और मुष्टि परिमित धाराओं से सर्वत्र एक सदृश सात दिन-रात तक वर्षा करेगा। जिससे भरत क्षेत्र की भूमि में शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस तथा शुभ स्पर्श उत्पन्न हो जायेंगे।

तंसि च णं खीरमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि इत्थ णं घयमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ। भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं, तदणुरूवं च णं विक्खंभबाहल्लेणं तए णं से घयमेहे महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव वासं वासिस्सइ। जेणं भरहस्स वासस्स भूमीए सिणेहभावं जणइस्सइ।

उस क्षीरमेघ के सात दिन-रात बरस जाने पर घृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई चौड़ाई और विस्तार में भरत क्षेत्र जितना होगा। वह घृतमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा यावत् वर्षा करेगा। इस प्रकार वह भरत क्षेत्र की भूमि में स्नेहभाव स्निग्धता उत्पन्न करेगा।

तंसि च णं घयमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं अमयमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ। भरहप्पमाणमित्तं आयामेणं तदणुरूवं च णं विक्खंभवाहल्लेणं, तए णं से अमयमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव वासं वासिस्सइ जेणं भरहे वासे रूक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरिय-ओसहिं पवालंकुरमाईए तणवणस्सइकाइए जणइस्सइ।

उस घृतमेघ के सात दिन-रात तक बरस जाने पर अमृतमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई चौड़ाई और विस्तार में भरत क्षेत्र जितना होगा। वह अमृतमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा यावत् वर्षा करेगा। इस प्रकार वह भरत क्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, घास, पर्वग, गन्ने आदि हरित हरियाली दूब आदि औषधि जड़ी बूटी पत्ते तथा कोंपल आदि तृण वनस्पतियों को उत्पन्न करेगा।

तंसि च णं अमयमेहंसि सत्तरत्तं णिवतितंसि समाणंसि एत्थ णं रसमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ। भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं तदणुरूवं च विक्खंभवाहल्लेणं। तए णं से रसमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव वासं वासिस्सइ।

उस अमृतमेघ के इस प्रकार सात दिन-रात बरस जाने पर रसमेघ नामक महामेघ प्रकट होगा। वह लम्बाई चौड़ाई और विस्तार में भरत क्षेत्र जितना होगा। फिर वह रसमेघ नामक विशाल बादल शीघ्र ही गर्जन करेगा यावत् वर्षा करेगा।

जेणं तेसिं बहूणं रूक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालंकुरमादीणं १. तित्त, २. कडुअ, ३. कसाय, ४. अंबिल, ५. महुरे पंचविहे रसविसेसे जणइस्सइ।

जिससे उन वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि, पत्ते और कोंपल आदि में १. तिक्त, २. कटुक, ३. कषाय, ४. अम्ल तथा ५. मधुर इन पाँच प्रकार के रसों को उत्पन्न करेगा।

तए णं भरहे वासे भविस्सइ परूढरूक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरिअ-ओसहिए उवचियतय पत्त पवालंकुर पुप्फ-फलसमुइए सुहोवभोगे या वि भविस्सइ।

तब भरत क्षेत्र में वृक्ष गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि, पत्ते तथा कोंपल आदि उगेंगे। उनकी त्वचा छाल, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प, फल ये सब परिपुष्ट होंगे और सुखपूर्वक सेवन करने योग्य होंगे।

तए णं से मणुआ भरहे वासे परूढरूक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वय-हरिअ-ओसहिअं-उवचितय-पत्त-पवाल-पल्लवंकुर-पुप्फ-फल-समुइअं सुहोवभोगं जायं जायं चावि पासहिंति पासित्ता विलेहिंतो णिद्धाइस्संति, णिद्धाइत्ता हट्ठतुट्ठा अण्णमण्णं सद्दाविस्संति, सद्दावित्ता एवं वदिस्संति–

तब वे बिलवासी मनुष्य देखते हैं कि भरत क्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली औषधि ये सब उत्पन्न हो गये हैं। छाल, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प तथा फल परिपुष्ट एवं सुखोपभोग्य हो गये हैं, ऐसा देखकर वे बिलों से निकलेंगे और निकलकर हर्षित एवं प्रसन्न होते हुए एक-दूसरे को पुकारेंगे, पुकारकर कहेंगे–

जाए णं देवाणुप्पिआ ! भरहे वासे परूढरूक्ख गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वय-हरिय-ओसहिए-उवचिय-तय-पत्त-पवाल-पल्लवंकुर-पुप्फ-फल-समुइए सुहोवभोगे तं जे णं देवाणुप्पिआ ! अम्हे केइ अज्जप्पभिइ असुभं कुणिमं आहारं आहारिस्सइ से णं अणेगाहिं छायाहिं वज्जणिज्जेत्ति कट्टु संठिइं ठवेस्संति, ठवेत्ता भरहे वासे सुहंसुहेणं अभिरममाणा अभिरममाणा विहरिस्संति।

"हे देवानुप्रियों ! भरत क्षेत्र में वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बेल, तृण, पर्वग, हरियाली, औषधि ये सब उत्पन्न हो गये हैं। तथा छाल, पत्र, प्रवाल, पल्लव, अंकुर, पुष्प, फल ये सब परिपुष्ट एवं सुखोपभोग्य हो गये हैं। अतः हे देवानुप्रियों ! आज से जो कोई अशुभ मांसादिमूलक आहार करेगा उसकी छाया भी वर्जनीय होगी।" इस प्रकार से विचार करके मर्यादा की व्यवस्था करेंगे और व्यवस्था करके भरत क्षेत्र में सुखशान्ति का अनुभव करते हुए रहेंगे।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

प्र. भंते ! उस समय (उत्सर्पिणी काल के दुःषमा नामक द्वितीय आरक में) भरत क्षेत्र का आकार भावस्वरूप कैसा होगा ?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा, मुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

उ. गौतम ! मुरज तथा मृदंग के ऊपरी भाग जैसा उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा यावत् अनेक प्रकार की कृत्रिम एवं अकृत्रिम पाँच वर्ण की मणियों से उपशोभित होगा।

प. तीसे णं भंते ! समाए मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ?

प्र. भंते ! उस समय के मनुष्यों का आकार भाव स्वरूप कैसा होगा?

उ. गोयमा ! समाए मणुआणं छव्विहं संघयणं, छव्विहे संठाणे, बहूईओ रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउअं पालेहिंति, पालेत्ता अप्पेगइआ णिरयगामी, अप्पेगइआ तिरियगामी, अप्पेगइआ मणुयगामी, अप्पेगइआ देवगामी ण सिज्झंति।

उ. गौतम ! उन मनुष्यों का छह प्रकार का संहनन एवं छह प्रकार का संस्थान होगा। उनकी ऊँचाई अनेक प्रकार के हाथों की होगी। उनका जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ वर्ष का आयुष्य होगा और आयुष्य को भोगकर उनमें से कई नरक गति में, कई तिर्यञ्च गति में, कई मनुष्य गति में और कई देव गति में उत्पन्न होंगे, किन्तु सिद्ध नहीं होंगे।

३. तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव परिवड्ढेमाणे-परिवड्ढेमाणे एत्थ णं दुस्समसुसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ, समणाउसो !

३. हे आयुष्मन् श्रमण ! उस आरे के इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण काल व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी काल का दुषम-सुषमा नामक तृतीय आरा आरंभ होगा। उसमें अनन्त वर्ण पर्याय आदि क्रमशः परिवर्द्धित होते जायेंगे।

प. तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

प्र. भंते ! उस काल में भरत क्षेत्र का आकार भावस्वरूप कैसा होगा?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा, मुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहिं कित्तिमेहिं चेव, अकित्तिमेहिं चेव।

उ. गौतम ! वह मुरज या मृदंग के ऊपरी भाग के समान उसका भूमिभाग बड़ा समतल एवं रमणीय होगा। वह नानाविध कृत्रिम तथा अकृत्रिम पंचरंगी मणियों से उपशोभित होगा।

प. तेसि णं भंते ! मणुआणं केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ?

प्र. भंते ! उन मनुष्यों का आकार भावस्वरूप कैसा होगा?

उ. गोयमा ! तेसि णं मणुआणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे बहूइ धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउअं पालिहिंति, पालेत्ता, अप्पेगइआ णिरयगामी, अप्पेगइआ तिरियगामी, अप्पेगइआ मणुयगामी, अप्पेगइआ देवगामी, अप्पेगइआ सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति।

उ. गौतम ! उन मनुष्यों का छह प्रकार का संहनन तथा छह प्रकार संस्थान होगा। उनके शरीर की ऊँचाई अनेक धनुष परिमाण होगी। उनका आयु जघन्य अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट पूर्व कोटि का होगा। आयु भोगकर उनमें से कई नरक गति में, कई तिर्यञ्च गति में, कई मनुष्य गति में और कई देव गति में जायेंगे। कई सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिर्वृत्त होंगे तथा समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

तीसे णं समाए तओ वंसा समुप्पज्जिस्संति, तं जहा–१. तित्थगरवंसे, २. चक्कवट्टिवंसे, ३. दसारवंसे। तीसे णं समाए तेवीसं तित्थगरा, एक्कारस चक्कवट्टि, णव बलदेवा, णव वासुदेवा समुप्पज्जिस्संति।

उस काल में तीन वंश उत्पन्न होंगे, यथा–१. तीर्थंकर वंश, २. चक्रवर्ती वंश, ३. दशार वंश। उस काल में तेईस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव तथा नौ वासुदेव उत्पन्न होंगे।

४. तीसे णं समाए सागरोवमकोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहिं ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिवुड्ढी परिवड्ढेमाणे-परिवड्ढेमाणे एत्थ णं सुसमदूसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ, समणाउसो !

४. हे आयुष्मन् श्रमण ! उस आरे के बयालीस हजार वर्ष कम एक सागरोपम कोडाकोडी काल व्यतीत हो जाने पर उत्सर्पिणी काल का सुषम दुषमा नामक चतुर्थ आरा प्रारम्भ होगा। उसमें अनन्त वर्ण पर्याय आदि की क्रम से उत्तरोत्तर अनन्तगुण वृद्धि होती जायेगी।

सा णं समा तिहा विभजिस्सइ तं जहा–१. पढमे तिभागे, २. मज्झिमे तिभागे, ३. पच्छिमे तिभागे।

वह काल तीन भागों में विभक्त होगा, यथा–१. प्रथम त्रिभाग, २. मध्यम त्रिभाग, तथा ३. अन्तिम त्रिभाग।

प. तीसे णं भंते ! समाए पढमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ?

प्र. भंते ! उस काल के प्रथम त्रिभाग में भरत क्षेत्र का आकार भावस्वरूप कैसा होगा?

उ. गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ।

उ. गौतम ! उसका भूमिभाग बहुत समतल तथा रमणीय होगा।

मणुआणं जाव ओसप्पिणीए पच्छिमे तिभागे वत्तव्वया सा भाणिअव्वा कुलगरवज्जा उसभसामिवज्जा।

अवसर्पिणी काल के सुषम-दुषमा आरे के अन्तिम तृतीयांश में जैसे मनुष्यों का वर्णन किया गया है वैसा ही यहाँ करना चाहिए।

अण्णे पढंति तं जहा–तीसे णं समाए पढमे तिभाए इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जिस्संति, तं जहा–

१. सुमई, २. पडिस्सुई, ३. सीमंकरे, ४. सीमंधरे, ५. खेमंकरे, ६. खेमंधरे, ७. विमलवाहणे, ८. चक्खुमं, ९. जसमं, १०. अभिचंदे, ११. चंदाभे, १२. सेणई, १३. मरूदेवे, १४. णाभी, १५. उसभे।

सेसं तं चेव, दंडणीईओ पडिलोमाओ णेअव्वाओ।

तीसे णं समाए पढमे तिभाए रायधम्मे, गणधम्मे, पाखंडधम्मे, अग्गिधम्मे, धम्मेचरणे अ वोच्छिज्जिस्सइ।

तीसे णं समाए मज्झिमपच्छिमेसु तिभागेसु पढममज्झिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणिअव्वा।

५-६. सुसमा तहेव सुसमसुसमा वि तहेव।
छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जिस्संति जाव सणिचारी॥

–जंबू. वक्ख. २, सु. ४७-५०

किन्तु इसमें कुलकर और भगवान ऋषभ का वर्णन नहीं करें। इस संदर्भ में अन्य आचार्यों का कथन इस प्रकार है–
उस काल के प्रथम त्रिभाग में पन्द्रह कुलकर होंगे, यथा–

१. सुमति, २. प्रतिश्रुति, ३. सीमंकर, ४. सीमन्धर, ५. क्षेमंकर, ६. क्षेमंधर, ७. विमलवाहन, ८. चक्षुष्मान्, ९. यशस्वान्, १०. अभिचन्द्र, ११. चन्द्राभ, १२. प्रसेनजित, १३. मरूदेव, १४. नाभि, १५. ऋषभ।

शेष कथन उसी प्रकार है। दण्डनीतियाँ विपरीत क्रम से समझनी चाहिए।

उस काल के प्रथम त्रिभाग में राज धर्म, गण धर्म, पाखण्ड धर्म, अग्नि धर्म तथा धर्माचरण विच्छिन्न हो जायेगा।

उस समय के मध्यम तथा अन्तिम त्रिभाग का कथन अवसर्पिणी के प्रथम और मध्यम त्रिभाग के समान जानना चाहिए।

५-६. सुषमा और सुषम-सुषमा नामक पाँचवें छट्ठे आरों का वर्णन भी अवसर्पिणी काल के सुषम और सुषम-सुषमा आरे के समान जानना चाहिए। शनिश्चर पर्यन्त छह प्रकार के मनुष्यों का वर्णन भी इसी प्रकार है।

पृ.७०७

खेत्तपलिओवमस्स भेया–

सूत्र २० (ख)

प. से किं तं खेत्तपलिओवमे?

उ. खेत्तपलिओवमे-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–
१. सुहुमे य, २. वावहारिए य।
तत्थ णं जे से सुहुमे से ठप्पे।

–अणु. सु. ३९२

क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप–

प्र. क्षेत्रपल्योपम का क्या स्वरूप है?

उ. क्षेत्रपल्योपम दो प्रकार का कहा गया है, यथा–
१. सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम, २. व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम।
उनमें से सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम स्थापनीय है।

सोदाहरणं वावहारिय खेत्त पलिओवमस्स सरूव परूवणं–

सूत्र २० (ग)

प. से किं तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे?

उ. वावहारिए खेत्तपलिओवमे–
से जहानामए पल्ले सिया जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयण उड्ढं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,

से णं पल्ले एगाहिय बेहिय तेहिय जाव भरिए वालग्गकोडीणं।

तेणं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, णो वाओ हरेज्जा जाव णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा।

जे णं तस्स पल्लस्स आगासपदेसा तेहिं वालग्गेहिं, अप्फुण्णा तओ णं समए-समए एगमेगं आगासपएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे जाव निट्ठिए भवइ।

से तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे।

एएसिं पल्लाणं, कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया तं वावहारियस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परिमाणं।

उदाहरण सहित व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम के स्वरूप का प्ररूपण–

प्र. व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम का क्या स्वरूप है?

उ. व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है–
जैसे कोई एक योजन आयाम-विष्कम्भ और एक योजन ऊँचा तथा कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला (धान्य मापने के पल्य के समान) पल्य हो।

उस पल्य को दो, तीन यावत् सात दिन के उगे बालाग्रों से इस प्रकार भरा जाए कि–

उन बालाग्रों को अग्नि जला न सके, वायु उड़ा न सके यावत् उनमें दुर्गन्ध भी पैदा न हो।

तत्पश्चात् उस पल्य के जो आकाशप्रदेश बालाग्रों से व्याप्त हैं, उन प्रदेशों में से समय-समय एक-एक आकाशप्रदेश का अपहरण किया जाए-निकाला जाए तो जितने काल में वह पल्य खाली हो जाए यावत् विशुद्ध हो जाए। उतने काल को व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम कहते हैं।

इस पल्योपम की दस गुणित कोटाकोटि का एक व्यावहारिक क्षेत्रसागरोपम का परिमाण होता है। (अर्थात् दस कोटाकोटि व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का एक व्यावहारिक क्षेत्र सागरोपम होता है।)

प. एएहिं वावहारिएहिं खेत्तपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पयोयणं?

उ. एएहिं वावहारिएहिं खेत्तपलिओवम-सागरोवमेहिं नत्थि किंचिप्पओयणं केवलं तु पण्णवणा पण्णविज्जइ।

से तं वावहारिए खेत्तपलिओवमे। -अणु. सु. ३९३-३९५

प्र. इन व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है?

उ. इन व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता मात्र इनके स्वरूप की प्ररूपणा ही की गई है।

यह व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम (एवं सागरोपम) का स्वरूप है।

सोदाहरणं सुहुम खेत्तपलिओवमस्स सरूव परूवणं-

उदाहरण सहित सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम के स्वरूप का प्ररूपण-

सूत्र २० (घ)

प. से किं तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे?

उ. सुहुमे खेत्तपलिओवमे-

से जहाणामए पल्लेसिया-जोयणं आयाम-विक्खंभेणं, जोयणं उड्ढं उच्चतेणं, तिगुणं सविसेसं परिक्खेवेणं,

से णं पल्ले एगाहिय-वेहिय-तेहिय जाव उक्कोसेणं सत्तरत्तपरूढाणं सम्मट्ठे सन्निचित्ते भरिए वालग्गकोडीणं तत्थ णं एगमेगे वालग्गे असंखेज्जाइं खंडाई कज्जइ, ते णं वालग्गा दिट्ठी ओगाहणाओ असंखेज्जइभागमेत्ता सुहुमस्स पणगजीवस्स सरीरोगाहणाओ असंखेज्जगुणा।

ते णं वालग्गा णो अग्गी डहेज्जा, नो वाओ हरेज्जा, णो कुच्छेज्जा, णो पलिविद्धंसेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा।

जे णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा तेहिं वालग्गेहिं अप्फुण्णा वा अणप्फुण्णा वा, तओ णं समए-समए एगमेगं आगासपएसं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले खीणे नीरए निल्लेवे णिट्ठिए भवइ। से तं सुहुमे खेत्तपलिओवमे।

तत्थ णं चोयए पण्णवगं एवं वयासी-

प. अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणप्फुण्णा?

उ. हंता, अत्थि।

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. से जहाणामए कोट्ठए सिया कोहंडाणं भरिए,

तत्थ णं माउलुंगा पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थ णं विल्ला पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थ णं आमलया पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थ णं वयरा पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थं णं चणणा पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थ णं मुग्गा पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थ णं सरिसवा पक्खित्ता ते वि माया,

तत्थ णं गंगावालुया पक्खित्ता सा वि माया,

एवामेव एएणं दिट्ठंतेणं अत्थि णं तस्स पल्लस्स आगासपएसा जे णं तेहिं वालग्गेहिं अणप्फुण्णा।

प्र. सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का क्या स्वरूप है?

उ. सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है-

जैसे धान्य के पल्य के समान एक योजन लम्बा-चौड़ा, एक योजन ऊँचा और कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला एक पल्य हो।

फिर उस पल्य को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् सात दिन के उगे हुए बालाग्र नीचे से ऊपर तक ठसाठस भरे जाएँ और उन वालाग्रों के असंख्यात ऐसे खण्ड किए जाएँ, जो दृष्टि के विषयभूत पदार्थ की अपेक्षा असंख्यातवें भाग-प्रमाण हों एवं सूक्ष्मपनक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यातगुणे हों।

उन वालाग्रखण्डों को न अग्नि जला सके और न वायु उड़ा सके, वे न सड़-गल सकें और न जल से भीग सकें, उनमें न दुर्गन्ध भी उत्पन्न हो सके।

उस पल्य के वालाग्रों से जो आकाशप्रदेश स्पष्ट हुए हों और स्पष्ट न हुए हों। उनमें से प्रति समय एक-एक आकाशप्रदेश का अपहरण किया जाए अर्थात् गणना की जाए तो जितने काल में वह पल्य क्षीण, नीरज, निर्लेप एवं सर्वात्मना विशुद्ध हो जाए, उस काल को सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम कहते हैं।

इस प्रकार प्ररूपणा करने पर जिज्ञासु ने पूछा-

प्र. क्या उस पल्य के ऐसे भी आकाशप्रदेश हैं जो वालाग्रखण्डों से अस्पष्ट हों?

उ. हाँ, हैं।

प्र. इस विषय में कोई दृष्टान्त है?

उ. हाँ, है। जैसे कोई एक कोष्ठ (कोठार) कूष्मांड (कोला) के फलों से भरा हुआ हो,

फिर उसमें विजौरा फल डाले जाएँ तो वे भी उसमें समा जाते हैं।

फिर उसमें विल्वफल डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं।

फिर उसमें आँवला डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं।

फिर उसमें वेर डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं।

फिर उसमें चने डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं।

फिर उसमें मूँग के दाने डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं।

फिर उसमें सरसों के दाने डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं।

इसके वाद उसमें गंगा महानदी की वालू डाली जाए तो वह भी समा जाती है।

इसी प्रकार इस दृष्टान्त से उस पल्य में ऐसे भी आकाशप्रदेश होते हैं जो उन वालाग्रखण्डों से अस्पृष्ट रह जाते हैं।

एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया तं सुहुमस्स खेत्तसागरोवमस्स एगस्स भवे परीमाणं।

प. एएहिं सुहुमेहिं खेत्तपलिओवम-सागरोवमेहिं किं पओयणं?

उ. एएहिं. सुहुमेहिं पलिओवम-सागरोवमेहिं दिट्ठियाए दव्वाइं मविज्जंति। —अणु. सु. ३९६-३९८

इन पल्यों को दस कोटाकोटि से गुणा करने पर एक सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम का परिमाण होता है।

प्र. इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है?

उ. इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम द्वारा दृष्टिवाद में वर्णित द्रव्यों की गणना की जाती है।

पृ. ७१८

सुरस्स आउट्टिकरणकालस्स परूवणं—

सूत्र ४० (२)

चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स हेमंताणं एक्कसत्तरीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं सव्ववाहिराओ मंडलाओ सूरीए आउट्टिं करेइ। —सम. सम. ७१, सु. १

सूर्य के आवृत्तिकरणकाल का प्ररूपण—

चौथे चन्द्र-सम्वत्सर के हेमन्त ऋतु के इकहत्तर दिन-रात वीतने पर सूर्य सर्वबाह्यमण्डल से (आभ्यंतर मण्डल की ओर) आवृत्ति करता है।

पृ. ७२२

एगूणतीस राइंदिय मासणामाणि—

सूत्र ४७ (ख)

आसाढे णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

भद्दवए णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

कत्तिए णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

पोसे णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

फग्गुणे णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।

वइसाहे णं मासे एगूणतीसराइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते। —सम. सम. २९, सु. २-८

उनतीस रात-दिन वाले मासों के नाम—

आषाढ़ मास दिन-रात की गणना से उनतीस दिन-रात का कहा गया है।

भाद्रपद मास दिन-रात की गणना से उनतीस दिन-रात का कहा गया है।

कार्तिक मास दिन-रात की गणना से उनतीस दिन-रात का कहा गया है।

पौष मास दिन-रात की गणना से उनतीस दिन-रात का कहा गया है।

फाल्गुन मास दिन-रात की गणना से उनतीस दिन-रात का कहा गया है।

वैशाख मास दिन-रात की गणना से उनतीस दिन-रात का कहा गया है।

किमाइया संवच्छराई जुगे अयणाइ संखा य परूवणं—

सूत्र ४७ (ग)

प. किमाइआ णं भंते ! संवच्छरा, किमाइआ अयणा, किमाइआ उऊ, किमाइआ मासा, किमाइआ पक्खा, किमाइआ अहोरत्ता, किमाइआ मुहुत्ता, किमाइआ करणा, किमाइआ णक्खत्ता पण्णत्ता?

उ. गोयमा ! चंदाइआ संवच्छरा, दक्खिणाइया अयणा, पाउसाइआ उऊ, सावणाइआ मासा, वहुलाइआ पक्खा, दिवसाइआ अहोरत्ता, रोद्दाइआ मुहुत्ता, वालवाइआ करणा, अभिजिआइआ णक्खत्ता पण्णत्ता, समणाउसो !

प. पंचसंवच्छरिए णं भंते ! जुगे केवइआ अयणा, केवइआ उऊ, केवइआ मासा, केवइआ पक्खा, केवइआ अहोरत्ता, केवइआ मुहुत्ता पण्णत्ता?

युग में आदि संवत्सर कौन और अयन आदि की संख्या का प्ररूपण—

प्र. भंते ! संवत्सरों में आदि (प्रथम) संवत्सर कौन-सा है? अयनों में प्रथम अयन कौन-सा है? ऋतुओं में प्रथम ऋतु कौन-सी है? महीनों में प्रथम महीना कौन-सा है? पक्षों में प्रथम पक्ष कौन-सा है? दिन-रात में प्रथम कौन है? मुहूर्तों में प्रथम मुहूर्त कौन-सा है? करणों में प्रथम करण कौन-सा है? नक्षत्रों में प्रथम नक्षत्र कौन-सा है?

उ. हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! संवत्सरों में चन्द्र संवत्सर प्रथम है, अयनों में दक्षिणायन प्रथम है, ऋतुओं में पावस (आषाढ़-श्रावण रूप) ऋतु प्रथम है, महीनों में श्रावण मास प्रथम है, पक्षों में कृष्ण पक्ष प्रथम है, दिन-रात में दिवस प्रथम है, मुहूर्तों में रुद्र मुहूर्त प्रथम है, करणों में वालवकरण प्रथम है और नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र प्रथम कहा है।

प्र. भंते ! पंच संवत्सरिक युग में अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र तथा मुहूर्त कितने-कितने बताये गये हैं?

उ. गोयमा ! पंचसंवच्छरिए णं जुगे दस अयणा, तीसं उऊ, सट्ठी मासा, एगे वीसुत्तरे पक्खसए, अट्ठारसतीसा अहोरत्तराया, चउप्पण्णं मुहुत्तसहस्सा णवसया पण्णत्ता।

–जंबू. वक्ख. ७, सु. १८७

उ. गौतम ! पंच सांवत्सरिक युग में अयन दस, ऋतुएँ तीस, मास साठ, पक्ष एक सौ बीस, अहोरात्र अठारह सौ तीस तथा मुहूर्त चौपन हजार नौ सौ कहे गये हैं।

पृ.७२८

रयणिकालस्स अभिवुड्ढि तिहि परूवणं–

रजनीकाल की अभिवृद्धि तिथि का प्ररूपण–

सूत्र ५६ (ख)

सावण-सुद्ध-सत्तमीए णं सूरिए सत्तावीसंगुलियं पोरिसिच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं निवड्ढेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवड्ढेमाणे चारं चरइ।

–सम. सम. २७, सु. ६

सूर्य श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन सत्ताईस अंगुल की पौरुषी छाया करके दिवस क्षेत्र की ओर लौटता हुआ और रजनी क्षेत्र की ओर बढ़ता हुआ संचरण करता है।

अलोक

पृ. ७३९

ईसिपब्भाराए पुढवीए अलोगस्स अंतरं परूवणं–

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी से अलोक के अंतर का प्ररूपण–

सूत्र ९ (ख)

प. ईसिपब्भाराए णं भंते ! पुढवीए अलोगस्स य केवइए अवाहाए अंतरे पण्णत्ते?

उ. गोयमा ! देसूणं जोयणं अवाहाए अंतरे पण्णत्ते।

–विया. स. १४, उ. ८, सु. १७

प्र. भंते ! ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी और अलोक का कितना अवाधा अन्तर कहा गया है?

उ. गौतम ! (इन दोनों का) अवाधा अन्तर देशोन योजन (एक योजन से कुछ कम) का कहा गया है।

माप निरूपण

पृ. ७६०

गणणाणुपुव्वी परूवणं–

गणनानुपूर्वी का प्ररूपण–

सूत्र ९ (ख)

प. से किं तं गणणाणुपुव्वी?

उ. गणणाणुपुव्वी-तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी,

३. अणाणुपुव्वी।

प. १. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

उ. पुव्वाणुपुव्वी-एक्को दस सयं सहस्सं दससहस्साइं सयसहस्सं दससयसहस्साइं कोडी दस कोडीओ कोडीसयं दसकोडिसयाइं।

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. २. से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

उ. पच्छाणुपुव्वी-दसकोडिसयाइं जाव एक्को।

से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. ३. से किं तं अणाणुपुव्वी?

उ. अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए दसकोडिसयगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी।

प्र. गणनानुपूर्वी क्या है?

उ. गणनानुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा–

१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी,

३. अनानुपूर्वी।

प्र. १. पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उ. पूर्वानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–एक, दस, सौ, सहस्र, दस सहस्र, शतसहस्र, दस शतसहस्र, कोटि, दस कोटि, कोटिशत, दस कोटिशत, इस क्रम से गिनती करना।

यह पूर्वानुपूर्वी है।

प्र. २. पश्चानुपूर्वी क्या है?

उ. पश्चानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–विपरीत क्रम से दस अरब से लेकर एक पर्यन्त की गिनती करना।

यह पश्चानुपूर्वी है।

प्र. ३. अनानुपूर्वी क्या है?

उ. अनानुपूर्वी का स्वरूप इस प्रकार है–इन्हीं को एक से लेकर दस अरब पर्यन्त की एक-एक वृद्धि वाली श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर गुणा करने पर जो संख्या हो, उनमें से आदि और अन्त के दो रूपों को कम करने पर शेष रही संख्या अनानुपूर्वी है।

यह अनानुपूर्वी है।

से तं गणणाणुपुव्वी। —अणु. सु. २०४

यह गणनानुपूर्वी है।

वित्थरओ संखेज्जाइ गणणासंखा परूवणं—

विस्तार से संख्यातादि गणना संख्या का प्ररूपण—

सूत्र ९ (ग)

प. से किं तं गणणासंखा?

उ. गणणासंखा-एक्को गणणं न उवेइ, दुप्पभितिसंखा, तं जहा—

१. संखेज्जए, २. असंखेज्जए, ३. अणंतए।

प. से किं तं संखेज्जए?

उ. संखेज्जए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए, २. उक्कोसए, ३. अजहण्णमणुक्कोसए।

प. से किं तं असंखेज्जए?

उ. असंखेज्जए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. परित्तासंखेज्जए, २. जुत्तासंखेज्जए,
३. असंखेज्जासंखेज्जए।

प. से किं तं परित्तासंखेज्जए?

उ. परित्तासंखेज्जए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए, २. उक्कोसए, ३. अजहण्णमणुक्कोसए।

प. से किं तं जुत्तासंखेज्जए?

उ. जुत्तासंखेज्जए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए. २. उक्कोसए, ३. अजहण्णमणुक्कोसए।

प. से किं तं असंखेज्जासंखेज्जए?

उ. असंखेज्जासंखेज्जए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए, २. उक्कोसए, ३. अजहण्णमणुक्कोसए।

प. से किं तं अणंतए?

उ. अणंतए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. परित्ताणंतए, २. जुत्ताणंतए, ३. अणंताणंतए।

प. से किं तं परित्ताणंतए?

उ. परित्ताणंतए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए, २, उक्कोसए, ३, अजहण्णमणुक्कोसए।

प. से किं तं जुत्ताणंतए?

उ. जुत्ताणंतए-तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए, २. उक्कोसए, ३. अजहण्णमणुक्कोसए।

प. से किं तं अणंताणंतए?

उ. अणंताणंतए-दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. जहण्णए य, २. अजहण्णमणुक्कोसए य।

प. जहण्णयं संखेज्जयं केत्तियं होइ?

उ. दोरूवाइं, तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं संखेज्जयं ण पावइ।

प. उक्कोसयं संखेज्जयं केत्तियं होइ?

उ. उक्कोसयस्स संखेज्जयस्स परूवणं करिस्सामि—

प्र. गणनासंख्या का क्या स्वरूप है?

उ. गणनासंख्या-एक गणना में नहीं लिया जाता है, इसलिए दो से गणना प्रारम्भ होती है, यथा—

१. संख्यात, २. असंख्यात, ३. अनन्त।

प्र. संख्यात क्या है?

उ. संख्यात तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. उत्कृष्ट, ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम)।

प्र. असंख्यात क्या है?

उ. असंख्यात तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. परीतासंख्यात, २. युक्तासंख्यात,
३. असंख्यातासंख्यात।

प्र. परीतासंख्यात क्या है?

उ. परीतासंख्यात तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. उत्कृष्ट, ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

प्र. युक्तासंख्यात क्या है?

उ. युक्तासंख्यात तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. उत्कृष्ट, ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

प्र. असंख्यातासंख्यात क्या है?

उ. असंख्यातासंख्यात तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. उत्कृष्ट, ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

प्र. अनन्त क्या है?

उ. अनन्त तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. परीतानन्त, २. युक्तानन्त, ३. अनन्तानन्त।

प्र. परीतानन्त क्या है?

उ. परीतानन्त तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. उत्कृष्ट, ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

प्र. युक्तानन्त क्या है?

उ. युक्तानन्त तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. उत्कृष्ट, ३. अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

प्र. अनन्तानन्त क्या है?

उ. अनन्तानन्त दो प्रकार का कहा गया है, यथा—

१. जघन्य, २. अजघन्य-अनुत्कृष्ट।

प्र. जघन्य संख्यात का प्रमाण कितना होता है?

उ. दो की संख्या जघन्य संख्यात है, उसके पश्चात् उत्कृष्ट से पहले अजघन्यानुत्कृष्ट पर्यन्त (मध्यम) संख्यात जानना चाहिए।

प्र. उत्कृष्ट संख्यात कितने प्रमाण में होता है?

उ. उत्कृष्ट संख्यात की प्ररूपणा इस प्रकार करूँगा—

से जहानामए पल्ले सिया, एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस य सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसाहियं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।

से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए।

तओ णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीव-समुद्दाणं उद्धारे घेप्पइ।

एगे दीवे एगे समुद्दे एवं पक्खिप्पमाणेहिं जावइया णं दीव-समुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवइए खेत्ते पल्ले आइट्ठे।

से णं पल्ले सिद्धत्थयाणं भरिए।

तओ णं तेहिं सिद्धत्थएहिं दीव-समुद्दाणं उद्धारे घेप्पइ।

एगे दीवे एगे समुद्दे एवं पक्खिप्पमाणेहिं जावइया णं दीव-समुद्दा तेहिं सिद्धत्थएहिं अप्फुण्णा एस णं एवइए खेत्ते पल्ले पढमा सलागा,

एवइयाणं सलागाणं असंलप्पा लोगा भरिया तहा वि उक्कोसयं संखेज्जयं ण पावइ।

प. जहा को दिट्ठंतो?

उ. से जहानामए मंचे सिया आमलगाणं भरिए, तत्थ णं एगे आमलए पक्खित्ते से माए, अण्णे वि पक्खित्ते से वि माए, अन्ने वि पक्खित्ते से वि माए एवं पक्खिप्पमाणे पक्खिप्पमाणे होही से आमलए जम्मि पक्खित्ते से मंचए भरिज्जिहिइ जे वि तत्थ आमलए न माहिइ।

एवामेव उक्कोसए संखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं भवइ।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं ण पावइ।

प. उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं केत्तियं होइ?

उ. जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं जहण्णयपरित्ता संखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं होइ।

अहवा जहन्नयं जुत्तासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं परित्तासंखेज्जयं होइ।

प. जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं केत्तियं होइ?

उ. जहण्णयं परित्तासंखेज्जयं जहण्णयपरित्तासंखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं हवइ।

अहवा उक्कोसए परित्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं जुत्तासंखेज्जयं होइ।

जैसे कि एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा और तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष एवं साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक परिधि वाला कोई एक पल्य कहा गया है।

इस पल्य को सरसों के दानों से भर दिया जाए।

उन सरसों के दानों को गिनकर द्वीप और समुद्रों का प्रमाण निकाला जाता है।

अर्थात् एक सर्षप को द्वीप में और एक को समुद्र में प्रक्षेप करते-करते उन सर्षप दानों से जितने द्वीप-समुद्र स्पृष्ट हो जाए उतने क्षेत्र का एक अन्य अनवस्थित पल्य कल्पित किया जाए।

उस पल्य को सरसों के दानों से भर दिया जाए।

तदनन्तर उन सरसों के दानों से द्वीप-समुद्रों की संख्या का प्रमाण निकाला जाता है।

अर्थात् अनुक्रम से एक द्वीप में और एक समुद्र में इस तरह प्रक्षेप करते-करते जितने द्वीप समुद्र उन सरसों के दानों से स्पृष्ट हो जाएँ, उनके समाप्त होने पर एक दाना शलाका पल्य में डाल दिया जाए।

इस प्रकार के शलाका रूप पल्य में भरे हुए सरसों के दानों से अकथनीय द्वीप-समुद्र भरे तब भी उत्कृष्ट संख्या का स्थान प्राप्त नहीं होता है।

प्र. इसका क्या दृष्टान्त है?

उ. जैसे कोई एक मंच हो और वह आँवलों से पूरित हो, तदनन्तर एक आँवला डाला तो वह भी समा गया, दूसरा डाला तो वह भी समा गया, तीसरा डाला तो वह भी समा गया, इस प्रकार प्रक्षेप करते-करते अन्त में एक आँवला ऐसा होता है कि जिसके प्रक्षेप में मंच परिपूर्ण भर जाता है। उसके बाद आँवला डाला जाए तो वह नहीं समाता है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट संख्यात संख्या में एक का प्रक्षेप करने से जघन्य परीताअसंख्यात होता है।

तदनन्तर जहाँ तक उत्कृष्ट परीताअसंख्यात स्थान प्राप्त नहीं होता है वहाँ तक अजघन्य-अनुत्कृष्ट के स्थान हैं।

प्र. उत्कृष्ट परीताअसंख्यात का कितना प्रमाण है?

उ. जघन्य परीताअसंख्यात राशि को जघन्य परीताअसंख्यात राशि से परस्पर अभ्यास गुणित करके उसमें एक कम करने पर उत्कृष्ट परीताअसंख्यात का प्रमाण होता है।

अथवा एक न्यून जघन्य युक्ताअसंख्यात उत्कृष्ट परीताअसंख्यात का प्रमाण है।

प्र. जघन्य युक्ताअसंख्यात का कितना प्रमाण है?

उ. जघन्य परीताअसंख्यात राशि का जघन्य परीताअसंख्यात राशि से अन्योन्य अभ्यास करने पर प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य युक्ताअसंख्यात का प्रमाण होता है।

अथवा उत्कृष्ट परीताअसंख्यात के प्रमाण में एक का प्रक्षेप करने से जघन्य युक्ताअसंख्यात होता है।

आवलिया वि तत्तिया चेव,

आवलिका भी जघन्य युक्ताअसंख्यात तुल्य समय-प्रमाण वाली जानना चाहिए।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं ण पावइ।

तत्पश्चात् जघन्य युक्ताअसंख्यात से आगे जहाँ तक उत्कृष्ट युक्ताअसंख्यात प्राप्त न हो, वहाँ तक मध्यम युक्ताअसंख्यात कहना चाहिए।

प. उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं केत्तियं होइ ?

प्र. उत्कृष्ट युक्ताअसंख्यात का किनना प्रमाण है ?

उ. उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ।

उ. जघन्य युक्ताअसंख्यात राशि को आवलिका के समयों से परस्पर अभ्यास रूप गुणा करने पर प्राप्त प्रमाण में से एक न्यून करने पर उत्कृष्ट युक्ताअसंख्यात होता है।

अहवा जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्तासंखेज्जयं होइ।

अथवा जघन्य असंख्याताअसंख्यात राशि प्रमाण में से एक कम करने से उत्कृष्ट युक्ताअसंख्यात होता है।

प. जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं केत्तियं होइ ?

प्र. जघन्य असंख्याताअसंख्यात का क्या प्रमाण है ?

उ. जहण्णएणं जुत्तासंखेज्जएणं आवलिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ।

उ. जघन्य युक्ताअसंख्यात के साथ आवलिका की राशि का परस्पर अभ्यास करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य असंख्याताअसंख्यात है।

अहवा उक्कोसए जुत्तासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ।

अथवा उत्कृष्ट युक्ताअसंख्यात में एक का प्रक्षेप करने से जघन्य असंख्याताअसंख्यात होता है।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं ण पावइ।

तत्पश्चात् मध्यम स्थान होते और वे स्थान उत्कृष्ट असंख्याताअसंख्यात प्राप्त होने से पूर्व जानना चाहिए।

प. उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं केत्तियं होइ ?

प्र. उत्कृष्ट असंख्याताअसंख्यात का प्रमाण कितना है ?

उ. जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं जहण्णयं असंखेज्जा-संखेज्जयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं असंखेज्जासंखेज्जयं होइ।

उ. जघन्य असंख्याताअसंख्यात राशि को उसी जघन्य असंख्याताअसंख्यात राशि से अन्योन्य अभ्यास-गुणा करने पर प्राप्त संख्या में से एक न्यून करने पर उत्कृष्ट असंख्याता-असंख्यात है।

अहवा जहण्णयं परित्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं असंखेज्जा-संखेज्जयं होइ।

अथवा एक न्यून जघन्य परीतानन्त उत्कृष्ट असंख्याता-असंख्यात का प्रमाण है।

प. जहण्णयं परित्ताणं तयं केत्तियं होइ ?

प्र. जघन्य परीतानन्त का कितना प्रमाण है ?

उ. जहण्णयं असंखेज्जासंखेज्जयं जहण्णयं असंखेज्जा-संखेज्जमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ।

उ. जघन्य असंख्याताअसंख्यात राशि को उसी जघन्य असंख्याताअसंख्यात राशि से परस्पर अभ्यास रूप में गुणित करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है।

अहवा उक्कोसए असंखेज्जासंखेज्जए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं परित्ताणंतयं होइ।

अथवा उत्कृष्ट असंख्याताअसंख्यात में एक का प्रक्षेप करने से भी जघन्य परीतानन्त का प्रमाण होता है।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं परित्ताणंतयं ण पावइ।

तत्पश्चात् परीतानन्त का स्थान प्राप्त न होने से पूर्व तक अजघन्य-अनुत्कृष्ट परीतानन्त के स्थान होते हैं।

प. उक्कोसयं परित्ताणंतयं केत्तियं होइ ?

प्र. उत्कृष्ट परीतानन्त कितने प्रमाण में होता है ?

उ. जहण्णयं परित्ताणंतयं जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ।

उ. जघन्य परीतानन्त की राशि को उसी जघन्य परीतानन्त राशि से परस्पर अभ्यास रूप गुणित करके उसमें से एक न्यून करने पर उत्कृष्ट परीतानन्त का प्रमाण होता है।

अहवा जहण्णयं जुत्ताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं परित्ताणंतयं होइ।

अथवा जघन्य युक्तानन्त की संख्या में से एक न्यून करने से भी उत्कृष्ट परीतानन्त की संख्या बनती है।

प. जहण्णयं जुत्ताणंतयं केत्तियं होइ ?

प्र. जघन्य युक्तानन्त कितने प्रमाण में होता है ?

उ. जहण्णयं परित्ताणंतयं जहण्णयपरित्ताणंतयमेत्ताणं रासीणं अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ।

उ. जघन्य परीतानन्त की राशि को उसी राशि से अभ्यास रूप गुणा करने से प्राप्त प्रतिपूर्ण संख्या जघन्य युक्तानन्त है।

अहवा उक्कोसए परित्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं जुत्ताणंतयं होइ।

अथवा उत्कृष्ट परीतानन्त में एक प्रक्षिप्त करने से जघन्य युक्तानन्त होता है।

अभवसिद्धिया वि तेत्तिया चेव।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं जाव उक्कोसयं जुत्ताणंतयं ण पावइ।

प. उक्कोसयं जुत्ताणंतयं केत्तियं होइ?

उ. जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो रूवूणो उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ।

अहवा जहण्णयं अणंताणंतयं रूवूणं उक्कोसयं जुत्ताणंतयं होइ।

प. जहण्णयं अणंताणंतयं केत्तियं होइ?

उ. जहण्णएणं जुत्ताणंतएणं अभवसिद्धिया गुणिया अण्णमण्णब्भासो पडिपुण्णो जहण्णयं अणंताणंतयं होइ।

अहवा उक्कोसए जुत्ताणंतए रूवं पक्खित्तं जहण्णयं अणंताणंतयं होइ।

तेण परं अजहण्णमणुक्कोसयाइं ठाणाइं।

से तं गणणासंखा। —अणु. सु. ४९७-५१९

अभवसिद्धिक जीव भी इतने ही होते हैं।

उसके पश्चात् उत्कृष्ट युक्तानन्त के स्थान के पूर्व तक अजघन्योत्कृष्ट युक्तानन्त के स्थान हैं।

प्र. उत्कृष्ट युक्तानन्त कितने प्रमाण में होता है?

उ. जघन्य युक्तानन्त राशि के साथ अभवसिद्धिक राशि का परस्पर अभ्यास रूप गुणाकार करके प्राप्त संख्या में से एक न्यून करने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त की संख्या होती है।

अथवा जघन्य अनन्तानन्त में एक न्यून करने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है।

प्र. जघन्य अनन्तानन्त कितने प्रमाण में होता है?

उ. जघन्य युक्तानन्त के साथ अभवसिद्धिक जीवों को परस्पर अभ्यास रूप से गुणित करने पर प्राप्त पूर्ण संख्या जघन्य अनन्तानन्त का प्रमाण है।

अथवा उत्कृष्ट युक्तानन्त में एक प्रक्षेप करने से जघन्य अनन्तानन्त होता है।

तत्पश्चात् सभी स्थान अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त के होते हैं।

यह गणनासंख्या का स्वरूप है।

● ●

चरणानुयोगप्रकीर्णक

अवशेष पाठों का संकलन

(संबंधित विषय के पृष्ठ व सूत्रांक अंकित हैं)

भाग १, पृ. ३०

अणगार धम्म परूवणं–

सूत्र ३७

तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ, तं जहा–१. अगारधम्मं च, २. अणगारधम्मं च।

अणगारधम्मो ताव इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइयस्स।

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, मुसावाय-अदिण्णादाण-मेहुण-परिग्गह राईभोयणाओ वेरमणं, अयमाउसो !

अणगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्स सिक्खाए उवट्ठिए णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ। –उव. सु. ३७

अणगार धर्म का प्ररूपण–

भगवान ने धर्म दो प्रकार का कहा है, यथा–१. अगार धर्म, २. अनगार धर्म।

अनगार धर्म का साधक सर्वतः सर्वात्मभाव से सावद्यकार्यों का परित्याग करता हुआ मुंडित होकर गृहवास से अनगार अवस्था में प्रव्रजित होता है।

हे आयुष्मन् ! वह सम्पूर्णतः प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह तथा रात्रि भोजन से विरत होता है।

यह अणगारों के लिए आचरणीय धर्म कहा है, इस धर्म की शिक्षा और आचरण में उपस्थित निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी इसका पालन करते हुए आज्ञा के आराधक होते हैं।

भाग १, पृ. २०५

ओहेण समण चरणविही परूवणं–

सूत्र ३०३

रागद्दोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे।
जे भिक्खू रुम्भई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥३॥

दण्डाणं गारवाणं च, सल्लाणं च तियं तियं।
जे भिक्खू चयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥४॥

दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छ माणुसे।
जे भिक्खू सहई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥५॥

विगहा कसाय सन्नाणं, झाणाणं च दुयं तहा।
जे भिक्खू वज्जई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥६॥

वएसु इन्दियत्थेसु, समिईसु किरियासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥७॥

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥८॥

पिण्डोग्गहपडिमासु, भयट्ठाणेसु सत्तसु।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥९॥

मयेसु बम्भगुत्तीसु, भिक्खुधम्मंमि दसविहे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१०॥

सामान्यतः श्रमण चरणविधि का प्ररूपण–

राग और द्वेष ये दोनों पापकर्म प्रवृत्ति के कारण होने से पापरूप हैं। जो भिक्षु इनका सदा निरोध करता है, वह मंडल में अर्थात् जन्म मरण रूप संसार में नहीं रहता ॥३॥

तीन दण्डों, तीन गारवों और तीन शल्यों का जो भिक्षु सदैव त्याग करता है, वह संसार में नहीं रहता ॥४॥

दिव्य (देवता सम्बन्धी), मानुष (मनुष्य सम्बन्धी) और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्गों को जो भिक्षु सदा (समभाव से) सहन करता है, वह संसार में नहीं रहता ॥५॥

जो भिक्षु (चार) विकथाओं का, कषायों का, संज्ञाओं का तथा आर्त्त और रौद्र दो ध्यानों का सदा तर्जन (त्याग) करता है, वह संसार में नहीं रहता ॥६॥

जो भिक्षु व्रतों (पाँच महाव्रतों) और समितियों के पालन में तथा इन्द्रियविषयों और (पाँच) क्रियाओं के परिहार में सदा यत्नशील रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥७॥

जो भिक्षु छह लेश्याओं, छह कायों तथा आहार के छह कारणों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥८॥

जो भिक्षु (सात) पिण्डावग्रहों में, आहारग्रहण की सात प्रतिमाओं में और सात भयस्थानों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥९॥

जो भिक्षु (आठ) मदस्थानों में, (नौ) ब्रह्मचर्य की गुप्तियों में और दस प्रकार के श्रमण धर्म में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१०॥

उवासगाणं पडिमासु, भिक्खूणं पडिमासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥११॥

जो भिक्षु (ग्यारह) उपासक प्रतिमाओं में और (ग्यारह) भिक्षु प्रतिमाओं में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥११॥

किरियासु भूयगामेसु, परमाहिम्मिएसु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१२॥

जो भिक्षु (तेरह) क्रिया स्थानों में (चौदह प्रकार के) भूतग्रामों (जीवसमूहों) में तथा (पन्द्रह) परमाधार्मिक देवों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१२॥

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१३॥

जो भिक्षु गाथा-षोडशक (सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध के सोलह अध्ययनों) में और (सत्रह प्रकार के) असंयम में उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१३॥

बम्भम्मि नायज्झयणेसु, ठाणेसु य समाहिए।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१४॥

जो भिक्षु (अठारह प्रकार के) ब्रह्मचर्य में, (उन्नीस) ज्ञातासूत्र के अध्ययनों में तथा वीस प्रकार के असमाधिस्थानों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१४॥

एगवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहे।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१५॥

जो भिक्षु इक्कीस शबल दोषों में और बाईस परीषहों में सदैव उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१५॥

तेवीसइ सूयगडे, रूवाहिएसु सुरेसु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१६॥

जो भिक्षु सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययनों में तथा सुन्दर रूप वाले चौवीस प्रकार के देवों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१६॥

पणवीस-भावणाहिं, उद्देसेसु दसाइणं।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१७॥

जो भिक्षु पच्चीस भावनाओं में तथा दशा आदि (दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार और वृहत्कल्प) के (छव्वीस) उद्देशों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१७॥

अणगारगुणेहिं च, पकप्पम्मि तहेव य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१८॥

जो भिक्षु (सत्ताईस) अनगारगुणों में और (आचार प्रकल्प) आचारांग के अट्ठाईस अध्ययनों में सदैव उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१८॥

पावसुयपसंगेसु, मोहट्ठाणेसु चेव य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥१९॥

जो भिक्षु (उनतीस प्रकार के) पापश्रुत प्रसंगों में और (तीस प्रकार के) मोह स्थानों (महामोहनीयकर्म के कारणों) में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥१९॥

सिद्धाइगुणजोगेसु तेत्तीसासायणासु य।
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥२०॥

जो भिक्षु सिद्धों के (इकतीस) अतिशायी गुणों में, (बत्तीस) योगसंग्रहों में और तेतीस आशातनाओं में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रहता ॥२०॥

इह एएसु ठाणेसु जे भिक्खू जयई सया।
खिप्पं से सव्वसंसारा विप्पमुच्चइ पण्डिओ ॥२१॥

इस प्रकार जो पण्डित (विवेकवान्) भिक्षु इन (तेतीस) स्थानों में सतत उपयोग रखता है, वह शीघ्र ही समग्र संसार से विमुक्त हो जाता है ॥२१॥

—त्ति बेमि।

—उत्त. अ. ३१, गा. ३-२१

—ऐसा मैं कहता हूँ।

भाग १, पृ. १२६

सम्माई तिविहा रूईया—

सम्यक् आदि तीन प्रकार की रुचियाँ—

सूत्र २१२ (ख)

तिविहा रूई पण्णत्ता, तं जहा—

१. सम्मरूई, २. मिच्छरूई, ३. सम्मामिच्छरूई।

—ठाणं अ. ३, उ. १, सु. १९०

तीन प्रकार की रुचि (दृष्टि) कही गई है, यथा—

१. सम्यग्रुचि, २. मिथ्यारुचि, ३. सम्यग् मिथ्यारुचि।

भाग १, पृ. ४१६

मेहुण वडियाए पसुपक्खियाईणं इंदियजायं फास पायच्छित्तं—

मैथुन भाव से पशु-पक्षियों के इन्द्रिय स्पर्श का प्रायश्चित्त—

सूत्र ६२१ (ख)

निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा

यदि किसी निर्ग्रन्थी के रात्रि में या विकाल में मल-मूत्र का परित्याग

विगिंचमाणीए वा विसोहेमाणीए वा अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा अन्नयरं इंदियजायं परामुसेज्जा, तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा हत्थकम्म पडिसेवणपत्ता आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

निग्गंथीए य राओ वा वियाले वा उच्चारं वा पासवणं वा विगिंचमाणीए वा अन्नयरे पसुजाइए वा पक्खिजाइए वा अन्नयरंसि सोयंसि ओगाहेज्जा तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा, मेहुणपडिसेवणपत्ता आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—कप्प. उ. ५, सु. १३-१४

करते या शुद्धि करते समय किसी पशु-पक्षी से उसकी किसी इन्द्रिय का स्पर्श हो जाए और उस स्पर्श का वह मैथुनभाव से अनुमोदन करे तो हस्तकर्म दोष लगता है। अतः वह अनुद्घातिक मासिक प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

यदि किसी निर्ग्रन्थी के रात्रि में या विकाल में मल-मूत्र का परित्याग करते या शुद्धि करते समय कोई पशु-पक्षी निर्ग्रन्थी के किसी श्रोत का अवगाहन करे और उसका वह मैथुनभाव से अनुमोदन करे तो उसे मैथुन सेवन का दोष लगता है। अतः वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त की पात्र होती है।

भाग १, पृ. ५९२

मुद्धाभिसित्तरायाणं जत्तागयाणं आहार-गणस्स पायच्छित्तं—

सूत्र ९८७ (क)

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुद्दियाणं मुद्धाभिसित्ताणं अण्णयरं उववूहणीयं समीहियं पेहाए तीसे परिसाए अणुट्ठियाए अभिण्णाए अवोच्छिण्णाए जो तमण्णं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ। (तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं)

—नि. उ. ९, सु. ११

यात्रागत राजा का आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त—

जो भिक्षु शुद्धवंशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा को कहीं पर भोजन दिया जा रहा हो तो उसे देखकर उस राज-परिषद् के उठने से पूर्व तथा सबके चले जाने से पूर्व वहाँ से आहार ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है। (उसे गुरुचौमासी प्रायश्चित्त आता है)

भाग १, पृ. ६६२

परवत्थेणोच्छिण्णाणं तणपीढगाइण अहिट्ठिज्जस्स पायच्छित्तं—

सू. १४३ (ख)

जे भिक्खू १. तणपीढगं वा, २. पलालपीढगं वा, ३. छगणपीढगं वा, ४. वेत्तपीढगं वा, ५. कट्ठपीढगं वा परवत्थेणोच्छण्णं अहिट्ठेइ, अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ।

(तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं)

—नि. उ. १२, सु. ६

पर वस्त्र से आच्छादित तृणपीठकादिकों पर बैठने का प्रायश्चित्त—

जो भिक्षु गृहस्थ के वस्त्र से ढके हुए, १. घास के पीढ़े पर, २. पराल के पीढ़े पर, ३. गोबर के पीढ़े पर, ४. वेंत के पीढ़े पर, ५. काष्ट के पीढ़े पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

(उसे लघुचौमासी प्रायश्चित्त आता है।

भाग २, पृ. ५७

सामायारीआणुपुव्वी—

सूत्र १४९

प. से किं तं सामायारीआणुपुव्वी?

उ. सामायारीआणुपुव्वी—तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
१. पुव्वाणुपुव्वी, २. पच्छाणुपुव्वी, ३. अणाणुपुव्वी।

प. १. से किं तं पुव्वाणुपुव्वी?

उ. पुव्वाणुपुव्वी—१. इच्छा, २. मिच्छा, ३. तहक्कारो, ४. आवसिया, ५. य निसीहिया, ६. आपुच्छणा, ७. य पडिपुच्छा, ८. छंदणा य, ९. निमंतणा, १०. उवसंपया य काले सामायारी भवे दसविहा ॥१६॥

से तं पुव्वाणुपुव्वी।

प. २. से किं तं पच्छाणुपुव्वी?

उ. पच्छाणुपुव्वी—उवसंपया जाव इच्छा।

से तं पच्छाणुपुव्वी।

प. ३. से किं तं अणाणुपुव्वी?

समाचारी-आनुपूर्वी—

प्र. समाचारी आनुपूर्वी क्या है?

उ. समाचारी आनुपूर्वी तीन प्रकार की कही गई है, यथा—
१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चानुपूर्वी, ३. अनानुपूर्वी।

प्र. १. पूर्वानुपूर्वी क्या है?

उ. पूर्वानुपूर्वी इस प्रकार है, यथा—१. इच्छाकार, २. मिथ्याकार, ३. तथाकार, ४. आवश्यकी, ५. नैषेधिकी, ६. आप्रच्छना, ७. प्रतिप्रच्छना, ८. छंदना, ९. निमंत्रणा, १०. उपसंपद्। यह दस प्रकार की समाचारी है।

यह पूर्वानुपूर्वी है।

प्र. २. पश्चानुपूर्वी क्या है?

उ. उपसंपद् से इच्छाकार पर्यन्त व्युत्क्रम से कथन करने को पश्चानुपूर्वी कहते हैं।

यह पश्चानुपूर्वी है।

प्र. ३. अनानुपूर्वी क्या है?

उ. अणाणुपुव्वी-एयाए चेव एगादियाए एगुत्तरियाए दसगच्छगयाए सेढीए अन्नमन्नब्भासो दुरूवूणो।

से तं अणाणुपुव्वी।

से तं सामायाराणुपव्वी। -अणु. सु. २०६

उ. एक से लेकर दस पर्यन्त एक-एक की वृद्धि करके श्रेणी रूप में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने से प्राप्त राशि में से प्रथम और अन्तिम भंग को कम करने पर शेष रहे भंग अनानुपूर्वी है।

यह अनानुपूर्वी है।

यह समाचारी आनुपूर्वी है।

भाग २, पृ. ५५८

वणीमगपगारा-

सूत्र ९०५ (क)

पंच वणीमगा पण्णत्ता, तं जहा-

१. अतिहिवणीमगे,
२. किवणवणीमगे,
३. माहणवणीमगे,
४. साणवणीमगे,
५. समणवणीमगे। -ठाणं अ. ५, उ. ३, सु. ४५४

वनीपक के प्रकार-

वनीपक-याचक पांच प्रकार के कहे गए हैं, यथा-

१. अतिथिवनीपक-अतिथिदान की प्रशंसा कर भोजन माँगने वाला।
२. कृपणवनीपक-कृपणदान की प्रशंसा कर भोजन माँगने वाला।
३. माहनवनीपक-माहणदान की प्रशंसा कर भोजन माँगने वाला।
४. श्ववनीपक-कुत्ते आदि पशुओं के दान की प्रशंसा कर भोजन माँगने वाला।
५. श्रमणवनीपक-श्रमणदान की प्रशंसा कर भोजन माँगने वाला।

भाग २, पृ. ३६२

चारणमुणिणां तिरियगई पवत्ति परूवणं-

सूत्र ७२५ (ख)

इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ साइरेगाइं सत्तरस जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता तओ पच्छा चारणाणं तिरयं गई पवत्तइ। -सम. सम. १७, सु. ६

चारण मुनियों की तिरछी गति प्रवृत्ति का प्ररूपण-

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमि-भाग से कुछ अधिक सत्तरह हजार योजन ऊपर उड़कर चारण (जंघाचारण तथा विद्याचारण) मुनि (रुचक आदि द्वीपों में जाने के लिए) तिरछी गति करते हैं।

भाग २, पृ. ३८५

छउमत्थ केवलीहिं उदिण्ण परिसहोवसग्ग सहण हेउ परूवणं-

सूत्र ७७६

पंचहिं ठाणेहिं छउमत्थे णं उदिण्णे परिस्सहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा, खमेज्जा, तितिक्खेज्जा, अहियासेज्जा, तं जहा-

१. उदिण्णकम्मे खलु अयं पुरिसे उम्मत्तगभूए, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा, अवहसइ वा, णिच्छोडेइ वा, णिब्भंछेइ वा, बंधेइ वा, रूंभइ वा, छविच्छेयं करेइ वा, पमारं वा, णेइ उछवेइ वा, वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंवलं वा, पायपुंछणमच्छिंदइ वा, विच्छिंदइ वा, भिंदइ वा, अवहरइ वा।

२. जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा।

३. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवइ, तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा।

४. ममं च णं सम्ममसहामाणस्स अखममाणस्स अतितिक्खमाणस्स अणहियासमाणस्स किं मण्णे कज्जइ?

छद्मस्थ और केवलियों द्वारा उदित परिषहोपर्गो के सहन करने के हेतुओं का प्ररूपण-

पाँच स्थानों से छद्मस्थ उत्पन्न परीषहों तथा उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहता है, क्षांति रखता है, तितिक्षा रखता है और उनसे प्रभावित नहीं होता है, यथा-

१. यह पुरुष उदीर्णकर्मा है, इसलिये यह उन्मत्त होकर मुझ पर आक्रोश करता है, मुझे गाली देता है, मेरा उपहास करता है, मुझे वाहर निकालने की धमकियाँ देता है, मेरी भर्त्सना करता है, मुझे बाँधता है, रोकता है, अंगविच्छेद करता है, मूर्छित करता है, उद्वेजित करता है, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंञ्छन आदि का आच्छेदन करता है, विच्छेदन करता है, भेदन करता है और अपहरण करता है।

२. यह पुरुष यक्षाविष्ट है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है यावत् अपहरण करता है।

३. इस भव में मेरे वेदनीय कर्म का उदय हो गया है, इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है यावत् अपहरण करता है।

४. यदि मैं इन्हें सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करूँगा, क्षान्ति नहीं रखूँगा, तितिक्षा नहीं रखूँगा और उनसे प्रभावित होऊँगा तो मुझे क्या होगा?

एगंतसो मे पावे कम्मे कज्जइ।

५. ममं च णं सम्मं सहमाणस्स खममाणस्स तितिक्खमाणस्स अहियासेमाणस्स किं मण्णे कज्जइ?

एगंतसो मे णिज्जरा कज्जइ।

इच्चेएहिं पंचेहिं ठाणेहिं छउमत्थे उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा जाव अहियासेज्जा।

पंचहि ठाणेहिं केवली उदिण्णे परिसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा खमेज्जा तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा, तं जहा–

१. खित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा तहेव जाव अवहरइ वा।

२. दित्तचित्ते खलु अयं पुरिसे तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा।

३. जक्खाइट्ठे खलु अयं पुरिसे तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा।

४. ममं च णं तब्भववेयणिज्जे कम्मे उदिण्णे भवइ तेण मे एस पुरिसे अक्कोसइ वा जाव अवहरइ वा।

५. ममं च णं सम्मं सहमाणं खममाणं तितिक्खेमाणं अहियासेमाणं पासित्ता बहवे अण्णे छउमत्था समणा णिग्गंथा उदिण्णे परीसहोवसग्गे एवं सम्मं सहिस्संति खमिस्संति तितिक्खस्संति अहियासिस्संति।

इच्चेएहिं पंचेहि ठाणेहिं केवली उदिण्णे परीसहोवसग्गे सम्मं सहेज्जा, खमेज्जा, तितिक्खेज्जा अहियासेज्जा।

–ठाणं अ. ५, उ. १, सु. ४०९

मेरे एकान्त पापकर्म का संचय होगा।

५. यदि मैं सम्यक् प्रकार से सहन करूँगा, क्षान्ति रखूँगा, तितिक्षा रखूँगा और उनसे प्रभावित नहीं होऊँगा तो मुझे क्या होगा?

निश्चित रूप से मेरे कर्मों की निर्जरा होगी।

इन पाँच स्थानों से छद्मस्थ उत्पन्न परीषहों तथा उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहता है यावत् प्रभावित नहीं होता है।

पाँच स्थानों से केवली उत्पन्न परीषहों और उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहता है यावत् प्रभावित नहीं होता है, यथा–

१. यह पुरुष विक्षिप्तचित्त वाला है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है उसी प्रकार यावत् अपहरण करता है।

२. यह पुरुष उन्मत्त है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है यावत् अपहरण करता है।

३. यह पुरुष यक्षाविष्ट है, इसलिए यह मुझ पर आक्रोश करता है यावत् अपहरण करता है।

४. इस भव में वेदनीय कर्म का उदय हो गया है, इसलिए यह पुरुष मुझ पर आक्रोश करता है यावत् अपहरण करता है।

५. मुझे सम्यक् प्रकार से परीषहों को सहन करते, क्षान्ति रखते, तितिक्षा रखते और प्रभावित नहीं होते हुए देखकर अन्य छद्मस्थ श्रमण-निर्ग्रन्थ परीषहों और उपसर्गों के उदित होने पर उन्हें सम्यक् प्रकार से सहन करेंगे, क्षान्ति रखेंगे, तितिक्षा रखेंगे और उनसे प्रभावित नहीं होंगे।

इन पाँच स्थानों से केवली उत्पन्न परीषहों तथा उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहता है यावत् उनसे प्रभावित नहीं होता है।

भाग २, पृ. ४११

केवली पण्णत्त धम्माइ लाभ हेउ परूवणं–

सूत्र ८२४

दोहिं ठाणेहिं आया केवली पण्णत्त धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा–

१. सोच्च चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं वोहिं वुज्झेज्जा, तं जहा–

१. सोच्च चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइज्जा, तं जहा–

१. सोच्च चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं वंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा–

१. सोच्च चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं संजमेणं संजमेज्जा, तं जहा–

१. सोच्च चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा–

१. सोच्च चेव, २. अभिसमेच्च चेव।

–ठाणं अ. २, उ. १, सु. ५८

केवलिप्रज्ञप्त धर्मादि के लाभ हेतुओं का प्ररूपण–

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है, यथा–

१. सुनने से २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध वोधि का अनुभव करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा मुंडित हो गृह त्याग कर विशुद्ध अणगारता में प्रव्रजित होता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध संयम को अंगीकार करता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

इन दो स्थानों से आत्मा विशुद्ध संवर के द्वारा संवृत होता है, यथा–

१. सुनने से, २. जानने से।

● ●

परिशिष्ट-४

शब्द-कोष

(द्रव्यानुयोग तीनों भागों की अकारादि क्रम से शब्द-सूची)

अ

[illegible]

अ[illegible] ४४०
अ[illegible] १५७०
अ[illegible] १०८
अ[illegible] ([illegible])

[illegible]

आ

इ

ऊ

ए

ओ

ग

घ

च

झ

ट

ठ

थ

द

प

फ

ब

भ

म

र

ल

व

स

गोयमे पडिरूवन्नू सीससंघ समाउले।
जेट्ठं कुलमवेक्खन्तो तिन्दुयं वणमागओ ॥१५॥

यथोचित विनयमर्यादा के ज्ञाता गौतम ने केशी श्रमण के कुल को ज्येष्ठ जानकर अपने शिष्य संघ के साथ तिन्दुक वन (उद्यान) में आए ॥१५॥

केसी कुमार समणे गोयमं दिस्समागयं।
पडिरूवं पडिवत्तिं सम्मं संपडिवज्जई ॥१६॥

गौतम को आते हुए देखकर केशीकुमार श्रमण ने सम्यक् प्रकार से उनके अनुरूप आदर सत्कार किया ॥१६॥

पलालं फासुयं तत्थ पंचमं कुसतणाणि य।
गोयमस्स निसेज्जाए खिप्पं संपणामए ॥१७॥

गौतम को बैठने के लिए उन्होंने तत्काल प्रासुक पयाल (पराल-घास) तथा पाँचवाँ कुश तृण समर्पित किया ॥१७॥

केसी कुमार समणे गोयमे य महायसे।
उभओ निसण्णा सोहन्ति चन्द सूर समेप्पभा ॥१८॥

कुमारश्रमण केशी और महायशस्वी गौतम दोनों (वहाँ) बैठे हुए चन्द्र और सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे ॥१८॥

समागया बहू तत्थ पासण्डा कोउगा मिगा।
गिहत्थाणं अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥१९॥

वहाँ कौतूहल की दृष्टि से अनेक अबोधजन अन्य धर्म सम्प्रदायों के बहुत से पाषण्ड परिव्राजक आए और अनेक सहस्त्र गृहस्थ भी आ पहुँचे ॥१९॥

देव-दाणव-गन्धव्वा-जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
अदिस्साणं च भूयाणं आसि तत्थ समागमो ॥२०॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और अदृश्य भूतों का वहाँ अद्भुत समागम हो गया ॥२०॥

पुच्छामि ते महाभाग ! केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं वुवंतं तु गोयमो इणमब्बवी ॥२१॥

केशी ने गौतम से कहा–"हे महाभाग ! मैं आपसे (कुछ) पूछना चाहता हूँ।" केशी के ऐसा कहने पर गौतम ने इस प्रकार कहा– ॥२१॥

पुच्छ भन्ते ! जहिच्छं ते, केसिं गोयममब्बवी।
तओ केसी *अणुन्नाए गोयमं इणमब्बवी* ॥२२॥

"भंते ! जैसी भी इच्छा हो पूछिए", अनुज्ञा पाकर तब केशी ने गौतम से इस प्रकार कहा– ॥२२॥

१. चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण पासेण य महामुणी ॥२३॥

१. "जो यह चातुर्याम धर्म है, जिसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्वनाथ ने किया है और यह जो पंचशिक्षात्मक धर्म है जिसका प्रतिपादन महामुनि वर्धमान ने किया है।" ॥२३॥

एगकज्जपवन्नाणं विसेसे किं नु कारणं ?
धम्मे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ न ते ॥२४॥

"हे मेधाविन् ! दोनों जब एक ही उद्देश्य को लेकर प्रवृत्त हुए हैं, तब इस विभेद (अन्तर) का क्या कारण है ? इन दो प्रकार के धर्मों को देखकर तुम्हें विप्रत्यय (सन्देह) क्यों नहीं होता ?" ॥२४॥

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी।
पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छयं ॥२५॥

केशी के इस प्रकार कहने पर गौतम ने यह कहा–"तत्वों (जीवादि तत्वों) का जिसमें विशेष निश्चय होता है, ऐसे धर्मतत्व की समीक्षा प्रज्ञा द्वारा होती है।" ॥२५॥

पुरिमा उज्जुजडा उ वंकजडा य पच्छिमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना य तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु (सरल) और जड़ (मन्दमति) होते हैं, अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र और जड़ होते हैं, (जबकि) बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु ऋजु और प्राज्ञ होते हैं इसलिए धर्म के दो प्रकार कहे गए हैं ॥२६॥

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ।
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

"प्रथम तीर्थंकर के साधुओं का आचार दुविशोध्य (अत्यन्त कठिनता से निर्मल किया जाता) था, अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के आचार का पालन करना कठिन है, किन्तु बीच के २२ तीर्थंकरों के साधकों के आचार का पालन सुकर (सरल) है।" ॥२७॥

साहु गोयम ! पन्ना ते छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं तं मे कहसु गोयमा ! ॥२८॥

(कुमारश्रमण केशी–) हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह संशय मिटा दिया, किन्तु गौतम ! मुझे एक और सन्देह है उस विषय का भी समाधान कीजिए ॥२८॥

२. अचेलगो य जो धम्मो जो इमो सन्तरूत्तरो।
देसिओ वद्धमाणेण पासेण य महाजसा ॥२९॥

२. "यह जो अचेलक धर्म है वह वर्धमान ने बताया है और यह जो सान्तरोत्तर (जो वर्णादि से विशिष्ट एवं बहुमूल्य वस्त्र वाला) धर्म है वह महायशस्वी पार्श्वनाथ ने बताया है।" ॥२९॥

एगकज्जपवन्नाणं विसेसे किं नु कारणं ?
लिंगे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ न ते ? ॥३०॥

हे मेधाविन् ! एक ही उद्देश्य से प्रवृत्त इन दोनों (धर्मों) में भेद का कारण क्या है ? दो प्रकार के वेष (लिंग) को देखकर आपको संशय क्यों नहीं होता ? ॥३०॥

५. अन्तोहियय-संभूया, लया चिट्ठइ गोयमा।
फलेइ विसभक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं॥४५॥

५. हे गौतम ! हृदय के अन्दर उत्पन्न एक लता फैल रही है, जो भक्षण करने पर विष तुल्य फल देती है। आपने उस (विषबेल) को कैसे उखाड़ा?॥४५॥

तं लयं सव्वओ छित्ता उद्धरित्ता समूलियं।
विहरामि जहानायं मुक्को मि विसभक्खणं॥४६॥

(गणधर गौतम-) उस लता को सर्वथा काटकर एवं जड़ से उखाड़ कर मैं नीति के अनुसार विचरण करता हूँ अतः मैं उसके विषफल को खाने से मुक्त हूँ॥४६॥

लया य इइ का वुत्ता? केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमब्बवी॥४७॥

केशी ने गौतम से पूछा-"लता आप किसे कहते हैं? केशी के इस प्रकार पूछने पर गौतम ने यह कहा-॥४७॥

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुद्धरित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी॥४८॥

(गणधर गौतम-) भवतृष्णा (सांसारिक तृष्णा लालसा) को ही भयंकर लता कहा गया है उसमें भयंकर विपाक वाले फल लगते हैं।

हे महामुने ! मैं उसे मूल से उखाड़कर (शास्त्रोक्त) नीति के अनुसार विचरण करता हूँ॥४८॥

साहु गोयम ! पन्ना ते छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा॥४९॥

(केशी कुमारश्रमण-) हे गौतम ! आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है, आपने मेरे इस संशय को मिटाया है। एक दूसरा संशय भी मेरे मन में है, हे गौतम ! उस विषय में भी आप मुझे बताओ॥४९॥

६. संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा।
जे डहन्ति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे॥५०॥

६. हे गौतम ! चारों ओर घोर अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं, जो शरीरधारी जीवों को जलाती रहती हैं, आपने उन्हें कैसे बुझाया?॥५०॥

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं।
सिंचामि सययं देहं, सित्ता नो व डहन्ति मे॥५१॥

(गणधर गौतम-)महामेघों से उत्पन्न सब जलों में से उत्तम जल लेकर मैं उसका निरन्तर सिंचन करता हूँ। इसी कारण सिंचन (शान्त) की गई अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं॥५१॥

अग्गी य इइ के वुत्ता? केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥५२॥

(केशी कुमारश्रमण-) वे अग्नियाँ कौन-सी हैं? केशी ने गौतम से पूछा। यह पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-॥५२॥

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं।
सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति मे॥५३॥

(गणधर गौतम-)कषायों को अग्नि कहा गया है। श्रुत, शील और तप जल है। श्रुत रूप जलधारा से शान्त और नष्ट हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं॥५३॥

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा॥५४॥

(केशी कुमारश्रमण-)गौतम ! आपकी प्रज्ञा प्रशस्त है। आपने मेरा यह संशय मिटा दिया, किन्तु मेरा एक और सन्देह है, उसके सम्बन्ध में भी मुझे कहें॥५४॥

७. अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम ! आरूढो कहं तेण न हीरसि?॥५५॥

७. यह साहसिक, भयंकर दुष्ट घोड़ा इधर-उधर चारों ओर दौड़ रहा है, हे गौतम ! आप इस पर आरूढ़ हैं, (फिर भी) वह आपको उन्मार्ग पर क्यों नहीं ले जाता॥५५॥

पधावन्तं निगिण्हामि सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं मग्गं च पडिवज्जई॥५६॥

(गणधर गौतम-) दौड़ते हुए उस घोड़े का मैं श्रुत रश्मि (शास्त्रज्ञानरूपी) लगाम से निग्रह करता हूँ, जिससे वह मुझे उन्मार्ग पर नहीं ले जाता अपितु सन्मार्ग पर ही ले जाता है॥५६॥

अस्से य इइ के वुत्ते? केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमब्बवी॥५७॥

(केशी कुमारश्रमण-) अश्व किसे कहा गया है? इस प्रकार केशी ने गौतम से पूछा, पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा-॥५७॥

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं निगिण्हामि धम्मसिक्खाए कन्थगं॥५८॥

(गणधर गौतम-) मन ही वह साहसी, भयंकर और दुष्ट अश्व है, उसे मैं सम्यक् प्रकार से वश में करता हूँ। जो धर्मशिक्षा से वह कन्थक (-उत्तम जाति के अश्व) के समान हो गया है॥५८॥

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥५९॥

(केशी कुमारश्रमण-) हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ट है, आपने मेरा यह संशय दूर कर दिया (किन्तु) मेरा एक संशय और भी है, गौतम ! उसके सम्बन्ध में मुझे बताइए॥५९॥

५. अन्तोहियय-संभूया, लया चिट्ठइ गोयमा।
फलेइ विसभक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं॥४५॥

तं लयं सव्वओ छित्ता उद्धरित्ता समूलियं।
विहरामि जहानायं मुक्को मि विसभक्खणं॥४६॥

लया य इइ का वुत्ता ? केसी गोयममब्ववी।
केसिमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमब्ववी॥४७॥
भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुद्धरित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी॥४८॥

साहु गोयम ! पन्ना ते छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा॥४९॥

६. संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा।
जे डहन्ति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे॥५०॥

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं।
सिंचामि सययं देहं, सित्ता नो व डहन्ति मे॥५१॥

अग्गी य इइ के वुत्ता ? केसी गोयममब्ववी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्ववी॥५२॥
कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-सील-तवो जलं।
सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति मे॥५३॥

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा॥५४॥

७. अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम ! आरूढो कहं तेण न हीरसि ?॥५५॥

पधावन्तं निगिण्हामि सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं मग्गं च पडिवज्जई॥५६॥

अस्से य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्ववी।
केसिमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमब्ववी॥५७॥
मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं निगिण्हामि धम्मसिक्खाए कन्थगं॥५८॥

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा !॥५९॥

५. हे गौतम ! हृदय के अन्दर उत्पन्न एक लता फैल रही है, जो भक्षण करने पर विष तुल्य फल देती है। आपने उस (विषबेल) को कैसे उखाड़ा ?॥४५॥

(गणधर गौतम–) उस लता को सर्वथा काटकर एवं जड़ से उखाड़ कर मैं नीति के अनुसार विचरण करता हूँ अतः मैं उसके विषफल को खाने से मुक्त हूँ॥४६॥

केशी ने गौतम से पूछा–"लता आप किसे कहते हैं ? केशी के इस प्रकार पूछने पर गौतम ने यह कहा–॥४७॥

(गणधर गौतम–) भवतृष्णा (सासंारिक तृष्णा लालसा) को ही भयंकर लता कहा गया है उसमें भयंकर विपाक वाले फल लगते हैं।

हे महामुने ! मैं उसे मूल से उखाडकर (शास्त्रोक्त) नीति के अनुसार विचरण करता हूँ॥४८॥

(केशी कुमारश्रमण–) हे गौतम ! आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है, आपने मेरे इस संशय को मिटाया है। एक दूसरा संशय भी मेरे मन में है, हे गौतम ! उस विषय में भी आप मुझे बताओ॥४९॥

६. हे गौतम ! चारों ओर घोर अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं, जो शरीरधारी जीवों को जलाती रहती हैं, आपने उन्हें कैसे बुझाया ?॥५०॥

(गणधर गौतम–)महामेघों से उत्पन्न सब जलों में से उत्तम जल लेकर मैं उसका निरन्तर सिंचन करता हूँ। इसी कारण सिंचन (शान्त) की गई अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं॥५१॥

(केशी कुमारश्रमण–) वे अग्नियाँ कौन-सी हैं ? केशी ने गौतम से पूछा। यह पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा–॥५२॥

(गणधर गौतम–)कषायों को अग्नि कहा गया है। श्रुत, शील और तप जल है। श्रुत रूप जलधारा से शान्त और नष्ट हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलातीं॥५३॥

(केशी कुमारश्रमण–)गौतम ! आपकी प्रज्ञा प्रशस्त है। आपने मेरा यह संशय मिटा दिया, किन्तु मेरा एक और सन्देह है, उसके सम्बन्ध में भी मुझे कहें॥५४॥

७. यह साहसिक, भयंकर दुष्ट घोड़ा इधर-उधर चारों ओर दौड़ रहा है, हे गौतम ! आप इस पर आरूढ़ हैं, (फिर भी) वह आपको उन्मार्ग पर क्यों नहीं ले जाता॥५५॥

(गणधर गौतम–) दौड़ते हुए उस घोड़े का मैं श्रुत रश्मि (शास्त्रज्ञानरूपी) लगाम से निग्रह करता हूँ, जिससे वह मुझे उन्मार्ग पर नहीं ले जाता अपितु सन्मार्ग पर ही ले जाता है॥५६॥

(केशी कुमारश्रमण–) अश्व किसे कहा गया है ? इस प्रकार केशी ने गौतम से पूछा, पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा–॥५७॥

(गणधर गौतम–) मन ही वह साहसी, भयंकर और दुष्ट अश्व है, उसे मैं सम्यक् प्रकार से वश में करता हूँ। जो धर्मशिक्षा से वह कन्थक (–उत्तम जाति के अश्व) के समान हो गया है॥५८॥

(केशी कुमारश्रमण–) हे गौतम ! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है, आपने मेरा यह संशय दूर कर दिया (किन्तु) मेरा एक संशय और भी है, गौतम ! उसके सम्बन्ध में मुझे बताइए॥५९॥

भाणू य इइ के वुत्ते? केसी गोयममव्ववी।
केसिमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमव्ववी॥७७॥

केसी ने गौतम से पूछा–"आप सूर्य किसे कहते हैं?" केशी के इस प्रकार पूछने पर गौतम ने यह कहा–॥७७॥

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वन्नु जिणभक्खरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं सव्वलोयंमि पाणिणं॥७८॥

(गणधर गौतम–) जिसका संसार क्षीण हो चुका है, सर्वज्ञ है, ऐसा जिन-भास्कर उदित हो चुका है। वही सारे लोक में प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा॥७८॥

साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा!॥७९॥

(केशी कुमारश्रमण–) गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा निर्मल है। तुमने मेरा यह संशय तो दूर कर दिया। अब मेरा एक संशय रह जाता है, उसके विषय में भी मुझे कहिए॥७९॥

१२. सारीर-माणसे दुक्खे, वज्झमाणाण पाणिणं।
खेमं सिवमणावाहं ठाणं, किं मन्नसी मुणी॥८०॥

१२. मुनिवर! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेम शिव और अनावाध–बाधारहित स्थान कौन-सा मानते हो?॥८०॥

अत्थि एगं ध्रुवं ठाणं, लोगग्गंमि दुरारुहं॥
जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा॥८१॥

(गणधर गौतम–) लोक के अग्रभाग में एक ऐसा ध्रुव (अचल) स्थान है, जहाँ जरा, मृत्यु, व्याधियाँ तथा वेदनाएँ नहीं हैं, परन्तु वहाँ पहुँचना दुरारुह (बहुत कठिन) है॥८१॥

ठाणे य इइ के वुत्ते? केसी गोयममव्ववी।
केसिमेवं बुवंतं तु गोयमो इणमव्ववी॥८२॥

(केशी कुमारश्रमण–) "वह स्थान कौन-सा कहा गया है? केशी ने गौतम से पूछा और पूछने पर गौतम ने यह कहा–॥८२॥

निव्वाणं ति अवाहं ति, सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणावाहं, जं चरन्ति महेसिणो॥॥८३॥

(गणधर गौतम–) जिस स्थान को महामुनि जन ही प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण, अवाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव और अनावाध (इत्यादि नामों से प्रसिद्ध) है॥८३॥

तं ठाणं सासयं वासं लोगग्गंमि दुरारुहं।
जं संपत्ता न सोयन्ति भवोहन्तकरा मुणी॥८४॥

भवप्रवाह का अन्त करने वाले महामुनि जिसे प्राप्त कर शोक से मुक्त हो जाते हैं, वह स्थान लोक के अग्रभाग में शाश्वतरूप से स्थित है, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है। उसे मैं स्थान कहता हूँ॥८४॥

साहु गोयम! पन्ना ते छिन्नो मे संसओ इमो।
नमो ते संसयाईय! सव्वसुत्तमहोयही॥८५॥

(केशी कुमारश्रमण–)हे गौतम! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया है, संशयातीत है सर्वश्रुत महोदधि! आपको मेरा नमस्कार है॥८५॥

एवं तु संसए छिन्ने केसी घोरपरक्कमे।
अभिवन्दित्ता सिरसा गोयमं तु महायसं॥८६॥

इस प्रकार संशय निवारण हो जाने पर घोर पराक्रमी केशी कुमार-श्रमण ने महायशस्वी गौतम को नतमस्तक हो वन्दना करके ॥८६॥

पंचमहव्वयधम्मं, पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमंमी, मग्गे तत्थ सुहावहे॥८७॥

पूर्व जिनेश्वर द्वारा अभिमत सुखावह अन्तिम तीर्थंकर द्वारा प्रवर्तित मार्ग में पंच महाव्रतरूप धर्म को भाव से अंगीकार किया॥८७॥

केसीगोयमओ निच्चं तम्मि आसि समागमे।
सुय–सीलसमुक्करिसो महत्थऽत्थविणिच्छओ॥८८॥

उस तिन्दुक उद्यान में केशी और गौतम दोनों का जो समागम हुआ, उससे श्रुत तथा शील का उत्कर्ष हुआ और महान् प्रयोजन भूत अर्थों का विनिश्चय हुआ॥८८॥

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया।
संथुया ते पसीयन्तु भयवं केसिगोयमे॥८९॥

(इस प्रकार) वह सारी सभा (देव, असुर और मनुष्यों से परिपूर्ण परिषद्) धर्मचर्चा से सन्तुष्ट हुई और सन्मार्ग–में समुपस्थित हुई। उस सभा ने भगवान केशी और गौतम की स्तुति की कि–वे दोनों (हम पर) प्रसन्न रहें।

त्ति वेमि।

–उत्त. अ. २३, गा. १–८९

ऐसा मैं कहता हूँ!॥८९॥

भाग २. खण्ड ४. पृ. १२८

पासावच्चिज्ज थेराणं देसणाए तव संजम फल परूवणं भगवया अणुमोयणा य–

पार्श्वापत्य स्थविरों द्वारा देशना में तप संयम के फल का प्ररूपण और भगवान द्वारा अनुमोदना–

सूत्र ६४ (ख)

तए णं ते समणोवासया थेराणं भगवंताणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हयहियया तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति

तदन्तर वे श्रमणोपासक स्थविर भगवन्तों से धर्मोपदेश सुनकर एवं हृदयगम करके बड़े हर्षित और सन्तुष्ट हुए [illegible]

करेत्ता जाव तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासंति पज्जुवासित्ता एवं वयासी–

प. संजमे णं भंते ! किं फले ? तवे णं भंते ! किं फले ?

तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासी–

उ. संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले।

तए णं ते समणोवासया थेरे भगवंते एवं वयासी–

प. जइ णं भंते ! संजमे अणण्हयफले, तवे वोदाणफले किं पत्तियं णं भंते ! देवा देवलोएसु उववज्जंति ? तत्थ णं कालियपुत्ते नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी–

उ. पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

तत्थ णं मेहिले नामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी–

पुव्वसंजमेण अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

तत्थ णं आणंदरक्खिए णामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी–

कम्मियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

तत्थ णं कासवे णामं थेरे ते समणोवासए एवं वयासी–

संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति,

पुव्वतवेण पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति।

सच्चे णं एस अट्ठे, नो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।

तए णं ते समणोवासया थेरेहिं भगवंतेहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागारिया समाणा हट्ठतुट्ठा थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं उवादियंति उवादियत्ता उट्ठाए उट्ठेंति उट्ठित्ता थेरे भगवंते तिक्खुत्तो वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता थेराणं भगवंताणं अंतियाओ पुप्फवइयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए णं ते थेरा अन्नया कयाइ तुंगियाओ पुप्फवइचेइयाओ पडिनिग्गच्छंति पडिनिग्गच्छित्ता बहिया जणवयविहारं विहरंति।

उठा और उन्होंने स्थविर भगवन्तों की दाहिनी ओर से तीन प्रदक्षिणा की और प्रदक्षिणा करके यावत् तीन प्रकार की उप द्वारा उनकी पर्युपासना की और पर्युपासना करके फिर इस पूछा–

प्र. भंते ! संयम का क्या फल है ? भंते ! तप का क्या फल इस पर स्थविर भगवन्तों ने उन श्रमणोपासकों से इस कहा–

उ. "हे आर्यों ! संयम का फल अनाश्रवता (आश्रवरहि संवरसम्पन्नता) है। तप का फल व्यवदान (कर्मों को करना है।

(स्थविर भगवन्तों से यह उत्तर सुनकर) श्रमणोपासकों स्थविर भगवन्तों से (पुनः) इस प्रकार पूछा–

प्र. भंते ! यदि संयम का फल अनाश्रवता है और तप का व्यवदान है तो देव देवलोकों में किस कारण से उत्पन्न होते

(श्रमणोपासकों का प्रश्न सुनकर) उन स्थविरों मे कालिकपुत्र नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से यों क

उ. आर्यों ! पूर्वतप के कारण देव देवलोकों में उत्पन्न होते हैं

उनमें से मेहिल (मेधिल) नाम के स्थविर ने उन श्रमणोपा से इस प्रकार कहा–

"आर्यों ! पूर्व संयम के कारण देव देवलोकों में उ होते हैं।"

उनमें से आनन्दरक्षित नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासक इस प्रकार कहा–

"आर्यों ! कर्मिता (कर्म शेष रहने) के कारण देवता देवल में उत्पन्न होते हैं।"

उनमें से काश्यप नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से कहा–

आर्यों ! संगिता (रागआसक्ति) के कारण देव देवलोक उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार हे आर्यों ! (वास्तव में) पूर्व तप से, पूर्व संयम कर्म क्षय न होने पर तथा राग आसक्ति से देवता देवलोक उत्पन्न होते हैं।

यह बात (अर्थ) सत्य है और हमने अपना आत्मभाव (अप अहंभाव) बताने की दृष्टि से नहीं कही है।

तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक, स्थविर द्वारा (अपने प्रश्नों कहे हुए इन और ऐसे उत्तरों को सुनकर बड़े हर्षित सन्तुष्ट हुए और स्थविर भगवन्तों को वंदन नमस्कार कि और वन्दना नमस्कार करके अन्य प्रश्न भी पूछते हैं, प्र पूछकर फिर स्थविर भगवन्तों द्वारा दिये गये उत्तरों को ग्रह करते हैं ग्रहण करके वे वहाँ से उठते हैं और उठकर तीन व वन्दना नमस्कार करते हैं वंदना नमस्कार करके वे उन स्थवि भगवन्तों के पास से और उस पुष्पवतिक चैत्य से निकलव जिस दिशा से आए थे उसी दिशा में वापस लौट गए।

इधर वे स्थविर भगवन्त भी किसी एक दिन तुंगिका नगरी उस पुष्पवतिक चैत्य से निकले और बाहर (अन्य) जनपदों विचरण करने लगे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था जाव परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे जाव संखित्तविउलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे जाव विहरइ।

उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ (श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वन्दना करने गई (यावत्) धर्मोपदेश सुनकर) परिषद् वापस लौट गई। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी (शिष्य) इन्द्रभूति नामक अनगार थे यावत् ···· वे विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में संक्षिप्त करके रखते थे। वे निरन्तर छट्ठ-छट्ठ (वेले-वेले) के तपश्चरण से तथा संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए यावत् विचरते थे।

तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोतियं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ उग्गाहेत्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–

इसके पश्चात् छट्ठ (वेले) के पारणे के दिन भगवान (इन्द्रभूति) गौतम स्वामी ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, द्वितीय प्रहर (पौरुषी) में ध्यान किया, तृतीय प्रहर (पौरुषी) में मानसिक चपलता से रहित, आकुलता से रहित होकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना कर पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना कर पात्रों का प्रमार्जन किया और पात्रों का प्रमार्जन कर उन पात्रों को लिया, लेकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया–

"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्ठक्खमणपारणगंसि रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।"

"भंते ! आज मेरे छट्ठ तप (वेले) के पारणे का दिन है, अतः आपसे आज्ञा प्राप्त होने पर मैं राजगृह नगर में उच्च, नीच और मध्यम कुलों के गृहसमुदाय में भिक्षाचर्या की विधि के अनुसार भिक्षाटन करना चाहता हूँ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।"

(इस पर भगवान ने कहा–) "हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसे करो, किन्तु विलम्ब मत करो।"

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे सोहेमाणे जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ।

तब भगवान की आज्ञा प्राप्त हो जाने के बाद भगवान गौतम स्वामी श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास से तथा गुणशील चैत्य से निकले और निकलकर त्वरा (उतावली) चपलता (चंचलता) और संभ्रम (आकुलता) से रहित होकर युगान्तर (गाड़ी के जुए=धूसर–) प्रमाण दूर (अन्तर) तक की भूमि का अवलोकन करते हुए अपनी दृष्टि से आगे-आगे के गमन मार्ग का शोधन करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आए और आकर (राजगृह में) ऊँच, नीच और मध्यम कुलों के गृह-समुदाय में विधिपूर्वक भिक्षाटन करने लगे।

तए णं से भगवं गोयमे रायगिहे नगरे जाव अडमाणे बहुजणसद्द निसामेइ,

उस समय (राजगृह नगर में) भिक्षाटन करते हुए भगवान गौतम ने बहुत से लोगों के मुख से इस प्रकार के शब्द सुने–

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नगरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिया–

"हे देवानुप्रिय ! तुंगिका नगरी के बाहर पुष्पवतिक नामक उद्यान में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे थे उनसे वहाँ के श्रमणोपासकों ने इस प्रकार प्रश्न पूछे–

"संजमे णं भंते ! किंफले, तवे णं भंते ! किं फले ?"

"भंते ! संयम का क्या फल है, भंते ! तप का क्या फल है ?"

तए णं ते थेरा भगवंतो ते समणोवासए एवं वयासी–

तब (उत्तर में) स्थविर भगवन्तों ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा–

"संजमे णं अज्जो ! अणण्हयफले, तवे वोदाणफले तं चेव जाव पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए से कहमेयं मन्ने एवं ?

"आर्यो ! संयम का फल अनाश्रवत्व (संवर) है और तप का फल व्यवदानत्व (कर्मों का क्षय) है। यह सारा वर्णन पूर्व तप से, पूर्व संयम से, कर्मिता और संगिता से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं पर्यन्त करना चाहिए, यह बात सत्य है, इसलिए हमने कही है, हमने अपने अहंभाव वश यह बात नहीं कही है तो मैं (गौतम) यह (इस जनसमूह की) बात कैसे मान लूँ।

तए णं से समणे भगवं गोयमे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जायसड्ढे जाव समुप्पन्नकोउहल्ले, अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ गेण्हित्ता रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियं जाव सोहेमाणे जेणेव गुणसीलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणे भगवं महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, एसणमणेसणं आलोएइ आलोइत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं जाव एवं वयासी–

इसके पश्चात् श्रमण भगवान गौतम ने इस प्रकार की बात लोगों के मुख से सुनी तो उन्हें श्रद्धा उत्पन्न हुई यावत् उनके मन में कौतूहल भी जागा और विधिपूर्वक आवश्यकतानुसार भिक्षा ली, भिक्षा लेकर वे राजगृहनगर (की सीमा) से बाहर निकले बाहर निकलकर अत्वरित गति से यावत् (ईर्यासमिति-पूर्वक) ईर्या-मार्ग शोधन करते हुए जहाँ गुणशीलक चैत्य था और जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आए और आकर उनके निकट उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया (भिक्षाचर्या में लगे हुए) एषणा और अनेषणा दोषों की आलोचना की, आलोचना करके फिर (लाया हुआ) आहार-पानी भगवान को दिखाया, दिखाकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी से यावत् इस प्रकार निवेदन किया–

"एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहे नगरे उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि 'एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुंगियाए नगरीए बहिया पुप्फवईए चेइए पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो समणोवासएहिं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छेज्जा–'संजमेणं भंते ! किंफले ? तवे किं फले ?' तं चेव जाव सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।"

"भंते ! मैं आपसे आज्ञा प्राप्त करके राजगृहनगर में उच्च, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाचर्या के लिए विधिपूर्वक भिक्षाटन कर रहा था, उस समय बहुत से लोगों के मुख से इस प्रकार के उद्गार सुने कि 'हे देवानुप्रियों !' तुंगिका नगरी के बाहर स्थित पुष्पवतिक नामक उद्यान में पार्श्वापत्यीय स्थविर भगवन्त पधारे थे उनसे वहाँ के श्रमणोपासकों ने इस प्रकार के प्रश्न पूछे–'भंते ! संयम का क्या फल है ? और तप का क्या फल है ?' यह सारा वर्णन पूर्व की तरह कहना चाहिए यावत् यह बात सत्य है, इसलिए कही है, किन्तु हमने (आत्मभाव) अहंभाव के वश होकर नहीं कही है।"

"तं पभू णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए ? उदाहु अप्पभू ?

(यों कहकर श्री गौतम स्वामी ने पूछा–) "भंते ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को इन और इस प्रकार के उत्तर देने में समर्थ हैं या असमर्थ हैं ?

समिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए ? उदाहु असमिया ?

भंते ! क्या वे स्थविर भगवंत उन श्रमणोपासकों के प्रश्नों के इस प्रकार उत्तर देने में सम्यक्रूप से सक्षम हैं या असक्षम हैं ?

आउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए ? उदाहु अणाउज्जिया ?

भंते ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में उपयुक्त हैं या अनुपयुक्त हैं ?

पलिउज्जिया णं भंते ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरित्तए ? उदाहु अपलिउज्जिया ?

भंते ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में विशिष्ट योग्यता वाले हैं या योग्यता वाले नहीं हैं ?

पुव्वतवेणं अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वसंजमेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति कम्मियाए, अज्जो देवा देवलोएसु उववज्जंति संगियाए अज्जो देवा देवलोएसु उववज्जंति पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति। सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए ?"

आर्यो ! पूर्वतप से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, पूर्वसंयम से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, कर्मिता से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, संगिता (आसक्ति) के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं और पूर्वतप, पूर्वसंयम, कर्मिता और संगिता से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। यह बात सत्य है, इसलिए हम कहते हैं, किन्तु अपने अहंभाववश नहीं कहते हैं ?"

पभू णं गोयमा ! ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेत्तए, णो चेव णं अप्पभू, तह चेव

(महावीर ने उत्तर दिया–) हे गौतम ! वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार के उत्तर देने में समर्थ हैं, किन्तु असमर्थ नहीं हैं शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए

नेयव्वं अविसेसियं जाव पभू समिया आउज्जिया पलिज्जिया जाव सच्चे णं एसमट्ठे णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए। अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि भासेमि पण्णवेमि परूवेमि–

यावत् वे सम्यक् रूप से सम्पन्न (समित) हैं, अभ्यस्त हैं (असम्पन्न या अनभ्यस्त नहीं हैं) वे उपयोग वाले हैं, अनुपयोग वाले नहीं हैं, वे विशिष्ट ज्ञानी हैं, सामान्य ज्ञानी नहीं हैं यावत यह बात सत्य है, इसलिए उन स्थविरों ने कही है, किन्तु अहंभाव के वश होकर नहीं कही है। हे गौतम ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ, भाषण करता हूँ, बताता हूँ और प्ररूपणा करता हूँ कि–

पुव्वतवेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वसंजमेणं देवा देवलोएसु उववज्जंति, कम्मियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, संगियाए देवा देवलोएसु उववज्जंति, पुव्वतवेणं पुव्वसंजमेणं कम्मियाए संगियाए अज्जो ! देवा देवलोएसु उववज्जंति, सच्चे णं एस मट्ठे, णो चेव णं आयभाववत्तव्वयाए।

–विया स. २, उ. ५, सु. १६-२५

पूर्वतप के कारण से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, पूर्वसंयम के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, कर्मिता (कर्मक्षय होने बाकी रहने) से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं तथा संगिता (राग आसक्ति) के कारण देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं और पूर्वतप, पूर्वसंयम, कर्मिता और संगिता से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। यही बात सत्य है, इसलिए उन्होंने कही है, किन्तु अपना अहंभाववश नहीं कहते हैं।

भाग २, खण्ड ६, पृ. १७२

गोत्तस्स मूलोत्तर भेय परूवणं–

सूत्र ३५९ (ख)

सत्त मूलगोत्ता पण्णत्ता, तं जहा–

१. कासवा, २. गोयमा, ३. वच्छा, ४. कोच्छा, ५. कोसिया, ६. मंडवा, ७. वासिट्ठा।

१. जे कासवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते कासवा, २. ते संडिल्ला, ३. ते गोला, ४. ते वाला, ५. ते मुंजइणो, ६. ते पव्वइणो, ७. ते वरिसकण्हा।

२. जे गोयमा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते गोयमा, २. ते गग्गा, ३. ते भारद्दा, ४. ते अंगिरसा, ५. ते सक्कराभा, ६. ते भक्खराभा, ७. ते उदत्ताभा।

३. जे वच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते वच्छा, २. ते अग्गेया, ३. ते मित्तेया, ४. ते सामलिणो, ५. ते सेलयया, ६. ते अट्ठिसेणा, ७. ते वीयकण्हा।

४. जे कोच्छा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते कोच्छा, २. ते मोग्गलायणा, ३. ते पिंगलायणा, ४. ते कोडीणो, ५. ते मंडलिणो, ६. ते हारिया, ७. ते सोमया।

५. जे कोसिया ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते कोसिया, २. ते कच्चायणा, ३. ते सालंकायणा, ४. ते गोलिक्कायणा, ५. ते पक्खिकायणा, ६. ते अग्गिया, ७. ते लोहिच्चा।

गोत्र के मूल और उत्तर भेदों का प्ररूपण–

मूल गोत्र (एक पुरुष से उत्पन्न वंश परम्परा) सात कहे गए हैं, यथा–

१. काश्यप, २. गौतम, ३. वत्स, ४. कुत्स, ५. कौशिक, ६. माण्डव, ७. वाशिष्ठ।

१. जो काश्यप गोत्री हैं वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. काश्यप, २. शाण्डिल्य, ३. गोल, ४. वाल, ५. मौंजकी, ६. पर्वती, ७. वर्षकृष्ण।

२. जो गौतम गोत्री हैं, वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. गौतम, २. गर्ग, ३. भारद्वाज, ४. आंगिरस, ५. शर्कराभ, ६. भास्कराभ, ७. उदत्ताभ।

३. जो वत्स गोत्री हैं, वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. वत्स, २. आग्नेय, ३. मैत्रेय, ४. शाल्मली, ५. शैलक, ६. अस्थिषेण, ७. वीतकृष्ण।

४. जो कौत्स गोत्री हैं, वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कौत्स, २. मौद्गलायन, ३. पिंगलायन, ४. कौडिन्य, ५. मण्डली, ६. हारित, ७. सोमक।

५. जो कौशिक गोत्री हैं, वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. कौशिक, २. कात्यायन, ३. सालंकायन, ४. गोलिक्कायन, ५. पाक्षिकायन, ६. आग्नेय, ७. लौहित्य।

६. जे मंडवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते मंडवा, २. ते आरिट्ठा, ३. ते समुया,

४. ते तेला, ५. ते एलावच्चा, ६. ते कंडिल्ला,

७. ते खारायणा।

७. जे वासिट्ठा तें सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा–

१. ते वासिट्ठा, २. ते उंजायणा, ३. ते जारूकण्हा,

४. ते वग्घावच्चा, ५. ते कौडिन्ना, ६. ते सन्नी,

७. ते पारासरा। –*ठाणं अ. ७, सु. ५५१*

६. जो माण्डव गोत्री हैं, वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. माण्डव, २. आरिष्ट, ३. सम्मुक्त,

४. तैल, ५. ऐलापत्य, ६. काण्डिल्य,

७. क्षारायण।

७. जो वाशिष्ठ गोत्री हैं, वे सात प्रकार के कहे गए हैं, यथा–

१. वाशिष्ठ, २. उंजायन, ३. जारूकृष्ण,

४. व्याघ्रापत्य,, ५. कौण्डिन्य, ६. संज्ञी,

७. पाराशर, (कुल ४९ गोत्र होते हैं)।

ग २, खण्ड ६, पृ. १७२

उमद्दव सम्पन्ने गग्गाचार्य–

मृदु-मार्दव सम्पन्न गर्गाचार्य–

। ३५९ (ग)

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि समाहिं पडिसंधए॥[1] –*उत्त. अ. २७, गा. १*

मिउ-मद्दवसंपन्ने, गम्भीरे सुसमाहिए।
विहरइ महिं महप्पा सीलभूएण अप्पणा॥ –*उत्त. अ. २७, गा. १७*

१. गर्गगोत्रोत्पन्न गार्ग्य मुनि स्थविर, गणधर और (सर्वशास्त्र) विशारद थे, वे (आचार्य के) गुणों से व्याप्त थे और गणि भाव में स्थित थे तथा समाधि में (स्वयं को) जोड़ने वाले थे।

(उसके पश्चात्) मृदु और मार्दव से सम्पन्न, गम्भीर, सुसमाहित एवं शीलभूत (चारित्रमय) आत्मा से युक्त होकर वे महात्मा गार्ग्याचार्य (अविनीत शिष्यों को छोड़कर) पृथ्वी पर (एकाकी) विचरण करने लगे।



१. ... अविनीत शिष्यों का वर्णन ...

गणितानुयोग प्रकीर्णक

विषय सूची

● आगम के पृष्ठांक और सूत्रांक गणितानुयोग के तथा अंतिम पृष्ठांक इसी ग्रंथ के हैं।

६. जे मंडवा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. ते मंडवा, २. ते आरिट्ठा, ३. ते समुया,

४. ते तेला, ५. ते एलावच्चा, ६. ते कंडिल्ला,

७. ते खारायणा।

७. जे वासिट्ठा ते सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. ते वासिट्ठा, २. ते उंजायणा, ३. ते जारुकण्हा,

४. ते वग्घावच्चा, ५. ते कोंडिन्ना, ६. ते सण्णी,

७. ते पारासरा। —ठाणं अ. ७, सु. [illegible]

[illegible]

भाग २, खण्ड ६, पृ. १७२

मिउमद्दव सम्पन्ने गग्गाचार्य—

मृदु-मार्दव सम्पन्न गर्गाचार्य

सूत्र ३५९ (ग)

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।
आइण्णे गणिभावम्मि समाहिं पडिसंधए॥[1] —उत्त. अ. २७, गा. [illegible]

मिउ-मद्दवसंपन्ने, गम्भीरे सुसमाहिए।
विहरइ महिं महप्पा सीलभूएण अप्पणा॥ —उत्त. अ. २७, गा. [illegible]

[illegible]



[illegible]त-अविनीत शिष्यों का वर्णन चरणानुयोग में देखें।

गणितानुयोग प्रकीर्णक

विषय सूची

● प्रारम्भ के पृष्ठांक और सूत्रांक गणितानुयोग के तथा अंतिम पृष्ठांक इसी ग्रंथ के हैं।

●●

अवशिष्ट पाठों का विषयानुक्रम से संकलन

(अंकित पृष्ठांक और सूत्रों के अनुसार पाठक अवलोकन करें)

लोक

पृ. १७

लोगे तिण्णि महइ महालया–

सूत्र ३५ (ख)

तओ महइ महालया पण्णत्ता, तं जहा–

१. जंबुद्दीवए मंदरे मंदरेसु,

२. सयंभूरमणे समुद्दे समुद्देसु

३. बंभलोए कप्पे कप्पेसु। *–ठाणं अ. ३, सु. २०५*

लोक में तीन महान् (विशाल) हैं–

तीन (अपनी कोटि में) सबसे बड़े कहे गए हैं, यथा–

१. मंदर पर्वतों में जम्बूद्वीप का मंदर पर्वत,

२. समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र,

३. कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प।

पृ. ३४

लोग भेयाणं अप्पबहुत्तं–

सूत्र ६९ (ख)

प. एयस्स णं भंते ! अहेलोगस्स तिरियलोगस्स उड्ढलोगस्स य कयरे-कयरेहिंतो अप्पा वा जाव विसेसाहिया वा ?

उ. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे तिरियलोए,

लोक के भेदों का अल्पबहुत्व–

प्र. भंते ! अधोलोक, तिर्यक्‌लोक और ऊर्ध्वलोक में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

उ. गौतम ! १. सबसे अल्प तिर्यक्‌लोक है।